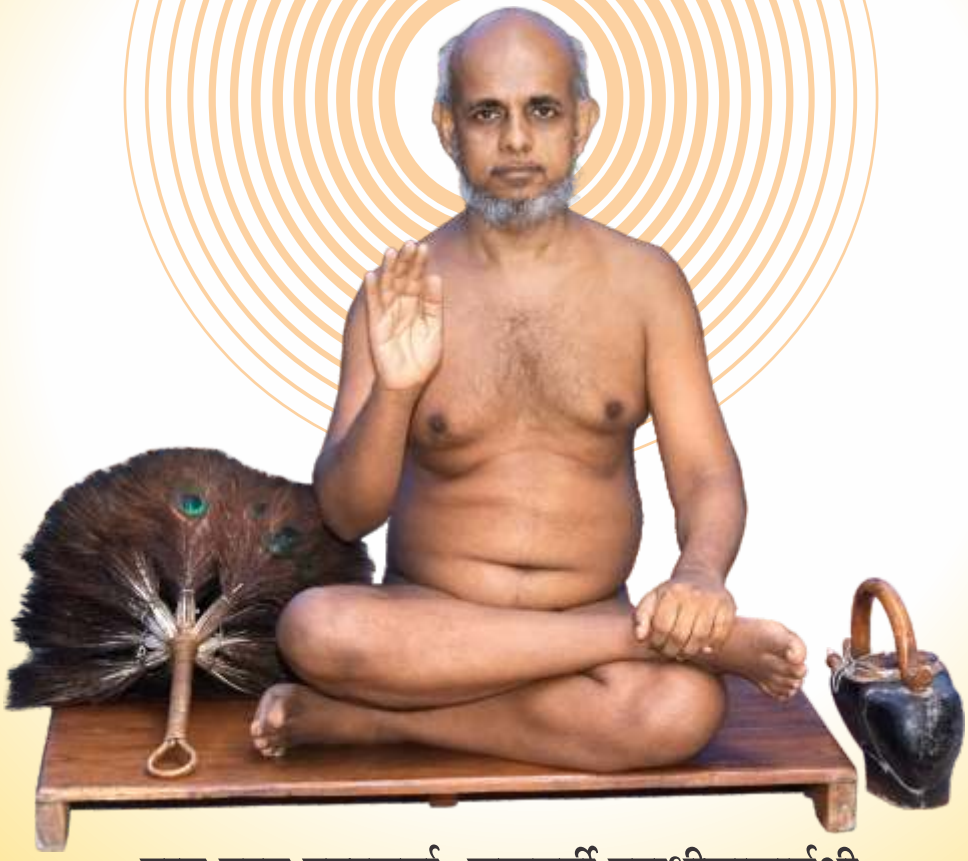

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

(लब्धिसार-क्षपणासार एवं अर्थसंदृष्टि)

ग्रन्थकर्त्ता
परम पूज्य आचार्यश्री नेमिचन्द्र जी महाराज

अनुवादिका
डा. श्रीमती उज्ज्वला दि. शहा

सम्पादक
पं. दिनेशभाई शहा

प्रकाशक
वीतरागवाणीप्रकाशक, निर्मला निवास, मुंबई

(परम्परानायक)

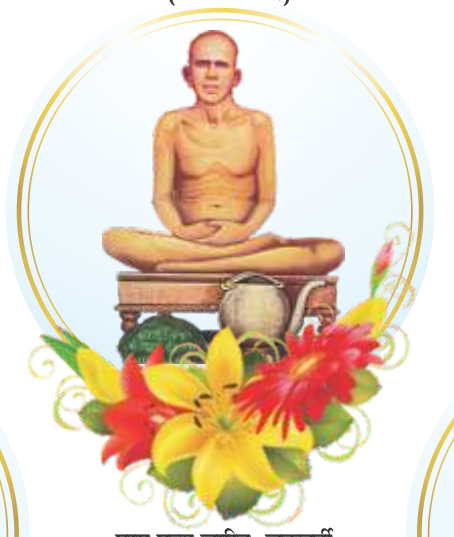

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

लब्धिसार-क्षपणासार एवं अर्थसंदृष्टि

हिन्दी अनुवाद

— अनुवादिका —

डॉ. श्रीमती उज्ज्वला दि. शहा

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

लब्धिसार-क्षपणासार एवं अर्थसंदृष्टि

हिन्दी अनुवाद

— अनुवादिका —

डॉ. श्रीमती उज्ज्वला दि. शहा

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती विरचित लब्धिसार-क्षपणासार की
पं. टोडरमलजी कृत भाषाटीका

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

(लब्धिसार-क्षपणासार एवं अर्थसंदृष्टि)

का

हिन्दी अनुवाद

— अनुवादिका —

डॉ. श्रीमती उज्ज्वला दि. शहा

एम.बी.बी.एस., डी.सी.एच., डी.जी.पी.

— सम्पादक —

पं. दिनेशभाई शहा

एम.ए., एल.एल.बी.

— प्रकाशक —

वीतरागवाणीप्रकाशक

१५७/९, निर्मला निवास, सायन (पूर्व), मुंबई - ४०० ०२२.

टेलि. : २४०७ ३५८१

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका–लब्धिसार-क्षपणासार एवं अर्थसंदृष्टि
हिन्दी टीका

प्रथम संस्करण २९ अक्तूबर, २०१० १६०० प्रत

— प्राप्तिस्थान —

वीतरागवाणीप्रकाशक

१५७/९, निर्मला निवास, सायन (पूर्व), मुंबई - ४०० ०२२.
टेलि. : २४०७ ३५८१
e mail - ujwaladinesh@yahoo.com

मूल्य रु. १००/-

नेमिचंद्र आचार्यजी सिद्धांत के ज्ञातार ।
शिष्यों के प्रति करुणा कर लिखा गोम्मटसार ।।
जीवकाण्ड रु कर्मकाण्ड लब्धि-क्षपणासार ।
अद्‌भुत रचना हो गयी दिव्यध्वनी अनुसार ।।
चामुण्डराय नि केशववर्णी थे कन्नड टीकाकार ।
टोडरमलजी ने कर दिया भाषा में विस्तार ।।
'सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका' तीन ग्रंथ हुये साकार ।
तीनों ग्रंथों के गणित के लिखे संदृष्टि अधिकार ।।
असामान्य यह जिनागम का चिन्हांकित चमत्कार ।
कठिन विषय को समझकर हमें लाभ अपार ।।
टोडरमल ज्ञानी मिले हमें परोक्ष गुरुवर ।
ज्ञानखजाना खोल दिया लूटे हम जी भर ।।
पति के साथ कर दिया ग्रंथ पठन को पार ।
पढ़ते गये, करते गये चर्चा बारम्बार ।।
पढ़ा पढ़ाया इन ग्रंथों को मैंने अनेकों बार ।
तब हमने पा लिया इनका मर्म और सार ।।
मन्दबुद्धि मैं, अनुवाद का विषय अति गम्भीर ।
टोडरमलजी के शब्दों ने दिया परंतु धीर ।।
अनुवादित कर छपाने के विकल्प हुये हजार ।
होनहार थी इन ग्रंथों की काललब्धि अनुसार ।।
'उज्ज्वल' अति मैं, मुझे मिला लब्धिसार का सार ।
इसी विधि से सभी करें भवोदधि को पार ।।

– डॉ. श्रीमती उज्ज्वला शहा

MP3 सीडीज् (128 KBPS) (प्रत्येक सी.डी. में १२ घण्टों के प्रवचन है)

— पं. दिनेशभाई शहा —

१)	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	७ सीडीज्	१२)	पंचास्तिकाय*	६ सीडीज्
२)	बालबोध पाठमाला	४ ”	१३)	पंचाध्यायी*	८ ”
३)	वीतराग विज्ञान पाठमाला	५ ”	१४)	तत्त्वार्थसूत्र*	८ ”
४)	तत्त्वज्ञान पाठमाला	५ ”	१५)	योगसार	५ ”
५)	गुणस्थान विवेचन	५ ”	१६)	कार्तिकेयानुप्रेक्षा	१९ ”
६)	रत्नकरंड श्रावकाचार	१३ ”	१७)	कारण कार्य रहस्य	१ ”
७)	मोक्षमार्ग प्रकाशक	२३ ”	१८)	छहढाला	४ ”
८)	आत्मसिद्धि	१२ ”	१९)	बृहद् द्रव्यसंग्रह	८ ”
९)	नियमसार	३६ ”	२०)	अष्टपाहुड	२५ ”
१०)	प्रवचनसार	५० ”	२१)	समयसार नाटक (अपूर्ण)	२० ”
११)	समयसार	७५ ”	२२)	अनुभवप्रकाश (अपूर्ण)	८ ”

◆ जैन सिद्धांत : शिबिर १ और २ – Visual 16 DVDs

◆ गुणस्थान : Visual 10 DVDs

— डॉ. उज्ज्वला शहा —

१)	क्रमबद्धपर्याय	४ सीडीज्	११)	लब्धिसार-क्षपणासार*	६ सीडीज्
२)	करणानुयोग परिचय	३ ”	१२)	धवला (पु. १ से १६)	१०२ ”
३)	निमित्त उपादान + पंचपरावर्तन	२ ”	१३)	जयधवला	
४)	पंचलब्धि	२ ”		(पु. १ से १४ अपूर्ण)	११० ”
५)	पांच भाव	१ ”	१४)	योग	१ ”
६)	पांच भाव (तत्त्वार्थसूत्र)	२ ”	१५)	जैनभूगोल + १४ कलर चार्टस्	२० ”
७)	प्रमाद के भेद	१ ”	१६)	कारण कार्य रहस्य	२ ”
८)	षट्स्थानपतित हानि वृद्धि	१ ”	१७)	सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड	२५ ”
९)	संख्यामान	१ ”	१८)	सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड	
१०)	सात तत्त्व	१ ”		(अपूर्ण)	१५ ”

◆ सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड : शिबिर १ और २ – Visual 16 DVDs

◆ सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड अर्थसंदृष्टि : Visual 18 DVDs

◆ सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड : शिबिर १ और २ – Visual 20 DVDs

* ये सीडीज ३२ kbps की है ।

— दातारों की नामावली —

शत प्रतिशत पूंजी दान में देनेवाले आदिश, आगम बाकलीवाल डॉलर्स १००

५२,२८७ स्व. श्री. कांतिलाल बाबालाल गांधी, जांबुडी
हस्ते श्री. प्रज्ञेश गांधी, यू.एस.ए.
४८,१०० एक मुमुक्षु बहन, यू.एस.ए.
३१,००० चंदर और तिलक गंगवाल, इंदौर
२५,३५० दि. जैन कुंदकुंद कहान स्वाध्याय भवन, इंदौर
२५,००० श्रीमती लक्ष्मी शशांक शहा, मुंबई
२५,००० श्रीमती चारुशीला विजयकुमार दोशी, मुंबई
१५,००० श्री. हीरज शाह, यू.एस.ए.
१३,५०० श्री. आशिष, शिल्पा जैन, यू.एस.ए.
११,३०० श्री. विजयकुमार जैन,
हस्ते विकास, रुचि जैन, यू.एस.ए.
११,००० दि. जैन रत्नत्रय स्वाध्याय मंडळ, फलटण
११,००० श्री. हितेश जोबालिया, मुंबई
११,००० इंद्रजीत और स्नेहलता गंगवाल, इंदौर
११,००० श्रीमती झवेरबेन आनंदजी छेडा, मुंबई
१०,००० श्रीमती सुशीला जयंति गाला, मुंबई
१०,००० श्री. रमणिकलाल जादवजी सावला, देवलाली
७,५०० श्री. मणिलाल गाला, देवलाली
६,२५० श्री. दिपक कोठारी, यू.एस.ए.
५,००० श्री. सुभाष गांधी, फलटण
५,००० श्रीमती तृप्ती कोठारी, लासुर्णे
५,००० श्रीमती कविता विजयकुमार शहा, सातारा
५,००० श्रीमती दिव्या मेहता, ठाणे
५,००० श्रीमती मंदा मेहता, मुंबई
५,००० श्रीमती जया गडा, मुंबई
५,००० श्रीमती स्वर्णलता शांतिलाल बडजात्या, इंदौर
५,००० श्री. जतीन और तोरल शाह, यू.एस.ए.
५,००० श्रीमती उषा जितेन्द्रप्रसाद दोशी, मुंबई
४,७०० श्रीमती सुशीला दिनेश शाह यू.एस.ए.
४,६०० श्रीमती जोत्स्नाबेन विनयकांत शाह, यू.एस.ए.
४,६०० श्रीमती उषा प्रमोद शाह, यू.एस.ए.
४,६०० श्रीमती प्रमिला सुरेश जैन, यू.एस.ए.
२,६७५ श्री. गोविंदभाई शाह, निमच
२,५०१ महिला मंडल, होशंगाबाद
२,५०० डॉ. सरला लक्ष्मीचंद विसरिया, मुंबई
२,५०० श्रीमती आरती अशोक घिया, मुंबई
२,४८४ डॉ. वर्षा पंड्या, यू.एस.ए.
२,१०० स्वाध्याय महिला मंडल, गोराकुण्ड, इंदौर
२,००१ श्रीमती विद्याबाई फौजदार, होशंगाबाद
१,५०० कु. अंचल और हर्षिता अशोक जैन, भोपाल
१,५०० श्री. ब्रम्हदेवानंद, बेंगलोर
१,१५० गुप्तदान हस्ते प्रज्ञा जैन, होशंगाबाद
१,१११ श्रीमती सुरेखा सुभाष शहा, फलटण
१,१११ श्री. महेन्द्र माठिया, मुंबई
१,१०० श्रीमती मनीषा अनुराग जैन, इंदौर
१,१०० श्री. प्रदीप तिलमानी, इंदौर
१,१०० श्रीमती प्रेमलता पारसमल जैन, इंदौर
१,०११ श्रीमती निर्मला राजेन्द्र पहाडिया, इंदौर
१,००१ श्रीमती रत्ना जैन, होशंगाबाद
१,००० श्रीमती सुषमा सुभाष दिगम्बर, होशंगाबाद
१,००० श्रीमती मखमलबाई डेरिया, होशंगाबाद
१,००० श्रीमती चित्रा कोमलचंद जैन, होशंगाबाद
१,००० श्री. नीरजकुमार जैन, होशंगाबाद
१,००० श्री. विरेंद्र गांधी, भिगवण
१,००० श्रीमती चंचळबाई चंकेश्वरा, फलटण
१,००० श्री. अनिल हि. शहा, फलटण
१,००० श्रीमती अनुराधा वडूजकर, फलटण
१,००० श्री. हेमंतजी शेखावत, इंदौर
१,००० श्री. मांगीलाल नरसिंगपुर, इंदौर
१,००० श्री. श्रीपाल टी. एच, बेंगलोर
१,००० श्रीमती पन्ना जैन, मुंबई

७०० श्रीमती धनवंतीदेवी संघवी, इंदौर
६४५ डॉ. नरेश शाह, यू.एस.ए.
६०० श्रीमती पुष्पा पाटोदी, इंदौर
५०१ श्रीमती मंजू अखिलेश, होशंगाबाद
५०१ श्रीमती विमलाबाई (सिलवानी), होशंगाबाद
५०१ श्री. राकेश जैन, होशंगाबाद
५०१ श्रीमती पुष्पा रतनलाल जैन, होशंगाबाद
५०१ श्रीमती सुमन जैन, होशंगाबाद
५०१ श्रीमती विद्यावती जैन, होशंगाबाद
५०१ श्री. उदय जैन, होशंगाबाद
५०१ स्व. श्रीधरराव गो. धोंगडे, रहाटगांव
५०० श्री. आनंद मस्ते, होशंगाबाद
५०० श्रीमती विजयलक्ष्मी गिल्ला, होशंगाबाद
५०० श्रीमती नीती दिगम्बर, होशंगाबाद
५०० श्रीमती सारिका दिगम्बर, होशंगाबाद
५०० श्रीमती ताराबाई जैन, होशंगाबाद
५०० श्रीमती गुणमाला गिल्ला, होशंगाबाद
५०० श्रीमती शकुंतलाबाई जैन, होशंगाबाद
५०० श्री. पीयूष जैन, शेंदूर्णी
५०० श्रीमती कुसुम शहा, फलटण
५०० श्रीमती प्रगति शहा, फलटण
५०० गुप्तदान, इंदौर
५०० श्रीमती लता शाह, इंदौर
५०० श्रीमती मेडमबाई सोगानी, इंदौर
५०० श्रीमती कुसुमलता जैन, इंदौर
५०० श्रीमती मालती जैन, इंदौर
५०० श्रीमती संतोष जैन, इंदौर
५०० श्रीमती सुलोचना बडजात्या, इंदौर
५०० श्री नितिन ढोलकिया, मुंबई
५०० श्रीमती शशी जैन, जबलपुर
५०० श्री नेमिचंद अर्पल, औरंगाबाद
५०० श्रीमती वंदना दोडल, मुंबई
३०० श्री. प्रकाश जैन, इंदौर
३०० श्री. ललित डाकोलिया, इंदौर
२५१ श्री पन्नालाल छ. जैन, इंदौर
२५० श्रीमती निशा जैन, होशंगाबाद
२५० श्रीमती वर्षा जैन, होशंगाबाद
२०१ श्रीमती तारादेवी जैन, इंदौर
२०१ श्री. बाबूलाल जैन, बुरहानपुर
२०० श्री. अमीरचंद गोयल, होशंगाबाद
२०० श्रीमती अंजली गिल्ला, होशंगाबाद
२०० श्रीमती सोनाली शहा, डोरलेवाडी
२०० श्रीमती मंगल मेहता, औरंगाबाद
२०० श्रीमती विमला और सुधा गंगवाल, इंदौर
२०० श्रीमती सूरजबाई विनोदबाई जैन, इंदौर
२०० श्री पूनमचंद गोधा, इंदौर
१५१ श्रीमती ऊर्मिला जैन, होशंगाबाद
१५१ श्रीमती कल्पना जैन, होशंगाबाद
१५१ श्रीमती राखी जैन, होशंगाबाद
१०५ श्रीमती शशी महंत, होशंगाबाद
१०१ श्रीमती अमिता जैन, होशंगाबाद
१०१ श्रीमती राजश्री गोयल, होशंगाबाद
१०१ श्रीमती नीता जैन, होशंगाबाद
१०१ श्रीमती प्रीति जैन, होशंगाबाद
१०१ श्रीमती अलका जैन, होशंगाबाद
१०१ श्रीमती सावित्री जैन, होशंगाबाद
१०१ श्री. विकास डेरिया, होशंगाबाद
१०१ श्रीमती हीना जैन, होशंगाबाद
१०१ श्रीमती कविता जैन, रामटेक
१०१ श्रीमती आशादेवी जैन, भिण्ड
१०१ किन्नरी गोसालिया, यू.एस.ए.
१०१ अशोक धम्माणि, नेरुळ

— प्रकाशकीय —

यह विदित है कि तीर्थंकर का जन्म होने से पहले ही पंद्रह महिनों से रत्नों की वर्षा होती रहती है – गर्भ के नौ मास तथा उससे पूर्व के छह मास । हमारे इस लब्धिसार-क्षपणासार की कुछ ऐसी ही बात बन रही है । ग्रंथ छपकर तैयार होने के पंद्रह मास पूर्व से ही इसके छपवाने हेतु धन की वर्षा होने लगी है । तीर्थंकरों के यहां तो धनपति-कुबेर वर्षा करते हैं; मगर यहां तो धनपतियों के साथ-साथ जनसामान्य ने जो अपार स्नेह तथा यथाशक्ति दान देकर हमें प्रोत्साहित किया है, उसे सोचकर हमारा हृदय गद्‌गद् हो उठता है ।

शुरुआत ते ऐसी हुयी कि आप सोच भी नहीं सकते । दो छोटे-छोटे बच्चे – आदिश ८ साल का और आगम ६ साल का – मेरे पास आये और आदिश बोला, 'पंडितजी ! पंडितजी ! हम आपसे बात करना चाहते हैं ।' मैंने कहा बोलो बेटा । उसने कहा, 'मैं प्राइव्हेट में आपसे कल मिलना चाहता हूँ ।' मैंने कहा अभी क्यों नहीं ? जैसे वे अचानक आये थे वैसे ही अदृश्य हो गये । दूसरे दिन तक इस बातको मैं भूल भी गया था । शाम के भोजन के बाद फिर वे दोनों आये और मेरे सामने एक लिफाफा देकर कहने लगे यह आपके लिये है । मैंने लिफाफा खोला तो उसमें १०० डॉलर्स थे । मेरी प्रश्नार्थक मुद्रा को देखकर बड़े ने कहा आंटीजी आगम (शास्त्र) लिख रही है तो हमने जो डॉलर्स बचाके रखे थे वे हम दोनों ने आपको देने का निर्णय लिया है । हम समझते हैं कि वे बहुत कम हैं । लेकिन हमारे पास इतने ही हैं । मेरे आँखो में आंसू आये । अरे ! आम तौर से बच्चे अपने पास का चॉकलेट भी किसीसे बाटना नहीं चाहते, देना नहीं चाहते, इन बच्चों ने तो अपनी सारी बचायी हुअी पुंजी ही देना चाहा । धन्य हैं वे आदिश-आगम और धन्य हैं उनके माता-पिता ! वे हैं अतुल और शिल्पा बाकलीवाल । ऐसे संस्कार अमेरिका में ? हम जब वॉशिंग्टन पहुंचे थे तब हमें लेने श्री. अतुल बाकलीवाल एअरपोर्ट पर आये थे । रात का प्रवचन सेंटरपर था । इसलिए हमें भोजन और आराम के लिये उनके घर ले गये थे । तब उन बालकों ने उज्ज्वला को भाषांतर करते हुये देखा था और उनके परिणामों का यह फल जो आपके सामने है ।

जहां-जहां हम प्रवचनार्थ जाते थे वहां के समाज ने बिना मांगे दिल और जेब खोलकर पैसे दिये । उनके हम दोनों अत्यंत ऋणी हैं ।

जिनवाणी मां की सेवा करने का बार-बार हमें अवसर प्राप्त हो रहा है । यह हमारा सौभाग्य है और उत्तरोत्तर अवसर हमें प्राप्त हो ऐसी ईश्वर के चरणों में प्रार्थना है !

यह शास्त्र छपाने हेतु जिन-जिनका सहयोग प्राप्त हुआ उन सबके हम आभारी हैं ।

– पं. दिनेशभाई शहा

– हमारे प्रकाशन –

(१) जैनतत्त्व परिचय	– मराठी, हिन्दी, गुजराती, इंग्लिश	रु. १५/-
(२) कारण कार्य रहस्य	– मराठी, हिन्दी, गुजराती, इंग्लिश	रु. १५/-
(३) करणानुयोग परिचय	– मराठी, हिन्दी, गुजराती	रु. १५/-
(४) पंचलब्धि	– मराठी, हिन्दी, गुजराती	रु. १५/-
(५) भक्तामरस्तोत्र प्रवचन	– मराठी	रु. १५/-
(६) सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड एवं अर्थसंदृष्टि	– हिन्दी	रु. १२५/-
(७) सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड एवं अर्थसंदृष्टि	– हिन्दी	रु. १५०/-
(८) सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार एवं अर्थसंदृष्टि	– हिन्दी	रु. १००/-

— प्राप्तिस्थान —

वीतरागवाणीप्रकाशक

१५७/९, निर्मला निवास, सायन (पूर्व), मुंबई - ४०० ०२२.

टेलि. : २४०७ ३५८१

e mail - ujwaladinesh@yahoo.com

— मेरी बात —

सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य नेमिचंद्रजी ने लब्धिसार-क्षपणासार ग्रंथों की रचना की है । आगम की मूल परम्परा के आधार से इतना जटिल विषय गाथाबद्ध करके शिष्यों को समझाया है । आचार्यकल्प पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषा टीका – ढूंढारी भाषा में लिखी है । इस ग्रंथ को सर्वप्रथम मैंने और मेरे पति पं. श्री. दिनेशभाई ने इ. स. १९९४ में पढ़ा था । तभी कुछ नहीं समझे थे, हां इतनी बात पढ़ी थी कि, 'मोक्ष का साधन दर्शन-चारित्र की लब्धि से होता है और दर्शन-चारित्र लब्धि में बंध-सत्त्व की हानि कैसे होती है उसका स्वरूप इस ग्रंथ में बताया जा रहा है' । तब विचार आया था कि लब्धिसार का अर्थ समझ में आना भी मेरे लिये एक महान लब्धि-उपलब्धि होगी । उसके पश्चात् मैंने दो बार इस ग्रंथ पर सामूहिक स्वाध्याय भी कराया, अर्थसंदृष्टि का भी आद्योपांत स्वाध्याय हुआ । मैंने 'पंचलब्धि' पुस्तक लिखते समय भी कुछ विषयों का अनेकों बार अभ्यास किया था ।

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड का अर्थसंदृष्टि सह हिन्दी अनुवाद करने के पश्चात् मेरा आत्मविश्वास एवं साहस कुछ बढ़ गया । गतवर्ष इ.स. २००९ में सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड का अर्थसंदृष्टि सह हिन्दी अनुवाद छपवाने हेतु प्रेस में देकर हम दोनों प्रवचनार्थ विदेश यात्रा पर गये । वैसे तो वहां भी हम प्रतिदिन छह छह घण्टे प्रवचन देते हैं फिर भी जितना समय जुटा पाती थी मैं लब्धिसार ग्रंथ लेकर अनुवाद करने बैठ जाती थी । दो महिने के अंदर मैंने ३०० पृष्ठों का अनुवाद कर लिया । शेष पुस्तक तथा अर्थसंदृष्टि का अनुवाद करने में २-४ महिने और निकल गये, क्योंकि इसके दरम्यान् दो बार फलटण, एक बार होशंगाबाद, एक बार इंदौर के शिबिर हुये ।

इसकी डी.टी.पी. एवं प्रूफ रीडिंग का काम अत्यंत कठीन एवं मेहनत का है जो हम दोनों मिलकर करते हैं । उस दरम्यान भी कुकमा *(कच्छ)* और देवलाली में शिबिर हुये ।

शिबिरों के दिनों में भी हमारा प्रूफ रीडिंग आदि का काम चलता रहता था, हमने कभी भी कहीं पर भी लोगों को अपील नहीं की या कहीं सूचित भी नहीं किया, फिर भी इस ग्रंथ की कोई अद्‌भुत महिमा है कि उपरोक्त सभी स्थानों के अनेक

स्वाध्यायप्रेमियों ने उत्स्फूर्तता से दानराशि प्रदान की है ।

अनुवाद के लिये मैंने कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट की ओर से छपे 'सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार एवं उसकी भाषा टीका' ग्रंथ लिया है, तथा पं. टोडरमलजी लिखित 'लब्धिसार-क्षपणासार का अर्थसंदृष्टि अधिकार हमें ब्र. विमलाबहनजी से प्राप्त हुआ है । इन ग्रंथों के साथ-साथ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास से प्रकाशित लब्धिसार *(क्षपणासार गर्भित)* ग्रंथ का भी आधार लिया है । प्रत्येक गाथा दोनों ग्रंथों से मिलान करके शुद्ध करके लिखी है । हमारे साथ जो अर्थसंदृष्टि पुस्तक थी उसमें अनेक स्थानोंपर संदृष्टियों के पृष्ठ संख्या तो लिखी थी, परंतु संदृष्टियां नहीं थी, जो अगास से छपी पुस्तक में मिली है । अर्थसंदृष्टियों को भी अधिक से अधिक अच्छी तरह से प्रस्तुत करने की कोशिश की है ।

अर्थसंदृष्टि के चिन्ह देखकर लोग इस विषय को अत्यंत कठीन समझकर छोड़ देते हैं । परंतु मैंने हमारे जीवकांड के रोज के स्वाध्याय में मूल ग्रंथ के ३०० व्याख्यान के पश्चात् अर्थसंदृष्टि को ५४ घण्टों में पढ़ाया था, सारा विषय बोर्ड पर समझाया था । उपस्थित मुमुक्षुओं ने तो उत्साह से समझा ही था परंतु उसकी व्हीडिओ (D.V.D.) देखकर भी अनेकों ने विषय को हृदयंगम किया है तथा खूब सराहा है ।

लब्धिसार-क्षपणासार का जो विषय है, हमारे वर्तमान जयधवला पुस्तक - १४ के स्वाध्याय में भी वही विषय चल रहा है । लब्धिसार का अभ्यास एवं अनुवाद के कारण अब जयधवला के विषयपर सूक्ष्मता से स्वाध्याय एवं चर्चा, समाधान चलता है । आगम के अभ्यास में और इस विषय के समझने में अनोखा आनंद आता है, हम चाहते हैं, सभी जीव इसको प्राप्त करें । इस अभ्यास में उपयोग की सूक्ष्मता, एकाग्रता का तो लाभ होता ही है, केवलज्ञान एवं सर्वज्ञ की सच्ची महिमा आती है ।

निर्वाणक्षेत्रों की वंदना, दर्शन करनेपर हमें सिद्धों की विशेष महिमा आती है – स्मरण होता है; इन ग्रंथों को पढ़ने-समझने से मोक्षमार्ग की, जीव के पुरुषार्थ की, कर्मों के अवस्थाओं की सूक्ष्मता ज्ञात होनेपर अरहंत, सिद्धों की अपूर्व महिमा आये बिना नहीं रहती । अरहंत, सिद्धों को तथा अपने को सही पहचानने के लिये इन ग्रंथों का अवश्य अभ्यास करना ।

इस ग्रंथ के अनुवाद में जहां तहां प्रिंटिंग या प्रूफ रीडिंग की अशुद्धियों को

सुधारा ही है; साथ-साथ कहीं कोई शब्द छूट गये थे, कहीं वाक्य छूटे हुये लगे, कहीं अन्यथा लिखा हुआ प्रतीत हुआ वहां मूल गाथाओं के अर्थ के साथ मिलान करके, अर्थसंदृष्टि के साथ मिलान करके, अन्य ग्रंथों के साथ मिलान करके तथा धवला, जयधवला के अभ्यास के कारण कहीं सुधार आवश्यक लगा वहां यथायोग्य शुद्ध करके लिखा है । कहीं छोटी-छोटी बाते ब्रैकेट में लिखकर इटॅलिक *(तिरछे)* लेटर्स में छपाया है । वहां मूल वाक्य में वे शब्द अधिक करने से अर्थ ठीक लगता है, कहीं संख्यात के बदले असंख्यात होना चाहिए वहां *(अ)* उसके साथ लगाकर उसका कारण लिख दिया है ।

उनमें से निम्न कुछ स्थानोंपर मैंने मूल प्रति से फेरफार करके लिखा है –

गाथा ३८ की टीका में 'असातादि अप्रशस्त प्रकृतियों का प्रतिसमय अनंतवें भाग मात्र ... अनुभाग बांधता है – यहां द्विस्थानरूप शब्द डाला है जो मूल गाथा में लिखा हुआ है' ।

गाथा ६२, ६३, ६४ की टीका में 'उपशांत निषेक से नीचे के निषेकों में ... ' लिखा था, वहां उपशांत के स्थान पर उपांत होना चाहिये, वैसे लिखा है ।

उसी टीका में आगे लिखा है 'जो द्रव्य उदयावली के प्रथम निषेक में दिया था उसका उत्कर्षण किया ...' वहां उदयावली के स्थान पर द्वितीयावली होना चाहिये, वैसे लिखा है ।

आगे लिखा है 'एक समय आवली से युक्त आबाधा ...' वहां एक समय अधिक आवली से युक्त आबाधा कर दिया है ।

गाथा ६९ की टीका में 'डेढ़ गुणहानि गुणित समय प्रमाण ...' लिखा था उसे डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण ऐसा सुधारकर लिखा है ।

गाथा ७५ की टीका में 'जिनका बंध नहीं पाया जाता ऐसी स्वजाति प्रकृति में संक्रमण करता है' लिखा था वहां 'जिनका बंध पाया जाता है ऐसी स्वजाति प्रकृतियों में संक्रमण करता है' ऐसा सुधारकर लिखा है ।

गाथा ७६ की टीका में 'सातावेदनीय का द्रव्य वेदनीय के द्रव्य के असंख्यातवें भाग मात्र आता है' लिखा था वहां संख्यातवें भाग मात्र लिखा है ।

गाथा ७८ की टीका में '... असंख्यात हजार स्थितिबंधापसरणों द्वारा' लिखा था वहां संख्यात हजार स्थितिबंधापसरणों द्वारा लिख दिया है ।

गाथा ८४ की टीका में '... और ही स्थितिखंड, अनुभागबंध, स्थितिबंध का प्रारंभ होता है' लिखा था वहां अनुभागबंध के बदले अनुभागखंड होना चाहिये, वैसा लिखा है ।

गाथा ८८ की टीका में 'एक-एक समय होनेपर एक-एक समय निर्जरित होता है' लिखा था वहां '... एक-एक निषेक निर्जरित होता है' लिखा है ।

गाथा ९१ की टीका में '... विध्यात संक्रम का भाग देनेपर' के स्थान पर '... विघ्यात संक्रमण भागहार का भाग देनेपर' लिख दिया है ।

गाथा १०३ की टीका में 'जिस प्रकृति का उदयावली के प्रथम निषेक से लेकर ...' लिखा था वहां सुधारकर 'जिस प्रकृति का उदय है उसके उदयावली के प्रथम निषेक से लेकर' लिखा है ।

गाथा १०४ की टीका में '... उसका प्रथम निषेक दोगुणा प्रमाण युक्त चय चाहिये' लिखा था वहां '... उसका प्रथम निषेक दोगुणा प्रमाण युक्त है' ऐसा लिखा है ।

गाथा ११६ की टीका में ... असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, और एकेन्द्रिय लिखा था वहां द्वीन्द्रिय शब्द लिखना रह गया था, इसलिए त्रीन्द्रिय के पश्चात् द्वीन्द्रिय शब्द अधिक लिखा है ।

गाथा १२० की टीका में दूरापकृष्टि के भेद समझाने के लिये मेरी कल्पना से संदृष्टि बनाकर विशेषार्थ के रूप में लिखी है ।

गाथा १३३ की टीका में एक जगह लिखा था 'प्रथम फालि के द्रव्य से असंख्यात भाग गुणा क्रम युक्त द्विचरम फालि तक ...' वहां असंख्यात भाग गुणा के स्थान पर असंख्यातगुणा चाहिये सो वैसा लिखा है ।

गाथा १४० की टीका में अंतकोत्करण के स्थानपर सुधारकर अंत कांडकोत्करण लिख दिया है ।

गाथा १६८ की टीका में देऊ के स्थान पर दोऊ होना चाहिये था जिसका अर्थ 'दोनों' होता है, वैसा लिख दिया है ।

गाथा १८० की टीका में 'तीनों का उदय काल' लिखा था वहां 'तीनों का जघन्य उदयकाल' होना चाहिये, वैसा लिखा है ।

गाथा १८३ की टीका में १४ वें क्रमांक के अल्पबहुत्व में 'अपूर्वकरण के प्रथम में पाये जानेवाला' के स्थानपर 'अपूर्वकरण के प्रथम समय में पाये जानेवाला' ऐसा सुधारकर लिखा है ।

गाथा १८५ की टीका में 'एक अधिक सूच्यंगुल को पांच बार लिखकर' के स्थानपर सुधारकर 'एक अधिक सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग को पांच बार लिखकर' किया है ।

उसी टीका में आगे लिखा था कि 'देशसंयत के स्थानों में प्रतिपादित पूर्व कहे ...' उसके स्थानपर सुधारकर 'देशसंयत के स्थानों में प्रातिपातादि पर्व कहे ...' लिख दिया है ।

गाथा १८८ की टीका में '... मनुष्य के उत्कृष्ट तक जो स्थान हैं, वे असंयत हुआ उसके होते हैं' लिखा था, वहां योग्य समझकर '... मनुष्य के उत्कृष्ट तक जो स्थान हैं, वे असंयत से देशसंयत हुआ उसके होते हैं' लिखा है ।

गाथा १९७ की टीका में लिखा था 'उसके ऊपर असंख्यात समय जाकर ...' परंतु मूल प्राकृत गाथा में 'पडिवज्जय संख्यसमयमेत्ता हु' तथा संस्कृत में 'प्रतिवर्ज्य संख्यातसमयमात्रा हि' लिखा है, वहां संख्यात समय जाकर होना चाहिये, वैसा करके लिखा है ।

गाथा २०३ की टीका में '... मिथ्यात्व के सन्मुख जीव के समय के अंत समय में ...' लिखा था वहां 'मिथ्यात्व के सन्मुख जीव के सकल संयम के अंत समय में ...' होना चाहिये, सो लिखा है ।

गाथा २२३ की टीका में लिखा था 'प्रथम स्पर्धक की वर्गणा से द्वितीय, तृतीय, चतुर्थादिक स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के' वहां 'प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा से ...' होना चाहिये, वैसा लिख दिया है ।

गाथा २४९ की टीका में लिखा था 'एक कारण यह हुआ' वहां चाहिये था 'एक करण यह हुआ' वैसे सुधारकर लिखा है ।

गाथा २५३ की टीका में 'पल्य के असंख्यातवां भाग देकर' के स्थान पर सुधारकर 'पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर' लिखा है ।

गाथा २७० की टीका में 'अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान क्रोधादिक का द्रव्य' लिखा था उसके स्थान पर 'अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान क्रोधद्विक का द्रव्य' होना चाहिये, सो लिखा है ।

गाथा २८६ की टीका में प्रथम पैरेग्राफ में 'अधस्तनकृष्टि द्रव्य' के स्थानपर 'अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य' होना चाहिये, क्योंकि वर्णन उसीका किया है, इसलिए सुधारकर वैसे लिखा है ।

उसी टीका में आगे एक जगह अपूर्वकृष्टि लिखकर फूटनोट में अन्य प्रतियों में पूर्वकृष्टि शब्द मिलता है ऐसा लिखा था, पूर्वकृष्टि शब्द ही होना चाहिये, सो लिखा है ।

उसी टीका में अंत में लिखा था 'यहां अंत कृष्टि में दिया द्रव्य क्रम से प्रथम वर्गणा द्रव्य अनंतवें भाग मात्र है' उसे सुधारकर ऐसे लिखा है – 'अंत कृष्टि में दिये द्रव्य से प्रथम वर्गणा में दिया द्रव्य अनंतवें भाग मात्र है' ।

गाथा २९८ की टीका में 'सूक्ष्मसाम्पराय के द्वितीय समय में जो प्रथम समय में अनुदयरूप कृष्टि कही थी' वाक्य लिखा था, उसमें अनुदयरूप के स्थानपर उदयरूप होना चाहिये, जो अन्य तीन हस्तलिखित प्रतियों में है ऐसा फूटनोट में भी लिखा है, वही ठीक होने से सुधारकर लिखा है ।

गाथा ३१७ की टीका में लिखा था 'मायावेदक काल के प्रथम समय में तीन लोभ का द्रव्य दो का द्रव्य है, वह माया संज्वलन में संक्रमण करता है ।' वहां सुधारकर लिखा है 'मायावेदक काल के प्रथम समय में तीन लोभ का द्रव्य, दो माया का द्रव्य है, वह माया संज्वलन में संक्रमण करता है ।'

उसके आगे लिखा था 'दो माया का द्रव्य तीन लोभ का द्रव्य है, वह संज्वलन लोभ संक्रमण करता है' उके स्थानपर सुधारकर लिखा है 'दो माया का द्रव्य, तीन

लोभ का द्रव्य है, वह संज्वलन लोभ में संक्रमण करता है ।'

गाथा ३२९ की टीका में लिखा था 'नपुंसकवेद के नाश होने के समय से लेकर ...' उसके स्थानपर सुधारकर लिखा है 'नपुंसकवेद के उपशम का नाश होने के समय से लेकर ...'

गाथा ३३१ की टीका में 'लोभ का संक्रमण था' की जगह 'लोभ का संक्रमण नहीं था' होना चाहिये, वैसा लिख दिया है ।

गाथा ३३२ की टीका में 'चक्षुदर्शनावरण का और उसके पश्चात् श्रुतज्ञानावरण और चक्षुदर्शनावरण' लिखा था वहां 'श्रुतज्ञानावरण और अचक्षुदर्शनावरण' होना चाहिये, सो लिखा है ।

गाथा ३३८ की टीका में 'स्थितिबंध बंधता, क्रम सहित' लिखा था वहां 'स्थितिबंध बढ़ता क्रम सहित' होना चाहिये, वह लिखा है ।

गाथा ३४१ की टीका में 'मोह, बीसीय, तीसीय का क्रम से पृथक्त्व लक्ष सागर के चार सातवां भाग, तीन सातवां भाग, दो सातवां भाग मात्र स्थितिबंध होता है' ऐसा लिखा था वहां 'मोह, तीसीय, बीसीय ...' ऐसा होना चाहिये, वैसा लिखा है ।

गाथा ३४४ की टीका में '... अवस्थित आयाम ही है' के स्थानपर 'अवस्थित गुणश्रेणी आयाम ही है' लिखा है ।

गाथा ३४५ की टीका में '... गुणश्रेणी की वृद्धि, हानि, अवस्थित रूप तीन स्थान कहे' लिखा था, वहां 'गुणश्रेणी आयाम की वृद्धि, हानि, अवस्थित रूप तीन स्थान कहे' लिखा है ।

गाथा ३५८ के भावार्थ में 'मान के उदय सहित चढ़कर गिरनेवाले जीव के क्रम से लोभ, मान का उदय होता है' लिखा था, वहां '... लोभ, माया, मान का उदय होता है' लिखा है ।

गाथा ३७९ की टीका में अल्पबहुत्व के ५४ क्रमांक में 'प्रथम समय में संभवता' लिखा था वहां 'अंत समय में संभवता' चाहिये वह लिखा है ।

गाथा ४०१ की टीका में 'यह ही जघन्य स्थिति है' लिखा था, वहां 'यह स्थिति

में जघन्य है' चाहिये, क्योंकि गाथा में भी 'एषा स्थितिषु जघन्या' लिखा था, इसलिए सुधारकर लिखा है कि 'यह स्थिति विषयक जघन्य है' ।

गाथा ४०५ की टीका में 'जो जीव उपशमश्रेणी चढ़कर क्षपकश्रेणी चढ़ता है उसका स्थितिसत्त्व उससे (क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर, उपशमश्रेणी चढ़कर पश्चात् क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले से) संख्यातगुणा है ।' लिखा था, जो ठीक नहीं है वहां 'जो जीव उपशमश्रेणी न चढ़कर क्षपकश्रेणी चढ़ता है ...' लिखा है । (देखिये जयधवला पु. १४ चारित्रमोह की क्षपणा में अपूर्वकरण का प्रकरण)

गाथा ४१८ की टीका में '... प्रथम समय संबंधी स्थितिबंध से संख्यातगुणा हीन है' लिखा था वहां '... प्रथम समय संबंधी स्थितिसत्त्व के संख्यातगुणा हीन है' चाहिये, वैसा लिखा है ।

गाथा ४१९ के भावार्थ में 'वहां पूर्व स्थितिबंध से अनंतर स्थितिबंध असंख्यातगुणा होता है' लिखा था, जिसे सुधारकर '... असंख्यातगुणा हीन होता है' लिखा है ।

गाथा ४२० की टीका में '... इनका दूरापकृष्टि का उल्लंघन होने से' लिखा था, वहां सुधारकर 'इनका दूरापकृष्टि का उल्लंघन न होने से' लिखा है ।

गाथा ४२७ की टीका में '... असंज्ञी पंचेन्द्रिय समान स्थितिसत्त्व होता है' लिखा था, वहां सुधारकर '... असंज्ञी पंचेन्द्रिय के स्थितिबंध के समान स्थितिसत्त्व होता है' लिखा है । उसीके आगे स्थिति तक दो जगह आया था वहां स्थितिबंध तक होना चाहिये था, सो वैसे लिखा है ।

उसी गाथा की टीका में क्रमकरण के प्रकरण में दो वाक्य छूट गये थे, वे लिखे हैं ।

गाथा ४४५ की टीका में मोह का स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्ष प्रमाण लिखा था परंतु गाथा ४४७ में उसी समय वह संख्यात वर्षप्रमाण लिखा होने से सुधारकर लिखा है ।

गाथा ४४९ की टीका में 'एक स्थितिबंधापसरण से इतनी स्थिति का घटना होता है' लिखा था, वहां सुधारकर '... इतना स्थितिबंध का घटना होता है' लिखा है ।

गाथा ४५७ की टीका में 'सात कर्मों का संज्वलन हजार वर्ष मात्र स्थितिबंध होता है' लिखा था, उसे सुधारकर '... संख्यात हजार वर्ष मात्र ...' लिखा है ।

गाथा ४६५ की टीका में '... ऐसे क्रोधादि में घटते क्रमयुक्त अनुभागकांडक करना, वह अश्वकर्ण है' लिखा था, उसे सुधारकर 'ऐसे क्रोधादि में घटते क्रमयुक्त अनुभाग करना, वह अश्वकर्ण है' लिखा है ।

गाथा ४६७ की टीका में 'असंख्यातभाग वृद्धि, उसके ऊपर अनंतवृद्धि होती है' लिखा था वहां '... उसके ऊपर अनंतभाग वृद्धि' ऐसा सुधारकर लिखा है ।

गाथा ४६९ की टीका में 'दो कम अपकर्षण भाग मात्र' की जगह सुधारकर 'दो कम अपकर्षण भागहार मात्र' लिखा है ।

उसी टीका में आगे एक जगह लिखा था 'पूर्वस्पर्धक तो पहले थे, अपूर्वस्पर्धक पहले थे' उसे सुधारकर यहां लिखा है 'पूर्वस्पर्धक तो पहले थे, अपूर्वस्पर्धक पहले नहीं थे ।'

उसी टीका में आगे लिखा था 'पूर्वस्पर्धक की आदिवर्गणा में निरूपण करता है' उसे सुधारकर लिखा है कि 'पूर्वस्पर्धक की आदिवर्गणा में निक्षेपण करता है ।' उसीके आगे लिखा था कि 'इसको दोगुणहानि का भाग देनेपर अवशेष का प्रमाण होता है' वहां सुधारकर लिखा है कि 'इसको दोगुणहानि का भाग देनेपर विशेष का प्रमाण होता है ।'

गाथा ४७७ में मूल गाथाओं के कुछ शब्द नहीं थे इसकारण उस गाथा का अर्थ भी लिखा नहीं था, अन्य ग्रंथ के आधार से वे शब्द और उनका अर्थ ब्रैकेट में लिखा है ।

गाथा ४७९ की टीका में 'प्रथमादि अनंत वर्गणा तक' की जगह सुधारकर 'प्रथमादि अंतवर्गणा तक' लिखा है ।

गाथा ४८३ की टीका में 'प्रथम समय स्पर्धक की ...' के बदले 'प्रथम स्पर्धक की ...' लिखा है ।

गाथा ४८४ की टीका में 'अश्वकर्ण के प्रथम समय अनुभागकांडक का

घात ...' लिखा था, वहां सुधारकर 'अश्वकर्ण के प्रथम अनुभागकांडक का घात ...' लिखा है ।

गाथा ४८९ की टीका में अर्थ स्पष्ट करने हेतु विशेषार्थ ब्रैकेट में दिया है ।

गाथा ४९१ की टीका में मैंने अपने मन से संदृष्टि बनाकर विशेषार्थ में अर्थ स्पष्ट करने की कोशिश की है ।

गाथा ४९४ की टीका में 'अविभागप्रतिच्छेद बंधने ...' लिखा था, वहां 'अविभागप्रतिच्छेद बढ़ने ...' ऐसा सुधारकर लिखा है ।

गाथा ४९५ की टीका में विशेषार्थ लिखकर अर्थ स्पष्ट करने की कोशिश की है ।

गाथा ४९९ की टीका में '... गुणा करनेपर उसकी अंतरकृष्टि होती है' लिखा था, वहां सुधारकर '... गुणा करनेपर उसकी अंतकृष्टि होती है' लिखा है । आगे अंतवर्गणा, प्रथम वर्गणा के स्थानपर सुधारकर अंतकृष्टि, प्रथमकृष्टी लिखा है ।

उसी टीका में आगे 'प्रथम संग्रहकृष्टि की प्रथम संग्रहकृष्टि होती है' लिखा था, उसे सुधारकर 'प्रथम संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि होती है' लिखा है । आगे 'द्वितीय कृष्टि की अंतकृष्टि, तृतीय कृष्टि की अंतकृष्टि' को सुधारकर 'द्वितीय संग्रहकृष्टि की अंतकृष्टि, तृतीय संग्रहकृष्टि की अंतकृष्टि' लिखा है । आगे भी जहां संग्रहकृष्टि के स्थानपर केवल कृष्टि लिखा था वहां अनेक स्थानोंपर सुधारकर लिखा है ।

इसी टीका में यंत्र के पहले बादाल की संदृष्टि ४१ लिखी थी । उसे सुधारकर ४२= लिखी है । आगे बादाल की पूर्ण संख्या में भी अशुद्धि थी, सुधारकर लिखा है । उसी टीका में आगे लिखा था 'इसलिए यहां तक प्रथम संग्रहकृष्टि का ही यहां अन्य प्रकार गुणकार ...' उसे सुधारकर लिखा है, 'इसलिए यहां तक प्रथम संग्रहकृष्टि कही, यहां अन्य प्रकार गुणकार ....'

गाथा ५०३ का विषय समझाने के लिये वहां मैंने आकृतियां बनाकर और उनके नाम लिखकर विषय को सरल बनाने की कोशिश की है ।

उसी टीका में आगे '... क्रोध की प्रथम, द्वितीय कृष्टि की पुरातन नवीन कृष्टि

...' लिखा था, उसे सुधारकर '... क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि की पुरातन नवीन कृष्टि ...' लिखा है ।

आगे भी 'संकलन की' के जगह 'संकलनधन करनेपर' लिखा है । उस पूरे वाक्य में अन्य भी अशुद्धियां थी, सुधारकर लिखा है ।

उसके आगे 'असंख्यातवां भाग मात्र द्रव्य पुरातन कृष्टि की ...' लिखा था वहां सुधारकर 'असंख्यातवां भाग मात्र घटता द्रव्य पुरातन कृष्टि की ...' लिखा है । उसीके दो पंक्ति आगे 'असंख्यातवां गुणा घटता ...' लिखा था, उसे सुधारकर 'असंख्यातवां भाग घटता' लिखा है – जिसका उल्लेख फूटनोट में अन्य प्रति में प्राप्त है ।

इसी टीका में आगे **विशेष इतना –** वाले पैरेग्राफ में लिखा था 'उनके प्रमाण से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेषों का द्रव्य' इसे सुधारकर 'उनके प्रमाण मात्र विशेषों का द्रव्य' लिखा है ।

गाथा ५१३ के भावार्थ में '... पहले लोभ की, पश्चात् मान की, पश्चात् माया की ...' लिखा था उसे सुधारकर '... पहले लोभ की, पश्चात् माया की, पश्चात् मान की ...' लिखा है ।

इस टीका में जहां-तहां कृष्टि शब्द आया है, उसे योग्य स्थानपर संग्रहकृष्टि लिखा है ।

गाथा ५१७ की टीका में 'उभयस्थाना कृष्टि अर्थात् जिनका बंध भी पाया जाता है ऐसी कृष्टि ...' लिखा था, उसे सुधारकर 'उभयस्थाना कृष्टि अर्थात् जिनका उदय भी पाया जाता है और बंध भी पाया जाता है ऐसी कृष्टि ...' लिखा है । यह विषय पढ़कर समझना कठिन लगता है इसलिये उसकी आकृति बनाकर, नाम देकर समझाया है । इसी आकृति द्वारा गाथा ५१८ की टीका का विशेषार्थ पढ़कर गाथा ५१८ की टीका का अर्थ सरल लगेगा ।

गाथा ५१८ की टीका में 'अब कृष्टिकरण काल के ...' लिखा था वहां सुधारकर 'अब कृष्टिवेदककाल के ...' लिखा है । आगे 'अपूर्व समय में अनुभयकृष्टि थी ...' लिखा था, वहां 'पूर्व समय में अनुभयकृष्टि थी ...' लिखा है ।

उसी टीका में आगे लिखा था 'जघन्य उदयकृष्टि से नीचे उत्तर-उत्तर समय में

...' उसे सुधारकर लिखा है कि 'जघन्य उदयकृष्टि से नीचे उतरकर उत्तर समय में ...' इस गाथा के विशेषार्थ में विषय को सरल करने का प्रयास किया है ।

गाथा ५१९ की टीका अंत में लिखा था 'ऐसे तो ऊपर भी कृष्टियों में विधान जानना' वहां 'ऐसे तो ऊपर की कृष्टियों में विधान जानना' लिखा है ।

गाथा ५२० की टीका में शुरु में लिखा था 'पूर्व समय संबंधी अनुभय कृष्टि की ...' वहां चाहिये था 'पूर्व समय संबंधी नीचे की अनुभय कृष्टि की ...' वैसा लिखा है । आगे भी एक जगह अनुदय कृष्टि लिखा था वहां अनुभय कृष्टि लिखा है ।

गाथा ५२२ की टीका में लिखा था 'मान की तृतीय संग्रह कृष्टि में मान की द्वितीय, तृतीय संग्रहकृष्टि का अपकर्षण किया द्रव्य संक्रमण होता है' वहां सुधारकर 'मान की द्वितीय, प्रथम संग्रहकृष्टि का ...' लिखा है । यहां तथा अन्यत्र भी बहुत बड़े पैरेग्राफों के विषय के अनुसार छोटे-छोटे पैरेग्राफ बनाये हैं । इस गाथा की टीका के बाद मैंने विशेषार्थ में यंत्र (चार्ट) बनाकर आयद्रव्य, व्ययद्रव्य को समझाया है ।

गाथा ५२६ की टीका में लिखा था 'सर्वघात कृष्टि संबंधी' वहां चाहिये 'सर्व घातकृष्टि संबंधी' वैसे लिखा है । आगे लिखा था 'लोभ की द्वितीय कृष्टि की प्रथम संग्रहकृष्टि है ...' वहां सुधारकर लिखा है 'लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि है ...' इसी टीका में आगे लिखा था 'सर्व अवशेष घातद्रव्य का घात करने के पश्चात् ... का भाग देनेपर' वहां सुधारकर लिखा है 'सर्व अवशेष घातद्रव्य को, घात करने के पश्चात् ... का भाग देनेपर' ।

गाथा ५३२ की टीका में '... संख्यात पल्य का प्रथम वर्गमूल' के स्थानपर सुधारकर '... असंख्यात पल्य के प्रथम वर्गमूल' लिखा है । आगे भी लिखा था 'उत्कृष्ट कृष्टि के नीचे पल्य का असंख्यात का वर्गमूल मात्र कृष्टि ...' वहां भी सुधारकर लिखा है कि 'उत्कृष्ट कृष्टि के नीचे असंख्यात पल्य के वर्गमूल मात्र कृष्टि ... ।'

गाथा ५३३ की टीका में 'पूर्वकृष्टि में बहुत द्रव्य देता है' के स्थानपर 'प्रथम पूर्वकृष्टि में बहुत द्रव्य देता है' लिखा है । क्योंकि आगे दूसरी पूर्वकृष्टि में द्रव्य कितना देते हैं उसका प्रमाण लिखा है ।

गाथा ५३५ की टीका में लिखा था 'पूर्वकृष्टि की अंतकृष्टि में दिये द्रव्य से अपूर्वकृष्टि की आदिकृष्टि में दिया द्रव्य संख्यात भाग अधिक कहा था' वहां होना चाहिये '... असंख्यात भाग अधिक कहा था' जो गाथा ५०४ में भी असंख्यात भाग अधिक लिखा था, इसलिए सुधारकर लिखा है ।

इसी टीका में आगे लिखा था (ढूंढारी भाषा में) 'संक्रमण द्रव्य करि अंतरकृष्टि' वहां होना चाहिये 'संक्रमण द्रव्य करि करी अंतरकृष्टि' जिसका अनुवाद होता है 'संक्रमण द्रव्य द्वारा की हुयी अंतरकृष्टि' सो वैसा लिखा है । उसी वाक्य में आगे 'अपने-अपने द्रव्य से निपजी ...' लिखा था वहां 'अपने-अपने संक्रमण द्रव्य से निपजी ...' ऐसा लिखा है ।

इसी टीका में आगे लिखा था (ढूंढारी भाषा में) 'ताकौं अपनी सर्व बंध कृष्टि कौं प्रमाण का भाग दिएं ...' वहां होना चाहिये 'ताकौं अपनी सर्व बंध कृष्टिनि का प्रमाण का भाग दिएं ...' इसलिए इसके अनुवाद में लिखा है, 'उसको अपनी सर्व बंध कृष्टियों के प्रमाण का भाग देनेपर ... ।'

इसी टीका में आगे लिखा था, 'यह संक्रमण की अंतकृष्टि में दिये द्रव्य से ...' वहां सुधारकर लिखा है कि, 'यह संक्रमण की अंतरकृष्टि में दिये द्रव्य से ... ।' आगे इसी टीका में लिखा था 'हुयी अपूर्वकृष्टियों के प्रमाणमात्र ...' वहां सुधारकर लिखा है कि 'हुयी पूर्वकृष्टियों के प्रमाणमात्र ... ।'

इसी टीका में '**विशेष इतना –**' वाले पैरेग्राफ में लिखा था 'ऊपर इसी क्रम से अपकर्षण भागहार मात्र बीच में पूर्वकृष्टि ...' वहां सुधारकर लिखा है कि 'ऊपर इसी क्रम से अपकर्षण भागहार के तीसरे भागमात्र बीच में पूर्वकृष्टि ... ।'

इसी टीका में आगे लिखा था '... प्रमाणमात्र उभयद्रव्य के विशेष अपने एक विशेष के अनंतवें भाग से देता है ।' वहां सुधारकर लिखा है कि, '... प्रमाणमात्र उभयद्रव्य के विशेष अपने एक विशेष के अनंतवें भाग से हीन देना है ।' आगे 'नीकैं' के स्थानपर 'नीचे' होना चाहिये इसलिए वैसा अनुवाद किया है ।

इसी टीका में **विशेष इतना ही –** वाले पैरेग्राफ में शुरु में ही 'यहां तृतीय संग्रहकृष्टि में' लिखा था उसकी जगह 'यहां क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि में'

लिखा है ।

इस गाथा की टीका का विस्तार बहुत है, इसमें कही विशेषार्थ लिखा है, कहीं बैक्रेट में शब्द लिखकर वाक्य के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास किया है, कहीं अनेक प्रकार के द्रव्यों को समझाने के लिये क्रमांक दिये गये है ।

गाथा ५३८ की टीका में लिखा था, 'बहुरि तहां ही क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि, वेदक का अंतसमय विषैं हो है' उसके स्थानपर चाहिये 'बहुरि तहां ही क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टिवेदकका का अंत समय हो है', सो सुधारकर अनुवाद किया है । यहां तथा आगे की टीका में भी विशेषार्थ लिखे हैं ।

गाथा ५४० की टीका में 'घातिकर्मों का स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त कम दस वर्ष मात्र है' लिखा था वहां 'तीन घातिकर्मों का ...' होना चाहिये, वैसा लिखा है । उसके आगे 'घातिकर्मों का स्थितिसत्त्व ...' लिखा था वहां लिखा है कि, 'उन घातिकर्मों का स्थितिसत्त्व ...' क्योंकि गाथा में स्पष्ट लिखा है 'घादितियाणं बंधो' तथा यहां मोह बिना अन्य तीन घातिकर्मों की ही बात है ।

गाथा ५४७ की टीका में शुरु में ही लिखा था 'यहां लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि तो शून्य हुयी' वहां सुधारकर लिखा है कि 'यहां क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि तो शून्य हुयी' क्योंकि गाथा में भी लिखा हुआ है कि 'क्रोधस्य प्रथमकृष्टि: शून्या' ।

गाथा ५४८ की टीका में लिखा था 'तातैं बंध द्रव्य की चारि ही संग्रहकृष्टि विषैं जानना' उसे सुधारकर अनुवाद में लिखा है कि, 'इसलिए बंधद्रव्य का विधान चार ही संग्रहकृष्टियों में जानना ।'

गाथा ५४९ की टीका में 'मान को तीन' को शुद्ध करके 'मान की तीन' लिखा है । इसी अल्पबहुत्व में आगे लिखा था 'तातैं क्रोध की तीसरी का, तातैं माया की तीसरी का, तातैं क्रोध की प्रथम का' इसको सुधारकर अनुवाद किया है कि, 'उससे क्रोध की तीसरी का, उससे माया की प्रथम का, उससे माया की द्वितीय का, उससे माया की तृतीय का, उससे लोभ की प्रथम का ।'

इसी टीका में आगे लिखा था 'अवयव कृष्टि प्रमाण याही कौं' वहां चाहिये 'अवयव कृष्टि प्रमाण तैं याही कौं' इसलिए सुधारकर अनुवाद किया है ।

आगे लिखा था '... अवयव कृष्टिनि का प्रमाण क्रम तै वेद्यमान ...' वहां क्रम शब्द नहीं चाहिये इसलिए वैसे लिखा है ।

आगे लिखा था 'उनके प्रमाण का ही अल्पबहुत्व जानना' वहां ही के स्थानपर 'भी' होना चाहिये, सो लिखा है । आगे भी यातैं की जगह जातैं करके अनुवाद किया है ।

गाथा ५५६ की टीका में 'लोभ इतना-इतना ही हीन जानना' लिखा था वहां 'लोभ तक इतना-इतना ही हीन जानना' लिखा है । इसी टीका में 'माया की प्रथम संग्रहकृष्टि' के स्थानपर 'माया की प्रथमादि संग्रहकृष्टि' होना चाहिये सो लिखा है । आगे 'लोभ की प्रथमादि संग्रहकृष्टिवेदक के गुणकार क्रम से बाइस का है' लिखा था वहां '... क्रम से बाइस, तेइस, चौबीस का है' लिखा है ।

आगे 'क्रम तैं बंधै है' की जगह 'क्रम तै बधै है' चाहिये, सो वैसा लिखा है ।

गाथा ५६५ की टीका में 'भाग देनेपर एक भागहार मात्र है' लिखा था वहां 'भाग देनेपर एक भाग मात्र है' लिखा है ।

गाथा ५६७-५६८ की टीका में विशेषार्थों में अपनी पद्धति से गणित समझाये हैं ।

गाथा ५६९ में सर्वत्र संख्यातगुणा हीन या संख्यातगुणा कहा था वहां असंख्यातगुणा हीन या असंख्यातगुणा होना चाहिये, इसलिए अनुवाद में (अ)संख्यात लिखा है । इसके बारे में विशेषार्थ में गाथा का तथा जयधवला ग्रंथों का आधार बताया है ।

गाथा ५७० की टीका में 'तिस विषैं कीएं पीछै' लिखा था वहां सुधारकर अनुवाद में 'उसमें घात करने के पश्चात्' लिखा है ।

उसी टीका में लिखा था 'अपने-अपने अवशेष घातद्रव्य को देनेपर अवशेष घातद्रव्य एक गोपुच्छाकार होता है' उसे सुधारकर लिखा है '... देनेपर अवशेष कृष्टि एक गोपुच्छाकार होती है ।'

आगे 'विभागरूप दिया द्रव्य' लिखा था, वहां 'विभागरूप किया द्रव्य' लिखा है । इसके भावार्थ में भी कुछ अशुद्धियां थी, सुधारकर लिखा है । अनेक जगह यथास्थान

कॉमा नहीं देने के कारण अर्थ ठीक भासित नहीं होता था, सो सुधारकर लिखा है ।

गाथा ५७२ की टीका में 'अपूर्वकृष्टि के प्रवेश में' दो बार लिखा था वहां पहली बार 'पूर्वकृष्टि के प्रवेश में' होना चाहिये, वैसे लिखा है । आगे मध्यमधन खंडद्रव्य के स्थानपर मध्यमखंडद्रव्य करके लिखा है । आगे 'हुयी कृष्टियों से सर्व सूक्ष्मकृष्टियों के ...' को सुधारकर 'हुयी कृष्टियों से हीन सर्व सूक्ष्मकृष्टियों के ...' लिखा है । 'अध:स्तनशीर्ष विशेष से एक कम हुयी पूर्वकृष्टियों ...' को सुधारकर वहां एक कम नहीं चाहिये था, सो 'अध:स्तनशीर्ष विशेष से हुयी पूर्वकृष्टियों ...' लिखा है ।

इस टीका में भी पांच प्रकार के द्रव्यों को क्रमांक देकर लिखा है तथा अर्थ ठीक तरह से ख्याल में आये इसलिए बैक्रेट में शब्द लिखे हैं ।

गाथा ५७६ की टीका में 'मान का द्वितीय संग्रहकृष्टि से माया की संग्रहकृष्टि में संक्रमण ...' लिखा था, वहां 'मान की द्वितीय संग्रहकृष्टि से माया की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमण' ऐसा लिखा है ।

आगे लिखा था, 'अन्य कषाय में संक्रमणद्रव्य से विशेष अधिक ...' उसके स्थानपर 'अन्य कषाय में संक्रमणद्रव्य के विशेष अधिक ...' लिखा है । आगे 'लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि से लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमण ....' लिखा था, सुधारकर 'लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि से लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में ....' लिखा है ।

गाथा ५७७ की टीका में '... क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि से लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य तेरह गुणा है' लिखा था, वहां सुधारकर '... क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य तेरह गुणा है' लिखा है ।

गाथा ५८० की टीका में लिखा था 'तीन अघातियों का एक बंध से किंचित् हीन स्थितिबंध होता है' वहां एक बंध के स्थानपर एक वर्ष होना चाहिये, वैसे लिखा है ।

गाथा ५८५ की टीका में 'अंतरस्थिति कांडकायाम का भाग' लिखा था, वहां सुधारकर 'अंतरस्थिति आयाम का भाग' लिखा है । आगे लिखा था 'संदृष्टि से उस

संख्यात बहुभाग' वहां संख्यात के स्थानपर असंख्यात होना चाहिये, वैसे लिखा है ।

गाथा ६०४ की टीका में आकृति बनाकर चारों कषायों की प्रथमस्थिति तथा क्षपणाकाल समझाये हैं ।

गाथा ६०५ की टीका में कितना ही मैटर रह गया प्रतीत हुआ जैसे मायासहित श्रेणी चढनेवाले के अश्वकर्ण संबंधी कथन नहीं था, लोभ की अपूर्वस्पर्धक क्रिया की बात आदि दो-चार वाक्य इसमें डाले हैं ।

गाथा ६०८ की टीका में 'समाधान में परिणामों की विशुद्धता समान नहीं है' लिखा, वहां समान है होना चाहिये, वैसे लिखा है ।

गाथा ६३१ की टीका में 'अनेक स्पर्धक बढ़नेपर अन्य स्पर्धक होता है' के स्थानपर सुधारकर 'अनेक अविभागप्रतिच्छेद बढ़नेपर अन्य स्पर्धक होता है' लिखा है ।

अनेक गाथाओं में जो अशुद्धियां थी उन्हें शुद्ध कर लिखा है । विस्तार के भय से यहां नहीं लिखा । अर्थसंदृष्टि अधिकार में भी ऐसा ही समझना ।

इतना होनेपर भी मुझे पता है अन्य तथा प्रूफ रीडिंग की कुछ अशुद्धियां रह ही जाती हैं । वाचक इन्हें सुधारकर लें ।

पं. टोडरमलजी का हमारे ऊपर बड़ा उपकार है, उन्हीं के इन ग्रंथों के स्वाध्याय के कारण हम करणानुयोग का अभ्यास इतना गहराई से कर सके, इन्हीं ग्रंथों के अनेकों बार स्वाध्याय के कारण धवला एवं जयधवला के सभी भागों पर आद्योपांत स्वाध्याय अतिविस्तार के साथ हो पाया । वे ही हमारे परोक्ष विद्यागुरु हैं, जिन्होंने ढूंढारी भाषा में टीका लिखकर जनसामान्य के लिये करणानुयोग में प्रवेश सरल कर दिया ।

यह मेरा परम सौभाग्य है कि सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका के तीनों ही खण्ड-जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार-क्षपणासार तीनों की ही अपनी-अपनी अर्थसंदृष्टि सह अनुवाद मेरे से हुआ तथा इनका प्रकाशन भी हम दोनों (पति-पत्नी)ने किया, यह हमारे लिये बहुत बड़ी लब्धि है ।

– डॉ. उज्ज्वला दि. शहा

— विषयसूचि —

१. **लब्धिसार-क्षपणासार संबंधी प्रकरण** १

२. **लब्धिसार भूमिका** ९

३. **पहला अधिकार : दर्शनलब्धि अधिकार**
प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्ररूपण ४०
पांच लब्धि – क्षयोपशमादि तीन लब्धि
प्रायोग्यलब्धि
करणलब्धि : अध:करण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण
उपशम सम्यक्त्व प्राप्ति का विधान

४. **दूसरा अधिकार : क्षायिक सम्यक्त्व प्ररूपण** ९७
क्षायिक सम्यक्त्व के योग्य सामग्री
क्षायिक सम्यक्त्व का विधान
अल्पबहुत्व के तैंतीस स्थान

५. **तीसरा अधिकार : चारित्रलब्धि**
देशचारित्र का वर्णन १३२
सकलचारित्र का वर्णन १४३

६. **चौथा अधिकार : चारित्रोपशमना** १५२
चारित्रमोह उपशमना विधान
उपशांतमोह से गिरने का वर्णन
उपशमश्रेणी चढ़नेवाले बारह प्रकार के जीवों की विशेषता

७. **पांचवां अधिकार : क्षपणासार** २६०
चारित्रमोह क्षपणा विधान

अर्थसंदृष्टि अधिकार ४८५

लब्धिसार-क्षपणासार संबंधी प्रकरण

ऐसा विचार आया कि लब्धिसार और क्षपणासार नामक शास्त्रों में सम्यक्त्व और चारित्र का विशेषता युक्त बहुत अच्छा वर्णन है और उस वर्णन को जानकर मिथ्यात्वादि गुणस्थानों का भी स्वरूप अच्छी तरह से स्पष्ट जाना जाता है, इसलिए इनका जानना बहुत कार्यकारी जानकर उन ग्रंथों के अनुसार कुछ कथन करना; इसलिए लब्धिसार शास्त्र के गाथा सूत्रों का भाषामय अनुवाद इसी टीका में मिलाइयेगा, उसी के क्षपकश्रेणी के कथनरूप गाथा सूत्रों के अर्थ में क्षपणासार का अर्थ गर्भित होगा ऐसा जानना ।

यहां कोई कहेगा – उन ग्रंथों की जुदी ही टीका क्यों नहीं करते ? इसी में कथन करने का क्या प्रयोजन है ?

उसका समाधान – गोम्मटसार में कहे हुये कितने ही अर्थों को जाने बिना उन ग्रंथों में कहे हुये कितने ही अर्थों का ज्ञान नहीं होता अथवा उन ग्रंथों में कहे हुये अर्थों को जानकर इस शास्त्र में कहे हुये गुणस्थानादि कितने ही अर्थों का स्पष्ट ज्ञान होता है ऐसा संबंध जाना तथा उन ग्रंथों में कहे अर्थ कठिन है, इसलिए जुदा करनेपर विशेष प्रवृत्ति नहीं होगी, इसलिए इसी शास्त्र में उन ग्रंथों का अर्थ लिखने का *(उनके अनुसार कुछ कथन करने का)* विचार किया है । उसमें प्रथमोपशम सम्यक्त्व आदि होने के विधान का धाराप्रवाहरूप वर्णन है, उसकी सूचनिका लिखने से विस्तार होगा, कथन आगे होगा ही । इसलिए यहां अधिकार मात्र उसकी सूचनिका लिखते हैं ।

प्रथम मंगलाचरण करके सम्यक्त्व के प्रकारों का, दस करणों का और प्रकृतिबंधापसरण, स्थितिबंधापसरण, स्थितिकांडक, अनुभागकांडक, गुणश्रेणी, फालि इत्यादि कितनी ही संज्ञाओं का स्वरूप वर्णन करके प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने के विधान का वर्णन है ।

वहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने योग्य जीव का और पंचलब्धि के नामादिक कहकर उनके स्वरूप का वर्णन है । वहां प्रायोग्यतालब्धि के कथन में जैसे स्थिति घटती है और वहां चारों गतियों की अपेक्षा प्रकृतिबंधापसरण होता है उसका तथा

स्थिति, अनुभाग, प्रदेश बंध का वर्णन है । पुनश्च चारों गतियों की अपेक्षा एक जीव के युगपत् पाये जानेवाले भंगों सहित प्रकृतियों के उदय का तथा स्थिति, अनुभाग, प्रदेश के उदय का वर्णन है । पुनश्च एक जीव के युगपत् पाये जानेवाले प्रकृतियों के सत्त्व का और स्थिति, अनुभाग, प्रदेश के सत्त्व का वर्णन है । करणलब्धि के कथन में तीन करणों के नाम, कालादिक कहकर उनके स्वरूपादि का वर्णन है । वहां अध:करण में स्थितिबंधापसरण आदि आवश्यक होते हैं, उनका वर्णन है ।

अपूर्वकरण में चार आवश्यक, उनमें गुणश्रेणी निर्जरा का कथन है । वहां अपकर्षण किया हुआ द्रव्य जिसप्रकार उपरितन स्थिति, गुणश्रेणी आयाम और उदयावली में दिया जाता है, उसका वर्णन है । वहां प्रसंग पाकर उत्कर्षण और अपकर्षण किये हुये द्रव्य के निक्षेप का, अतिस्थापना का विशेष वर्णन है । गुणसंक्रमण यहां नहीं पाया जाता, वह जहां पाया जाता है उसका वर्णन है । पुनश्च स्थितिकांडक, अनुभागकांडक के स्वरूप, प्रमाणादि का और स्थिति, अनुभाग कांडकोत्करण काल के वर्णनपूर्वक स्थिति, अनुभाग, सत्त्व घटाने का वर्णन है ।

पुनश्च अनिवृत्तिकरण में स्थितिकांडकादि विधान कहकर उसके काल का संख्यातवां भाग रहनेपर अंतरकरण होता है, उसके स्वरूप का, आयाम प्रमाण का तथा उसके निषेकों का अभाव करके जहां निक्षेपण किया जाता है उसका – इत्यादि वर्णन है । अंतरकरण करने के काल का, प्रथम स्थिति का तथा अंतरायाम के काल का वर्णन है । अंतरकरण का काल पूर्ण होने के पश्चात् प्रथम स्थिति के काल में दर्शनमोह के उपशमाने का विधान, काल, अनुक्रम आदि का; वहां आगाल, प्रत्यागाल जहां पाया जाता है या नहीं पाया जाता उसका; दर्शनमोह की गुणश्रेणी जहां नहीं होती उसका – इत्यादि अनेक वर्णन है ।

उसके पश्चात् अंतरायाम का काल प्राप्त होनेपर उपशम सम्यक्त्व होने का, वहां एक मिथ्यात्व प्रकृति को तीनरूप परिणमाने के विधान का वर्णन है । उपशम सम्यक्त्व के विधान में जैसे काल का अल्पबहुत्व पाया जाता है, वैसे वर्णन है ।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व में मरण के अभाव का, वहां से सासादन होने के कारण का; उपशम सम्यक्त्व के प्रारंभ और निष्ठापन (पूर्णता) में जो-जो उपयोग, योग,

लेश्या पायी जाती हैं उनका; उपशम सम्यक्त्व के काल, स्वरूप आदि का; वह काल पूर्ण होनेपर किसी एक दर्शनमोह की प्रकृति का उदय आने का; वहां जिसप्रकार द्रव्य को अपकर्षण करके अंतरायामादि में दिया जाता है उसका; दर्शनमोह का उदय होनेपर वेदक सम्यक्त्व या मिश्र गुणस्थान या मिथ्यात्व गुणस्थान होता है, उनके स्वरूप का वर्णन है ।

पुनश्च क्षायिक सम्यक्त्व के विधान का वर्णन है । वहां क्षायिक सम्यक्त्व का प्रारंभ जहां होता है उसका तथा प्रारंभ-निष्ठापन अवस्था का वर्णन है । अनंतानुबंधी के विसंयोजन का वर्णन है । वहां तीन करणों का, अनिवृत्तिकरण में स्थिति घटने का और अन्य कषायरूप परिणमने के विधान, प्रमाण आदि का कथन है । पुनश्च विश्राम लेकर दर्शनमोह की क्षपणा होती है, उसका विधानवर्णन है । वहां पाये जानेवाले स्थितिकांडकादि का वर्णन है । मिथ्यात्व, मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय में स्थिति घटाने का और संक्रमण होने के विधान का वर्णन करके सम्यक्त्वमोहनीय की आठ वर्ष प्रमाण स्थिति रहनेपर अनेक क्रिया विशेष होते हैं तथा वहां गुणश्रेणी, स्थितिकांडकादि में विशेष होता है, उसका वर्णन है । पुनश्च कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि होने का; वहां मरण होनेपर लेश्या और उपजने का; कृतकृत्यवेदक होने के पश्चात् जो क्रियाविशेष होते हैं उनका; वहां अंत कांडक और अंत फालि में विशेष होता है, उनका वर्णन है । पुनश्च क्षायिक सम्यक्त्व होने का वर्णन है । क्षायिक सम्यक्त्व के विधान में पाये जानेवाले काल का तैंतीस जगह अल्पबहुत्व वर्णन है । क्षायिक सम्यक्त्व के स्वरूप का और मुक्त होने का इत्यादि वर्णन है ।

पुनश्च चारित्र दो प्रकार का है – देशचारित्र, सकलचारित्र । ये जिसके होते हैं या सन्मुख होनेपर जो क्रिया होती है, वह कहकर देशचारित्र का वर्णन है । वहां वेदक सम्यक्त्व के साथ जो देशचारित्र ग्रहण करता है, उसके दो ही करण होते हैं, गुणश्रेणी नहीं होती, देशसंयत को प्राप्त होनेपर गुणश्रेणी होती है, इत्यादि वर्णन है । एकांतवृद्धि देशसंयत के स्वरूपादि का वर्णन है । पुनश्च अधःप्रवृत्त देशसंयत का वर्णन है । वहां उसके स्वरूप, कालादि का; वहां स्थिति-अनुभाग खंडन नहीं होता तथा वहां देशसंयत से भ्रष्ट होकर दुबारा देशसंयत को प्राप्त होता है उसके करण होने या न होने का; देशसंयत में पायी जानेवाली गुणश्रेणी आदि विशेष का वर्णन है ।

देशसंयम के विधान में पाये जानेवाले काल के अल्पबुहत्व का वर्णन है । जघन्य, उत्कृष्ट देशसंयम जिसके होता है उसका; देशसंयम में स्पर्धकों के अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं, उसका वर्णन है । देशसंयम के स्थानों का; उनके प्रतिपात, प्रतिपद्यमान, अनुभयरूप तीन प्रकारों का; वे क्रम से जैसे जिनके जितने पाये जाते हैं और बीच में स्वामी रहित स्थान पाये जाते हैं उनका; वहां विशुद्धता का वर्णन है ।

सकलचारित्र तीन प्रकार का – क्षायोपशमिक, औपशमिक, क्षायिक; वहां क्षायोपशमिक चारित्र का वर्णन है । उसमें यह जिसके होता है उसका; उसके सन्मुख होनेपर जो क्रिया होती है उसका वर्णन करके वेदक सम्यक्त्व सहित चारित्र ग्रहण करनेवाले के दो ही करण होते हैं इत्यादि अल्पबहुत्व तक सर्व कथन देशसंयतवत् है, उसका वर्णन है । पुनश्च सकलसंयम स्पर्धक और अविभागप्रतिच्छेदों का वर्णन करके प्रतिपात, प्रतिपद्यमान, अनुभयरूप स्थान कहकर वे जैसे जितने जिस जीव के पाये जाते हैं, उनका क्रम से वर्णन है । वहां विशुद्धता का और म्लेच्छ के सकलसंयम पाये जाने का और सामायिकादि संबंधी स्थानों का इत्यादि विशेष वर्णन है । पुनश्च औपशमिक चारित्र का वर्णन है । वहां वेदक सम्यग्दृष्टि जिस-जिस विधानपूर्वक क्षायिक सम्यग्दृष्टि या द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि होकर उपशमश्रेणी चढ़ता है उसका वर्णन है । वहां द्वितीयोपशम सम्यक्त्व होने के विधान में तीन करण, गुणश्रेणी, स्थितिकांडकादि और अंतरकरणादि का विशेष वर्णन है ।

उपशमश्रेणी में आठ अधिकार हैं, उनका वर्णन है । वहां प्रथम अध:करण का वर्णन है । दूसरा अपूर्वकरण का वर्णन है । यहां पाये जानेवाले आवश्यकों का वर्णन है । यहाँ से लेकर उपशमश्रेणी चढ़ने और उतरने में स्थितिबंधापसरण, स्थितिकांडक और अनुभागकांडक के आयामादि के प्रमाण का, इनके होनेपर जैसा-जैसा स्थितिबंध, स्थितिसत्त्व और अनुभागसत्त्व अवशेष रहता है उसका यथास्थान बीच-बीच में वर्णन है, वह कथन आगे होगा वहां जानना । अपूर्वकरण के वर्णन में प्रसंग पाकर अनुभाग के स्वरूप का और वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि, नानागुणहानि का वर्णन है । यहां गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण होता है और प्रकृतिबंध का व्युच्छेद होता है उसका वर्णन है ।

अनिवृत्तिकरण के कथन में दस करणों में से तीन करणों का अभाव होता है उसका; अनुक्रम सहित कर्मों का स्थितिबंध करनेरूप क्रमकरण होता है उसका; वहां

असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा का; कर्मप्रकृतियों के स्पर्धक देशघाति करनेरूप देशघातिकरण का; कर्मप्रकृतियों के कितने ही निषेकों का अभाव करके अन्य निषेकों में निक्षेपण करनेरूप अंतरकरण का; अंतरकरण की समाप्ति होनेपर युगपत् सात करणों का प्रारंभ होता है उसका; वहीं पर आनुपूर्वी संक्रमण का – इत्यादि वर्णन करके नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, छह हास्यादि, पुरुषवेद, तीन क्रोध, तीन मान, तीन माया, दो लोभ इनके उपशमाने के विधान का अनुक्रम से वर्णन है । वहां गुणश्रेणी का; स्थिति-अनुभागकांडकघात होने, न होने का; नपुंसकवेदादि में नवकबंध के स्वरूप-परिणमनादि विशेष का; प्रथम स्थिति के स्वरूप आदि विशेष का; वहां आगाल, प्रत्यागाल, गुणश्रेणी नहीं होते इत्यादि विशेषों का; संक्रमणादि विशेष पाये जाते हैं उनका – इत्यादि अनेक वर्णन है ।

पुनश्च संज्वलन लोभ के उपशम विधान में लोभवेदक काल के तीन भागों का; वहां प्रथम स्थिति आदि का वर्णन करके सूक्ष्मकृष्टि करने के विधान का वर्णन है । वहां प्रसंग पाकर वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक का कथन करके कृष्टि करने के विधान का वर्णन है । यहां बादरकृष्टि तो है ही नहीं, सूक्ष्मकृष्टि है उनमें जैसे कर्मपरमाणु परिणमते हैं, वहीं पर जैसे अनुभागादिक पाये जाते हैं तथा वहां अनुसमयापवर्तनरूप अनुभाग का घात होता है इत्यादि का और उपशमाने आदि क्रियाओं का वर्णन है ।

पुनश्च सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान को प्राप्त होकर सूक्ष्मकृष्टि को प्राप्त लोभ के उदय को भोगने का; वहां पायी जानेवाली गुणश्रेणी, प्रथम स्थिति आदि का; यहां उदय-अनुदयरूप जैसे कृष्टि पायी जाती हैं उनका और संक्रमण-उपशमादि क्रियाओं का वर्णन है । पुनश्च सर्व कषायों को उपशमाकर उपशांतमोह होता है उसका; वहां पायी जानेवाली गुणश्रेणी आदि क्रियाओं का; यहां जो प्रकृति उदयरूप हैं उनमें परिणामप्रत्यय और भवप्रत्ययरूप विशेष का वर्णन है । इसतरह वहां पायी जानेवाली चारित्रमोहनीय की इक्कीस प्रकृतियों के उपशमाने का विधान कहकर उपशांतमोह से गिरनेरूप दो प्रकार के प्रतिपात का; वहां भवक्षय के निमित्त से होनेवाले प्रतिपात से देव संबंधी असंयत गुणस्थान को प्राप्त होता है, वहां गुणश्रेणी, अनुपशमन और अंतर का पूरण करना इत्यादि जो क्रियायें होती हैं उनका वर्णन है । तथा अद्धाक्षय

के निमित्त से क्रम से गिरकर स्वस्थान अप्रमत्त तक आता है, वहां गुणश्रेणी आदि का; चढ़ते हुये जो क्रियायें हुयी थी उनके अनुक्रम से नष्ट होने का वर्णन है ।

पुनश्च अप्रमत्त से गिरने का, वहां पायी जानेवाली क्रियाओं का और अप्रमत्त से चढ़े तो दुबारा श्रेणी मांडता है उसका वर्णन है । इसतरह पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध के उदय सहित जो श्रेणी मांडता है उसकी अपेक्षा वर्णन है । पुनश्च पुरुषवेद, संज्वलन मान सहित आदि ग्यारह प्रकार से *(प्रत्येक वेद के साथ चार कषाय ऐसे बारह प्रकार होते हैं)* उपशमश्रेणी चढ़नेवालों के जो-जो विशेष पाये जाते हैं, उनका वर्णन है । इस उपशम चारित्र विधान में पाये जानेवाले काल के अल्पबहुत्व का वर्णन है ।

पुनश्च क्षपणासार के अनुसार क्षायिक चारित्र के विधान का वर्णन है । वहां अध:करणादि सोलह अधिकारों का और क्षपकश्रेणी के सन्मुख जीव का वर्णन है ।

पुनश्च अध:करण का वर्णन है । वहां विशुद्धता की वृद्धि आदि चार आवश्यकों का; वहां पाये जानेवाले परिणाम, योग, कषाय, उपयोग, लेश्या, वेद का तथा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेशरूप कर्मों के सत्त्व, बंध, उदय का वर्णन है ।

पुनश्च अपूर्वकरण का वर्णन है । वहां होनेवाले स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात, गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण इनका विशेष वर्णन है । यहां प्रकृतिबंध की व्युच्छित्ति होती है उसका वर्णन है । यहां से लेकर क्षपकश्रेणी में जहां-जहां जैसा-जैसा स्थितिबंधापसरण, स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात पाया जाता है और इनके होनेपर जैसा-जैसा स्थितिबंध, स्थितिसत्त्व और अनुभागसत्त्व रहता है, उनका बीच-बीच में वर्णन है । उसका कथन होगा वहां जानना ।

पुनश्च अनिवृत्तिकरण का कथन है । वहां स्वरूप, गुणश्रेणी, स्थितिकांडक आदि का वर्णन करके क्रम सहित कर्मों का स्थितिबंध, स्थितिसत्त्व करनेरूप क्रमकरण का वर्णन है । गुणश्रेणी में असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होने लगती है उसका वर्णन है ।

पुनश्च प्रत्याख्यानावरण-अप्रत्याख्यानावरणरूप आठ कषायों की क्षपणा *(खिपाने)* के विधान का वर्णन है । निद्रानिद्रा आदि सोलह प्रकृतियों की क्षपणा का विधान वर्णन है । प्रकृतियों के देशघाति स्पर्धकों का बंध करनेरूप देशघातिकरण का वर्णन है । पुनश्च चार संज्वलन, नौ नोकषायों के कितने ही निषेकों का अभाव करके अन्यत्र

निक्षेपण करनेरूप अंतरकरण का वर्णन है । नपुंसकवेद की क्षपणा के विधान का वर्णन है । वहां संक्रमण का तथा युगपत् सात क्रियाओं का प्रारंभ होता है उनका वर्णन है । स्त्रीवेद की क्षपणा के विधान का वर्णन है । छह नोकषाय और पुरुषवेद की क्षपणा के विधान का वर्णन है । पुनश्च अश्वकर्णकरण सहित अपूर्वस्पर्धक करने का वर्णन है । वहां पूर्वस्पर्धक जानने के लिये वर्ग, वर्गणा, स्पर्धकों का; उनमें देशघाति, सर्वघाति के विभाग का; वर्गणा की समानता, असमानता आदि का कथन करके अश्वकर्णकरण के स्वरूप, विधान का; क्रोधादि के अनुभाग के प्रमाणादि का; अपूर्वस्पर्धकों के स्वरूप, प्रमाण का; उनमें द्रव्य-अनुभागादि का; वहां समय-समय संबंधी क्रिया का और उदयादि का बहुत वर्णन है ।

पुनश्च कृष्टिकरण का वर्णन है । वहां क्रोधवेदक काल के विभाग का; बादरकृष्टि के विधान में कृष्टियों के स्वरूप का; वहां बारह संग्रहकृष्टि, एक-एक संग्रहकृष्टि में अनंत अंतरकृष्टि उनका; उनमें प्रदेश, अनुभागादि के प्रमाण का; वहां समय-समय संबंधी क्रियाओं का और उदयादि का वर्णन है । कृष्टिवेदना के विधान का वर्णन है । वहां कृष्टियों के उदयादि का, संक्रमण का, घात करने का और समय-समय संबंधी क्रिया का विशेष वर्णन करके क्रम से दस संग्रहकृष्टियों के भोगने के विधान-प्रमाणादि का बहुत कथन करके उनकी क्षपणा के विधान का वर्णन है । अन्य प्रकृतियां संक्रमण करके इनरूप परिणमी, उनके द्रव्य सहित लोभ की द्वितीय, तृतीय संग्रहकृष्टि के द्रव्य को सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणमाता है उसके विधान, स्वरूप, प्रमाणादि का वर्णन है । इसतरह अनिवृत्तिकरण का बहुत वर्णन है । इसमें गुणश्रेणी, अनुभागघात के विशेष आदि बीच-बीच में अनेक कथन हैं, उन्हें आगे कथन होगा, वहां जानना ।

पुनश्च सूक्ष्मसाम्पराय का वर्णन है । वहां स्थिति, अनुभाग का घात और गुणश्रेणी आदि का कथन करके बादरकृष्टि संबंधी अर्थ के निरूपणपूर्वक सूक्ष्मसाम्पराय संबंधी कृष्टियों के अर्थ का निरूपण और वहां सूक्ष्मकृष्टियों का उदय, अनुदय, प्रमाण, संक्रमण, क्षय आदि का विधान – इत्यादि अनेक वर्णन है । यह तो पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध के उदय सहित श्रेणी चढ़ता है उसकी अपेक्षा कथन है । पुनश्च पुरुषवेद, संज्वलन मान आदि के उदय सहित ग्यारह प्रकार से श्रेणी

चढ़नेवाले के जो-जो विशेष पाये जाते हैं उसका वर्णन है । इसतरह कृष्टिवेदना पूर्ण होने के पश्चात् क्षीणमोह का वर्णन है ।

क्षीणमोह के वर्णन में ईर्यापथ बंध का; स्थिति-अनुभागघात और गुणश्रेणी आदि का; वहां पाये जानेवाले ध्यानादिक का; ज्ञानावरणादि के क्षय होने के विधान का और यहां शरीर संबंधी निगोद जीवों का अभाव होने के क्रम का इत्यादि वर्णन है ।

पुनश्च सयोगकेवली का वर्णन है । वहां उनके महिमा का; गुणश्रेणी का; विहार-आहारादि होने, न होने का वर्णन करके अंतर्मुहूर्त मात्र आयु शेष रहनेपर आवर्जितकरण होता है उसका; वहां गुणश्रेणी आदि का; केवलीसमुद्घात का; वहां दंड-कपाटादि के विधान, क्षेत्र, प्रमाणादि का; वहां होनेवाली स्थिति-अनुभाग घटने आदि क्रियाओं का; योगों का इत्यादि वर्णन है । पुनश्च बादर मन, वचन, काय योग का निरोध करके सूक्ष्म करने का; वहां जैसा योग होता है उसका; सूक्ष्म मनोयोग, वचनयोग, उच्छ्वास-निश्वास, काययोग के निरोध करने का; वहां काययोग के पूर्वस्पर्धकों के अपूर्वस्पर्धक और उनकी सूक्ष्मकृष्टि करते हैं उनका स्वरूप, विधान, प्रमाण, समय-समय संबंधी क्रियाविशेष का; सूक्ष्मकृष्टि को भोगते हुये सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती ध्यान युक्त होता है उसका; वहां होनेवाले स्थिति-अनुभागघात और गुणश्रेणी आदि विशेष का वर्णन है ।

पुनश्च अयोगकेवली का वर्णन है । वहां उसकी स्थिति का, शैलेश्यपना का; ध्यान का; वहां अवशेष सर्व प्रकृतियों की क्षपणा का वर्णन है ।

पुनश्च सिद्ध भगवान का वर्णन है । वहां सुखादिक का, महिमा का, स्थान का, अन्यमतियों ने कहे हुये स्वरूप के निराकरण का इत्यादि वर्णन है । इसतरह लब्धिसार, क्षपणासार कथन की सूचनिका जानना ।

अंत में अपने कुछ समाचार प्रकट करके इस सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका की समाप्ति होनेपर कृतकृत्य होकर आनंद दशा को प्राप्त होना होगा । इसतरह सूचनिका द्वारा ग्रंथसमुद्र के अर्थ संक्षेप से प्रकट किये हैं ।

इति सूचनिका ।

आचार्यप्रवर श्रीमन्नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती विरचित

लब्धिसार

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाषा टीका

का

हिन्दी अनुवाद

।। मंगलाचरण ।।

सम्यग्दर्शनचरनगुन पाय कुकर्म खिपाय ।
केवलज्ञान उपाय प्रभु भए भजौं शिवराय ।।१।।

जिनवानी के ज्ञान तैं होत तत्त्व श्रद्धान ।
चरण धारि केवल लहै पावै पद निरवान ।।२।।

नेमिचन्द आल्हादकर माधवचन्द प्रधान।
नमौं जास उज्जास तैं जाने निजगुण थान ।।३।।

लब्धिसार कौं पाय कैं करि कैं क्षपणासार ।
हो है प्रवचनसार सों समयसार अविकार ।।४।।

लब्धिसार भूमिका

इसतरह मंगलाचरण करके लब्धिसार के सूत्रों का भाषारूप व्याख्यान करते हैं; उसका प्रयोजन क्या है ? वह कहते हैं –

श्रीमद् गोम्मटसार शास्त्र में जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड अधिकारों द्वारा जीव और कर्म का स्वरूप प्रकट किया, उसको यथार्थ जानकर मोक्षमार्ग में प्रवर्तना क्योंकि आत्मा का हित मोक्ष है, उसी के लिये विवेकी जीवों का उपाय है । मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र है; सम्यग्ज्ञान भी मोक्षमार्ग है, वह सम्यग्दर्शन का सहकारी ही जानना । सम्यग्दर्शन तीन प्रकार का है – औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक । सम्यक्चारित्र दो प्रकार का है – देशचारित्र, सकलचारित्र । वहां देशचारित्र

तो क्षायोपशमिक ही है और सकलचारित्र तीन प्रकार का है – क्षायोपशमिक, औपशमिक, क्षायिक ।

ऐसे सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र की लब्धि होनेपर केवलज्ञान की प्राप्ति करके सयोगी, अयोगी जिन होकर सिद्ध पद को प्राप्त होता है ।

इन सबका स्वरूप अच्छी तरह *(स्पष्ट)* जानना चाहिये, क्योंकि ये ही आत्मा के प्रयोजनभूत कार्य हैं । इनके होनेपर पूर्व में हुये कर्म के बंध, उदय, सत्त्व की कैसी-कैसी अवस्था होती है और जीव का परिणमन कैसे-कैसे होता है इत्यादि विशेष जानने योग्य है । इनको जाननेपर चौदह गुणस्थानों का भी स्वरूप विशेषपने से स्पष्ट जानते हैं और जीव कर्मादि की सर्व चर्चाओं में गुणस्थानों की चर्चा प्रधान है, इसलिए 'यहां उन औपशमिक सम्यक्त्व आदि का वर्णन अवश्य करना' ऐसा प्रयोजन सोचकर उद्यम किया । तब हमने यंत्रादि रचना सहित लब्धिसार नामक शास्त्र की मूल गाथाओं का एक पुस्तक देखा । वहां उन औपशमिक सम्यक्त्वादि का विशेष वर्णन जानकर उन गाथाओं का भाषारूप व्याख्यान करने का विचार हुआ । पुनश्च लब्धिसार की टीका के पुस्तक देखे, वहां औपशमिक चारित्र के वर्णन तक की गाथाओं ही की संस्कृत टीका करके समाप्त किया हुआ है; अवशेष क्षायिक चारित्रादि के वर्णनरूप गाथाओं की संस्कृत टीका नहीं है । पुनश्च एक क्षपणासार नामक जुदा ग्रंथ-शास्त्र उसके पुस्तक देखे, वहां गाथायें तो नहीं हैं और संस्कृत धारारूप ही क्षायिक चारित्रादि का वर्णन है । वहां इसके अर्थ का और उन अवशेष लब्धिसार की गाथाओं के अर्थ का प्रयोजन समानसा देखा । इसतरह देखकर यह विचार किया कि औपशमिक चारित्र तक की गाथाओं का व्याख्यान तो संस्कृत टीका के अनुसार करना और अवशेष गाथाओं का व्याख्यान क्षपणासार के अनुसार करना । सो इसप्रकार लब्धिसार की गाथाओं का संक्षिप्त अर्थ यहां लिखते हैं । विस्तार के भय से विशेष नहीं लिखते हैं । तथा कोई कठिन अर्थ मेरी समझ में ठीक न आने के कारण यहां नहीं लिखा है, वह संस्कृत टीका से और क्षपणासार से जानिये ।

पुनश्च ऐसा व्याख्यान करते हुये कहीं चूक होगी, बुद्धि की मंदता से अन्यथा लिखा होगा, वहां विशेषज्ञानी इसे शोधकर शुद्ध करें; क्योंकि अर्थ तो गंभीर है और मेरी बुद्धि तुच्छ है; इसलिए कहीं चूक भी हो सकती है । ऐसा विचार

कर इस भाषा करने का प्रारंभ करते हैं । वहां प्रथम कितने ही अर्थ और संज्ञाविशेष दिखाते हैं । इनको जानकर आगे इनका वर्णन जहां आयेगा वहां इनको याद करके सही अर्थ का ज्ञानी हो ।

इस शास्त्र में दस करणों का विशेष प्रयोजन है, इसलिए प्रथम इनका स्वरूप कहते हैं –

कर्मों की दस अवस्थायें हैं – (१) बंध, (२) सत्त्व, (३) उदय, (४) उदीरणा, (५) उत्कर्षण, (६) अपकर्षण, (७) संक्रमण, (८) उपशम, (९) निधत्ति, (१०) निकाचना ये दस करण हैं । इनका स्वरूप गोम्मटसार के कर्मकाण्ड में दसकरणचूलिका नामक अधिकार में कहा है वह जानना । यहां भी प्रयोजन जानकर कुछ लिखते हैं ।

कर्मरूप नवीन पुद्गलों का आत्मा से संबंध होना, उसका नाम बंध है । वह चार प्रकार का है – (१) प्रकृतिबंध, (२) प्रदेशबंध, (३) स्थितिबंध, (४) अनुभागबंध ।

वहां कर्मरूप होने योग्य जो कार्माणवर्गणारूप पुद्गल, उनका ज्ञानावरणादि मूलप्रकृति और उनकी उत्तरप्रकृतिरूप परिणमना, वह प्रकृतिबंध है । जहां जितनी प्रकृतियों का बंध पाया जाता है, वहां उतना प्रकृतिबंध जानना ।

उन प्रकृतिरूप जितने पुद्गल परमाणु परिणमित हुये उनका प्रमाण वह प्रदेशबंध है; क्योंकि यहां प्रदेश नाम पुद्गल परमाणु का है । अभव्यराशि से अनंतगुणा ऐसा जो सिद्धराशि के अनंतवें भाग मात्र प्रमाण, उतने परमाणु मिलकर एक कार्माणवर्गणा होती है । उतनी ही वर्गणा मिलकर एक समयप्रबद्ध होता है । प्रत्येक समय में इतने परमाणु कर्मरूप होकर एक जीव से बंधते हैं, इसलिए इसका नाम समयप्रबद्ध है । यह सामान्य प्रमाण है । विशेष योगों की हीनाधिकता के अनुसार समयप्रबद्ध में परमाणुओं की हीनाधिकता जानना । पुनश्च एक समय में ग्रहण किया हुआ समयप्रबद्ध यथासंभव मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृतिरूप परिणमता है, वहां उन प्रकृतियों के परमाणुओं के विभाग का विधान गोम्मटसार कर्मकाण्ड के बंधोदयसत्त्वाधिकार में प्रदेशबंध का व्याख्यान करते समय कहा है, वह

जानना । जिस प्रकृति के हिस्से में जितने परमाणु आते हैं, उतने परमाणुओं का समूह मात्र उस प्रकृति का समयप्रबद्ध जानना ।

पुनश्च जो परमाणु प्रकृतिरूप बंधे, वे परमाणु उसरूप *(कर्मरूप)* इतने काल तक रहेंगे ऐसा बंध होते समय स्थिति का प्रमाण होना, वह स्थितिबंध है ।

वहां एक समय में जो स्थितिबंध हुआ उसमें से बंध समय से लेकर आबाधाकाल तक तो वहां बंधे हुये परमाणुओं के उदय आने योग्यपने का अभाव है, इसलिए वहां निषेकरचना है नहीं । उसके पश्चात् प्रथम समय से लेकर बंधी हुयी स्थिति के अंत समय तक एक-एक समय में एक-एक निषेक उदय आने योग्य होता है । इसलिए प्रथम निषेक की स्थिति एक समय अधिक आबाधाकाल मात्र है । द्वितीय निषेक की स्थिति दो समय अधिक आबाधाकाल मात्र है । इसी क्रम से द्विचरम निषेक की स्थिति एक समय कम स्थितिबंध प्रमाण है । अंत निषेक की स्थिति संपूर्ण स्थितिबंध प्रमाण है ।

जैसे, मोह की सत्तर कोडाकोडी सागर स्थिति बंधी; वहां सात हजार वर्ष का आबाधाकाल है और प्रथम निषेक की स्थिति एक समय अधिक सात हजार वर्ष है । द्वितीयादि निषेकों की क्रम से एक-एक समय अधिक होकर अंत निषेक की सत्तर कोडाकोडी सागर प्रमाण स्थिति जानना । ऐसे ही आयु बिना सात कर्मों का विधान है । आयु के स्थितिबंध में आबाधाकाल नहीं गिनते, क्योंकि उसका आबाधाकाल पूर्व पर्याय में ही व्यतीत होता है । वहां उस आयु के उदय होने योग्यपने का अभाव है; इसलिए आयु के प्रथम निषेक की स्थिति एक समय, द्वितीय निषेक की दो समय, इस क्रम से अंत निषेक की संपूर्ण स्थितिबंध मात्र स्थिति जानना । इसतरह एक समय में बंधी हुयी स्थिति में विशेष जानना । सामान्यपने अंत निषेक की स्थिति का जो प्रमाण है, उसे वहां स्थितिबंध कहते हैं; क्योंकि सामान्य कथन में उत्कृष्ट का ग्रहण करते हैं ।

एक समय में बंधे हुये प्रकृति के समयप्रबद्ध के परमाणुओं में प्रथमादि निषेकों का विभाग *(विभाजन)* कैसे होता है ? उसको जानने के लिये गोम्मटसार कर्मकाण्ड के कर्मस्थितिरचना सद्भाव नामक अंत का अधिकार है, वहां द्रव्य, स्थिति, गुणहानि,

नानागुणहानि, अन्योन्याभ्यस्तराशि, दोगुणहानि का प्रमाण कहकर वहां विधान कहा है, वह जानना । यहां भी आगे संक्षेप में विधान कहेंगे । इन प्रथमादि निषेकों की रचना एक के ऊपर एक लिखते हैं इसलिए प्रथमादि निषेकों को नीचे के निषेक कहते हैं, पश्चात् के निषेकों को ऊपर के निषेक कहते हैं ऐसा जानना ।

जैसे भाजनादि *(पात्र)* के निमित्त से पुष्पादिक *(पदार्थ)* मदिरारूप परिणमते हैं, उनमें ऐसी शक्ति होती है जो भक्षणकाल में हीनाधिक विशेष सहित, पुरुष को उन्मत्तता उत्पन्न कराते हैं, वैसे रागादि के निमित्त से पुद्गल कर्मरूप परिणमते हैं, उनमें ऐसी शक्ति होती है जो उदयकाल में हीनाधिक विशेष सहित, जीव के ज्ञान आच्छादन आदि करते हैं । इसतरह बंध होनेपर शक्ति का होना, वह अनुभागबंध है । वहां एक प्रकृति के एक समय में बंधे हुये परमाणुओं में नाना प्रकार की शक्ति होती है, वह कहते हैं –

शक्ति के अविभाग अंश का नाम अविभागप्रतिच्छेद है । उनके समूह से युक्त एक परमाणु का नाम वर्ग है । समान अविभागप्रतिच्छेदों से युक्त जो वर्ग, उनके समूह का नाम वर्गणा है । वहां सबसे अल्प अनुभाग युक्त परमाणु का नाम जघन्य वर्ग है । उनके समूह का नाम जघन्य वर्गणा है । जघन्य वर्ग से एक अधिक अविभागप्रतिच्छेद युक्त जो वर्ग, उनके समूह का नाम द्वितीय वर्गणा है ।

इसी क्रम से एक-एक अविभागप्रतिच्छेद से अधिक वर्गों के समूहरूप वर्गणा जहां तक होती हैं, वहां तक उन वर्गणाओं के समूह का नाम जघन्य स्पर्धक है । जघन्य वर्ग से दोगुणा अविभागप्रतिच्छेद से युक्त वर्गों के समूहरूप द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा होती है । उसके ऊपर एक-एक अविभागप्रतिच्छेद से अधिक क्रमवाले जो वर्ग हैं उनके समूहरूप वर्गणा जहां तक होती हैं, उन वर्गणाओं के समूहरूप द्वितीय स्पर्धक होता है । इसीतरह तृतीय, चतुर्थ आदि स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा के वर्ग में तो जघन्य स्पर्धक से तीनगुणा, चारगुणा आदि अविभागप्रतिच्छेद जानना । यहां सर्व परमाणुओं के प्रमाण के ऊपर पूर्वोक्त एक-एक अधिक का क्रम जानना । ऐसा विधान जब तक सभी परमाणु समाप्त होते हैं तब तक जानना ।

यहां सर्व परमाणुओं के प्रमाण मात्र तो द्रव्य है । वर्गणाओं के प्रमाण मात्र

अनंत प्रमाणवाली अनुभाग की स्थिति है । यथासंभव अनंत प्रमाणवाली अनुभाग संबंधी गुणहानि, नानागुणहानि और अन्योन्याभ्यस्तराशि और दोगुणहानि है । इनके स्थापित कर वहां **'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा'** इत्यादि आगे कहेंगे उस विधान से प्रथमादि गुणहानियों की प्रथमादि वर्गणाओं में वर्गों का प्रमाण लाना । ऐसी वर्गणायें एक स्पर्धक में जितनी पायी जाती हैं, उसका नाम एक स्पर्धक वर्गणाशलाका है । पुनश्च एक गुणहानि में जितने स्पर्धक पाये जाते हैं, उसका नाम एक गुणहानि स्पर्धकशलाका है । इसतरह अविभागप्रतिच्छेदों का समूह वर्ग है । वर्गों का समूह वर्गणा है । वर्गणाओं का समूह स्पर्धक है । स्पर्धकों का समूह गुणहानि है । गुणहानियों का प्रमाण वही नानागुणहानि है ऐसा जानना । यह कथन गोम्मटसार में भी है और यहां भी आगे अच्छी तरह से कहेंगे ।

इन प्रथमादि स्पर्धकों की रचना एक के ऊपर एक करते हैं, इसलिए प्रथमादि स्पर्धकों को नीचे के स्पर्धक कहते हैं और पश्चात् के स्पर्धकों को ऊपर के स्पर्धक कहते हैं । पूर्वोक्त विधान से प्रथमादि स्पर्धकों में परमाणुओं का प्रमाण क्रम से घटता-घटता है और अनुभाग क्रम से बढ़ता-बढ़ता है । वहां प्रथमादि सर्व स्पर्धकों के चार विभाग करेंगे तो घातिकर्मों के तो लता, दारु, अस्थि, शैल समान; अप्रशस्त अघातिकर्मों के निंब *(नीम)*, कांजीर, विष, हलाहल समान और प्रशस्त अघातिकर्मों के गुड, खांड, शर्करा, अमृत समान चार भाग जानना ।

घातिकर्मों में लताभाग के और कुछ दारुभाग के स्पर्धक देशघाति हैं, अवशेष सर्वघाति हैं । उसका विशेष आगे आयेगा । इसतरह अनुभाग में विशेष है । स्थिति संबंधी एक-एक निषेक के परमाणुओं में ऐसा अनुभाग का विशेष पाया जाता है । जिसतरह स्थिति के पहले निषेक पहले उदय में आते हैं और ऊपर के निषेक पश्चात् उदय में आते हैं, उसतरह अनुभाग के पहले स्पर्धक पहले उदय में आने का और ऊपर के स्पर्धक पश्चात् उदय में आने का नियम नहीं है । सामान्यपने से जहां जो उत्कृष्ट अनुभाग पाया जाता है, वही वहां अनुभागबंध का प्रमाण कहते हैं । ऐसा बंध का स्वरूप कहा ।

पुनश्च अनेक समयों में बंधे हुये कर्म का विवक्षित कालादि में जीव के साथ अस्तित्व रहता है, उसका नाम सत्त्व है । वह चार प्रकार का है – प्रकृतिसत्त्व,

प्रदेशसत्त्व, स्थितिसत्त्व, अनुभागसत्त्व ।

वहां अनेक समयों में बंधी हुयी ज्ञानावरणादि मूलप्रकृतियों और उनकी उत्तरप्रकृतियों का जो अस्तित्व, वह प्रकृतिसत्त्व है ।

उन प्रकृतियोंरूप परिणमित ऐसे अनेक समयों में ग्रहण किये हुये पुद्गल परमाणु, वह प्रदेशसत्त्व है । वहां प्रतिसमय जो एक-एक समयप्रबद्ध ग्रहण किये हैं उनके पूर्वोक्त प्रकार से एक-एक निषेक क्रम से निर्जरित होते हैं । वहां जिन समयप्रबद्धों के सर्व निषेक गल गये उनका तो अस्तित्व रहा ही नहीं । किसी समयप्रबद्ध का अन्य निषेक गलकर एक निषेक अवशेष रहा, किसी के अन्य निषेक गलकर दो निषेक अवशेष रहे, इसी क्रम से जिसका एक निषेक गल गया है उसके उस बिना सर्व निषेक अवशेष रहे हैं । जिसका कोई निषेक नहीं गला है उसके सर्व ही निषेक अवशेष रहे हैं । इसतरह अवशेष रहे हुये सर्व निषेकों के परमाणुओं का मिला हुआ प्रमाण किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है । इसका वर्णन गोम्मटसार कर्मकाण्ड के कर्मस्थितिरचना सद्भाव अधिकार में त्रिकोणरचना द्वारा दिखाया है, वह जानना । ऐसे इन परमाणुओं का अस्तित्व, वह प्रदेशसत्त्व जानना ।

यहां यदि एक प्रकृति की विवक्षा होगी तो एक प्रकृति संबंधी समयप्रबद्ध ग्रहण करना, यदि सर्व प्रकृतियों की विवक्षा होगी तो सर्व प्रकृतियों संबंधी समयप्रबद्ध जानना ।

उन अनेक समयों में बंधी हुयी प्रकृतियों की स्थिति का नाम स्थितिसत्त्व है । वहां उन प्रकृतियों के जिस समयप्रबद्ध का एक निषेक अवशेष रहा है उसकी एक समय की स्थिति है, जिसके दो निषेक अवशेष रहे हैं उसके प्रथम निषेक की एक समय और द्वितीय निषेक की दो समय स्थिति है । इस क्रम से जिसका एक भी निषेक नहीं गला है उसके प्रथमादि निषेक की एक, दो आदि समयों से अधिक आबाधाकाल मात्र स्थिति के क्रम से वहां अंत निषेक की संपूर्ण स्थितिबंध मात्र स्थिति है । यहां सत्त्व में अनेक समयप्रबद्धों के एक समय में उदय आने योग्य अनेक निषेक मिलकर जो होता है वह एक निषेक जानना । इनमें परमाणुओं का प्रमाण आगे कहेंगे । सामान्यपने से यदि एक प्रकृति की विवक्षा होगी तो उसके पहले या पश्चात्

बंधे हुये जिस समयप्रबद्ध के बहुत निषेक सत्ता में पाये जाते हैं, उस समयप्रबद्ध के अंत के निषेक की जितनी स्थिति है उस प्रमाण स्थितिसत्त्व कहना और यदि सर्व प्रकृतियों की विवक्षा होगी तो जिस प्रकृति के समयप्रबद्ध के अंत निषेक की बहुत स्थिति हो, उसके अंत निषेक की स्थिति प्रमाण स्थितिसत्त्व कहना ।

उन अनेक समयों में बंधी हुयी प्रकृतियों का जो अनुभाग सत्तारूप है, उसका नाम अनुभागसत्त्व है । वहां एक समय में उदय आने योग्य अनेक समयप्रबद्धों के निषेक मिलकर हुआ सत्ता संबंधी एक निषेक, उसके परमाणुओं में अथवा अनेक समयों में बंधे हुये समयप्रबद्धों के गलने के पश्चात् अवशेष रहे निषेक, उन सबके परमाणुओं में पूर्वोक्त प्रकार अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धकरूप अनुभाग का विशेष जानना । वहां परमाणुओं का प्रमाण पूर्वोक्त प्रकार से लाना । सामान्यपने से वहां पूर्वोक्त चार प्रकार से अनुभाग का ग्रहण जानना । इसतरह सत्त्व का निरूपण किया ।

पुनश्च कर्मों का अपना काल आनेपर फल देनेरूप होकर खिरने के सन्मुख होना, वह उदय है । वह चार प्रकार का है – प्रकृतिउदय, प्रदेशउदय, स्थितिउदय अनुभागउदय ।

वहां यथासंभव मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृति का फल देनेरूप उदय आना, वह प्रकृतिउदय है । उस उदयरूप प्रकृति के जो परमाणु खिरने के सन्मुख होकर उदय में आते हैं, वह प्रदेशउदय है । वहां अनेक समयों में बंधे हुये समयप्रबद्धों का उस विवक्षित एक समय में उदय आने योग्य जो निषेक, उन सब निषेकों के परमाणु उस विवक्षित एक समय में उदय में आते हैं, वह कहते हैं ।

जिस समयप्रबद्ध का एक भी निषेक नहीं गला है, उसके प्रथम निषेक का उदय होता है, जिसका प्रथम निषेक पूर्व में गल गया हो, उसके द्वितीय निषेक का वहां उदय होता है । इसी क्रम से जिसके दो निषेक अवशेष रहे हैं उसका वहां उपांत निषेक का उदय होता है । जिसका एक ही निषेक अवशेष रहा है उसके उसी अंत निषेक का वहां उदय होता है । इसतरह सर्व निषेक मिलकर एक समयप्रबद्ध मात्र परमाणुओं का उदय होता है । वहां उदीरणा, उत्कर्षण, अपकर्षण आदि के वश से विशेष है, वह कहते हैं ।

यदि ऊपर के और नीचे के अन्य समयों में उदय आने योग्य निषेकों के परमाणु उस विवक्षित समय में उदय आने योग्य निषेकों में मिलायें हो, तो वे परमाणु भी उन्हीं के साथ उसी समय उदय में आते हैं ।

जैसे अंकसंदृष्टि से तिरसठ सौ परमाणु तो उस विवक्षित समय उदय में आने योग्य निषेकों के थे और हजार परमाणु अन्य निषेकों के वहां मिलाये, तो वहां तिहत्तर सौ परमाणुओं का उदय होता है । ऐसे ही उस समय में उदय आने योग्य निषेकों के परमाणु अन्य निषेकों में मिलाये हो, तो वहां उनके अवशेष परमाणु उदय में आते हैं । जैसे उस समय उदय में आनेवाले निषेकों के तिरसठ सौ परमाणु थे, उनमें से हजार परमाणु अन्य निषेकों में मिलाये, तो वहां तिरपन सौ परमाणुओं का ही उदय होता है । पुनश्च उस समय उदय में आने योग्य निषेकों के कितने ही परमाणु अन्य निषेकों में और अन्य निषेकों के परमाणु इन निषेकों में मिलाये हो, तो वहां जितने परमाणु हीनाधिक हुये उन्हीं का उदय होता है । जैसे तिरसठ सौ परमाणु उस समय में उदय आने योग्य निषेकों के थे, उनमें सात सौ परमाणु तो अन्य निषेकों में से आ मिले और हजार परमाणु अन्य निषेकों में दिये, तो उस समय छह हजार परमाणुओं का ही उदय होता है । इसतरह उदीरणादि की अपेक्षा विशेष जानना । वहां विशेष इतना है कि उदयावली के निषेकों का उत्कर्षण नहीं होता । विवक्षित एक समय में उस समय में उदय आने योग्य निषेकों का ही उदय होता है । उसका उदय होनेपर सत्तारूप स्थिति में से एक समय घटता है । इसलिए वहां एक समय मात्र स्थितिउदय जानना । कांडक विधान से अनेक समय मात्र स्थिति घटाते हैं, उसका विधान आगे लिखेंगे ।

पुनश्च उस एक समय में अनुभाग का उदय होना, वह अनुभागउदय है । वहां उस समय में उदय आने योग्य परमाणुओं में पूर्वोक्त प्रकार अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक आदि विशेष जानना । यदि उत्कर्षण, अपकर्षण, कांडकादि विधान से अनुभाग का घटना-बढ़ना हुआ हो, तो वहां जैसा अनुभाग पाया जाये उतने ही का उदय जानना ।

यहां प्रश्न – यदि उस समय में उदय आने योग्य परमाणुओं में किन्हीं परमाणुओं में अल्प अनुभाग है और किन्ही में बहुत है, तो उन सबका एक समय

में कैसे उदय होता है ?

उसका समाधान – जैसे कोई वस्तु *(पदार्थ)* अल्प शीतलता करने का कारण है, कोई बहुत शीतलता करने का कारण है, उन सबकी एक गोली बनाकर एक काल में खायी, वहां सबकी शीतलता मिलकर जैसी शीतलता होनी हो वैसी भक्षण करनेवाले के शीतलता होती है ।

उसीतरह किन्ही परमाणुओं में अल्प अनुभाग है, किन्ही में बहुत अनुभाग है, उन सबका एक निषेक हुआ, उसका एक काल में उदय आया, वहां सबका अनुभाग मिलकर जैसा अनुभाग होना हो, वैसा उदयवाले के अनुभागउदय होता है । सामान्यपने से वहां चार प्रकार का अनुभाग यथासंभव जानना । इसतरह उदय का स्वरूप कहा ।

पुनश्च अपक्वपाचन अर्थात् जो पक्व नहीं हुआ अर्थात् जो उदय को प्राप्त नहीं हुआ ऐसे कर्म का पाचन करना अर्थात् पकाना, उदय काल में प्राप्त करना ऐसा है लक्षण जिसका, उसे उदीरणा कहते हैं ।

वहां वर्तमान समय से लेकर आवली मात्र काल में उदय आने योग्य जो निषेक, उनका नाम उदयावली है । उसके ऊपरवर्ती निषेकों को उदयावलीबाह्य निषेक कहते हैं । वहां उदयावली के बाह्य स्थित निषेकों के परमाणुओं को उदयावली के निषेकों में मिलाना, इसतरह बहुत काल पश्चात् उदय में आने योग्य जो अपक्व कर्म परमाणु, उनको उदयावली के निषेकों के साथ उदय होने योग्य करना, उसे पाचन कहते हैं, ऐसा कार्य जिस समय होता है, उस समय में उदीरणा नाम पाता है । उस समय के पश्चात् उसी द्रव्य को सत्तारूप या उदयरूप कहते हैं । ऐसा उदीरणा का स्वरूप कहा ।

स्थिति-अनुभाग का बढ़ना, उसका नाम उत्कर्षण है ।

वहां अल्प काल में उदय आने योग्य जो नीचे के निषेक, उनके परमाणु बहुत काल में उदय आने योग्य ऐसे ऊपर के निषेकों में मिलते हैं; इसप्रकार अल्प स्थिति का बहुत स्थिति होने का नाम स्थितिउत्कर्षण है ।

अल्प अनुभाग युक्त जो नीचे के स्पर्धक, उनके परमाणु बहुत अनुभाग युक्त

ऊपर के स्पर्धकों में मिलते हैं; इसप्रकार अल्प अनुभाग का बहुत अनुभाग होने का नाम अनुभागउत्कर्षण है ।

इसीतरह स्थिति, अनुभाग के घटने का नाम अपकर्षण है । वहां बहुत काल में उदय आने योग्य जो ऊपर के निषेक, उनके परमाणु अल्प काल में उदय आने योग्य नीचे के निषेकों में मिलते हैं; इसप्रकार बहुत स्थिति का अल्प स्थिति होने का नाम स्थितिअपकर्षण है ।

बहुत अनुभाग युक्त जो ऊपर के स्पर्धक, उनके परमाणु अल्प अनुभाग युक्त नीचे के स्पर्धकों में मिलते हैं; इसप्रकार बहुत अनुभाग का अल्प अनुभाग होने का नाम अनुभागअपकर्षण है ।

वहां विवक्षित सर्व परमाणुओं के समूह को उत्कर्षण या अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र परमाणुओं का ग्रहण करके यथायोग्य ऊपर या नीचे मिलानेपर उत्कर्षण या अपकर्षण होता है । उस उत्कर्षण वा अपकर्षण भागहार का प्रमाण आगे कहे जानेवाले गुणसंक्रमण भागहार से तो असंख्यातगुणा है और अध:प्रवृत्तसंक्रमण भागहार के असंख्यातवें भाग ऐसे पल्य के अर्धच्छेदों का असंख्यातवां भाग मात्र जानना । इसतरह उत्कर्षण और अपकर्षण का स्वरूप कहा ।

यदि एक प्रकृति के परमाणु अन्य प्रकृतिरूप होते हैं, तो उसका नाम संक्रमण है । जैसे संक्लेशपने से पहले असातावेदनीय बांधी थी, पश्चात् विशुद्धता के बल से उसके परमाणु सातावेदनीयरूप होकर परिणमते हैं; ऐसे ही यथायोग्य अन्य-अन्य प्रकृतियों का भी संक्रमण जानना ।

वहां संक्रमण होने में पांच प्रकार के भागहार पाये जाते हैं – (१) उद्वेलन, (२) विध्यात, (३) अध:प्रवृत्त, (४) गुणसंक्रमण, (५) सर्वसंक्रमण । इनका कथन गोम्मटसार के कर्मकाण्ड में पंचभागहारचूलिका है, वहां जानना अथवा यहां यथावसर कहेंगे । कुछ स्वरूप अभी कहते हैं ।

उद्वेलन प्रकृतियों के परमाणुओं को उद्वेलन भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र परमाणु जहां अन्य प्रकृतिरूप होकर परिणमते हैं, वहां उद्वेलन संक्रमण कहते हैं ।

जहां मंद विशुद्धता युक्त जीव के, जिसका बंध नहीं पाया जाता ऐसी विवक्षित

प्रकृति के परमाणुओं को विध्यात भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र परमाणु अन्य प्रकृतिरूप होकर परिणमते हैं, वहां विध्यात संक्रमण कहते हैं ।

जहां जिसका बंध पाया जाता है ऐसी विवक्षित प्रकृति के परमाणुओं को अधःप्रवृत्त भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र परमाणु अन्य प्रकृतिरूप होकर परिणमते हैं, वहां अधःप्रवृत्त संक्रमण कहते हैं ।

जहां विवक्षित अशुभ प्रकृति के परमाणुओं को गुणसंक्रमण भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र परमाणु अन्य प्रकृतिरूप होकर परिणमते हैं; वहां पहले समय में जितने परमाणु परिणमते हैं, उससे दूसरे समय में असंख्यातगुणा परिणमते हैं, उससे तीसरे समय में असंख्यातगुणा परिणमते हैं, इसप्रकार प्रतिसमय गुणकार पाया जाता है, वहां गुणसंक्रमण कहते हैं ।

जहां विवक्षित प्रकृति के परमाणु अन्य प्रकृतिरूप प्रतिसमय परिणमते हुये अंत समय में अंत फालिरूप ही अवशेष सर्व ही परमाणु अन्य प्रकृतिरूप होकर परिणमते हैं, वहां सर्वसंक्रमण कहते हैं । अब इन भागहारों का प्रमाण कहते हैं –

सर्वसंक्रमण भागहार का प्रमाण तो एक है; क्योंकि अवशेष रहे परमाणुओं को एक का भाग देनेपर सर्व परमाणु मात्र प्रमाण आता है । उससे असंख्यातगुणा ऐसा पल्य के अर्धच्छेद के प्रमाण के असंख्यातवें भाग मात्र गुणसंक्रमण भागहार का प्रमाण है, उससे असंख्यातगुणा जो उत्कर्षण वा अपकर्षण भागहार है, उससे भी असंख्यातगुणा ऐसा पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग मात्र अधःप्रवृत्त संक्रमण भागहार का प्रमाण है । उससे असंख्यातगुणी ऐसी संख्यात पल्य मात्र कर्म की स्थिति है, उससे भी असंख्यातगुणा ऐसा सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र विध्यात संक्रमण भागहार का प्रमाण है । उससे असंख्यातगुणा ऐसा सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र उद्वेलन संक्रमण भागहार का प्रमाण है । इसतरह संक्रमण का स्वरूप कहा ।

पुनश्च विवक्षित प्रकृति के उदयावली के बाह्य निषेकों के परमाणु जो उदयावली में प्राप्त करने योग्य न हो, उसको उपशांत द्रव्य कहते हैं । यहां उपशम विधान से मोह का उपशम करते हैं, उसका ग्रहण नहीं करना; क्योंकि उपशमभाव मोह ही का है और उपशांतकरण सर्व प्रकृतियों के पाया जाता है । उपशांत आदि तीन करण

(उपशांत, निधत्ति, निकाचित) आठवें गुणस्थान तक ही कहे हैं और उपशमभाव ग्यारहवें गुणस्थान तक पाया जाता है ।

विवक्षित प्रकृति के जो परमाणु संक्रमण होने और उदयावली में प्राप्त होने के योग्य न हो, वह निधत्तिकरण द्रव्य है ।

विवक्षित प्रकृति के जो परमाणु संक्रमण होने, उदयावली में प्राप्त होने और उत्कर्षण-अपकर्षण होने योग्य न हो, वह नि:काचना द्रव्य है ।

इसतरह इन तीन करणों का स्वरूप कहा । यहां ऐसा नियम जानना कि उपशांतादिरूप द्रव्य है, वह उपशांतादिरूप ही रहता है । पहले उपशांतादिरूप था, पश्चात् उदीरणा आदि रूप होता है तो कुछ दोष नहीं है । इसप्रकार दस करणों का स्वरूप पहिचानना ।

अब यहां दर्शन-चारित्र लब्धि द्वारा मोक्ष का साधन करते हैं ।

मोक्ष की प्राप्ति संवर-निर्जरा से होती है; संवर-निर्जरा हैं, वे बंध-सत्त्व की हानि से होते हैं । इसलिए दर्शन-चारित्र लब्धि में बंध-सत्त्व की हानि कैसे होती है उसका सामान्य स्वरूप यहां कहते हैं, विशेष आगे कहेंगे ।

यहां चार प्रकार के बंध मिटने का क्रम कहते हैं –

दर्शन-चारित्र लब्धि के निमित्त से पहले मिथ्यात्व, नरकगति आदि अति अप्रशस्त प्रकृतियों के, पश्चात् ज्ञानावरणादि अप्रशस्त प्रकृतियों के और प्रशस्त प्रकृतियों के बंध का अभाव होता है । वहां प्रकृतिबंध क्रम से घटता है, उसे प्रकृतिबंधापसरण कहते हैं, क्योंकि अपसरण नाम घटने का है ।

प्रदेशबंध योगों के अनुसार होता है; इसलिए योगों की चंचलता हीन होनेपर प्रदेशबंध हीन होता है । योग का सर्वथा नाश होनेपर प्रदेशबंध का सर्वथा अभाव होता है ।

स्थितिबंध कषाय के अनुसार होता है; इसलिए मिथ्यात्व, कषाय आदि हीन होनेपर स्थितिबंध घटता है । वहां स्थितिबंध का क्रम से घटना स्थितिबंधापसरण है । पहले जितना स्थितिबंध होता था, उससे विवक्षित काल में जितना स्थितिबंध घटा,

उतने प्रमाणवाला वहां स्थितिबंधापसरण जानना; तथा घटने के पश्चात् जितना अवशेष रहा उतना वहां स्थितिबंध जानना । स्थितिबंधापसरण होनेपर जितने काल तक समान स्थितिबंध होता है, उसे स्थितिबंधापसरण काल कहते हैं ।

यहां दृष्टांत – जैसे पहले एक लाख वर्ष प्रमाण स्थितिबंध होता था, उससे एक हजार वर्ष प्रमाण स्थितिबंधापसरण हुआ तब अवशेष निन्यानबे हजार वर्ष मात्र स्थितिबंध रहा । स्थितिबंधापसरण काल के पहले समय में इतना स्थितिबंध हुआ, इतना ही दूसरे समय में हुआ, ऐसे ही स्थितिबंधापसरण काल के अंतिम समय तक समान स्थितिबंध होता रहा । पश्चात् आठ सौ वर्ष मात्र अन्य स्थितिबंधापसरण हुआ, तब अट्ठानबे हजार दो सौ वर्ष मात्र अवशेष स्थितिबंध रहा, वह उस स्थितिबंधापसरण काल के प्रथमादि समयों में उतना समान स्थितिबंध हुआ करता है । इसीतरह यथासंभव प्रमाण जानकर उसका स्वरूप जानना । इसतरह स्थितिबंध घटते-घटते अपने व्युच्छित्ति होने के समय में जघन्य स्थितिबंध होता है, पश्चात् स्थितिबंध का नाश है । आयु बिना सर्व कर्मों में ऐसा क्रम जानना । आयु का स्थितिबंधापसरण नहीं होता; क्योंकि नरक बिना तीन आयु का स्थितिबंध विशुद्धता से अधिक होता है और अन्य सब शुभाशुभ प्रकृतियों का स्थितिबंध संक्लेशता से बहुत होता है और विशुद्धता से अल्प होता है ।

अनुभागबंध पाप प्रकृतियों का संक्लेशता से बहुत और विशुद्धता से अल्प होता है तथा पुण्य प्रकृतियों का संक्लेशता से अल्प और विशुद्धता से बहुत होता है । इसलिए अनंतगुणा या यथासंभव घटता और बढ़ता अप्रशस्त और प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभागबंध अधिक-हीन क्रम से जैसा जहां पाया जाता है, वैसा वहां जानना । प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभागबंध अधिक होने से आत्मा का कुछ बुरा नहीं होता, क्योंकि संसार में रहना तो स्थितिबंध के अनुसार होता है । घातिकर्मों से आत्मा का बुरा होता है और घातिकर्म अप्रशस्त ही है; इसलिए दर्शन-चारित्र की लब्धि से प्रशस्त प्रकृतियों के अनुभाग की अधिकता, अप्रशस्त प्रकृतियों के अनुभाग की हीनता होती है । वहां कषायों का अभाव होनेपर अनुभागबंध का सर्वथा अभाव होता है । इसप्रकार बंध के अभाव से संवर होने का विधान जानना ।

अब सत्त्वनाश का क्रम कहते हैं । दर्शन-चारित्र लब्धि के निमित्त से पहले

मिथ्यात्वादि अति अप्रशस्त प्रकृतियों का, पश्चात् ज्ञानावरणादि अप्रशस्त प्रकृतियों का और प्रशस्त प्रकृतियों का सत्त्वनाश होता है । वह सत्त्वनाश स्वमुख उदय से और परमुख उदय से दो प्रकार होता है ।

वहां जो प्रकृति अपनेरूप ही रहकर अपने स्थितिसत्त्व के अंत निषेक का उदय होनेपर अभाव को प्राप्त होती है, उसका स्वमुख उदय से सत्त्वनाश कहते हैं । जैसे संज्वलन लोभ क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय के अंत में अपने रूप ही उदय होकर नाश को प्राप्त होता है ।

जो प्रकृति संक्रमण के वश से अन्य प्रकृतिरूप परिणमित होकर अपने अभाव को प्राप्त होती है उसका परमुख उदय से सत्त्वनाश कहते हैं । जैसे अनंतानुबंधी का विसंयोजन होनेपर अनंतानुबंधी कषाय अन्य कषायरूप परिणमित होकर नाश को प्राप्त होती है । ऐसे ही यथासंभव अन्यत्र जानना ।

पुनश्च सत्ता के एक-एक निषेक के परमाणु एक-एक समय में उदयरूप होकर निर्जरित होते हैं *(खिरते हैं)* । दर्शन-चारित्र की लब्धि के निमित्त से ऊपर के निषेक के परमाणु नीचे के निषेकरूप होकर परिणमते हैं । वहां एक-एक समय में साधिक समयप्रबद्ध की या अनेक समयप्रबद्धों की निर्जरा होती है और बंध समय-समय प्रति एक-एक समयप्रबद्ध का ही होता है । इसलिए वहां निर्जरा बहुत होती है और बंध अल्प होता है । अथवा किसी काल में किसी प्रकृति का बंध नहीं है, केवल निर्जरा ही होती है । इसतरह सर्व कर्म परमाणुओं का नाश होनेपर प्रदेशसत्त्व का सर्वथा नाश होता है ।

पुनश्च जो स्थितिसत्त्व पाया जाता है उससे एक-एक समय व्यतीत होनेपर तो एक-एक समय घटता ही है परंतु दर्शन-चारित्र लब्धि के निमित्त से स्थितिकांडक विधान से या अपकृष्टि विधान से स्थितिसत्त्व का घटना होता है । वहां प्रथम स्थितिकांडक विधान कहते हैं ।

अधिक प्रमाण युक्त स्थितिसत्त्व था, उसके समय-समय में उदय आने योग्य बहुत ही निषेक थे, उनमें से ऊपर के कितने ही निषेकों का नाश करके स्थितिसत्त्व घटाना *(स्थितिकांडकघात कहलाता है)* । वहां उन नाश करने योग्य निषेकों के सर्व परमाणुओं

को, नाश करने के पश्चात् जो अवशेष स्थिति रहेगी उसके आवली मात्र ऊपर के निषेक छोड़कर अन्य सर्व निषेकों में मिलाते हैं । वहां उन सर्व परमाणुओं में से कितने ही परमाणुओं को पहले समय में मिलाते हैं, कितने ही को दूसरे समय में मिलाते हैं, इसतरह यथासंभव अंतर्मुहूर्त काल तक परमाणुओं को नीचे के निषेकों में प्राप्त कराते हैं । वहां अंत समय में अवशेष रहे सर्व परमाणुओं को नीचे के निषेकों में प्राप्त करानेपर *(मिलानेपर)* उन नाश करने योग्य निषेकों का नाश हुआ । तब जितने निषेकों का नाश हुआ उतने समय प्रमाण स्थितिसत्त्व वहां हीन हुआ ।

यहां दृष्टांत – जैसे स्थितिसत्त्व अड़तालीस समय मात्र था उनके अड़तालीस ही निषेक थे और इन निषेकों के पच्चीस हजार परमाणु थे । उनमें *(ऊपर के)* आठ निषेकों का नाश करना है जिनमें एक हजार परमाणु हैं । उनको अवशेष रहे चालीस निषेकों में से ऊपर के दो निषेक छोड़कर नीचे के अड़तीस निषेकों में मिलाते हैं । वहां उन एक हजार परमाणुओं में से कितने ही परमाणु पहले समय में मिलाते हैं, कितने ही दूसरे समय में मिलाते हैं, इसतरह चार समय तक मिलाते हैं । वहां चौथे समय में अवशेष सर्व परमाणुओं को उन अड़तीस निषेकों में मिलानेपर उन आठ निषेकों का अभाव होता है । उनका अभाव होनेपर अड़तालीस समयों का स्थितिसत्त्व था, वह चालीस समय का ही रहता है । ऐसे ही यथासंभव प्रमाण जानकर दार्ष्टांत में विधान जानना ।

अब यहां संज्ञायें कहते हैं । इसतरह ऊपर के निषेकों को क्रम से नीचे के निषेकोंरूप परिणमाकर स्थिति का घटाना, उसका नाम स्थितिकांडक या स्थितिखंड है । एक कांडक में निषेकों का नाश करके जितनी स्थिति घटायी उसके प्रमाण का नाम स्थितिकांडक आयाम है; जैसे दृष्टांत में आठ समय । नाश करने योग्य निषेकों का जो सर्व द्रव्य, उसका नाम कांडकद्रव्य है; जैसे दृष्टांत में एक हजार । इस द्रव्य को अवशेष स्थिति के निषेकों में मिलाते समय आवली मात्र निषेकों में नहीं मिलाया, उसका नाम अतिस्थापनावली है; जैसे दृष्टांत में दो निषेक । इनको छोड़कर अवशेष स्थिति के निषेकों में उस कांडकद्रव्य को मिलाना, उसका नाम कांडकोत्करण या कांडकघात है । एक कांडक का उत्करण अंतर्मुहूर्त काल में पूर्ण होता है, उसे कांडकोत्करण काल कहते हैं, जैसे दृष्टांत में चार समय । इस काल के प्रथम समय

में उस कांडकद्रव्य का ग्रहण करके जितने परमाणु अवशेष निषेकों में मिलाते हैं, उसका नाम प्रथम फालि है; द्वितीय समय में मिलाते हैं, उसका नाम द्वितीय फालि है । इसी क्रम से अंत समय में मिलाते हैं, उसका नाम चरम फालि है । अंत समय के पूर्व समय में *(उपांत समय में)* मिलाते हैं, उसका नाम द्विचरम फालि है । इसतरह एक कांडक समाप्त होनेपर द्वितीय कांडक प्रारंभ होता है । ऐसे ही अनेक कांडक होनेपर अल्प स्थितिसत्त्व अवशेष रह जाता है, तब कांडक क्रिया नहीं होती; एक-एक समय व्यतीत होनेपर एक-एक समय क्रम से घटकर उस अवशेष स्थिति का नाश होता है । इसतरह कांडक विधान कहा ।

अब अपकृष्टि विधान कहते हैं –

विवक्षित कर्मप्रकृति के सर्व निषेकों संबंधी सर्व परमाणुओं को अपकर्षण भागहार का भाग देकर, एकभाग मात्र परमाणु ग्रहण किये, उसका नाम अपकृष्ट द्रव्य है । उस अपकृष्ट द्रव्य में से कितने ही परमाणु तो उदयावली में मिलाते हैं, कितने ही परमाणु गुणश्रेणी आयाम में मिलाते हैं, अवशेष परमाणु उपरितन स्थिति में मिलाते हैं । वहां वर्तमान समय से लेकर आवली मात्र समय संबंधी जो निषेक, उनका नाम उदयावली है । उनमें उदयावली में देने योग्य द्रव्य को निषेक-निषेक प्रति एक-एक चयहीन क्रम से मिलाते हैं । उन आवली मात्र निषेकों के ऊपरवर्ती यथासंभव अंतर्मुहूर्त के समय संबंधी निषेकों का नाम गुणश्रेणी आयाम है । उनमें गुणश्रेणी आयाम में देने योग्य द्रव्य को निषेक-निषेक प्रति असंख्यातगुणा क्रम से मिलाते हैं । उनके ऊपरवर्ती अवशेष सर्व स्थिति संबंधी निषेकों का नाम उपरितन स्थिति है । उनमें अंत के आवली मात्र निषेकों में तो द्रव्य नहीं मिलाया जाता, उसका नाम अतिस्थापनावली है । उसको छोड़कर अन्य निषेकों में उपरितन स्थिति में देने योग्य द्रव्य को नानागुणहानि रचना द्वारा निषेक-निषेक प्रति चयहीन क्रम से मिलाते हैं ।

यहां दृष्टांत – जैसे विवक्षित कर्म प्रकृति की स्थिति अड़तालीस समय, उसके निषेक अड़तालीस, उनके सर्व परमाणु पच्चीस हजार, उनको अपकर्षण भागहार पांच का भाग देनेपर पांच हजार आये । इसलिए सर्व परमाणुओं में से इतने परमाणु ग्रहण करके उनमें से दो सौ पचास परमाणु तो उदयावली में देते हैं; यहां अड़तालीस निषेकों में से पहले चार निषेक उदयावली के हैं, उनमें चयहीन क्रम से मिलाते हैं । एक

हजार परमाणु गुणश्रेणी आयाम में देते हैं; यहां पांचवें से लेकर बारहवें तक आठ निषेक गुणश्रेणी आयाम के हैं उनमें असंख्यातगुणा क्रम से मिलाते हैं । तीन हजार सात सौ पचास परमाणु उपरितन स्थिति में देते हैं; यहां छत्तीस निषेक अवशेष रहे, उनमें से अंत के चार निषेक अतिस्थापनारूप छोड़कर अवशेष तेरहवें से लेकर चौवालीस तक बत्तीस निषेकों में नानागुणहानि की रचना युक्त चयहीन क्रम से मिलाते हैं । इसीतरह दार्ष्टांत में यथासंभव प्रमाण जानकर स्वरूप जानना ।

चयहीन क्रम से और असंख्यातगुणा क्रम से मिलाने का विधान आगे कहेंगे । यहां यह उदयावली के बाह्य गुणश्रेणी आयाम का स्वरूप दिखाया । कहीं उदयादि गुणश्रेणी आयाम होता है । वहां अपकृष्ट द्रव्य में से कितने ही द्रव्य को तो गुणश्रेणी आयाम प्रमाण जो वर्तमान समय संबंधी निषेक से लेकर निषेक हैं, उनमें असंख्यातगुणा क्रम से मिलाते हैं । अवशेष को उपरितन स्थिति में मिलाते हैं । यहां गुणश्रेणी आयाम में उदयावली गर्भित हुयी; इसलिए इसे उदयादि गुणश्रेणी आयाम कहते हैं ।

गुणश्रेणी के निषेकों के प्रमाण मात्र जो यह गुणश्रेणी आयाम कहा, वह कहीं गलितावशेष होता है, कहीं अवस्थित होता है । वहां गलितावशेष गुणश्रेणी के प्रारंभ करने के प्रथम समय में गुणश्रेणी आयाम का जो प्रमाण था उससे एक-एक समय व्यतीत होनेपर द्वितीयादि समयों में गुणश्रेणी आयाम क्रम से एक-एक निषेक से हीन होकर जो अवशेष रहता है उसका नाम गलितावशेष है । परंतु अवस्थित गुणश्रेणी आयाम के प्रारंभ करने के प्रथम, द्वितीय आदि समयों में गुणश्रेणी आयाम जितने का उतना ही रहता है । ज्यों-ज्यों एक-एक समय व्यतीत होता है, त्यों-त्यों गुणश्रेणी आयाम के अनंतरवर्ती ऐसा उपरितन स्थिति का एक-एक निषेक गुणश्रेणी आयाम में मिलता है, वहां अवस्थित गुणश्रेणी आयाम कहते हैं । इस गुणश्रेणी आयाम के अंत निषेकों का नाम कहीं गुणश्रेणीशीर्ष कहा है; कहीं अंत के एक निषेक का ही नाम गुणश्रेणीशीर्ष है, क्योंकि शीर्ष नाम ऊपरवर्ती अंग का है । इसतरह विवक्षित स्थान में यथासंभव प्रमाण जानकर गुणश्रेणी निर्जरा का विधान जानना ।

यहां उदयावली में दिये हुये द्रव्य का नाम उदीरणा है । जहां अल्प स्थितिसत्त्व अवशेष रहता है वहां गुणश्रेणी का भी अभाव होता है । अपकृष्ट द्रव्य के कितने ही द्रव्य को उदयावली में देकर अवशेष द्रव्य को उपरितन स्थिति में देते हैं ।

एक समय अधिक आवली मात्र स्थिति अवशेष रहनेपर आवली के ऊपरवर्ती एक निषेक के द्रव्य को अपकर्षण करके उदयावली के निषेकों में एक समय कम आवली के दो त्रिभाग मात्र निषेकों को अतिस्थापनारूप से छोड़कर समय अधिक आवली के त्रिभाग मात्र निषेकों में मिलाते हैं । वहां जघन्य उदीरणा नाम पाता है । इसतरह अपकृष्टि विधान है ।

यहां ऐसा जानना –

कांडक विधान से तो स्थितिसत्त्व मूल से ही घटता है, क्योंकि वहां ऊपर के कितने ही निषेकों का नाश करके स्थिति घटाते हैं । परंतु अपकृष्टि विधान से ऊपर के निषेकों के कुछ परमाणुओं की ही स्थिति घटाते हैं, मूल से निषेकों का नाश नहीं होता; इसलिए मूल से स्थितिसत्त्व का घटना नहीं होता । स्थितिसत्त्व में आवली मात्र अवशेष रहनेपर उसका नाम उच्छिष्टावली है । वहां उदीरणा आदि कार्य नहीं होता । पहले कार्य हुये थे, उनके द्वारा एक-एक समय में उदय आने योग्य ऐसे अनेक समयप्रबद्ध मात्र परमाणुओं के समूहरूप निषेक हुये हैं, उनको क्रम से एक समय में निर्जरित करते हैं - गलाते हैं - इसका नाम अधोगलन है । इसतरह उच्छिष्टावली व्यतीत होनेपर स्थितिसत्त्व का सर्वथा नाश होता है । ऐसे मुख्यपने से संक्षिप्त स्वरूप दिखाया है । विशेष आगे कहेंगे ही ।

पुनश्च सत्तारूप विवक्षित कर्मप्रकृति के परमाणुओं में अनुभाग की हीनाधिकता से स्पर्धक रचना होती है उसका विधान पहले कहा है । वहां नीचे के स्पर्धक अल्प अनुभाग युक्त हैं, ऊपर के स्पर्धक बहुत अनुभाग युक्त हैं । वहां जो निषेक उदय में आता है, उसके अनुभाग का भी पूर्वोक्त प्रकार से उदय होता है । दर्शन-चारित्र लब्धि से अप्रशस्त प्रकृतियों के अनुभाग का घटाना होता है । वहां जैसे स्थिति घटाने में कांडक विधान कहा वैसे यहां भी विधान जानना । वह कहते हैं –

बहुत अनुभाग युक्त ऊपर के बहुत स्पर्धकों का अभाव करके उनके परमाणुओं को अल्प अनुभाग युक्त नीचे के स्पर्धकों में क्रम से मिलाकर अनुभाग घटाने का नाम अनुभागकांडक या अनुभागखंड है । उसको लांछित अर्थात् खंडन करना वह अनुभागकांडकोत्करण या अनुभागकांडकघात है । एक अनुभागकांडक का घात

अंतर्मुहूर्त काल में संपूर्ण होता है, उस काल का नाम अनुभागकांडकोत्करण काल है । उस काल में नाश करने योग्य स्पर्धकों के परमाणुओं को ग्रहण करके नाश करने के पश्चात् अवशेष रहे स्पर्धकों में ऊपर के कुछ स्पर्धक अतिस्थापनारूप छोड़कर अन्य सर्व स्पर्धकों में मिलाते हैं ।

यहां दृष्टांत – जैसे विवक्षित प्रकृति के पांच सौ स्पर्धक थे, उनको अनंत का प्रमाण पांच, उसका भाग देनेपर वहां बहुभाग प्रमाण चार सौ स्पर्धकों का नाश करना है । उनके परमाणुओं को अवशेष सौ स्पर्धक रहेंगे, उनमें से दस स्पर्धक अतिस्थापनारूप छोड़कर नब्बे स्पर्धकों में मिलाते हैं । ऐसे ही यथासंभव प्रमाण जानकर दार्ष्टांत में स्वरूप जानना । यहां एक अनुभागकांडक द्वारा जितना अनुभाग घटाया, उसका नाम अनुभागकांडक आयाम है । नाश करने योग्य स्पर्धकों के सर्व परमाणुओं में से ग्रहण करके अनुभागकांडक के प्रथम समय में जितने परमाणु अवशेष स्पर्धकों में मिलाये जाते हैं, उसका नाम प्रथम फालि है । द्वितीय समय में जो मिलाये जाते हैं, उसका नाम द्वितीय फालि है । ऐसा ही क्रम जानना ।

इसप्रकार एक कांडक समाप्त होनेपर अन्य कांडक का प्रारंभ होता है । ऐसे अनेक अनुभागकांडकों द्वारा अनुभाग घटाते हैं । जहां विशुद्धता बहुत होती है, वहां अंतर्मुहूर्त में होनेवाले कांडकघात का अभाव होता है और अनुसमयापवर्तन होता है । वहां समय-समय प्रति अनंतगुणा क्रम से अनुभाग घटाते हैं । पूर्व समय में जो अनुभाग था, उसको अनंत का भाग देकर बहुभाग का नाश करके एकभाग मात्र अनुभाग अवशेष रखते हैं । ऐसे समय-समय प्रति अनुभाग का घटाना हुआ; इसलिए इसका नाम अनुसमयापवर्तन है ।

संज्वलन कषाय में अनुभाग घटने के क्रम द्वारा अपूर्वस्पर्धक रचना और बादरकृष्टि रचना होती है । संज्वलन लोभ में सूक्ष्मकृष्टि रचना होती है, इनका विशेष व्याख्यान आगे होगा । सर्वत्र अल्प अनुभाग युक्त की तो नीचे रचना और बहुत अनुभाग युक्त की ऊपर रचना जानना । उनकी अपेक्षा स्पर्धकों और कृष्टियों में नीचे ऊपर कहते हैं । इसतरह क्रम से अप्रशस्त प्रकृतियों के अनुभागसत्त्व का नाश होता है । प्रकृतिसत्त्व का नाश होनेपर उनके अनुभागसत्त्व का सर्वथा नाश होता है । प्रशस्त प्रकृतियों का कांडकादि विधान से अनुभागसत्त्व का नाश करते हैं । प्रकृतिसत्त्व के नाश के साथ

उनके अनुभागसत्त्व का नाश जानना । इसप्रकार सत्त्वनाश के क्रम द्वारा निर्जरा होने का विधान जानना । संवर-निर्जरा के कारण सर्व कर्म का सर्वथा नाश होनेपर शुद्धात्म की व्यक्त अवस्थारूप मोक्ष होता है, यह दर्शन-चारित्र लब्धि का फल है । यहां किन्ही क्रियाओं का किंचित् स्वरूप दिखाया है; इनका भी तथा अन्य अनेक क्रियायें होती हैं, उनका विशेष व्याख्यान आगे ग्रंथ में होगा ही ।

अब यहां कुछ संज्ञा कही और आगे कुछ कहेंगे, उनका स्वरूप दिखाते हैं ।

कर्मप्रकृतियों के कथन में उनके परमाणुओं का नाम द्रव्य है । जैसे बंधरूप परमाणुओं का नाम बंधद्रव्य है; सत्त्वरूप परमाणुओं का नाम सत्त्वद्रव्य है; स्थितिकांडक के निषेकों के परमाणुओं का नाम कांडकद्रव्य है; वहां प्रथमादि फालियों के परमाणुओं का नाम प्रथमादि फालियों का द्रव्य है । ऊपर के और नीचे के निषेक छोड़कर बीच के कितने ही निषेकों का अभाव करनेरूप अंतरकरण होता है । वहां अभाव करनेरूप निषेकों के परमाणुओं का नाम अंतरकरणद्रव्य है । उदय आने के अयोग्य किये हुये परमाणुओं का नाम उपशमद्रव्य है । विवक्षित सत्तारूप निषेक था उसमें नवीन परमाणु मिलाये उनका नाम दीयमानद्रव्य है । पहले सत्तारूप थे और ये नये मिले इन सब परमाणुओं के समूह का नाम दृश्यमानद्रव्य है । ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

कांडक नाम पर्व का है । जैसे गन्ने में पर्व *(पेली)* होते हैं वैसे मर्यादारूप स्थान का नाम पर्व है । जैसे, स्थिति में घटने से मर्यादारूप स्थान हुआ, उसका नाम स्थितिकांडक है । अनुभाग में घटने से मर्यादारूप स्थान हुआ, उसका नाम अनुभागकांडक है । अनंतानुबंधी की स्थिति में चार स्थान कहे वहां चार पर्व कहे । अपकृष्टद्रव्य मिलाने के जहां तीन स्थान हैं वहां तीन पर्व कहे, ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

आयाम नाम लम्बाई का है । चूंकि काल के समय भी युगपत् नहीं होते इसलिए काल के प्रमाण में आयाम संज्ञा है । अथवा कहीं ऊपर-ऊपर *(ऊर्ध्व)* रचना होती है वहां उनके प्रमाण में भी आयाम संज्ञा है । जैसे स्थिति के प्रमाण का नाम स्थिति आयाम है । स्थितिकांडक के निषेकों के प्रमाण का नाम स्थितिकांडक आयाम है । अंतरकरण में जितने निषेकों का अभाव किया है उसका नाम अंतरायाम है । गुणश्रेणी के निषेकों के प्रमाण का नाम गुणश्रेणी आयाम है । ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

गुण नाम गुणकार का है । वहां गुणकार की पंक्ति युक्त जहां निषेकों में द्रव्य दिया जाता है, उसका नाम गुणश्रेणी है । प्रतिसमय गुणकार सहित विवक्षित प्रकृति के परमाणु अन्य प्रकृतिरूप संक्रमण करते हैं, उसका नाम गुणसंक्रमण है । गुणकार सहित हानि अर्थात् हीनता जहां होती है उसका नाम गुणहानि है । ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

कर्मस्थिति में निषेकों के प्रमाणरूप स्थिति कहते हैं । जैसे, विवक्षित निषेकों के ऊपरवर्ती निषेकों का नाम उपरितन स्थिति है । गुणश्रेणी के कथन में तो गुणश्रेणी आयाम से ऊपरवर्ती निषेकों का नाम उपरितन स्थिति है । केवल उदीरणा के कथन में उदयावली से ऊपरवर्ती निषेकों का नाम उपरितन स्थिति है । इत्यादि जानना ।

विवक्षित प्रमाण युक्त नीचे के निषेकों का नाम प्रथम स्थिति है । ऊपरवर्ती सर्व स्थिति के निषेकों का नाम द्वितीय स्थिति है । जैसे, अंतरायाम से नीचे के निषेकों का नाम प्रथम स्थिति और ऊपर के निषेकों का नाम द्वितीय स्थिति है । अथवा संज्वलन क्रोध की जितने प्रमाणयुक्त प्रथम स्थिति स्थापित की, उसके निषेकों का नाम प्रथम स्थिति है । अवशेष सर्व स्थिति के निषेकों का नाम द्वितीय स्थिति है । इत्यादि जानना ।

पुनश्च समुदायरूप एक क्रिया में जुदे-जुदे खंड करके विशेष करना, उसका नाम फालि है । जैसे कांडकद्रव्य का कांडकोत्करण काल में अन्यत्र प्राप्त करना; वहां प्रथम समय में प्राप्त किया वह कांडक की प्रथम फालि, द्वितीय समय में प्राप्त किया वह द्वितीय फालि इत्यादि । ऐसे ही उपशमन काल में पहले समय में जितना द्रव्य उपशमाया वह उपशम की प्रथम फालि, द्वितीय समय में उपशमाया वह उसकी द्वितीय फालि इत्यादि, ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

पुनश्च अन्य निषेकों के परमाणु अन्य निषेकों में मिलाते हैं, उसे मिलाना, देना या निक्षेपण करना कहते हैं । जिन निषेकों में देते हैं वे निषेक निक्षेपणरूप जानना और जिन निषेकों में नहीं मिलाते वे निषेक अतिस्थापनारूप जानना । द्वितीय स्थिति के निषेकों के द्रव्य को अपकर्षण करके प्रथम स्थिति के निषेकों में मिलाते हैं उसे आगाल कहते हैं । प्रथम स्थिति के निषेकों के द्रव्य को उत्कर्षण करके द्वितीय स्थिति के निषेकों में मिलाते हैं उसे प्रत्यागाल कहते हैं ।

विवक्षित के काल का जो प्रमाण है वही उसका काल है । जैसे, एक कांडक का घात करने का जो काल उसका नाम कांडकोत्करण काल है । वहां प्रथम समय में प्रथम फालि का पतन होता है अर्थात् नीचे के निषेकों में प्राप्त होना होता है । इसलिए उस प्रथम समय को प्रथम फालि का पतन काल कहते हैं । द्वितीय समय को द्वितीय फालि का पतन काल कहते हैं । इसीतरह अंत समय को चरम फालि का पतन काल कहते हैं । उसके पूर्व समय को द्विचरम फालि का पतन काल कहते हैं । जिस काल में अंतरकरण करते हैं उसका नाम अंतरकरण काल है । जिस काल में क्रोध का वेदन करते हैं अर्थात् उसके उदय को भोगते है, उसका नाम क्रोधवेदक काल है । ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

आवली मात्र काल का या उतने ही काल संबंधी निषेकों का नाम आवली है । वहां वर्तमान समय से लेकर आवली मात्र काल को आवली तथा उनके निषेकों को भी आवली या उदयावली कहते हैं । उसके ऊपरवर्ती आवली को द्वितीयावली या प्रत्यावली कहते हैं । बंध समय से लेकर आवली तक उदीरणा आदि क्रियायें नहीं हो सकती उसका नाम बंधावली, अचलावली या आबाधावली है । द्रव्य का निक्षेपण करते हुये जिन आवली मात्र निषेकों में नहीं निक्षेपण करते उसका नाम अतिस्थापनावली है । स्थितिसत्त्व घटते हुये आवली मात्र अवशेष रह जाये उसका नाम उच्छिष्टावली है । जिस आवली में संक्रमण पाया जाता है वह संक्रमणावली और उपशमन करना पाया जाता है वह उपशमावली है । इत्यादि ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

अंत नाम अंदर का है, उक्त प्रमाण से कुछ कम हो वहां अंत संज्ञा है । वहां कोडाकोडी के नीचे और कोडी के ऊपर उसको अंत:कोडाकोडी कहते हैं । मुहूर्त से कम और आवली से अधिक उसको अंतर्मुहूर्त कहते हैं । दिवस से कुछ कम उसको अंतर्दिवस कहते हैं । तीन के ऊपर, नौ के नीचे उसका नाम पृथक्त्व है अथवा कहीं बहुत हजारों का भी नाम पृथक्त्व है, वह यथासंभव जानना । कहीं दृष्टांत अपेक्षा संज्ञा होती है । जैसे गाय की पूंछ क्रम से घटती होती है, वैसे यहां एक-एक चय घटते क्रम से निषेक पाये जाते हैं वहां गोपुच्छ संज्ञा है । द्रव्य देने में जहां ऊंट की पीठ समान हीन अधिकपना होता है वहां उष्ट्रकूट संज्ञा है । जहां समान पट्टी के आकारवत् सर्वस्थानों में समान रचना होती है वहां समपट्टिका कहते हैं, इत्यादि जानना । इसप्रकार

जैसे व्याकरण में कितनी ही संज्ञा तो संज्ञासंधि में कही, कितनी ही संज्ञा जहां प्रयोजन हुआ वहां कही, वैसे इस ग्रंथ में कितनी ही संज्ञा तो यहां पीठबंध में कही हैं, कितनी ही संज्ञा आगे शास्त्र में जहां प्रयोजन होगा वहां कही जायेगी ।

यहां द्रव्य का विभाग करने के विधान को कारणभूत करणसूत्र कहते हैं । वहां नानागुणहानि में चय घटते क्रमरूप द्रव्य के विभाग का विधान कहते हैं ।

पहले (१) द्रव्य, (२) स्थिति, (३) गुणहानि, (४) नानागुणहानि, (५) दो गुणहानि, (६) अन्योन्याभ्यस्तराशि इनका स्वरूप और प्रमाण जानना । प्रथम संबंध में स्थितिरचना की अपेक्षा कहते हैं ।

विवक्षित समय में ग्रहण किये हुये जो समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणु वह द्रव्य है । उसका आबाधारहित स्थितिबंध के समयों का जो प्रमाण वह स्थिति है । वहां एक गुणहानि में निषेकों का प्रमाण वह गुणहानि आयाम है । स्थिति में गुणहानि का जो प्रमाण वह नानागुणहानि है । गुणहानि आयाम से दोगुणा प्रमाण वह दोगुणहानि है । नानागुणहानि मात्र दो अंक लिखकर परस्पर गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है वह अन्योन्याभ्यस्तराशि है ।

जैसे मिथ्यात्व का द्रव्य तो अपने समयप्रबद्ध मात्र है । स्थिति सात हजार वर्षों से हीन सत्तर कोडाकोडी सागर है । स्थिति को नानागुणहानि का भाग देनेपर जो प्रमाण होता है, उतना गुणहानि आयाम है । पल्य के अर्धच्छेदों में से पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेद घटानेपर जो होता है, उतनी नानागुणहानि होती है । गुणहानि आयाम से दोगुणा दोगुणहानि है । पल्य को पल्य की वर्गशलाका का भाग दें, इतनी अन्योन्याभ्यस्तराशि है । ऐसे ही अन्य प्रकृतियों में यथासंभव प्रमाण जानना ।

अब अनुभागरचना की अपेक्षा कहते हैं । विवक्षित कर्मप्रकृति के परमाणुओं का प्रमाण वह तो द्रव्य है । वहां सर्व वर्गणाओं का जो प्रमाण वह स्थिति है । एक गुणहानि में वर्गणाओं का प्रमाण, वह गुणहानि आयाम है । स्थिति में गुणहानियों का प्रमाण, वह नानागुणहानि है । दोगुणा गुणहानि मात्र दोगुणहानि है । नानागुणहानि मात्र दो के अंकों को परस्पर गुणा करनेपर जो होती है, वह अन्योन्याभ्यस्तराशि है । सर्व प्रकृतियों के अनुभागरचना में इन छहों का प्रमाण यथासंभव हीनाधिकपना सहित अनंतप्रमाण जानना ।

जहां कांडकादि द्रव्य को ग्रहण करके यथायोग्य निषेकों में निक्षेपण करना हो, वहां कहते हैं – जितना द्रव्य ग्रहण किया हो उसप्रमाण तो द्रव्य है । जितने निषेकों में देना हो, उनके प्रमाण मात्र स्थिति है । गुणहानि का प्रमाण बंध की स्थितिरचना में कहा उतना है । इसका भाग यहां पायी जानेवाली स्थिति को देनेपर नानागुणहानि का प्रमाण आता है । दोगुणा गुणहानि मात्र दोगुणहानि है । नानागुणहानि मात्र दो अंकों को परस्पर गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण आता है । यहां इन छहों का प्रमाण विवक्षित स्थान में जैसा हो वैसा जानना ।

अब यहां स्थितिरचना अपेक्षा निषेकों में द्रव्य का प्रमाण लाने का विधान कहते हैं । वहां प्रथम दृष्टांत – जैसे, द्रव्य तिरसठ सौ (६३००), स्थिति अड़तालीस (४८), गुणहानि आठ (८), नानागुणहानि छह (६), दोगुणहानि सोलह (१६), अन्योन्याभ्यस्तराशि चौंसठ (६४) स्थापित करके विधान कहते हैं – **'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा'** सर्वद्रव्य को साधिक डेढ़ गुणहानि का भाग देनेपर प्रथम निषेक होता है । जैसे तिरसठ सौ को साधिक बारह का भाग देनेपर पांच सौ बारह होते हैं । पुनश्च **'तं दोगुणहाणिणा भाजिदे पचयं'** अर्थात् उस प्रथम निषेक को दोगुणहानि का भाग देनेपर चय का प्रमाण आता है । जैसे पांच सौ बारह को सोलह का भाग देनेपर बत्तीस होते हैं, इसलिए द्वितीयादि निषेकों में एक-एक चय प्रमाण द्रव्य घटता हुआ *(हीन होता हुआ)* जानना । जैसे द्वितीय निषेक में चार सौ अस्सी, तृतीय में चार सौ अड़तालीस इत्यादि जानना ।

इसी क्रम से जिस निषेक में प्रथम निषेक से आधा प्रमाण होता है, वहां से लेकर दूसरी गुणहानि जानना । जैसे, दूसरी गुणहानि का प्रथम निषेक दो सौ छप्पन, वहां *(दूसरी गुणहानि में)* चय का प्रमाण प्रथम गुणहानि से आधा है; जैसे सोलह, यहां भी द्वितीयादि निषेकों में एक-एक चय घटता क्रम जानना । इसतरह प्रथम गुणहानि से द्वितीय गुणहानि में द्रव्य, चय, निषेकों का प्रमाण आधा हुआ । इसीप्रकार तृतीयादि गुणहानियों में पूर्व-पूर्व गुणहानि से द्रव्य, चय, निषेकों का प्रमाण क्रम से आधा-आधा जानना । इसलिए नानागुणहानि का जितना प्रमाण हो, उतनी गुणहानियों में ऐसी रचना करना । जैसे दृष्टांत में रचना ऐसी –

२८८	१४४	७२	३६	१८	९
३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
३५२	१७६	८८	४४	२२	११
३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६

पुनश्च अन्य प्रकार से विधान कहते हैं –

सर्वद्रव्य को एक कम अन्योन्याभ्यस्तराशि का भाग देनेपर अंत गुणहानि के द्रव्य का प्रमाण आता है । जैसे तिरसठ सौ को तिरसठ का भाग देनेपर सौ होते हैं । द्विचरम गुणहानि आदि में दोगुणा-दोगुणा होता हुआ, आधे अन्योन्याभ्यस्तराशि से अंत गुणहानि के द्रव्य को गुणा करनेपर प्रथम गुणहानि का द्रव्य होता है । जैसे सौ को बत्तीस से गुणा करनेपर बत्तीस सौ होते हैं । इसतरह गुणहानि के द्रव्य का प्रमाण लाया । अब गुणहानियों में निषेकों के द्रव्य का प्रमाण लाते हैं । वहां प्रथम गुणहानि का सर्वद्रव्य और निषेकों का प्रमाण जानना ।

जैसे, द्रव्य बत्तीस सौ (३२००), निषेक आठ; वहां **'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदि'** अध्वान अर्थात् निषेकों के प्रमाण मात्र गच्छ, उससे सर्वधन अर्थात् सर्वद्रव्य भाजित करनेपर बीच के निषेक के प्रमाण मात्र मध्यमधन आता है । जैसे, बत्तीस सौ को आठ का भाग देनेपर चार सौ होते हैं । पुनश्च **'तं रूऊणद्धाणूणेणणिसेयभागहारेण हदे पचयं'** उस मध्यमधन को एक कम गच्छ के आधे प्रमाण से हीन जो निषेकभागहार - दोगुणहानि, उसका भाग देनेपर चय का प्रमाण आता है । जैसे, सात का आधा साढ़े तीन, उससे हीन सोलह करनेपर साढ़े बारह हुये; उसका भाग चार सौ को देनेपर बत्तीस आये वह चय का प्रमाण है ।

पुनश्च **'तं दोगुणहाणिणा गुणिदे आदिणिसेयं'** अर्थात् उस चय को दोगुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम निषेक का प्रमाण आता है । जैसे बत्तीस को सोलह से गुणा

करनेपर पांच सौ बारह आते हैं । पुनश्च **'तत्तो विसेसहीणकमं'** अर्थात् उसके पश्चात् द्वितीयादि निषेकों में विशेष अर्थात् चय का प्रमाण, उससे हीनक्रम जानना । एक-एक चय मात्र घटते क्रम से जानना । वहां एक अधिक गुणहानि से चय को गुणा करनेपर अंत निषेक का प्रमाण आता है । जैसे नौ से बत्तीस को गुणा करनेपर दो सौ अट्ठासी होते हैं । इसीतरह द्वितीयादि गुणहानियों के द्रव्य को स्थापित करके वहां निषेकों के द्रव्य का प्रमाण लाना । द्वितीयादि गुणहानियों में पूर्व गुणहानि से द्रव्य, चय और निषेकों का प्रमाण क्रम से आधा-आधा जानना । इसतरह विधान कहा ।

अनुभागरचना में भी ऐसा ही विधान जानना । विशेष इतना है कि यहां द्रव्यादि का प्रमाण जैसा पाया जाता है वैसा जानना । वहां जैसे निषेकों में परमाणुओं का प्रमाण लाया, वैसे यहां वर्गणाओं में परमाणुओं का प्रमाण लाना । ऐसे ही देने योग्य द्रव्य में विधान जानना । विशेष इतना है कि यहां द्रव्यादिक का प्रमाण जैसे पाया जाता है वैसे जानना । पूर्वोक्त प्रकार से वहां निषेकों का प्रमाण लाकर प्रथमादि निषेकों का जो प्रमाण आता है उतना द्रव्य पहले जिनमें द्रव्य देना है ऐसे सत्ता के प्रथमादि निषेकों में इसको मिला देना ।

जहां द्रव्य को अल्प निषेकों में ही देना हो, वहां गुणहानि रचना तो संभव नहीं है, तो वहां द्रव्य कैसे देना ? वह कहते हैं – जैसे एक गुणहानि के निषेकों में द्रव्य का प्रमाण लाने का विधान कहा था, वैसे ही **'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदि'** इत्यादि विधान से वहां प्रथमादि निषेकों का प्रमाण लाना । विशेष इतना है कि यहां जितने निषेकों में द्रव्य देना हो उस प्रमाण गच्छ स्थापना और जितना द्रव्य वहां देने योग्य हो उस प्रमाण द्रव्य स्थापना । ऐसा करनेपर जो प्रथमादि निषेकों का प्रमाण आता है उतने द्रव्य को विवक्षित के पहले जो सत्तारूप निषेक पाये जाते हैं उनमें मिला देना । जहां उदयावली में द्रव्य देना हो अथवा अल्प स्थिति रह जानेपर उपरितन स्थिति में द्रव्य देना हो वहां तथा अन्यत्र ऐसा विधान जानना ।

गुणश्रेणी आयाम आदि में द्रव्य देना हो वहां विधान कहते हैं – **'प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिंड प्रेक्षपकाणां गुणको भवेदिति'** इस करणसूत्र अनुसार विधान जानना । वह कहते हैं – जैसे सीर के द्रव्य का नाम तो मिश्रपिंड है और उनके विसवा *(हिस्सों)* का नाम प्रक्षेप है । प्रक्षेपों का जोड़ देकर उसका भाग मिश्रपिंड

को देनेपर एकभाग का प्रमाण आता है वह प्रक्षेपक है, जो अपने-अपने हिस्से का गुणकार होता है । इनको परस्पर गुणा करके जो-जो प्रमाण आता है वह-वह अपने-अपने हिस्से के स्वामी जो सीरी *(भागीदार या भागधारक)* उनका द्रव्य जानना । यहां सीर का द्रव्य मिश्रपिंड सत्रह सौ (१७००), सीरीयों के विसवे एक का एक, दूसरे के चार, तीसरे के सोलह, चौथे के चौंसठ (१ | ४ | १६ | ६४) ये हुये प्रक्षेप । इनका जोड़ पचासी, उसका भाग मिश्रपिंड को देनेपर बीस आये; उससे अपने-अपने प्रक्षेपों अर्थात् विसवों को गुणा करनेपर पहले के बीस, दूसरे के अस्सी, तीसरे के तीन सौ बीस, चौथे के बारह सौ अस्सी द्रव्य आता है ।

इसीतरह गुणश्रेणी के आयाम में जितना द्रव्य देना हो, वह तो मिश्रपिंड जानना । वहां गुणश्रेणी आयाम के प्रथम समय की एक शलाका, द्वितीय समय की उससे असंख्यातगुणा शलाका, तृतीय समय की उससे असंख्यातगुणा शलाका, इसीप्रकार असंख्यातगुणा क्रम सहित उसके अंत समय तक की शलाका जानना । इनका नाम प्रक्षेप है । इनको जोड़नेपर जो प्रमाण आता है उसका भाग उस सर्वद्रव्य को देनेपर जो प्रमाण होता है *(प्रक्षेपक)* उसके द्वारा अपनी-अपनी शलाका के प्रमाण को गुणा करनेपर गुणश्रेणी आयाम के प्रथमादि समय संबंधी निषेकों में द्रव्य देने का प्रमाण आता है – इतना-इतना द्रव्य गुणश्रेणी आयाम के प्रथमादि निषेकों में मिलाते हैं ।

ऐसे ही गुणसंक्रमण में विधान जानना । यहां गुणसंक्रमण द्वारा अन्य प्रकृतिरूप परिणमाने योग्य जो सर्वद्रव्य वह मिश्रपिंड और गुणसंक्रमण काल के प्रथमादि समय संबंधी एक आदि क्रम से असंख्यातगुणी शलाका वह प्रक्षेप है । इनके जोड़ का भाग मिश्रपिंड को देकर लब्ध द्वारा अपनी-अपनी शलाका को गुणा करनेपर गुणसंक्रमण काल के प्रथमादि समयों में अन्य प्रकृतिरूप परिणमाने योग्य द्रव्य का प्रमाण आता है । इसीप्रकार अन्यत्र भी यथासंभव मिश्रपिंड और प्रक्षेपों का प्रमाण जानकर जैसे जहां पाया जाये वैसे वहां जानना । इसप्रकार द्रव्य देने आदि संबंधी विधान कहा ।

अब सत्ता में जो निषेक पाये जाते हैं उनके द्रव्य जानने का विधान कहते हैं – विवक्षित किसी एक समय में सत्तारूप कर्म परमाणुओं का जो द्रव्य है वहां स्थितिसत्त्व का प्रथम समय वर्तमान है । उसमें उदय आने योग्य जो द्रव्य, वह प्रथम निषेक का द्रव्य है । उसका प्रमाण तो संपूर्ण समयप्रबद्ध मात्र है । क्यों ? वह

कहते हैं – पहले जो समय-समय प्रति समयप्रबद्ध बांधे हैं, उनमें जिस समयप्रबद्ध का एक भी निषेक पहले गल नहीं गया हो, उसका तो प्रथम निषेक इस समय में उदय होने योग्य है । जिसका एक निषेक पहले गल गया है, उसका द्वितीय निषेक इस समय में उदय होने योग्य है । इसी क्रम से जिसके एक निषेक बिना अवशेष सर्व निषेक पहले गल गये हैं, उसका अंत निषेक इस समय में उदय होने योग्य है । इसतरह एक-एक समयप्रबद्ध का एक-एक निषेक मिलकर इस विवक्षित समय में उदय आने योग्य संपूर्ण समयप्रबद्ध मात्र द्रव्य हुआ, वह सत्ता का प्रथम निषेक है । जैसे एक समयप्रबद्ध का पांच सौ बारह, दूसरे का चार सौ अस्सी, इत्यादि निषेकों का द्रव्य मिलकर तिरसठ सौ होते हैं ।

पुनश्च स्थितिसत्त्व के दूसरे समय में उदय आने योग्य द्रव्य प्रथम निषेक से हीन समयप्रबद्ध मात्र है । कैसे ? वह कहते हैं – प्रथम समय में जिस समयप्रबद्ध का प्रथम निषेक गलता है, उसका तो दूसरा निषेक और जिसका दूसरा निषेक गलता है उसका तीसरा निषेक इत्यादि क्रम से दूसरे समय में जो निषेक उदय आने योग्य हैं वे सब मिलकर प्रथम निषेक से हीन समयप्रबद्ध मात्र होते हैं । यह सत्ता का द्वितीय निषेक है । यहां प्रथम निषेक मात्र चय घटता हुआ । जैसे, एक समयप्रबद्ध का चार सौ अस्सी, दूसरे का चार सौ अड़तालीस इत्यादि निषेकों का द्रव्य मिलकर सत्तावन सौ अट्ठासी होते हैं । यहां प्रथम समय में जिसका अंत निषेक गल गया उसका तो कोई निषेक रहा नहीं और जिसका प्रथम निषेक इस दूसरे समय में उदयरूप होगा ऐसा समयप्रबद्ध बढ़ेगा तब उसका सत्त्व होगा, नया इस समय में हैं नहीं; इसलिए सत्ता के द्वितीय निषेक का प्रमाण पूर्वोक्त जानना ।

पुनश्च स्थितिसत्त्व के तृतीय समय में उदय आने योग्य प्रथम, द्वितीय निषेक से हीन समयप्रबद्ध मात्र द्रव्य है । कैसे ? वह कहते हैं – द्वितीय समय में जिसका द्वितीय निषेक गल गया उसका तीसरा निषेक, जिसका तीसरा निषेक गल गया उसका चौथा निषेक इत्यादि क्रम से तीसरे समय में उदय आने योग्य है । सर्व मिलकर प्रथम और द्वितीय निषेक से हीन समयप्रबद्ध मात्र द्रव्य है । वह सत्ता का तृतीय निषेक है । यहां द्वितीय निषेक मात्र चय घट गया । जैसे, एक समयप्रबद्ध का चार सौ अड़तालीस, दूसरे का चार सौ सोलह इत्यादि मिलकर तिरपन सौ आठ होते हैं ।

यहां भी पूर्ववत् कारण जानना ।

इसी क्रम से स्थितिसत्त्व के अंत समय में उदय आने योग्य समयप्रबद्ध के अंत निषेक मात्र द्रव्य है । क्यों ? वह कहते हैं – इस वर्तमान समय में जो सत्त्वद्रव्य है, उसमें स्थितिसत्त्व के अंत समय में समयप्रबद्ध का एक अंत निषेक अवशेष रहेगा । अवशेष सर्व समयों में गलेंगे । जिनका आगामी काल में बंध होगा उन समयप्रबद्धों का उस समय में उदय आने योग्य निषेक होंगे, उनका अभी अस्तित्व नहीं है । इसलिए समयप्रबद्ध का एक अंत निषेक मात्र ही सत्ता का अंत निषेक जानना । जैसे, अंत निषेक के परमाणु नौ ।

इसप्रकार सत्ता के इन सर्व निषेकों को जोड़ देनेपर किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र प्रमाण होता है; वही सत्त्वद्रव्य जानना । जैसे तिरसठ सौ और सत्तावन सौ अट्ठासी इत्यादि एक-एक निषेक से हीन क्रम सहित सत्ता के निषेक लिखकर उनका जोड़ देनेपर गुणहानि आयाम आठ, उसका डेढ़गुणा बारह, उसमें से कुछ कम करके उससे समयप्रबद्ध का प्रमाण तिरसठ सौ को गुणा करनेपर इकहत्तर हजार तीन सौ चार होते हैं । यह कथन त्रिकोणयंत्र की रचना द्वारा गोम्मटसार में दिखाया है वह जानना । इसप्रकार स्थितिसत्त्व के निषेकों का द्रव्य स्वयंसिद्ध तो ऐसे क्रम युक्त जानना ।

पुनश्च यदि उत्कर्षण, अपकर्षण, गुणश्रेणी, संक्रमण आदि के कारण अन्य निषेकों का द्रव्य अन्य निषेकों में प्राप्त हुआ हो अथवा अन्य प्रकृति का द्रव्य अन्य प्रकृति में प्राप्त हुआ हो, तो वहां यथासंभव आयद्रव्य की अधिकता और व्ययद्रव्य की हीनता करनेपर जिस प्रमाण युक्त पाया जाये उस प्रमाण युक्त सत्ता के निषेकों की रचना जानना । लौकिक में जैसे जमाखर्च कहते हैं वैसे यहां विवक्षित में अन्य परमाणु आ मिले उसका नाम आयद्रव्य है, विवक्षित में से परमाणु निकल कर अन्यत्र प्राप्त हुये, उसका नाम व्ययद्रव्य है ।

विशेष इतना है कि जहां निषेकों का द्रव्य चयहीन क्रम से निकलता है, जैसे निषेकों के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर एक भाग ग्रहण किया; वहां पहले निषेकों का सत्त्व जैसे चयहीन क्रम से युक्त था वैसे ही चयहीन क्रम युक्त द्रव्य का ग्रहण हुआ । पुनश्च जहां निषेकों में चयहीन क्रम युक्त द्रव्य मिलाया; जैसे

उदयावली आदि के निषेक पहले से ही चयहीन क्रम युक्त थे, उनमें चयहीन क्रम से ही द्रव्य दिया । वहां तो आय और व्यय होते हुये भी यथासंभव चयहीन अनुक्रम रहता है । जहां निषेकों का द्रव्य हीनाधिक क्रम से ग्रहण करते हैं या कई निषेकों का द्रव्य ग्रहण करते हैं, कई निषेकों का नहीं ग्रहण करते । पुनश्च जहां हीनाधिक क्रम से या गुणकार क्रम से द्रव्य दिया हो, वहां यदि निकला हुआ या मिलाया हुआ द्रव्य अल्प हो और सत्त्वद्रव्य बहुत हो तो यथासंभव चयहीन क्रम रहता है तथा यदि निकला हुआ या मिलाया हुआ द्रव्य बहुत हो और सत्त्वद्रव्य अल्प हो तो वहां चयहीन क्रम नहीं रहता । इसतरह स्थितिसत्त्व में निषेकों का प्रमाण आता है ।

पुनश्च अनुभागसत्त्व में वर्गणाओं का प्रमाण पूर्वोक्त प्रकार से लाना और वर्गणाओं में से यथासंभव द्रव्य निकालें या मिलायें, वहां पूर्वोक्त प्रकार से चयहीन क्रम का रहना या न रहना जानना ।

अनिवृत्तिकरण में अपूर्वस्पर्धक और कृष्टियों का नवीन सत्त्व होता है । उसका विधान वहां अवसर आनेपर लिखेंगे, वह जानना ।

इसतरह सत्त्वद्रव्य में क्रम जानना ।

इसप्रकार यहां द्रव्य देने आदि में विधान कहा है । यहां जो यह कथन किया है उसको अच्छी तरह से याद रखना । यदि इस कथन का स्मरण होगा तो आगे ग्रंथ में अच्छी तरह से प्रवेश होगा और अर्थ को अच्छी तरह से *(स्पष्ट)* पहचानोगे । इसीलिए पहले यह कुछ कथन किया है । जिसका यहां व्याख्यान किया है, उसका प्रयोजन ग्रंथ में जहां आता है वहां कथन किया उसके अनुसार स्वरूप जानना । सर्व व्याख्यान तो आगे ग्रंथ में होगा ही । इसतरह पीठबंध किया ।

अब कर्तव्य का प्रारंभ करते हैं । आगे चामुंडराय नामक राजा के प्रश्न के कारण कषायप्राभृत जिसका द्वितीय नाम जयधवल है उसके पंद्रह अधिकार में से पश्चिम स्कंध नामक पंद्रहवें अधिकार के अर्थ को ग्रहण करके श्री नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती ने लब्धिसार नामक ग्रंथ की रचना की; उसके सूत्रों का संक्षेप मात्र अर्थ लिखते हैं । वहां प्रथम लब्धिसार टीका के अनुसार कितने ही सूत्रों का अर्थ लिखते हैं, टीका में विस्तार से व्याख्यान है । यहां ग्रंथ बढ़ने के भय से संकोचरूप व्याख्यान करते हैं ।

पहला अधिकार : प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्ररूपण

वहां प्रथम ही मंगल करते हैं –

चौपाई

श्री अरहंत सिद्धवर सूरि । उपाध्याय धारै गुणभूरि ।
साधु परम मंगल जग जेष्ठ । जय शरणागत कौं परमेष्ठ ।।१।।

अब मूल सूत्र –

सिद्धे जिणिंदचंदे आयरिय उवज्झाय साहुगणे ।
वंदिय सम्मद्दंसण-चरित्तलध्दिं परूवेमो ।।१।।

सिद्धान् जिनेंद्रचंद्रान् आचार्योपाध्यायसाधुगणान् ।
वंदित्वा सम्यग्दर्शनचारित्रलब्धिं प्ररूपयामः ।।१।।

टीका – जिनेन्द्र जो अरहंत वे ही हुये सकल लोक के प्रकाशने से वा आल्हाद करने से चन्द्रमा उनको और कृतकृत्य हुये सिद्ध भगवान को और पंचाचार के प्रवर्तक आचार्य को और अध्ययन करने कराने में अधिकारी उपाध्याय को और मोक्षमार्ग के साधक साधुसमूह को वंदन करके मैं जिसमें सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र की लब्धि अर्थात् प्राप्ति का प्रतिपादन किया है ऐसे लब्धिसार नामक शास्त्र का प्ररूपण करता हूँ – ऐसी आचार्य प्रतिज्ञा करते हैं ।

वहां प्रथम ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व का विधान कहते हैं –

चदुगदिमिच्छो सण्णी पुण्णो गब्भज विसुद्ध सागारो ।
पढमुवसमं स गिण्हदि पंचमवरलद्धिचरिमम्हि ।।२।।

चतुर्गतिमिथ्यः संज्ञी पूर्णः गर्भजो विशुद्धः साकारः ।
प्रथमोपशमं स गृण्हाति पंचमवरलब्धिचरमे ।।२।।

टीका – चारों गतिवाला, अनादि या सादि मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, पर्याप्त, गर्भज, मंद कषायरूप विशुद्धता का धारक, गुणदोष के विचाररूप साकार ज्ञानोपयोग से

संयुक्त जीव पांचवीं करणलब्धि में से उत्कृष्ट ऐसे अनिवृत्तिकरण के अंत समय में प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करता है ।

यहां ऐसा जानना –

मिथ्यात्व गुणस्थान से छूटकर जो उपशम सम्यक्त्व होता है उसका नाम प्रथमोपशम सम्यक्त्व है । तथा उपशमश्रेणी चढ़ने के लिये क्षयोपशम सम्यक्त्व से जो उपशम सम्यक्त्व होता है उसका नाम द्वितीयोपशम सम्यक्त्व है । इसलिए यहां मिथ्यादृष्टि का ग्रहण किया है ।

यह प्रथमोपशम सम्यक्त्व तिर्यंचगति में असंज्ञी जीव हैं *(एकेन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक)* उनके नहीं होता और मनुष्य, तिर्यंचगति में लब्धिअपर्याप्त और सम्मूर्च्छन हैं उनके नहीं होता *(गर्भजों में ही होता है । संज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छन तिर्यंचों में क्षयोपशम सम्यक्त्व हो सकता है परंतु प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं हो सकता)* । पुनश्च चारों गतियों में संक्लेशता से युक्त जीव के नहीं होता । अनाकार दर्शनोपयोग के धारी जीव के नहीं होता, क्योंकि वहां तत्त्वविचार संभव नहीं है । वहां तीन निद्रा *(स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला)* के उदय का अभाव कहेंगे इसलिए सोते हुये जीव के नहीं होता *(जाग्रत अवस्था में ही होता है)* । भव्य के ही सम्यक्त्व होता है, इसलिए अभव्य के नहीं होता । ये भी विशेषण यहां पाये जाते हैं ।

आगे प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने से पहले मिथ्यात्व गुणस्थान में पांच लब्धि होती हैं, उनका व्याख्यान कहते हैं –

खयउवसमियविसोही देसणपाउग्गकरणलद्धी य ।
चत्तारि वि सामण्णा करणं सम्मत्तचारित्ते ।।३।।

क्षयोपशमविशुद्धी देशनाप्रायोग्यकरणलब्धयश्च ।
चतस्रोपि सामान्यात् करणं सम्यक्त्वचारित्रे ।।३।।

टीका – क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्यता, करण ये पांच लब्धि हैं । वहां आदि की चार तो साधारण हैं । भव्य के और अभव्य के भी होती हैं । परंतु करणलब्धि भव्य ही के सम्यक्त्व और चारित्र के साध्यभूत होते हुये ही होती है ।

कम्ममलपडसत्ती पडिसमयमणंतगुणविहीणकमा ।
होदूणुदीरदि जदा तदा खओवसमलद्धी दु ।।४।।

कर्ममलपटलशक्तिः प्रतिसमयमनंतगुणविहीनक्रमा ।
भूत्वा उदीर्यते यदा तदा क्षयोपशमलब्धिस्तु ।।४।।

टीका – कर्मों में मलरूप जो अप्रशस्त ज्ञानावरणादि का पटल अर्थात् समूह उसकी शक्ति अर्थात् अनुभाग, वह जिस काल में समय-समय प्रति अनंतगुणा घटता अनुक्रमरूप होकर उदय में आता है उस काल में क्षयोपशमलब्धि होती है । क्योंकि उत्कृष्ट अनुभाग का अनंतवां भाग मात्र जो देशघाति स्पर्धक उनके उदय होनेपर भी उत्कृष्ट अनुभाग का अनंत बहुभाग मात्र जो सर्वघाति स्पर्धक, उनके उदय का अभाव वह तो क्षय और वे ही सर्वघाति स्पर्धक जो उदय अवस्था को प्राप्त न हुये हैं उनकी सत्ता अवस्था वह है उपशम; उनकी प्राप्ति वह क्षयोपशमलब्धि जानना ।

आदिमलद्धिभवो जो भावो जीवस्स सादपहुदीणं ।
सत्थाणं पयडीणं बंधणजोगो विसुद्धलद्धी सो ।।५।।

आदिमलब्धिभवो यः भावो जीवस्य सातप्रभृतीनाम् ।
शस्तानां प्रकृतीनां बंधनयोग्यो विशुद्धिलब्धिः सः ।।५।।

टीका – पहली जो क्षयोपशमलब्धि उससे उत्पन्न जो जीव के साता आदि प्रशस्त प्रकृतियों के बंध के कारणभूत धर्मानुरागरूप शुभ परिणाम होते हैं, उसकी प्राप्ति; वह विशुद्धिलब्धि है । अशुभ कर्म का अनुभाग घटनेपर संक्लेशता की हानि और उसके प्रतिपक्षी विशुद्धता की वृद्धि होना युक्त ही है ।

आगे देशनालब्धि का स्वरूप कहते हैं –

छद्दव्वणवपयत्थोपदेसयरसूरिपहुदिलाहो जो ।
देसिदपदत्थधारणलाहो वा तदियलद्धी दु ।।६।।

षड्द्रव्यनवपदार्थोपदेशकरसूरिप्रभृतिलाभो यः ।
देशितपदार्थधारणलाभो वा तृतीयलब्धिस्तु ।।६।।

टीका – छह द्रव्य, नौ पदार्थ का उपदेश करनेवाले आचार्यादि का लाभ, उनके उपदेश की प्राप्ति अथवा उपदेशित पदार्थ के धारण करने की *(समझकर याद रखने की)* प्राप्ति, वह तीसरी देशनालब्धि है । तु शब्द से नारकादि में जहां उपदेश देनेवाला नहीं है वहां पूर्व भव में धारणा में लिये हुये तत्त्वार्थ के संस्कार के बल से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति जानना ।

अंतोकोडाकोडी बिट्ठाणे ठिदिरसाण जं करणं ।
पाउग्गलद्धिणामा भव्वाभव्वेसु सामण्णा ।।७।।

अंत:कोटाकोटि द्विस्थाने स्थितिरसयो: यत्करणम् ।
प्रायोग्यलब्धिर्नामा भव्याभव्येषु सामान्यात् ।।७।।

टीका – पूर्वोक्त तीन लब्धि संयुक्त जीव प्रतिसमय विशुद्धता से वर्धमान होता हुआ आयु बिना सात कर्मों की अंत:कोडाकोडी मात्र स्थिति अवशेष रखता है । उस काल में पहले जो स्थिति थी, उसको एक कांडकघात द्वारा छेदकर उस कांडक के द्रव्य को अवशेष रही स्थिति में निक्षेपण करता है । घातिकर्मों का लता, दारुरूप और अघातिकर्मों का निंब, कांजीररूप द्विस्थानगत अनुभाग यहां अवशेष रहा है । पहले जो अनुभाग था, उसमें अनंत का भाग देकर बहुभाग मात्र अनुभाग को छेदकर अवशेष रहे हुये अनुभाग में प्राप्त करता है । उस कार्य करने की योग्यता की प्राप्ति, वह प्रायोग्यतालब्धि है । वह भव्य के और अभव्य के भी समान होती है ।

जेट्ठवरट्ठिदिबंधे जेट्ठवरट्ठिदितियाण सत्ते य ।
ण य पडिवज्जदि पढमुवसमसम्मं मिच्छजीवो हु ।।८।।

ज्येष्ठावरस्थितिबंधे जेष्ठावरस्थितित्रिकाणां सत्त्वे च ।
न च प्रतिपद्यते प्रथमोपशमसम्यक्त्वं मिथ्यजीवो हि ।।८।।

टीका – संक्लेशी संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के पाये जानेवाला ऐसा उत्कृष्ट स्थितिबंध और उत्कृष्ट स्थिति, अनुभाग, प्रदेश का सत्त्व तथा विशुद्ध क्षपक श्रेणीवाले के पाया जाता है ऐसा जघन्य स्थितिबंध और जघन्य स्थिति, अनुभाग, प्रदेश का सत्त्व

इनके होते हुये जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण नहीं करता ।

सम्मत्तहिमुहमिच्छो विसोहिवड्ढीहि वड्ढमाणो हु ।
अंतोकोडाकोडिं सत्तण्हं बंधणं कुणई ।।९।।

सम्यक्त्वाभिमुखमिथ्य: विशुद्धिवृद्धिभि: वर्धमान: खलु ।
अंत:कोटाकोटिं सप्तानां बंधनं करोति ।।९।।

टीका – प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख हुआ मिथ्यादृष्टि जीव विशुद्धता की वृद्धि से वर्धमान होता हुआ प्रायोग्यलब्धि के प्रथम समय से लेकर पूर्व स्थितिबंध के संख्यातवें भाग मात्र अंत:कोडाकोडी सागर प्रमाण आयु बिना सात कर्मों का स्थितिबंध करता है ।

तत्तो उदय सदस्स य पुधत्तमेत्तं पुणो पुणोदरिय ।
बंधम्मि पयडि बंधुच्छेदपदा होंति चोत्तिसा ।।१०।।

तत: उदये शतस्य च पृथक्त्वमात्रं पुन: पुनरुदीर्य ।
बंधे प्रकृतिबंधोच्छेदपदानि भवंति चतुश्चत्वारिंशत् ।।१०।।

टीका – उस अंत:कोडाकोडी सागर स्थितिबंध से पल्य के संख्यातवें भाग मात्र हीन स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त तक समान प्रमाण युक्त करता है । पुनश्च उससे पल्य का संख्यातवां भाग मात्र हीन स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त तक करता है । इसतरह क्रम से संख्यात स्थितिबंधापसरणों द्वारा पृथक्त्व सौ सागर *(स्थितिबंध)* घटनेपर पहला प्रकृतिबंधापसरण स्थान होता है । उसी क्रम से उससे भी पृथक्त्व सौ सागर घटनेपर दूसरा प्रकृतिबंधापसरण स्थान होता है । इसतरह इसी क्रम से इतना-इतना स्थितिबंध घटनेपर *(प्रकृतिबंधापसरण का)* एक-एक स्थान होता है । ऐसे प्रकृतिबंधापसरण के चौंतीस स्थान होते हैं । यहां पृथक्त्व नाम सात या आठ का है, इसलिए यहां पृथक्त्व सौ सागर कहने से सात सौ सागर वा आठ सौ सागर जानना ।

अब चौंतीस स्थानों में क्रम से कौनसी प्रकृतियों का *(बंध)* व्युच्छेद होता है, वह कहते हैं –

आऊ पडि णिरयदुगे सुहुमतिये सुहुमदोणि पत्तेयं ।
बादरजुत दोण्णि पदे अपुण्णजुद बितिचसण्णिसण्णीसु ।।११।।

आयुः प्रति निरयाद्विकं सूक्ष्मत्रयं सूक्ष्मद्वयं प्रत्येकं ।
बादरयुतं द्वे पदे अपूर्णयुतं द्वित्रिचतुरसंज्ञिसंज्ञिषु ।।११।।

टीका – पहला नरकायु का व्युच्छित्ति स्थान है । यहां से लेकर उपशम सम्यक्त्व तक नरकायु का बंध नहीं होता, ऐसे ही आगे जानना । दूसरा तिर्यंचायु का है । तीसरा मनुष्यायु का है । चौथा देवायु का है । यहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व में आयुबंध का अभाव है । इसलिए सर्व आयुबंध की व्युच्छित्ति कही है । पांचवां नरकगति, नारकानुपूर्वी का है । छठवां संयोगरूप सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण इनका है ।

यहां संयोगरूप कहने से तीनों का मिलाप युक्त तो यहां तक ही बंध है, परंतु इन तीनों में से कोई प्रकृति बदलने से यथासंभव इन प्रकृतियों में से किसी प्रकृति का बंध आगे भी होता है, यह संयोगरूप कहने का अभिप्राय जानना । आगे भी संयोगरूप कहने का इसीप्रकार अर्थ समझना ।

पुनश्च सातवां संयोगरूप सूक्ष्म, अपर्याप्त, प्रत्येक का है । आठवां संयोगरूप बादर, अपर्याप्त, साधारण का है । नौवां संयोगरूप बादर, अपर्याप्त, प्रत्येक का है । दसवां संयोगरूप द्वीन्द्रियजाति, अपर्याप्त का है । ग्यारहवां संयोगरूप त्रीन्द्रिय, अपर्याप्त का है । बारहवां संयोगरूप चतुरिन्द्रिय, अपर्याप्त का है । तेरहवां संयोगरूप असंज्ञी पंचेन्द्रिय, अपर्याप्त का है । चौदहवां संयोगरूप संज्ञी पंचेन्द्रिय, अपर्याप्त का है ।

अट्ठ अपुण्णपदेसु वि पुण्णेण जुदेसु तेसु तुरियपदे ।
एइंदिय आदावं थावरणामं च मिलिदव्वं ।।१२।।

अष्टौ अपूर्णपदेष्वपि पूर्णेन युतेषु तेषु तुर्यपदे ।
एकेंद्रियमातपः स्थावरनाम च मेलयितव्यम् ।।१२।।

टीका – पंद्रहवां संयोगरूप सूक्ष्म, पर्याप्त, साधारण का है । सोलहवां संयोगरूप सूक्ष्म, पर्याप्त, प्रत्येक का है । सत्रहवां संयोगरूप बादर, पर्याप्त, साधारण का है ।

अठारहवां संयोगरूप बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, एकेन्द्रिय, आतप, स्थावर का है । उन्नीसवां संयोगरूप द्वीन्द्रिय, पर्याप्त का है । बीसवां संयोगरूप त्रीन्द्रिय, पर्याप्त का है । इक्कीसवां चतुरिन्द्रिय, पर्याप्त का है । बाइसवां असंज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त का है ।

तिरिगदुगुज्जोवो विय णीचे अपसत्थगमण दुभगतिए ।
हुंडासंपत्ते वि य णउंसए वामखीलीए ।।१३।।

तिर्यग्द्विकोद्योतोऽपि च नीचै: अप्रशस्तगमनं दुर्भगत्रिकं ।
हुंडासंप्राप्तेऽपि च नपुंसकं वामनकीलिते ।।१३।।

टीका – तेइसवां संयोगरूप तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, उद्योत का है । चौबीसवां नीचगोत्र का है । पच्चीसवां संयोगरूप अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय का है । छब्बीसवां हुंडकसंस्थान, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन का है । सत्ताइसवां नपुंसकवेद का है । अट्ठाइसवां वामन संस्थान, कीलित संहनन का है ।

खुज्जद्धं णाराए इत्थीवेदे य सादिणाराए ।
णग्गोधवज्जणाराए मणुओरालदुगवज्जे ।।१४।।

कुब्जार्धनाराचं स्त्रीवेदं च स्वातिनाराचे ।
न्यग्रोधवज्रनाराचे मनुष्यौदारिकद्विकवज्रे ।।१४।।

टीका – उनतीसवां कुब्जक संस्थान, अर्धनाराच संहनन का है । तीसवां स्त्रीवेद का है । इकतीसवां स्वाति संस्थान, नाराच संहनन का है । बत्तीसवां न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान, वज्रनाराच संहनन का है । तैंतीसवां संयोगरूप मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, औदारिक-औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभनाराच संहनन का है ।

अथिरअसुभजस अरदी सोयअसादे य होंति चोतीसा ।
बंधोसरणट्ठाणा भव्वाभव्वेसु सामण्णा ।।१५।।

अस्थिरअशुभायश: अरति: शोकासाते च भवंति चतुस्त्रिंशत् ।
बंधापसरणस्थानानि भव्याभव्येषु सामान्यानि ।।१५।।

टीका – चौतीसवां संयोगरूप अस्थिर, अशुभ, अयशस्कीर्ति, अरति, शोक, असातावेदनीय इनका बंधव्युच्छित्ति स्थान है । ऐसे ये कहे हुये चौंतीस स्थान भव्य और अभव्य के समान होते हैं ।

णरतिरियाणं ओघो भवणतिसोहम्मजुगलए बिदियं ।
तदियं अट्ठारसमं तेवीसदिमादि दसपदं चरिमं ।।१६।।

नरतिरश्चामोघः भवनत्रिसौधर्मयुगलके द्वितीयं ।
तृतीयं अष्टादशमं त्रयोविंशत्यादिदशपदं चरमम् ।।१६।।

टीका – मनुष्य, तिर्यंच के तो सामान्योक्त चौतीसों स्थान पाये जाते हैं । उनके बंध योग्य एक सौ सत्रह प्रकृतियों में से चौंतीस स्थानों द्वारा छियालीस प्रकृतियों की *(बंध)* व्युच्छित्ति होती है । वहां आदि के छह स्थानों में नौ; अठारहवें स्थान में एकेन्द्रियादि तीन; उन्नीसवें आदि बीच के स्थानों में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तीन और तेइसवां आदि बारह स्थानों में इकतीस ऐसे छियालीस की व्युच्छित्ति होती है । अवशेष इकहत्तर को बांधते हैं ।

भवनत्रिक और सौधर्म युगल में दूसरा, तीसरा, अठारहवां, तेइसवां से लेकर दस और अंत का चौंतीसवां ये चौदह स्थान ही पाये जाते हैं । वहां इकतीस प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है । बंध योग्य एक सौ तीन प्रकृतियों में से बहत्तर प्रकृतियों का बंध अवशेष रहता है ।

ते चेव चोदसपदा अट्ठारसमेण हीणया होंति ।
रयणादिपुढविछक्के सणक्कुमारादिदसकप्पे ।।१७।।

तानि चैव चतुर्दश पदानि अष्टादशेन हीनानि भवंति ।
रत्नादिपृथ्वीषट्के सनत्कुमारादिदशकल्पे ।।१७।।

टीका – रत्नप्रभा आदि छह नरक पृथ्वियों में और सनत्कुमारादि दस स्वर्गों में पूर्वोक्त चौदह स्थान अठारहवें के बिना पाये जाते हैं । *(इन पर्यायों में इन एकेन्द्रियादि प्रकृतियों का बंध ही नहीं होता, इसलिए उनकी बंधव्युच्छित्ति होने का सवाल ही नहीं*

हैं ।) इन तेरह स्थानों द्वारा अट्ठाइस प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है । वहां बंध योग्य सौ प्रकृतियों में से बहत्तर प्रकृतियों का बंध अवशेष रहता है ।

ते तेरस बिदिएण य तेवीसदिमेण चावि परिहीणा ।
आणदकप्पादुवरिमगेवेज्जंतो त्ति ओसरणा ।।१८।।

तानि त्रयोदश द्वितीयेन च त्रयोविंशतिकेन चापि परिहीनानि ।
आनतकल्पाद्युपरिमग्रैवेयकांतमित्यपसरणाः ।।१८।।

टीका – आनत स्वर्ग से उपरिम *(अंतिम)* ग्रैवेयक तक में तेरह स्थान दूसरे और तेइसवें बिना पाये जाते हैं । उन ग्यारह स्थानों द्वारा चौबीस को घटाकर बंधयोग्य छानबे प्रकृतियों में से बहत्तर प्रकृतियों का बंध करते हैं ।

ते चेवेक्कारपदा तदिऊणा बिदियठाणसंजुत्ता ।
चउवीसदिमेणूणा सत्तमिपुढविम्हि ओसरणा ।।१९।।

तानि चैवैकादशपदानि तृतीयोनानि द्वितीय स्थान संयुक्तानि ।
चतुर्विंशतिकेनोनानि सप्तमीपृथिव्यामपसरणानि ।।१९।।

टीका – सातवीं नरक पृथ्वी में ये ग्यारह स्थान तीसरे से रहित, दूसरे सहित, चौबीसवें से रहित पाये जाते हैं । वहां उन दस स्थानों द्वारा तेइस या उद्योत सहित चौबीस घटाकर बंधयोग्य छानबे प्रकृतियों में से तिहत्तर या बहत्तर बांधते हैं; क्योंकि उद्योत का बंध या अबंध दोनों पाये जाते हैं ।

घादिति सादं मिच्छं कसायपुंहस्सरदि भयस्स दुगं ।
अपमत्तडवीसुच्चं बंधंति विसुद्धणरतिरिया ।।२०।।

घातित्रयं सातं मिथ्यं कषायपुं हास्यरतयः भयस्य द्विकम् ।
अप्रमत्ताष्टविंशोच्चं बध्नन्ति विशुद्धनरतिर्यंचः ।।२०।।

टीका – इसतरह व्युच्छित्ति होनेपर प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यंच हैं वे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय की उन्नीस *(१९ = ५ + ९*

+ ५), सातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलहकषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, अप्रमत्त की अट्ठाइस *(नामकर्म की)* और उच्चगोत्र ऐसी इकहत्तर प्रकृतियां बांधता है ।

देवतसवण्णअगरुचउक्कं समचउरतेजकम्मइयं ।
सग्गमणं पंचिंदी थिरादिछण्णिमिणमडवीसं ।।२१।।

देवत्रसवर्णागुरुचतुष्कं समचतुरस्रतेजः कार्मणकम् ।
सद्गमनं पंचेंद्रियस्थिरादिषण्णिर्माणमष्टाविंशम् ।।२१।।

टीका – देवचतुष्क (४), त्रसचतुष्क (४), वर्णचतुष्क (४), अगुरुलघुचतुष्क (४), समचतुरस्र संस्थान, कार्माणशरीर, तेजसशरीर, शुभ विहायोगति, पंचेन्द्रिय, स्थिर आदि छह और निर्माण ये अट्ठाइस प्रकृतियां अप्रमत्त संबंधी जानना ।

तं सुरचउक्कहीणं णरचउवज्जजुदं पयडिपरिमाणं।
सुरछप्पुडवीमिच्छा सिद्धोसरणा हु बंधंति ।।२२।।

तत् सुरचतुष्कहीनं नरचतुर्वज्रयुतं प्रकृतिपरिमाणं ।
सुरषट्पृथिवीमिथ्याः सिद्धापसरणा हि बध्नंति ।।२२।।

टीका – इन इकहत्तर में से देवचतुष्क घटाकर मनुष्यचतुष्क, वज्रवृषभनाराच मिलानेपर बहत्तर प्रकृतियों को सिद्ध हुये हैं बंधापसरण जिनके ऐसे मिथ्यादृष्टि देव और छह पृथ्वियों के नारकी बांधते हैं । यहां देवचतुष्क में देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक, वैक्रियिक अंगोपांग जानना और मनुष्यचतुष्क में मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिक, औदारिक अंगोपांग जानना ।

तं णरदुगुच्चहीणं तिरियदु णीचजुदं पयडिपरिमाणं ।
उज्जोवेण जुदं वा सत्तमखिदिगा हु बंधंति ।।२३।।

तत् नरद्विकोच्चहीनं तिर्यग्द्विकं नीचयुतं प्रकृतिपरिमाणं ।
उद्योतेन युतं वा सप्तमक्षितिगा हि बध्नंति ।।२३।।

टीका – उन बहत्तर प्रकृतियों में से मनुष्यद्विक, उच्चगोत्र बिना और तिर्यंचद्विक,

नीचगोत्र सहित बहत्तर अथवा उद्योत सहित तिहत्तर प्रकृतियों को सातवीं पृथ्वीवाले नारकी बांधते हैं ।

इसतरह प्रकृति बंध-अबंध का विभाग कहा ।

अंतोकोडाकोडीठिदिं असत्थाण सत्थगाणं च ।
बिचउट्ठाणरसं च य बंधाणं बंधणं कुणइ ।।२४।।

अंत:कोटाकोटिस्थितिं अशस्तानां शस्तकानां च ।
द्विचतु:स्थानरसं च च बंधानां बंधनं करोति ।।२४।।

टीका – प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख चारों गतिवाले मिथ्यादृष्टि जीव बध्यमान प्रकृतियों के चौंतीस बंधापसरण स्थानों में एक-एक स्थान प्रति पृथक्त्व सौ सागर घटते हुये क्रम से अंत:कोडाकोडी सागर प्रमाण स्थिति बांधते हैं । अनुभाग अप्रशस्त प्रकृतियों का तो दो स्थान को प्राप्त *(लता, दारुभागरूप)* प्रतिसमय अनंतगुणा घटता बांधते हैं; प्रशस्त प्रकृतियों का चार स्थानों को प्राप्त *(गुड, खांड, शर्करा, अमृत)* प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ता बांधते हैं ।

मिच्छणथीणति सुरचउ समवज्जपसत्थगमणसुभगतियं ।
णीचुक्कस्सपदेसमणुक्कस्सं वा पबंधदि हु ।।२५।।

मिथ्यानस्त्यानत्रिकं सुरचतु:समवज्रप्रशस्तगमनसुभगत्रिकं ।
नीचोत्कृष्ट प्रदेशमनुत्कृष्टं वा प्रबध्नाति हि ।।२५।।

टीका – ये जीव मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी चतुष्क (४), स्त्यानगृद्धित्रिक (३), देवचतुष्क (४), समचतुरस्र संस्थान, वज्रवृषभनाराच संहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभगादि तीन (३), नीचगोत्र इन उन्नीस प्रकृतियों का उत्कृष्ट वा अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध करते हैं ।

एदेहिं विहीणाणं तिण्णि महादंडएसु उत्ताणं ।
एकट्ठिपमाणाणमणुक्कस्सपदेसबंधणं कुणइ ।।२६।।

एतैर्विहीनानां त्रिषुमहादंडकेषूक्तानाम् ।
एकषष्टिप्रमाणानामनुत्कृष्टप्रदेशबंधनं करोति ।।२६।।

टीका – इनसे रहित ऐसी जो महादण्डकों में कही हुयी प्रकृतियों में से इकसठ प्रकृतियों का अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध करते हैं ।

पढमे सव्वे बिदिये पण तदिये चउ कमा अपुणरुत्ता ।
इदि पयडीणमसीदी तिदण्डएसु वि अपुणरुत्ता ।।२७।।

प्रथमे सर्वे द्वितीये पंच तृतीये चतु: क्रमादपुनरुक्ता: ।
इति प्रकृतीनामशीति: त्रिदंडकेष्वपि अपुनरुक्ता: ।।२७।।

टीका – मनुष्य, तिर्यंच के बंधयोग्य जो पहला दंडक उसमें सर्व इकहत्तर ही अपुनरुक्त हैं । भवनत्रिकादि के योग्य जो दूसरा दंडक उसमें मनुष्यचतुष्क, वज्रवृषभनाराच संहनन ये पांच अपुनरुक्त हैं, अन्य प्रकृतियां पहले दंडक में कही ही थी । सातवीं पृथ्वीवाले के योग्य तीसरे दंडक में तिर्यंचद्विक, नीचगोत्र, उद्योत ये चार अपुनरुक्त हैं, अन्य प्रकृतियां पहले और दूसरे दंडक में कही ही थी । इसतरह तीनों दंडकों में अपुनरुक्त अस्सी प्रकृतियां जानना । ऐसे बंध कहा ।

अब उसी जीव के उदय कहते हैं –

उदये चउदसघादी णिद्दापयलाणमेक्कदरगं तु।
मोहे दस सिय णामे वचिठाणं सेसगे सजोगेक्कं ।।२८।।

उदये चतुर्दश घातिन: निद्राप्रचलानामेकतरकं तु ।
मोहे दश स्यात् नामनि वच:स्थानं शेषकं सयोग्येकम् ।।२८।।

टीका – प्रथमोपशम सम्यक्त्व सन्मुख जीव के नरकगति में ज्ञानावरण की पांच (५), दर्शनावरण की निद्रादि पांच बिना चार (४), अंतराय की पांच (५), मोहनीय की दस, नौ या आठ (१०/९/८), आयु की एक नरकायु, नाम कर्म की भाषापर्याप्तिकाल में उदय आने योग्य उनतीस उनके नाम इसप्रकार हैं – *(नरक)* गति, *(पंचेन्द्रिय)* जाति, शरीर ३ *(वैक्रियिक, तेजस, कार्माण),* अंगोपांग, निर्माण,

हुंडक संस्थान, वर्णचतुष्क (४), अगुरुलघु, स्थिरयुगल (२), शुभ युगल (२), त्रस, बादर, पर्याप्त, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति, प्रत्येक, उपघात, परघात, उच्छ्वास, अशुभविहायोगति, दुस्वर; वेदनीय की कोई एक, गोत्र की एक नीचगोत्र ऐसे इन प्रकृतियों का उदय है । यहां मोहनीय की और नामकर्म की उदयरूप प्रकृतियों के बदलने से भंग होते हैं; उनका गोम्मटसार में कर्मकाण्ड के स्थानसमुत्कीर्तन अधिकार में विशेष वर्णन है वहां से जानना । ऐसे मोहनीय के मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी आदि चार प्रकार के *(अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन)* क्रोधादि *(क्रोध, मान, माया, लोभ)* में से कोई एक *(अर्थात् चार प्रकार के क्रोध अथवा चार प्रकार के मान, माया या लोभ)*, नपुंसकवेद, हास्य-शोकयुगल में से एक, रति-अरति युगल में से एक ऐसे आठ प्रकृतियों के उदय सहित किसी जीव के चौवन प्रकृतियों का उदय होता है । वहां मोहनीय के चार कषाय और दो युगल बदलने से आठ भंग उन्हें वेदनीय के दो भंगों से गुणा करनेपर सोलह भंग होते हैं । नामकर्म की अप्रशस्त प्रकृतियों ही का यहां उदय है; इसलिए नामकर्म की अपेक्षा भंग नहीं हैं ।

पुनश्च भय या जुगुप्सा में से किसी एक के मिलानेपर मोहनीय की नौ सहित *(कुल)* पचपन का उदय है । वहां पूर्वोक्त सोलह भंगों को भय और जुगुप्सा से गुणा करनेपर बत्तीस भंग होते हैं । पुनश्च भय और जुगुप्सा दोनों से युक्त मोहनीय की दस सहित छप्पन प्रकृतियों का उदय होता है, वहां सोलह ही भंग जानना, क्योंकि यहां दोनों का उदय युगपत् है । यहां क्रोध के साथ अन्य-अन्य प्रकृति लगानेपर प्रथम भंग होता है, क्रोध की जगह मान कहनेपर दूसरा भंग होता है । इसीप्रकार प्रकृति बदलने से भंगों का होना जानना ।

तिर्यंचगति में पूर्वोक्त प्रकृतियों में एक संहनन मिलानेपर पचपन, छप्पन, सत्तावन का उदय जानना । वहां पचपन के उदय में यहां तीनों वेद पाये जाते हैं उनके बदलने से मोहनीय के चौबीस भंग होते हैं और वेदनीय के दो हैं ही तथा नामकर्म के **'संठाणे संहडणे'** इत्यादि सूत्र द्वारा छह संस्थान, छह संहनन, विहायोगति युगल, सुभग युगल, स्वर युगल, आदेय युगल, यशस्कीर्ति युगल इनके बदलने से ग्यारह सौ बावन भंग होते हैं; क्योंकि यहां इन सबका उदय पाया जाता है । इसप्रकार ये भंग कहे । इनको परस्पर गुणा करनेपर पचपन हजार दो सौ छानबे (५५२९६) भंग हुये ।

छप्पन के उदय में भय, जुगुप्सा से गुणा करनेपर उनसे दो गुणे (११०५९२) भंग हुये । सत्तावन के उदय में पचपन के समान ५५२९६ भंग ही जानना । उनमें उद्योत प्रकृति मिलानेपर वहां छप्पन, सत्तावन, अट्ठावन का उदय होता है । वहां तीनों जगह भंग पूर्वोक्त प्रकार से ही जानना ।

पुनश्च मनुष्यगति में तिर्यंचवत् उदय जानना, विशेष इतना है कि वहां उद्योत सहित उदय नहीं है । वहां दोनों गोत्र का उदय पाया जाता है इसलिए तिर्यंचगति में कहे हुये भंगों से तीनों जगह गोत्र के बदलने से दोगुणा भंग जानना ।

देवगति में नरकवत् उदय जानना । विशेष इतना है कि यहां नामकर्म की प्रशस्त प्रकृतियों ही का और उच्चगोत्र का और मोहनीय में नपुंसकवेद बिना स्त्रीवेद, पुरुषवेद में से किसी एक वेद का उदय पाया जाता है । वहां दो वेदों के बदलने से नरकगति में कहे हुये भंगों से तीनों जगह दोगुणे भंग जानना । ऐसे ये भंग निद्रा के उदय रहित जीवों की अपेक्षा कहे । पुनश्च इन चारों गतियों में जो उदय कहे उनमें उदयरूप निद्रा और प्रचला में से कोई एक प्रकृति मिलानेपर एक-एक प्रकृति से अधिक का उदय होता है । वहां उन दोनों प्रकृतियों के बदलने से सर्वत्र पूर्वोक्त भंगों से दोगुणे भंग जानना ।

उदइल्लाणं उदये पत्तेक्कठिदिस्स वेदगो होदि ।
बिचउट्ठाणमसत्थे सत्थे उदयल्लरसभुत्ती ।।२९।।

उदयवतामुदये प्राप्ते एकस्थितिकस्य वेदको भवति ।
द्विचतु:स्थानमशस्ते शस्ते उदीयमानरसभुक्ति: ।।२९।।

टीका – उदयवान प्रकृतियों की उदय की अपेक्षा एक स्थिति अर्थात् उदय को प्राप्त हुआ एक निषेक – उसीका भोक्ता वह जीव होता है । उसके अप्रशस्त प्रकृतियों का द्विस्थानरूप और प्रशस्त प्रकृतियों का चतु:स्थानरूप अनुभाग का भोगना होता है ।

अजहण्णमणुक्कस्सप्पदेसमणुभवदि सोदयाणं तु ।
उदयिल्लाणं पयडिचउक्कणमुदीरगो होदि ।।३०।।

अजघन्यमनुत्कृष्ट प्रदेशमनुभवति सोदयानां तु ।
उदयवतां प्रकृतिचतुष्काणामुदीरको भवति ।।३०।।

टीका – उदय प्रकृतियों के अजघन्य और अनुत्कृष्ट प्रदेश को भोगता है । जघन्य या उत्कृष्ट प्रदेशों का यहां उदय नहीं है । यहां जो प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग उदयरूप कहे उन्हीं का यह उदीरणा करनेवाला होता है । क्योंकि जिसके जिनका उदय है उसके उन्हीं की उदीरणा भी पायी जाती है । इसतरह उदय, उदीरणा कही ।

अब सत्त्व कहते हैं –

दुति आउ तित्थहारचउक्कणा सम्मगेण हीणा वा ।
मिस्सेणूणा वा वि य सव्वे पयडी हवे सत्तं ।।३१।।

द्वित्रिआयुः तीर्थाहारचतुष्काणां सम्यक्त्वेन हीना वा ।
मिश्रेणोना वापि च सर्वेषां प्रकृतीनां भवेत् सत्त्वम् ।।३१।।

टीका – सम्यक्त्वसन्मुख अनादि मिथ्यादृष्टि के अबद्धायु के तो भुज्यमान आयु बिना तीन आयु, तीर्थंकर, आहारकचतुष्क *(आहारकशरीर, आहारकबंधन, आहारकसंघात, आहारकअंगोपांग)* सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय इन दस बिना एक सौ अड़तीस का सत्त्व है । उसी बद्धायु के एक बध्यमान आयु सहित एक सौ उनतालीस का सत्त्व होता है ।

पुनश्च सम्यक्त्वसन्मुख सादि मिथ्यादृष्टि के अबद्धायु के तो भुज्यमान बिना तीन आयु, तीर्थंकर, आहारकचतुष्क (४) इन आठ बिना एक सौ चालीस का सत्त्व है । सम्यक्त्वमोहनीय की उद्वेलना होनेपर एक सौ उनतालीस का सत्त्व होता है । मिश्रमोहनीय की उद्वेलना होनेपर एक सौ अड़तीस का सत्त्व होता है । उसी बद्धायु के बध्यमान आयु सहित एक सौ इकतालीस, एक सौ चालीस, एक सौ उनतालीस का सत्त्व होता है; क्योंकि आहारकचतुष्क की उद्वेलना हुये बिना *(तथा)* तीर्थंकर सत्तावाला जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख नहीं होता ।

[***विशेषार्थ*** *: जिसके एकसाथ आहारक और तीर्थंकर की सत्ता है ऐसा जीव*

उन दोनों की सत्ता सहित मिथ्यात्व में नहीं आ सकता । परंतु यहां प्रश्न है कि तीर्थंकर की सत्तावाला जीव मिथ्यात्व में आता है तो नरकायु की सत्तावाला मिथ्यात्व में जाकर अंतर्मुहूर्त में मरकर नारकी होकर शरीरपर्याप्ति पूर्ण होते ही क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है, प्रथमोपशम नहीं । ऐसा कह सकते हैं कि आहारकचतुष्क की उद्वेलना हुये बिना प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख नहीं होता तथा तीर्थंकर की सत्तावाला मिथ्यादृष्टि भी प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त नहीं करता ।]

अजहण्णमणुक्कस्सं ठिदीतियं होदि सत्तपयडीणं ।
एवं पयडिचउक्कं बंधादिसु होदि पत्तेयं ।।३२।।

अजघन्यमनुत्कृष्टं स्थितित्रिकं भवति सत्त्वप्रकृतीनाम् ।
एवं प्रकृतिचतुष्कं बंधादिषु भवति प्रत्येकम् ।।३२।।

टीका – उन सत्तारूप प्रकृतियों के स्थिति, अनुभाग, प्रदेश हैं, वे अजघन्य, अनुत्कृष्ट हैं । जघन्य या उत्कृष्ट स्थिति, अनुभाग, प्रदेश का सत्त्व यहां नहीं पाया जाता । इसप्रकार प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेशरूप चतुष्क है वह बंध, उदय, उदीरणा और सत्त्व इनमें से प्रत्येक में कहा । वह प्रायोग्यतालब्धि के अंत तक जानना ।

तत्तो अभव्वजोग्गं परिणामं बोलिऊण भव्वो हु ।
करणं करेदि कमसो अधापवत्तं अपुव्वमणियट्टिं ।।३३।।

ततः अभव्ययोग्यं परिणामं मुक्त्वा भव्यो हि ।
करणं करोति क्रमशः अधःप्रवृत्तमपूर्वमनिवृत्तिम् ।।३३।।

टीका – उसके पश्चात् अभव्य के भी योग्य ऐसे चार लब्धिरूप परिणाम को समाप्त कर भव्य जीव ही अधःप्रवृत्त, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण को करता है । इन तीनों करणों का गोम्मटसार में जीवकाण्ड के गुणस्थानाधिकार में और कर्मकाण्ड के त्रिकरणचूलिका अधिकार में विशेष व्याख्यान है वहां से जानना । यहां भी सामान्यसा गाथाओं का अर्थ कहते हैं ।

अंतोमुहुत्तकाला तिण्णि वि करणा हवंति पत्तेयं ।
उवरीदो गुणियकमा कमेण संखेज्जरूवेण ।।३४।।

अंतर्मुहूर्तकालानि त्रीण्यपि करणानि भवंति प्रत्येकम् ।
उपरित: गुणितक्रमाणि क्रमेण संख्यातरूपेण ।।३४।।

टीका – तीनों ही करण प्रत्येक अंतर्मुहूर्त काल मात्र स्थिति युक्त हैं, तथापि ऊपर से संख्यातगुणा क्रम युक्त हैं । अनिवृत्तिकरण का काल अल्प है, उससे अपूर्वकरण का काल संख्यातगुणा है, उससे अध:प्रवृत्तकरण का काल संख्यातगुणा है ।

जम्हा हेट्ठिमभावा उवरिमभावेहिं सरिसगा होंति ।
तम्हा पढमं करणं अधापवत्तो त्ति णिद्दिट्ठं ।।३५।।

यस्मादधस्तनभावा उपरितनभावै: सदृशा भवंति ।
तस्मात् प्रथमं करणं अध:प्रवृत्तमिति निर्दिष्टम् ।।३५।।

टीका – चूंकि यहां नीचे के समयवर्ती किसी जीव के परिणाम ऊपर के समयवर्ती किसी जीव के परिणामों के सदृश होते हैं, इसलिए इसका नाम अध:प्रवृत्तकरण है ।

भावार्थ – करणों के नाम नाना जीवों की अपेक्षा हैं । अध:करण मांडकर किसी जीव के थोड़ा काल हुआ तो किसी जीव के बहुत काल हुआ, उनके परिणाम इस करण में संख्या और विशुद्धता से समान भी हो सकते हैं ऐसा जानना ।

समये समये भिण्णा भावा तम्हा अपुव्वकरणो हु ।
अणियट्टी वि तहं वि य पडिसमयं एक्कपरिणामो ।।३६।।

समये समये भिन्ना भावा तस्मादपूर्वकरणो हि ।
अनिवृत्तिरपि तथैव च प्रतिसमयमेकपरिणाम: ।।३६।।

टीका – प्रतिसमय जीवों के भाव भिन्न ही होते हैं, वह अपूर्वकरण है ।

भावार्थ – किसी जीव को अपूर्वकरण मांडकर अल्प काल हुआ, किसी को बहुत काल हुआ, वहां उनके परिणाम सर्वथा सदृश नहीं होते *(सदृश होते ही नहीं)* । नीचे के समयवालों के परिणाम से ऊपर के समयवालों के परिणाम अधिक संख्या और अधिक विशुद्धता युक्त होते हैं तथा यहां जिनके करण मांडकर समान काल हुआ है उनके परिणाम परस्पर सदृश भी होते हैं अथवा असदृश भी होते हैं ऐसा जानना ।

जहां प्रतिसमय एक ही परिणाम होता है, वह अनिवृत्तिकरण है ।

भावार्थ – जिनको अनिवृत्तिकरण मांडकर समान काल हुआ, उनके परिणाम समान ही होते हैं, परंतु नीचे के समयवर्तियों से ऊपर के समयवर्तियों के अधिक होते हैं ऐसा जानना ।

गुणसेढी गुणसंकम ठिदिरसखंडं च णत्थि पढमम्हि ।
पडिसमयमणंतगुणं विसोहिवड्ढीहिं वड्ढदि हु ।।३७।।

गुणश्रेणी गुणसंक्रमं स्थितिरसखंडं च नास्ति प्रथमे ।
प्रतिसमयमनंतगुणं विशुद्धिवृद्धिभिर्वर्धते हि ।।३७।।

टीका – पहले अध:करण में गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात नहीं होते, परंतु यहां प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धता बढ़ती है ।

सत्थाणमसत्थाणं चउविट्ठाणं रसं च बंधदि हु ।
पडिसमयमणंतेण य गुणभजियकमं तु रसबंधे ।।३८।।

शस्तानामशस्तानां चतुर्द्विस्थानं रसं च बध्नाति हि ।
प्रतिसमयमनंतेन च गुणभजितक्रमं तु रसबंधे ।।३८।।

टीका – और सातादि प्रशस्त प्रकृतियों का प्रतिसमय अनंतगुणा चतु:स्थानरूप अनुभाग बांधता है तथा असातादि अप्रशस्त प्रकृतियों का प्रतिसमय अनंतवें भाग मात्र *(द्विस्थानरूप)* अनुभाग बांधता है ।

पल्लस्स संखभागं मुहुत्तअंतेण ओसरदि बंधे ।
संखेज्जसहस्साणि य अधापवत्तम्मि ओसरणा ।।३९।।

पल्यस्य संख्यभागं मुहूर्तांतरेण अपसरति बंधे ।
संख्येयसहस्राणि च अध:प्रवृत्ते अपसरणानि ।।३९।।

टीका – अध:प्रवृत्त के प्रथम समय से लेकर अंतर्मुहूर्त तक पूर्व स्थितिबंध से पल्य का संख्यातवां भाग मात्र हीन *(घटता)* स्थितिबंध होता है । उसके पश्चात् अंतर्मुहूर्त तक उससे भी पल्य के संख्यातवें भाग मात्र घटता स्थितिबंध है । इसतरह एक अंतर्मुहूर्त द्वारा पल्य के संख्यातवें भाग मात्र घटता स्थितिबंधापसरण होता है । अध:प्रवृत्त में ऐसे संख्यात हजार अपसरण होते हैं ।

आदिमकरणद्धाए पढमट्ठिदिबंधदो दु चरिमम्हि ।
संखेज्जगुणविहीणो ठिदिबंधो होइ णियमेण ।।४०।।

आदिमकरणाद्धायां प्रथमस्थितिबंधतस्तु चरमे ।
संख्यातगुणविहीन: स्थितिबंधो भवति नियमेन ।।४०।।

टीका – ऐसे होते हुये प्रथम करण के काल में प्रथम समय संबंधी अंत:कोडाकोडी सागर प्रमाण स्थितिबंध से उसके अंत समय में संख्यातगुणा हीन *(स्थितिबंध)* होता है ।

तच्चरिमे ठिदिबंधो आदिमसम्मेण देससयलजमं ।
पडिवज्जमाणगस्स वि संखेज्जगुणेण हीणकमो ।।४१।।

तच्चरमे स्थितिबंध: आदिमसम्येन देशसकलयमम् ।
प्रतिपद्यमानस्यापि संख्येयगुणेन हीनक्रम: ।।४१।।

टीका – उस अंत समय में जो स्थितिबंध कहा उससे देशसंयम सहित प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होनेवाले जीव के संख्यातगुणा हीन स्थितिबंध होता है । उससे सकलसंयम सहित प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होनेवाले के संख्यातगुणा हीन होता है ।

आदिमकरणद्धाए पडिसमयमसंखलोगपरिणामा ।
अहियकमा हु विसेसे मुहुत्तअंतो हु पडिभागो ।।४२।।

आदिमकरणाद्धायां प्रतिसमयमसंख्यलोकपरिणामा: ।
अधिकक्रमा हि विशेषे मुहूर्तांतर्हि प्रतिभाग: ।।४२।।

टीका – त्रिकालवर्ती जीवों के कषायों के जो विशुद्धस्थान कहे हैं उनमें से अध:प्रवृत्तकरण में पाये जानेवाले स्थान असंख्यातलोक मात्र हैं । उनमें प्रतिसमय पाये जानेवाले असंख्यातलोक मात्र परिणाम हैं । वे प्रथम समय से द्वितीयादि समयों में क्रम से समान प्रमाणरूप एक-एक विशेष अर्थात् चय उससे बढ़ते जानना । वहां आदि जो प्रथम समय संबंधी परिणाम उसको अंतर्मुहूर्त मात्र भागहार का भाग देनेपर विशेष का प्रमाण आता है । **'पदकदिसंखेण भाजिदे पचयं'** इस सूत्र द्वारा गच्छ के वर्ग को संख्यातगुणा करके उसका भाग सर्वधन को देनेपर जो चय का प्रमाण आता है, उतना ही प्रमाण प्रथम समय संबंधी परिणामों को किंचित् कम संख्यातगुणा अध:प्रवृत्तकरण काल मात्र जो अंतर्मुहूर्त उसका भाग देनेपर भी आता है ।

ताए अधापवत्तद्धाए संखेज्जभागमेत्तं तु ।
अणुकट्टीए अद्धा णिव्वग्गणकंडयं तं तु ।।४३।।

तस्या अध:प्रवृत्ताद्धाया: संख्येयभागमात्रं तु ।
अनुकृष्ट्या अद्धा निर्वर्गणकांडकं तत्तु ।।४३।।

टीका – उस अध:प्रवृत्तकरण काल प्रमाण जो ऊर्ध्वगच्छ, उसके संख्यातवें भाग मात्र अनुकृष्टि गच्छ होता है । एक-एक समय संबंधी परिणामों में इतने-इतने होते हैं, वे वर्गणाकांडक के समान हैं । वर्गणा अर्थात् समयों की समानता उससे रहित ऊपर के समयवर्ती परिणाम खंडों का कांडक अर्थात् पर्व उसका नाम निर्वर्गणाकांडक है । वे अध:करण के काल में संख्यात हजार हैं ।

पडिसमयगपरिणामा णिव्वग्गणसमयमेत्तखंडकमा ।
अहियकमा हु विसेसे मुहुत्तअंतो हु पडिभागो ।।४४।।

प्रतिसमयगपरिणामा निर्वर्गणसमयमात्रखंडक्रमाः ।
अधिकक्रमा हि विशेषे मुहूर्तांतर्हि प्रतिभागः ।।४४।।

टीका – निर्वर्गणाकांडक का जो प्रमाण है, उसके समान प्रतिसमय के परिणामों के खंड करना । *(मान लो निर्वर्गणाकांडक का प्रमाण चार है, तो प्रतिसमय के परिणामों के चार-चार खंड करना ।)* वहां भी प्रथम खंड से द्वितीयादि खंड क्रम से विशेष अर्थात् समान प्रमाणवाले चय से अधिक *(बढ़ते)* हैं । वहां प्रथम खंड को अंतर्मुहूर्त का भाग देनेपर विशेष का प्रमाण आता है ।

पडिखंडगपरिणामा पत्तेयमसंखलोगमेत्ता हु ।
लोयाणमसंखेज्जा छट्ठाणाणी विसेसे वि ।।४५।।

प्रतिखंडगपरिणामाः प्रत्येकमसंख्यलोकमात्रा हि ।
लोकानामसंख्येयाः षट्स्थानानि विशेषेऽपि ।।४५।।

टीका – वहां एक-एक खंड में जघन्य, मध्यम, उत्कृष्टता युक्त विशुद्ध परिणामों के भेद असंख्यातलोक मात्र हैं । वहां जैसे गोम्मटसार में *(जीवकाण्ड के)* ज्ञानाधिकार में पर्यायसमास में षट्स्थानपतित वृद्धि का अनुक्रम कहा है, वैसे यहां एक-एक खंड में और एक-एक अनुकृष्टि विशेष *(चय)* में भी असंख्यातलोक मात्र बार षट्स्थानवृद्धि पायी जाती है ।

पढमे चरिमे समये पढमं चरिमं च खंडमसरित्तं ।
सेसा सरिसा सव्वे अट्ठुव्वंकादिअंतगया ।।४६।।

प्रथमे चरमे समये प्रथमं चरमं च खंडमसदृशम् ।
शेषाः सदृशाः सर्वे अष्टोर्वंकाद्यंतगताः ।।४६।।

टीका – प्रथम समय का प्रथम खंड और अंत समय का अंत खंड तो अन्य किसी खंड के समान नहीं है; अवशेष सर्व खंड अन्य खंडों से यथायोग्य समानता के धारक हैं । वहां खंडों में जो परिणाम पुंज कहा, उनमें से पहला परिणाम तो अष्टांक अर्थात् पूर्व परिणाम से अनंतगुणा वृद्धिरूप है और अंत का परिणाम ऊर्वंक

अर्थात् पूर्व परिणाम से अनंतभागवृद्धिरूप है । क्योंकि षट्स्थानों की आदि तो अष्टांक और अंत ऊर्वंक कहे हैं ।

चरिमे सव्वे खंडा दुचरिमसमओ त्ति अवरखंडाए ।
असरिसखंडाणोली अधापवत्तम्हि करणम्हि ।।४७।।

चरमे सर्वे खंडा द्विचरमसमय इति अवरखंडै: ।
असदृशखंडानामावलिरध:प्रवृत्ते करणे ।।४७।।

टीका – अध:प्रवृत्तकरण काल में अंत समय संबंधी तो सर्व खंड और दूसरे समय से लेकर द्विचरम समय तक के प्रथम-प्रथम खंड हैं, वे उनके ऊपर के समय संबंधी सभी खंडों से समान नहीं है, इसलिए असदृश हैं ।

पढमे करणे अवरा णिव्वग्गणसमयमेत्तगा तत्तो ।
अहिगदिणा वरमवरं तो वरपंती अणंतगुणियकमा ।।४८।।

प्रथमे करणे अवरा निर्वर्गणसमयमात्रका: तत: ।
अहिगतिना वरमवरमतो वरपंक्तिरनंतगुणितक्रमा ।।४८।।

टीका – प्रथम करण में विशुद्धता के अविभागप्रतिच्छेदों की अपेक्षा समय-समय संबंधी प्रथम खंडों के जघन्य परिणाम हैं वे ऊपर-ऊपर अनंतगुणे हैं । उसके पश्चात् निर्वर्गणाकांडक के अंत समय संबंधी प्रथम खंड के जघन्य परिणाम से पहले समय के अंत खंड का उत्कृष्ट परिणाम अनंतगुणा है । उससे द्वितीय कांडक के प्रथम समय के प्रथम खंड का जघन्य परिणाम अनंतगुणा है । उससे प्रथम कांडक के द्वितीय समय के अंत खंड का परिणाम अनंतगुणा है । उससे द्वितीय कांडक के द्वितीय समय के प्रथम खंड का जघन्य परिणाम अनंतगुणा है । इसतरह जैसे सर्प इधर से उधर, उधर से इधर गमन करता है, वैसे जघन्य से उत्कृष्ट का, उत्कृष्ट से जघन्य का अनंतगुणा क्रम है । जब तक अंत कांडक के अंत समय के प्रथम खंड का जघन्य परिणाम होता है *(तब तक यही क्रम है)* । उससे अंत कांडक के प्रथम समय के अंत खंड का उत्कृष्ट परिणाम अनंतगुणा है । उससे समय-समय प्रति

अंत खंड के उत्कृष्ट परिणामों की पंक्ति अनंतगुणा क्रम युक्त है – जब तक अंत कांडक के अंत समय के अंत खंड का उत्कृष्ट परिणाम होता है ।

यहां इतना जानना कि जघन्य से उत्कृष्ट है, वह तो असंख्यातलोक मात्र बार अनंतगुणा है और उत्कृष्ट से जघन्य है वह एक बार अनंतगुणा है । सबसे जघन्य विशुद्धता के भी अविभागप्रतिच्छेद जीवराशि से अनंतगुणे हैं, इसलिए यहां षट्स्थान पाये जाते हैं ।

पढमे करणे पढमा उड्ढगसेढीय चरिमसमयस्स ।
तिरियगखंडाणोली असरित्थाणंतगुणियकमा ।।४९।।

प्रथमे करणे प्रथमा ऊर्ध्वगश्रेण्याः चरमसमयस्य ।
तिर्यग्गतखंडानामावलिरसदृशी अनंतगुणितक्रमा ।।४९।।

टीका – प्रथम करण में समय-समय के परिणामों की ऊपर-ऊपर पंक्ति करनेपर और अंत समय के परिणामों की बराबर तिर्यक्रूप पंक्ति करनेपर अंकुशाकार रचना होती है । इन *(परिणामों)* की ऊपर के परिणामों से समानता नहीं है, इसलिए असदृश हैं । ये परिणाम अनंतगुणा क्रम युक्त विशुद्धतारूप जानना । इसतरह अधःकरण का स्वरूप कहा ।

पढमं व बिदियकरणं पडिसमयमसंखलोगपरिणामा ।
अहियकमा हु विसेसे मुहुत्तअंतो हु पडिभागो ।।५०।।

प्रथमं व द्वितीयकरणं प्रतिसमयमसंख्यलोकपरिणामाः ।
अधिकक्रमा हि विशेषे मुहूर्तांतर्हि प्रतिभागः ।।५०।।

टीका – प्रथम अधःकरणवत् दूसरा अपूर्वकरण है । वहां इतना विशेष है कि असंख्यातलोक मात्र अधःकरण के परिणामों से अपूर्वकरण के परिणाम असंख्यातलोकगुणे हैं । वे समय-समय प्रति विशेष अर्थात् समान प्रमाणरूप चय से अधिक हैं । प्रथम समय संबंधी परिणाम को अंतर्मुहूर्त का भाग देनेपर चय का प्रमाण आता है ।

जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहिं णत्थि सरिसत्तं ।
तम्हा बिदियं करणं अपुव्वकरणं त्ति णिद्दिट्ठं ।।५१।।

यस्मादुपरिभावानामधस्तनभावै: नास्ति सदृशत्वम् ।
तस्मात् द्वितीयं करणमपूर्वकरणमिति निर्दिष्टम् ।।५१।।

टीका – चूंकि यहां ऊपर समय संबंधी परिणाम नीचे के समय संबंधी परिणामों के समान नहीं होते; प्रथम समय की उत्कृष्ट विशुद्धता से भी द्वितीय समय संबंधी जघन्य विशुद्धता अनंतगुणी है । इसतरह परिणामों का अपूर्वपना है; इसलिए दूसरा करण अपूर्वकरण कहा ।

बिदियकरणादिसमयादंतिमसमओ त्ति अवरवरसुद्धी ।
अहिगदिणा खलु सव्वे होंति-अणंतेण गुणियकमा ।।५२।।

द्वितीयकरणादिसमयादंतिमसमय इति अवरवरशुद्धी ।
अहिगतिना खलु सर्वे भवंत्यनंतेन गुणितक्रमा: ।।५२।।

टीका – दूसरे करण *(अपूर्वकरण)* के प्रथम समय से लेकर अंत समय तक अपने जघन्य से अपना उत्कृष्ट और पूर्व समय के उत्कृष्ट से उत्तर समय का जघन्य परिणाम क्रम से अनंतगुणा विशुद्धता युक्त सर्प की चालवत् जानना । यहां अनुकृष्टि नहीं है ।

गुणसेढीगुणसंकमठिदिरसखंडा अपुव्वकरणादो ।
गुणसंकमेण सम्मा मिस्साणं पूरणो त्ति हवे ।।५३।।

गुणश्रेणीगुणसंक्रमस्थितिरसखंडा अपूर्वकरणात् ।
गुणसंक्रमेण सम्यक् मिश्राणां पूरण इति भवेत् ।।५३।।

टीका – अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर जब तक सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय का पूरणकाल अर्थात् जिस काल में गुणसंक्रमण द्वारा मिथ्यात्व को सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीयरूप परिणमाते हैं, उस काल के अंत समय तक

गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिखंडन, अनुभागखंडन ये चार आवश्यक होते हैं ।

ठिदिबंधोसरणं पुण अधापवत्तादुपूरणो त्ति हवे ।
ठिदिबंधट्ठिदिखंडुक्कीरणकाला समा होंति ।।५४।।

स्थितिबंधापसरणं पुनः अधःप्रवृत्तादापूरण इति भवेत् ।
स्थितिबंधस्थितिखंडकोत्कीरणकालाः समा भवंति ।।५४।।

टीका – स्थितिबंधापसरण तो अधःप्रवृत्तकरण के प्रथम समय से लेकर गुणसंक्रमण पूर्ण होने के काल तक होता है । यद्यपि प्रायोग्यलब्धि से ही स्थितिबंधापसरण होता है तथापि प्रायोग्यलब्धि के सम्यक्त्व होने का अनवस्थितपना है – नियम नहीं है, इसलिए उसका ग्रहण नहीं किया । स्थितिबंधापसरण काल और स्थितिकांडकोत्करण काल ये दोनों समान अंतर्मुहूर्तमात्र हैं ।

गुणसेढीदीहत्तमपुव्वदुगादो दु साहियं होदि ।
गलिदवसेसे उदयावलिबाहिरदो दु णिक्खेवो ।।५५।।

गुणश्रेणिदीर्घत्वमपूर्वद्विकात् तु साधिकं भवति ।
गलितावशेषे उदयावलिबाह्यतस्तु निक्षेपः ।।५५।।

टीका – गुणश्रेणी का दीर्घत्व अर्थात् निषेक, निषेकों के प्रमाण मात्र आयाम वह अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के काल से साधिक है । अधिक का प्रमाण अनिवृत्तिकरण काल के संख्यातवें भाग मात्र जानना । यह गुणश्रेणी आयाम गलितावशेष है । समय व्यतीत होनेपर यह गुणश्रेणी आयाम भी हीन होता जाता है *(घटता जाता है)* । यह उदयावली से बाह्य है, क्योंकि उदयावली के ऊपर गुणश्रेणी आयाम के निषेक हैं । उस गुणश्रेणी आयाम में गुणश्रेणी के लिये अपकर्षण किये हुये द्रव्य का निक्षेपण करते हैं ।

अब यहां प्रसंग पाकर निक्षेपण के अतिस्थापना का स्वरूप आदि कहते हैं ।

यहां अपकर्षण या उत्कर्षण किये हुये द्रव्य को जिन निषेकों में मिलाते हैं, वे निषेक निक्षेपणरूप जानना । जिन निषेकों में नहीं मिलाते हैं वे निषेक

अतिस्थापनरूप जानना ।

जहां स्थिति घटाकर ऊपर के निषेकों का द्रव्य नीचे के निषेकों में देते हैं वहां अपकर्षण कहते हैं । तथा जहां स्थिति बढ़कर नीचे के निषेकों के द्रव्य को ऊपर के निषेकों में देते हैं वहां उत्कर्षण कहते हैं । यहां इनकी अपेक्षा निक्षेपण, अतिस्थापनारूप निषेकों का प्रमाण कहते हैं ।

णिक्खेवमदित्थावणमवरं समऊणआवलितिभागं ।
तेणूणावलिमेत्तं बिदियावलियादिमणिसेगे ।।५६।।

निक्षेपमतिस्थापनमवरं समयोनमावलित्रिभागम् ।
तेन न्यूनावलिमात्रं द्वितीयावलिकादिमनिषेके ।।५६।।

टीका – जहां स्थितिकांडकघात नहीं पाया जाता, वहां अव्याघात कहते हैं । उसमें प्रथम वर्णन करते हैं – द्वितीय आवली के प्रथम निषेक का अपकर्षण करके नीचे निक्षेपण करते हैं । वहां प्रथम आवली के निषेकों में एक समय कम आवली के त्रिभाग में एक समय अधिक प्रमाण निषेक तो निक्षेपरूप हैं, उनमें वह द्रव्य दिया जाता है । अवशेष निषेक अतिस्थापनरूप हैं, उनमें वह द्रव्य नहीं दिया जाता । इसतरह यह जघन्य निक्षेप और जघन्य अतिस्थापन जानना ।

अंकसंदृष्टि से – जैसे प्रथमादि सोलह निषेक तो प्रथमावली के और उसके ऊपर सोलह निषेक द्वितीयावली के हैं । वहां सत्रहवें निषेक का द्रव्य अपकर्षण करके नीचे दिया । वहां सोलह में से एक घटानेपर पंद्रह रहे, उसका त्रिभाग पांच, उसमें एक मिलानेपर छह; यहां प्रथमादि छह निषेकों में द्रव्य दिया यह जघन्य निक्षेप है । उसके ऊपर के दस निषेकों मे द्रव्य नहीं मिलाया, यह जघन्य अतिस्थापन है ।

एतो समऊणावलितिभागमेत्तो तु तं खु णिक्खेवो ।
उवरिं आवलिवज्जिय सगट्ठिदी होदि णिक्खेवो ।।५७।।

अतः समयोनावलित्रिभागमात्रस्तु तत्खलु निक्षेपः ।
उपरि आवलिवर्जिता स्वकस्थितिर्भवति निक्षेपः ।।५७।।

टीका – इसके ऊपर के द्वितीयावली के द्वितीय निषेक का अपकर्षण किया, वहां एक समय अधिक आवली मात्र इसके *(नीचे के)* निषेक हैं । उनमें निक्षेपण तो निषेक *(एक समय)* कम आवली के त्रिभाग में एक समय अधिक ही है परंतु अतिस्थापन पूर्व से एक समय अधिक है । इसी क्रम से द्वितीयावली के तृतीयादि निषेकों का अपकर्षण होनेपर निक्षेप तो पूर्वोक्त प्रमाण ही रहता है और अतिस्थापन क्रम से एक-एक समय अधिक जानना । वहां द्वितीय आवली के निषेकों में से *(नीचे के)* एक समय कम आवली का त्रिभाग में एक समय अधिक प्रमाण निषेकों के ऊपरवर्ती निषेकों का अपकर्षण करनेपर निक्षेप तो पूर्वोक्त प्रमाण और अतिस्थापन आवली मात्र होता है । यह उत्कृष्ट अतिस्थापन है ।

अंकसंदृष्टि से – अठारहवें, उन्नीसवें, बीसवें आदि निषेकों का द्रव्य अपकर्षण करके प्रथमादि छह निषेकों में ही देते हैं; ग्यारह, बारह, तेरह आदि निषेकों में नहीं देते । वहां तेइसवें निषेक का द्रव्य अपकर्षण करनेपर आदि के छह निषेक तो निक्षेपरूप हैं और सोलह निषेक अतिस्थापन हुये, यह तो उत्कृष्ट अतिस्थापन है ।

यहां से ऊपर के निषेकों का द्रव्य अपकर्षण करनेपर सर्वत्र अतिस्थापन तो आवली मात्र ही जानना और निक्षेप क्रम से एक-एक समय बढ़ता जानना । वहां स्थिति के अंत निषेक का अपकर्षण होनेपर उसके नीचे के आवली मात्र निषेक तो अतिस्थापनारूप जानना । उसको छोड़कर अवशेष सर्व निषेक निक्षेपरूप जानना ।

अंकसंदृष्टि से – जैसे चौबीसवें, पच्चीसवें आदि निषेकों का अपकर्षण होनेपर प्रथमादि छह, सात, आठ आदि एक-एक बढ़ते निषेक तो निक्षेपरूप होते हैं और अतिस्थापनरूप सर्वत्र सोलह ही निषेक हैं । यह क्रम अंत निषेक के अपकर्षण तक जानना ।

उक्कस्सट्ठिदिबंधो समयजुदावलिदुगेण परिहीणो ।
उक्कस्सट्ठिदिम्मि चरिमे ठिदिम्मि उक्कस्सणिक्खेवो ।।५८।।

उत्कृष्टस्थितिबंधः समययुतावलिद्विकेन परिहीनः ।
उत्कृष्टस्थितौ चरमे स्थितौ उत्कृष्टनिक्षेपः ।।५८।।

टीका – स्थिति के अंत निषेक के द्रव्य को अपकर्षण करके नीचे के निषेकों

में निक्षेपण करते समय उस अंत के निषेक के नीचे आवली मात्र निषेक तो अतिस्थापनरूप हैं और एक समय अधिक दो आवली से हीन उत्कृष्ट स्थिति मात्र निक्षेप होता है, यह उत्कृष्ट निक्षेप जानना । यहां बंध होने के पश्चात् आवली काल तक तो उदीरणा नहीं होती, इसलिए एक आवली तो आबाधा में गयी और एक आवली अतिस्थापनरूप रही और अंत निषेक का द्रव्य तो ग्रहण ही किया है; इसलिए उत्कृष्ट स्थिति में से दो आवली और एक समय घटाया है ।

अंकसंदृष्टि से जैसे, उत्कृष्ट स्थिति हजार समय, वहां सोलह समय तो आबाधा में गये और नौ सौ चौरासी निषेक हैं । वहां अंत के निषेक के द्रव्य को अपकर्षण करके प्रथमादि नौ सौ सड़सठ निषेकों में दिया, यह उत्कृष्ट निक्षेप है तथा उसके ऊपर सोलह निषेकों में नहीं दिया, यह अतिस्थापनावली है ।

उक्कस्सट्ठिदि बंधिय मुहुत्तअंतेण सुज्झमाणेण ।
इगिकंडएण घादे तम्हि य चरिमस्स फालिस्स ।।५९।।

चरिमणिसेयोक्कट्ठे जेट्ठमदित्थावणं इदं होदि ।
समयजुदंतोकोडाकोडि विणुक्कस्सकम्मठिदी ।।६०।।

उत्कृष्टस्थितिं बंधयित्वा मुहूर्तान्तः शुद्ध्यता ।
एककांडकेन घाते तस्मिन् च चरमस्य फालेः ।।५९।।

चरमनिषेकोत्कर्षे जेष्ठमतिस्थापनमिदं भवति ।
समययुतांतःकोटिकोटिं विना उत्कृष्टकर्मस्थितिः ।।६०।।

टीका – जहां स्थितिकांडकघात होता है उसे व्याघात कहते हैं । वहां कहते हैं – किसी जीव ने उत्कृष्ट स्थिति बांधकर पश्चात् क्षयोपशमलब्धि से विशुद्ध हुआ तब *(पहले)* बंधी हुयी स्थिति में से आबाधारूप बंधावली के व्यतीत होने के पश्चात् एक अंतर्मुहूर्त काल द्वारा स्थितिकांडक का घात किया । वहां जो उत्कृष्ट स्थिति बांधी थी उसमें से अंतःकोडाकोडी सागर प्रमाण स्थिति अवशेष रखकर अन्य सर्व स्थिति का घात उस कांडक द्वारा होता है । वहां कांडक में जितनी स्थिति घटायी,

उसके सर्व निषेकों के परमाणुओं को प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम से अवशेष रखी हुयी स्थिति में अंतर्मुहूर्त तक निक्षेपण करता है । वहां प्रतिसमय जो द्रव्य निक्षेपण किया वही फालि है । वहां अंतिम फालि में स्थिति के अंत निषेक का जो द्रव्य, उसका ग्रहण कर अवशेष रखी स्थिति में दिया । वहां एक समय अधिक अंत:कोडाकोडी सागर से हीन उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण उत्कृष्ट अतिस्थापन होता है, क्योंकि इसमें वह द्रव्य नहीं दिया । यहां उत्कृष्ट स्थिति में से अंत:कोडाकोडी सागर प्रमाण मात्र स्थिति अवशेष रही, उसमें द्रव्य दिया, यह निक्षेपरूप हुआ; इसलिए इसे घटाया । तथा एक अंत निषेक का द्रव्य ग्रहण किया ही है इसलिए एक समय घटाया ।

अंकसंदृष्टि से – जैसे, हजार समय की स्थिति में से कांडकघात द्वारा सौ समय की स्थिति रखी । वहां हजारवें समय संबंधी निषेक के द्रव्य आदि के सौ समय संबंधी निषेकों में दिया, वहां आठ सौ निन्यानबे मात्र उत्कृष्ट अतिस्थापन होता है ।

सत्तग्गट्ठिदिबंधो आदिठिदुक्कट्टणे जहण्णेण ।
आवलिअसंखभागं तेत्तियमेत्तेव णिक्खिवदि ।।६१।।

सत्ताग्रस्थितिबंध आदिस्थित्युत्कर्षणे जघन्येन ।
आवल्यसंख्यभागं तावन्मात्रमेव निक्षिपति ।।६१।।

टीका – अव्याघात अथवा व्याघात में कर्मस्थिति का उत्कर्षण होनेपर विधान कहते हैं – पहले जो सत्तारूप निषेक थे उनमें से अंत के निषेक के द्रव्य को उत्कर्षण करने के समय में बंधे हुये समयप्रबद्ध में से, पूर्व सत्ता का अंत निषेक जिस समय उदय आने योग्य है उस समय उदय आने योग्य *(तत्काल)* बंधे हुये समयप्रबद्ध का जो निषेक, उस निषेक के ऊपरवर्ती आवली के असंख्यातवें भाग मात्र निषेकों को अतिस्थापनारूप रखकर उनके ऊपरवर्ती जो उतने ही आवली के असंख्यातवें भागमात्र निषेकों में उस सत्ता के अंत निषेक के द्रव्य को निक्षेपण करता है । उत्कर्षण संबंधी यह जघन्य अतिस्थापन और जघन्य निक्षेप जानना ।

अंकसंदृष्टि से – जैसे, पूर्व सत्ता का अंत निषेक जिस समय उदय में आयेगा उस समय में अब बंधे हुये समयप्रबद्ध का पचासवां निषेक उदय में आयेगा । उस

सत्ता के अंत निषेक के द्रव्य को ग्रहण कर आवली का प्रमाण सोलह, उसका अंख्यातवां भाग चार; सो पचासवें निषेक के ऊपर इक्यावन आदि चार निषेकों को अतिस्थापनारूप रखकर पंचावनवें आदि चार निषेकों में निक्षेपण करता है ।

तत्तोदित्थावणगं वड्ढदि जावावली तदुक्कस्सं ।
उवरीदो णिक्खेओ वरं तु बंधिय ठिदि जेट्ठं ।।६२।।

बोलिय बंधावलियं उक्कट्ठिय उदयदो दु णिक्खिविय ।
उवरिमसमये बिदियावलिपढमुक्कट्ठणे जादे ।।६३।।

तक्कालबज्झमाणे वरट्ठिदीए अदित्थियाबाहं ।
समयजुदावलियाबाहूणो उक्कस्सठिदिबंधो ।।६४।।

ततोऽतिस्थापनकं वर्धते यावदावलिस्तदुत्कृष्टम् ।
उपरितो निक्षेपो वरं तु बंधयित्वा स्थितिर्ज्येष्ठम् ।।६२।।

अपलाप्य बंधावलिकामुत्कर्ष्य उदयतस्तु निक्षिप्य ।
उपरितनसमये द्वितीयावलिप्रथमोत्कर्षणे जाते ।।६३।।

तत्कालबध्यमाने वरस्थित्या अतिस्थाप्याबाधां ।
समययुतावलिकाबाधोनः उत्कृष्टस्थितिबन्धः ।।६४।।

टीका – उस पूर्व सत्त्व के अंत निषेक से लेकर नीचे के निषेकों का उत्कर्षण होनेपर निक्षेप तो पूर्वोक्त प्रमाण ही रहता है और अतिस्थापन क्रम से एक-एक समय बढ़ता है । जब तक आवली मात्र उत्कृष्ट अतिस्थापन हो तब तक यह क्रम जानना ।

अंकसंदृष्टि से – सत्ता के अंत निषेक के नीचे का उपांत निषेक जिस समय उदय में आयेगा उस समय अब बंधे हुये समयप्रबद्ध का उनचासवां निषेक उदय में आयेगा । उस उपांत निषेक के द्रव्य का उत्कर्षण करके उसको पचासवां आदि पांच निषेकों को अतिस्थापनरूप रखकर उनके ऊपर पंचावनवें आदि चार निषेकों में निक्षेपण करता है ।

इसीतरह उपांत निषेक से नीचे के निषेकों के द्रव्य को उत्कर्षण करके अब बंधे हुये समयप्रबद्ध के क्रम से ~~उनचासवें~~ अड़तालीसवें, अड़तालीसवें आदि निषेक से लेकर छह, सात आदि एक-एक बढ़ते निषेक अतिस्थापनारूप रखकर पंचावनवें आदि चार निषेकों में निक्षेपण करता है । वहां अब बंधे हुये समयप्रबद्ध का अड़तीसवां निषेक जिस समय उदय में आयेगा उस समय उदय में आने योग्य जो पूर्व सत्ता का निषेक है, उसके द्रव्य को उत्कर्षण करके अब बंधे हुये समयप्रबद्ध के उनतालीसवें आदि सोलह निषेकों को अतिस्थापनरूप रखता है, यह उत्कृष्ट अतिस्थापन है । यहां तक पंचावनवें आदि चार निषेकों में निक्षेप जानना ।

आवली मात्र अतिस्थापन होने के पश्चात् उसके नीचे-नीचे के निषेकों का उत्कर्षण करनेपर अतिस्थापन तो आवली मात्र ही रहता है और निक्षेप क्रम से एक-एक निषेक से बढ़ता जाता है ।

अंकसंदृष्टि से – जैसे, अब बंधे हुये समयप्रबद्ध का सैंतीसवां निषेक जिस समय उदय में आयेगा उस समय उदय में आने योग्य सत्ता के निषेक का उत्कर्षण होनेपर अड़तीसवां आदि सोलह निषेक अतिस्थापनरूप होते हैं और चौवनवां आदि पांच निषेक निक्षेपरूप होते हैं । उसके नीचे के निषेक का उत्कर्षण होनेपर सैंतीसवां आदि सोलह निषेक अतिस्थापनारूप होते हैं और तिरपनवां आदि छह निषेक निक्षेपरूप होते हैं । इसतरह अतिस्थापन उतना ही रहता है और निक्षेप क्रम से बढ़ते जानना ।

उत्कृष्ट निक्षेप कहां होता है वह कहते हैं – किसी जीव ने पहले उत्कृष्ट स्थिति बांधी पश्चात् उसकी आबाधा में से एक आवली बीत गयी । उसके अनंतर उस समयप्रबद्ध का जो अंत निषेक था उसका अपकर्षण किया । वहां उसके द्रव्य को अंत के एक समय अधिक आवली मात्र निषेकों में तो न दिया, अवशेष वर्तमान समय में उदय योग्य निषेक से लेकर सर्व निषेकों में दिया । इसतरह पहले अपकर्षण क्रिया की । उसके पश्चात् अनंतर समय में पहले अपकर्षण क्रिया करके जो द्रव्य उदयावली *(द्वितीयावली होना चाहिए क्योंकि उदयावली में प्रविष्ट द्रव्य का उत्कर्षण, अपकर्षण आदि नहीं होता ।)* के प्रथम निषेक में दिया था उसका उत्कर्षण किया तब उसके द्रव्य को उस उत्कर्षण करने के समय में बंधे हुये उत्कृष्ट स्थिति युक्त समयप्रबद्ध

के आबाधा के ऊपर पाये जानेवाले जो प्रथमादि निषेक हैं उनमें अंत के समयप्रबद्ध के समय अधिक आवली मात्र निषेक छोड़कर अन्य सर्व निषेकों में निक्षेपण करते हैं । यहां एक समय अधिक आवली से हीन जो आबाधाकाल उसप्रमाण तो अतिस्थापन जानना । क्यों ? वह कहते हैं –

जिस द्वितीयावली के प्रथम निषेक का उत्कर्षण किया वह तो वर्तमान समय से लेकर एक समय अधिक आवली काल जानेपर उदय में आने योग्य है और जिन निषेकों में निक्षेपण किया वे वर्तमान समय से लेकर अभी बंधी हुयी स्थिति का आबाधाकाल पूर्ण होनेपर उदय में आने योग्य है । इसलिए इन दोनों के बीच एक समय अधिक आवली से हीन आबाधाकाल मात्र अंतराल हुआ । द्वितीयावली के प्रथम निषेक के द्रव्य को बीच में इतने निषेकों को उल्लंघ कर ऊपर के निषेकों में दिया, वही यहां अतिस्थापन का प्रमाण जानना । यहां एक समय अधिक आवली से युक्त जो आबाधाकाल उससे हीन जो उत्कृष्ट कर्मस्थिति उसप्रमाण उत्कृष्ट निक्षेप है । क्यों ? वह कहते हैं –

एक समय अधिक आवली मात्र तो अंत के निषेकों में नहीं दिया और आबाधाकाल में निषेकरचना है नहीं; इसलिए उत्कृष्ट स्थिति में से इतना घटाया । यहां इतना जानना कि अपकर्षण द्रव्य का नीचे के निषेकों में निक्षेपण किया उसका यदि उत्कर्षण होता है तो उसकी जितनी शक्तिस्थिति हो, वहां तक ही उत्कर्षण होता है, ऊपर नहीं होता ।

शक्तिस्थिति क्या है ? वह कहते हैं – विवक्षित समयप्रबद्ध का जो अंत का निषेक है, उसके तो सर्व ही स्थिति व्यक्तिस्थिति है । उसके नीचे-नीचे के निषेकों के क्रम से एक समय कम, दो समय कम आदि स्थिति व्यक्तिस्थिति है । परंतु प्रथमादि निषेकों की सर्व ही स्थिति शक्तिस्थिति है । उत्कर्षण किये हुये द्रव्य को जितनी शक्तिस्थिति हो वहां तक ही देते हैं ।

पहले जो निक्षेप और अतिस्थापन कहा उसका अंकसंदृष्टि द्वारा स्वरूप दिखाते हैं – जैसे, पहले समयप्रबद्ध हजार समय की स्थितिवाला बंधा । उसमें सोलह समय व्यतीत होनेपर अंत निषेक के द्रव्य को अपकर्षण करके आबाधा के ऊपर उस स्थिति के जो निषेक थे उनमें से अंत के सत्रह निषेक छोड़कर अन्य सर्व निषेकों में द्रव्य

दिया । उसके अनंतर समय में जो उस अंत निषेक का द्रव्य जो उत्कर्षण करने के समय से लेकर सत्रहवें समय में उदय आने योग्य ऐसे द्वितीयावली के प्रथम निषेक में दिया था उसका उत्कर्षण किया तब उस समय में हजार समय प्रमाण स्थितिबंध हुआ, उसकी पचास समय प्रमाण तो आबाधा है और नौ सौ पचास निषेक हैं । उन निषेकों में से अंत के सत्रह निषेक छोड़कर अन्य सर्व निषेकों में उस उत्कर्षण किये हुये द्रव्य का निक्षेपण करते हैं । इसतरह यहां वर्तमान समय से लेकर जिसका उत्कर्षण किया वह तो सत्रहवें समय में उदय आने योग्य था और जिस बंधे हुये समय प्रबद्ध के प्रथम निषेक में दिया वह इक्यावनवें समय में उदय आने योग्य है, इसलिए इनके बीच अंतराल तैंतीस समय हुआ वही अतिस्थापना जानना । हजार समय की स्थिति में से पचास समय आबाधा के, सत्रह निषेक अंत के घटानेपर अवशेष नौ सौ तैंतीस निषेकों में द्रव्य दिया, यह उत्कृष्ट निक्षेप जानना ।

अहवावलिगदवरठिदिपढमणिसेगे वरस्स बंधस्स ।
बिदियणिसेगप्पहुदिसु णिक्खित्ते जेट्ठणिक्खेओ ।।६५।।

अथवावलिगतवरस्थितिप्रथमनिषेके वरस्य बंधस्य ।
द्वितीयनिषेकप्रभृतिषु निक्षिप्ते ज्येष्ठनिक्षेपः ।।६५।।

टीका – अथवा किन्ही आचार्यों के मत से निक्षेपण में ऐसा निरूपण है – उत्कृष्ट स्थितिबंध किया था, उसकी बंधावली बीत जानेपर उसके प्रथम निषेक का उत्कर्षण करके उसके द्रव्य को उस उत्कर्षण के समय में बंधे हुये उत्कृष्ट स्थिति युक्त समयप्रबद्ध उसके द्वितीय निषेक से लेकर अंत में अतिस्थापनावली मात्र निषेक छोड़कर सर्व निषेकों में निक्षेपण किया । वहां एक समय और एक आवली और बन्धी स्थिति का आबाधाकाल इनसे हीन उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट निक्षेप होता है । यहां बंधी हुयी उत्कृष्ट स्थिति में आबाधाकाल में तो निषेकरचना नहीं है और प्रथम निषेक में द्रव्य नहीं दिया तथा अंत में अतिस्थापनावली में द्रव्य नहीं दिया, इसलिए पूर्वोक्त प्रमाण उत्कृष्ट निक्षेप जानना ।

यहां पूर्वोक्त प्रकार से अंकसंदृष्टि से कथन जानना ।

उक्कस्सट्ठिदिबंधे आबाहागा ससमयमावलियं ।
उदरियणणिसेगेसुक्कट्ठेसु अवरमावलियं ।।६६।।

उत्कृष्टस्थितिबंधे आबाधाग्रा ससमयामावलिकाम् ।
उदीर्यमाणनिषेकेषूत्कर्षेषु अवरमावलिकम् ।।६६।।

टीका – उत्कृष्ट स्थितियुक्त जो उत्कर्षण करने के समय में बंधा हुआ समयप्रबद्ध, उसके आबाधाकाल का अग्र अर्थात् अंत समय, उससे लेकर एक समय अधिक आवली मात्र समय पहले उदय आने योग्य ऐसा जो पूर्व सत्ता का निषेक उसका उत्कर्षण करनेपर आवली मात्र जघन्य अतिस्थापन होता है; क्योंकि उस द्रव्य को आबाधा में जो एक आवली मात्र काल रहा उसको अतिक्रम्य अर्थात् उल्लंघकर उस बंधे हुये समयप्रबद्ध के प्रथमादि निषेकों में अंत में अतिस्थापनावली छोड़कर निक्षेपण करता है ।

अंकसंदृष्टि से जैसे, हजार समय की स्थिति युक्त समयप्रबद्ध बंधा, उसका पचास समय आबाधाकाल उसके *(आबाधाकाल के)* अंत समय से लेकर सत्रह समय पहले उदय आने योग्य ऐसा वर्तमान समय से चौंतीसवें समय में उदय आने योग्य पूर्व सत्ता के निषेक का उत्कर्षण करके तत्काल बंधे समयप्रबद्ध का आबाधाकाल व्यतीत होने के पश्चात् प्रथमादि समय में उदय आने योग्य नौ सौ पचास निषेकों में से अंत के सत्रह निषेक छोड़कर नौ सौ तैंतीस निषेकों में निक्षेपण करता है । यहां उत्कर्षण किये निषेक के और दिये प्रथम निषेक के बीच में सोलह समय का अंतराल हुआ, वही जघन्य अतिस्थापना जानना ।

ओदरिय तदो बिदीयावलिपढमुक्कट्टणे वरं हेट्ठा ।
अइत्थावणमाबाहा समयजुदावलियपरिहीणा ।।६७।।

उदीर्य ततो द्वितीयावलिप्रथमोत्कर्षणे वरमधस्तना ।
अतिस्थापना आबाधा समययुतावलिकपरिहीना ।।६७।।

टीका – वहां से उतरकर उससे पहले उदय आने योग्य ऐसा अन्य कोई सत्तारूप समयप्रबद्ध संबंधी द्वितीयावली का प्रथम निषेक, जो वर्तमान समय से आवली काल

जाने के पश्चात् उदय आने योग्य है; उसका उत्कर्षण होनेपर नीचे एक समय अधिक आवली से हीन आबाधाकाल प्रमाण उत्कृष्ट अतिस्थापन होता है । समय अधिक आवली से हीन जो आबाधा उसको उल्लंघकर ऊपर के जो निषेक, उनमें अंत के अतिस्थापनावली मात्र निषेक छोड़कर अन्य निषेकों में उस द्रव्य को देता है ।

यहां पूर्वोक्त प्रकार से अंकसंदृष्टि आदि से कथन जान लेना ।

इसतरह यहां प्रसंग पाकर उत्कर्षण की अपेक्षा निक्षेपण और अतिस्थापन का विधान कहा । जहां उत्कर्षण या अपकर्षण से ऊपर के या नीचे के निषेकों में द्रव्य देना हो, वहां इस कथन के अनुसार विधान जानना । जिस निषेक का द्रव्य ग्रहण किया उस निषेक के द्रव्य को यहां निक्षेपरूप निषेकों में तो देता है और अतिस्थापनरूप निषेकों में नहीं देता । बहुत निषेकों का द्रव्य एक काल में ग्रहण करेंगे तो वहां भी जुदे-जुदे निषेकों के द्रव्य देने का, या न देने का विधान यहां कहे हुये कथन के अनुसार जानना ।

यहां जो व्याख्यान किया, उसमें मंदबुद्धियों को समझाने के लिये अंकसंदृष्टि आदि कथन किया है जो लब्धिसार की संस्कृत टीका में नहीं था; उसमें कहीं चूक होगी तो उसे ज्ञानी जन सुधारकर शुद्ध करें । इसप्रकार प्रसंग पाकर कथन किया ।

अब गुणश्रेणी का विधान कहते हैं –

उदयाणमावलिम्हि य उभयाणं बाहरम्मि खिवणट्ठं ।
लोयाणमसंखेज्जो कमसो उक्कट्ठणो हारो ।।६८।।

उदीयमानानामावलौ चोभयानां बाह्ये क्षेपणार्थम् ।
लोकानामसंख्येय: क्रमश उत्कर्षणो हार: ।।६८।।

टीका – जिन प्रकृतियों का उदय पाया जाता है, उन्हीं के द्रव्य का उदयावली में निक्षेपण होता है । उसके लिये असंख्यातलोक का भागहार जानना । पुनश्च जिन प्रकृतियों का उदय पाया जाता है अथवा जिनका उदय नहीं पाया जाता उन दोनों के द्रव्य का उदयावली के बाह्य गुणश्रेणी में और उपरितन स्थिति में निक्षेपण होता है । उसके लिये अपकर्षण भागहार जानना । क्रमश: इस वचन से पल्य के असंख्यातवें

भाग का भी भाग प्रकट करते हैं । इस कथन को आगे व्यक्त करके कहते हैं ।

ओक्कड्डिदइगिभागे पल्लासंखेण भाजिदे तत्थ ।
बहुभागमिदं दव्वं उव्वरिल्लठिदीसु णिक्खिवदि ।।६९।।

अपकर्षितैकभागे पल्यासंख्येन भाजिते तत्र ।
बहुभागमिदं द्रव्यमुपरितनस्थितिषु निक्षिपति ।।६९।।

टीका – यहां ऐसा जानना कि अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एक भाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग उपरितन स्थिति में निक्षेपण करता है । कर्म के सत्तारूप स्थिति के निषेकों में से वर्तमान समय से लेकर आवली काल में उदय आने योग्य निषेकों में जो द्रव्य दिया उसको उदयावली में दिया कहते हैं । उसके ऊपर गुणश्रेणी आयाम प्रमाण निषेकों में जो द्रव्य मिलाया, उसे गुणश्रेणी में दिया कहते हैं । उसके ऊपर अंत के अतिस्थापनावली मात्र निषेक छोड़कर सर्व निषेकों में जो द्रव्य दिया, वह उपरितन स्थिति में दिया कहते हैं ।

अब यहां मिथ्यात्व के उदाहरण द्वारा विधान कहते हैं – सर्व कर्म का सत्त्वरूप द्रव्य किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है । उसमें से आयुकर्म का द्रव्य घटाने के लिये किंचित् कम करके अवशेष को सात मूलप्रकृतियों के विभाग के लिये सात का भाग देनेपर मोहनीय का द्रव्य होता है । उसको देशघाति, सर्वघाति का विभाग करने के लिये अनंत का भाग देकर एकभाग मात्र सर्वघाति प्रकृतियों का द्रव्य होता है । उसके सोलह कषाय और एक मिथ्यात्व के विभाग करने के लिये सत्रह का भाग देनेपर मिथ्यात्व का द्रव्य होता है । इसको पहले पीठबंध में उक्त प्रमाणवाले अपकर्षण भागहार नामक भागहार का भाग देकर एकभाग बिना अवशेष बहुभाग तो पूर्व में सत्ता में जैसे अपने निषेकरचनारूप थे वैसे ही रहते हैं तथा जो एकभाग रहा उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग का उपरितन स्थिति में निक्षेपण करता है ।

सेसगभागे भजिदे असंखलोगेण तत्थ बहुभागं ।
गुणसेढीए सिंचदि सेसेगं च उदयम्हि ।।७०।।

शेषैकभागे भजितेऽसंख्यलोकेन तत्र बहुभागम् ।
गुणश्रेण्यां सिंचति शेषैकं च उदये ।।७०।।

टीका – अवशेष एकभाग रहा उसको असंख्यातलोक का भाग देकर वहां बहुभाग गुणश्रेणी आयाम में देना । अवशेष एकभाग उदयावली में देना ।

उदयावलिस्स दव्वं आवलिभजिदे दु होदि मज्झधणं ।
रूऊणद्धाणद्धेणूणेण णिसेयहारेण ।।७१।।

मज्झिमधणमवहरिदे पचयं पचयं णिसेयहारेण ।
गुणिदे आदिणिसेयं विसेसहीणे कमं तत्तो ।।७२।।

उदयावलेर्द्रव्यमावलिभजिते तु भवति मध्यधनम् ।
रूपोनाद्ध्वानार्धेनोनेन निषेकहारेण ।।७१।।

मध्यमधनमवहरिते प्रचयं प्रचयं निषेकहारेण ।
गुणिते आदिनिषेकं विशेषहीनं क्रमं ततः ।।७२।।

टीका – वहां उदयावली में दिये हुये द्रव्य को आवली के समयों के प्रमाण का भाग देनेपर मध्यधन आता है । उस मध्यधन को एक कम आवली प्रमाण गच्छ, उसका आधा करके निषेकहार अर्थात् दोगुणहानि में से घटाकर अवशेष का भाग देने पर चय का प्रमाण आता है । उस चय को दोगुणहानि से गुणा करनेपर आवली के प्रथम निषेक में दिये हुये द्रव्य का प्रमाण आता है । उससे द्वितीयादि निषेकों में दिया द्रव्य क्रम से एक-एक चय से घटते प्रमाण युक्त जानना । वहां एक कम आवली मात्र चय घटनेपर अंत निषेक में दिया द्रव्य का प्रमाण होता है । इसतरह उदयावली के निषेकों में दिये हुये द्रव्य का विभाग है ।

ओक्कड्डिदम्हि देदि हु असंखसमयप्पबद्धमादिम्हि ।
संखातीतगुणक्कममसंखहीणं विसेसहीणकमं ।।७३।।

अपकर्षिते ददाति हि असंख्यसमयप्रबद्धमादौ ।
संख्यातीतगुणक्रममसंख्यहीनं विशेषहीनक्रमम् ।।७३।।

टीका – गुणश्रेणी के लिये अपकर्षण किये हुये द्रव्य को, प्रथम समय की एक शलाका, उससे दूसरे की असंख्यातगुणी, उससे तीसरे की असंख्यातगुणी इसतरह अंत समय तक असंख्यातगुणा क्रम युक्त जो शलाका उनका जोड़ देकर, उसका भाग देनेपर जो प्रमाण आता है उसको अपनी-अपनी शलाका से गुणा करनेपर गुणश्रेणी आयाम के प्रथम निषेक में दिया हुआ द्रव्य असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण आता है; क्योंकि यहां भागहार पल्य के असंख्यातवें भाग ही का है । उससे द्वितीय निषेक से लेकर अंत निषेक तक के निषेकों में दिया हुआ द्रव्य क्रम से असंख्यातगुणा जानना । इसतरह गुणश्रेणी आयाम के निषेकों में दिये हुये द्रव्य का विभाग है ।

पुनश्च उपरितन स्थिति में दिये हुये द्रव्य को **'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा'** इस सूत्र द्वारा साधिक डेढ़ गुणहानि का भाग देनेपर उसके प्रथम निषेक में दिये हुये द्रव्य का प्रमाण होता है । वह गुणश्रेणी के अंत निषेक में दिये हुये द्रव्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है । उससे प्रथम गुणहानि को द्वितीयादि निषेकों में दिया हुआ द्रव्य चय घटते क्रम से युक्त है । ऊपर गुणहानि-गुणहानि प्रति निषेकों का आधा-आधा द्रव्य जानना । इसतरह गुणश्रेणी करने के प्रथम समय में अपकर्षण किये हुये द्रव्य को तीन जगह दिया, उसकी संदृष्टि आगे लिखेंगे वहां देखना ।

पडिसमयं उक्कड्ढदि असंखगुणियक्कमेण सिंचदि य ।
इदि गुणसेढीकरणं आउगवज्जाण कम्माणं ।।७४।।

प्रतिसमयमपकर्षति असंख्यगुणितक्रमेण सिंचति च ।
इति गुणश्रेणीकरणमायुष्कवर्ज्यानां कर्मणाम्।।७४।।

टीका – गुणश्रेणी करने के द्वितीय समय से अंत समय तक के समयों में प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम सहित द्रव्य को अपकर्षण करता है । **सिंचति** अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार से उदयावली आदि में उसका निक्षेपण करता है । इसतरह मिथ्यात्ववत् आयु बिना सात कर्मों का गुणश्रेणी विधान प्रतिसमय होता है, वह जानना ।

आगे गुणसंक्रमण का स्वरूप कहते हैं –

पडिसमयमसंखगुणं दव्वं संकमदि अप्पसत्थाणं ।
बंधुज्झियपयडीणं बंधंतसजादिपयडीसु ।।७५।।

प्रतिसमयमसंख्यगुणं द्रव्यं संक्रामति अप्रशस्तानां ।
बंधोज्झितप्रकृतीनां बध्यमानसजातिप्रकृतिषु ।।७५।।

टीका – गुणसंक्रमण अपूर्वकरण के पहले समय में नहीं होता, अपने योग्य काल में होता है । तथापि उसका स्वरूप यहां कहते हैं –

जिनका बंध नहीं पाया जाता ऐसी अप्रशस्त प्रकृतियों का द्रव्य प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम सहित जिनका बंध पाया जाता है ऐसी स्वजाति प्रकृतियों में संक्रमण करता है । अपने स्वरूप को छोड़कर तद्रूप परिणमता है ।

एवंविह संकमणं पढमकसायाण मिच्छमिस्साणं ।
संजोजणखवणाए इदरेसिं उभयसेढिम्मि ।।७६।।

एवंविधं संक्रमणं प्रथमकषायाणां मिथ्यमिश्रयोः ।
संयोजनक्षपणयोरितरेषामुभयश्रेणौ ।।७६।।

टीका – ऐसा असंख्यातगुणा क्रम युक्त जो संक्रमण, उसको गुणसंक्रमण कहते हैं । अनंतानुबंधी कषायों का *(कषाय कर्मों का)* गुणसंक्रमण तो उसके विसंयोजन में होता है; मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीय का गुणसंक्रमण उनकी क्षपणा में होता है और अन्य प्रकृतियों का गुणसंक्रमण उपशमक और क्षपक श्रेणियों में होता है । जैसे, श्रेणी मे बंध रहित जो असातावेदनीय, उसका द्रव्य बध्यमान सजातीय सातावेदनीय में संक्रमण करता है, वह कहते हैं –

साता का निरंतर बंधने का काल अंतर्मुहूर्त और असाता का उससे संख्यातगुणा, दोनों को मिलाकर उसका भाग वेदनीय कर्म के द्रव्य को देकर अपने-अपने काल से गुणा करनेपर सातावेदनीय का द्रव्य वेदनीय के द्रव्य के संख्यातवें भाग मात्र आता है और असातावेदनीय का उससे संख्यातगुणा आता है । श्रेणी में यह असाता का

द्रव्य प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम सहित सातारूप होकर परिणमित होता है । वहां गुणसंक्रमण जानना । इसीतरह अन्य का यथासंभव जानना ।

आगे स्थितिकांडकघात का स्वरूप कहते हैं –

पढमं अवरवरट्ठिदिखंडं पल्लस्स संखभागं तु ।
सायरपुधत्तमेत्तं इदि संखसहस्सखंडाणि ।।७७।।

प्रथममवरवरस्थितिखंडं पल्यस्य संख्येयभागं तु ।
सागरपृथक्त्वमात्रमिति संख्यसहस्रखंडानि ।।७७।।

टीका – अपूर्वकरण के पहले समय में किया हुआ स्थितिखंड अर्थात् स्थितिकांडक आयाम जघन्य तो पल्य के संख्यातवें भाग मात्र और उत्कृष्ट पृथक्त्वसागर प्रमाण है । पृथक्त्व नाम सात वा आठ का जानना । एक कांडक द्वारा इतनी स्थिति घटाते हैं । यद्यपि यहां स्थितिसत्त्व सामान्य से अंत:कोडाकोडी है तथापि किसी के तो अंत:कोडाकोडी पल्य मात्र जघन्य स्थितिसत्त्व है, किसी के अंत:कोडाकोडी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व है; इसलिए स्थिति के अनुसार कांडक भी जघन्य, उत्कृष्ट है, मध्य में कांडक के भेद असंख्यात हैं । उनमें संख्यातगुणे स्थिति के भेद हैं, इसलिए संख्यात स्थितिभेदों में एक कांडक भेद पाया जाता है । अंकसंदृष्टि से कांडकभेद पांच, स्थितिभेद पंद्रह । वहां त्रैराशिक करनेपर एक कांडकभेद में तीन स्थितिभेद होंगे । ऐसे एक-एक स्थितिकांडक का घात अंतर्मुहूर्त काल द्वारा होता है, ऐसे स्थितिकांडक अपूर्वकरण के काल में संख्यात हजार होते हैं, क्योंकि अपूर्वकरण के काल के संख्यातवें भाग मात्र स्थितिकांडक का काल है ।

आउगवज्जाणं ठिदिघादो पढमादु चरिमठिदिसत्तो ।
ठिदिबंधो य अपुव्वो होदि हु संखेज्जगुणहीणो ।।७८।।

आयुष्कवर्ज्यानां स्थितिघात: प्रथमाच्चरमस्थितिसत्त्वं ।
स्थितिबंधश्चापूर्वो भवति हि संख्येयगुणहीन: ।।७८।।

टीका – अपूर्वकरण के पहले समय में जो स्थितिखंड, स्थितिसत्त्व और

स्थितिबंध पाये जाते हैं, उनसे उसके अंत समय में वे संख्यातगुणे हीन हैं । यहां संख्यात हजार स्थितिकांडकघात द्वारा स्थितिसत्त्व का संख्यातगुणा हीन होना जानना । स्थिति के अनुसार स्थितिकांडक का प्रमाण होता है इसलिए स्थितिकांडक का संख्यातगुणा हीन होना जानना । संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण करके स्थिति के अनुसार स्थितिबंध का संख्यातगुणा हीन होना जानना ।

आगे अनुभागकांडकघात को कहते हैं –

एक्केक्कट्ठिदिखंडयणिवडणठिदिबंधओसरणकाले ।
संखेज्जसहस्साणि य णिवडंतिरसस्स खंडाणि ।।७९।।

एकैकस्थितिकांडकनिपतनस्थितिबंधापसरणकाले ।
संख्येयसहस्राणि च निपतंति रसस्य खंडानि ।।७९।।

टीका – जिसके द्वारा एक बार स्थितिसत्त्व घटाते हैं ऐसा स्थितिकांडकोत्करण काल और जिसके द्वारा एक बार स्थितिबंध घटाते हैं ऐसा स्थितिबंधापसरण काल ये दोनों समान अंतर्मुहूर्त मात्र हैं । उस एक *(अंतर्मुहूर्त)* में जिसके द्वारा अनुभागसत्त्व घटाते हैं ऐसे अनुभागखंडोत्करण काल संख्यात हजार होते हैं क्योंकि उस काल से यह अनुभागखंडोत्करण काल संख्यातवें भाग मात्र है ।

असुहाणं पयडीणं अणंतभागा रसस्स खंडाणि ।
सुहपयडीणं णियमा णत्थि त्ति रसस्स खंडाणि ।।८०।।

अशुभानां प्रकृतीनामनंतभागा रसस्य खंडानि ।
शुभप्रकृतीनां नियमान्नास्तीति रसस्य खंडानि ।।८०।।

टीका – अप्रशस्त जो असातादि प्रकृतियां, उनका अनुभागकांडक आयाम अनंत बहुभाग मात्र है । अपूर्वकरण के पहले समय में जो अनुभागसत्त्व पाया जाता है, उसको अनंत का भाग देकर वहां एक कांडक द्वारा बहुभाग घटाता है , एकभाग अवशेष रखता है । यह प्रथम खंड हुआ, इसको अनंत का भाग देकर दूसरे कांडक द्वारा बहुभाग घटाकर एकभाग अवशेष रखता है । इसतरह एक-एक अंतर्मुहूर्त में

एक-एक अनुभागकांडकघात होता है । वहां एक अनुभागकांडकोत्करण काल में प्रतिसमय एक-एक फालि का घटाना होता है । सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभागकांडकघात नियम से नहीं है ।

रसगदपदेसगुणहाणिट्ठाणगफड्ढयाणि थोवाणि ।
अइत्थावणणिक्खेवे रसखंडेणंतगुणियकमा ।।८१।।

रसगतप्रदेशगुणहानिस्थानकस्पर्धकानि स्तोकानि ।
अतिस्थापननिक्षेपे रसखंडेऽनंतगुणितक्रमाणि ।।८१।।

टीका – अनुभाग को प्राप्त कर्म परमाणु संबंधी एक गुणहानि में स्पर्धकों का प्रमाण अल्प है । उससे अनंतगुणे अतिस्थापनारूप स्पर्धक हैं । उससे अनंतगुणे निक्षेपरूप स्पर्धक हैं । उससे अनंतगुणे अनुभागकांडक आयाम है । यहां ऐसा जानना –

कर्मों के अनुभाग में स्पर्धकरचना है, वहां प्रथमादि स्पर्धक अल्प अनुभाग युक्त हैं । ऊपर के स्पर्धक बहुत अनुभाग युक्त हैं । वहां उन सर्व स्पर्धकों को अनंत का भाग देकर बहुभाग मात्र ऊपर के स्पर्धकों के परमाणुओं को एकभाग मात्र नीचे के स्पर्धकों में से कितने ही ऊपर के छोड़कर नीचे के स्पर्धकोंरूप परिणमाता है । वहां कितने ही परमाणुओं को पहले समय में परिणमाता है । कितने ही दूसरे समय में परिणमाता है, इसतरह अंतर्मुहूर्त काल में सर्व परमाणुओं को परिणमाकर उन ऊपर के स्पर्धकों का अभाव करता है । यहां प्रतिसमय जितना द्रव्य ग्रहण किया उसका नाम फालि है और इसतरह अंतर्मुहूर्त द्वारा जो कार्य किया उसका नाम कांडक है । उस कांडक द्वारा जिन स्पर्धकों का अभाव किया वह कांडकायाम है । उनके द्रव्य को कांडकघात करने के पश्चात् अवशेष रहे स्पर्धकों में से प्रथमादि स्पर्धकों में मिलाया, वे तो निक्षेपकरूप हैं और जिन ऊपर के स्पर्धकों में नहीं मिलाया वे अतिस्थापनरूप हैं ।

पढमापुव्वरसादो चरिमे समये पसत्थइदराणं ।
रससत्तमणंतगुणं अणंतगुणहीणयं होदि ।।८२।।

प्रथमापूर्वरसात् चरमे समये प्रशस्तेतरेषाम् ।
रससत्त्वमनंतगुणमनंतगुणहीनकं भवति ।।८२।।

टीका – अपूर्वकरण के प्रथम समय संबंधी प्रशस्त-अप्रशस्त प्रकृतियों का जो अनुभागसत्त्व होता है, उससे उसके अंत समय में प्रशस्त प्रकृतियों का अनंतगुणा बढ़ते और अप्रशस्त प्रकृतियों का अनंतगुणा घटते अनुक्रम से अनुभागसत्त्व होता है । यहां प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धता होने से प्रशस्त प्रकृतियों का अनंतगुणा और अनुभागकांडकघात के माहात्म्य *(बड़ा प्रमाण)* द्वारा अप्रशस्त प्रकृतियों का अनंतवें भाग प्रमाण अनुभाग अंत समय में पाया जाता है ।

आगे अनिवृत्तिकरण के कार्य कहते हैं –

बिदियं व तदियकरणं पडिसमयं एक्क एक्क परिणामो ।
अण्णं ठिदिरसखंडे अण्णं ठिदिबंधमाणुवई ।।८३।।

द्वितीयमिव तृतीयकरणं प्रतिसमयमेक एकः परिणामः ।
अन्ये स्थितिरसखंडे अन्यत् स्थितिबंधमाप्नोति ।।८३।।

टीका – दूसरे अपूर्वकरण में कहे हुये स्थितिखंड आदि कार्यविशेष उस अनिवृत्तिकरण में भी जानना । विशेष इतना है कि यहां समान समयवर्ती नाना जीवों के एकसा परिणाम है, इसलिए नहीं है निवृत्ति अर्थात् परस्पर परिणामों में भेद जिनके, वे अनिवृत्तिकरण हैं । इसलिए प्रतिसमय एक-एक परिणाम ही है । यहां अन्य ही प्रमाणवाला स्थितिखंड, अनुभागखंड और स्थितिबंध का प्रारंभ होता है, क्योंकि अपूर्वकरण संबंधी जो स्थितिखंडादि हैं उनका उनके अंत समय में ही समाप्तपना हुआ ।

संखेज्जदिमे सेसे दंसणमोहस्स अंतरं कुणई ।
अण्णं ठिदिरसखंडं अण्णं ठिदिबंधणं तत्थ ।।८४।।

संख्येये शेषे दर्शनमोहस्यांतरं करोति ।
अन्यत् स्थितिरसखंडमन्यत् स्थितिबंधनं तत्र ।।८४।।

टीका – ऐसे स्थितिखंडादि द्वारा अनिवृत्तिकरण काल के संख्यात भागों में से

बहुभाग व्यतीत होकर एकभाग अवशेष रहनेपर दर्शनमोह का अंतर करता है । विवक्षित कितने ही निषेकों के सर्व द्रव्य को अन्य निषेकों में निक्षेपण करके उन निषेकों का अभाव करना, उसे अंतरकरण कहते हैं । वहां उसके काल के प्रथम समय में अन्य ही स्थितिखंड, अनुभागखंड और स्थितिबंध का प्रारंभ होता है ।

एयट्ठिदिखंडुक्कीरणकाले अंतरस्स णिप्पत्ती ।
अंतोमुहुत्तमेत्ते अंतरकरणस्स अद्धणं ।।८५।।

एकस्थितिखंडोत्करणकाले अंतरस्य निष्पत्तिः ।
अंतर्मुहूर्तमात्रमंतरकरणस्याध्वा ।।८५।।

टीका – एक स्थितिखंडोत्करण काल में अंतर की निष्पत्ति होती है । एक स्थितिकांडकोत्करण का जितना काल है, उतने काल द्वारा अंतर करता है । इसको अंतरकरणकाल कहते हैं, यह अंतर्मुहूर्त मात्र है ।

गुणसेढीए सीसं तत्तो संखगुणं उवरिमठिदिं च ।
हेट्ठुवरिम्हि य आबाहुज्झिय बंधम्हि संथुहदि ।।८६।।

गुणश्रेण्याः शीर्षं ततः संख्यगुणं उपरितनस्थितिं च ।
अधस्तनोपरि चाबाधोज्झित्वा बंधे संपातयति ।।८६।।

टीका – गुणश्रेणी आयाम में अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण से जो अधिक प्रमाण अनिवृत्तिकरण का संख्यातवां भाग मात्र कहा था, उसका नाम यहां गुणश्रेणीशीर्ष है । यहां गुणश्रेणीशीर्ष के सर्व निषेक और इससे संख्यातगुणा गुणश्रेणीशीर्ष के ऊपरवर्ती ऐसे उपरितन स्थिति के सर्व निषेक इन दोनों को मिलानेपर अंतरायाम होता है । इतने निषेकों का अभाव करता है, वह भी अंतर्मुहूर्त मात्र है । यहां शीर्ष के नीचे अनिवृत्तिकरण के अवशेष काल मात्र गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम अनिवृत्तिकरण के संख्यातवें भाग प्रमाण है वह भी शीर्ष से संख्यातगुणा है । वहां अंतरायाम में स्थित निषेकों के द्रव्य की प्रतिसमय अनंतगुणा क्रम युक्त जो फालि, उनका ग्रहण करके उस समय बंधनेवाला जो मिथ्यात्व कर्म, उसके स्थिति का

आबाधाकाल छोड़कर अंतरायाम समान निषेकों के नीचे और ऊपर के जो निषेक उनमें निक्षेपण करता है । अंतरायाम समान काल संबंधी निषेकों में निक्षेपण नहीं करता । वहां अनादि मिथ्यादृष्टि जीव तो मिथ्यात्व ही का और सादि मिथ्यादृष्टि तीनों दर्शनमोह का अंतर करता है । अंतरकरण करने के काल के प्रथम समय से लेकर जो अनिवृत्तिकरण काल का संख्यातवां भागमात्र काल अवशेष रहा उसको संख्यात का भाग देकर वहां एकभाग मात्र तो अंतरकरण काल है और उसके ऊपर अवशेष बहुभाग मात्र प्रथम स्थिति का काल है । उसके ऊपर जिन निषेकों का अभाव किया वह अंतर्मुहूर्तमात्र अंतरायाम है ।

अंतरकदपढमादो पडिसमयमसंखगुणिदमुवसमदि ।
गुणसंकमेणदंसणमोहणियं जाव पढमठिदी ।।८७।।

अंतरकृतप्रथमत: प्रतिसमयमसंख्यगुणितमुपशाम्यति ।
गुणसंक्रमेण दर्शनमोहनीयं यावत् प्रथमस्थिति: ।।८७।।

टीका – इसतरह एक स्थितिकांडकोत्करण काल के समान काल के द्वारा किया है अंतर जिसने ऐसा अंतरकृत हुआ । उस काल के अनंतरवर्ती जो समय है वह प्रथम स्थिति का प्रथम समय है; उससे लेकर उसीके अंत समय तक प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम सहित जो अंतरायाम के ऊपरवर्ती निषेक, उनरूप जो द्वितीय स्थिति उसमें स्थित दर्शनमोह के द्रव्य को, पीठ में कहे हुये प्रमाणवाला जो गुणसंक्रमण भागहार, उसका भाग देनेपर जो प्रमाण आया, उतने द्रव्य के समूहरूप जो फालि, उनको उपशमाता है ।

[***विशेषार्थ*** – *अंतर करने के पश्चात् प्रथम स्थिति के निषेक उदय में आते हैं । जब तक एक-एक निषेक उदय में आता रहता है, तब तक प्रतिसमय द्वितीय स्थिति में स्थित दर्शनमोह के द्रव्य को उपशमाता है । प्रत्येक समय में असंख्यातगुणा क्रम से द्रव्य को उपशमाया जाता है । उसका प्रमाण लाने के लिये द्वितीय स्थिति के द्रव्य को गुणसंक्रमण भागहार का भाग देते हैं । जिसका प्रमाण पीठबंध में कह आये हैं ।*]

उदय आदि होने के अयोग्य करना, वह उपशम करना है । यद्यपि अध:करण ही से यह जीव दर्शनमोह का उपशमक ही है, तथापि इस दर्शनमोह के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेशों का निरवशेषपने यहां उपशमक कहते हैं ।

पढमट्ठिदियावलिपडिआवलिसेसेसु णत्थि आगाला ।
पडिआगाला मिच्छत्तस्य य गुणसेढिकरणं पि ।।८८।।

प्रथमस्थितावावलिप्रत्यावलिशेषेषु नास्ति आगाला: ।
प्रत्यागाला मिथ्यात्वस्य च गुणश्रेणिकरणमपि ।।८८।।

टीका – प्रथम स्थिति में आवली, प्रत्यावली अर्थात् उदयावली और द्वितीयावली एक समय अधिक अवशेष रहे, वहां आगाल, प्रत्यागाल और मिथ्यात्व की गुणश्रेणी नहीं होती । दर्शनमोह बिना अन्य कर्मों की गुणश्रेणी होती ही है । वहां मिथ्यात्व की उदयावली में निक्षेपण करनेरूप केवल उदीरणा ही होती है, वह कहते हैं –

समय अधिक द्वितीयावली के निषेकों के द्रव्य को असंख्यातलोक का भाग देकर जो प्रमाण आता है, उतने द्रव्य को उदयावली के निषेकों में अंत के एक समय कम आवली के दो तृतीयांश भाग मात्र निषेकों को अतिस्थापनरूप करके नीचे के एक समय अधिक आवली के त्रिभाग मात्र निषेकों में निक्षेपण करता है । इसतरह प्रतिसमय उदीरणा पायी जाती है ।

द्वितीय स्थिति के निषेकों के द्रव्य को अपकर्षण द्वारा प्रथम स्थिति के निषेकों में प्राप्त करना, उसका नाम आगाल है ।

प्रथम स्थिति के निषेकों के द्रव्य को उत्कर्षण द्वारा द्वितीय स्थिति के निषेकों में प्राप्त करना, उसका नाम प्रत्यागाल है ।

उस प्रथम स्थिति में एक प्रत्यावली ही अवशेष रहनेपर *(जो उदयावलीरूप होती है)* उदीरणा भी नहीं होती । उस प्रत्यावली के निषेकों का प्रतिसमय अधोगलन ही है । एक-एक समय व्यतीत होनेपर एक-एक निषेक खिरता *(निर्जरित होता)* है । उपशम विधान प्रथम स्थिति के अंत तक होता है । वहां दर्शनमोह के द्रव्य को गुणसंक्रमण भागहार का भाग देकर प्रथम स्थिति के प्रथम समय में उपशम करने

योग्य जो प्रथम फालि, उसका द्रव्य होता है *(उसके द्रव्य का प्रमाण आता है)*; उससे असंख्यातगुणा द्वितीय समय संबंधी द्वितीय फालि का द्रव्य होता है । इसी क्रम से एक कम प्रथम स्थिति के समय प्रमाण बार असंख्यात का गुणकार होनेपर अंत फालि का द्रव्य होता है ।

अंतरपढमं पत्ते उपसमणामो हु तत्थ मिच्छत्तं ।
ठिदिरसखंडेण विणा उवट्टाइदूण कुणदि तिधा ।।८९।।

अंतरप्रथमं प्राप्ते उपशमनाम हि तत्र मिथ्यात्वम् ।
स्थितिरसखंडेन विना उपस्थापयित्वा करोति त्रिधा ।।८९।।

टीका – इसतरह अनिवृत्तिकरण काल समाप्त होनेपर उसके अनंतर अंतरायाम के प्रथम समय को प्राप्त होते ही दर्शनमोह और अनंतानुबंधी चतुष्क के प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग इनका समस्तपने उदय होने अयोग्य उपशम होने से तत्त्वार्थश्रद्धानरूप औपशमिक सम्यग्दर्शन को पाकर जीव औपशमिक सम्यग्दृष्टि होता है । वहां प्रथम समय में द्वितीय स्थिति में स्थित मिथ्यात्वरूप द्रव्य को स्थितिकांडक या अनुभागकांडक घात बिना गुणसंक्रमण का भाग देकर तीन प्रकार परिणमाता है । *(गुणसंक्रमण करता है ।)*

मिच्छत्तमिस्ससम्मसरूवेण य तत्तिधा य दव्वादो ।
सत्तीदो य असंखाणंतेण य होंति भजियकमा ।।९०।।

मिथ्यात्वमिश्रसम्यस्वरूपेण च तत्त्रिधा च द्रव्यतः ।
शक्तितश्च असंख्यानंतेन च भवंति भजितक्रमाः ।।९०।।

टीका – मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यक्त्व मोहनीय रूप करके तीन प्रकार का होता है । वह क्रम से द्रव्य अपेक्षा असंख्यातवें भाग मात्र और अनुभाग अपेक्षा अनंतवें भाग मात्र जानना । वही कहते हैं – मिथ्यात्व के परमाणुरूप जो द्रव्य, उसको गुणसंक्रमण भागहार का भाग देकर एक अधिक असंख्यात से गुणा करता है, इतने द्रव्य बिना समस्त द्रव्य मिथ्यात्वरूप ही रहा और गुणसंक्रमण भागहार से भाजित मिथ्यात्व द्रव्य

को असंख्यात से गुणा करें इतना द्रव्य मिश्रमोहनीयरूप परिणमित हुआ और गुणसंक्रमण भागहार से भाजित मिथ्यात्व द्रव्य को एक से गुणा करें इतना द्रव्य सम्यक्त्वमोहनीयरूप परिणमित हुआ; इसलिए द्रव्य अपेक्षा असंख्यातवें भाग का क्रम आया ।

पुनश्च अनुभाग अपेक्षा संख्यात अनुभागकांडकों के घात द्वारा जो मिथ्यात्व का अनुभाग पूर्व अनुभाग के अनंतवें भाग मात्र अवशेष रहा, उसके अनंतवें भाग मिश्रमोहनीय का अनुभाग है और इसके अनंतवें भाग सम्यक्त्वमोहनीय का अनुभाग है । इसतरह अनुभाग अपेक्षा अनंतवें भाग का क्रम आया ।

पढमादो गुणसंकमचरिमो त्ति य सम्ममिस्ससम्मिस्से ।
अहिगदिणाऽसंखगुणो विज्झादो संकमो तत्तो ।।९१।।

प्रथमात् गुणसंक्रमचरम इति च सम्यग्मिश्रसंमिश्रे ।
अहिगतिनासंख्यगुणो विध्यातः संक्रमः ततः ।।९१।।

टीका – अनिवृत्तिकरण के अनंतर गुणसंक्रमण काल के प्रथम समय से लेकर अंत समय तक सर्प की चालवत् प्रतिसमय असंख्यातगुणा संक्रमण सहित मिथ्यात्व का द्रव्य सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीयरूप परिणमता है । वही कहते हैं –

पहले समय में सम्यक्त्व प्रकृति का द्रव्य अल्प है, उससे असंख्यातगुणा मिश्रमोहनीय का द्रव्य है । उससे असंख्यातगुणा दूसरे समय में सम्यक्त्वप्रकृति का द्रव्य है, उससे असंख्यातगुणा *(उसी समय का)* मिश्रमोहनीय का द्रव्य है । उससे असंख्यातगुणा तीसरे समय में सम्यक्त्वप्रकृति का द्रव्य है, उससे अंख्यातगुणा मिश्रमोहनीयरूप का द्रव्य है । इसतरह सर्प की चालवत् सम्यक्त्वमोहनीय से मिश्रमोहनीयरूप और मिश्रमोहनीय से सम्यक्त्वमोहनीयरूप परिणत द्रव्य असंख्यातगुणा क्रम से अंत समय तक जानना । वहां अंत समय में, गुणसंक्रमण काल संख्यात आवली मात्र है उसमें से दो घटाकर उसको दोगुणा करके उसमें दो मिलायें इतनी बार सम्यक्त्वमोहनीय के असंख्यात का गुणकार होता है तथा संख्यात आवली में से एक घटाकर उसको दोगुणा करके उसमें एक मिलायें इतनी बार मिश्रमोहनीय के असंख्यात का गुणकार होता है । पुनश्च गुणसंक्रमण काल के अंत

समय तक मिथ्यात्व बिना अन्य कर्मों की गुणश्रेणी, स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात पाया जाता है ।

उसके अनंतर गुणसंक्रमण होने के पश्चात् अवशेष रहे मिथ्यात्व द्रव्य को विध्यात संक्रमण नामक भागहार का भाग देकर जो प्रमाण आता है उतने द्रव्य को सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीयरूप परिणमाता है । विध्यात शब्द का अर्थ मंद है । यहां विशुद्धता मंद हुयी है; इसलिए सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण जो विध्यात संक्रम भागहार, उसका भाग देनेपर अल्प द्रव्य आया, उसी को उनरूप परिणमाता है ।

बिदियकरणादिमादो गुणसंकमपूरणस्सकालो त्ति ।
वोच्छं रसखंडुक्कीरणकालादीणमप्प बहु ।।९२।।

द्वितीयकरणादिमात् गुणसंक्रमपूरणस्य काल इति ।
वक्ष्ये रसखंडोत्करणकालादीनामल्पं बहु ।।९२।।

टीका – अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर गुणसंक्रमण काल के पूर्ण होने तक होनेवाले अनुभागकांडकोत्करण काल आदि का अल्पबहुत्व कहते हैं ।

अंतिमरसखंडुक्कीरणकालादो दु पढमओ अहिओ ।
तत्तो संखेज्जगुणो चरिमट्ठिदिखंडहदिकालो ।।९३।।

अंतिमरसखंडोत्करणकालतस्तु प्रथमो अधिकः ।
ततः संख्यातगुणः चरमस्थितिखंडहतिकालः ।।९३।।

टीका – दर्शनमोहनीय का तो प्रथम स्थिति के अंत में होनेवाला और अन्य कर्मों के गुणसंक्रमण काल के अंत समय में होनेवाला ऐसा जो अनुभागकांडक, उसके घात करने का जो अंतर्मुहूर्त मात्र काल, वह अंत का अनुभागखंडोत्करण काल है, वह आगे कहे जानेवालों से अल्प है । इससे इसीके संख्यातवें भागमात्र विशेष से अधिक अपूर्वकरण के प्रथम समय में जिसका आरंभ हुआ ऐसा अनुभागकांडकोत्करण का काल है । इससे संख्यातगुणा अंत का स्थितिकांडकोत्करण काल और स्थितिबंधापसरण काल ये दोनों परस्पर समान हैं ।

तत्तो पढमो अहिओ पूरणगुणसेढिसीसपढमठिदी ।
संखेण य गुणियकमा उवसमगद्धा विसेसहिया ।।९४।।

ततः प्रथमः अधिकः पूरणगुणश्रेणीशीर्षप्रथमस्थितिः ।
संख्येन च गुणितक्रमा उपशमकाद्धा विशेषाधिकाः ।।९४।।

टीका – उससे उसी के संख्यातवें भाग मात्र विशेष से अधिक अंतरकरण काल है और वहां अंतरकरण करते समय होनेवाला स्थितिबंधापसरण काल ये दोनों परस्पर समान हैं । उससे उसीके संख्यातवें भाग मात्र विशेष से अधिक अपूर्वकरण के पहले समय में जिनका प्रारंभ हुआ ऐसे स्थितिकांडकोत्करण काल और स्थितिबंधापसरण काल ये दोनों परस्पर समान हैं । उससे संख्यातगुणा गुणसंक्रमण पूरण करने का काल है । उससे संख्यातगुणा गुणश्रेणीशीर्ष है । उससे संख्यातगुणा प्रथम स्थिति का आयाम है । उससे एक समय कम दो आवली मात्र विशेष से अधिक दर्शनमोह के उपशमाने का काल है ।

अणियट्टीसंखगुणो णियट्टिगुणसेढियायदं सिद्धं ।
उवसंतद्धा अंतर अवरवरावाह संखगुणियकमा ।।९५।।

अनिवृत्तिसंख्यगुणं निवृत्तिगुणश्रेण्यायतं सिद्धम् ।
उपशांताद्धा अंतरमवरवराबाधा संख्यगुणितक्रमा ।।९५।।

टीका – उससे संख्यातगुणा अनिवृत्तिकरण का काल है । उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण का काल है । उससे अनिवृत्तिकरण का काल और उसका संख्यातवां भाग मात्र विशेष से अधिक गुणश्रेणी आयाम है । उससे संख्यातगुणा औपशमिक सम्यक्त्व का काल है । उससे संख्यातगुणा अंतरायाम है । उससे संख्यातगुणा जघन्य आबाधा है, वह मिथ्यात्व की तो प्रथम स्थिति के अंत समय में और अन्य कर्मों की गुणसंक्रमण काल के अंत समय में जो स्थिति बंधती है उसकी आबाधा जानना । उससे संख्यातगुणी उत्कृष्ट आबाधा है, जो अपूर्वकरण के प्रथम समय में होनेवाले स्थितिबंध की आबाधा है ।

पढमापुव्वजहण्णट्ठिदिखंडमसंखसंगुणं तस्स ।
अवरवरट्ठिदिबंधा तट्ठिदिसत्ता य संखगुणियकमा ।।९६।।

प्रथमापूर्वजघन्यस्थितिखंडमसंख्यसंगुणं तस्य ।
अवरवरस्थितिबंधस्तत्स्थितिसत्त्वं च संख्यगुणितक्रमं ।।९६।।

टीका – उससे असंख्यातगुणा *(कई हस्तलिखित प्रतियों में संख्यातगुणा लिखा है)* जघन्य स्थितिकांडकायाम है, जो प्रथम स्थिति में एक स्थितिकांडकोत्करण काल अवशेष रहनेपर जो अंत का स्थितिखंड पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण प्रारंभ किया उसे ग्रहण करना । उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण के प्रथम समय में होनेवाला उत्कृष्ट स्थितिकांडकायाम पृथक्त्व सागर प्रमाण है । उससे संख्यातगुणा प्रथम स्थिति के अंत समय में होनेवाला मिथ्यात्व का जघन्य स्थितिबंध है । उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण के प्रथम समय में होनेवाला उत्कृष्ट स्थितिबंध है । उससे संख्यातगुणा प्रथम स्थिति के अंत समय में होनेवाला मिथ्यात्व का जघन्य स्थितिसत्त्व है । उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण के प्रथम समय में होनेवाला उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व है । यहां जघन्य स्थितिबंध आदि चार पदों का प्रमाण सामान्यपने से अंत:कोडाकोडी सागर प्रमाण है । इसतरह पच्चीस जगह अल्पबहुत्व कहा ।

अंतोकोडाकोडी जाहे संखेज्जसायरसहस्से ।
णूणा कम्माण ठिदी ताहे उवशमगुणं गहइ ।।९७।।

अंत:कोटीकोटिर्यदा संख्येयसागरसहस्रेण ।
न्यूना कर्मणां स्थिति: तदा उपशमगुणं गृण्हाति ।।९७।।

टीका – जिस अंतरायाम के प्रथम समय में संख्यात हजार सागर से हीन अंत:कोडाकोडी मात्र स्थितिसत्त्व हो, उस समय में उपशम सम्यक्त्व गुण को ग्रहण करता है ।

तट्ठाणे ठिदिसत्तो आदिमसम्मेण देससयलजमं ।
पडिवज्जमाणगस्स वि संखेज्जगुणेण हीणकमो ।।९८।।

तत्स्थाने स्थितिसत्त्वं आदिमसम्येन देशसकलयमं ।
प्रतिपद्यमानस्याऽपि संख्येयगुणेन हीनक्रमं ।।९८।।

टीका – उसी अंतरायाम के प्रथम समयरूप स्थान में यदि देशसंयम सहित प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करे तो उसके स्थितिसत्त्व पूर्वोक्त से संख्यातगुणा हीन होता है और यदि सकलसंयम सहित प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करता है – प्राप्त होता है – तो उसके स्थितिसत्त्व उससे भी संख्यातगुणा हीन होता है । क्योंकि अनंतगुणी विशुद्धता के विशेष से स्थितिखंडायाम संख्यातगुणा होते हैं । उनके द्वारा घटायी हुयी अवशेष स्थिति संख्यातवें भाग होती है ।

उवसामगो य सव्वो णिव्वाघादो तहा णिरासाणो ।
उवसंते भजियव्वो णिरासणो चेव खीणम्हि ।।९९।।

उपशामकश्च सर्वः निर्व्याघातस्तथा निरासानः ।
उपशांते भजितव्यो निरासनश्चैव क्षीणे ।।९९।।

टीका – सर्व ही दर्शनमोह का उपशम करनेवाला जीव निर्व्याघात अर्थात् विच्छेद या मरण से रहित है, निरासादक अर्थात् सासादन को प्राप्त नहीं होता । उपशम होने के पश्चात् उपशम सम्यक्त्वी हो जाये तब भजनीय है – कोई जीव सासादन को प्राप्त नहीं होता, कोई जीव सासादन को प्राप्त होता है । पुनश्च क्षीणे अर्थात् उपशम सम्यक्त्व का काल समाप्त होने के पश्चात् सासादन नहीं होता । वहां नियम से दर्शनमोह की तीन प्रकृतियों में से एक का उदय होता है ।

उवसमसम्मत्तद्धा छावलिमेत्ता दु समयमेत्तो ति ।
अवसिट्ठे आसाणो अणअण्णदरुदयदो होदि ।।१००।।

उपशमसम्यक्त्वाद्धा षडावलिमात्रस्तु समयमात्र इति ।
अवशिष्टे आसादनः अनान्यतमोदयतो भवति ।।१००।।

टीका – उपशम सम्यक्त्व के काल में से उत्कृष्ट छह आवली, जघन्य एक समय अवशेष रहनेपर अनंतानुबंधी क्रोधादि में से किसी एक का उदय होने से सम्यक्त्व की

विराधना कर अभी मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ नहीं है, तब बीच में सासादन होता है ।

सायारे पट्ठवगो णिट्ठवगो मज्झिमो य भजणिज्जो ।
जोगे अण्णदरम्हि दु जहण्णए तेउलेस्साए ।।१०१।।

साकारे प्रस्थापको निष्ठापकः मध्यमश्च भजनीयः ।
योगे अन्यतरस्मिन् तु जघन्यके तेजोलेश्यायाः ।।१०१।।

टीका – साकार जो ज्ञानोपयोग उसके होते हुये ही जीव के प्रथमोपशम सम्यक्त्व का प्रारंभ होता है, तथा उसका निष्ठापक अर्थात् संपूर्ण करनेवाला और मध्य अवस्थावर्ती जीव भजनीय है अर्थात् वह साकार या अनाकार उपयोग युक्त होता है ।

भावार्थ – दर्शनोपयोगी होकर पश्चात् ज्ञानोपयोग से युक्त जीव जो तीन योगों में से किसी एक योग में वर्तमान है प्रथमोपशम सम्यक्त्व का प्रारंभक होता है । तिर्यंच और मनुष्य मंद विशुद्धता युक्त हो तो भी पीतलेश्या के जघन्य अंश ही में विद्यमान *(वर्तमान)* जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व का प्रारंभक होता है, अशुभ लेश्या में नहीं होता । यद्यपि नरक में नियम से अशुभ लेश्या है तथापि वहां जो लेश्या पायी जाती है उस लेश्या का मंद उदय होनेपर प्रथमोपशम सम्यक्त्व का प्रारंभक होता है । देव के नियम से शुभ लेश्या है, उसमें वर्तमान जीव उसका प्रारंभक होता है ।

अंतोमुहुत्तमद्धं सव्वोवसमेण होदि उवसंतो ।
तेण परं उदओ खलु तिण्णेकदरस्स कम्मस्स ।।१०२।।

अंतर्मुहूर्तमद्धा सर्वोपशमेन भवति उपशांतः ।
तेन परं उदयः खलु त्रिष्वेकतरस्य कर्मणः ।।१०२।।

टीका – अंतर्मुहूर्त काल तक सर्व दर्शनमोह का उपशम करके उपशम सम्यग्दृष्टि होता है । उसके पश्चात् *(उपशम सम्यक्त्व के बाद)* दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों में से किसी एक का उदय नियम से होता है ।

उवसमसम्मत्तुवरिं दंसणमोहं तुरंत पूरेदि ।
उदयल्लिस्सुदयादो सेसाणं उदयबाहिरदो ।।१०३।।

उपशमसम्यक्त्वोपरि दर्शनमोहं त्वरितं पूरयति ।
उदीयमानस्योदयतः शेषाणामुदयबाह्यतः ।।१०३।।

टीका – उपशम सम्यक्त्व के उपरांत, उसके अंत समय के अनंतर दर्शनमोहनीय की अंतरायाम के ऊपर की जो द्वितीय स्थिति, उसके निषेकों के द्रव्य को अपकर्षण करके अंतर को पूरता है ।

भावार्थ – उपशम सम्यक्त्व के काल से संख्यातगुणा जो अंतरायाम, उसमें से उपशम सम्यक्त्व के काल प्रमाण निषेक तो अभावरूप रहे, वे उपशम सम्यक्त्व के काल में व्यतीत हुये । अवशेष अंतरायाम के निषेक रहे वे अभावरूप थे, उनमें द्वितीय स्थिति का द्रव्य निक्षेपण करके उसका पुनश्च सद्भाव करता है । उस अपकर्षण किये हुए द्रव्य को, जिस प्रकृति का उदय है उसका उदयावली के प्रथम निषेक से लेकर और उदयहीन प्रकृतियों का उदयावली के बाह्य निषेक से लेकर अंतरायाम में और द्वितीय स्थिति में निक्षेपण करता है ।

उक्कट्ठिदइगिभागं समपट्टीए विसेसहीणकमं ।
सेसासंखाभागे विसेसहीणेण खिवदि सव्वत्त ।।१०४।।

अपकर्षितैकभागं समपट्ट्या विशेषहीनक्रमम् ।
शेषासंख्यभागे विशेषहीनेन क्षिपति सर्वत्र ।।१०४।।

टीका – वहां उदयवान सम्यक्त्वमोहनीय हो तो उसके द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर बहुभाग तो जैसे थे वैसे रहे तथा एकभाग को असंख्यातलोक का भाग देकर एकभाग तो उदयावली में देना । **'उदयावलिस्स दव्वं'** इत्यादि सूत्र द्वारा जैसे पहले विधान कहा है वैसे उदयावलि के निषेकों में चय घटते क्रम से निक्षेपण करना । अपकर्षण किये हुये द्रव्य में से अवशेष बहुभाग रहा, उसका नाम अपकृष्टावशिष्ट द्रव्य है । उसमें से अंतरायाम के निषेकों का अभाव था, उनका सद्भाव करने के लिये वहां कितना ही द्रव्य देना । वहां कितना देना ? उसको जानने के लिये विधान कहते हैं –

नानागुणहानियों में स्थित ऐसा जो सम्यक्त्वमोहनीय के द्वितीय स्थिति का द्रव्य,

उसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग जुदा करके अवशेष बहुभाग मात्र जो द्रव्य रहा, उसको **'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा'** इस सूत्र द्वारा साधिक डेढ़ गुणहानि प्रमाण का भाग देनेपर उस द्वितीय स्थिति का प्रथम निषेक आता है । इसके समान अंतरायाम के सर्व निषेक चय रहित स्थापित करके जोड़नेपर आदिधन होता है । **'पदहतमुखमादिधनं'** इस सूत्र द्वारा अंतरायाम प्रमाण गच्छ से उस प्रथम निषेक को गुणा करनेपर अंतरायाम के निषेकों का आदिधन हुआ । द्वितीय स्थिति के नीचे अंतरायाम के निषेक हैं, इसलिए द्वितीय स्थिति के आदि निषेक से चय बढ़ते क्रमरूप अंतरायाम के निषेक होने चाहिये, इसलिए चय का प्रमाण लाते हैं –

द्वितीय स्थिति की प्रथम गुणहानि के प्रथम निषेक से उसके नीचेवर्ती जो अंतरायाम संबंधी गुणहानि, उसका प्रथम निषेक दोगुणा प्रमाणवाला है । इसको दोगुणहानि का भाग देनेपर अंतरायाम संबंधी चय का प्रमाण आता है । **'सैकपदाहतपददलचयहतमुत्तरधनं'** इस सूत्र द्वारा यहां गच्छ अंतरायाम मात्र, सो एक अधिक गच्छ से आदि गच्छ के आधे को गुणा करके, फिर चय से गुणा करनेपर उत्तरधन (चयधन) होता है । इसतरह आदिधन और उत्तरधन को मिलानेपर जो प्रमाण हुआ, उतना द्रव्य इस अपकृष्टावशिष्ट द्रव्य में से ग्रहण कर अंतरायाम में देना । वहां द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक से गच्छ मात्र चय से अधिक द्रव्य तो अंतरायाम के प्रथम निषेक में देना । यहां गच्छ का प्रमाण अंतरायाम और चय का प्रमाण पूर्वोक्त जानना । द्वितीयादि निषेकों में एक-एक चय घटते क्रम से देना । अंत निषेकों में एक चय अधिक देना । ऐसा देनेपर जैसे क्रम से चाहिये, वैसे अभावरूप हुये अंतरायाम के निषेकों का सद्भाव हुआ ।

अपकृष्टावशिष्ट द्रव्य में से इतना द्रव्य देनेपर किंचित् कम हुआ, इस अवशेष द्रव्य को अंतरायाम और द्वितीय स्थिति में देना । वहां अंतरायाम में तो पहले जैसे आदिधन, उत्तरधन मिलाकर द्रव्य प्रमाण लाने का विधान कहा था, वैसे प्रमाण लाकर उतने द्रव्य को अंतरायाम के निषेकों में देना । इसको देने के पश्चात् जो अवशेष रहे, उसको **'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा'** इत्यादि विधान से द्वितीय स्थिति के नानागुणहानि संबंधी जो निषेक, उनमें से अंत के अतिस्थापनावली मात्र निषेक छोड़कर सर्वत्र देना । ऐसा तो उदय योग्य सम्यक्त्वमोहनीय का विधान कहा ।

पुनश्च उदय के अयोग्य मिश्रमोहनीय और मिथ्यात्व प्रकृतियों के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग उदयावली से बाह्य जो अंतरायाम, उसमें और द्वितीय स्थिति में पूर्ववत् निक्षेपण करना । उदयावली में निक्षेपण न करना । इसीतरह यदि मिश्रमोहनीय अथवा मिथ्यात्वमोहनीय उदय योग्य होकर अवशेष दो उदय योग्य न हो तो वहां यथासंभव विधान जानना । सर्वत्र जैसे गाय की पूंछ चौड़ाई में क्रम से हीन होती है, वैसे चय घटता क्रम पाया जाता है, वहां एक गोपुच्छाकार कहते हैं ।

सम्मुदये चलमलिणमगाढं सद्दहदि तच्चयं अत्थं ।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ।।१०५।।

सुत्तादो तं सम्मं दरसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि ।
सो चेव हवदि मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी ।।१०६।।

सम्यक्त्वोदये चलमलिनमगाढं श्रद्दधाति तत्त्वमर्थम् ।
श्रद्दधाति असद्भावमजानन् गुरुनियोगात् ।।१०५।।

सूत्रतस्तं सम्यक् दर्शयंतं यदा न श्रद्दधाति ।
स चैव भवति मिथ्यादृष्टिर्जीवः ततः प्रभृति ।।१०६।।

टीका – उपशम सम्यक्त्व का काल पूर्ण होने के पश्चात् नियम से तीनों में से एक दर्शनमोहनीय प्रकृति का उदय होता है, वहां सम्यक्त्वमोहनीय का उदय होनेपर जीव वेदक सम्यग्दृष्टि होता है । वह चल, मलिन, अगाढरूप तत्त्वार्थ का श्रद्धान करता है । सम्यक्त्वमोहनीय के उदय से श्रद्धान में चलपना होता है वा मल लगता है वा शिथिल भाव होता है । वह जीव स्वयं विशेष नहीं जानता, अज्ञात गुरु के निमित्त से असत् श्रद्धान भी करता है, परंतु सर्वज्ञ की आज्ञा ऐसी ही है ऐसा जानकर श्रद्धान करता है, इसलिए सम्यग्दृष्टि है । और यदि कोई ज्ञात गुरु सूत्र से सम्यक् स्वरूप दिखाये और हठ आदि से श्रद्धान न करे तो उस काल से लेकर वह मिथ्यादृष्टि होता है ।

मिस्सुदये सम्मिस्सं दहिगुडमिस्सं व तच्चमियरेण ।
सद्दहदि एक्कसमये मरणे मिच्छो व अयदो वा ।।१०७।।

मिश्रोदये संमिश्रं दधिगुडमिश्रं वा तत्त्वमितरेण ।
श्रद्दधात्येकसमये मरणे मिथ्यो वा असंयतो वा ।।१०७।।

टीका – मिश्र जो सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति, उसका उदय होनेपर जीव मिश्र गुणस्थानवर्ती होता है । वह एक समय में तत्त्व और इतर अतत्त्व इनका मिश्ररूप श्रद्धान करता है । जैसे मिलाये हुये दही और गुड़ अन्य ही रसांतर को प्राप्त होते हैं, वैसे यहां सत्य, असत्य श्रद्धान मिला हुआ जानना । यहां मरण होने के अंतर्मुहूर्त पहले ही नियम से मिथ्यादृष्टि या असंयत होता है । मिश्र गुणस्थान में मरण नहीं है ।

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणं होदि ।
ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा जुरिदो ।।१०८।।

मिथ्यात्वं वेदयन् जीवो विपरीतदर्शनो भवति ।
न च धर्मं रोचते हि मधुरं खलु रसं यथा ज्वरितः ।।१०८।।

टीका – मिथ्यात्व प्रकृति के उदय को अनुभवनेवाला जीव मिथ्यादृष्टि होता है । वह विपरीत श्रद्धानी होता है । जैसे ज्वर *(बुखार)* वाले को मीठा रुचता नहीं, वैसे उसको धर्म जो अनेकांत वस्तु का स्वभाव या रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग रुचता नहीं है, ऐसे जानना ।

मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ।।१०९।।

मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टं प्रवचनं न श्रद्दधाति ।
श्रद्दधात्यसद्भावमुपदिष्टं वा अनुपदिष्टम् ।।१०९।।

टीका – मिथ्यादृष्टि जीव जिनेश्वर द्वारा उपदेशित वचन की श्रद्धा नहीं करता । पुनश्च अन्य द्वारा उपदेशित वा नहीं उपदेशित असत्भाव जो अतत्त्व उसका श्रद्धान करता है ।

।। इति प्रथमोपशमसम्यक्त्वप्ररूपण समाप्तम् ।।१।।

दूसरा अधिकार : क्षायिक सम्यक्त्व प्ररूपण

जयंत्यर्हद्विधूतांगसूर्युपाध्यायसाधवः ।
लोकेऽस्मिन् भव्यलोकानां शरणोत्तममंगलम् ।।१।।

अब क्षायिक सम्यक्त्व प्ररूपण लिखते हैं –

दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजो मणुसो ।
तित्थयरपायमूले केवलिसुदकेवलीमूले ।।११०।।

दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापकः कर्मभूमिजो मनुष्यः ।
तीर्थंकरपादमूले केवलिश्रुतकेवलिमूले ।।११०।।

टीका – कर्मभूमि में उत्पन्न मनुष्य तीर्थंकर, अन्य केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में ही दर्शनमोह की क्षपणा का प्रस्थापक अर्थात् प्रारंभक होता है, क्योंकि अन्यत्र ऐसा विशुद्ध ज्ञान नहीं होता । अधःकरण के प्रथम समय से लेकर जब तक मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीय का द्रव्य सम्यक्त्वप्रकृतिरूप होकर संक्रमण करता है, तब तक अंतर्मुहूर्त काल तक दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारंभक कहते हैं ।

णिट्ठवगो तट्ठाणे विमाणभोगावणीसु धम्मे य ।
किदकरणिज्जो चदुसुवि गदीसु उप्पज्जदे जम्हा ।।१११।।

निष्ठापकः तत्स्थाने विमानभोगावनिषु धर्मे च ।
कृतकृत्यः चतुर्ष्वपि गतिषु उत्पद्यते यस्मात् ।।१११।।

टीका – उस प्रारंभक काल के अनंतर समयवर्ती समय से लेकर क्षायिक सम्यक्त्व ग्रहण करने के पूर्व समय तक निष्ठापक होता है । जहां *(मनुष्य में)* प्रारंभ किया था वहां ही वा सौधर्मादि कल्प या कल्पातीत में वा भोगभूमिया मनुष्य, तिर्यंच में वा धर्मा नामक *(पहली)* नरक पृथ्वी में भी निष्ठापक होता है, क्योंकि बद्धायु कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि मरकर चारों गतियों में उत्पन्न होता है, वहां निष्ठापन करता है, उसका कथन आगे होगा ।

पुव्वं तियरणविहिणा अणं खु अणियट्टिकरण चरिमम्हि ।
उदयावलिबाहिरगं ठिदिं विसंजोजदे णियमा ।।११२।।

पूर्वं त्रिकरणविधिना अनंतं खलु अनिवृत्तिकरणचरमे ।
उदयावलिबाह्यं स्थितिं विसंयोजयति नियमात् ।।११२।।

टीका – दर्शनमोह की क्षपणा के पहले तीन करण विधान द्वारा अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ के उदयावली के बाह्य जो सर्व निषेक उनका विसंयोजन करते हुये अनिवृत्तिकरण के अंत समय में नियम से विसंयोजन करता है, बारह कषाय, नौ नोकषायरूप परिणमाता है । वही कहते हैं –

असंयत, देशसंयत, प्रमत्त या अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती वेदक सम्यग्दृष्टि जीव पहले अध:करण करता है, उसका विधान प्रथमोपशम सम्यक्त्व के ग्रहण में कहा वैसा जानना । वहां प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धता से बढ़ता है, उसको समाप्त करके अपूर्वकरण को प्राप्त होकर वहां गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात ये चार कार्य होते हैं । वहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति संबंधी गुणश्रेणी के द्रव्य से देशसंयत का और उससे सकलसंयत का और उससे इस अनंतानुबंधी विसंयोजन का गुणश्रेणी के लिये अपकर्षण किया द्रव्य क्रम से असंख्यातगुणा है तथा उनके गुणश्रेणी आयाम का प्रमाण क्रम से संख्यातगुणा हीन है, वह अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण के काल से अधिक गलितावशेषरूप जानना । यहां अनुभागकांडक आयाम पूर्व से अनंतगुणा है । स्थितिकांडक आयाम पूर्व से संख्यातगुणा है । गुणसंक्रमण द्रव्य पूर्व से असंख्यातगुणा है । यहां गुणसंक्रमण मात्र अनंतानुबंधी का ही है, औरों का नहीं है, ऐसा जानना । ऐसे संख्यात हजार स्थितिखंड, स्थितिबंध और अनुभागखंडों को करके अपूर्वकरण को समाप्त कर अनिवृत्तिकरण को प्राप्त होता है ।

अणियट्टीअद्धाए अणस्स चत्तारि होंति पव्वाणि ।
सायरलक्खपुधत्तं पल्लं दूरावकिट्टि उच्छिट्ठं ।।११३।।

अनिवृत्त्यद्धायां अनंतस्य चत्वारि भवंति पर्वाणि ।
सागरलक्षपृथक्त्वं पल्यं दूरापकृष्टिरुच्छिष्टम् ।।११३।।

टीका – अनिवृत्तिकरण के काल में अनंतानुबंधी के स्थितिसत्त्व के चार पर्व होते हैं । स्थिति घटने की मर्यादा से चार विभाग होते हैं । वहां पहले समय में पृथक्त्व लक्ष सागर प्रमाण स्थितिसत्त्व होता है, क्योंकि अंत:कोडाकोडी स्थितिसत्त्व था उसे अपूर्वकरण में स्थितिखंडों द्वारा घटानेपर इतना अवशेष रहता है । अनंतानुबंधी बिना अन्य कर्मों का स्थितिसत्त्व यहां अंत:कोडाकोडी सागर ही जानना । यह प्रथम पर्व हुआ ।

उसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिखंड होनेपर क्रम से असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, एकेन्द्रिय के बंध समान हजार सागर, सौ सागर, पचास सागर, पच्चीस सागर, और एक सागर स्थितिसत्त्व होता है । पुनश्च संख्यात हजार स्थितिखंड होनेपर पल्य मात्र स्थितिसत्त्व होता है । यहां इन स्थितिखंडों का आयाम अर्थात् एक-एक स्थितिखंड में स्थितिसत्त्व घटने का प्रमाण, वह पल्य के संख्यातवें भाग मात्र जानना । यह दूसरा पर्व हुआ ।

पुनश्च पल्य को संख्यात का भाग देकर वहां एकभाग बिना बहुभाग मात्र आयाम से युक्त ऐसे हजारों स्थितिखंड होनेपर दूरापकृष्टि है नाम जिसका ऐसा पल्य का संख्यातवां भाग मात्र स्थितिसत्त्व होता है । यह तीसरा पर्व है ।

पुनश्च पल्य को असंख्यात का भाग देकर वहां एकभाग बिना बहुभाग मात्र आयाम के धारक ऐसे हजारों स्थितिखंड होनेपर उच्छिष्टावली है नाम जिसका ऐसा आवली मात्र स्थितिसत्त्व अवशेष रहता है । यह चौथा पर्व है । ऐसे ये चार पर्व जानना ।

पल्लस्स संखभागो संखा भागा असंखगा भागा ।
ठिदिखंडा होंति कमे अणस्स पव्वादु पव्वोत्ति ।।११४।।

पल्यस्य संख्यभाग: संख्या भागा असंख्यका भागा: ।
स्थितिखंडा भवंति क्रमेण अनंतस्य पर्वात् पर्वांतं ।।११४।।

टीका – अनंतानुबंधी के स्थितिसत्त्व के पहले पर्व से दूसरे पर्व तक और दूसरे से तीसरे तक और तीसरे से चौथे तक जो स्थितिकांडक होते हैं, उनका आयाम क्रम से पल्य का संख्यातवां भाग, पल्य का संख्यात बहुभाग और पल्य का असंख्यात बहुभाग मात्र है, उसका कथन किया ही है ।

अणियट्टीसंखेज्जाभागेसु गदेसु अणगठिदिसत्तो ।
उदधिसहस्सं तत्तो वियले य समं तु पल्लादी ।।११५।।

अनिवृत्तिसंख्यातभागेषु गतेषु अनंतगस्थितिसत्त्वं ।
उदधिसहस्रं ततो विकले च समं तु पल्यादि ।।११५।।

टीका – अनिवृत्तिकरण के काल को संख्यात का भाग देकर, वहां बहुभाग काल व्यतीत होकर एकभाग अवशेष रहनेपर अनंतानुबंधी का स्थितिसत्त्व कहीं हजार सागर मात्र, पश्चात् विकलेन्द्रिय के बंध के समान, पश्चात् पल्य और आदि शब्द से दूरापकृष्टि और आवली मात्र होता है ।

उवहिसहस्सं तु सयं पण्णं पणवीसमेक्कयं चेव ।
वियलचउक्के एगे मिच्छुक्कस्सट्ठिदी होदि ।।११६।।

उदधिसहस्रं तु शतं पंचाशत् पंचविंशतिरेकं चैव ।
विकलचतुष्के एकस्मिन् मिथ्योत्कृष्टस्थितिर्भवति ।।११६।।

टीका – विकलचतुष्क कहने से असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय *(ये चार)* और एकेन्द्रिय के मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबंध क्रम से हजार, सौ, पचास, पच्चीस और एक सागर प्रमाण होता है । इसके समान स्थितिसत्त्व अनंतानुबंधी का ही होता है । उसका कथन किया ही है ।

अनंतानुबंधी के द्रव्य को गुणश्रेणी द्वारा नीचे के निषेकों में प्राप्त किया, स्थितिकांडक द्वारा घटायी हुई स्थिति के निषेक अवशेष स्थिति के निषेकों में प्राप्त किये । पुनश्च गुणसंक्रमण द्वारा उस द्रव्य को गुणसंक्रमण भागहार का भाग देनेपर जो प्रमाण हो, उस प्रमाण मात्र द्रव्य के समूहरूप प्रथम फालि है और उससे प्रतिसमय असंख्यातगुणा द्रव्यरूप द्वितीयादि फालि हैं, उनका विसंयोजन करता है । इसतरह अनिवृत्तिकरण के अंत समय में उच्छिष्टावलि मात्र निषेक रहित अंत कांडक की अंत फालि के द्रव्य का विसंयोजन करता है । पुनश्च उच्छिष्टावली मात्र निषेकों के द्रव्य को एक-एक समय में एक-एक निषेक का विसंयोजन करता है । इनके

परमाणुओं को बारह कषाय और नौ नोकषायरूप परिणमाकर अभाव करने का नाम विसंयोजन है । इसतरह अनंतानुबंधी के विसंयोजन का विधान कहा ।

अंतोमुहुत्तकालं विस्समिय पुणोवि तिकरणं किरिय ।
अणियट्टीए मिच्छं मिस्सं सम्मं कमेण णासेइ ।।११७।।

अंतर्मुहूर्तकालं विश्राम्य पुनरपि त्रिकरणं कृत्वा ।
अनिवृत्तौ मिथ्यं मिश्रं सम्यक्त्वं क्रमेण नाशयति ।।११७।।

टीका – अनंतानुबंधी का विसंयोजन करने के पश्चात् अंतर्मुहूर्त काल विश्राम करके अर्थात् अन्य क्रिया न करके उसके पश्चात् पुन: तीन करणों द्वारा अनिवृत्तिकरण के काल में मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यक्त्व मोहनीय को क्रम से नष्ट करता है । वही कहते हैं –

दर्शनमोह की क्षपणा के सन्मुख होता हुआ जीव प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धता से युक्त होता है । दर्शनमोह के उपशमन में जैसा विधान कहा, वैसा अध:प्रवृत्तकरण करने के पश्चात् अपूर्वकरण को प्राप्त हुआ । वहां प्रथम समय में ही गुणश्रेणी का प्रारंभ हुआ । इसके लिये अपकर्षण किया हुआ द्रव्य अनंतानुबंधी का विसंयोजन करनेवाले के गुणश्रेणी द्रव्य से असंख्यातगुणा है और यहां का गुणश्रेणी आयाम उसके गुणश्रेणी आयाम से संख्यातगुणा हीन है, अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण काल से साधिक जानना । क्योंकि सम्यक्त्वोत्पत्ति में जो तीन करण होते हैं, उनसे उत्तरोत्तर होनेवाले तीन करणों का काल संख्यातगुणा हीन होता है । वहां पूर्व स्थितिखंडादि से घटता अन्य ही स्थितिखंड और अनुभागखंड का प्रारंभ होता है और अन्य ही स्थितिबंध पल्य के संख्यातवें भाग घटता प्रारंभ होता है। पुनश्च मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीय के द्रव्य का गुणसंक्रमण करता है, सम्यक्त्वमोहनीयरूप परिणमाता है ।

अपूर्वकरण के प्रथम समय में पहले से संख्यातगुणा हीन ऐसा अंत:कोडाकोडी सागर प्रमाण जघन्य स्थितिसत्त्व है । इससे उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है । क्योंकि कोई जीव उपशम श्रेणी चढ़कर वहां बहुत स्थितिखंडन करके वहां से उतरकर पश्चात् शीघ्र ही दर्शनमोह की क्षपणा का प्रारंभ करता है, उसके जघन्य

स्थितिसत्त्व होता है । अन्य कोई जीव श्रेणी न चढ़ा हो उसके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व है । वहां जघन्य स्थितिसत्त्व का स्थितिकांडक आयाम पल्य के संख्यातवें भाग मात्र है, उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व का पृथक्त्व सागर प्रमाण है, क्योंकि स्थिति के अनुसार स्थितिकांडक होता है । ऐसे संख्यात हजार स्थितिकांडकघात, उनसे संख्यातगुणा अनुभागकांडकघात, प्रतिसमय असंख्यातगुणा द्रव्य की गुणश्रेणी निर्जरा करके और गुणसंक्रमण विधान करके अपूर्वकरण के अंत समय को प्राप्त हुआ । वहां कर्मों का स्थिति अनुभाग सत्त्व प्रथम समय के उस स्थितिसत्त्व से संख्यातगुणा हीन होता है । और भी दर्शनमोह के उपशम विधान में जो प्ररूपण किया है, वह यहां भी यथासंभव जानना ।

अणियट्टिकरणपढमे दंसणमोहस्स सेसगाण ठिदी ।
सायरलक्खपुधत्तं कोडीलक्खगपुधत्तं च ।।११८।।

अनिवृत्तिकरणप्रथमे दर्शनमोहस्य शेषकानां स्थितिः ।
सागरलक्षपृथक्त्वं कोटिलक्षकपृथक्त्वं च ।।११८।।

टीका – अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में दर्शनमोह का तो स्थितिसत्त्व पृथक्त्व लक्ष सागर प्रमाण है । यहां पृथक्त्व नाम बहुत का है, सो कोटि के नीचे ऐसा अंतःकोडी प्रमाण जानना । अवशेष कर्मों का स्थितिसत्त्व पृथक्त्व लक्ष कोटि सागर प्रमाण है, सो कोडाकोडी के नीचे ऐसा अंतःकोडाकोडी जानना । अपूर्वकरण में संख्यात हजार स्थितिकांडकघात करने के पश्चात् इतना अवशेष स्थितिसत्त्व रहता है । यहां सर्व जीवों के परिणाम समान है, इसलिए स्थितिसत्त्व में जघन्य उत्कृष्ट भेद नहीं है । इसके पश्चात् दर्शनमोह की स्थिति पल्यप्रमाण रहे वहां तक स्थितिकांडक आयाम का प्रमाण पल्य के संख्यातवें भागमात्र जानना ।

अमणंठिदिसत्तादो पुधत्तमेत्ते पुधत्तमेत्ते य ।
ठिदिखंडेय हवंति हु चउ ति वि एयक्ख पल्लठिदी ।।११९।।

अमनःस्थितिसत्त्वतः पृथक्त्वमात्रं पृथक्त्वमात्रं च ।
स्थितिकांडके भवंति हि चतुस्त्रि द्वि एकाक्षे पल्यस्थितिः ।।११९।।

टीका – दर्शनमोह की पृथक्त्व लक्ष सागर प्रमाण स्थिति प्रथम समय में पायी जाती है । उससे संख्यात हजार कांडक होनेपर असंज्ञी पंचेन्द्रिय के बंध समान हजार सागर स्थितिसत्त्व रहता है । उसके पश्चात् बहुत-बहुत स्थितिकांडक होनेपर क्रम से चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, एकेन्द्रिय के स्थितिबंध के समान सौ सागर, पचास सागर, पच्चीस सागर, एक सागर स्थितिसत्त्व होता है । पश्चात् बहुत स्थितिखंड होनेपर पल्यप्रमाण स्थितिसत्त्व होता है । ऐसा यह दूसरा पर्व हुआ ।

पल्लट्ठिदिदो उवरिं संखेज्जसहस्समेत्तठिदिखंडे ।
दूरावकिट्टिसण्णिद ठिदिसत्तं होदि णियमेण ।।१२०।।

पल्यस्थितित उपरि संख्येयसहस्रमात्रस्थितिखंडे ।
दूरापकृष्टिसंज्ञितं स्थितिसत्त्वं भवति नियमेन ।।१२०।।

टीका – उसके पश्चात् पल्य को संख्यात का भाग देकर वहां बहुभाग मात्र आयामवाले ऐसे संख्यात हजार स्थितिखंड होनेपर दूरापकृष्टि नामक स्थितिसत्त्व नियम से होता है । पल्य को उत्कृष्ट संख्यात का भाग देकर जो प्रमाण आये, उससे एक घटते क्रम से पल्य को जघन्य परितासंख्यात का भाग देकर जो प्रमाण आये वहां तक दूरापकृष्टि के सर्व भेद जानना । उनमें से यहां कोई यथायोग्य भेद जानना । यह तीसरा पर्व हुआ ।

[*विशेषार्थ – यहां दृष्टांत द्वारा समझेंगे । मान लो पल्य ११००, उत्कृष्ट संख्यात १० और जघन्य परितासंख्यात ११ है ।*

११०० ÷ १० = ११० और ११०० ÷ ११ = १०० ।

इसलिए ११० से १०० तक एक-एक से घटते हुये सारे दूरापकृष्टि के भेद हैं ।]

पल्लस्स संखभागं तस्स पमाणं तदो असंखेज्जं ।
भागपमाणे खंडे संखेज्जसहस्सगेसु तीदेसु ।।१२१।।

सम्मस्स असंखाणं समयपबद्धाणुदीरणा होदि ।
तत्तो उवरिं तु पुणो बहुखंडे मिच्छउच्छिट्ठं ।।१२२।।

पल्यस्य संख्यभागं तस्य प्रमाणं ततः असंख्येयं ।
भागप्रमाणे खंडे संख्येयसहस्रकेषु अतीतेषु ।।१२१।।

सम्यक्त्वस्यासंख्यानां समयप्रबद्धानामुदीरणा भवति ।
तत उपरि तु पुनः बहुखंडे मिथ्योच्छिष्टम् ।।१२२।।

टीका – उस दूरापकृष्टि नामक स्थितिसत्त्व का प्रमाण पल्य के संख्यातवें भाग मात्र जानना । उसके पश्चात् पल्य को असंख्यात का भाग देकर वहां बहुभाग मात्र आयाम के धारक ऐसे संख्यात हजार स्थितिकांडक होनेपर सम्यक्त्वमोहनीय के द्रव्य का अपकर्षण किया । उसमें से असंख्यात समयप्रबद्ध मात्र उदीरणा द्रव्य को उदयावली में देता है । वही कहते हैं –

सम्यक्त्वमोहनीय के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर, वहां बहुभाग तो जैसे थे वेसे ही रहे, अवशेष एकभाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग उपरितन स्थिति में देना । अवशेष एकभाग को पुनः पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग गुणश्रेणी आयाम में देना, एकभाग उदयावली में देना । यहां उदयावली में दिये द्रव्य को उदीरणा द्रव्य जानना, पहले तो उदयावली में द्रव्य देने के लिये असंख्यातलोक का भाग देने से द्रव्य का प्रमाण अल्प आता था, यहां से लेकर आगे सर्वत्र पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देना । भागहार घटता होने से द्रव्य का प्रमाण एकभाग में भी असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण आता है ऐसा जानना । पश्चात् मिथ्यात्व प्रकृति के पल्य को असंख्यात का भाग देकर बहुभाग मात्र आयाम के धारक बहुत स्थितिखंड होनेपर मिथ्यात्व प्रकृति के अंत कांडक की अंत फालि के पतन समय मिथ्यात्व के उच्छिष्टावली मात्र निषेक अवशेष रहते हैं । अन्य सर्व मिथ्यात्व प्रकृति का द्रव्य मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीयरूप परिणमता है । जो आवली मात्र निषेक रहे हैं, वे प्रतिसमय एक-एक निषेकरूप होकर जब तक दो समय अवशेष रहते हैं तब तक क्रम से निर्जरित होते *(खिरते)* हैं ।

जत्थ असंखेज्जाणं समयपबद्धाणुदीरणा तत्तो ।
पल्लासंखेज्जदिमो हारो णासंखलोगमिदो ।।१२३।।

यत्रासंख्येयानां समयप्रबद्धानामुदीरणा ततः ।
पल्यासंख्येयः हारो नासंख्यलोकमितः ।।१२३।।

टीका – जिस अवसर में असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होकर ऊपर के निषेकों का द्रव्य उदयावली में प्राप्त होता है उस समय से लेकर उत्तरकाल में उदयावली में द्रव्य देने के लिये भागहार पल्य का असंख्यातवां भाग मात्र ही जानना, पूर्ववत् असंख्यातलोक मात्र नहीं जानना ।

मिच्छुच्छिट्ठादुवरिं पल्लासंखेज्जभागिगे खंडे ।
संखेज्जे समतीदे मिस्सुच्छिट्ठं हवे णियमा ।।१२४।।

मिथ्योच्छिष्टादुपरि पल्यासंख्येय भागगे खंडे ।
संख्येये समतीते मिश्रोच्छिष्टं भवेत् नियमात् ।।१२४।।

टीका – मिथ्यात्व की उच्छिष्टावली मात्र स्थिति अवशेष रहने के समय से लेकर मिश्रमोहनीय की स्थिति में पल्य को असंख्यात का भाग देकर वहां बहुभाग मात्र आयाम के धारक संख्यात हजार स्थितिकांडक होते हैं, वहां अंत कांडक की अंत फालि के पतन में मिश्रमोहनीय के निषेक उच्छिष्टावली मात्र अवशेष रहते हैं ।

मिस्सुच्छिट्ठे समये पल्लासंखेज्जभागिगे खंडे ।
चरिमे पडिदे चेट्ठदि सम्मस्सडवस्सठिदिसत्तो ।।१२५।।

मिश्रोच्छिष्टे समये पल्यासंख्येयभागगे खंडे ।
चरमे पतिते चेष्टते सम्यक्त्वस्याष्टवर्षस्थितिसत्त्वम् ।।१२५।।

टीका – जिस समय मिश्रमोहनीय की उच्छिष्टावली मात्र स्थिति रहती है, उसी समय में, सम्यक्त्वमोहनीय की स्थिति में से पल्य को असंख्यात का भाग देकर वहां बहुभाग मात्र आयाम के धारक ऐसे संख्यात हजार स्थितिखंड व्यतीत होने से, यहां

उस सम्यक्त्वमोहनीय का अष्ट वर्ष प्रमाण स्थितिसत्त्व अवशेष रहता है ।

भावार्थ – मिश्रमोहनीय की उच्छिष्टावली मात्र स्थिति रहने का और सम्यक्त्वमोहनीय की आठ वर्ष मात्र स्थिति रहने का एक ही काल है ।

मिच्छस्स चरमफालिं मिस्से मिस्सस्स चरिमफालिं तु ।
संछुहदि हु सम्मत्ते ताहे तेसिं च वरदव्वं ।।१२६।।

मिथ्यस्य चरमफालिं मिश्रे मिश्रस्य चरमफालिं तु ।
संक्रामति हि सम्यक्त्वे तस्मिन् तेषां च वरद्रव्यं ।।१२६।।

टीका – मिथ्यात्व प्रकृति के अंत कांडक की अंत फालि है, उसका जिस समय मिश्रमोहनीय में संक्रमण होता है उस समय में मिश्रमोहनीय का द्रव्य उत्कृष्ट होता है और मिश्रमोहनीय के अंत कांडक की अंत फालि के द्रव्य का जिस समय सम्यक्त्वमोहनीय में संक्रमण होता है, उस समय सम्यक्त्वमोहनीय का द्रव्य उत्कृष्ट होता है ।

जदि होदि गुणिदकम्मो दव्वमणुक्कस्समण्णहा तेसिं ।
अवरठिदी मिच्छदुगे उच्छिट्ठे समयदुगसेसे ।।१२७।।

यदि भवति गुणितकर्मा द्रव्यमनुत्कृष्टमन्यथा तेषाम् ।
अवरस्थितिमिथ्याद्विके उच्छिष्टसमयद्विकशेषे ।।१२७।।

टीका – यह दर्शनमोह का क्षय करनेवाला जीव यदि गुणितकर्मांश अर्थात् उत्कृष्ट कर्मसंचय युक्त हो तो उसके उन दोनों प्रकृतियों का द्रव्य उस समय उत्कृष्ट होता है और यदि वह जीव उत्कृष्ट कर्मसंचय युक्त न हो, तो उसके उनका द्रव्य वहां अनुत्कृष्ट होता है । मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीय की स्थिति उच्छिष्टावली मात्र रही, वह क्रम से एक-एक समय में एक-एक निषेक गला कर वहां दो समय अवशेष रहनेपर जघन्य स्थिति होती है ।

भावार्थ – वहां उदयावली के अंत निषेक मात्र स्थितिसत्त्व होता है ।

[*विशेषार्थ – सम्यक्त्वमोहनीय का उदय है । उस वर्तमान निषेक के ऊपर के निषेक की स्थिति दो समय है । इसलिए मिथ्यात्व का भी जघन्य स्थितिसत्त्व दो समय कहा है ।*]

मिस्सदुगचरिमफाली किंचूणदिवड्ढसमयपबद्धपमा ।
गुणसेढिं करिय तदो असंखभागेण पुव्वं व ।।१२८।।

मिश्रद्विकचरमफालिः किंचिदूनद्व्यर्धसमयप्रबद्धप्रमा ।
गुणश्रेणिं कृत्वा ततः असंख्यभागेन पूर्वं वा ।।१२८।।

टीका – मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय की जो अंत की दो फालि उनका द्रव्य किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है । वही कहते हैं –

मिश्रमोहनीय के द्रव्य में मिथ्यात्व के उच्छिष्टावली बिना अन्य सर्व द्रव्य को संख्यात हजार स्थितिकांडक और गुणसंक्रमण विधान से निक्षेपण किया । वहां जो मिश्रमोहनीय का द्रव्य हुआ वहां भी संख्यात हजार स्थितिकांडक और गुणसंक्रमण विधान से जो अंत कांडक की अंत फालि का द्रव्य हुआ, वह तो जुदा रखा और इसके अन्य कांडकों का द्रव्य सर्वद्रव्य के असंख्यातवें भाग मात्र है, उसका सम्यक्त्वमोहनीय में निक्षेपण किया और सम्यक्त्वमोहनीय का आठ वर्ष की स्थिति के ऊपरवर्ती अंत कांडक की अंत फालि के द्रव्य को छोड़कर अन्य सर्व कांडकों के द्रव्य को भी संक्रमण काल के द्विचरम समय तक वहां आठ वर्ष मात्र अवशेष स्थिति में निक्षेपण करके, उस संक्रमण काल के अंत समय में मिश्रमोहनीय की और सम्यक्त्वमोहनीय की अंत की जो दो फालि उनका द्रव्य मिलानेपर किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण द्रव्य होता है ।

भावार्थ – मिश्रमोहनीय को गुणसंक्रमण द्वारा जब तक सम्यक्त्वमोहनीयरूप परिणमाता है तब तक गुणसंक्रमण काल कहते हैं । उसके अंत समय में मिश्रमोहनीय का उच्छिष्टावली मात्र और सम्यक्त्वमोहनीय का अष्ट वर्ष मात्र निषेक बिना अन्य सर्व द्रव्य उनकी अंत दो फालि का जानना । वह किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है । अष्ट वर्ष स्थिति अवशेष करण के समय में इन दो फालियों

का पतन करने के लिये उनके द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एकभाग को उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम में देना अर्थात् उदयावली के प्रथम समय से लेकर पहले जो गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम का प्रारंभ किया था उसमें से व्यतीत होने के पश्चात् जो अवशेष गुणश्रेणी आयाम रहा, उसके अंत तक और एक समय उपरितन स्थिति का – उनमें देना ।

भावार्थ – यहां से पहले तो उदयावली से बाह्य गुणश्रेणी आयाम था, अब यहां से लेकर उदयरूप वर्तमान समय से लेकर ही गुणश्रेणी आयाम हुआ, इसलिए इसको उदयादि कहते हैं । पहले तो समय व्यतीत होनेपर गुणश्रेणी आयाम घटता जाता था, अब एक समय व्यतीत होते ही उपरितन स्थिति का एक समय मिलाकर गुणश्रेणी आयाम का प्रमाण समय व्यतीत होनेपर भी जितना का उतना रहता है, इसलिए इसे अवस्थित कहते हैं । इसलिए इसका नाम उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम है, उसके निषेकों में वह द्रव्य असंख्यातगुणा क्रम से दिया जाता है । इसतरह उन दोनों फालियों के द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग तो गुणश्रेणी में दिया ।

सेसं विसेसहीणं अडवस्सुवरिमठिदीए संखुद्धे ।
चरमाउलिं व सरिसी रयणा संजायदे एत्तो ।।१२९।।

शेषं विशेषहीनमष्टवर्षस्योपरिस्थित्यां संक्षुब्धे ।
चरमावलिरिव सदृशी रचना संजायतेऽतः ।।१२९।।

टीका – अवशेष बहुभाग के द्रव्य को गुणश्रेणी आयाम मात्र अंतर्मुहूर्त से कम अष्ट वर्ष प्रमाण जो उपरितन स्थिति, उसके निषेकों में **'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे'** इत्यादि विधान से प्रथम निषेक में द्रव्य निक्षेपण करता है और उससे द्वितीयादि निषेकों में समान प्रमाणरूप चय से घटते हुये क्रम से निक्षेपण करता है । ऐसे ही गुणश्रेणी के अंत निषेक के दिये हुये द्रव्य से उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक का द्रव्य असंख्यातगुणा होता है । क्योंकि यहां बहुभाग का निक्षेपण है और स्थिति का प्रमाण अल्प है ।

अडवस्सादो उवरिं उदयादिअवट्ठिदं च गुणसेढी ।
अंतोमुहुत्तियं ठिदिखंडं च य होदि सम्मस्स ।।१३०।।

अष्टवर्षादुपरि उदयाद्यवस्थितं च गुणश्रेणी ।
अंतर्मुहूर्तिकं स्थितिखंडं च च भवति सम्यस्य ।।१३०।।

टीका – सम्यक्त्वमोहनीय की अष्ट वर्ष प्रमाण स्थिति करने के समय से लेकर ऊपर के सर्व समयों में उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम है । सम्यक्त्वमोहनीय की स्थिति में स्थितिखंड अंतर्मुहूर्त मात्र आयामवाले हैं । यहां से अब एक-एक स्थिति-कांडक द्वारा अंतर्मुहूर्त स्थिति घटाता है ।

बिदियावलिस्स पढमे पढमस्संते च आदिमणिसेये ।
तिट्ठाणेणंतगुणेणूण कमोवट्टणं चरमे ।।१३१।।

द्वितीयावले: प्रथमे प्रथमस्यांते चादिमनिषेके ।
त्रिस्थानेऽनंतगुणेनोनक्रमापवर्तनं चरमे ।।१३१।।

टीका – जिस समय सम्यक्त्वमोहनीय की अष्ट वर्ष प्रमाण स्थिति अवशेष रखी और मिश्रमोहनीय, सम्यक्त्वमोहनीय के अंत कांडक की दो फालि का पतन हुआ, उसी समय में सम्यक्त्वमोहनीय का अनुभाग पूर्व समय के अनुभाग से अनंतगुणा हीन अवशेष रहता है । वही कहते हैं –

सम्यक्त्वमोहनीय के अंत कांडक की द्विचरम फालि के पतन समय तक *(मात्र सम्यक्त्वमोहनीय के अष्ट वर्ष मात्र निषेक बिना अन्य सर्वद्रव्य उनकी अंत दो फालियों का जानना, जो किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है)* अर्थात् अष्ट वर्ष स्थिति करने के पूर्व समय तक जो लता, दारुरूप द्विस्थानगत अनुभाग है, वह अनुभागकांडकघात से अनंतगुणा हीन हुआ । यहां से लेकर, जो पहले अंतर्मुहूर्त काल द्वारा अनुभागकांडक का घात होता था, उसका अभाव हुआ और प्रतिसमय अनंतगुणा हीन क्रम से अनुभाग का अपवर्तन होने लगा । वहां अनंतरवर्ती अष्ट वर्ष करने के समय से पूर्व समय में निषेकों का जो अनुभागसत्त्व था, उससे अनंतगुणा हीन अष्ट वर्ष स्थिति करने के समय में उदयावली के ऊपरवर्ती जो उपरितनावली

उसके प्रथम निषेक का अनुभागसत्त्व अवशेष रहता है । अवशेष अनंत बहुभागरूप अनुभाग का विशुद्धता विशेष से अपवर्तन हुआ, नाश हुआ । उसी समय में उदयावली के अंत निषेक का अनुभागसत्त्व उस अपने ऊपरवर्ती उपरितनावली के प्रथम निषेक के अनुभागसत्त्व से अनंतगुणा हीन रहता है, अवशेष का नाश होता है । उससे अनंतगुणा हीन उदयावली के प्रथम निषेक का अनुभागसत्त्व रहता है, अवशेष का नाश होता है । पुनश्च उससे अनंतगुणा हीन अष्ट वर्ष करने के समय से लेकर अनंतरवर्ती आगामी समय में अनंतगुणा हीन अनुभागसत्त्व होता है । इसतरह प्रतिसमय अनंतगुणा हीन अनुक्रम सहित उच्छिष्टावली के अंत समय तक अनुभाग का अपवर्तन जानना । *(इसे अनुसमयापवर्तन कहते हैं ।)*

अडवस्से उवरिमि वि दुचरिमखंडस्स चरिमफालित्ति ।
संखातीदगुणक्कमं विशेषहीणक्कमं देदि ।।१३२।।

अष्टवर्षात् उपरि अपि द्विचरमखंडस्य चरमफालीति ।
संख्यातीतगुणक्रमं विशेषहीनक्रमं ददाति ।।१३२।।

टीका – जैसे अष्ट वर्ष की स्थिति करने के समय में मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय की अंत दो फालियों के द्रव्य को उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम में और उसके ऊपरवर्ती उपरितन स्थिति में देने का विधान पहले कहा, वैसे ही उस अष्ट वर्ष की स्थिति करने के समय के पश्चात् भी जो समय हैं उनमें अंतर्मुहूर्त आयामवाले कांडक प्रारंभ हुये । उनमें प्रथम कांडक की प्रथम फालि के पतनरूप जो प्रथम समय, उससे लेकर द्विचरम कांडक की अंत फालि के पतन समय तक गुणश्रेणी आदि के लिये अपकर्षण किये द्रव्य का और स्थिति घटाने के लिये ग्रहण किये हुये स्थितिकांडक की फालि के द्रव्य का उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम में असंख्यातगुणा क्रम युक्त और अंतर्मुहूर्त कम अष्ट वर्ष प्रमाण उपरितन स्थिति में चय घटते क्रम से निक्षेपण होता है ।

अब यहां स्पष्ट अर्थ जानने के लिये अष्ट वर्ष करने के समय से पूर्व समय में, अष्ट वर्ष करने के समय में और आगामी समयों में होनेवाला विधान कहते हैं –

अडवस्से संपहियं पुव्विल्लादो असंखसंगुणियं ।
उवरिं पुण संपहियं असंखसंखं च भागं तु ।।१३३।।

अष्टवर्षे संप्रहितं पूर्वस्मात् असंख्यसंगुणितम् ।
उपरि पुनः संप्रहितं असंख्यसंख्यं च भागं तु ।।१३३।।

टीका – अष्ट वर्ष स्थिति करने के समय से अनंतरपूर्व समय में मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय की द्विचरम फालि का पतन होता है । उस समय में गुणसंक्रमण काल के प्रथम समय से लेकर असंख्यातगुणा क्रम से गुणसंक्रमण द्रव्य होनेपर सम्यक्त्वमोहनीय का जो सत्त्वद्रव्य पाया जाता है, वह **'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा'** इत्यादि विधान से वहां स्थिति में पायी जानेवाली नानागुणहानियों के निषेकों में पाया जाता है । उस समय में उस द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र द्रव्य अपकर्षण किया, उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग तो उपरितन स्थिति में निक्षेपण करता है । वहां जिसका द्रव्य अपकर्षण किया उस निषेक के द्रव्य को उस निषेक के नीचे अतिस्थापनावली छोड़कर **'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा'** इत्यादि विधान से देना । अवशेष एकभाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग गुणश्रेणी आयाम में देना और एकभाग उदयावली में देना ।

यहां अपकर्षणादि होने के पश्चात् विवक्षित में *(जिन निषेकों में देना हो)* सत्तारूप पूर्व में जो द्रव्य पाया जाता है, उसे सत्त्वद्रव्य कहते हैं । तथा अपकर्षणादि किया हुआ जो नवीन द्रव्य वहां मिलाया, उसे दीयमानद्रव्य कहते हैं । इन दोनों को मिलाकर जो देखने में आये द्रव्य का प्रमाण उसे दृश्यमानद्रव्य कहते हैं ।

यहां उदयावली में तो दीयमानद्रव्य पूर्व सत्त्वद्रव्य के असंख्यातवें भागमात्र है, उससे साधिक सत्त्वद्रव्य मात्र दृश्यमानद्रव्य वहां जानना । परंतु गुणश्रेणी आयाम में दीयमानद्रव्य पूर्व सत्त्वद्रव्य से असंख्यातगुणा है । यद्यपि यहां गुणश्रेणी में दिया हुआ द्रव्य सर्व सत्त्वद्रव्य के असंख्यातवें भागमात्र है, तथापि यहां *(गुणश्रेणी में)* निषेक थोड़े हैं, इसलिए असंख्यातगुणा होता है । उसमें पूर्व सत्त्वद्रव्य साधिक करनेपर वहां दृश्यमानद्रव्य होता है और उपरितन स्थिति में दीयमानद्रव्य पूर्व सत्त्वद्रव्य के असंख्यातवें

भाग मात्र है । उससे अधिक सत्त्वद्रव्य करनेपर वहां दृश्यमानद्रव्य होता है ।

वहां उपरितन स्थिति के प्रथमादि निषेकों में से अपकर्षण करके जितना द्रव्य घटाया वह तो ऋण जानना और जो यहां निक्षेपण किया द्रव्य है वह धन जानना । धन में से ऋण घटाकर अवशेष को पूर्व सत्त्व में मिलानेपर द्वितीयादि निषेक हैं वे प्रथमादि निषेकों से एक-एक चय से घटते क्रम से होते हैं । ऐसा करनेपर मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय के द्विचरम फालि का जिसमें पतन होता है उस गुणसंक्रमण काल के अंत समय में सम्यक्त्वमोहनीय के दृश्यद्रव्य का प्रमाण आता है ।

उसके अनंतरवर्ती अष्ट वर्ष प्रमाण स्थिति करने के समय में मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय की अंत दो फालि का द्रव्य, अष्ट वर्ष के जितने समय उतने सम्यक्त्वमोहनीय के निषेकों के द्रव्य से हीन ऐसे किंचित् कम डेढ़ गुणहानि *(गुणित समयप्रबद्ध)* मात्र है । उसको **'मिस्स दुगे'** इत्यादि गाथा व्याख्यान में जैसे पहले वर्णन किया है वैसे उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम में और उपरितन स्थिति में द्रव्य देने का विधान जानना ।

पुनश्च उसके अनंतरवर्ती जो अष्ट वर्ष स्थिति करने का द्वितीय समय, उसमें सर्व सम्यक्त्वमोहनीय के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग ग्रहण कर, उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एकभाग तो उदयरूप प्रथम समय से लेकर अष्ट वर्ष करने के समय जो गुणश्रेणी आयाम था उसके शीर्ष तक और एक समय व्यतीत हुआ इसलिए एक समय उपरितन स्थिति का मिलाकर जो उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम, उसके निषेकों में असंख्यातगुणा क्रम से निक्षेपण करना । तथा अवशेष बहुभागों के द्रव्य को उसके ऊपरवर्ती अवशेष रही जो उपरितन स्थिति, उसके निषेकों में **'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे'** इत्यादि विधान से चय घटते क्रम से निक्षेपण करना ।

पुनश्च इसी समय में अंतर्मुहूर्त मात्र स्थितिकांडक आयाम के निषेकों के द्रव्य को पीठबंध में बताये हुये प्रमाणवाला जो अध:प्रवृत्त भागहार, उसका भाग देकर एकभाग प्रमाण जो फालि का द्रव्य वह अपकृष्टद्रव्य के असंख्यातवें भाग मात्र है । उसको अपकृष्टद्रव्य में अधिक जानना । पूर्व में अपकृष्टद्रव्य दिया उसके साथ

फालिद्रव्य भी दिया । वहां सर्वद्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर जो प्रमाण आया था उसका नाम अपकृष्टद्रव्य जानना । स्थितिकांडक आयाम मात्र निषेकों का जो द्रव्य उसको कांडकद्रव्य कहते हैं, उसको यहां अध:प्रवृत्त भागहार का भाग देकर जो प्रमाण आया उसको फालिद्रव्य कहते हैं ।

पुनश्च इसीतरह सम्यक्त्वमोहनीय के अष्ट वर्ष स्थिति करने के तीसरे समय से लेकर प्रथम कांडक की द्विचरम फालि के पतन समय तक प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम से जो अपकृष्टद्रव्य और फालिद्रव्य, उसको एक समय व्यतीत होनेपर उपरितन स्थिति का एक-एक समय मिलाने से हुआ जो उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम उसमें असंख्यातगुणा क्रम से और उससे उपरितन स्थिति में चय घटते क्रम से देना । कांडककाल के अंत समय में अंत फालि का पतन होता है । उसके द्रव्य का प्रमाण लाते हैं –

यदि अंतर्मुहूर्त आयामवाला एक कांडक होता है, तो अष्ट वर्ष स्थिति में कितने कांडक होंगे ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर कांडकों का प्रमाण संख्यात आया । पुनश्च यदि इन सर्व कांडकों द्वारा सम्यक्त्वमोहनीय के सर्वद्रव्य का निक्षेपण करते हैं, तो एक कांडक में कितने द्रव्य का करेंगे ? ऐसा त्रैराशिक करके कांडकद्रव्य का प्रमाण सम्यक्त्वमोहनीय के द्रव्य के संख्यातवें भाग मात्र आता है । इसको अध:प्रवृत्तभागहार का भाग देनेपर प्रथम फालि का द्रव्य आता है, उससे असंख्यातगुणा क्रम सहित द्विचरम फालि तक की फालियों का द्रव्य होता है । इन सर्व फालियों का द्रव्य कांडकद्रव्य के असंख्यातवें भाग मात्र हुआ । उसको उस कांडकद्रव्य में से घटानेपर अवशेष अंत फालि का द्रव्य जानना । इसतरह सर्व कांडकों में अंत फालि के द्रव्य का प्रमाण लाने का विधान जानना । इसका उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम में असंख्यातगुणा क्रम से और उपरितन स्थिति में चय घटते क्रम से निक्षेपण करना – ऐसा विधान जानकर इसतरह इस गाथा का अर्थ जानना ।

'अठवस्से संपहियं' अर्थात् अष्ट वर्ष स्थिति अवशेष करने के समय में मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय की अंतिम दो फालियों का जो द्रव्य है, वह **'पुव्विल्लादो असंखसंगुणियं'** अर्थात् इससे पूर्व समय संबंधी द्विचरम फालि के अंत तक गुणसंक्रमण द्रव्य सहित जो सम्यक्त्वमोहनीय का सत्त्वद्रव्य है, उससे असंख्यातगुणा

है, क्योंकि यहां यथायोग्य गुणसंक्रमण का भागहार होता है । यहां अंत दो फालियों के द्रव्य में वह नहीं है, इसलिए असंख्यातगुणापना जानना । पुनश्च **'उवरिं पुण संपहियं'** अर्थात् ऊपर अष्ट वर्ष करने के द्वितीय समय से लेकर प्रथम कांडक की द्विचरम फालि तक तो अष्ट वर्ष करने के प्रथम समय संबंधी दो फालियों के द्रव्य से **'असंखसंखं च भागं तु'** अर्थात् असंख्यातवें भाग मात्र ही दीयमानद्रव्य है । वहां सर्वद्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देनेपर अपकृष्टद्रव्य होता है और अंत फालि का द्रव्य संख्यातवें भाग मात्र है, क्योंकि सर्वद्रव्य को कांडक प्रमाण मात्र संख्यात का भाग देकर किंचित् कम करनेपर अंत फालि का द्रव्य होता है ।

ठिदिखंडाणुक्कीरणं दुचरिमसमओ त्ति चरिमसमये च ।
उक्कट्ठिदफालीगददव्वाणि णिसिंचदे जम्हा ।।१३४।।

स्थितिखंडानुत्करणं द्विचरमसमय इति चरमसमये च ।
अपकर्षितफालिगतद्रव्याणि निषिंचति यस्मात् ।।१३४।।

टीका – सम्यक्त्वमोहनीय के अष्ट वर्ष प्रमाण स्थिति के अंतर्मुहूर्त मात्र आयामवाले स्थितिकांडक का अष्ट वर्ष करने के दूसरे समय में प्रारंभ किये हुये स्थितिकांडकोत्करण का काल यथासंभव अंतर्मुहूर्त मात्र है । उस काल के प्रथम समय से लेकर द्विचरम समय तक जो फालिद्रव्य सहित अपकृष्टद्रव्य निक्षेपण करता है, वह सम्यक्त्वमोहनीय के सत्त्वद्रव्य से असंख्यातगुणा हीन है, क्योंकि यहां अपकर्षण भागहार होता है । इसके अंत समय में जो अंत फालि का द्रव्य देता है, वह सर्वद्रव्य के संख्यातवें भाग मात्र है । इसतरह पूर्वोक्त **'उवरिं पुण संपहियं असंखसंखं च भागं तु'** का अर्थ सिद्ध हुआ ।

अडवस्से संपहियं गुणसेढीसीसयं असंखगुणं ।
पुव्विल्लादो णियमा उवरि विसेसाहियं दिस्सं ।।१३५।।

अष्टवर्षे संप्रहितं गुणश्रेणीशीर्षकं असंख्यगुणम् ।
पूर्वस्मात् नियमात् उपरि विशेषाधिकं दृश्यम् ।।१३५।।

टीका – गुणश्रेणी आयाम के अंत निषेक को यहां गुणश्रेणीशीर्ष कहते हैं, क्योंकि गुण जो असंख्यात का गुणकार, उसकी श्रेणी अर्थात् पंक्ति, उसका शीर्ष अर्थात् अग्रभाग – उसे गुणश्रेणीशीर्ष कहते हैं । वहां अष्ट वर्ष करने के समय में गुणश्रेणी का शीर्ष अर्थात् अवस्थित गुणश्रेणी आयाम में उपरितन स्थिति का एक निषेक मिलाया था, वह जानना । उसके पूर्व सत्त्वद्रव्य और निक्षेपण किये हुये द्रव्य को मिलानेपर दृश्यमानद्रव्य का जो प्रमाण है, वह इसके अनंतरपूर्व समय संबंधी गुणश्रेणीशीर्ष के दृश्यमानद्रव्य से असंख्यातगुणा है । परंतु अष्ट वर्ष करने के समय संबंधी गुणश्रेणीशीर्ष के दृश्यमानद्रव्य के पश्चात् अष्ट वर्ष करने के द्वितीयादि समय संबंधी गुणश्रेणीशीर्ष का द्रव्य क्रम से पूर्व-पूर्व गुणश्रेणीशीर्ष के द्रव्य से विशेष अधिक है, असंख्यातगुणा नहीं है । उसका स्वरूप संदृष्टि आदि से संस्कृत टीका में से या संदृष्टि वर्णन में से जानना ।

अडवस्से य ठिदीदो चरिमेदरफालिपडिददव्वं खु ।
संखासंखगुणूणं तेणुवरिमदिस्समाणमहियं सीसे ।।१३६।।

अष्टवर्षे च स्थितितः चरमेतरफालिपतितद्रव्यं खलु ।
संख्यासंख्यगुणोनं तेनोपरिमदृश्यमानमधिकं शीर्षे ।।१३६।।

टीका – अष्ट वर्ष करने के प्रथम समय में मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय की अंत दो फालियों का द्रव्य देनेपर उदयरूप प्रथम समय से लेकर स्थिति के अंत समय तक के समय संबंधी निषेक जो सत्तारूप हैं, उनमें प्रथम कांडक की अंत फालि के द्रव्य को कांडककाल के अंत समय में जो निक्षेपण किया, उसका प्रमाण एक-एक निषेक में पूर्व सत्तारूप द्रव्य के प्रमाण से संख्यातगुणा घटता जानना । तथा अष्ट वर्ष करने के द्वितीय समय से लेकर प्रथम कांडक की द्विचरम फालि के पतन समय तक के समयों में जो अपकर्षण किये द्रव्य को उन निषेकों में निक्षेपण किया उसका प्रमाण एक-एक निषेक में पूर्व सत्तारूप द्रव्य के प्रमाण से असंख्यातगुणा घटता जानना । इसलिए विवक्षित समय में अपकर्षण किया द्रव्य जो गुणश्रेणीशीर्ष में दिया, वह उसके नीचे के निषेक में दिये अपकृष्टद्रव्य से असंख्यातगुणा धन आता है *(असंख्यातगुणा है)* । सर्व सत्तारूप द्रव्य और निक्षेपण

किये द्रव्य को मिलानेपर जो दृश्यमानद्रव्य हुआ, वह पूर्व-पूर्व समय संबंधी गुणश्रेणीशीर्ष के द्रव्य से उत्तर-उत्तर समय संबंधी गुणश्रेणीशीर्ष का द्रव्य कुछ विशेष से ही अधिक है, गुणकाररूप नहीं है ।

जदि गोउच्छविसेसं रिणं हवे तोवि धणपमाणादो ।
जस्सि असंखगुणूणं ण गणिज्जदि तं तदो एत्थ ।।१३७।।

यदि गोपुच्छविशेषं ऋणं भवेत् तथापि धनप्रमाणात् ।
यस्मात् असंख्यगुणोनं न गण्यते तत्ततोऽत्र ।।१३७।।

टीका – जैसे गाय की पूंछ क्रम से घटती जाती है *(चौड़ाई हीन होती जाती है)* वैसे चय घटता क्रम जहां हो, वहां गोपुच्छ कहते हैं । जब तक समान चय हो, तब तक गोपुच्छविशेष कहते हैं । नीचे के गुणश्रेणी निषेक के सत्त्वद्रव्य से ऊपर के गुणश्रेणीशीर्ष के सत्त्वद्रव्य में गोपुच्छविशेष मात्र यद्यपि ऋण है,

भावार्थ – यहां प्रश्न है कि यहां निषेकों में चय घटता क्रम है, इसलिए पूर्व समय संबंधी गुणश्रेणीशीर्ष के सत्त्वद्रव्य से उत्तर समय संबंधी गुणश्रेणीशीर्ष के सत्त्वद्रव्य में चय प्रमाण द्रव्य घटता चाहिये, उसको नहीं घटाया और विशेष अधिक कहा, उसका कारण क्या है ?

उत्तर कहते हैं – यद्यपि ऐसा है तथापि इस मिलाये हुये अपकृष्टद्रव्य से यह चय प्रमाण घटता द्रव्य असंख्यातगुणा हीन है । इसलिए यहां घटाने योग्य ऋण को मिलाने योग्य धन के असंख्यातवें भाग जानकर अल्प होने से गिना नहीं है । पूर्व गुणश्रेणीशीर्ष के दृश्यद्रव्य से उत्तर गुणश्रेणीशीर्ष का द्रव्य विशेष अधिक ही कहा है ।

तत्तक्काले दिस्सं वज्जिय गुणसेढिसीसयं एकं ।
उवरिमठिदीसु वट्टदि विसेसहीणक्कमेणेव ।।१३८।।

तत्तत्काले दृश्यं वर्जयित्वा गुणश्रेणिशीर्षकमेकम् ।
उपरिमस्थितिषु वर्तते विशेषहीनक्रमेणैव ।।१३८।।

टीका – इसप्रकार कथित विधान से जिस-जिस विवक्षित समय में

सम्यक्त्वमोहनीय के द्रव्य को अपकर्षण करके उदय समय से लेकर स्थिति के अंत तक के निषेकों में निक्षेपण करता है, उस-उस समय गुणश्रेणीशीर्षरूप हुआ जो एक-एक निषेक, उसको छोड़कर उसके ऊपरवर्ती उपरितन स्थिति के सर्व निषेकों में तत्काल पाये जानेवाला दृश्यमानद्रव्य विशेष *(चय)* घटते अनुक्रमवाला ही जानना, क्योंकि वहां दिया हुआ द्रव्य और पूर्व द्रव्य चय घटते अनुक्रम सहित होते हैं ।

इसप्रकार अष्ट वर्ष मात्र सम्यक्त्वमोहनीय की स्थिति में जैसे प्रथम कांडक का विधान कहा, वैसे ही द्वितीय कांडक से द्विचरम कांडक की अंत फालि तक अपकृष्टद्रव्य और फालिद्रव्य के निक्षेप करने का अनुक्रम और प्राप्त हुये दृश्यमानद्रव्य का अनुक्रम जानना । इसतरह अष्ट वर्ष स्थिति अवशेष करने के समय से लेकर सम्यक्त्वमोहनीय के अंत कांडक के पहले का जो द्विचरम कांडक, उसकी अंत फालि के पतन समय तक क्षपणाविधान कहा ।

अब अंत कांडक का विधान कहते हैं –

गुणसेढिसंखभागा तत्तो संखगुणं उवरिमठिदीओ ।
सम्मत्तचरिमखंडो दुचरिमखंडादु संखगुणो ।।१३९।।

गुणश्रेणिसंख्यभागा: तत: संख्यगुणं उपरितनस्थितय: ।
सम्यक्त्वचरमखंडो द्विचरमखंडात् संख्यगुण: ।।१३९।।

टीका – अष्ट वर्ष स्थिति करने के प्रथम समय से लेकर यहां द्विचरम कांडक के अंत समय तक जो अवस्थित गुणश्रेणी आयाम है उसको संख्यात का भाग देकर वहां बहुभाग का जो प्रमाण और अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर आठ वर्ष की स्थिति करने के समय से पूर्व समय तक जो गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम था उसमें जो अनिवृत्तिकरण काल का संख्यातवां भाग मात्र गुणश्रेणीशीर्ष कहा उसको संख्यात का भाग देकर एकभाग का जो प्रमाण और अवस्थित गुणश्रेणी के अंत निषेकरूप जो शीर्ष उसके ऊपरवर्ती निषेकरूप उपरितन स्थिति में से द्विचरम कांडक में जिन निषेकों का अभाव किया उनके नीचे जो निषेक अवस्थित गुणश्रेणी आयाम के बहुभाग से संख्यातगुणा अवशेष रहे ।

इसतरह अवस्थित गुणश्रेणी आयाम का संख्यातवां बहुभाग और गलितावशेष गुणश्रेणी का संख्यातवां भाग और उपरितन स्थिति के अवशेष निषेक इन तीनों का जोड़ देनेपर जो प्रमाण हो, वही अंत कांडकायाम का प्रमाण है ।

भावार्थ – गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम के संख्यातवें भाग से लेकर उपरितन स्थिति के निषेक अवशेष रहे उनके अंत तक कांडकायाम का प्रमाण है । यह द्विचरम कांडकायाम प्रमाण से तो संख्यातगुणा है तथापि यथायोग्य अंतर्मुहूर्त मात्र ही है । उस अंत कांडक द्वारा घात करने के पश्चात् जो नीचे अवशेष स्थिति रहती है, उसका प्रमाण अवस्थित गुणश्रेणी आयाम के संख्यातवें भाग मात्र है, सो पहले जो गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम में अनिवृत्तिकरण काल के संख्यातवें भाग मात्र जो गुणश्रेणीशीर्ष कहा था, उसको संख्यात का भाग देकर बहुभाग मात्र तो कृतकृत्यवेदक काल और व्यतीत होने के पश्चात् अवशेष रहा जो अनिवृत्तिकरण का काल, उस प्रमाण अंत कांडकोत्करण काल इन दोनों को मिलानेपर उस अवशेष स्थिति का प्रमाण होता है ।

सम्मत्तचरिमखंडे दुचरिमफालि त्ति तिण्णि पव्वाओ ।
संपहियपुव्वगुणसेढीसीसे सीसे य चरिमम्हि ।।१४०।।

सम्यक्त्वचरमखंडे द्विचरमफालीति त्रीणि पर्वाणि ।
संप्राप्तपूर्वगुणश्रेणीशीर्षे शीर्षे च चरमे ।।१४०।।

टीका – सम्यक्त्वमोहनीय के अंत कांडक की प्रथम फालि के पतन समय से लेकर द्विचरम फालि के पतन समय तक द्रव्य निक्षेपण करने में तीन पर्व जानना । पर्व नाम विभाग का है । विभाग द्वारा तीन जगह द्रव्य देना । वहां अंत कांडकोत्करण काल के प्रथम समय में जिसका आरंभ हुआ ऐसा जो उदयरूप प्रथम समय से लेकर अवशेष स्थिति के अंत निषेक तक यहां जिसका प्रारंभ हुआ ऐसा जो गुणश्रेणी आयाम, उसके शीर्ष तक तो एक पर्व जानना । उसके ऊपर पहले जो अवस्थित गुणश्रेणी आयाम था उसके शीर्ष तक दूसरा पर्व जानना है । उसके ऊपर जो उपरितन स्थिति उसके प्रथम समय से लेकर अंत समय तक तीसरा पर्व जानना । वहां कांडकद्रव्य में से ग्रहण किया हुआ जो फालिद्रव्य उसका निक्षेपण तो पहले ही पर्व में होता है और सर्वद्रव्य में से अपकर्षण किया हुआ जो अपकृष्टद्रव्य

उसका निक्षेपण तीनों पर्वों में होता है ऐसा जानना ।

तत्थ असंखेज्जगुणं असंखगुणहीणयं विसेसूणं ।
संखातीदगुणूणं विसेसहीणं च दत्तिकमो ।।१४१।।

उक्कड्डिदबहुभागे पढमे सेसेक्कभागबहुभागे ।
बिदिए पव्वेवि सेसिगभागं तदिये जहा देदि ।।१४२।।

तत्रासंख्येयगुणं असंख्यगुणहीनकं विशेषोनम् ।
संख्यातीतगुणोनं विशेषहीनं च दत्तिक्रमः ।।१४१।।

अपकर्षितबहुभागे प्रथमे शेषैकभागबहुभागे ।
द्वितीये पर्वेऽपि शेषैकभागं तृतीये यथा ददाति ।।१४२।।

टीका – वहां प्रथम पर्व में द्रव्य असंख्यातगुणा देता है, वह कहते हैं – सम्यक्त्वमोहनीय के सर्वद्रव्य में से पूर्व निषेकों द्वारा सर्वद्रव्य के असंख्यातवें भाग मात्र द्रव्य घटानेपर अवशेष डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र अंत कांडक का द्रव्य है । उसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग का ग्रहण कर, उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग तो प्रथम पर्व में **'प्रक्षेपयोगोद्धृत'** इत्यादि विधान से असंख्यातगुणा क्रम से देना । अवशेष एकभाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग दूसरे पर्व में **'अद्धाणेण सव्वधणे'** इत्यादि विधान से चय घटते क्रम से देना । प्रथम पर्व से दूसरे पर्व का आयाम संख्यातगुणा जानना । अवशेष एकभाग तीसरे पर्व में **'अद्धाणेण सव्वधणे'** इत्यादि विधान से चय घटते क्रम से अपकर्षण किये हुये निषेक के नीचे अतिस्थापनावली छोड़कर उसके नीचे निक्षेपण करना । द्वितीय पर्व से संख्यातगुणा द्विचरम कांडक का आयाम है, उससे भी तीसरे पर्व का आयाम संख्यातगुणा है । निषेकों के प्रमाण का नाम यहां आयाम जानना । यहां अब प्रारंभ हुये ऐसे गुणश्रेणी के आयामरूप जो प्रथम पर्व उसके शीर्ष अर्थात् अंत निषेक में जो द्रव्य निक्षेपण किया उससे कांडक का प्रथम निषेक जो दूसरे पर्व का प्रथम निषेक है उसमें निक्षेपण किया हुआ द्रव्य असंख्यातगुणा हीन है । पुनश्च द्वितीय पर्व के अंत निषेक में जो द्रव्य निक्षेपण किया

उससे तृतीय पर्व के प्रथम निषेक में निक्षेपण किया द्रव्य असंख्यातगुणा हीन है । क्योंकि पूर्व कथन के अनुसार ऐसे ही होता है । इसीतरह अंत कांडक की प्रथम फालि के पतनरूप अंत कांडकोत्करण काल के प्रथम समय से लेकर द्विचरम फालि के पतनरूप जो अंत कांडकोत्करण काल का उपांत समय, वहां तक द्रव्य के निक्षेपण करने का विधान जानना ।

उदयादिगलिदसेसा चरिमे खंडे हवेज्ज गुणसेढी ।
फाडेदि चरिमफालिं अणियट्टीकरणचरिमम्हि ।।१४३।।

उदयादिगलितशेषा चरमे खंडे भवेत् गुणश्रेणी ।
पातयति चरमफालिमनिवृत्तिकरणचरमे ।।१४३।।

टीका – सम्यक्त्वमोहनीय के अंत कांडक की प्रथम फालि के पतन समय से लेकर द्विचरम फालि के पतन समय तक उदयादि गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम जानना । उदयरूप वर्तमान समय से लेकर यहां गुणश्रेणी आयाम पाया जाता है इसलिए उदयादि कहा और एक-एक समय व्यतीत होनेपर एक-एक समय गुणश्रेणी आयाम में से घटता जाता है, इसलिए गलितावशेष कहा है । इसतरह उदयादि गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम जानना । पुनश्च पूर्वोक्त विधान से अंत कांडक की द्विचरम फालि का पतन होनेपर कांडकोत्करण काल का अनिवृत्तिकरण काल में एक समय अवशेष रहता है । अवशेष रहे अनिवृत्तिकरण के अंत समय में अंत कांडक की अंतिम फालि का पतन होता है ।

चरिमं फालिं देदि दु पढमे पव्वे असंखगुणियकमा ।
अंतिमसमयम्हि पुणो पल्लासंखेज्जमूलाणि ।।१४४।।

चरमं फालिं ददाति तु प्रथमे पर्वे असंख्यगुणितक्रमाणि ।
अंतिमसमये पुनः पल्यासंख्येयमूलानि ।।१४४।।

टीका – यहां अनिवृत्तिकरण के अंत समय में, व्यतीत होने के पश्चात् अवशेष रहा ऐसा गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम वह कृतकृत्यवेदक काल का प्रमाण है ।

उसके द्विचरम समय तक तो प्रथम पर्व और उसका अंत समय वह द्वितीय पर्व जानना । वहां सम्यक्त्वमोहनीय के सर्वद्रव्य में से व्यतीत हुये निषेक और अवशेष रहे कृतकृत्यवेदक काल मात्र निषेक, इनका द्रव्य घटानेपर अवशेष किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण अंत कांडक के अंत फालि का द्रव्य है । उसको असंख्यातगुणा जो पल्य का प्रथम वर्गमूल, उसका भाग देकर वहां एकभाग तो प्रथम पर्व में **'प्रक्षेपयोगोद्धृत'** इत्यादि विधान से असंख्यातगुणा क्रम से देना ।

इतना विशेष है कि यहां असंख्यात का गुणकार समानरूप नहीं है । प्रथम निषेक से जिस असंख्यात से गुणा करनेपर दूसरे निषेक तक गुणकार होता है, उससे असंख्यातगुणा असंख्यात से दूसरे निषेक को गुणा करनेपर तीसरा निषेक होता है । इसतरह द्विचरम निषेक तक क्रम से गुणकार असंख्यातगुणा जानना । एकभाग इसतरह देनेपर अवशेष बहुभाग मात्र द्रव्य गुणश्रेणी के अंत निषेक में निक्षेपण करता है ।

चरिमे फालिं दिण्णे कदकरणिज्जे त्ति वेदगो होदि ।
सो वा मरणं पावइ चउगइगमणं च तट्ठाणे ।।१४५।।

देवेसु देवमणुए सुरणरतिरिए चउग्गईसुं पि ।
कदकरणिज्जोप्पत्ती कमेण अंतोमुहुत्तेणं ।।१४६।।

चरमे फालिं दत्ते कृतकरणीयेति वेदको भवति ।
स वा मरणं प्राप्नोति चतुर्गतिगमनं च तत्स्थाने ।।१४५।।

देवेषु देवमनुष्ये सुरनरतिरश्चि चतुर्गतिष्वपि ।
कृतकरणीयोत्पत्तिः क्रमेण अंतर्मुहूर्तेन ।।१४६।।

टीका – इसतरह अनिवृत्तिकरण के अंत समय में सम्यक्त्वमोहनीय के अंत कांडक की अंत फालि के द्रव्य को नीचे के निषेकों में निक्षेपण करने के पश्चात् अनंतर समय से लेकर अनिवृत्तिकरण काल के संख्यातवें भाग मात्र जो पुरातन गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम का शीर्ष, उसको संख्यात का भाग देकर वहां बहुभाग मात्र अंतर्मुहूर्त काल तक कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि होता है । चूंकि दर्शनमोह की

क्षपणा योग्य स्थितिकांडकादि कार्य अनिवृत्तिकरण के अंत समय में ही समाप्त हुये, इसलिए किया है करने योग्य कार्य जिसने ऐसा कृतकृत्य नाम पाता है, वह जीव भुज्यमान आयु के नाश से मरण को प्राप्त होता है तो सम्यक्त्वग्रहण के पहले जो आयु बंधी थी उसके वश से चारों गतियों में उत्पन्न होता है । वहां कृतकृत्यवेदक काल के एक-एक अंतर्मुहूर्त मात्र चार भाग करते हैं ।

वहां प्रथम भाग में मरे तो देव ही में, दूसरे भाग में मरे तो देव वा मनुष्य में, तीसरे भाग में मरे तो देव, मनुष्य, तिर्यंच में और चौथे भाग में मरे तो चारों गतियों में उपजते हैं । क्योंकि वहां उन्हीं में उपजने योग्य परिणाम होते हैं । इस क्रम से कृतकृत्यवेदक की उत्पत्ति जानना ।

करणपढमादु जावय किदुकिच्चुवरिं मुहुत्तअंतोत्ति ।
ण सुहाण परवत्ती सा धि कओदावरं तु वरिं ।।१४७।।

करणप्रथमात् यावत् कृतकृत्योपरि मुहूर्तांत इति ।
न शुभानां परावृत्तिः सा हि कपोतावरं तु उपरि ।।१४७।।

टीका – अधःकरण के प्रथम समय में दर्शनमोहक्षपणा के प्रारंभक जीव के पीत, पद्म या शुक्ल जो लेश्या होती है, वह प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धता के क्रम से अनिवृत्तिकरण के अंत समय में उस लेश्या का उत्कृष्ट अंश संपूर्ण होता है ।

उसके अनंतर कृतकृत्यवेदक काल के प्रथम भाग में मरे तो लेश्या पलटती ही नहीं, क्योंकि यहां मरकर देव ही में उपजना है ।

यदि दूसरे, तीसरे, चौथे भाग में मरे तो शुभ लेश्या की क्रम से हानि होकर मरण समय कपोत लेश्या का जघन्य अंश होता है, क्योंकि द्वितीय भाग में मरकर भोगभूमिया मनुष्य भी होता है; तीसरे भाग में मरकर भोगभूमिया मनुष्य या तिर्यंच भी होता है; चौथे भाग में मरकर जिसके नरकायु बंधी हो वह जीव प्रथम नारक पृथ्वी में भी उपजता है ।

यदि देवगति में ही उपजना हो तो उसके चारों ही भागों में लेश्या का पलटना नहीं होता । इसप्रकार *(कृतकृत्य)* वेदक काल में मरण होने की अपेक्षा कथन

किया । पुनश्च यदि वहां मरण न हो और पहले चारों गतियों में से किसी गति संबंधी आयु बंधी हो उसके क्षायिक सम्यक्त्व होने के पश्चात् मरण के समय गति के अनुसार लेश्याओं का पलटना जानना ।

अणुसमओ वट्टणयं कदकिज्जंतो त्ति पुव्वकिरियादो ।
वट्टदि उदीरणं वा असंखसमयप्पबद्धाणं ।।१४८।।

अनुसमयोपवर्तनं कृतकरणीय इति पूर्वक्रियातः ।
वर्तते उदीरणा वा असंख्यसमयप्रबद्धानाम् ।।१४८।।

टीका – अनिवृत्तिकरण काल का संख्यातवां भाग अवशेष रहनेपर जैसे दर्शनमोह के अनुभागकांडक घात को समाप्त कर प्रतिसमय अनंतगुणा घटते क्रम से अनुभाग का अपवर्तन कहा था, वही इस कृतकृत्यवेदक काल के अंत समय तक पाया जाता है, क्योंकि करण परिणामों की विशुद्धता के संस्कार का अवशेष यहां पाया जाता है । इस कृतकृत्यवेदक के काल में जब तक एक समय अधिक उच्छिष्टावली अवशेष रहे तब तक प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम से असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा पायी जाती है । उसका विधान कहते हैं –

उदयबहिं उक्कट्टिय असंखगुणमुदयआवलिम्हि खिवे ।
उवरिं विसेसहीणं कदकिज्जो जाव अइत्थवणं ।।१४९।।

जदि संकिलेसजुत्तो विसुद्धिसहिदो अतो वि पडिसमयं ।
दव्वमसंखेज्जगुणं उक्कट्टदि णत्थि गुणसेढी ।।१५०।।

जदि वि असंखेज्जाणं समयपबद्धाणुदीरणा तो वि ।
उदयगुणसेढिठिदिए असंखभागो हु पडिसमयं ।।१५१।।

उदयबहिरपकर्षितं असंख्यगुणं उदयावलौ क्षिपेत् ।
उपरि विशेषहीनं कृतकृत्यो यावदतिस्थापनम् ।।१४९।।

यदि संक्लेशयुक्तो विशुद्धिसहितो अतोऽपि प्रतिसमयम् ।
द्रव्यमसंख्येयगुणमपकर्षति नास्ति गुणश्रेणी ।।१५०।।

यद्यपि असंख्येयानां समयप्रबद्धानामुदीरणा तथापि ।
उदयगुणश्रेणिस्थितेरसंख्यभागो हि प्रतिसमयम् ।।१५१।।

टीका – कृतकृत्यवेदक काल मात्र सम्यक्त्वमोहनीय के निषेक रहनेपर उनका द्रव्य किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है । उसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग प्रमाण द्रव्य को उदयावली से बाह्य ऊपरवर्ती निषेकों में से ग्रहण कर उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एकभाग तो उदयावली में **'प्रक्षेपयोगोद्धृत'** इत्यादि विधान से प्रथम समय से लेकर अंत निषेक तक असंख्यातगुणा क्रम से देता है । अवशेष बहुभाग मात्र द्रव्य उस उदयावली के ऊपरवर्ती जो अवशेष अंतर्मुहूर्त मात्र उपरितन स्थिति उसमें से अंत में समय अधिक अतिस्थापनावली छोड़कर सर्व निषेकों में **'अद्धाणेण सव्वधणे'** इत्यादि विधान से विशेष हीन क्रम से निक्षेपण करता है । इसतरह उपरितन स्थिति का द्रव्य जो उदयावली में दिया जाता है उसका नाम उदीरणा है । १४९ ।

यद्यपि कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि लेश्या के पलटने से संक्लेश युक्त वा विशुद्धता युक्त होता है तथापि पहले जो करणरूप परिणाम हुये थे उनकी विशुद्धता के संस्कार के वश से प्रतिसमय असंख्यातगुणा द्रव्य को अपकर्षण करके उदीरणा करता है । गुणश्रेणी आयाम बिना किंचित् द्रव्य को उदयावली में देकर अवशेष को उपरितन स्थिति में दिया, इसलिए यहां गुणश्रेणी नहीं है । १५० ।

यद्यपि असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा पूर्व-पूर्व समय संबंधी उदीरणाद्रव्य से असंख्यातगुणा क्रम युक्त है तथापि अंत कांडक की अंत फालि के द्रव्य को गुणश्रेणी आयाम में दिया था, उस गुणश्रेणीरूप जो उदय में आया निषेक, उसके द्रव्य से यह उदीरणाद्रव्य असंख्यातवें भाग मात्र ही है । क्योंकि यह उदीरणाद्रव्य तो सर्वद्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां उस एकभाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र है और जो उस गुणश्रेणी का निषेक उदयरूप है उसका द्रव्य सर्वद्रव्य को असंख्यातगुणा पल्य वर्गमूल का भाग देकर एकभाग मात्र है । इसलिए

कृतकृत्यवेदक के प्रथमादि समय संबंधी निषेकों में यहां उदयावली में दिया हुआ उदीरणाद्रव्य वहां पूर्व में पाये जानेवाले सत्तारूपद्रव्य से असंख्यातगुणा हीन है ।१५१।

पुनश्च कृतकृत्यवेदक काल में एक समय अधिक आवली अवशेष रहनेपर पहले अपकर्षण किये हुये द्रव्य से असंख्यातगुणा द्रव्य को स्थिति का अंत जो उदयावली के ऊपरवर्ती एक निषेक, उसमें से अपकर्षण करके नीचे एक समय कम आवली के दो तृतीयांश *(दो बटे तीन)* भाग प्रमाण निषेकों को अतिस्थापनरूप रखकर उसके नीचे एक समय अधिक आवली के त्रिभाग मात्र निषेकों में देता है । वहां उस अपकर्षण किये हुये द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एकभाग मात्र द्रव्य को उदय समय से लेकर यथायोग्य असंख्यात समय संबंधी निषेकों में असंख्यातगुणा क्रम से देता है और अवशेष बहुभाग मात्र द्रव्य को अतिस्थापना के नीचे का समय छोड़कर उसके नीचे अवशेष आवली के त्रिभाग मात्र निषेकों में विशेष *(चय)* घटते क्रम से निक्षेपण करता है । यह ही उत्कृष्ट उदीरणा है । इससे अधिक उदीरणा का द्रव्य नहीं है ।

इसतरह अनुभाग का तो अनुसमयापवर्तन करके और कर्म परमाणुओं की उदीरणा करके कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि की शेष रही सम्यक्त्वमोहनीय की अंतर्मुहूर्त स्थिति में से उच्छिष्टावली बिना जो सर्व स्थिति है, वह प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेशों के सर्वथा नाश सहित जो एक-एक निषेक का एक-एक समय में उदयरूप होकर खिरना *(निर्जरना)* उसके द्वारा नष्ट होती है । उसके अनंतर समय में उच्छिष्टावली मात्र स्थिति अवशेष रहनेपर उदीरणा का भी अभाव हुआ, केवल अनुभाग का अपवर्तन है । वह पहले कहे हुये अनुभाग के अपवर्तन से इसका अन्य लक्षण है । उदयरूप प्रथम समय से लेकर प्रतिसमय अनंतगुणा क्रम से वर्तता है । उसके द्वारा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेशों के सर्वथा नाशपूर्वक प्रतिसमय उच्छिष्टावली के एक-एक निषेक को गलाकर निर्जरारूप करके-करके अनंतर समय में जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है ।

बिदियकरणादिमादो कदकरणिज्जस्स पढमसमओ त्ति ।
वोच्छं रसखंडुक्कीरणकालादीणमप्पबहु ।।१५२।।

द्वितीयकरणादिमात् कृतकृत्यस्य प्रथमसमय इति ।
वक्ष्ये रसखंडोत्करणकालादीनामल्पबहुत्वम् ।।१५२।।

टीका – दूसरा जो अपूर्वकरण उसके प्रथम समय से लेकर कृतकृत्यवेदक के प्रथम समय तक अनुभागकांडकोत्करण काल आदि के अल्पबहुत्व के तैंतीस स्थान कहूंगा ।

रसठिदिखंडुक्कीरणअद्धा अवरं वरं च अवरवरं ।
सव्वत्थोवं अहियं संखेज्जगुणं विसेसहियं ।।१५३।।

कदकरणसम्मखवणाणियट्टिअपुव्वद्ध संखगुणिदकमं ।
तत्तो गुणसेढिस्स य णिक्खेओ साहियो होदि ।।१५४।।

सम्मदुचरिमे चरिमे अडवस्ससादिमे च ठिदिखंडा ।
अवरवराहावि य अडवस्सं संखगुणियकमा ।।१५५।।

सम्मे असंखवस्सिय चरिमट्ठिदिखंडओ असंखगुणो ।
मिस्से चरिमे खंडियमहियं अडवस्समेत्तेण ।।१५६।।

मिच्छे खवदे सम्मदुगाणं ताणं च मिच्छसंतं हि ।
पढमंतिमठिदिखंडा असंखगुणिदा हु दुट्ठाणे ।।१५७।।

मिच्छंतिमठिदिखंडो पल्लासंखेज्जभागमेत्तेण ।
हेट्ठिमठिदिप्पमाणेणब्भिहियो होदि णियमेण ।।१५८।।

दूरावकिट्टिपढमं ठिदिखंडं संखसंगुणं तिण्णं ।
दूरावकिट्टिहेदूठिदिखंडं संखसंगुणियं ।।१५९।।

पलिदोवमसंतादो बिदियो पल्लस्स हेदुगो जो दु ।
अवरो अपुव्वपढमे ठिदिखंडो संखगुणिदकमो ।।१६०।।

पलिदोवमसंतादो पढमो ठिदिखंडओ दु संखगुणो ।
पलिदोवमठिदिसंतं होदि विसेसाहियं तत्तो ।।१६१।।

बिदियकरणस्स पढमे ठिदिखंडविसेसयं तु तदियस्स ।
करणस्स पढमसमये दंसणमोहस्स ठिदिसंतं ।।१६२।।

दंसणमोहूणाणं बंधो संतो य अवर वरगो य ।
संखेये गुणियकमा तेत्तीसा एत्थ पदसंखा ।।१६३।।

रसस्थितिखंडोत्करणाद्धा अवरं वरं अवरवरं ।
सर्वस्तोकं अधिकं संख्येयगुणं विशेषाधिकम् ।।१५३।।

कृतकरणसम्यक्षपणानिवृत्त्यपूर्वाद्धा संख्यगुणितक्रमं ।
ततो गुणश्रेण्याश्च निक्षेपः साधिको भवति ।।१५४।।

सम्यग्द्विचरमे चरमे अष्टवर्षस्यादिमे च स्थितिखंडानि ।
अवरवराबाधापि च अष्टवर्षं संख्यातगुणितक्रमाणि ।।१५५।।

सम्येऽसंख्यवर्षे चरमस्थितिखंडकोऽसंख्यगुणः ।
मिश्रे चरमे खंडितमधिकमष्टवर्षमात्रेण ।।१५६।।

मिथ्ये क्षपिते सम्यग्द्विकानां तेषां च मिथ्यसत्त्वं हि ।
प्रथमांतिमस्थितिखंडान्यसंख्यगुणितानि हि द्विस्थाने ।।१५७।।

मिथ्यांतिमस्थितिखंडं पल्यासंख्येयभागमात्रेण ।
अधस्तनस्थितिप्रमाणेनाभ्यधिकं भवति नियमेन ।।१५८।।

दूरापकृष्टिप्रथमं स्थितिखंडं संखसंगुणं त्रयं ।
दूरापकृष्टिहेतुः स्थितिखंडः संख्यसंगुणितः ।।१५९।।

पल्योपमसत्त्वतो द्वितीयं पल्यस्य हेतुकं यत्तु ।
अवरमपूर्वप्रथमे स्थितिखंडं संख्यगुणितक्रमम् ।।१६०।।

पल्योपमसत्त्वतः प्रथमं स्थितिखंडकं तु संख्यगुणं ।
पल्योपमस्थितिसत्त्वं भवति विशेषाधिकं ततः ।।१६१।।

द्वितीयकरणस्य प्रथमे स्थितिखंडविशेषकं तु तृतीयस्य ।
करणस्य प्रथमसमये दर्शनमोहस्य स्थितिसत्त्वम् ।।१६२।।

दर्शनमोहोनानां बंधः सत्त्वं च अवरं वरकं च ।
संख्येयगुणितक्रमा त्रायस्त्रिंशदत्र पदसंख्या ।।१६३।।

टीका – (१) सम्यक्त्वमोहनीय का तो अष्ट वर्ष स्थिति करने के समय से पहले समयों में पाया जानेवाला और आयु बिना अन्य कर्मों का अनिवृत्तिकरण काल के अंत भाग में पाया जानेवाला ऐसा जो जघन्य अनुभागखंडोत्करण काल वह संख्यात आवली मात्र है, तो भी वक्ष्यमाण *(यहां कहे जानेवाले)* सर्व स्थानों से अल्प है । (२) इससे इसके संख्यातवें भाग मात्र विशेष से अधिक अपूर्वकरण के प्रथम समय में जिसका प्रारंभ हुआ ऐसा उत्कृष्ट अनुभागखंडोत्करण का काल है । (३) उससे संख्यातगुणा अनिवृत्तिकरण के अंत भाग में पाये जानेवाले जघन्य स्थितिकांडकोत्करण का काल है । (४) उससे इसके संख्यातवें भाग मात्र विशेष से अधिक अपूर्वकरण की आदि में पाये जानेवाले उत्कृष्ट स्थितिकांडकोत्करण का काल है । १५३ ।

टीका – (५) उससे संख्यातगुणा कृतकृत्यवेदक का काल है । (६) उससे संख्यातगुणा अष्ट वर्ष करने के समय से लेकर कृतकृत्यवेदक के अंत समय तक सम्यक्त्वमोहनीय की क्षपणा का काल है । (७) उससे संख्यातगुणा अनिवृत्तिकरण का काल है । (८) उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण का काल है । (९) उससे अनिवृत्तिकरण काल और उसके संख्यातवें भाग मात्र विशेष से अधिक अपूर्वकरण के प्रथम समय में जिसका प्रारंभ हुआ ऐसा गुणश्रेणी आयाम है । १५४ ।

टीका – (१०) उससे संख्यातगुणा सम्यक्त्वमोहनीय के द्विचरम स्थितिकांडक का आयाम है । (११) उससे संख्यातगुणा सम्यक्त्वमोहनीय के अंत स्थितिकांडक का आयाम है । (१२) उससे संख्यातगुणा सम्यक्त्वमोहनीय की अष्ट वर्ष स्थिति का प्रथम कांडक आयाम है । (१३) उससे संख्यातगुणा कृतकृत्यवेदक के प्रथम समय में पाये जानेवाले ज्ञानावरणादि कर्मों के स्थितिबंध का जघन्य आबाधाकाल है । (१४) उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण के प्रथम समय में पाये जानेवाले

स्थितिबंध का उत्कृष्ट आबाधाकाल है । यहां तक ये सर्व काल प्रत्येक यथासंभव अंतर्मुहूर्त मात्र ही जानना । (१५) उससे संख्यातगुणी सम्यक्त्वमोहनीय की अवशेष अष्ट वर्ष प्रमाण स्थिति है । १५५ ।

टीका – (१६) उससे असंख्यातगुणा सम्यक्त्वमोहनीय की आठ वर्ष मात्र स्थिति करने के लिये किया हुआ पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र अंत का स्थितिकांडक आयाम है । (१७) उससे उच्छिष्टावली से हीन अष्ट वर्ष मात्र विशेष से अधिक मिश्रमोहनीय का अंत का स्थितिकांडक आयाम है । १५६ ।

टीका – (१८) उससे असंख्यातगुणा अंत स्थितिकांडक की अंत फालि के द्रव्य को मिश्रमोहनीय में संक्रमण करके मिथ्यात्व का क्षय करने के समय के अनंतरवर्ती समय में पाया जानेवाला मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय का प्रथम स्थितिकांडक आयाम है । (१९) उससे असंख्यातगुणा जिस काल में मिथ्यात्व का सत्त्वद्रव्य अंत कांडक प्रमाण अवशेष रहता है उस काल में पाया जानेवाला मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय के अंत कांडक का आयाम है । १५७ ।

टीका – (२०) उससे मिथ्यात्व का सत्त्व जिस काल में पाया जाता है उस काल में मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय के अंत कांडक का घात होने के पश्चात् अवशेष रही उन दोनों की नीचे की स्थिति पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र उससे अधिक मिथ्यात्व के अंत कांडक का आयाम है । १५८ ।

टीका – (२१) उससे असंख्यातगुणा दर्शनमोहनीयत्रिक की दूरापकृष्टि नामक स्थिति में प्राप्त हुआ ऐसा पल्य के असंख्यात बहुभाग मात्र स्थितिकांडक आयाम है । (२२) उससे संख्यातगुणा दूरापकृष्टि को कारण ऐसा पल्य के संख्यात बहुभाग मात्र स्थितिकांडक आयाम है । १५९।

टीका – (२३) उससे संख्यातगुणा पल्य मात्र अवशेष स्थिति होनेपर पाया जानेवाला द्वितीय स्थितिकांडक का आयाम है । (२४) उससे संख्यातगुणा पल्य मात्र स्थिति के कारणभूत ऐसा पल्य के संख्यातवें भाग मात्र स्थितिकांडक आयाम है । (२५) उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण के प्रथम समय में प्रारंभ हुये ऐसे जघन्य स्थितिकांडक का आयाम है । १६० ।

टीका – (२६) उससे संख्यातगुणा पल्य मात्र अवशेष स्थिति में प्राप्त ऐसा पल्य के संख्यात बहुभाग मात्र प्रथम कांडक का आयाम है । (२७) उससे पल्य के संख्यातवें भाग मात्र विशेष से अधिक पल्य मात्र स्थितिसत्त्व है । १६१ ।

टीका – (२८) उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण के प्रथम समय में जघन्य और उत्कृष्ट कांडकों के बीच के विशेष का प्रमाण पल्य के संख्यातवें भाग से हीन पृथक्त्व सागर प्रमाण है । (२९) उससे संख्यातगुणा अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में पाया जानेवाला दर्शनमोह का स्थितिसत्त्व है । (३०) उससे संख्यातगुणा कृतकृत्यवेदक के प्रथम समय में पाया जानेवाला दर्शनमोह बिना अन्य कर्मों का जघन्य स्थितिबंध है । (३१) उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण के प्रथम समय में पाया जानेवाला उन्हीं कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबंध है । (३२) उससे संख्यातगुणा अनिवृत्तिकरण के अंत भाग में पाया जानेवाला उन्हीं कर्मों का जघन्य स्थितिसत्त्व है । (३३) उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण के प्रथम समय में पाया जानेवाला उन्हीं कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व है ।

इसतरह दर्शनमोह की क्षपणा के अवसर में पाये जानेवाले अल्पबहुत्व के तैंतीस स्थान हैं । १६२-१६३ ।

सत्तण्हं पयडीणं खयादु खइयं तु होदि सम्मत्तं ।
मेरु व णिप्पकंपं सुणिम्मलं अक्खयमणंतं ।।१६४।।

दंसणमोहे खविदे सिज्झदि तत्थेव तदियतुरियभवे ।
णादिक्कदि तुरियभवे ण विणस्सदि सेससम्मे व ।।१६५।।

सत्तण्हं पयडीणं खयादु अवरं तु खइयलद्धी दु ।
उक्कस्सखइयलद्धी घाइचउक्कखएण हवे ।।१६६।।

उवणेउ मंगलं वो भवियजणा जिणवरस्स कमकमलजुयं ।
जसकुलिसकलससत्थियससंकसंखंकुसादिलक्खणभरियं ।।१६७।।

सप्तानां प्रकृतीनां क्षयात् क्षायिकं तु भवति सम्यक्त्वम् ।
मेरुरिव निष्प्रकंपं सुनिर्मलमक्षयमनंतम् ।।१६४।।

दर्शनमोहे क्षपिते सिद्ध्यति तत्रैव तृतीयतुर्यभवे ।
नातिक्रामति तुर्यभवं न विनश्यति शेषसम्यगिव ।।१६५।।

सप्तानां प्रकृतीनां क्षयादवरा तु क्षायिकलब्धिस्तु ।
उत्कृष्टक्षायिकलब्धिर्घातिचतुष्कक्षयेण भवेत् ।।१६६।।

उपनयतु मंगलं वो भविकजनान् जिनवरस्य क्रमकमलयुगं ।
झषकुलिशकलशशक्थिकशशांकशंखांकुशादिलक्षणभरितम् ।।१६७।।

टीका – अनंतानुबंधी चतुष्क, दर्शनमोहत्रिक इन सात प्रकृतियों के क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व होता है, वह निष्कंप अर्थात् निश्चल है, सुनिर्मल अर्थात् शंकादि मल से रहित है, अक्षय अर्थात् शिथिलता के अभाव से गाढा है, अनंत अर्थात् अंत रहित है । १६४ ।

दर्शनमोह का क्षय होनेपर उसी भव में या तीसरे भव में या मनुष्य, तिर्यंच की पहले आयु बंधी हो तो भोगभूमि की अपेक्षा चौथे भव में सिद्धपद प्राप्त करता है । चौथे भव को नहीं उल्लंघता । तथा औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्ववत् यह नाश को प्राप्त नहीं होता । १६५ ।

सात प्रकृतियों के क्षय से असंयत सम्यग्दृष्टि के क्षायिक सम्यक्त्वरूप जघन्य क्षायिकलब्धि होती है । चार घातिया कर्मों के क्षय से परमात्मा के केवलज्ञानादिरूप उत्कृष्ट क्षायिकलब्धि होती है । १६६ ।

विशेष – १६७ क्रमांक की गाथा भाषा टीका में नहीं है । उसका अर्थ यह है कि – मत्स्य, वज्र, कलश, शंख आदि नाना शुभ लक्षणों से सुशोभित जिनेन्द्र भगवान के चरणकमल भव्यजनों को मंगल प्रदान करें ।

।। इति क्षायिक सम्यक्त्व प्ररूपणं समाप्तम् ।।२।।

तीसरा अधिकार : चारित्रलब्धि-देशचारित्र

दुविहा चरित्तलद्धी देसे सयले य देसचारित्तं ।
मिच्छो अयदो सयलं तेवि व देसो य लब्भेई ।।१६८।।

द्विधा चारित्रलब्धिः देशे सकले च देशचारित्रम् ।
मिथ्योऽयतः सकलं तावपि च देशश्च लभते।।१६८।।

टीका – चारित्र की लब्धि अर्थात् प्राप्ति वह चारित्रलब्धि है । वह देशचारित्र और सकलचारित्र के भेद से दो प्रकार की है । वहां देशचारित्र को मिथ्यादृष्टि या असंयत सम्यग्दृष्टि प्राप्त होता है । तथा सकलचारित्र को वे दोनों और देशसंयत प्राप्त होता है ।

अंतोमुहुत्तकाले देसवदी होहिदि त्ति मिच्छो हु ।
सोसरणो सुज्झंतो करणं पि करेदि सगजोग्गं ।।१६९।।

अंतर्मुहूर्तकाले देशव्रती भविष्यतीति मिथ्यो हि ।
सापसरणः शुध्यन् करणान्यपि करोति स्वकयोग्यम् ।।१६९।।

टीका – अंतर्मुहूर्त काल पश्चात् जो देशव्रती होगा ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धता से वर्धमान होता हुआ आयु बिना सात कर्मों का बंध और सत्त्व अंतःकोडाकोडी *(सागर)* मात्र अवशेष करने के द्वारा तो स्थितिबंधापसरण को करते हुये और अशुभ कर्मों का अनुभाग अनंतवें भाग मात्र करने के द्वारा अनुभागबंधापसरण को करते हुये, अपने करण योग्य परिणाम को करता है ।

मिच्छो देसचरित्तं उवसमसम्मेण गिण्हमाणो हु ।
सम्मत्तुप्पत्तिं वा तिकरणचरिमम्हि गेण्हदि हु ।।१७०।।

मिथ्यो देशचारित्रं उपशमसम्येन गृण्हन् हि ।
सम्यक्त्वोत्पत्तिमिव त्रिकरणचरमे गृण्हाति हि ।।१७०।।

टीका – अनादि या सादि मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्व सहित देशचारित्र

को ग्रहण करता है, वहां दर्शनमोह के उपशमविधान का जैसे पहले वर्णन किया है, वैसे ही विधान द्वारा तीन करणों के अंत समय में देशचारित्र को ग्रहण करता है । प्रकृतिबंधापसरण, स्थितिबंधापसरण आदि जो कार्य विशेष वहां कहे हैं, वे सर्व होते हैं, विशेष कुछ नहीं है ।

मिच्छो देसचरित्तं वेदगसम्मेण गेण्हमाणो हु ।
दुकरणचरिमे गेण्हदि गुणसेढी णत्थि तक्करणे ।।१७१।।

सम्मत्तुप्पत्तिं वा थोवबहुत्तं च होदि करणाणं ।
ठिदिखंडसहस्सगदे अपुव्वकरणं समप्पदि हु ।।१७२।।

मिथ्यो देशचारित्रं वेदकसम्येन गृण्हन् हि ।
द्विकरणचरमे गृण्हाति गुणश्रेणी नास्ति तत्करणे ।।१७१।।

सम्यक्त्वोत्पत्तिमिव स्तोकबहुत्वं च भवति करणानाम् ।
स्थितिखंडसहस्रगतं अपूर्वकरणं समाप्यते हि ।।१७२।।

टीका – सादि मिथ्यादृष्टि जीव वेदक सम्यक्त्व सहित देशचारित्र को ग्रहण करता है, उसके अध:करण, अपूर्वकरण ये दो ही करण होते हैं, उनमें गुणश्रेणी निर्जरा नहीं होती, अन्य स्थितिखंडादि सर्व कार्य होते हैं, वह अपूर्वकरण के अंत समय में युगपत् वेदक सम्यक्त्व और देशचारित्र को ग्रहण करता है, क्योंकि अनिवृत्तिकरण बिना ही इनकी प्राप्ति होती है । वहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्तिवत् करणों का अल्पबहुत्व है, इसलिए यहां अध:करण काल से अपूर्वकरण का काल संख्यातवें भाग प्रमाण है । अपूर्वकरण के काल में संख्यात हजार स्थितिखंड होनेपर अपूर्वकरण का काल समाप्त होता है ।

इसीतरह असंयत वेदक सम्यग्दृष्टि भी दो करण के अंत समय में देशचारित्र को प्राप्त होता है । मिथ्यादृष्टि ही के व्याख्यान से सिद्धांत के अनुसार असंयत का भी ग्रहण करना । यहां उपशम सम्यक्त्व का तो अभाव है, इसलिए उस संबंधी गुणश्रेणी नहीं है और देशसंयत का अब तक ग्रहण हुआ नहीं है इसलिए उस संबंधी

गुणश्रेणी नहीं है तथा वेदक सम्यक्त्व गुणश्रेणी का कारण नहीं है, इसलिए यहां अपूर्वकरण में गुणश्रेणी का अभाव कहा है ।

कर्मों के उपशम और क्षय विधान ही में अनिवृत्तिकरण होता है, क्षयोपशम में नहीं होता, इसलिए अनिवृत्तिकरण नहीं कहा ।

से काले देसवदी असंखसमयप्पबद्धमाहरियं ।
उदयावलिस्स बाहिं गुणसेढीमवट्ठिदं कुणदि ।।१७३।।

तस्मिन् काले देशव्रती असंख्यसमयप्रबद्धमाहृत्य ।
उदयावलेर्बाह्यं गुणश्रेणीमवस्थितां करोति ।।१७३।।

टीका – अपूर्वकरण के अंत समय के अनंतरवर्ती समय में जीव देशव्रती होकर अपने देशव्रत *(देशविरत - देशसंयत - पांचवां गुणस्थान)* के काल में आयु बिना अन्य कर्मों के सर्व सत्त्वद्रव्य को अपकर्षण भागहार मात्र असंख्यात का भाग देकर एकभाग में असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण द्रव्य को ग्रहण कर उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग उपरितन स्थिति में देता है, अवशेष एकभाग को असंख्यातलोक का भाग देकर एकभाग उदयावली में देता है और बहुभाग असंख्यात समयप्रबद्ध मात्र है, उसे गुणश्रेणी आयाम में देता है । यह गुणश्रेणी आयाम अवस्थित है, गलितावशेष नहीं है तथा प्रथमोपशम सम्यक्त्व संबंधी गुणश्रेणी आयाम से संख्यातगुणा हीन है । इसतरह देशव्रती होकर उदयावली से बाह्य अवस्थित गुणश्रेणी करता है ।

दव्वं असंखगुणियक्कमेण एयंतवड्ढिकालो त्ति ।
बहुठिदिखंडे तीदे अधापवत्तो हवे देसो ।।१७४।।

द्रव्यमसंख्यगुणितक्रमेण एकांतवृद्धिकाल इति ।
बहुस्थितिखंडेऽतीते अधाप्रवृत्तो भवेद्देशः ।।१७४।।

टीका – देशसंयत के प्रथम समय से लेकर अंतर्मुहूर्त तक प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धता बढ़ती है, इसको एकांतवृद्धि कहते हैं । इस काल में प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम से द्रव्य को अपकर्षण करके अवस्थित गुणश्रेणी आयाम में निक्षेपण करता है ।

वहां एकांतवृद्धि के काल में स्थितिकांडकादि कार्य होते हैं । बहुतसे स्थितिखंड होनेपर एकांतवृद्धि का काल समाप्त होने के अनंतर विशुद्धता की वृद्धि से रहित होकर, स्वस्थान देशसंयत होता है, इसको अधाप्रवृत्त देशसंयत भी कहते हैं । उसका जघन्य काल अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोन *(कुछ कम)* कोडिपूर्व वर्ष प्रमाण है ।

[***विशेषार्थ*** – *कोई जीव देशसंयत गुणस्थान में कम से कम काल तक रहेगा तो अंतर्मुहूर्त प्रमाण रहेगा ही । उत्कृष्ट काल के बारे में देखते हैं – देशसंयत गुणस्थान कर्मभूमि के मनुष्य और तिर्यंचों में ही होता है, जिनकी उत्कृष्ट आयु करोड पूर्व की हो सकती है । मनुष्यों में जन्म से आठ वर्ष के पश्चात् और सम्मूर्च्छन तिर्यंचों में अंतर्मुहूर्त पश्चात् देशसंयत की प्राप्ति हो सकती है । इसलिए कुछ कम करोड पूर्व कहा । यह जीव मरकर नियम से चतुर्थ गुणस्थानवर्ती देव होता है ।*]

ठिदिरसघादो णत्थि हु अधापवत्ताभिधाणदेसस्स ।
पडिउद्वदेमुहुत्तं संतेण हि तस्स करणदुगा ।।१७५।।

स्थितिरसघातो नास्ति हि अधाप्रवृत्ताभिधानदेशस्य ।
प्रतिपतिते मुहूर्तं संयतेन हि तस्य करणद्विकम् ।।१७५।।

टीका – अधाप्रवृत्त देशसंयत के काल में स्थितिखंडन और अनुभागखंडन नहीं होता । एकांतवृद्धि देशसंयत के अंत समय में घात करने के पश्चात् जो अवशेष स्थिति और अनुभाग रहे, वे ही वहां रहते हैं । जो जीव तीव्र संक्लेश के कारणभूत बाह्य निमित्त बिना केवल अंतरंग कर्म के उदय से उत्पन्न संक्लेश द्वारा देशसंयत से भ्रष्ट होकर असंयत सम्यग्दृष्टि होकर वहां छोटे अंतर्मुहूर्त काल मात्र रहकर शीघ्र ही देशसंयम को ग्रहण करता है उसके भी स्थितिकांडक और अनुभागकांडक का घात नहीं होता, क्योंकि दो करण किये बिना ही यह देशसंयम को ग्रहण करता है । जो जीव बाह्य कारण से सम्यक्त्व वा देशसंयम से भ्रष्ट होकर मिथ्यादृष्टि होकर वहां बड़ा अंतर्मुहूर्त या संख्यात या असंख्यात वर्ष तक रहकर पश्चात् वेदक सम्यक्त्व सहित देशसंयम को ग्रहण करता है उसके अध:करण और अपूर्वकरण होते हैं । इसलिए वहां स्थिति और अनुभाग कांडकघात भी होते हैं ।

देसो समये समये सुज्झंतो संकिलिस्समाणो य ।
चउवड्ढिहाणिदव्वादवट्ठिदं कुणदि गुणसेढिं ।।१७६।।

देशः समये समये शुध्यन् संक्लिश्यन् च ।
चतुर्वृद्धिहानिद्रव्यादवस्थितां करोति गुणश्रेणीम् ।।१७६।।

टीका – अधाप्रवृत्त देशसंयत जीव कदाचित् विशुद्ध होता है, कदाचित् संक्लेशी होता है, वहां विवक्षित कर्म का पूर्व समय में जो द्रव्य अपकर्षण किया उससे अनंतर समय में विशुद्धता की वृद्धि के अनुसार कदाचित् असंख्यातवें भाग बढ़ता, कदाचित् संख्यातवें भाग बढ़ता, कदाचित् संख्यातगुणा, कदाचित् असंख्यातगुणा द्रव्य को अपकर्षण करके गुणश्रेणी में निक्षेपण करता है । पुनश्च विशुद्धता की हानि के अनुसार कदाचित् असंख्यातवें भाग हीन, कदाचित् संख्यातवें भाग हीन, कदाचित् संख्यातगुणा हीन, कदाचित् असंख्यातगुणा हीन द्रव्य को अपकर्षण करके गुणश्रेणी में निक्षेपण करता है । इसतरह अधाप्रवृत्त देशसंयत के सर्व काल में प्रतिसमय यथासंभव चतुःस्थानपतित वृद्धि-हानि सहित गुणश्रेणी विधान पाया जाता है ।

बिदियकरणादु जावय देसस्सेयंतवड्ढिचरिमे त्ति ।
अप्पाबहुगं वोच्छं रसखंडद्धाण पहुदीणं ।।१७७।।

द्वितीयकरणात् यावत् देशस्यैकांतवृद्धिचरमे इति ।
अल्पबहुत्वं वक्ष्ये रसखंडाद्धानां प्रभृतीनाम् ।।१७७।।

टीका – अपूर्वकरण से लेकर एकांतवृद्धि देशसंयत के अंत तक पाये जानेवाले जघन्य अनुभागखंडोत्करण काल आदिरूप जो अठारह स्थान हैं, उनका अल्पबहुत्व कहूंगा ।

अंतिमरसखंडुक्कीरणकालादो दु पढमओ अहिओ ।
चरिमट्ठिदिखंडुक्कीरणकालो संखगुणिदो हु ।।१७८।।

पढमट्ठिदिखंडुक्कीरणकालो साहियो हवे तत्तो ।
एयंतवड्ढिकालो अपुव्वकालो य संखगुणियकमा ।।१७९।।

अवरा मिच्छतियद्धा अविरद तह देससंजमद्धा य ।
छप्पि समा संखगुणा तत्तो देसस्स गुणसेढी ।।१८०।।

चरिमाबाहा तत्तो पढमाबाहा य संखगुणियकमा ।
तत्तो असंखगुणियो चरिमट्ठिदिखंडओ णियमा ।।१८१।।

पल्लस्स संखभागं चरिमट्ठिदिखंडयं हवे जम्हा ।
तम्हा असंखगुणियं चरिमट्ठिदिखंडयं होई ।।१८२।।

पढमे अवरो पल्लो पढमुक्कस्सं च चरिमठिदिबंधो ।
पढमो चरिमं पढमिट्ठिदिसंतं संखगुणियकमा ।।१८३।।

अंतिमरसखंडोत्करणकालतस्तु प्रथमोऽधिकः ।
चरमस्थितिखंडोत्करणकालः संख्यगुणितो हि ।।१७८।।

प्रथमस्थितिखंडोत्करणकालः साधिको भवेत् ततः ।
एकांतवृद्धिकालेः अपूर्वकालश्च संख्यगुणितक्रमः ।।१७९।।

अवरा मिथ्यत्रिकाद्धा अविरता तथा देशसंयमाद्धा च ।
षडपि समाः संख्यगुणा ततो देशस्य गुणश्रेणी ।।१८०।।

चरमाबाधा ततः प्रथमाबाधा च संख्यगुणितक्रमा ।
ततः असंख्यगुणितः चरमस्थितिखंडको नियमात् ।।१८१।।

पल्यस्य संख्यभागं चरमस्थितिखंडकं भवेत् यस्मात् ।
तस्मादसंख्यगुणितं चरमं स्थितिखंडकं भवति ।।१८२।।

प्रथमे अवरः पल्यः प्रथमोत्कृष्टं च चरमस्थितिबंधः ।
प्रथमः चरमं प्रथमस्थितिसत्त्वं संख्यगुणितक्रमाणि ।।१८३।।

टीका – (१) सबसे अल्प तो देशसंयत के एकांतवृद्धि काल के अंत में पाया जानेवाला जघन्य अनुभागखंडोत्करण काल है । (२) उससे कुछ विशेष से अधिक अपूर्वकरण के प्रथम समय में पाया जानेवाला उत्कृष्ट अनुभागखंडोत्करण काल है । (३) उससे संख्यातगुणा देशसंयत के एकांतवृद्धि काल के अंत समय में पाया जानेवाला जघन्य स्थितिकांडकोत्करण काल है । १७८ ।

(४) उससे कुछ विशेष से अधिक अपूर्वकरण के प्रथम समय में पाया जानेवाला उत्कृष्ट स्थितिखंडोत्करण काल है । (५) उससे संख्यातगुणा एकांतवृद्धि का काल है । (६) उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण का काल है । १७९ ।

(७) उससे संख्यातगुणा मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वमोहनीय इन तीनों का जघन्य उदयकाल और असंयम, देशसंयम, सकलसंयम इनका जघन्य काल परस्पर समान है । (८) उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण के अनंतर प्रथम समय में जिसका आरंभ हुआ ऐसा देशसंयम संबंधी गुणश्रेणी आयाम है । १८० ।

(९) उससे संख्यातगुणा एकांतवृद्धि के अंत समय में पाये जानेवाले स्थितिबंध का जघन्य आबाधाकाल है । (१०) उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण के प्रथम समय में पाये जानेवाले स्थितिबंध का उत्कृष्ट आबाधाकाल है । यहां तक कहे हुये ये सर्व काल प्रत्येक अंतर्मुहूर्त मात्र ही जानना । (११) उससे असंख्यातगुणा एकांतवृद्धि के अंत समय में पाया जानेवाला जघन्य स्थितिकांडक आयाम है । १८१ ।

उक्त जघन्य स्थितिकांडक आयाम पल्य के संख्यातवें भाग मात्र है । इसलिए पूर्वोक्त अंतर्मुहूर्त काल से यह अंत खंड असंख्यातगुणा कहा । १८२ ।

(१२) उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण के प्रथम समय में पाया जानेवाला जघन्य स्थितिकांडक आयाम है । (१३) उससे संख्यातगुणा पल्य है । (१४) उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण के प्रथम समय में पाया जानेवाला पृथक्त्व सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिकांडक आयाम है । (१५) उससे संख्यातगुणा एकांतवृद्धि के अंत समय में पाया जानेवाला ऐसा जघन्य स्थितिबंध है । (१६) उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण के प्रथम समय में पाया जानेवाला ऐसा उत्कृष्ट स्थितिबंध है । (१७) उससे संख्यातगुणा एकांतवृद्धि के अंत समय में पाया जानेवाला ऐसा जघन्य स्थितिसत्त्व है । (१८) उससे

संख्यातगुणा अपूर्वकरण के प्रथम समय में पाया जानेवाला ऐसा उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व है । १८३ । इसतरह काल के अल्पबहुत्व के स्थान कहे ।

अब देशसंयम में परिणामों की विशुद्धतारूप लब्धि का अल्पबहुत्व कहते हैं –

अवरवरदेसलद्धी से काले मिच्छसंजमुववण्णे।
अवरादु अणंतगुणा उक्कस्सा देसलद्धी दु ।।१८४।।

अवरवरदेशलब्धिः स्वकाले मिथ्यसंयममुपपन्ने ।
अवरादनंतगुणा उत्कृष्टा देशलब्धिस्तु ।।१८४।।

टीका – देशसंयम का घात करनेवाले कर्म के उदय के वश से देशसंयम से गिरकर जो मनुष्य मिथ्यात्व में जानेवाला है *(मिथ्यात्व के सन्मुख हुआ देशसंयत)*, उसके देशसंयम के अंत समय में जघन्य देशसंयमलब्धि है । तथा अनंतगुणी विशुद्धता से देशसंयम के उत्कृष्टपना को पाकर जो मनुष्य अनंतर समय में सकलसंयम को प्राप्त होगा उससे उत्कृष्ट देशसंयमलब्धि है । जघन्य देशसंयम के अविभागप्रतिच्छेदों से अनंतानंतगुणा जीवराशि प्रमाण मात्र गुणकार से गुणित उत्कृष्ट देशसंयम के अविभागप्रतिच्छेद हैं ।

अवरे देसट्ठाणे होंति अणंताणि फड्डयाणि तदो ।
छट्ठाणगदा सव्वे लोयाणमसंखछट्ठाणा ।।१८५।।

अवरे देशस्थाने भवंत्यनंतानि स्पर्धकानि ततः ।
षट्स्थानगतानि सर्वाणि लोकानामसंख्यषट्स्थानानि ।।१८५।।

टीका – सबसे जघन्य पूर्वोक्त देशसंयम के स्थान में स्पर्धक अर्थात् अविभागप्रतिच्छेद अनंतानंत होते हैं । वे उत्कृष्ट देशसंयम के अविभागप्रतिच्छेदों से अनंतानंतगुणा हीन हैं, तो भी सर्व जीवराशि से अनंतगुणे हैं । इस जघन्य स्थान से लेकर असंख्यातलोक मात्र देशसंयमलब्धि के स्थान हैं । एक जीव के एक काल में जो पाया जाता है उसका नाम स्थान जानना । वे षट्स्थानपतित वृद्धि युक्त हैं । इसका अनुक्रम गोम्मटसार में जीवकाण्ड के ज्ञानमार्गणा अधिकार में पर्यायसमास

श्रुतज्ञान के स्थानवर्णन में जैसा किया है, वैसा जानना । सो एक अधिक सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग को पांच बार लिखकर परस्पर में गुणा करने से जो प्रमाण होता है, उतने स्थानों में यदि एक बार षट्स्थानपतित वृद्धि पूर्ण होती है, तो देशसंयत के असंख्यातलोक प्रमाण सर्व स्थानों में कितनी बार होती है, ऐसा त्रैराशिक करनेपर देशसंयत के स्थानों में प्रतिपातादि पर्व कहे उनमें वा मिलकर सर्व स्थानों में असंख्यातलोक मात्र बार षट्स्थानपतित वृद्धि पायी जाती है ।

तत्थय पडिवायगया पडिवच्चगया त्ति अणुभयगया त्ति ।
उवरुवरिलद्धिठाणा लोयाणमसंखछट्ठाणा ।।१८६।।

तत्र च प्रतिपातगता प्रतिपद्यगता इति अनुभयगता इति ।
उपर्युपरि लब्धिस्थानानि लोकानामसंख्यषट्स्थानानि ।।१८६।।

टीका – वहां देशसंयम के स्थान तीन प्रकार के हैं – (१) प्रतिपातगत, (२) प्रतिपद्यमानगत, (३) अनुभयगत । वहां देशसंयम से भ्रष्ट होने के अंत समय में पाये जानेवाले जो स्थान, वे प्रतिपातगत हैं । पुनश्च देशसंयम के प्राप्त होने के प्रथम समय में पाये जानेवाले स्थान प्रतिपद्यमानगत हैं । इसके बिना अन्य समयों में पाये जानेवाले स्थान अनुभयगत हैं । वे ऊपर-ऊपर हैं । वही कहते हैं –

देशसंयम का जघन्य स्थान जो सबसे थोड़ी विशुद्धता युक्त है वह तो नीचे ही नीचे लिखा । उसके ऊपर उसके अनंतवें भाग मात्र अधिक विशुद्धता युक्त दूसरा स्थान लिखा । इसी क्रम से ऊपर-ऊपर उत्कृष्ट स्थान तक रचना हुयी । वहां जघन्य स्थान आदि कितने ही नीचे के स्थान प्रतिपातरूप जानना । उनके ऊपर जिनका कोई स्वामी नहीं है ऐसे षट्स्थानपतित वृद्धि युक्त असंख्यातलोक मात्र स्थान अंतराल में होते हैं, उनके ऊपर प्रतिपद्यमानस्थान पाये जाते हैं । उनके ऊपर षट्स्थानपतित वृद्धि युक्त असंख्यातलोक मात्र स्थान अंतराल में होते हैं तब उनके ऊपर अनुभयगतस्थान पाये जाते हैं । वहां प्रतिपातस्थान थोड़े हैं, वे भी असंख्यातलोक मात्र हैं और उनसे असंख्यातलोकगुणा प्रतिपद्यमानस्थान हैं और उनसे असंख्यातलोकगुणा अनुभयस्थान हैं ।

णरतिरिये तिरियणरे अवरं अवरं वरं वरं तिसु वि ।
लोयाणमसंखेज्जा छट्ठाणा होंति तम्मज्झे ।।१८७।।

नरतिरश्चि तिर्यग्नरे अवरं अवरं वरं वरं त्रिष्वपि ।
लोकानामसंख्येयानि षट्स्थानानि भवंति तन्मध्ये ।।१८७।।

टीका – देशसंयम का सबसे जघन्य प्रतिपातस्थान मनुष्य के होता है । उसके ऊपर षट्स्थानपतित वृद्धि युक्त असंख्यातलोक मात्र प्रतिपातस्थान ऐसे हैं जो मनुष्य ही के होते हैं । उसके ऊपर तिर्यंच में पाया जानेवाला जघन्य प्रतिपातस्थान होता है । उसके ऊपर मनुष्य और तिर्यंच दोनों में पाये जानेवाले असंख्यातलोक प्रमाण स्थान होते हैं । ऊपर तिर्यंच का उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान है । उसके ऊपर मनुष्य ही के होते हैं ऐसे असंख्यातलोक मात्र स्थान होते हैं, ऊपर मनुष्य का उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान है । उसके ऊपर असंख्यातलोक मात्र स्थान ऐसे हैं जिनका कोई स्वामी नहीं है । वे किसी भी जीव के नहीं होते । उनका अंतराल करके उसके ऊपर मनुष्य का जघन्य प्रतिपद्यमानस्थान है । उसके ऊपर मनुष्य ही के होते हैं ऐसे असंख्यातलोक मात्र स्थान होनेपर तिर्यंच का जघन्य प्रतिपद्यमानस्थान है । उसके ऊपर मनुष्य और तिर्यंच के पाये जाते हैं ऐसे असंख्यातलोक मात्र स्थान होकर ऊपर तिर्यंच का उत्कृष्ट प्रतिपद्यमानस्थान होता है । उसके ऊपर मनुष्य के ही पाये जानेवाले असंख्यातलोक मात्र स्थान पाये जाते हैं । ऊपर मनुष्य का उत्कृष्ट प्रतिपद्यमानस्थान है । उसके ऊपर असंख्यातलोक मात्र स्थान ऐसे हैं जिनका कोई स्वामी नहीं है । उनका अंतराल करके ऊपर मनुष्य का जघन्य अनुभयस्थान होता है । उसके ऊपर मनुष्य ही के पाये जानेवाले असंख्यातलोक मात्र स्थान होते हैं । ऊपर तिर्यंच का जघन्य अनुभयस्थान है । उसके ऊपर मनुष्य और तिर्यंच के होते हैं ऐसे असंख्यातलोक मात्र स्थान होते हैं । ऊपर तिर्यंच का उत्कृष्ट अनुभयस्थान है । उसके ऊपर मनुष्य ही के पाये जानेवाले असंख्यातलोक मात्र स्थान होते हैं । ऊपर मनुष्य का उत्कृष्ट अनुभयस्थान होता है । इसप्रकार क्रम से मनुष्य का जघन्य और तिर्यंच का जघन्य, उत्कृष्ट, मनुष्य का उत्कृष्ट प्रतिपात, प्रतिपद्यमान और अनुभय स्थानों में से प्रत्येक में पाये जाते हैं वे जानना । उनके बीच में अंतरालस्थान जानना, वे स्थान असंख्यातलोक मात्र

षट्स्थानपतित वृद्धि युक्त हैं । इसतरह गाथा का अर्थ समझना ।

पडिवाददुगवरवरं मिच्छे अयदे अणुभयगजहण्णं ।
मिच्छवरबिदियसमये तत्तिरियवरं तु सट्ठाणे ।।१८८।।

प्रतिपातद्विकावरवरं मिथ्ये अयते अनुभयगजघन्यं ।
मिथ्यावरद्वितीयसमये तत्तिर्यग्वरं तु स्वस्थाने ।।१८८।।

टीका – प्रतिपात नाम संयम से भ्रष्ट होने का है, इसलिए संक्लेश परिणामों से संयम से भ्रष्ट होनेपर देशसंयम के अंत समय में प्रतिपातस्थान होता है । तथा प्राप्त होने का नाम प्रतिपद्यमानस्थान है, इसलिए देशसंयत के प्रथम समय में प्रतिपद्यमानस्थान होता है । इन दोनों से रहित का नाम अनुभय है, इसलिए इन बिना देशसंयत के अन्य समयों में अनुभयस्थान होता है । वहां मिथ्यात्व के सन्मुख मनुष्य के जघन्य प्रतिपातस्थान होता है और मिथ्यात्व के सन्मुख तिर्यंच के जघन्य प्रतिपातस्थान होता है । असंयत के सन्मुख तिर्यंच के उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान होता है और असंयत के सन्मुख मनुष्य के उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान होता है । मिथ्यात्व से चढ़े हुये मनुष्य के जघन्य प्रतिपद्यमानस्थान होता है और मिथ्यात्व से चढ़े हुये तिर्यंच के जघन्य प्रतिपद्यमानस्थान होता है । असंयत से चढ़े हुये तिर्यंच के उत्कृष्ट प्रतिपद्यमानस्थान होता है । असंयत से चढ़े हुये मनुष्य के उत्कृष्ट प्रतिपद्यमानस्थान होता है । मिथ्यात्व से देशसंयत को प्राप्त हुये मनुष्य के देशसंयत के दूसरे समय में जघन्य अनुभयस्थान होता है और मिथ्यात्व से हुये देशसंयत के दूसरे समय में तिर्यंच के जघन्य अनुभयस्थान होता है । असंयत से हुये देशसंयत के एकांतवृद्धि के अंत समय में तिर्यंच के उत्कृष्ट अनुभयस्थान होता है और असंयत से हुये देशसंयत के एकांतवृद्धि के अंत समय में सकलसंयम के सन्मुख मनुष्य के उत्कृष्ट अनुभयस्थान होता है ।

ये बारह स्थान कहे, उनमें पूर्व-पूर्व स्थान की विशुद्धता से उत्तर-उत्तर स्थान में असंख्यातलोकबार हुयी जो षट्स्थानपतित वृद्धि, उससे वर्धमान ऐसी अनंतगुणी विशुद्धता क्रम से जानना । पुनश्च इतना विशेष जानना –

प्रतिपातस्थानों में से मनुष्य के जघन्य से लेकर तिर्यंच के अनुत्कृष्ट स्थान

तक जो स्थान हैं, वे तो मिथ्यात्व के सन्मुख जीव ही के होते हैं । तथा तिर्यंच के उत्कृष्ट से लेकर मनुष्य के उत्कृष्ट तक जो स्थान हैं वे असंयत के सन्मुख जीव के ही होते हैं । प्रतिपद्यमानस्थानों में मनुष्य के जघन्य से लेकर तिर्यंच के अनुत्कृष्ट तक जो स्थान हैं वे तो मिथ्यात्व से देशसंयत हुआ उसीके होते हैं और तिर्यंच के उत्कृष्ट से लेकर मनुष्य के उत्कृष्ट तक जो स्थान हैं वे असंयत से देशसंयत हुआ उसके होते हैं । अनुभयस्थानों में मनुष्य के जघन्य से लेकर तिर्यंच के अनुत्कृष्ट तक जो स्थान हैं वे तो मिथ्यात्व से हुये देशसंयत ही के होते हैं और तिर्यंच के उत्कृष्ट से लेकर मनुष्य के उत्कृष्ट तक जो स्थान हैं वे असंयत से हुये देशसंयत ही के होते हैं ।

।। इति देशचारित्राभिधानप्ररूपणं समाप्तम् ।।

अब सकलचारित्र की प्ररूपणा करते हैं –

सयलचरित्तं तिविहं खयउवसमि उवसमं च खइयं च ।
सम्मत्तुप्पत्तिं वा उवसमसम्मेण गिण्हदो पढमं ।।१८९।।

सकलचारित्रं त्रिविधं क्षायोपशमिकं औपशमिकं च क्षायिकं च ।
सम्यक्त्वोत्पत्तिमिव उपशमसम्येन गृण्हन् प्रथमम् ।।१८९।।

टीका – सकलचारित्र तीन प्रकार का है – क्षायोपशमिक, औपशमिक, क्षायिक । वहां पहला क्षायोपशमिक चारित्र सातवें और छठवें गुणस्थान में पाया जाता है । उसको जो जीव उपशम सम्यक्त्व सहित ग्रहण करता है, वह मिथ्यात्व से ग्रहण करता है, उसका तो सर्व विधान प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति में कहा है, वह जानना । क्षायोपशमिक चारित्र को ग्रहण करनेवाला जीव पहले अप्रमत्त गुणस्थान को प्राप्त होता है ।

वेदगजोगो मिच्छो अविरददेसो य दोण्णिकरणेण ।
देसवदं वा गिण्हदि गुणसेढी णत्थि तक्करणे ।।१९०।।

वेदकयोगो मिथ्यो अविरतदेशश्च द्विकरणेन ।
देशव्रतमिव गृण्हाति गुणश्रेणी नास्ति तत्करणे ।।१९०।।

टीका – वेदक सम्यक्त्व सहित क्षायोपशमिक चारित्र को ग्रहण करनेवाले (सादि) मिथ्यादृष्टि, अविरत सम्यग्दृष्टि या देशसंयत जीव देशव्रत ग्रहण के समान अध:प्रवृत्तकरण और अपूर्वकरण इन दो ही करणों द्वारा ग्रहण करते हैं । वहां करण में गुणश्रेणी नहीं है । सकलसंयम के ग्रहण समय से लेकर गुणश्रेणी होती है ।

एत्तो उवरिं विरदे देसो वा होदि अप्पबहुगो त्ति ।
देसो त्ति य तट्ठाणे विरदो त्ति य होदि वत्तवं ।।१९१।।

अत उपरि विरते देश इव भवति अल्पबहुकत्वमिति ।
देश इति तत्स्थाने विरत इति च भवति वक्तव्यम् ।।१९१।।

टीका – यहां से ऊपर अल्पबहुत्व तक जैसे पहले देशसंयत में व्याख्यान किया है, वैसा सर्व व्याख्यान यहां जानना ।

विशेष इतना – वहां देशसंयत कहा, यहां सकलसंयत कहना, वही कहते हैं । अध:प्रवृत्तकरणादि के काल का अल्पबहुत्व और प्रथमोपशम सम्यक्त्ववत् हजारों स्थितिखंड होनेपर अपूर्वकरण को समाप्त करके अनंतर समय में सकलसंयम को ग्रहण करता है, वहां प्रथम समय से लेकर एकांतवृद्धि के अंत समय तक प्रतिसमय असंख्यातगुणा ऐसा असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण द्रव्य को ग्रहण करके अवस्थित गुणश्रेणी करता है । वहां बहुतसे स्थितिकांडक होनेपर एकांतवृद्धि के अंत समय पश्चात् अनंतर समय से लेकर स्वस्थान सकलसंयमी होता है । वहां स्थिति और अनुभाग का कांडकघात नहीं है, गुणश्रेणी है ही । जो जीव सकलसंयम से भ्रष्ट होकर असंयत होकर शीघ्र ही सकलसंयम को प्राप्त होता है उसके करण और स्थितिकांडक आदि नहीं होते और जो सकलसंयम से भ्रष्ट होकर मिथ्यात्व को प्राप्त होकर वहां बड़े अंतर्मुहूर्त या बहुत काल तक रहकर स्थिति, अनुभाग का बंध करके पुन: वेदक सम्यक्त्व सहित सकलसंयम के ग्रहण करता है उसके दो करण और स्थितिकांडकघात आदि होते हैं । पुनश्च स्वस्थान सकलसंयमी विशुद्धता की वृद्धि

हानि से चतु:स्थानपतित वृद्धि हानि सहित द्रव्य को अपकर्षण करके प्रतिसमय गुणश्रेणी करता है । पुनश्च जघन्य अनुभागखंडोत्करण काल आदि अठारह स्थानों में पूर्वोक्तवत् वहां अल्पबहुत्व जानना ।

अवरे विरदट्ठाणे होंति अणंताणि फड्डयाणि तदो ।
छट्ठाणगया सव्वे लोयाणमसंखछट्ठाणा ।।१९२।।

अवरे विरतस्थाने भवंत्यनंतानि स्पर्धकानि तत: ।
षट्स्थानगतानि सर्वाणि लोकानामसंख्यषट्स्थानानि ।।१९२।।

टीका – सकलसंयम के जघन्य स्थान में अनंतानंत स्पर्धक अर्थात् अविभागप्रतिच्छेद हैं, वे जीवराशि से अनंतगुणा जानना । उससे गोम्मटसार के ज्ञानाधिकार में पर्यायसमास के स्थानों का अनुक्रम जैसे कहा है, वैसे षट्स्थानपतित वृद्धि सहित असंख्यातलोक मात्र स्थान हैं, उनमें असंख्यातलोक मात्र बार षट्स्थानपतित वृद्धि पायी जाती है ।

तत्थ य पडिवादगया पडिवज्जगया त्ति अणुभयगया त्ति ।
उवरुवरि लद्धिठाणा लोयाणमसंखछट्ठाणा ।।१९३।।

तत्र च प्रतिपातगता प्रतिपद्यगता इति अनुभयगता इति ।
उपर्युपरि लब्धिस्थानानि लोकानामसंख्यषट्स्थानानि ।।१९३।।

टीका – वहां प्रतिपातगत, प्रतिपद्यमानगत और अनुभयगत ऐसे ऊपर-ऊपर तीन प्रकार के स्थान हैं ।

भावार्थ – नीचे ही नीचे तो जघन्य स्थान लिखा, उसके ऊपर अनंतभागवृद्धिरूप द्वितीय स्थान लिखा, उसके ऊपर अनंतभागवृद्धिरूप तृतीय स्थान लिखा । इसतरह पर्यायसमास श्रुतज्ञान के स्थानवत् स्थानों की अनुक्रम से ऊपर-ऊपर रचना करना । यहां अनंतभागादि वृद्धि विशुद्धता की अपेक्षा जानना । वहां नीचे के स्थान प्रतिपातगत हैं, प्रतिपद्यमान उनके ऊपर हैं, अनुभयगत उनके भी ऊपर हैं । वे प्रत्येक असंख्यातलोक मात्र हैं । वहां असंख्यातलोक मात्र बार षट्स्थानवृद्धि पायी जाती है ।

पडिवादगया मिच्छं अयदे देसे य होंति उवरुवरिं ।
पत्तेयमसंखमिदा लोयाणमसंखछट्ठाणा ।।१९४।।

प्रतिपातगतानि मिथ्ये अयते देशे च भवंति उपर्युपरि ।
प्रत्येकमसंख्यमितानि लोकानामसंख्यषट्स्थानानि ।।१९४।।

टीका – वहां प्रतिपातगतस्थान सकलसंयम से भ्रष्ट होने के अंत समय में पाये जाते हैं । वहां जघन्य से लेकर असंख्यातलोक मात्र स्थान तो जो मिथ्यात्व के सन्मुख हो उनके होते हैं । उनके ऊपर असंख्यातलोक मात्र स्थान जो जीव असंयत के सन्मुख हो उनके होते हैं । उनके ऊपर असंख्यातलोक मात्र स्थान जो जीव देशसंयत के सन्मुख हो उनके होते हैं । इसतरह प्रतिपातगतस्थान तीन प्रकार के हैं । वहां तीनों जगह जघन्य स्थान तो यथायोग्य तीव्र संक्लेशवाले के और उत्कृष्ट स्थान मंद संक्लेशवाले के होता है । एक-एक में असंख्यातलोक मात्र षट्स्थान पाये जाते हैं ।

तत्तो पडिवज्जगया अज्जमिलेच्छे मिलेच्छअज्जे य ।
कमसो अवरं अवरं वरं वरं होदि संखं वा ।।१९५।।

ततः प्रतिपद्यगता आर्यम्लेच्छे म्लेच्छार्ये च ।
क्रमशोऽवरमवरं वरं वरं भवति संख्यं वा ।।१९५।।

टीका – प्रतिपातस्थानों के ऊपर असंख्यातलोक मात्र स्थान ऐसे हैं जिनका कोई स्वामी नहीं है । उनका अंतराल करके *(उन्हें छोड़कर ऊपर)* प्रतिपद्यमानस्थान होते हैं । सकलसंयम की प्राप्ति के समय में जो पाये जाते हैं, वे प्रतिपद्यमानस्थान जानना । वहां प्रथम आर्यखंड का मनुष्य मिथ्यात्व से सकलसंयमी हुआ उसके जघन्य स्थान होता है । उसके ऊपर असंख्यातलोक मात्र षट्स्थान जाकर म्लेच्छखंड का मनुष्य मिथ्यात्व से सकलसंयमी हुआ उसका जघन्य स्थान होता है । उसके ऊपर असंख्यातलोक मात्र षट्स्थान जाकर म्लेच्छखंड का मनुष्य देशसंयत से सकलसंयमी हुआ उसका उत्कृष्ट स्थान होता है । उसके ऊपर असंख्यातलोक मात्र षट्स्थान जाकर आर्यखंड का मनुष्य देशसंयत से सकलसंयमी हुआ उसका उत्कृष्ट

स्थान होता है । यहां असंख्यातलोक मात्र षट्स्थान जाकर कहा वहां असंख्यातलोक मात्र षट्स्थानपतित वृद्धि जानना । यहां आर्य और म्लेच्छ के जघन्य और मध्य के बीच जो स्थान हैं वे मिथ्यात्व से या असंयत से या देशसंयत से जो संकलसंयमी हुये हैं उनके यथासंभव जानना । इसलिए कोई नियम कहा नहीं ।

यहां कोई कहेगा कि म्लेच्छखंड में जन्मे हुये मनुष्य के यहां सकलसंयम कहा, वह कैसे संभव है ?

उसका समाधान – जो म्लेच्छ मनुष्य चक्रवर्ती के साथ आर्यखंड में आते हैं और उनसे चक्रवर्ती आदि के विवाहादि संबंध पाये जाते हैं, उनके दीक्षा का ग्रहण संभव है । अथवा म्लेच्छ की कन्यायें चक्रवर्ती आदि से विवाह करनेपर उनके जो पुत्र होते हैं उनको माता के पक्ष से म्लेच्छ कहते हैं, उनके दीक्षा ग्रहण संभव है ।

तत्तोणुभयट्ठाणे सामइयछेदजुगलपरिहारे ।
पडिबद्धा परिणामा असंखलोगप्पमा होंति ।।१९६।।

ततोऽनुभयस्थाने सामायिकछेदयुगलपरिहारे ।
प्रतिबद्धाः परिणामा असंख्यलोकप्रमा भवंति ।।१९६।।

टीका – उस उत्कृष्ट प्रतिपद्यमानस्थान के ऊपर असंख्यातलोक मात्र स्थान ऐसे हैं जिनका कोई स्वामी नहीं है । उनका अंतराल करके ऊपर अनुभयस्थान हैं । पूर्वोक्त दोनों बिना अन्य समयों में जो पाये जाते हैं वे अनुभयस्थान हैं ।

वहां प्रथम मिथ्यात्व से सकलसंयमी हुये जीव के द्वितीय समय में सामायिक-छेदोपस्थापना संबंधी जघन्य स्थान होता है । उसके ऊपर असंख्यातलोक मात्र षट्स्थान जाकर परिहारविशुद्धि का जघन्य स्थान होता है । यह स्थान उस परिहारविशुद्धि संयम से छूटकर सामायिक-छेदोपस्थापना के सन्मुख होनेपर उसके अंत समय में होता है । यहां इस संयम से छूटकर सकलसंयमी ही रहा इसलिए इसको सकलसंयम की अपेक्षा अनुभयस्थान कहा, प्रतिपातस्थान नहीं कहा । उसके ऊपर असंख्यातलोक मात्र षट्स्थान जाकर परिहारविशुद्धि का उत्कृष्ट स्थान

होता है । उसके ऊपर असंख्यातलोक मात्र षट्स्थान जाकर सामायिक-छेदोपस्थापना का उत्कृष्ट स्थान होता है । यह क्षपक अनिवृत्तिकरण के अंत समय में पाया जाता है, ऐसा जानना । इसतरह जघन्य से उत्कृष्ट तक कहे हुये जो अनुभयस्थान वे सर्व सामायिक-छेदोपस्थापना में पाये जाते हैं । परिहारविशुद्धि संबंधी स्थान कहे वे सामायिक-छेदोपस्थापना में भी और वहां भी पाये जाते हैं, ऐसा जानना ।

ऐसे ये स्थान कहे उनमें प्रतिपातस्थान थोड़े हैं, वे भी असंख्यातलोक मात्र हैं । उनसे असंख्यातलोकगुणा प्रतिपद्यमानस्थान हैं । उनके असंख्यातलोकगुणा अनुभयस्थान हैं । इन सबको मिलाकर भी असंख्यातलोक प्रमाण ही सकलसंयम के स्थान होते हैं, क्योंकि असंख्यात के भेद बहुत हैं ।

तत्तो य सुहुमसंजम पडिवज्जय संखसमयमेत्ता हु ।
तत्तो दु जहाखादं एयविहं संजमे होदि ।।१९७।।

ततश्च सूक्ष्मसंयमं प्रतिवर्ज्य संख्यसमयमात्रा हि ।
ततस्तु यथाख्यातमेकविधं संयमे भवति ।।१९७।।

टीका – उस सामायिक छेदोपस्थापना के उत्कृष्ट स्थान से ऊपर असंख्यातलोक मात्र स्थानों का अंतराल करके उपशमश्रेणी से उतरकर अनिवृत्तिकरण के सन्मुख जीव के अपने अंत समय में पाया जानेवाला ऐसा सूक्ष्मसाम्पराय का जघन्य स्थान होता है । उसके ऊपर असंख्यात समय मात्र स्थान जाकर क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय के अंत समय में पाया जाये ऐसा सूक्ष्मसाम्पराय का उत्कृष्ट स्थान होता है । उसके ऊपर असंख्यातलोक मात्र स्थानों का अंतराल करके यथाख्यातचारित्र का एक स्थान होता है । यह सबसे अनंतगुणी विशुद्धता सहित उपशांतमोह, क्षीणमोह, सयोगकेवली और अयोगकेवली के होता है । इसमें सर्व कषायों का सर्वथा उपशम या क्षय है, इसलिए जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद ही नहीं है ।

पडचरिमे गहणादीसमये पडिवाददुगमणुभयं तु ।
तम्मज्झे उवरिमगुणगहणाहिमुहे य देसं वा ।।१९८।।

पडिवादादीतिदयं उवरुवरिमसंखलोगगुणिदकमा ।
अंतरछक्कपमाणं असंखलोगा हु देसं वा ।।१९९।।

मिच्छयददेसभिण्णे पडिवादट्ठाणगे वरं अवरं ।
तप्पाउग्गकिलिट्ठे तिव्वकिलिट्ठे कमे चरिमे ।।२००।।

पडिवज्जजहण्णदुगं मिच्छे उक्कस्सजुगलमवि देसे ।
उवरिं सामइयदुगं तम्मज्झे होंति परिहारा ।।२०१।।

परिहारस्स जहण्णं सामयियदुगे पडंत चरिमम्हि ।
तज्जेट्ठं सट्ठाणे सव्वविसुद्धस्स तस्सेव ।।२०२।।

सामयियदुगजहण्णं ओघं अणियट्टिखवगचरिमम्हि ।
चरिमणियट्टिस्सुवरिं पडंत सुहुमस्स सुहुमवरं ।।२०३।।

खवगसुहुमस्स चरिमे वरं जहाखादमोघ जेट्ठं तं ।
पडिवाददुगा सव्वे सामाइयछेदपडिबद्धा ।।२०४।।

पतनचरमे ग्रहणादिसमये प्रतिपातद्विकमनुभयं तु ।
तन्मध्ये उपरिगुणग्रहणाभिमुखे च देशमिव ।।१९८।।

प्रतिपातादित्रितयं उपर्युपरितनमसंख्यलोकगुणितक्रमं ।
अंतरषट्कप्रमाणमसंख्यलोका हि देशमिव ।।१९९।।

मिथ्यायतदेशभिन्ने प्रतिपातस्थानके वरमवरम् ।
तत्प्रायोग्यक्लिष्टे तीव्रक्लिष्टे क्रमेण चरमे ।।२००।।

प्रतिपद्यजघन्यद्विकं मिथ्ये उत्कृष्टयुगलमपि देशे ।
उपरि सामायिकद्विकं तन्मध्ये भवंति परिहाराणि ।।२०१।।

परिहारस्य जघन्यं सामायिकद्विके पतत: चरमे ।
तज्ज्येष्ठं स्वस्थाने सर्वविशुद्धस्य तस्येव ।।२०२।।

सामायिकद्विकजघन्यमोघं अनिवृत्तिक्षपकचरमे ।
चरमानिवृत्तेरुपरि पतत: सूक्ष्मस्य सूक्ष्मवरम् ।।२०३।।

क्षपकसूक्ष्मस्य चरमे वरं यथाख्यातमोघज्येष्ठं तत् ।
प्रतिपातद्विकं सर्वाणि सामायिकच्छेदप्रतिबद्धानि ।।२०४।।

टीका – संयम से भ्रष्ट होने के अंत समय में और संयम ग्रहण करने के प्रथम समय में क्रमश: प्रतिपात और प्रतिपद्यमान ये दो स्थान हैं । उनके बीच में तथा ऊपर के गुणस्थानों के सन्मुख होनेपर अनुभयस्थान होते हैं, वे देशसंयतवत् यहां भी जानना । १९८ ।

प्रतिपात आदि तीन प्रकार के स्थान अपने-अपने जघन्य से उत्कृष्ट तक ऊपर-ऊपर असंख्यातलोकगुणा क्रम सहित हैं । उन छहों में प्रत्येक में असंख्यातलोक मात्र बार षट्स्थानवृद्धि देशसंयतवत् जानना । १९९ ।

वहां प्रतिपातस्थान मिथ्यात्व, असंयत, देशसंयत के सन्मुख होने की अपेक्षा तीन भेद सहित हैं । वहां जघन्य स्थान तो तीव्र संक्लेशवाले के संयम के अंत समय में होता है और उत्कृष्ट स्थान यथायोग्य मंद संक्लेशवाले के होता है । २०० ।

प्रतिपद्यमानस्थान आर्य, म्लेच्छ की अपेक्षा दो प्रकार के हैं । उनका जघन्य स्थान तो मिथ्यात्व से संयमी हुआ उसके होता है और उत्कृष्ट स्थान देशसंयत से संयमी हुआ उसके होता है । उनके ऊपर अनुभयस्थान हैं, वे सामायिक छेदोपस्थापना संबंधी हैं । उनके जघन्य और उत्कृष्ट के बीच परिहारविशुद्धि के स्थान हैं । २०१ ।

परिहारविशुद्धि का जघन्य स्थान तो सामायिक छेदोपस्थापना में गिरनेवाले जीव के उसके *(परिहारविशुद्धि संयम के)* अंत समय में होता है और उसका उत्कृष्ट स्थान सबसे विशुद्ध अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती उसी जीव के एकांतवृद्धि के अंत समय में होता है । २०२ ।

सामायिक छेदोपस्थापना का जघन्य स्थान मिथ्यात्व के सन्मुख जीव के संकलसंयम

के अंत समय में जो जघन्य संयम का स्थान, वही है । उसका उत्कृष्ट स्थान अनिवृत्तिकरण क्षपकश्रेणीवाले के अंत समय में होता है । उपशमश्रेणी में गिरते हुये सूक्ष्मसाम्पराय के अंत समय में अनिवृत्तिकरण के सन्मुख होनेवाले सूक्ष्मसाम्पराय के जघन्य स्थान होता है । २०३ ।

क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय जीव क्षीणमोह के सन्मुख हुआ उसके अंत समय में सूक्ष्मसाम्पराय का उत्कृष्ट स्थान होता है । यथाख्यातचारित्र सर्व सामान्य चारित्र का उत्कृष्ट स्थान अभेदरूप है । प्रतिपात, प्रतिपद्यमान के जो स्थान कहे, वे सर्व ही सामायिक, छेदोपस्थापना संबंधी ही जानना । क्योंकि सकलसंयम से भ्रष्ट होने के अंत समय में और सकलसंयम को ग्रहण करने के प्रथम समय में सामायिक, छेदोपस्थापना संयम ही होता है । अन्य परिहारविशुद्धि आदि नहीं होता ।

यहां कोई कहे – उपशमश्रेणी में मरण की अपेक्षा सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात से गिरकर देवपर्याय संबंधी असंयत में गिरना होता है, वहां प्रतिपात का अभाव कैसे कहते हैं ?

उसका समाधान – यहां संयम के घातक कषायों के उदय से वा गुणस्थान के काल का क्षय होने से जो गिरना होता है उसकी विवक्षा है । पर्यायनाश *(मरण)* से गिरना होता है उसकी विवक्षा नहीं है । यदि इसकी विवक्षा होती तो उसके प्रतिपात में देव संबंधी असंयत ही के सन्मुखता पायी जाती है, क्योंकि संकलसंयम ही में जो मरण को प्राप्त होता है उसके अन्य गति या मिथ्यात्व, देशसंयतपना *(उसमें जाना)* संभव नहीं है । इसतरह प्रसंग पाकर सामायिक आदि पांच प्रकार के सकलचारित्र के स्थान कहे । मुख्यपने प्रमत्त गुणस्थान में पाया जानेवाला जो क्षायोपशमिक सकलचारित्र, उसका प्ररूपण किया ।

।। इति क्षायोपशमिक सकलचारित्रप्ररूपणं समाप्तम् ।।३।।

चौथा अधिकार : चारित्रमोहोपशमना

अब उपशांत किये हैं सकल दोष जिन्होंने, ऐसे उपशांत कषाय वीतराग, उनको प्रणाम करके उपशम चारित्र का विधान कहते हैं –

उवसमचरियाहिमुहो वेदगसम्मो अणं विजोयित्ता ।
अंतोमुहुत्तकालं अधापवत्तोऽपमत्तो य ।।२०५।।

उपशमचरित्राभिमुखो वेदकसम्यक् अनं वियोज्यम् ।
अंतर्मुहूर्तकालं अधाप्रवृत्तोऽप्रमत्तश्च ।।२०५।।

टीका – उपशम चारित्र के सन्मुख हुआ ऐसा वेदक सम्यग्दृष्टि जीव पहले पूर्वोक्त विधान से अनंतानुबंधी का विसंयोजन करके अंतर्मुहूर्त काल तक अधःप्रवृत्त अप्रमत्त अर्थात् स्वस्थानअप्रमत्त होता है । वहां प्रमत्त-अप्रमत्त में हजारों बार गमनागमन करके पश्चात् अप्रमत्त में विश्राम करता है । उसके पश्चात् कोई जीव तीन दर्शनमोह को खिपाकर *(क्षय करके)* क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर चारित्रमोह के उपशमन का प्रारंभ करता है उसके तो क्षायिक सम्यक्त्व होने का विधान पहले कहा है वह जानना । पुनश्च कोई जीव द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सहित उपशमश्रेणी चढ़ता है, उसके दर्शनमोह के उपशमन का विधान कहते हैं ।

तत्तो तियरणविहिणा दंसणमोहं समं खु उवसमदि ।
सम्मत्तुप्पत्तिं वा अण्णं च गुणसेढिकरण विही ।।२०६।।

ततः त्रिकरणविधिना दर्शनमोहं समं खलु उपशमयति ।
सम्यक्त्वोत्पत्तिमिव अन्यं च गुणश्रेणिकरणं विधिः ।।२०६।।

टीका – स्वस्थानअप्रमत्त में अंतर्मुहूर्त विश्राम करके उसके पश्चात् तीन करण विधि द्वारा दर्शनमोहनीय को युगपत् उपशमाता है । वहां अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर प्रथमोपशम सम्यक्त्ववत् गुणसंक्रमण बिना अन्य स्थिति-अनुभाग कांडक का घात और गुणश्रेणी निर्जरा आदि सर्व विधान जानना । और अनंतानुबंधी का विसंयोजन इसके होता है उसमें भी सर्व स्थितिखंडन आदि पूर्वोक्तवत् जानना ।

दंसणमोहुवसमणं तक्खवणं वा हु होदि णवरिं तु ।
गुणसंकमो ण विज्जदि विज्झद वाधापवत्तं च ।।२०७।।

दर्शनमोहोपशमनं तत्क्षपणं वा हि भवति नवरि तु ।
गुणसंक्रमो न विद्यते विध्यातं वा अध:प्रवृत्तं च ।।२०७।।

टीका – चारित्रमोह को उपशमावने के सन्मुख हुये जीव के दर्शनमोह की उपशमना अथवा क्षपणा होती है । वहां उपशम विधान में केवल गुणसंक्रमण नहीं है, विध्यातसंक्रमण है अथवा अध:प्रवृत्तसंक्रमण है, विशेष आगे कहेंगे ।

ठिदिसत्तमपुव्वदुगे संखगुणूणं तु पढमदो चरिमं ।
उवसामण अणियट्टीसंखाभागासु तीदासु ।।२०८।।

स्थितिसत्त्वमपूर्वद्विके संख्यगुणोनं तु प्रथमत: चरमम् ।
उपशामनमनिवृत्तिसंख्यभागेष्वतीतेषु ।।२०८।।

टीका – अपूर्वकरण वा अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय संबंधी स्थितिसत्त्व से अंत समय में जो स्थितिसत्त्व है, वह कांडकघात करने से संख्यातगुणा हीन होता है ।

अनिवृत्तिकरण के काल को संख्यात का भाग देकर वहां बहुभाग व्यतीत होनेपर अवशेष एकभाग रहता है, वह कहते हैं –

सम्मस्स असंखेज्जा समयपबद्धाणुदीरणा होदि ।
तत्तो मुहुत्तअंते दंसणमोहंतरं कुणई ।।२०९।।

सम्यस्य असंख्येयानां समयप्रबद्धानामुदीरणा भवति ।
ततो मुहूर्तांत: दर्शनमोहांतरं करोति ।।२०९।।

टीका – अपूर्वकरण के प्रथम समय में जो साधिक अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण काल मात्र आयामवाले गलितावशेष गुणश्रेणी का आरंभ किया था, वह अनिवृत्तिकरण के बहुभाग तक प्रवर्तता है – चलता है । वहां अपकर्षण किये द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग उपरितन स्थिति में दिया जाता है । अवशेष

एकभाग को असंख्यातलोक का भाग देकर बहुभाग गुणश्रेणी आयाम में और एकभाग उदयावली में दिया जाता है । यहां उदयावली में दिया द्रव्य समयप्रबद्ध के असंख्यातवें भाग मात्र आता है । अनिवृत्तिकरण काल का संख्यातवां भाग अवशेष रहनेपर सम्यक्त्वमोहनीय के द्रव्य को अपकर्षण करके उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग उपरितन स्थिति में, अवशेष एकभाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग गुणश्रेणी आयाम में दिया जाता है, एकभाग उदयावली में दिया जाता है । यहां उदयावली में दिया हुआ उदीरणाद्रव्य असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण होता है, क्योंकि ऐसा कहा है कि जहां असंख्यात समयप्रबद्ध की उदीरणा होती है वहां भागहार पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र है, असंख्यातलोक प्रमाण नहीं है । पुनश्च इसके पश्चात् अंतर्मुहूर्त काल व्यतीत होनेपर दर्शनमोह का अंतर करता है ।

अंतोमुहुत्तमेत्तं आवलिमेत्तं च सम्मतियठाणं ।
मोत्तूण य पढमट्ठिदिं दंसणमोहंतरं कुणइ ।।२१०।।

अंतर्मुहूर्तमात्रं आवलिमात्रं च सम्यक्त्वत्रयस्थानम् ।
मुक्त्वा च प्रथमस्थितिं दर्शनमोहांतरं करोति ।।२१०।।

टीका – नीचे के और ऊपर के निषेकों को छोड़कर बीच के कुछ निषेकों के द्रव्य को अन्य निषेकों में निक्षेपण करके उन निषेकों का अभाव करना, उसे अंतरकरण कहते हैं । जिसका उदय पाया जाता है ऐसे सम्यक्त्वमोहनीय के अंतर्मुहूर्त प्रमाण प्रथम स्थिति और उदय रहित ऐसी मिश्रमोहनीय और मिथ्यात्व प्रकृतियों की आवली मात्र प्रथम स्थिति, उस प्रमाण नीचे के निषेकों को छोड़कर उसके ऊपर के अंतर्मुहूर्त काल प्रमाण निषेकों का अंतर अर्थात् अभाव करता है । वहां सम्यक्त्वमोहनीय के अनिवृत्तिकरण काल के संख्यातवें भाग मात्र गुणश्रेणीशीर्ष और उससे संख्यातगुणा उससे ऊपरवर्ती उपरितन स्थिति के निषेक-इनका अंतर करता है; तथा मिथ्यात्व, मिश्रमोहनीय का गलने के पश्चात् अवशेष रहा जो सर्व गुणश्रेणी आयाम और उससे संख्यातगुणा उपरितन स्थिति के निषेक – इनका अंतर करता है । जितने निषेकों का अंतर किया उसके प्रमाण का नाम अंतरायाम है । उस अंतरायाम के नीचे जो निषेक छोड़े हैं उस प्रमाण प्रथम स्थिति है और अंतरायाम

के ऊपरवर्ती निषेकों का नाम द्वितीय स्थिति है । वहां द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक तो तीनों ही प्रकृतियों के समान हैं, क्योंकि वह प्रथम निषेक अंतरायाम के पश्चात् पाया जाता है । परंतु प्रथम स्थिति का अंत निषेक समान नहीं है, क्योंकि प्रथम स्थिति का प्रमाण हीनाधिक है ।

सम्मत्तपयडिपढमट्ठिदिम्मि संछुहदि दंसणतियाणं ।
उक्कीरयं तु दव्वं बंधाभावादु मिच्छस्स ।।२११।।

सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितौ संपातयति दर्शनत्रयाणाम् ।
उत्कीर्णं तु द्रव्यं बंधाभावात् मिथ्यस्य ।।२११।।

टीका – वहां जिन निषेकों का अभाव करता है उन तीनों दर्शनमोह की प्रकृतियों के निषेकों के द्रव्य को उदयरूप सम्यक्त्वमोहनीय की प्रथम स्थिति में ही निक्षेपण करता है । चूंकि जहां नवीन बंध होता है वहां उत्कर्षण करके द्वितीय स्थिति में भी निक्षेपण होता है, परंतु यहां सातवें गुणस्थान में दर्शनमोह का बंध है नहीं, इसलिए द्वितीय स्थिति में निक्षेपण नहीं किया जाता ।

बिदियट्ठिदिस्स दव्वं उक्कट्टिय देदि सम्मपढमम्मि ।
बिदियट्ठिदिम्हि तस्स अणुक्कीरिज्जंतमाणम्हि ।।२१२।।

द्वितीयस्थितेर्द्रव्यमपकर्ष्य ददाति सम्यक्त्वप्रथमे ।
द्वितीयस्थितौ तस्यानुत्कीर्यमाणे ।।२१२।।

टीका – यहां अंतरकरण काल के प्रथमादि समयों में गुणश्रेणी निर्जरा के लिये उदयावली से बाह्य निषेकों का अपकर्षण किया जो द्रव्य, उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग को तो अंतरायाम छोड़कर उसके ऊपरवर्ती उपरितन द्वितीय स्थिति में निक्षेपण करके अवशेष एकभाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग को सम्यक्त्वमोहनीय की प्रथम स्थितिरूप यहां गुणश्रेणी आयाम है उसमें निक्षेपण किया जाता है । अवशेष एकभाग उदयावली में निक्षेपण करता है । इसतरह अंतर करने के काल के प्रथम समय में फालिद्रव्य का और अपकृष्ट

द्रव्य का निक्षेपण करता है । वहां जिन निषेकों का अंतर करता है, उनके द्रव्य को अंतर करने के अंतर्मुहूर्त काल द्वारा अन्य निषेकों में निक्षेपण करता है । वहां उनका द्रव्य उस काल के प्रथम समय में जितना निक्षेपण करता है वह प्रथम फालि का द्रव्य, दूसरे समय में जितना निक्षेपण करता है वह दूसरी फालि का द्रव्य इस क्रम से अंत समय में अवशेष रहा उनका द्रव्य निक्षेपण करता है, वह अंत फालि का द्रव्य जानना । पुनश्च जो गुणश्रेणी के लिये अपकर्षण किया द्रव्य है, उसे अपकृष्टद्रव्य कहते हैं । वहां प्रथम समय संबंधी फालिद्रव्य और अपकृष्टद्रव्य से द्वितीयादि समय संबंधी फालिद्रव्य और अपकृष्टद्रव्य का प्रमाण प्रतिसमय असंख्यातगुणा है । उसके निक्षेपण करने का विधान जैसे प्रथम समय में कहा वैसे ही जानना ।

सम्मत्तपयडिपढमट्ठिदीसु सरिसाण मिच्छमिस्साणं ।
ठिदिदव्वं सम्मस्स य सरिसणिसेयम्हि संकमदि ।।२१३।।

सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितिषु सदृशानां मिथ्यामिश्राणाम् ।
स्थितिद्रव्यं सम्यस्य च सदृशनिषेके संक्रामति ।।२१३।।

टीका – मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीय की प्रथम स्थिति के ऊपर जो अंतरायाम के निषेक सम्यक्त्वमोहनीय की प्रथम स्थिति के समानवर्ती हैं उनके द्रव्य को अपने-अपने समानवर्ती सम्यक्त्वमोहनीय के निषेकों में ही निक्षेपण करता है । वहां द्रव्य देने का विधान नहीं है ।

भावार्थ – मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीय की प्रथम स्थिति तो आवली मात्र है और सम्यक्त्वमोहनीय की अंतर्मुहूर्त मात्र है । उसको छोड़कर ऊपर के निषेकों का अंतर करता है । वहां मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीय की प्रथम स्थिति के ऊपर जो अंतरायाम का पहला निषेक था उसके द्रव्य को सम्यक्त्वमोहनीय की प्रथम स्थिति में जो आवली के ऊपर पहला निषेक है उसमें निक्षेपण किया । इसीतरह उनके अंतरायाम के दूसरे निषेक के द्रव्य को सम्यक्त्वमोहनीय की प्रथम स्थिति में आवली के ऊपर दूसरा निषेक है उसमें निक्षेपण किया । इसतरह सम्यक्त्वमोहनीय की प्रथम स्थिति के अंत निषेक के समान जो मिथ्यात्व, मिश्रमोहनीय के अंतरायाम का निषेक वहां तक के जो निषेक, उनका निक्षेपण सम्यक्त्वमोहनीय की प्रथम स्थिति के *(अपने समानवर्ती)*

निषेकों में जानना । वहां द्रव्य विभाग नहीं है । *(पूरे निषेक का निक्षेपण है, उसमें द्रव्य का विभाग नहीं है ।)*

उसके ऊपर तीनों ही दर्शनमोह के अंतरायाम के निषेकों का द्रव्य पूर्वोक्त प्रकार से फालिरूप करके सम्यक्त्वमोहनीय की प्रथम स्थिति में गुणश्रेणी में और उदयावली में विभाग करके निक्षेपण करता है ।

जावंतरस्स दुचरिमफालिं पावे इमो कमो ताव ।
चरिमतिदंसणदव्वं छुहेदि सम्मस्स पढमम्हि ।।२१४।।

यावदंतरस्य द्विचरमफालिं प्राप्ते अयं क्रमस्तावत् ।
चरमत्रिदर्शनद्रव्यं क्षेपयति सम्यस्य प्रथमे ।।२१४।।

टीका – जब तक अंतरकरण काल के द्विचरम समयवर्ती जो द्विचरम फालि प्राप्त होती है, तब तक फालिद्रव्य और अपकृष्टद्रव्य के निक्षेपण करने का यही पूर्वोक्त अनुक्रम जानना । अंतरकरण काल के अंत समय संबंधी जो दर्शनमोहत्रिक की अंत फालि का द्रव्य है, वह तथा वहां जो अपकृष्टद्रव्य है वह भी सर्व सम्यक्त्वमोहनीय की प्रथम स्थिति ही में निक्षेपण करता है ।

भावार्थ – पहले जैसे अपकर्षण किये द्रव्य में से बहुभाग उपरितन स्थिति में देना कहा था, वैसे यहां अपकर्षण किये द्रव्य का बहुभाग द्वितीय स्थिति में निक्षेपण करना ।

बिदियट्ठिदिस्स दव्वं पढमट्ठिदिमेदि जाव आवलिया ।
पडिआवलिया चिट्ठदि सम्मत्तादिमठिदी ताव ।।२१५।।

द्वितीयस्थितेर्द्रव्यं प्रथमस्थितिमेति यावदावलिका ।
प्रत्यावलिका तिष्ठति सम्यक्त्वादिमस्थितिः तावत् ।।२१५।।

टीका – सम्यक्त्वमोहनीय की प्रथम स्थिति में उदयावली और प्रत्यावली ये दो आवली शेष रहें, वहां तक द्वितीय स्थिति के द्रव्य को अपकर्षण के वश प्रथम स्थिति में निक्षेपण करता है । वहीं तक दर्शनमोह की गुणश्रेणी प्रवर्तती है ।

सम्यक्त्वमोहनीय की प्रथम स्थिति में दो आवली अवशेष रहनेपर दर्शनमोह की गुणश्रेणी नहीं होती । अन्य कर्मों की सकलचारित्र संबंधी गुणश्रेणी वहां भी प्रवर्तती है । पुनश्च सम्यक्त्वमोहनीय की प्रथम स्थिति में एक समय अधिक आवली अवशेष रहे, वहां तक सम्यक्त्वमोहनीय की उदीरणा होती है । ऊपर के निषेकों के द्रव्य को उदयावली में देता है । उस प्रथम स्थिति के अंत समय में अनिवृत्तिकरण काल समाप्त होता है ।

सम्मादिठिदिज्झीणे मिच्छाद्दव्वादु सम्मसंमिस्से ।
गुणसंकमो ण णियमा विज्झादो संकमो होदि ।।२१६।।

सम्यगादिस्थितिक्षीणे मिथ्यद्रव्यात् सम्यसंमिश्रे ।
गुणसंक्रमो न नियमात् विध्यातः संक्रमो भवति ।।२१६।।

टीका – सम्यक्त्वमोहनीय की प्रथम स्थिति का क्षय होनेपर उसके अनंतर अंतरायाम का प्रथम समय प्राप्त होता है, वहां द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि होता है । वहां गुणसंक्रमण तो नियम से यहां नहीं है, इसलिए मिथ्यात्व के द्रव्य को सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र विध्यातसंक्रमण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग मात्र मिथ्यात्व के द्रव्य को मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय में निक्षेपण करता है । उससे द्वितीयादि समयों में विशेष हीन क्रम से निक्षेपण करता है ।

सम्मत्तुप्पत्तीए गुणसंकमपूरणस्स कालादो ।
संखेज्जगुणं कालं विसोहिवड्ढीहिं वड्ढदि हु ।।२१७।।

सम्यक्त्वोत्पत्तौ गुणसंक्रमपूरणस्य कालात् ।
संख्येयगुणं कालं विशुद्धिवृद्धिभिः वर्धते हि ।।२१७।।

टीका – प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति में पहले गुणसंक्रमण पूरणकाल अंतर्मुहूर्त मात्र कहा था, उससे संख्यातगुणा काल तक यह द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि प्रथम समय से लेकर प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धता से बढ़ता है । इसतरह यहां एकांत विशुद्धता की वृद्धि का काल अंतर्मुहूर्त मात्र जानना ।

तेण परं हायदि वा वड्ढदि तव्वड्ढिदो विसुद्धीहिं ।
उवसंतदंसणतियो होदि पमत्तापमत्तेसु ।।२१८।।

तेन परं हीयते वा वर्धते तद्वृद्धितो विशुद्धिभिः ।
उपशांतदर्शनत्रिकः भवति प्रमत्ताप्रमत्तयोः ।।२१८।।

टीका – उस एकांतवृद्धि काल के पश्चात् विशुद्धता द्वारा हानि हो, वृद्धि हो या हानि वृद्धि बिना जैसा का वैसा रहे – कुछ नियम नहीं है । इसतरह उपशमाये हैं तीन दर्शनमोह जिसने, ऐसा जीव बहुत बार प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानों में पलटकर प्राप्त होता रहता है ।

एवं पमत्तमियरं परावत्तिसहस्सयं तु कादूण ।
इगवीसमोहणीयं उवसमदि ण अण्णपयडीसु ।।२१९।।

एवं प्रमत्तमितरं परावृत्तिसहस्रकं तु कृत्वा ।
एकविंशमोहनीयं उपशमयति न अन्यप्रकृतिषु ।।२१९।।

टीका – इसतरह अप्रमत्त से प्रमत्त में और प्रमत्त से अप्रमत्त में हजारों बार पलटनेपर अनंतानुबंधी चतुष्क बिना चारित्रमोह की अवशेष इक्कीस प्रकृतियों को उपशमावने का उद्यम करता है । अन्य प्रकृतियों का उपशम होता नहीं, क्योंकि उनके उपशमकरण नहीं है ।

तिकरणबंधोसरणं कमकरणं देसघादिकरणं च ।
अंतरकरणं उवसमकरणं उवसामणे होंति ।।२२०।।

त्रिकरणं बंधापसरणं क्रमकरणं देशघातिकरणं च ।
अंतरकरणमुपशमकरणं उपशामने भवंति ।।२२०।।

टीका – (१) अधःकरण, (२) अपूर्वकरण, (३) अनिवृत्तिकरण ये तीन करण और (४) स्थितिबंधापसरण, (५) क्रमकरण, (६) देशघातिकरण, (७) अंतरकरण, (८) उपशमकरण ऐसे आठ अधिकार चारित्रमोह के उपशम

विधान में पाये जाते हैं । वहां अधःकरण को सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि करते हैं । उसका लक्षण और उसके द्वारा किया कार्य जैसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख होनेपर कहे थे, वैसे यहां भी जानना ।

विशेष इतना – यहां संयमी के पायी जानेवाली प्रकृतियों का बंध, उदय कहना और अनंतानुबंधी चतुष्क, नरकायु, तिर्यंचायु बिना अन्य प्रकृतियों का सत्त्व कहना ।

बिदियकरणादिसमये उवसंततिदंसणे जहण्णेण ।
पल्लस्स संखभागं उक्कस्स सायरपुधत्तं ।।२२१।।

द्वितीयकरणादिसमये उपशांतत्रिदर्शने जघन्येन ।
पल्यस्य संख्यभागं उत्कृष्टं सागरपृथक्त्वम् ।।२२१।।

टीका – दूसरे अपूर्वकरण के प्रथम समय में द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि के जघन्य स्थितिकांडक आयाम पल्य के संख्यातवें भाग मात्र है, उत्कृष्ट पृथक्त्व सागर प्रमाण है ।

ठिदिखंडयं तु खइये वरावरं पल्लसंखभागो दु ।
ठिदिबंधोसरणं पुण वरावरं तत्तियं होदि ।।२२२।।

स्थितिखंडकं तु क्षायिके वरावरं पल्यसंख्यभागस्तु ।
स्थितिबंधापसरणं पुनः वरावरं तावत्कं भवति ।।२२२।।

टीका – वहां ही अपूर्वकरण के प्रथम समय में क्षायिक सम्यग्दृष्टि के जघन्य वा उत्कृष्ट स्थितिकांडक आयाम पल्य के संख्यातवें भाग मात्र है, क्योंकि दर्शनमोह की क्षपणा के काल में बहुत स्थिति घटायी है, और स्थिति के अनुसार कांडक होता है । तथापि जघन्य से उत्कृष्ट संख्यातगुणा है । उपशम या क्षायिक सम्यग्दृष्टि के स्थितिबंधापसरण पल्य के संख्यातवें भाग मात्र है, तथापि जघन्य से उत्कृष्ट संख्यातगुणा है ।

असुहाणं रसखंडमणंतभागा ण खंडमियराणं ।
अंतोकोडाकोडी सत्तं बंधं च तट्ठाणे ।।२२३।।

अशुभानां रसखंडमनंतभागा न खंडमितरेषाम् ।
अंत:कोटीकोटि: सत्त्वं बंधश्च तत्स्थाने ।।२२३।।

टीका – अशुभ प्रकृतियों का जो पहले अनुभाग था, उसको अनंत का भाग देकर बहुभाग मात्र अनुभाग का एक अनुभागकांडक में खंडन होता है, एकभाग मात्र अवशेष रहता है । विशुद्धता से शुभ प्रकृतियों का अनुभागखंडन नहीं होता ऐसा जानना । यहां प्रथमादि निषेकों का अनुभाग दिखाते हैं –

वहां द्रव्य, स्थिति, गुणहानि, नानागुणहानि, दोगुणहानि, अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण पहले जानना । इनका कर्मों की स्थिति की अपेक्षा वर्णन तो गोम्मटसार के योगमार्गणा अधिकार में और कर्मस्थितिरचना अधिकार में किया है, वह जानना । तथा अनुभाग की अपेक्षा उन द्रव्य आदि का प्रत्येक का प्रमाण यथायोग्य अनंत है ।

आयु बिना सात कर्मों में विवक्षित कर्म के परमाणुरूप जो द्रव्य, उसको स्थितिसंबंधी साधिक डेढ़ गुणहानि का भाग देनेपर प्रथम गुणहानि के प्रथम निषेक का प्रमाण आता है । इसको अनुभाग संबंधी साधिक डेढ़ गुणहानि का भाग देनेपर प्रथम निषेक में प्रथम गुणहानि के प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के परमाणुओं का प्रमाण आता है । जिस परमाणु में अनुभाग के अविभागप्रतिच्छेद सबसे थोड़े पाये जाते हैं, उसका नाम जघन्य वर्ग है । ऐसे जितने परमाणु हैं, उनके समूह का नाम प्रथम वर्गणा है । इससे द्वितीयादि वर्गणाओं में एक-एक चय घटते क्रम से परमाणुओं का प्रमाण है । पुनश्च द्वितीयादि गुणहानियों में पूर्व गुणहानि संबंधी वर्गणा से आधे-आधे क्रम से वर्गणाद्रव्य का प्रमाण है । इसतरह प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणाद्रव्य को अनुभाग संबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशि के आधे प्रमाण का भाग देनेपर अंत गुणहानि की प्रथम वर्गणा का द्रव्य होता है । उसमें से क्रम से एक-एक चय घटते हुये एक कम गुणहानि मात्र चय घटनेपर अंत गुणहानि की अंत वर्गणा का द्रव्य होता है ।

यहां ऐसा जानना – प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा से लेकर जब तक वर्गों में एक-एक अविभागप्रतिच्छेद बढ़ने का क्रम होता है, वहां तक उन वर्गणाओं के समूह का नाम प्रथम स्पर्धक है । उसके ऊपर प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के वर्गों से द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ आदि स्पर्धकों की प्रथम वर्गणाओं के वर्गों में

क्रम से दोगुणा, तीनगुणा, चारगुणा अविभागप्रतिच्छेद होते हैं । ऊपर द्वितीयादि वर्गणाओं के वर्ग एक-एक अविभागप्रतिच्छेद से बढ़ते क्रम युक्त जानना । ऐसा अनुक्रम अंत गुणहानि के अंत स्पर्धक की अंत वर्गणा तक जानना । ऐसे प्रथम निषेक में विभाग दिया ।

पुनश्च स्थिति के द्वितीयादि निषेक क्रम से चय घटते क्रम सहित हैं । गुणहानि-गुणहानि प्रति आधा-आधा क्रम सहित हैं, उन सबमें अनुभाग की अपेक्षा ऐसा ही क्रम जानना । यहां स्थिति के अंत गुणहानि के अंत निषेक में जो द्रव्य का प्रमाण है, वहां भी पूर्वोक्त प्रकार से प्रथम गुणहानि के प्रथम वर्गणा के द्रव्य का प्रमाण लाना । पुनश्च क्रम से पूर्वोक्त प्रकार से अंत गुणहानि की अंत वर्गणा का द्रव्य लाना । ऐसा जो अनुभाग पाया जाता है, उसको अनंत का भाग देनेपर वहां बहुभाग मात्र अनुभागकांडक है । अवशेष जो एकभाग मात्र रहा, उसको अनंत का भाग देकर वहां एकभाग को अतिस्थापनरूप रखकर अवशेष बहुभागरूप जिन परमाणुओं का अनुभागखंडन किया था, उन परमाणुओं को परिणमाता है ।

यहां ऐसा जानना – अनुभाग के स्पर्धक कहे थे, उनको अनंत का भाग देकर वहां बहुभाग मात्र स्पर्धकों के परमाणु हैं उनको अवशेष रहे एकभाग मात्र स्पर्धकों के अनंतवें भाग मात्र ऊपर के स्पर्धक छोड़कर नीचे के बहुभाग मात्र स्पर्धकों में निक्षेपण करता है । ऐसी क्रिया एक अनुभागकांडक के काल में होती है । उसी अपूर्वकरण के प्रथम समय में स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व अंत:कोडाकोडी सागर प्रमाण है । वहां विशेष इतना है कि स्थितिबंध से स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है ।

उदयावलिस्स बाहिं गलिदवसेसा अपुव्वअणियट्टी ।
सुहुमद्धादो अहिया गुणसेढी होंति तट्ठाणे ।।२२४।।

उदयावलेर्बाह्यं गलितावशेषा अपूर्वानिवृत्ते:।
सूक्ष्माद्धातो अधिका गुणश्रेणी भवंति तत्स्थाने ।।२२४।।

टीका – उस अपूर्वकरण के प्रथम समय में उदयावली से बाह्य गलितावशेष गुणश्रेणी का आरंभ हुआ । उस गुणश्रेणी आयाम का प्रमाण अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण,

सूक्ष्मसाम्पराय के मिलाये हुये काल से उपशांतकषाय के काल के संख्यातवें भाग मात्र अधिक जानना । वहां आयु बिना सात कर्मों के उदयावली के बाह्य निषेकों के द्रव्य को अपकर्षण द्वारा पूर्वोक्त प्रकार से उदयावली में और उसके ऊपर गुणश्रेणी आयाम में और उसके ऊपर उपरितन स्थिति में देता है । पुनश्च नपुंसक वेदादि का गुणसंक्रमण भी यहां ही प्रारंभ होता है । जिनका बंध पाया जाता है, उनका गुणसंक्रमण है नहीं । इसीतरह अपूर्वकरण के द्वितीयादि समयों में भी स्थितिकांडकादि विधान जानना ।

पढमे छट्ठे चरिमे बंधे दुग तीस चदुर वोच्छिण्णा ।
छण्णोकसायउदयो अपुव्वचरिमम्हि वोच्छिण्णा ।।२२५।।

प्रथमे षट्के चरमे बंधे द्विकं त्रिंशत् चतुस्त्रो व्युच्छिन्नाः ।
षण्णोकषायोदया अपूर्वचरमे व्युच्छिन्नाः ।।२२५।।

टीका – अपूर्वकरण के काल के सात भागों में से प्रथम भाग में निद्रा, प्रचला दो, छठवें भाग में तीर्थंकर आदि तीस और सातवें भाग में हास्यादि चार ऐसी छत्तीस प्रकृतियों के बंध की व्युच्छित्ति होती है । अपूर्वकरण के अंत समय में हास्यादि छह नोकषायों के उदय की व्युच्छित्ति होती है ।

अणियट्टिस्स य पढमे अण्णट्ठिदिखंडपहुदिमारभई ।
उवसामणा णिधत्ती णिकाचणा तत्त वोच्छिण्णा ।।२२६।।

अनिवृत्तेः च प्रथमे अन्यस्थितिखंडप्रभृतिमारभते ।
उपशमनं निधत्तिः निकाचना तत्र व्युच्छिन्ना ।।२२६।।

टीका – अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में अपूर्वकरण के अंत समय संबंधी से अन्य ही प्रमाणवाले स्थितिखंड, स्थितिबंधापसरण, अनुभागखंड प्रारंभ होते हैं । वहीं पर सभी कर्मों के उपशम, निधत्ति, निकाचन इन तीन करणों की व्युच्छित्ति होती है । उदय में प्राप्त करने के अयोग्य, उसे उपशम कहते हैं । संक्रमण में प्राप्त करने के अयोग्य, उसे निधत्ति कहते हैं । उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण, उदय में प्राप्त करने

के अयोग्य, उसे निकाचना कहते हैं । यहां सर्व कर्मों के उदयादि में निक्षेपण करने का समर्थपना पाया जाता है ऐसा जानना ।

अंतोकोडाकोडी अंतोकोडी य सत्त बंधं च ।
सत्तण्हं पयडीणं अणियट्टीकरणपढमम्हि ।।२२७।।

अंत:कोटीकोटि: अंत:कोटिश्च सत्त्वं बंधश्च ।
सप्तानां प्रकृतीनां अनिवृत्तिकरणप्रथमे ।।२२७।।

टीका – अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में आयु बिना सात प्रकृतियों का स्थितिसत्त्व यथायोग्य अंत:कोडाकोडी सागर मात्र है और स्थितिबंध अंत:कोडी सागर मात्र है । अपूर्वकरण में घटानेपर इतना अवशेष रहता है ।

ठिदिबंधसहस्सगदे संखेज्जा बादर गदा भागा ।
तत्त असण्णिस्स ठिदिसरिसं ठिदीबंधणं होदि ।।२२८।।

स्थितिबंधसहस्रगते संख्येया बादरे गता भागा: ।
तत्र असंज्ञिन: स्थितिसदृशं स्थितिबंधनं भवति ।।२२८।।

टीका – अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय से लेकर एक-एक अंतर्मुहूर्त में पल्य के संख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध घटे ऐसे स्थितिबंधापसरण के क्रम से हजारों स्थितिबंध होनेपर, अनिवृत्तिकरण काल के संख्यात भागों में से बहुभाग व्यतीत होकर एकभाग अवशेष रहनेपर असंज्ञी के स्थितिबंध के समान स्थितिबंध होता है । असंज्ञी के, सत्तर कोडाकोडी सागर उत्कृष्ट स्थिति के धारक दर्शनमोह का हजार सागर स्थितिबंध है । उसका प्रतिभाग करके हजार सागर को सात का भाग देकर वहां एकभाग से दोगुणा बीसिय का, तीनगुणा तीसिय का, चारगुणा चारित्रमोहनीय का स्थितिबंध होता है । जिनकी उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागर है ऐसे नाम और गोत्र कर्म को बीसिय कहते हैं । जिनकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडाकोडी सागर है ऐसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय, वेदनीय कर्मों को तीसिय कहते हैं । जिसकी उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोडाकोडी सागर है ऐसे चारित्रमोह को चालीसिय कहते

हैं । ऐसी संज्ञायें आगे भी जान लेना ।

ठिदिबंधपुधत्तगदे पत्तेयं चदुर तिय वि एएदि ।
ठिदिबंधसमं होदि हु ठिदिबंधमणुक्कमेणेव ।।२२९।।

स्थितिबंधपृथक्त्वगते प्रत्येकं चतुस्त्रिद्विएकेति ।
स्थितिबंधसमो भवति हि स्थितिबंधोऽनुक्रमेणैव ।।२२९।।

टीका – उसके पश्चात् पृथक्त्व अर्थात् संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर सौ सागर को सात का भाग देकर वहां एकभाग से दोगुणा बीसिय का, तीनगुणा तीसिय का, चारगुणा चालीसिय का – ऐसा चतुरिन्द्रिय के समान स्थितिबंध होता है । उसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर पचास सागर को सात का भाग देकर वहां एकभाग से दोगुणा बीसिय का, तीनगुणा तीसिय का, चारगुणा चालीसिय का – ऐसा त्रीन्द्रिय के समान स्थितिबंध होता है । उसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंध होने पर पच्चीस सागर को सात का भाग देकर वहां एकभाग से दोगुणा बीसिय का, तीनगुणा तीसिय का, चारगुणा चालीसिय का – ऐसा द्वीन्द्रिय के समान स्थितिबंध होता है । उसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर एक सागर को सात का भाग देकर वहां एकभाग से दोगुणा बीसिय का, तीनगुणा तीसिय का, चारगुणा चालीसिय का – ऐसा एकेन्द्रिय के समान स्थितिबंध होता है ।

एइंदियट्ठिदीदो संखसहस्से गदे दु ठिदिबंधो ।
पल्लेक्कदिवड्ढदुगे ठिदिबंधो बीसियतियाणं ।।२३०।।

एकेंद्रियस्थितितः संखसहस्रे गते तु स्थितिबंधः ।
पल्यैकद्व्यर्धद्विके स्थितिबंधो विंशतित्रिकाणाम् ।।२३०।।

टीका – उस एकेन्द्रिय के समान स्थितिबंध के पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर बीसिय का एक पल्य, तीसिय का डेढ़ पल्य, चालीसिय का दो पल्य प्रमाण स्थितिबंध होता है । यहां असंज्ञी के सत्तर कोडाकोडी सागर स्थिति के धारक दर्शनमोह का हजार सागर बंध होता है, तो बीस कोडाकोडी सागर स्थितिधारक नाम,

गोत्र का कितना होगा ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर हजार सागर का दो सातवां *(दो सप्तमांश)* भाग आता है, ऐसे अन्य कर्मों में भी त्रैराशिक विधान जानना ।

पल्लस्स संखभागं संखगुणूणं असंखगुणहीणं ।
बंधोसरणं पल्लं पल्लासंखंति संखवस्सं त्ति ।।२३१।।

पल्यस्य संख्यभागं संख्यगुणोनमसंख्यगुणहीनम् ।
बंधापसरणं पल्यं पल्यासंख्यमिति संख्यवर्षमिति ।।२३१।।

टीका – अंत:कोडाकोडी सागर स्थितिबंध से लेकर जब तक पल्य मात्र स्थितिबंध होता है, तब तक स्थितिबंधापसरण का प्रमाण पल्य के संख्यातवें भाग मात्र है । पल्य मात्र स्थितिबंध से लेकर दूरापकृष्टि स्थिति होती है वहां पल्य को संख्यात का भाग देकर बहुभाग मात्र स्थितिबंधापसरण होता है । पल्य स्थिति के अनंतर दूरापकृष्टि स्थिति तक क्रम से संख्यातगुणा हीन ऐसा पल्य का संख्यातवां भाग मात्र स्थितिबंध होता है ऐसा जानना । पुनश्च दूरापकृष्टि से लेकर जब तक संख्यात हजार वर्ष मात्र स्थितिबंध होता है वहां पल्य को असंख्यात का भाग देकर बहुभाग मात्र स्थितिबंधापसरण होता है । दूरापकृष्टि से लेकर संख्यात हजार वर्ष मात्र स्थिति तक क्रम से असंख्यातगुणा हीन ऐसा पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध होता है ऐसा जानना । एक स्थितिबंधापसरण काल में जितनी स्थिति घटी वह तो स्थितिबंधापसरण जानना और उसको घटाकर जितना स्थितिबंध होगा, उतना वहां स्थितिबंध जानना ।

एवं पल्ला जादा बीसीया तीसिया य मोहो य ।
पल्लासंखं च कमे बंधेण य बीसियतियाओ ।।२३२।।

एवं पल्ये जाते बीसिया तीसिया च मोहश्च ।
पल्यासंख्यं च क्रमे बंधेन च बीसियत्रिका ।।२३२।।

टीका – उस पल्य स्थिति के पश्चात् बीसिय, तीसिय और मोहनीय का स्थितिबंध है, वह क्रमकरण काल के अंत में पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र है । वही कहते हैं –

बीसिय आदि का पल्य, डेढ़ पल्य, दो पल्य स्थितिबंध के पश्चात् बीसिय का तो पल्य का संख्यात बहुभाग मात्र, तीसिय और मोह का पल्य के संख्यातवें भाग मात्र आयामवाले संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण होनेपर बीसिय का पल्य के संख्यातवें भाग मात्र, तीसिय का पल्य मात्र, मोह का त्रिभाग अधिक पल्य मात्र स्थितिबंध एक काल में होता है । पुनश्च उसके पश्चात् बीसिय, तीसिय का पल्य का संख्यात बहुभाग मात्र, मोह का पल्य के संख्यातवें भाग मात्र आयामवाले संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण होनेपर बीसिय, तीसिय का पल्य के संख्यातवें भाग मात्र, मोह का पल्य मात्र स्थितिबंध होता है । यहां विशेष इतना – बीसिय के स्थितिबंध से तीसिय का स्थितिबंध संख्यातगुणा होता है । उसके पश्चात् तीनों ही के पल्य के संख्यात बहुभाग मात्र आयामवाले संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण होनेपर नाम, गोत्र का दूरापकृष्टि नामक पल्य के संख्यातवें भाग मात्र और तीसिय, मोह का यथायोग्य पल्य के संख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध होता है । यहां विशेष इतना – तीसिय के स्थितिबंध से मोह का स्थितिबंध संख्यातगुणा है ।

पुनश्च उसके पश्चात् बीसिय का पल्य के असंख्यात बहुभाग मात्र और तीसिय, मोह का पल्य के संख्यात बहुभाग मात्र प्रमाणवाले संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण होनेपर बीसिय का पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र और तीसिय का दूरापकृष्टि नामक पल्य के संख्यातवें भाग मात्र और मोह का यथायोग्य पल्य के संख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध युगपत् होता है । यहां तीसिय के स्थितिबंध से चालीसीय का स्थितिबंध संख्यातगुणा जानना ।

उसके पश्चात् बीसिय, तीसिय का पल्य के असंख्यात बहुभाग मात्र, मोह का पल्य के संख्यात बहुभाग मात्र प्रमाणवाले संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण होनेपर बीसिय, तीसिय का पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र, मोह का दूरापकृष्टि नामक अंतिम पल्य के संख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध होता है । यहां बीसिय से तीसिय का स्थितिबंध असंख्यातगुणा जानना ।

पुनश्च उसके पश्चात् तीनों ही के पल्य के असंख्यात बहुभाग मात्र प्रमाणवाले संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण होनेपर तीनों ही का पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध होता है । यहां बीसिय से तीसिय का और तीसीय से मोह का स्थितिबंध

असंख्यातगुणा जानना । यहां तक तो इस अनुक्रम से बंध होता है ।

आगे अन्य अनुक्रम होता है, वह दिखाते हैं –

मोहगपल्लासंखट्ठिदिबंधसहस्सगेसु तीदेसु ।
मोहो तीसिय हेट्ठा असंखगुणहीणयं होदि ।।२३३।।

मोहगपल्यासंख्यस्थितिबंधसहस्रकेष्वतीतेषु ।
मोहः तीसियं अधस्तना असंख्यगुणहीनकं भवति ।।२३३।।

टीका – उस पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध के पश्चात् पल्य के असंख्यात बहुभाग मात्र आयामवाले संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर पूर्व स्थितिबंध से असंख्यातगुणा हीन ऐसा पल्य का असंख्यातवां भाग मात्र स्थितिबंध तीनों का होता है । वहां बीसिय का अल्प, उससे असंख्यातगुणा मोह का, उससे असंख्यातगुणा तीसिय का स्थितिबंध जानना । यहां विशुद्धता विशेष से तीसिय से मोह का घटता स्थितिबंधरूप क्रम हुआ ।

तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे बीसियाण हेट्ठावि ।
एक्कसराहो मोहो असंखगुणहीणयं होदि ।।२३४।।

तावन्मात्रे बंधे समतीते बीसियानां अधस्तनापि ।
एकसदृशः मोहोऽसंख्यगुणहीनको भवति ।।२३४।।

टीका – उसके पश्चात् पल्य के असंख्यात बहुभाग मात्र आयामवाले संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर तीनों का पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध होता है । वहां मोह का अल्प, उससे असंख्यातगुणा बीसिय का, उससे असंख्यातगुणा तीसिय का स्थितिबंध जानना । यहां विशुद्धता विशेष से बीसिय से भी मोह का घटता स्थितिबंधरूप क्रम हुआ ।

तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वेयणीयहेट्ठादु ।
तीसियघादितियाओ असंखगुणहीणया होंति ।।२३५।।

तावन्मात्रे बंधे समतीते वेदनीयाधस्तनात् ।
तीसियघातित्रिका असंख्यगुणहीनका भवंति ।।२३५।।

टीका – उसके पश्चात् पल्य के असंख्यात बहुभाग मात्र आयामवाले संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण होनेपर तीनों का पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध होता है । वहां अल्प मोह का, उससे असंख्यातगुणा बीसिय का, उससे असंख्यातगुणा तीसिय में से तीन घातिकर्मों का और उससे असंख्यातगुणा वेदनीय का स्थितिबंध होता है । यहां विशुद्धता विशेष से सातावेदनीय से तीन घातिकर्मों का स्थितिबंध हीन हुआ ।

तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे बीसियाण हेट्ठादु ।
तीसियघादितियाओ असंखगुणहीणया होंति ।।२३६।।

तावन्मात्रे बंधे समतीते बीसियानामधस्तनात् ।
तीसियघातित्रिका असंख्यगुणहीनका भवंति ।।२३६।।

टीका – उसके पश्चात् पल्य के असंख्यात बहुभाग मात्र आयामवाले संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर मोहादि का पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध होता है । वहां अल्प मोह का, उससे असंख्यातगुणा तीसिय का, उससे असंख्यातगुणा बीसिय का, उससे डेढ़गुणा वेदनीय का स्थितिबंध जानना । यहां विशुद्धता विशेष से ऐसा क्रम हुआ ।

तक्काले वेयणियं णामागोदादु साहियं होदि ।
इदि मोहतीसवीसियवेयणियाणं कमो जादो ।।२३७।।

तत्काले वेदनीयं नामगोत्रतः साधिकं भवति ।
इति मोहतीसवीसियवेदनीयानां क्रमो जातः ।।२३७।।

टीका – उस क्रमकरण काल में नाम, गोत्र के बंध से वेदनीय का साधिक बंध होता है, इसी अनुक्रम सहित अंतर्मुहूर्त तक पल्य के असंख्यात बहुभाग मात्र आयामवाले संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण होनेपर क्रमकरण काल के अंत समय में अपने-अपने योग्य पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र बंध होता है । संख्यात हजार

वर्ष मात्र स्थितिबंध यहां नहीं होता, अंतरकरण के पश्चात् होता है । पुनश्च यहां सर्व कर्मों का स्थितिसत्त्व संख्यात हजार स्थितिकांडकघात होनेपर भी अंत:कोडाकोडी सागर प्रमाण ही रहता है, क्योंकि उपशमश्रेणी में स्थितिकांडक आयाम दीर्घ नहीं है, अल्प प्रमाणवाले हैं ।

तीदे बंधसहस्से पल्लासंखेज्जयं तु ठिदिबंधो ।
तत्त असंखेज्जाणं उदीरणा समयपबद्धाणं ।।२३८।।

अतीते बंधसहस्रे पल्यासंख्येयं तु स्थितिबंध: ।
तत्र असंख्येयानां उदीरणा समयप्रबद्धानाम् ।।२३८।।

टीका – क्रमकरण के प्रारंभ के समय से लेकर संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण होनेपर जहां क्रमकरण के अंत में मोहादि का पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध होता है, वहां असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होती है । उसके पहले गुणश्रेणी के लिये अपकर्षण किये हुये द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग को उपरितन स्थिति में निक्षेपण करके अवशेष एकभाग को असंख्यातलोक का भाग देकर बहुभाग गुणश्रेणी आयाम में और एकभाग उदयावली में निक्षेपण करनेपर वहां उदयावली में दिया हुआ उदीरणाद्रव्य समयप्रबद्ध के असंख्यातवें भाग मात्र आता है । यहां से लेकर अपकर्षण किये हुये द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग उपरितन स्थिति में निक्षेपण करके अवशेष एकभाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर उसमें से बहुभाग गुणश्रेणी आयाम में और एकभाग उदयावली में देता है । यहां उदयावली में दिया हुआ उदीरणाद्रव्य असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण होता है ।

ठिदिबंधसहस्सगदे मणदाणा तत्तिये वि ओहिदुगं ।
लाभं व पुणो वि सुदं अचक्खु भोगं पुणोचक्खु ।।२३९।।

पुणरवि मदिपरिभोगं पुणरवि विरयं कमेण अणुभागो ।
बंधेण देसघादी पल्लासंखं तु ठिदिबंधे ।।२४०।।

स्थितिबंधसहस्रगते मनोदाने तावन्मात्रेऽपि अवधिद्विकं ।
लाभो वा पुनरपि श्रुतं अचक्षुर्भोगं पुनश्चक्षुः ।।२३९।।

पुनरपि मतिपरिभोगं पुनरपि वीर्यं क्रमेण अनुभागः ।
बंधेन देशघातिः पल्यासंख्यं तु स्थितिबंधे ।।२४०।।

टीका – क्रमकरण कहकर अब देशघातिकरण कहते हैं । वहां पहले प्रकृतियों का सर्वघाति स्पर्धकरूप अनुभाग बांधा था अब देशघातिकरण से लेकर दारु-लता समान द्विस्थानगत देशघाति स्पर्धकरूप ही अनुभाग को बांधता है । वहां असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण उदीरणा का प्रारंभ होने के पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण होनेपर मनःपर्ययज्ञानावरण और दानांतराय का देशघाति बंध होता है । उसके पश्चात् उतने-उतने ही स्थितिबंधापसरण होनेपर क्रम से अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण, लाभांतराय का; श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण, भोगांतराय का; चक्षुदर्शनावरण का; मतिज्ञानावरण, उपभोगांतराय का और वीर्यांतराय का देशघाति बंध होता है ।

यहां प्रश्न – संज्वलन चतुष्क और पुरुषवेद का देशघातिकरण यहां क्यों नहीं कहा ?

उसका समाधान – उनका अनुभागबंध संयमासंयम के ग्रहण के समय से लेकर प्रतिसमय अनंतगुणा घटते क्रम से द्विस्थानगत होता है, इसलिए यहां नहीं कहा । तथा उनका सत्तारूप अनुभाग सर्वघाति ही है । देशघातिकरण के अंत में भी मोहादि का स्थितिबंध अपने योग्य पल्य का असंख्यातवां भाग मात्र ही है ।

तो देसघातिकरणादुवरिं तु गदेसु तत्तियपदेसु ।
इगिवीसमोहणीयाणंतरकरणं करेदीदि ।।२४१।।

अतो देशघातिकरणादुपरि तु गतेषु तावत्कपदेषु ।
एकविंशमोहनीयानामंतरकरणं करोतीति ।।२४१।।

टीका – उस देशघातिकरण के ऊपर संख्यात हजार स्थितिबंध जानेपर मोहनीय की इक्कीस प्रकृतियों का अंतरकरण करता है । ऊपर और नीचे के निषेक छोड़कर बीच के विवक्षित कितने ही निषेकों का अभाव करना, वह अंतरकरण जानना ।

संजलणाणं एक्कं वेदाणेकं उदेदि तं दोण्हं ।
सेसाणं पढमट्ठिदिं ठवेदि अंतोमुहुत्त आवलियं ।।२४२।।

संज्वलनानामेकं वेदनामेकं उदेति तत् द्वयोः ।
शेषाणां प्रथमस्थितिं स्थापयति अंतर्मुहूर्तमावलिकां ।।२४२।।

टीका – संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ में से किसी एक के और स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेदों में से किसी एक के उदय सहित श्रेणी चढ़ता है, उन उदयरूप दो प्रकृतियों की तो प्रथम स्थिति अंतर्मुहूर्त स्थापता है तथा अवशेष उन्नीस प्रकृतियों की प्रथम स्थिति आवली मात्र स्थापता है । इस प्रथम स्थिति प्रमाण निषेकों को नीचे छोड़कर ऊपर के निषेकों का अंतर करता है, ऐसा अर्थ जानना ।

उवरि समं उक्कीरइ हेट्ठा वि समं तु मज्झिमपमाणं ।
तदुपरि पढमठिदीदो संखेज्जगुणं हवे णियमा ।।२४३।।

उपरि समं उत्कीर्यते अधस्तनापि समं तु मध्यमप्रमाणं ।
तदुपरि प्रथमस्थितितः संख्येयगुणं भवेत् नियमात् ।।२४३।।

टीका – अंतरायाम के अंत निषेक के ऊपरवर्ती निषेक, वे उदयरूप और अनुदयरूप सर्व प्रकृतियों के समान हैं, इसलिए अंतरायाम के ऊपर द्वितीय स्थिति का प्रथम निषेक सर्व प्रकृतियों का एक कालवर्ती होने से समान है । तथा अंतरायाम के प्रथम निषेक के नीचे का जो निषेक है वह उदयरूप प्रकृतियों का परस्पर समान है, अनुदयरूप प्रकृतियों का परस्पर समान है परंतु उदयरूप-अनुदयरूप प्रकृतियों का समान नहीं है, क्योंकि इनके प्रथम स्थिति में समानता नहीं है । प्रथम स्थिति का जो अंत का निषेक है वही अंतरायाम के नीचे का निषेक है । पुनश्च अंतर्मुहूर्त वा आवली मात्र जो उदयरूप वा अनुदयरूप प्रकृतियों की प्रथम स्थिति, उससे संख्यातगुणा ऐसा अंतर्मुहूर्त मात्र अंतरायाम है । इतने निषेकों का अभाव करता है । वहां उदयमान प्रकृतियों के तो गुणश्रेणीशीर्ष के निषेक तथा उनसे संख्यातगुणा उपरितन स्थिति के निषेक – उनको ग्रहण कर अंतर करता है और अनुदय प्रकृतियों का यहां पाये जानेवाला अवशेष गुणश्रेणी आयाम और उनसे संख्यातगुणा उपरितन स्थिति के

निषेक – उनको ग्रहण कर अंतर करता है ।

अंतरपढमे अण्णो ठिदिबंधो ठिदिरसाण खंडो य ।
एयट्ठिदिखंडुक्कीरणकाले अंतरसमत्ती ।।२४४।।

अंतरप्रथमे अन्य: स्थितिबंध: स्थितिरसयो: खंडश्च ।
एकस्थितिखंडोत्करणकाले अंतरसमाप्ति: ।।२४४।।

टीका – अंतरकरण के प्रथम समय में पूर्व स्थितिबंध से असंख्यातगुणा हीन ऐसे और ही *(अन्य ही)* स्थितिबंध का और पूर्व स्थितिकांडक से कुछ हीन ऐसे और ही स्थितिकांडक का और पूर्व अनुभागकांडक से अनंतगुणा हीन ऐसे और ही अनुभागकांडक का प्रारंभ होता है । वहां एक स्थितिकांडकोत्करण का जितना काल है उतने काल द्वारा अंतरकरण करता है । उसकी समाप्ति होते ही एक स्थितिकांडकघात हुआ । उस काल में संख्यात हजार अनुभागकांडकों का घात हुआ, ऐसा अर्थ जानना ।

अंतरहेदुक्कीरिददव्वं तं अंतरम्हि ण य देदि ।
बंधं ताणंतरजं बंधाणं बिदियगे देदि ।।२४५।।

अंतरहेतूत्कीरितद्रव्यं तदंतरे न च ददाति ।
बंधं तेषामंतरजं बंधानं द्वितीयके ददाति ।।२४५।।

टीका – अंतर के निमित्त उत्कीर्ण किये हुये द्रव्य को अंतरायाम में नहीं देते ।

भावार्थ – अंतरायाम के निषेकों के द्रव्य का अभाव करके अंतरायाम के निषेकों में ही नहीं मिलाया जाता, तो कहां मिलाता है, वह कहते हैं –

स्त्री या नपुंसकवेद और किसी एक कषाय सहित श्रेणी चढ़नेवाले के जिनका उदय नहीं पाया जाता केवल बंध ही पाया जाता है ऐसे पुरुषवेद और *(अन्य)* तीन संज्वलन कषाय इन चार प्रकृतियों के द्रव्य को उत्कर्षण करके तो तत्काल जो अपना उसी प्रकृति का बंध हुआ उसकी आबाधा को छोड़कर उसके द्वितीय स्थिति

में प्रथम निषेक से लेकर यथायोग्य अंत तक निक्षेपण करता है और अपकर्षण करके उदयरूप जो अन्य कषाय, उसकी प्रथम स्थिति में निक्षेपण करता है ।

उदयिल्लाणंतरजं सगपढमे देदि बंधबिदिये च ।
उभयाणंतरदव्वं पढमे बिदिये च संछुहदि ।।२४६।।

औदयिकानामंतरजं स्वकप्रथमे ददाति बंधद्वितीये च ।
उभयानामंतरद्रव्यं प्रथमे द्वितीये च संक्षिपति ।।२४६।।

टीका – जिनका बंध नहीं है केवल उदय ही पाया जाता है ऐसे स्त्रीवेद और नपुंसकवेद के अंतर संबंधी द्रव्य को अपकर्षण करके अपनी प्रथम स्थिति में निक्षेपण करता है और उत्कर्षण करके वहां बंधनेवाली अन्य कषाय की द्वितीय स्थिति में निक्षेपण करता है । तथा अपकर्षण करके उदयरूप अन्य क्रोधादि कषाय की प्रथम स्थिति में संक्रमण होता है – उस उदय प्रकृतिरूप परिणमन होता है इतना भी सिद्धांतोक्त विशेष जानना ।

पुनश्च जिनका बंध भी है और उदय भी पाया जाता है ऐसे पुरुषवेद और कोई एक कषाय, उनके अंतर संबंधी द्रव्य को अपकर्षण करके उदयरूप प्रकृतियों की प्रथम स्थिति में निक्षेपण करता है और उत्कर्षण करके वहां बंधनेवाली प्रकृतियों की द्वितीय स्थिति में निक्षेपण करता है । यहां भी अन्य प्रकृति की प्रथम-द्वितीय स्थिति में उत्कर्षण-अपकर्षण के वश से अन्य प्रकृति में परिणमनेरूप संक्रमण होता है ऐसा विशेष जानना ।

अणुभयगाणंतरजं बंधं ताणं च बिदियगे देदि ।
एवं अंतरकरणं सिज्झदि अंतोमुहुत्तेण ।।२४७।।

अनुभयकानामंतरजं बंधं तेषां च द्वितीयके ददाति ।
एवमंतरकरणं सिद्ध्यति अंतर्मुहूर्तेन ।।२४७।।

टीका – बंध और उदय से रहित ऐसे जो अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान कषाय *(कर्म)* और हास्यादि छह नोकषाय *(कर्म)* – उनके अंतर संबंधी द्रव्य का अपकर्षण

करके उस काल में उदयरूप जो अन्य प्रकृति, उनकी प्रथम स्थिति में संक्रमण होता है – तद्रूप परिणमन होता है । तथा उत्कर्षण करके उस काल में बंधनेवाली अन्य प्रकृतियों की द्वितीय स्थिति में संक्रमण होता है – तद्रूप परिणमन होता है । इसतरह प्रकृतियों के जिन निषेकों का अभाव करके अंतर किया, उनके द्रव्य का निक्षेपण करता है ।

यहां इतना जानना – बंध रहित प्रकृतियों के द्रव्य को तो अपनी द्वितीय स्थिति में और उदय रहित प्रकृतियों के द्रव्य को अपनी प्रथम स्थिति में निक्षेपण नहीं करता । प्रथम स्थिति तो अंतरायाम के नीचे है, इसलिए वहां देने में स्थिति घटती है, इसलिए अपकर्षण कहा । और द्वितीय स्थिति अंतरायाम के ऊपरवर्ती है, इसलिए वहां द्रव्य देनेपर स्थिति बढ़ती है वहां उत्कर्षण कहा । इसप्रकार अंतर्मुहूर्त काल द्वारा अंतर करने की समाप्ति होती है । यहां अंतरकरण के प्रथम समय से लेकर प्रथम स्थिति और अंतरायाम का प्रमाण जितना का उतना रहता है । जब उदयावली का एक समय व्यतीत होता है तब गुणश्रेणी का एक समय उदयावली में आ मिलता है और तभी गुणश्रेणी में अंतरायाम का एक समय मिलता है और तभी अंतरायाम में द्वितीय स्थिति का एक निषेक मिलता है । इसतरह द्वितीय स्थिति ही घटती है, प्रथम स्थिति और अंतरायाम जितना का उतना रहता है, ऐसा जानना ।

सत्तकरणाणि अंतरकदपढमे होंति मोहणीयस्स ।
इगिठाणिय बंधुदओ ठिदिबंधो संखवस्सं च ।।२४८।।

आणुपुव्वीसंकमणं लोहस्स असंकमं च संढस्स ।
पढमोवसामकरणं छावलितीदेसुदीरणदा ।।२४९।।

सप्तकरणानि अंतरकृतप्रथमे भवंति मोहनीयस्य ।
एकस्थानको बंधोदय: स्थितिबंध: संख्यवर्षं च ।।२४८।।

आनुपूर्वी संक्रमणं लोभस्यासंक्रमं च षंढस्य ।
प्रथमोपशमकरणं षडावल्यतीतेषूदीरणता ।।२४९।।

टीका – अंतर करने के पश्चात् उसके अनंतर प्रथम समय में सात करणों का युगपत् प्रारंभ होता है । वहां पहले अंतर करने की समाप्ति तक मोह का दारु, लता समान द्विस्थानगत बंध और उदय था, अब लता समान एकस्थानगत बंध और उदय होने लगता है, इसलिए दो करण तो ये हुये । पहले मोह का स्थितिबंध असंख्यात वर्षों का होता था, अब संख्यात वर्ष मात्र होने लगा, सो एक करण यह हुआ ।

पहले चारित्रमोह की प्रकृतियों का परस्पर में जहां-तहां संक्रमण होता था, अब आनुपूर्वी संक्रमण होने लगा । इसमें ऐसा नियम है कि स्त्री, नपुंसकवेद का तो पुरुषवेद ही में और पुरुषवेद, छह हास्यादिक, अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान क्रोध का संज्वलन क्रोध ही में; संज्वलन क्रोध, अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान मान का संज्वलन मान ही में; संज्वलन मान, अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान माया का संज्वलन माया ही में; संज्वलन माया, अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान लोभ का संज्वलन लोभ ही में संक्रमण होता है, अन्यथा नहीं होता – एक करण यह हुआ ।

पहले संज्वलन लोभ का संज्वलन क्रोधादि में और पुरुषवेद में संक्रमण होता था, अब इसका संक्रमण किसी में भी नहीं होता – एक करण यह हुआ ।

अब नपुंसकवेद की उपशम क्रिया का प्रारंभ हुआ – एक करण यह हुआ ।

पहले बंध होने के पश्चात् एक आवली काल व्यतीत होते ही उदीरणा करने की समर्थता थी, अब तो बंध होता है उसके बंध समय से छह आवली व्यतीत होनेपर ही उदीरणा करने की समर्थता होती है – एक करण यह हुआ ।

अंतरपढमादु कमे एक्केक्के सत्त चदुसु तिय पयडिं ।
सममुच सामदि णवकं समऊणावलिदुगं वज्जं ।।२५०।।

अंतरप्रथमात् क्रमेण एकैकं सप्त चतुर्षु त्रयीं प्रकृतिं ।
समुच्य शमयति नवकं समयोनावलिद्विकं वर्ज्यम् ।।२५०।।

टीका – अंतर करने के पश्चात् प्रथम समय से लेकर क्रम से एक-एक अंतर्मुहूर्त काल द्वारा तो एक, एक, सात प्रकृतियों को और चार अंतर्मुहूर्त में क्रम से तीन-तीन प्रकृतियों को उपशमाता है । वहां एक समय कम दो आवली मात्र नवक

समयप्रबद्ध को नहीं उपशमाता, इसका स्वरूप आगे कहेंगे वह जानना ।

एय णउंसयवेदं इत्थीवेदं तहेव एयं च ।
सत्तेव णोकसाया कोहादितियं तु पयडीओ ।।२५१।।

एको नपुंसकवेद: स्त्रीवेद: तथैव एक: च ।
सप्तैव नोकषाया क्रोधादित्रयं तु प्रकृतय: ।।२५१।।

टीका – एक नपुंसकवेद, एक स्त्रीवेद, सात नोकषाय और तीन क्रोध, तीन मान, तीन माया, तीन लोभ ऐसी क्रम से उपशम होनेरूप इक्कीस प्रकृतियां हैं ।

अंतरकदपढमादो पडिसमयमसंखगुणविहाणकमे– ।
णुवसामेदि हु संढं उवसंतं जाण ण च अण्णं ।।२५२।।

अंतरकृतप्रथमत: प्रतिसमयमसंख्यगुणविधानक्रमे– ।
णोपशाम्यति हि षंढं उपशांतं जानीहि न चान्यम् ।।२५२।।

टीका – अंतर करने के अनंतर प्रथम समय से लेकर प्रतिसमय नपुंसकवेद का उपशम होता है । वहां नपुंसकवेद के द्रव्य को गुणसंक्रमण भागहार के असंख्यातवें भागरूप भागहार का भाग देकर वहां एकभाग मात्र द्रव्य को प्रथम समय में उपशमाता है । उससे असंख्यातगुणा द्रव्य को द्वितीय समय में उपशमाता है । इसतरह नपुंसकवेद के उपशम काल की समाप्ति तक असंख्यातगुणा क्रम सहित द्रव्य उपशमाता है । प्रतिसमय जो द्रव्य उपशमाया उसी का नाम उपशमन फालि का द्रव्य जानना ।

संढादिमुवसमगे इट्ठस्स उदीरणा य उदओ य ।
संढादो संकमिदं उवसमियमसंखगुणियकमा ।।२५३।।

षंढादिमोपशामके इष्टस्योदीरणा च उदयश्च ।
षंढात् संक्रमितमुपशमितमसंख्यगुणितक्रम: ।।२५३।।

टीका – नपुंसकवेद के उपशम के प्रथम समय में विवक्षित उदय को प्राप्त हुये पुरुषवेद के सर्वद्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग को

पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग उपरितन स्थिति में दिया । अवशेष एकभाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग को गुणश्रेणी में और एकभाग को उदयावली में दिया । उदयावली में दिया हुआ यह उदीरणाद्रव्य जितना है, उससे उसी पुरुषवेद का उदयद्रव्य असंख्यातगुणा है, क्योंकि पहले गुणश्रेणी का द्रव्य इन निषेकों में दिया था वह पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग मात्र है । उससे नपुंसकवेद का द्रव्य संक्रमण द्वारा पुरुषवेदरूप हुआ वह असंख्यातगुणा है, क्योंकि उस भागहार से गुणसंक्रमण भागहार का प्रमाण असंख्यातगुणा हीन है । उससे नपुंसकवेद की उपशमफालि का द्रव्य असंख्यातगुणा है, क्योंकि वहां भागहार उस भागहार के असंख्यातवें भाग मात्र है । इसीतरह द्वितीयादि समयों में भी अल्पबहुत्व जानना ।

अंतरकरणादुवरिं ठिदिरसखंडाण मोहणीयस्स ।
ठिदिबंधोसरणं पुण संखेज्जगुणेण हीणकमं ।।२५४।।

अंतरकरणादुपरि स्थितिरसखंडानां मोहनीयस्य ।
स्थितिबंधापसरणं पुनः संख्यगुणेन हीनक्रमम् ।।२५४।।

टीका – अंतरकरण के पश्चात् नपुंसकवेद के उपशमाने के प्रथम समय से लेकर मोहनीय के स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात नहीं हैं, क्योंकि उपशमनेरूप होनेवाली कर्म की स्थिति के कांडकघात नहीं होता ।

यहां कोई कहेगा कि उपशमरूप नहीं होनेवाली ऐसी नपुंसकवेद बिना अन्य प्रकृतियों का तो कांडकघात होता होगा ?

समाधान – वैसा नहीं होता, क्योंकि यहां सर्व मोहनीय प्रकृतियों की स्थिति समान है और स्थिति अनुसार अनुभाग का भी कांडकघात बिना अवस्थितपना ही है । मोहनीय के स्थितिबंधापसरण का आयाम असंख्यातगुणा हीन क्रम सहित वर्तता है ।

जत्तोपाये होदि हु ठिदिबंधो संखवस्समेत्तं तु ।
तत्तो संखगुणूणं बंधोसरणं तु पयडीणं ।।२५५।।

यत उपायेन भवति हि स्थितिबंध: संख्यवर्षमात्र: तु ।
तत: संख्यगुणोनं बंधापसरणं तु प्रकृतीनाम् ।।२५५।।

टीका – चूंकि यहां मोह का स्थितिबंध संख्यात हजार वर्ष मात्र होता है, इसलिए पूर्व स्थितिबंधापसरण से यहां स्थितिबंधापसरण संख्यातगुणा हीन पाया जाता है । परंतु ज्ञानावरणादि का स्थितिबंध अंतर करने के अंत समय संबंधी स्थितिबंध से असंख्यातगुणा हीन है, क्योंकि इनके स्थितिबंधापसरण का प्रमाण पल्य को असंख्यात का भाग देकर बहुभाग मात्र है । वहां तीसिय का स्थितिबंध पल्य का असंख्यातवां भाग मात्र है, अन्य से अल्प है । उससे असंख्यातगुणा बीसिय का है । उससे डेढ़गुणा वेदनीय का है ।

वस्साणं बत्तीसादुवरिं अंतोमुहुत्तपरिमाणं ।
ठिदिबंधाणोसरणं अवरट्ठिदिबंधणं जाव ।।२५६।।

वर्षाणां द्वात्रिंशदुपरि अंतर्मुहूर्तपरिमाणम् ।
स्थितिबंधानामपसरणमवरस्थितिबंधनं यावत् ।।२५६।।

टीका – बत्तीस वर्ष का स्थितिबंध जहां से होता है वहां से लेकर जहां जघन्य स्थितिबंध होता है वहां तक उस बंधापसरण का प्रमाण अंतर्मुहूर्त मात्र जानना ।

ठिदिबंधाणोसरणं एयं समयप्पबद्धमहिकिच्चा ।
उत्तं णाणादो पुण ण च उत्तं अणुववत्तीदो ।।२५७।।

स्थितिबंधानामपसरणमेकं समयप्रबद्धमधिकृत्य ।
उक्तं नानात: पुन: न च उक्तमनुपपत्तित: ।।२५७।।

टीका – स्थितिबंधापसरण कहते समय विवक्षित स्थितिबंध के प्रथम समय में पाये जानेवाले एक समयप्रबद्ध को अधिकार करके कहा है । परंतु नाना समयप्रबद्धों की अपेक्षा नहीं कहा है, क्योंकि पूर्व स्थितिबंध से एक बार स्थितिबंधापसरण होने के प्रथम समय में स्थितिबंध का जितना प्रमाण होता है उतना ही अंतर्मुहूर्त काल तक बंधनेवाले समयप्रबद्धों के स्थितिबंध का प्रमाण होता है । प्रतिसमय नाना

समयप्रबद्धों का स्थितिबंधापसरण होकर प्रतिसमय स्थितिबंध घटने की अनुपपत्ति है अर्थात् अप्राप्ति है ।

एवं संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सगेसु तीदेसु ।
संढुवसमदेतत्तो इत्थि च तहेव उवसमदि ।।२५८।।

एवं संख्येयेषु स्थितिबंधसहस्रकेषु अतीतेषु ।
षंढोपशांते ततः स्त्रीं च तथैव उपशमयति ।।२५८।।

टीका – ऐसे संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत होनेपर अंतर्मुहूर्त काल द्वारा नपुंसकवेद का उपशम होता है । उसके पश्चात् उसी प्रकार नपुंसकवेद के उपशमवत् अंतर्मुहूर्त काल द्वारा स्त्रीवेद को उपशमाता है । यहां स्त्रीवेद के द्रव्य को स्थापित कर संक्रमण फालिद्रव्य आदि का, अल्पबहुत्व का और प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम का वर्णन पूर्वोक्तवत् जानना । परंतु यहां इतना जानना कि ज्ञानावरणादि कर्मों का स्थिति-अनुभागकांडक घात और आयु बिना सात कर्मों का स्थितिबंध पूर्व प्रमाण से अन्य प्रमाणवाला होता है ।

थीयद्धा संखेज्जदिभागेपगदे तिघादिठिदिबंधो ।
संखतुवं रसबंधो केवलणाणेगठाणं तु ।।२५९।।

स्त्री अद्धा संख्येयभागेपगते त्रिघातिस्थितिबंधः ।
संख्यातं रसबंधः केवलज्ञानैकस्थानं तु ।।२५९।।

टीका – स्त्रीवेद उपशमाने के काल का संख्यातवां भाग जानेपर मोह का स्थितिबंध संख्यात हजार वर्ष मात्र होता है जो अन्य कर्मों से अल्प होता है, उससे संख्यातगुणा ऐसा संख्यात हजार वर्ष मात्र तीन घातिकर्मों का, उससे असंख्यातगुणा पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र नाम, गोत्र का, उससे कुछ अधिक सातावेदनीय का स्थितिबंध होता है । इसी काल में केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण बिना तीन घातिकर्मों का लता समान एकस्थानगत ही अनुभागबंध होता है ।

थीउवसमिदाणंतरसमयादो सत्त णोकसायाणं ।
उवसमगो तस्सद्धा संखज्जदिमे गदेतत्तो ।।२६०।।

स्त्रीउपशमितानंतरसमयात् सप्तनोकषायाणाम् ।
उपशामकः तस्याद्धा संख्याते गते ततः ।।२६०।।

टीका – इसीतरह स्त्रीवेद को उपशमाने के अनंतर समय से लेकर पुरुषवेद, और हास्यादि छह इन सात प्रकृतियों को उपशमाता है । उनको उपशमाने का काल अंतर्मुहूर्त मात्र है । उसका संख्यातवां भाग जानेपर क्या होता है ? वह कहते हैं –

णामदुग वेयणियट्ठिदिबंधो संखवस्सयं होदि ।
एवं सत्तकसाया उवसंता सेसभागंते ।।२६१।।

नामद्विके वेदनीयस्थितिबंधः संख्यवर्षको भवति ।
एवं सप्तकषाया उपशांताः शेषभागांते ।।२६१।।

टीका – सर्व ही कर्मों का स्थितिबंध संख्यात हजार वर्ष प्रमाण होता है । वहां अल्प स्थितिबंध मोह का, उससे संख्यातगुणा तीन घातिकर्मों का, उससे संख्यातगुणा नाम, गोत्र का, उससे कुछ अधिक वेदनीय का जानना । इसतरह नपुंसकवेद के उपशमवत् सात नोकषायों का अवशेष बहुभाग उपशमाने का *(बाकी)* रहा था, उनका अंत समय में उपशमाना होता है ।

णवरि य पुंवेदस्स य णवकं समऊणदोण्णिआवलियं ।
मुच्चा सेसं सव्वं उवसंतं होदि तच्चरिमे ।।२६२।।

नवरि च पुंवेदस्य च नवकं समयोनद्व्यावलिकाम् ।
मुक्त्वा शेषं सर्वमुपशांतं भवति तच्चरमे ।।२६२।।

टीका – इतना विशेष है कि उस अंत समय में पुरुषवेद के एक समय कम दो आवली मात्र नवक समयप्रबद्धों को छोड़कर अवशेष सर्व को उपशमाता है । नवीन जो समयप्रबद्ध बंधते हैं उनको नवक समयप्रबद्ध कहते हैं । बंध समय से लेकर

आवली काल को बंधावली कहते हैं । बंधा हुआ द्रव्य बंधावली में उपशमने योग्य नहीं होता । और एक समयप्रबद्ध को उपशमाने की समय-समय संबंधी आवली मात्र फालि यहां होती हैं, इसलिए एक समय कम दो आवली मात्र समयप्रबद्ध उपशमित नहीं होते । कैसे ? वह कहते हैं –

उपशम काल के अंत की दो आवली का नाम द्विचरमावली और चरमावली है । द्विचरमावली के प्रथम समय में बंधा हुआ समयप्रबद्ध बंधावली व्यतीत होनेपर चरमावली के प्रथम समय से लेकर प्रतिसमय एक-एक फालि का उपशमन करके चरमावली के अंत समय में सर्व उपशमित हुआ । पुनश्च द्विचरमावली के द्वितीय समय में जो समयप्रबद्ध बंधा था, वह बंधावली व्यतीत होनेपर चरमावली के द्वितीय समय से लेकर चरमावली के अंत समय तक अन्य सर्व फालि तो उपशमित हुयी परंतु एक अंत फालि उपशमित नहीं हुयी । इसीतरह द्विचरमावली के तृतीयादि समयों में बंधे हुये समयप्रबद्ध बंधावली व्यतीत होनेपर चरमावली के तृतीय समय से लेकर अंत समय तक के समयों में अन्य फालि तो उपशमित हुयी, परंतु क्रम से *(अंत की)* दो, तीन, चार आदि फालि उपशमित नहीं हुयी । वहां इसी क्रम से द्विचरमावली के अंत समय में बंधे हुये समयप्रबद्ध की चरमावली के अंत समय में एक फालि उपशमी, अवशेष उपशमी नहीं । इसप्रकार द्विचरमावली में बंधे समयप्रबद्धों की फालि नहीं उपशमित हुयी । पुनश्च चरमावली के प्रथमादि सर्व समयों में बंधे हुये समयप्रबद्धों का कुछ भी द्रव्य का उपशम हुआ नहीं, क्योंकि उनकी बंधावली व्यतीत नहीं हुयी है । उसके ऊपरवर्ती उच्छिष्टावली में पुरुषवेद का बंध भी नहीं है और उदय भी नहीं है । इसतरह पुरुषवेद के उपशम काल के अंत समय में द्विचरमावली के तो एक समय कम आवली मात्र और चरमावली के संपूर्ण आवली मात्र – दोनों मिलकर एक समय कम दो आवली मात्र समयप्रबद्ध उपशमित नहीं हुये हैं । यहां अंश को अंशीवत् कहना इस न्याय से उपशमित नहीं हुयी समयप्रबद्ध की फालि को समयप्रबद्ध ही कहा है ऐसा जानना ।

तच्चरिमे पुंबंधो सोलसवस्साणि संजलणगाणं ।
तद्दुगाणं सेसाणं संखेज्जसहस्सवस्साणि ।।२६३।।

तच्चरमे पुंबंधः षोडशवर्षाणि संज्वलनकानाम् ।
तद्द्विकानां शेषाणां संख्यसहस्रवर्षाणि ।।२६३।।

टीका – उस पुरुषवेद के उपशमन काल तक सवेद अनिवृत्तिकरण है, उसके अंत समय में पुरुषवेद का सोलह वर्ष मात्र, संज्वलन चतुष्क का बत्तीस वर्ष मात्र, अन्य कर्मों का संख्यात हजार वर्ष मात्र – उनमें अल्प तीन घातिकर्मों का, उससे संख्यातगुणा नाम, गोत्र का, उससे साधिक वेदनीय का स्थितिबंध होता है ।

पुरिसस्स य पढमठिदि आवलिदोसुवरिदासु आगाला ।
पडिआगाला छिण्णा पडियावलियादुदीरणदा ।।२६४।।

पुरुषस्य च प्रथमस्थितिः आवलिद्वयोरुपरतयोरागालाः ।
प्रत्यागालाः छिन्नाः प्रत्यावलिकात उदीरणता ।।२६४।।

टीका – पुरुषवेद की अंतरायाम के नीचे कही थी जो प्रथम स्थिति, उसमें दो आवली अवशेष रहनेपर आगाल, प्रत्यागाल की व्युच्छित्ति होती है । दो आवली अवशेष रहनेपर वहां प्रथम समय से लेकर पुरुषवेद की गुणश्रेणी निर्जरा का व्युच्छेद होता है । वहां उदयावली से बाह्य ऊपर के निषेकों में स्थित द्रव्य को उदयावली में दिया जाता है । ऐसी उदीरणा ही पायी जाती है । इनका लक्षण पूर्वोक्त जानना ।

अंतरकदादु छण्णोकसायदव्वं ण पुरिसगे देदि ।
एदि हु संजलणस्स य कोधे अणुपुव्विसंकमदो ।।२६५।।

अंतरकृतात् षण्णोकषायद्रव्यं न पुरुषके ददाति ।
एति हि संज्वलनस्य च क्रोधे आनुपूर्विसंक्रमतः ।।२६५।।

टीका – अंतर करने के पश्चात् हास्यादि छह नोकषायों का द्रव्य पुरुषवेद में संक्रमण नहीं करता, संज्वलन क्रोध में ही संक्रमण करता है, क्योंकि यहां आनुपूर्वी संक्रमण पाया जाता है ।

पुरिसस्स उत्तणवकं असंखगुणियक्कमेण उवसमदि ।
संकमदि हु हीणकमेणधापवत्तेण हारेण ।।२६६।।

पुरुषस्य उक्तनवकं असंख्यगुणितक्रमेण उपशमयति ।
संक्रमति हि हीनक्रमेणाध:प्रवृत्तेन हारेण ।।२६६।।

टीका – पुरुषवेद के पूर्वोक्त नवक समयप्रबद्ध जो नहीं उपशमाये थे, उनको वेद रहित ऐसे अपगतवेद अनिवृत्तिकरण के प्रथमादि समयों में ऐसे *(आगे कहे अनुसार)* उपशमाते हैं । पुरुषवेद के उपशम काल के द्विचरमावली के द्वितीय समय में बंधे हुये समयप्रबद्ध की जो एक फालि अवशेष रही थी, उसका अपगतवेद के प्रथम समय में उपशम होता है । उसके होनेपर वह समयप्रबद्ध सर्व *(पूर्ण)* उपशमित हुआ । अवशेष दो समय कम दो आवली मात्र समयप्रबद्ध रहे । वहां जिसकी बंधावली व्यतीत हुयी है ऐसा जो समयप्रबद्ध उसका द्रव्य अपगतवेद के प्रथम समय में जितना उपशमाया, उससे द्वितीयादि समयों में अंत फालि तक क्रम से असंख्यातगुणा उपशमाया जाता है । इसतरह अन्य समयप्रबद्धों के द्रव्य में भी बंधावली व्यतीत होनेपर प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम सहित उपशम फालियों का द्रव्य जानना । एक नवक समयप्रबद्ध एक आवली काल में उपशमता है, इसलिए वहां एक समयप्रबद्ध की आवली प्रमाण फालि जानना *(आवली के जितने समय उतनी फालियों की संख्या जानना)* । इसतरह अपगतवेद के प्रथम समय से लेकर एक समय कम दो आवली मात्र काल में पुरुषवेद का सर्व नवक समयप्रबद्ध उपशमाया जाता है । ऐसा तो उपशम विधान जानना ।

पुनश्च पुरुषवेद के किसी एक नवक समयप्रबद्ध को अध:प्रवृत्त भागहार नामक भागहार का भाग देकर वहां एकभाग मात्र द्रव्य अपगतवेद के प्रथम समय में संज्वलन क्रोधरूप होकर संक्रमण करता है । अवशेष बहुभाग मात्र द्रव्य को अध:प्रवृत्त भागहार का भाग देकर, वहां एकभाग द्वितीय समय में संक्रमण करता है । पुनश्च अवशेष बहुभाग को वैसे ही भाग देकर एकभाग तृतीय समय में संक्रमण करता है । इसतरह एक समय कम दो आवली के अंत तक विशेष हीन क्रम सहित संक्रमण करता है । पुनश्च अन्य कोई नवकबंध का समयप्रबद्ध प्रतिसमय असंख्यातभाग घटते क्रम सहित, कोई संख्यातभाग से घटते क्रम सहित, कोई संख्यातगुणा घटते क्रम सहित, कोई असंख्यातगुणा घटते क्रम सहित, कोई असंख्यातभागवृद्धि क्रम सहित, कोई संख्यातभागवृद्धि क्रम सहित, कोई संख्यातगुणावृद्धि क्रमसहित, कोई असंख्यातगुणावृद्धि

क्रम सहित संज्वलन क्रोध में संक्रमण करता है; क्योंकि चतु:स्थानपतित हानि-वृद्धि रूप योगों द्वारा बंधे हुये समयप्रबद्धों का द्रव्य हीनाधिक पाया जाता है । इसलिए संक्रमणद्रव्य के भी चतु:स्थानपतित हानिवृद्धि का अनुक्रम पाया जाता है ।

पढमावेदे संजलणाणं अंतोमुहुत्तपरिहीणं ।
वस्साणं बत्तीसं संखसहस्सियरगाणठिदिबंधो ।।२६७।।

प्रथमावेदे संज्वलनानां अंतर्मुहूर्तपरिहीनम् ।
वर्षाणां द्वात्रिंशत् संख्यसहस्रमितरेषां स्थितिबंध: ।।२६७।।

टीका – अपगतवेद के प्रथम समय में संज्वलन चतुष्क का तो अंतर्मुहूर्त कम बत्तीस वर्ष मात्र स्थितिबंध है, क्योंकि बत्तीस वर्ष स्थितिबंध था, उसमें से एक बार स्थितिबंधापसरण करके अंतर्मुहूर्त घट गया । अन्य कर्मों का पूर्व स्थितिबंध से संख्यातगुणा घटता पूर्वोक्त प्रकार से हीनाधिक क्रम सहित संख्यात हजार वर्ष मात्र स्थितिबंध होता है ।

पढमावेदो तिविहं कोहं उवसमदि पुव्वपढमठिदी ।
समयाहियआवलियं जाव य तक्कालठिदिबंधो ।।२६८।।

प्रथमावेदस्त्रिविधं क्रोधं उपशमयति पूर्वप्रथमस्थिति: ।
समयाधिकावलिकां यावच्च तत्कालस्थितिबंध: ।।२६८।।

टीका – प्रथम समयवर्ती अपगतवेदी संयमी अपगतवेद के प्रथम समय से लेकर पुरुषवेद के नवक समयप्रबद्ध सहित अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन इन तीनों क्रोध को उपशमाता है । वहां उदयरूप संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति पूर्व में अंतरकरण के प्रारंभ में अंतर्मुहूर्त मात्र स्थापि थी । उसका प्रमाण पुरुषवेद की प्रथम स्थिति से साधिक था, उसमें से व्यतीत होने के पश्चात् जो अवशेष रहा, उसमें से एक समय अधिक आवली मात्र अवशेष रहे वहां से पहले यहां क्रोध की प्रथम स्थिति जानना । क्योंकि उच्छिष्टावली अवशेष रहनेपर प्रथम स्थिति नाम नहीं पाता । पुनश्च जैसे आगे मानादिक की नवीन प्रथम स्थिति का स्थापन करेंगे वैसे क्रोध

की प्रथम स्थिति नवीन नहीं होती, क्योंकि संज्वलन क्रोध का ही उदय चला आता है । इसलिए अंतरकरण में स्थापित प्रथम स्थिति का ही यहां ग्रहण किया है । इस प्रथम स्थिति में आवली और प्रत्यावली ये दो अवशेष रहनेपर आगाल, प्रत्यागाल का और संज्वलन क्रोध की गुणश्रेणी निर्जरा का व्युच्छेद होता है । द्वितीयावली के द्रव्य को उदयावली में देनेरूप केवल उदीरणा ही पायी जाती है ।

संजलणचउक्काणं मासचउक्कं तु सेसपयडीणं ।
वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवंति णियमेण ।।२६९।।

संज्वलनचतुष्काणां मासचतुष्कं तु शेषप्रकृतीनाम् ।
वर्षाणां संख्येयसहस्राणि भवंति नियमेन ।।२६९।।

टीका – अपगतवेद के प्रथम समय से लेकर अंतर्मुहूर्त मात्र आयामवाले संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण होनेपर क्रोधत्रिक के उपशम काल के अंत समय में संज्वलन चतुष्क का स्थितिबंध चार मास *(महिने)* मात्र होता है । उसी अंत समय में अन्य कर्मों का पूर्व स्थितिबंध से संख्यातगुणा हीन ऐसा संख्यात हजार वर्ष मात्र पूर्वोक्त प्रकार से हीनाधिकपना सहित स्थितिबंध होता है ।

कोहदुगं संजलणगकोहे संछुहदि जाव पढमठिदी ।
आवलितियं तु उवरिं संछुहदि हु माणसंजलणे ।।२७०।।

क्रोधद्विकं संज्वलनक्रोधे संक्रामति यावत् प्रथमस्थितिः ।
आवलित्रिकं तु उपरि संक्रामति हि मानसंज्वलने ।।२७०।।

टीका – अपगतवेद के प्रथम समय से लेकर संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति में तीन आवली अवशेष रहे तब तक अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान क्रोधद्विक के द्रव्य को गुणसंक्रमण भागहार से ग्रहण कर संज्वलन क्रोध में संक्रमण कराते हैं । संक्रमणावली, उपशमावली और उच्छिष्टावली ये तीन आवली रहनेपर उनमें से संक्रमणावली के अंत समय तक उन दोनों के द्रव्य का संज्वलन मान में संक्रमण होता है ।

कोहस्स पढमठिदी आवलिसेसे तिकोहमुवसंतं ।
ण य णवकं तत्थंतिमबंधुदया होंति कोहस्स ।।२७१।।

क्रोधस्य प्रथमस्थितिः आवलिशेषं त्रिक्रोधमुपशांतम् ।
न च नवकं तत्रांतिमबंधोदया भवंति क्रोधस्य ।।२७१।।

टीका – संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति में उच्छिष्टावली अवशेष रहनेपर उपशमावली के अंत समय में एक समय कम दो आवली मात्र नवक समयप्रबद्ध बिना पूर्वोक्त प्रकार से चरमफालिरूप से समस्त संज्वलन क्रोध का द्रव्य अपनेरूप ही रहता हुआ उपशमित होता है । वहींपर संज्वलन क्रोध के बंध और उदय का व्युच्छेद होता है । उसी समय में उच्छिष्टावली का प्रथम निषेक संज्वलन मान में वक्ष्यमाण लक्षणरूप थिउक्क संक्रमण द्वारा संक्रमित होकर उदय को प्राप्त होता है । इसलिए संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति में एक समय कम उच्छिष्टावली अवशेष रही कहते हैं । इसतरह क्रोधत्रिक का उपशम होता है ।

से काले माणस्स य पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि ।
पढमट्ठिदिम्मि दव्वं असंखगुणियक्कमे देदि ।।२७२।।

तस्मिन् काले मानस्य च प्रथमस्थितिकारवेदको भवति ।
प्रथमस्थितौ द्रव्यं असंख्यगुणितक्रमेण ददाति ।।२७२।।

टीका – तीनों क्रोध का उपशम होने के अनंतर समय में यह संयमी संज्वलन मान की अंतर्मुहूर्त मात्र प्रथम स्थिति का कारक अर्थात् कर्ता और वेदक अर्थात् उदय का भोक्ता होता है । वह कहते हैं –

संज्वलन मान की प्रथम स्थिति के ऊपरवर्ती द्वितीय स्थिति के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग को ग्रहण कर उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग को उदयावली के प्रथम समय से लेकर यहां की हुयी प्रथम स्थिति के अंत समय तक के जो निषेक, उनमें **'प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिंड'** इत्यादि विधान से असंख्यातगुणा क्रम सहित निक्षेपण करता है । अवशेष बहुभाग को द्वितीय स्थिति में अंत के अतिस्थापनावली मात्र निषेक

छोड़कर अन्य सर्व निषेकों में **'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा'** इत्यादि विधान से विशेष घटते क्रम सहित निक्षेपण करता है । पुनश्च द्वितीयादि समयों में प्रथम समय में अपकर्षण किये हुये द्रव्य से असंख्यातगुणा क्रम सहित द्रव्य को ग्रहण कर पूर्वोक्त प्रकार से निक्षेपण करता है । प्रतिसमय उदय में आये हुये प्रथम स्थिति के एक-एक निषेक को भोगता है ।

पढमट्ठिदिसीसादो बिदियादिम्हि य असंखगुणहीणं ।
तत्तो विसेसहीणं जाव अइच्छावणमपत्तं ।।२७३।।

प्रथमस्थितिशीर्षत: द्वितीयादौ च असंख्यगुणहीनम् ।
ततो विशेषहीनं यावत् अतिस्थापनमप्राप्तम् ।।२७३।।

टीका – प्रथम स्थिति का शीर्ष अर्थात् अंत समय, उसमें निक्षेपण किये हुये द्रव्य से द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में निक्षेपण किया हुआ द्रव्य असंख्यातगुणा हीन होता है । क्योंकि – प्रथम स्थिति के शीर्ष में तो भागहार पल्य का असंख्यातवां भाग है, इसलिए असंख्यात समयप्रबद्ध मात्र द्रव्य का निक्षेपण होता है और द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में भागहार डेढ़ गुणहानि है, इसलिए समयप्रबद्ध के असंख्यातवें भाग मात्र का निक्षेपण होता है । द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक से ऊपर के निषेकों में विशेष घटते क्रम सहित जहां तक अतिस्थापनावली प्राप्त न हो, वहां तक द्रव्य का निक्षेपण होता है । पुनश्च संज्वलन मान की प्रथम स्थिति के प्रथम समय से लेकर तीन मान के द्वितीय स्थिति में स्थित द्रव्य को प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम सहित उपशमाता है । वहीं पर संज्वलन क्रोध के एक समय कम उच्छिष्टावली मात्र निषेक, अपनी समान स्थितिवाले संज्वलन मान के उदयावली के निषेकों में प्रतिसमय एक-एक निषेक के अनुक्रम से संक्रमणरूप होकर उसके अनंतरवर्ती समय में उदयरूप होते हैं । इसप्रकार जो संक्रमण होता है उसीका नाम थिउक्क संक्रमण है ।

माणस्स य पढमठिदी सेसे समयाहिया तु आवलियं ।
तियसंजलणगबंधो दुमास सेसाण कोह आलावो ।।२७४।।

मानस्य च प्रथमस्थितिः शेषे समयाधिकां तु आवलीकाम् ।
त्रिकसंज्वलनकबंधो द्विमासं शेषाणां क्रोध आलापः ।।२७४।।

टीका – संज्वलन मान की प्रथम स्थिति में समय अधिक आवली अवशेष रहनेपर संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण होने से मान के उपशम काल के अंत समय में संज्वलन मान, माया, लोभ का स्थितिबंध दो मास होता है । तथा अन्य कर्मों का पूर्व स्थितिबंध से संख्यातगुणा हीन है तथापि पूर्वोक्तवत् अल्पबहुत्व सहित संख्यात हजार वर्ष मात्र स्थितिबंध होता है ।

माणदुगं संजलणगमाणे संछुहदि जाव पढमठिदी ।
आवलितियं तु उवरिं मायासंजलणगे य संछुहदि ।।२७५।।

मानद्विकं संज्वलनकमाने संक्रामति यावत् प्रथमस्थितिः ।
आवलित्रयं तु उपरि मायासंज्वलनके च संक्रामति ।।२७५।।

टीका – संज्वलन मान की प्रथम स्थिति में तीन आवली अवशेष रहने के पहले अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान मानद्विक संज्वलन मान ही में पूर्वोक्त विधान से संक्रमण करते हैं । उसके पश्चात् संक्रमणावली के अंत समय तक उन मानद्विक का द्रव्य संज्वलन माया में संक्रमण करता है । संज्वलन मान का द्रव्य पहले और यहां नियम से संज्वलन माया ही में संक्रमण करता है ।

माणस्य य पढमठिदी आवलिसेसे तिमाणमुवसंतं ।
ण य णवकं तत्थंतिमबंधुदया होंति माणस्स ।।२७६।।

मानस्य च प्रथमस्थितौ आवलिशेषे त्रिमानमुपशांतं ।
न च नवकं तत्रांतिम बंधोदयौ भवतः मानस्य ।।२७६।।

टीका – संज्वलन मान की प्रथम स्थिति में आवली अवशेष रहनेपर उपशमावली के अंत समय में एक समय कम दो आवली मात्र नवक समयप्रबद्ध बिना अन्य समस्त तीनों मान का द्रव्य उपशमित हुआ, तभी उपशमावली के अंत समय में संज्वलन मान के बंध और उदय की व्युच्छित्ति हुयी । पूर्ववत् मानत्रिक का

उच्छिष्टावली का प्रथम निषेक *(संज्वलन)* माया में थिउक्क संक्रमण द्वारा संक्रमणरूप होकर उदय में आता है ।

से काले मायाए पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि ।
माणस्स य आलावो दव्वस्स विभंजणं तत्थ ।।२७७।।

तस्मिन् काले मायाया: प्रथमस्थितिकारवेदको भवति ।
मानस्य च आलापो द्रव्यस्य विभंजनं तत्र ।।२७७।।

टीका – तीनों मान के *(उपशम के)* अनंतर संज्वलन माया की प्रथम स्थिति का कारक और वेदक होता है । वहां संज्वलन माया के द्रव्य का अपकर्षण निक्षेपण का विभाग मान के द्रव्यवत् कहना । तभी संज्वलन मान के उच्छिष्टावली के निषेक थिउक्क संक्रमण के द्वारा संज्वलन माया के उदयावली के अपने समान स्थितिरूप निषेकों में संक्रमण करके उदय में आयेंगे । संज्वलन मान के एक समय कम दो आवली मात्र नवक समयप्रबद्ध, वे तभी एक समय कम दो आवली मात्र काल में उपशमित होते हैं ।

मायाए पढमठिदी सेसे समयाहियं तु आवलियं ।
मायालोहगबंधो मासं सेसाण कोह आलाओ ।।२७८।।

मायाया: प्रथमस्थितौ शेषे समयाधिकां तु आवलिकां ।
मायालोभगबंध: मासं शेषाणां क्रोध आलाप: ।।२७८।।

टीका – माया की प्रथम स्थिति में समय अधिक आवली अवशेष रहनेपर संज्वलन माया और लोभ का तो एक मास मात्र स्थितिबंध होता है और अन्य कर्मों का क्रोधवत् आलाप करना । पूर्वोक्त प्रकार से हीनाधिकपना सहित संख्यात हजार वर्ष मात्र स्थितिबंध है ।

मायदुगं संजलणगमायाए छुहदि जाव पढमठिदी ।
आवलितियं तु उवरिं संछुहदि हु लोहसंजलणे ।।२७९।।

मायाद्विकं संज्वलनगमायायां संक्रामति यावत् प्रथमस्थितिः ।
आवलित्रिकं तु उपरि संक्रामति हि लोभसंज्वलने ।।२७९।।

टीका – संज्वलन माया की प्रथम स्थिति में जब तक तीन आवली अवशेष रहती हैं, तब तक अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान मायाद्विक का द्रव्य संज्वलन माया में ही संक्रमण करता है । उसके पश्चात् संक्रमणावली में उनका द्रव्य संज्वलन लोभ में संक्रमण करता है ।

माया‌ए पढमठिदी आवलिसेसे त्ति मायमुवसंतं ।
ण य णवकं तत्थंतिम बंधुदया होंति माया‌ए ।।२८०।।

मायायाः प्रथमस्थितौ आवलिशेषे इति मायामुपशांतं ।
न च नवकं तत्रांतिमे बंधोदयौ भवतः मायायाः ।।२८०।।

टीका – माया की प्रथम स्थिति में एक आवली अवशेष रहनेपर उपशमनावली के अंत समय में एक समय कम दो आवली मात्र नवक समयप्रबद्ध बिना अन्य सर्व माया का द्रव्य उपशमित होता है । उसी समय उच्छिष्टावली का प्रथम निषेक संज्वलन लोभ के उदयावली के प्रथम निषेक में थिउक्क संक्रमण द्वारा संक्रमण करता है । उसी समय में संज्वलन माया के बंध और उदय की व्युच्छित्ति होती है ।

से काले लोहस्स य पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि ।
ते पुण बादरलोहो माणं वा होदि णिक्खेओ ।।२८१।।

स्वे काले लोभस्य च प्रथमस्थितिकारवेदको भवति ।
तत् पुनः बादरलोभः मानो वा भवति निक्षेपः ।।२८१।।

टीका – माया के उपशमने के अनंतर संज्वलन लोभ की प्रथम स्थिति का कारक और वेदक होता है । अनिवृत्तिकरण जीव बादर अर्थात् स्थूल लोभ को अनुभवता है, उसे बादरसाम्पराय कहते हैं । यहां संज्वलन लोभ के द्रव्य का अपकर्षण करके प्रथम स्थिति में निक्षेपण करता है । उसका विधान मान की प्रथम स्थिति में जैसे निक्षेपण किया था वैसे जानना । उसी समय संज्वलन माया के एक

समय कम दो आवली मात्र नवक समयप्रबद्धों को पूर्वोक्त प्रकार से उपशमाता है । एक समय कम उच्छिष्टावली मात्र माया के निषेकों का संज्वलन लोभ में थिउक्क संक्रमण होता है ।

पढमट्ठिदिअद्धंते लोहस्स य होदि दिणपुधत्तं तु ।
वस्ससहस्सपुधत्तं सेसाणं होदि ठिदिबंधो ।।२८२।।

प्रथमस्थित्यर्धांते लोभस्य च भवति दिनपृथक्त्वं तु ।
वर्षसहस्रपृथक्त्वं शेषाणां भवति स्थितिबंधः ।।२८२।।

टीका – माया उपशमन के अनंतर समय से लेकर अनिवृत्तिकरण के अंत समय तक बादरलोभ का वेदक काल है । उसके पश्चात् सूक्ष्मसाम्पराय के अंत समय तक सूक्ष्मलोभ का वेदक काल है । दोनों मिलानेपर लोभ का वेदक काल होता है । यह लोभवेदक काल अंतर्मुहूर्त मात्र है । उसको संख्यात का भाग देकर, एकभाग बिना बहुभाग को तीन का भाग देकर एक-एक समान भाग तीन जगह स्थापित करना । अवशेष एकभाग को संख्यात का भाग देकर बहुभाग को प्रथम समान भाग में मिलानेपर बादरलोभवेदक काल का प्रथम अर्ध *(आधा भाग)* होता है । पुनश्च अवशेष एकभाग को संख्यात का भाग देकर वहां बहुभाग दूसरे समान भाग में मिलानेपर बादरलोभवेदक काल का द्वितीय अर्ध होता है, यह सूक्ष्मकृष्टि करने का काल है ।

इन दोनों को मिलानेपर लोभवेदक काल के दो तीसरे *(दो तृतीयांश)* भाग से कुछ अधिक प्रमाण बादरलोभवेदक काल है । इससे एक आवली अधिक बादरलोभ की प्रथम स्थिति है । लोभवेदक काल के तीसरे भाग से कुछ अधिक प्रमाण बादरलोभवेदक काल का प्रथम अर्ध है । इसे अर्थसंदृष्टि द्वारा प्रकट जानते हैं ।

जो एकभाग अवशेष रहा था उसको तीसरे समान भाग में मिलानेपर सूक्ष्मकृष्टि का वेदक काल है, वही सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान का काल जानना । यहां बादरलोभवेदक काल के प्रथम अर्ध के अंत समय में स्थितिबंध संज्वलन लोभ का तो पृथक्त्व दिन प्रमाण और अन्य कर्मों का पूर्वोक्त क्रम सहित पृथक्त्व

हजार वर्ष प्रमाण होता है ।

बिदियद्धे लोभावरफड्डयहेट्ठा करेदि रसकिट्टिं।
इगिफड्डयवग्गणगद संखाणमणंत भागमिदं ।।२८३।।

द्वितीयार्धे लोभावरस्पर्धकाधस्तनां करोति रसकृष्टिम् ।
एकस्पर्धकवर्गणागतं संख्यानामनंत भागमिदम् ।।२८३।।

टीका – संज्वलन लोभ की प्रथम स्थिति के प्रथम अर्ध को पूर्वोक्त प्रकार से व्यतीत करके द्वितीयार्ध के प्रथम समय में संज्वलन लोभ के अनुभागसत्त्व में अपकर्षण द्वारा सूक्ष्मकृष्टि करता है । उसका विधान कहते हैं –

संज्वलन लोभ के अनुभागसत्त्व में जघन्य अनुभाग सहित जो परमाणु, उसमें अनुभाग के अविभागप्रतिच्छेद जीवराशि से अनंतगुणा हैं । इसको जघन्य वर्ग कहते हैं । इतने-इतने अविभागप्रतिच्छेद सहित जितने कर्म परमाणुरूप वर्ग पाये जाते हैं उनके समूह का नाम प्रथम वर्गणा है । संज्वलन लोभ के सत्तारूप सर्व परमाणुओं को अनुभाग संबंधी कुछ अधिक डेढ़ गुणहानि का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उतने प्रथम वर्गणा में परमाणु हैं । इसको अनुभाग संबंधी दोगुणहानि का भाग देनेपर विशेष *(चय)* का प्रमाण आता है । विशेष को दोगुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम वर्गणा में परमाणुओं का प्रमाण आता है । इस प्रथम वर्गणा को साधिक डेढ़ गुणहानि से गुणा करनेपर संज्वलन लोभ के सर्व सत्त्वद्रव्य का प्रमाण आता है । इसमें से द्रव्य को अपकर्षण करके अनुभाग की सूक्ष्मकृष्टि करता है । जघन्य स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में लता समान अविभागप्रतिच्छेद हैं, उनके नीचे उनसे भी अनंतगुणा हीन अनुभाग के अविभागप्रतिच्छेदरूप सूक्ष्मकृष्टि होती है । एक स्पर्धक में जो वर्गणाओं का प्रमाण है उसके अनंतवें भागप्रमाण उन सूक्ष्मकृष्टियों का प्रमाण जानना । इससे पहले अंतर्मुहूर्त काल में निष्पन्न हो ऐसा अनुभागकांडकघात होता था, उसके बिना अब प्रतिसमय कृष्टिघात करने का प्रारंभ करता है ऐसा अर्थ जानना ।

उक्कट्टिदइगिभागं पल्लासंखेज्जखंडिदिगिभागं ।
देदि सुहुमासु किट्टिसु फड्डयगे सेसबहुभागं ।।२८४।।

अपकर्षितैकभागं पल्यासंख्येयखंडितैकभागं ।
ददाति सूक्ष्मासु कृष्टिषु स्पर्धके शेषे बहुभागम् ।।२८४।।

टीका – संज्वलन लोभ के सर्व सत्त्वरूप द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग मात्र द्रव्य का ग्रहण कर उसको पुन: पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर, वहां बहुभाग को जुदा रखकर एकभाग मात्र द्रव्य को सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणमाता है । वहां **'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे'** इत्यादि विधान से उस एकभाग मात्र द्रव्य को कृष्टियों के प्रमाणरूप जो कृष्टिआयाम उसका भाग देनेपर मध्यधन आता है । इसको एक कम कृष्टिआयाम के आधे से हीन जो दोगुणहानि, उसका भाग देनेपर चय का प्रमाण आता है । इसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर आदि वर्गणा का द्रव्य आता है । इतने द्रव्य को तो प्रथम कृष्टि में निक्षेपण करता है अर्थात् इसके द्वारा प्रथम कृष्टि उत्पन्न होती है । यही प्रथम समय में की हुयी कृष्टियों में जघन्य कृष्टि है । इससे द्वितीयादि कृष्टियों में एक-एक चय प्रमाण घटता द्रव्य निक्षेपण करता है । इसतरह एक कम कृष्टिआयाम मात्र चय से हीन प्रथम कृष्टि मात्र द्रव्य को अंत कृष्टि में निक्षेपण करता है । अब इनमें शक्ति का प्रमाण कहते हैं –

पूर्वस्पर्धकों के जघन्य वर्ग में अनुभाग के अविभागप्रतिच्छेदों का जो प्रमाण है उसको कृष्टिआयाम का जो प्रमाण है उतनी बार अनंत का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उतने प्रथम कृष्टि में अनुभाग के अविभागप्रतिच्छेद हैं । द्वितीयादि कृष्टियों में क्रम से अनंतगुणा हैं । एक कम कृष्टिआयाम मात्र बार अनंत से गुणा करनेपर अंत कृष्टि में वे अविभागप्रतिच्छेद पूर्वस्पर्धक के जघन्य वर्ग के अनंतवें भाग मात्र हैं । इसतरह प्रथम समय में की हुयी सूक्ष्मकृष्टि होती है ।

पुनश्च अपकर्षण किये हुये द्रव्य में से बहुभाग जुदे स्थापित किये थे, उनके द्रव्य को पूर्व सत्तारूप पाये जाते हैं ऐसे पूर्वस्पर्धक, उन संबंधी नानागुणहानियों में निक्षेपण करता है । वहां **'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा'** इत्यादि विधान से उस बहुभाग द्रव्य को अनुभाग संबंधी साधिक डेढ़ गुणहानि का भाग देनेपर जो द्रव्य आता है उसको प्रथम गुणहानि के प्रथम वर्गणा में निक्षेपण करता है । द्वितीयादि वर्गणाओं में एक-एक चय घटते क्रम सहित निक्षेपण करता है । द्वितीयादि गुणहानियों

की वर्गणाओं में क्रम से पूर्व गुणहानि से आधा-आधा द्रव्य निक्षेपण करता है । इसतरह सूक्ष्मकृष्टिकरण काल के प्रथम समय में अपकर्षण किये हुये द्रव्य का निक्षेपण करता है । यहां अंत कृष्टि में निक्षेपण किये द्रव्य से पूर्वस्पर्धक की जघन्य वर्गणा में निक्षेपण किया द्रव्य अनंतगुणा हीन जानना ।

अब कृष्टि शब्द का अर्थ कहते हैं –

कृश तनू करणे इस धातु से **'कर्षणं कृष्टिः'** अर्थात् कर्म परमाणुओं के अनुभाग शक्ति का घटाना, उसका नाम कृष्टि है । अथवा **'कृश्यत इति कृष्टिः'** प्रतिसमय पूर्वस्पर्धक की जर्घन्य वर्गणा से भी अनंतगुणा हीन अनुभागरूप जो वर्गणा, उसका नाम कृष्टि है ।

पडिसमयमसंखगुणा दव्वादु असंखगुणविहीणकमे ।
पुव्वगहेट्ठा हेट्ठा करेदि किट्टिं स चरिमो त्ति ।।२८५।।

प्रतिसमयमसंख्यगुणा द्रव्यात् असंख्यगुणविहीनक्रमेण ।
पूर्वगाधस्तनां अधस्तनां करोति कृष्टिं स चरमे इति ।।२८५।।

टीका – कृष्टिकरण काल के द्वितीय समय से लेकर अंत समय तक पूर्व समय में जितना द्रव्य अपकर्षण किया उससे असंख्यातगुणा द्रव्य को संज्वलन लोभ के पूर्वस्पर्धकरूप सत्त्वद्रव्य से ग्रहण करके अपूर्वकृष्टि करता है, यहां पूर्व समयों में हुयी उसे पूर्वकृष्टि कहते हैं । विवक्षित समय में नवीन कृष्टि हुयी, उसे अपूर्वकृष्टि कहते हैं । पूर्व-पूर्व समयों में की हुयी कृष्टियों के प्रमाण से उत्तर-उत्तर समयों में की हुयी कृष्टियों का प्रमाण क्रम से असंख्यातगुणा घटता है और अनुभाग अनंतगुणा घटता है । वहां कृष्टिकरण काल के दूसरे समय में, प्रथम समय में अपकर्षित द्रव्य से असंख्यातगुणा द्रव्य को संज्वलन लोभ के सर्व सत्त्वद्रव्य से अपकर्षण करके उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग तो पूर्वस्पर्धकों में निक्षेपण करता है । अवशेष एकभाग में से कुछ द्रव्य को प्रथम समय में की हुयी जघन्य कृष्टि के नीचे अनंतगुणा हीन अनुभागवाली अपूर्वकृष्टिरूप परिणमाता है । अवशेष द्रव्य को प्रथम समय में की हुयी कृष्टियोंरूप परिणमाता है ।

हेट्ठासीसे उभयग दव्वविसेसे य हेट्ठकिट्टिम्मि ।
मज्झिमखंडे दव्वं विभज्ज बिदियादिसमयेसु ।।२८६।।

अधस्तनशीर्षे उभयगद्रव्यविशेषे च अधस्तनकृष्टौ ।
मध्यमखंडे द्रव्यं विभज्य द्वितीयादिसमयेषु ।।२८६।।

टीका – कृष्टिकरण काल के दूसरे समय में अपकर्षण किये हुये द्रव्य को (१) अध:स्तनशीर्षविशेषों में, (२) उभयद्रव्यविशेषों में, (३) अध:स्तनकृष्टियों में और (४) मध्यमखंडों में चार प्रकार से विभाग करके निक्षेपण करता है । वही कहते हैं –

पूर्व समय में की हुयी कृष्टियों में से प्रथम कृष्टि में तो बहुत परमाणु हैं और द्वितीयादि कृष्टियों में एक-एक चय घटते क्रम सहित हैं । वहां पूर्वकृष्टि में पाये जानेवाला चय का प्रमाण लाकर द्वितीय कृष्टि में एक चय, तृतीय कृष्टि में दो चय इस क्रम से एक-एक बढ़ते चय प्रमाण परमाणु उन द्वितीयादि कृष्टियों में मिलानेपर सर्व कृष्टियां प्रथम कृष्टि के समान होती हैं, सो जितना द्रव्य दिया उसका नाम अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य है । इसको देनेपर सर्व पूर्वकृष्टि प्रथम कृष्टि के समान होती हैं । यहां इस द्रव्य का प्रमाण लाते हैं –

पूर्व समय में जो कृष्टि में द्रव्य दिया उसको पूर्व समय में की हुयी कृष्टि प्रमाण मात्र जो गच्छ, उसका भाग देनेपर मध्यधन आता है । उसको एक कम गच्छ के आधे प्रमाण से हीन जो दोगुणहानि, उसका भाग देनेपर चय अर्थात् विशेष का प्रमाण आता है । वहां एक चय को आदि में स्थापित करना क्योंकि द्वितीय कृष्टि में एक चय देना है । एक चय उत्तर स्थापित करना, क्योंकि तृतीयादि कृष्टियों में एक-एक चय बढ़ता देना है । एक कम पूर्वकृष्टि प्रमाण गच्छ स्थापित करना, क्योंकि प्रथम कृष्टि में चय नहीं मिलाना है । इसतरह स्थापित कर **'पदमेगेण विहीणं'** इत्यादि श्रेणी व्यवहाररूप गणित सूत्र द्वारा एक कम गच्छ को दो का भाग देकर उसको उत्तर अर्थात् एक चय से गुणा करके उसमें प्रभव जो आदि एक चय को मिलाकर पुन: गच्छ से गुणा करनेपर चयधन आता है ।

अंकसंदृष्टि से जैसे एक कम कृष्टि प्रमाण गच्छ-सात, उसमें से एक घटानेपर छह, उसको दो का भाग देनेपर तीन, उसको चय का प्रमाण सोलह से गुणा करनेपर अड़तालीस, उसमें प्रभव जो एक चय सोलह मिलानेपर चौंसठ, उसको गच्छ सात से गुणा करनेपर चार सौ अड़तालीस चयधन आता है । ऐसे विधान से जो प्रमाण आता है उतना अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य जानना ।

पुनश्च जो पूर्वकृष्टियों में प्रथम कृष्टि का प्रमाण था उसीके समान प्रमाणवाली जो विवक्षित समय में अपूर्वकृष्टियां बनायी उनमें समान प्रमाण सहित समपट्टिकारूप द्रव्य देना । उसका नाम अधस्तनकृष्टि द्रव्य है । इस द्रव्य को देनेपर अपूर्वकृष्टि प्रथम पूर्वकृष्टि के समान होती है । इसका प्रमाण लाते हैं –

पूर्वोक्त पूर्वकृष्टि संबंधी चय को दोगुणहानि से गुणा करनेपर पूर्वकृष्टियों में प्रथम कृष्टि के द्रव्य का प्रमाण आता है । एक कृष्टि का इतना द्रव्य होता है तो सर्व अपूर्वकृष्टियों का कितना होता है ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर उस प्रथम पूर्वकृष्टि के द्रव्य को सर्व अपूर्वकृष्टियों के प्रमाण से गुणा करनेपर अधस्तनकृष्टि द्रव्य का प्रमाण आता है ।

[***विशेषार्थ*** – *दूसरे समय में जो कृष्टि की जाती है उसे अपूर्वकृष्टि कहते हैं, उस समय पहले की हुयी कृष्टि पूर्वकृष्टि कहलाती है ।*

१ – अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य

२ – उभयद्रव्यविशेष द्रव्य

३ – मध्यमखंड द्रव्य]

यहां प्रथम समय में की हुयी कृष्टियों के प्रमाण को असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहार का भाग देनेपर द्वितीय समय में की हुयी कृष्टियों का प्रमाण आता है ऐसा जानना । पूर्वोक्त अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य और अधस्तनकृष्टि द्रव्य देनेपर सर्व पूर्व-अपूर्व कृष्टियां समान प्रमाणवाली हुयी । वहां अपूर्वकृष्टियों की प्रथम *(नीचे की)* कृष्टि से लेकर ऊपर-ऊपर अपूर्वकृष्टियां स्थापित करके उनके ऊपर प्रथमादि *(नीचे से ऊपर अंत तक)* पूर्वकृष्टियां स्थापित करके उनको चय घटते क्रमरूप एक गोपुच्छ

करने के लिये सर्व कृष्टियों संबंधी पाये जानेवाले चय का प्रमाण लाकर अंत की पूर्वकृष्टि में एक चय, उसके नीचे उपांत पूर्वकृष्टि में दो चय इस क्रम से एक-एक चय बढ़ाते हुये प्रथम अपूर्वकृष्टि तक द्रव्य देना । इसका नाम उभयद्रव्यविशेष है *(विशेषार्थ में देखना)* । इसको देनेपर सर्व पूर्व-अपूर्व कृष्टियों का चय घटते क्रमरूप एक गोपुच्छ होता है । इसका प्रमाण लाते हैं –

पूर्व समयों में जो कृष्टियों में दिया हुआ द्रव्य था और इस विवक्षित समय में जो कृष्टियों में देने योग्य द्रव्य है इन दोनों को मिलानेपर जो द्रव्य का प्रमाण हुआ उसको पूर्वकृष्टियों और अपूर्वकृष्टियों के प्रमाण को मिलाकर जो गच्छ हुआ उसका भाग देनेपर मध्यधन आता है । उसको एक कम गच्छ के आधे प्रमाण से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर यहां के एक चय अर्थात् विशेष का प्रमाण आता है । एक चय आदि स्थापित कर और एक चय उत्तर स्थापित कर पूर्व-अपूर्व कृष्टियों प्रमाण गच्छ स्थापित कर **'पदमेगेण विहीणं'** इत्यादि सूत्र के अनुसार एक कम गच्छ के आधे को चय से गुणा करके उसमें चय मिलाकर उसको गच्छ से गुणा करनेपर सर्व उभयद्रव्यविशेष द्रव्य होता है । पुनश्च विवक्षित समय में कृष्टिरूप परिणमावने योग्य जो द्रव्य अपकर्षित किया उसमें से पूर्वोक्त अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य, अधस्तनकृष्टि द्रव्य और उभयद्रव्यविशेष द्रव्य घटानेपर अवशेष रहे द्रव्य को सर्व पूर्व-अपूर्व कृष्टियों में समान भाग करके देना । इसका नाम मध्यमखंड द्रव्य है । इसको देनेपर उस अपकर्षण द्रव्य की तो समाप्ति होती है और सर्व पूर्व-अपूर्व कृष्टियों में चय घटता क्रम रूप जैसा का वैसा रहता है । इसका प्रमाण लाते हैं –

विवक्षित समय में अपकर्षित किये हुये द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र द्रव्य कृष्टियों में देने योग्य है । उसमें से पूर्वोक्त तीन प्रकार के द्रव्य घटानेपर किंचित् कम हुआ । इतना द्रव्य सर्व कृष्टियों में देते हैं तो एक कृष्टि में कितना देते हैं ? ऐसा त्रैराशिक करके उस द्रव्य को पूर्व-अपूर्व कृष्टियों के प्रमाण का भाग देनेपर एक कृष्टि में देने योग्य एक खंड का प्रमाण आता है । इसको सर्व कृष्टियों के प्रमाण से गुणा करनेपर सर्व मध्यमखंड द्रव्य का प्रमाण आता है । इसप्रकार यहां विवक्षित द्वितीय समय में कृष्टिरूप होने योग्य द्रव्य में बुद्धिकल्पना से वे अधस्तनशीर्षविशेष आदि चार प्रकार के द्रव्य जुदे

स्थापित किये । ऐसे ही यहां तृतीयादि समयों में कृष्टिरूप होने योग्य द्रव्य में विधान जानना । तथा आगे क्षपकश्रेणी के वर्णन में अपूर्वस्पर्धकों, बादरकृष्टियों और सूक्ष्मकृष्टियों का वर्णन करते समय ऐसे विधान कहेंगे, वहां ऐसा ही अर्थ समझना । विशेष होगा वहां विशेष जान लेना ।

यहां संदृष्टि द्वारा चय घटते क्रम सहित पूर्वकृष्टियों की रचना ऐसी –

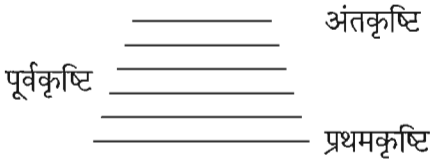

इसमें अधनस्तनशीर्ष द्रव्य मिलानेपर समानरूप पूर्वकृष्टियों की रचना ऐसी –

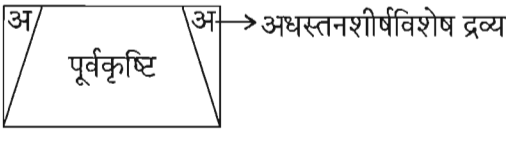

इसके नीचे अधस्तनकृष्टि द्रव्य द्वारा अपूर्वकृष्टि की समपट्टिका रचना ऐसी –

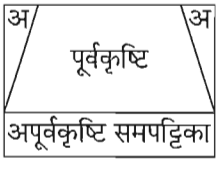

यहां उभयद्रव्यविशेष द्रव्य निक्षेपण करनेपर गोपुच्छ की रचना ऐसी होती है –

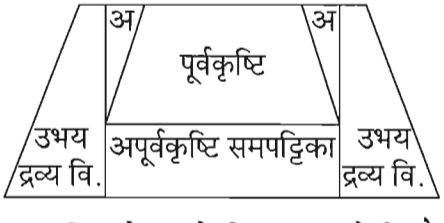

इसमें मध्यमखंड द्रव्य मिलानेपर ऐसी रचना होती है –

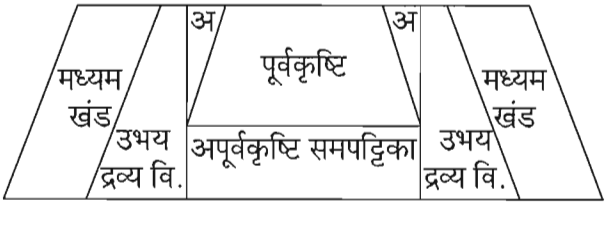

इसप्रकार द्रव्य देने का विधान जानना । यद्यपि द्रव्य तो युगपत् जितना देने योग्य है उतना देते हैं तथापि समझने के लिये जुदा-जुदा विभाग करके वर्णन किया है ।

हेट्ठासीसं थोवं उभयविसेसे तदो असंखगुणं ।
हेट्ठा अणंतगुणिदं मज्झिमखंडं असंखगुणं ।।२८७।।

अधस्तनशीर्षं स्तोकं उभयविशेषे ततोऽसंख्यगुणं ।
अधस्तनमनंतगुणितं मध्यमखंडं असंख्यगुणम् ।।२८७।।

टीका – इन कहे हुये चारों द्रव्य में से अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य सबसे अल्प है । इससे उभयद्रव्यविशेष द्रव्य असंख्यातगुणा है । इससे अधस्तनकृष्टि द्रव्य अनंतगुणा है । इससे मध्यमखंड द्रव्य असंख्यातगुणा है ऐसा जानना ।

अवरे बहुगं देदि हु विसेसहीणक्कमेण चरिमो त्ति ।
तत्तो णंतगुणूणं विसेसहीणं तु फड्डयगे ।।२८८।।

अवरस्मिन् बहुकं ददाति हि विशेषहीनक्रमेण चरमे इति ।
ततोऽनंतगुणोनं विशेषहीनं तु स्पर्धके ।।२८८।।

टीका – दूसरे समय में की हुयी अपूर्वकृष्टियों में से जघन्य *(प्रथम-नीचे की)* कृष्टि में तो द्रव्य बहुत दिया जाता है और द्वितीय अपूर्वकृष्टि से लेकर अपूर्वकृष्टियों के अंत कृष्टि तक चय घटते क्रम से निक्षेपण करता है । उससे पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में निक्षेपण किया हुआ द्रव्य अनंतगुणा घटता है । उसके ऊपर द्वितीयादि वर्गणाओं में अर्थात् नानागुणहानि संबंधी अंत गुणहानि की अंत वर्गणा तक वर्गणायें हैं उनमें अपनी-अपनी गुणहानि में पाये जानेवाले चय से घटते क्रम से निक्षेपण करता है । उसको यहां विशेष करके दिखाते हैं –

वहां द्वितीय समय में अपकर्षण किये हुये द्रव्य में से जो कृष्टि संबंधी द्रव्य है, उसको पूर्व-अपूर्व कृष्टियों में निक्षेपण करने का विधान श्री माधवचंद्र गुरु के अनुसार कहते हैं – द्वितीय समय में की हुयी जो अपूर्वकृष्टि हैं, उनमें

अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य तो नहीं दिया जाता, परंतु अवशेष तीन द्रव्य निक्षेपण करता है । वहां अधस्तनकृष्टि द्रव्य से *(अपूर्वकृष्टिसमपट्टिका में से)* एक कृष्टि के द्रव्य को, मध्यमखंड द्रव्य से एक खंड के द्रव्य को और उभयविशेष द्रव्य से पूर्व-अपूर्व कृष्टियों को मिलाकर जो प्रमाण होता है उतने मात्र चयों के द्रव्य को *(यहां नीचे की प्रथम कृष्टि में पूर्व-अपूर्व कृष्टियों प्रमाण जो गच्छ है उतने चयों को मिलाते हैं)* ग्रहण कर जघन्य कृष्टि में निक्षेपण करता है । इसलिए जघन्य कृष्टि में दिया हुआ द्रव्य बहुत जानना ।

उसके ऊपर अधस्तनकृष्टि द्रव्य से एक-एक कृष्टि द्रव्य को, मध्यमखंड द्रव्य से एक-एक खंड द्रव्य को और उभयद्रव्यविशेष द्रव्य से पूर्व-अपूर्व कृष्टियों के प्रमाण से क्रम से एक-एक घटते प्रमाण मात्र चयों के द्रव्य को ग्रहण कर अनुक्रम से द्वितीयादि अपूर्वकृष्टियों में निक्षेपण करता है । वहां अंत कृष्टि *(अपूर्वकृष्टियों में से अंत कृष्टि)* में एक कृष्टि द्रव्य को *(अधस्तनकृष्टि द्रव्य में से एक कृष्टि द्रव्य को)*, एक मध्यमखंड द्रव्य को *(मध्यमखंड द्रव्य में से एक कृष्टि संबंधी एक खंड द्रव्य को)* और एक अधिक पूर्वकृष्टियों के प्रमाण मात्र चयों के द्रव्य को निक्षेपण करता है । यहां प्रथमादि कृष्टियों से द्वितीयादि कृष्टियों में दिया हुआ द्रव्य एक-एक उभयद्रव्यविशेष मात्र घटता जानना । यहां अधस्तनकृष्टि का द्रव्य समाप्त हुआ । इसतरह तीन द्रव्य का स्थापन कहा । इसप्रकार इतने-इतने द्रव्य से यहां अपूर्वकृष्टियां उत्पन्न हुयी ।

पुनश्च प्रथम समय में की हुयी पूर्वकृष्टियों में से जो जघन्य *(नीचे की प्रथम)* कृष्टि है, उसमें दो ही द्रव्य का निक्षेपण होता है – मध्यमखंड द्रव्य से एक खंड के द्रव्य को और उभयद्रव्यविशेष द्रव्य से पूर्वकृष्टियों के प्रमाण मात्र चयों के द्रव्य को ग्रहण करके निक्षेपण करता है । ये द्रव्य अपूर्वकृष्टियों के अंत कृष्टि में निक्षेपण किये द्रव्य के *(क्रम से)* असंख्यातवें भाग से हीन और अनंतवें भाग से हीन जानना, क्योंकि द्वितीय समय में अपकर्षण किये हुये द्रव्य से, असंख्यातवें भाग मात्र अधस्तनकृष्टि के एक कृष्टि के द्रव्य और सर्वद्रव्य के अनंतवें भागमात्र जो उभयद्रव्यविशेष का चय इनसे हीन द्रव्य यहां निक्षेपण किया है ।

[*विशेषार्थ – अपूर्वकृष्टियों में तो नयी कृष्टियां बनाने के लिये समपट्टिका द्रव्य दिया था, यहां पूर्वकृष्टियों में तो कृष्टियां बन चुकी हैं उसमें द्रव्य देने का सवाल नहीं आता । दूसरी बात यह है कि पूर्वकृष्टियों में से प्रथम कृष्टि में द्वितीय समय में तो अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य दिया नहीं जाता, द्वितीय कृष्टि से दिया जायेगा ।*]

पुनश्च द्वितीयादि पूर्वकृष्टियों में अधस्तनशीर्षविशेष सहित तीन द्रव्य का निक्षेपण होता है । वहां द्वितीय पूर्वकृष्टि में अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य में से एक चय प्रमाण द्रव्य को *(क्योंकि ऊपर-ऊपर एक-एक चय से बढ़ता द्रव्य दिया जाता है ।)*, मध्यमखंड द्रव्य में से एक खंड के द्रव्य को, उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से एक कम पूर्वकृष्टियों के प्रमाण मात्र चयों के द्रव्य को ग्रहण करके निक्षेपण करता है । पुनश्च तृतीयादि पूर्वकृष्टियों में अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य में से दो, तीन आदि क्रम से एक-एक बढ़ते चय के द्रव्य को, मध्यमखंड द्रव्य में से एक-एक खंड के द्रव्य को और उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से दो, तीन आदि क्रम से घटते पूर्वकृष्टि प्रमाण मात्र चयों के द्रव्य को ग्रहण कर क्रम से निक्षेपण करता है ।

वहां पूर्वकृष्टियों की अंत कृष्टि में अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य में से एक कम पूर्वकृष्टियों के प्रमाण मात्र चयों के द्रव्य को, मध्यमखंड द्रव्य में से एक खंड द्रव्य को और उभयद्रव्यविशेष द्रव्य से एक चय प्रमाण द्रव्य को ग्रहण करके निक्षेपण करता है । यहां प्रथमादि कृष्टियों में दिये हुये द्रव्य से द्वितीयादि कृष्टियों में दिया हुआ द्रव्य उभयद्रव्यविशेष द्रव्य के अनंतवें भाग मात्र जो अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य उससे हीन उभयद्रव्यविशेष द्रव्य मात्र जानना । इसप्रकार पूर्वकृष्टियां थी, उनमें इतना द्रव्य और मिलाया । इसप्रकार दिये हुये द्रव्य का निक्षेपण करनेपर प्रथम और द्वितीय समय में की हुयी कृष्टियों का सर्व ही द्रव्य एक गोपुच्छाकार होता है । जैसे गाय की पूंछ क्रम से घटती हुयी होती है वैसे क्रम से घटते द्रव्य प्रमाण *(यह रचना)* होती है ।

अर्थसंदृष्टि द्वारा विचार करनेपर यह प्रकट जानते हैं । उसे संस्कृत टीका से जानना । बहुभाग मात्र पूर्वस्पर्धकों में देने योग्य द्रव्य था उसको **'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा'** इत्यादि विधान से प्रथमादि वर्गणाओं में चय घटते क्रम से देता है । वहां

अंत कृष्टि में दिये हुये द्रव्य से प्रथम वर्गणा में दिया हुआ द्रव्य अनंतवें भाग मात्र है, क्योंकि यहां भागहार डेढ़ गुणहानि है । इसप्रकार इस गाथा का अर्थ जानना ।

णवरि असंखाणंतिमभागूणं पुव्वकिट्टिसंधीसु ।
हेट्ठिमखंडपमाणेणेव विसेसेण हीणादो ।।२८९।।

नवरि असंख्यानामंतिमभागोनं पूर्वकृष्टिसंधिषु ।
अधस्तनखंडप्रमाणेनैव विशेषेण हीनात् ।।२८९।।

टीका – इतना विशेष है कि पूर्व-अपूर्व कृष्टियों की संधियों में अपूर्वकृष्टियों की अंत कृष्टि में निक्षेपण किये हुये द्रव्य से पूर्वकृष्टियों की प्रथम कृष्टि में निक्षेपण किया हुआ द्रव्य असंख्यातवें भाग से और अनंतवें भाग से हीन हैं, क्योंकि वह एक अधस्तनकृष्टि के द्रव्य और एक उभयद्रव्यविशेष से हीन होता है । इसका कथन पहले किया ही है ।

अवरादो चरिमेत्ति य अणंतगुणिदक्कमादु सत्तीदो ।
इदि किट्टीकरणद्धा बादरलोहस्स बिदियद्धं ।।२९०।।

अवरस्मात् चरम इति च अनंतगुणितक्रमात् शक्तितः ।
इति कृष्टिकरणाद्धा बादरलोभस्य द्वितीयार्धम् ।।२९०।।

टीका – अपूर्वकृष्टियों के जघन्य कृष्टि के अनुभाग के अविभागप्रतिच्छेदों से द्वितीयादि पूर्वकृष्टियों की अंत कृष्टि तक के अविभागप्रतिच्छेद क्रम से अनंत-अनंतगुणा हैं । वहां पूर्वकृष्टियों के अंत कृष्टि में एक कम पूर्व-अपूर्व कृष्टियों का जो प्रमाण उतनी बार अनंत का गुणकार है । इसतरह द्वितीय समय में विधान किया । पुनश्च जिसतरह द्वितीय समय में विधान कहा, उसीतरह कृष्टिकरण काल के तृतीय से लेकर अंत समय तक के समयों में क्रम से असंख्यातगुणा द्रव्य को अपकर्षण करके पूर्वोक्त प्रकार से निक्षेपण करता है । इसप्रकार बादरलोभवेदक काल के द्वितीय अर्ध मात्र रूप सूक्ष्मकृष्टि करने का काल व्यतीत होता है । *(बादरलोभवेदक काल का द्वितीय अर्ध मात्र काल सूक्ष्मकृष्टिकरण काल है ।)* जैसे

क्षपकश्रेणी में पूर्व-अपूर्वस्पर्धकों के सर्व ही द्रव्य को अपकर्षण करके कृष्टि करता है, वैसे उपशमश्रेणी में भी कृष्टि करता है । परंतु विशेष इतना है कि यहां पूर्वस्पर्धक के असंख्यातवें भागमात्र ही द्रव्य का ग्रहण कर सूक्ष्मकृष्टि करता है, अवशेष द्रव्य अपने स्वरूपरूप ही रहता हुआ उपशमित होता है ।

बिदियद्धा संखेज्जा भागेसु गदेसु लोभठिदिबंधो ।
अंतोमुहुत्तमेत्तं दिवसपुधत्तं तिघादीणं ।।२९१।।

द्वितीयाद्धा संख्येयभागेषु गतेषु लोभस्थितिबंधः ।
अंतर्मुहूर्तमात्रं दिवसपृथक्त्वं त्रिघातिनाम् ।।२९१।।

टीका – संज्वलन लोभ की प्रथम स्थिति का द्वितीय अर्ध मात्र जो कृष्टिकरण काल, उसको संख्यात का भाग देकर वहां बहुभाग व्यतीत होनेपर अंत ~~समय~~ में संज्वलन लोभ का अंतर्मुहूर्त मात्र और तीन घातिकर्मों का पृथक्त्व दिन मात्र स्थितिबंध होता है ।

किट्टीकरणद्धाए जाव दुचरिमं तु होदि ठिदिबंधो ।
वस्साणं संखेज्जसहस्साणि अघादिठिदिबंधो ।।२९२।।

कृष्टिकरणाद्धाया यावत् द्विचरमं तु भवति स्थितिबंधः ।
वर्षाणां संख्येयसहस्राणि अघातिस्थितिबंधः ।।२९२।।

टीका – कृष्टिकरण काल का जब तक द्विचरम ~~समय~~ स्थितिबंध प्राप्त हो तब तक तीन अघातिकर्मों का स्थितिबंध यथासंभव संख्यात हजार वर्ष मात्र है । तथा संज्वलन लोभादि का भी स्थितिबंध उस द्विचरम ~~समय~~ स्थितिबंध तक पूर्वोक्त प्रमाण सहित समानरूप ही जानना ।

किट्टीयद्धाचरिमे लोभस्संतोमुहुत्तियं बंधो ।
दिवसंतो घादीणं बेवस्संतो अघादीणं ।।२९३।।

कृष्ट्यद्धाचरमे लोभस्यांतर्मुहूर्तकं बंधः ।
दिवसांतः घातिनां द्विवर्षंतोऽघातिनाम् ।।२९३।।

टीका – कृष्टिकरण काल के अंत समय में पूर्व स्थितिबंध से संख्यातगुणा हीन संज्वलन लोभ का अंतर्मुहूर्त मात्र और तीन घातिकर्मों का दिवसांत अर्थात् एक दिन से कुछ कम और तीन अघातिकर्मों का द्विवर्षांत अर्थात् दो वर्षों से कुछ कम स्थितिबंध होता है । ये जो उपशमक अनिवृत्तिकरण के अंत समय में स्थितिबंध कहे, वे क्षपक अनिवृत्तिकरण के अंत समय के स्थितिबंध से दोगुणा हैं ।

बिदियद्धा परिसेसे समऊणावलितियेसु लोभदुगं ।
सट्ठाणे उवसमदि हु ण देदि संजलणलोहम्मि ।।२९४।।

द्वितीयार्धे परिशेषे समयोनावलित्रिकेषु लोभद्विकम् ।
स्वस्थाने उपशाम्यति हि न ददाति संज्वलनलोभे ।।२९४।।

टीका – संज्वलन लोभ की प्रथम स्थिति के द्वितीयार्ध में से एक समय कम तीन आवली अवशेष रहनेपर अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान लोभ संज्वलन लोभ में संक्रमण नहीं करता, क्योंकि संक्रमणावली के प्रथम समय में ही इस संक्रमण का विश्राम हुआ । तो क्या होता है ? उन दो लोभ का द्रव्य स्वस्थान अर्थात् अपने रूप ही में रहते हुये उपशमित होता है । संक्रमणावली व्यतीत होकर वहां दो आवली अवशेष रहनेपर आगाल-प्रत्यागाल की भी व्युच्छित्ति हुयी । प्रत्यावली अर्थात् द्वितीयावली के अंत समय तक उदीरणा होती है । इनका स्वरूप पहले कहा है वैसा जानना ।

बादरलोभादिठिदी आवलिसेसे तिलोहमुवसंतं ।
णवकं किट्टिं मुच्चा सो चरिमो थूलसंपराओ य ।।२९५।।

बादरलोभादिस्थितौ आवलिशेषे त्रिलोभमुपशांतं ।
नवकं कृष्टिं मुक्त्वा स चरमः स्थूलसांपरायो यः ।।२९५।।

टीका – बादरलोभ की प्रथम स्थिति में उच्छिष्टावली मात्र अवशेष रहनेपर उपशमनावली के अंत समय में तीनों लोभ का सर्व द्रव्य उपशमरूप हुआ । वहां विशेष इतना है कि (१) सूक्ष्मकृष्टि को प्राप्त हुआ द्रव्य, (२) एक समय कम दो आवली मात्र नवक समयप्रबद्धों का द्रव्य और (३) उच्छिष्टावली मात्र निषेकों का

द्रव्य उपशमित नहीं हुआ है, अवशेष उपशमित हुआ है । ऐसे कृष्टिकरण काल के अंत समयवर्ती जीव को चरम समयवर्ती अनिवृत्ति बादरसाम्पराय कहते हैं । इसप्रकार अनिवृत्तिकरण का स्वरूप कहा ।

से काले किट्टिस्स य पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि ।
लोहगपढमठिदीदो अद्धं किंचूणयं गत्थ ।।२९६।।

स्वे काले कृष्टेश्च प्रथमस्थितिकारवेदको भवति ।
लोभगप्रथमस्थितितः अर्धं किंचिदूनकं गत्वा ।।२९६।।

टीका – अनिवृत्तिकरण के अनंतर प्रथम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्पराय है, वह अंतर्मुहूर्त स्थितिवाले समस्त सूक्ष्मकृष्टि के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग मात्र द्रव्य को ग्रहण करके उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग को सूक्ष्मलोभ की प्रथम स्थिति में निक्षेपण करता है । इसका प्रमाण बादरलोभवेदक काल से कुछ कम तीसरा भाग मात्र है । जो सूक्ष्मसाम्पराय का काल है, वही सूक्ष्मकृष्टि की प्रथम स्थिति का प्रमाण जानना । यह उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम है । इसके निषेकों में **'प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिंड'** इत्यादि विधान से असंख्यातगुणा क्रम सहित द्रव्य देता है । अवशेष बहुभाग मात्र द्रव्य को द्वितीय स्थिति में निक्षेपण करता है । यह उस प्रथम स्थिति के ऊपरवर्ती है । इसका प्रमाण अंतर्मुहूर्त मात्र है । यही यहां उपरितन स्थिति है । इसके निषेकों में **'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे'** इत्यादि विधान से चय घटते क्रम सहित द्रव्य देता है । इसतरह बादरलोभ की प्रथम स्थिति के द्वितीय अर्ध से किंचित् न्यून *(कम)* मात्र सूक्ष्मकृष्टियों की प्रथम स्थिति करता है । ज्ञानावरणादि कर्मों की अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर गलितावशेष गुणश्रेणी पूर्ववत् प्रवर्तती है । यहां उसका प्रमाण किंचित् अधिक सूक्ष्मसाम्पराय काल मात्र है । उसी सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में सूक्ष्मकृष्टि के उदय को वेदता है – भोगता है ।

पढमे चरिमे समये कदकिट्टीणग्गदो दु आदीदो ।
मुच्चा असंखभागं उदेदि सुहुमादिमे सव्वे ।।२९७।।

प्रथमे चरमे समये कृतकृष्टीनामग्रतस्तु आदितः ।
मुक्त्वा असंख्यभागं उदेति सूक्ष्मादिमे सर्वे ।।२९७।।

टीका – सूक्ष्मकृष्टि करने के काल के प्रथम समय में और अंत समय में की हुयी कृष्टियों को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर एकभाग मात्र कृष्टियां हैं, वे अपने स्वरूप से उदय में नहीं आती, अन्य कृष्टिरूप परिणमन करके उदय में आती हैं । तथा अवशेष पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग मात्र प्रथम समय, अंत समय में की हुयी कृष्टियां, द्वितीयादि द्विचरम समयों में की हुयी सर्व कृष्टियां अपने स्वरूप से ही उदय में आती हैं ।

प्रथम समय में जो कृष्टियां की हुयी हैं उनमें से तो अंत कृष्टि से लेकर पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र कृष्टियां उदय को प्राप्त नहीं हैं, वे अपने स्वरूप को छोड़कर अपनी अनुभाग शक्ति से अनंतगुणा हीन शक्तिरूप परिणमित होकर उदय में आती हैं । पुनश्च अंत समय में की हुयी कृष्टियों में से जघन्य कृष्टि से लेकर पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र कृष्टियां उदय में नहीं आती । वे अपने स्वरूप को छोड़कर अपनी शक्ति से अनंतगुणा शक्तिरूप परिणमित होकर मध्यम कृष्टिरूप होकर उदय में आती हैं – ऐसा तात्पर्य है ।

वहां समस्त कृष्टियों के प्रमाण को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग मात्र कृष्टियां तो अपने स्वरूप ही से उदय में आती हैं । अवशेष एकभाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर, वहां एकभाग को जुदा रखकर बहुभाग के दो खंड करना । वहां एक खंड प्रमाण तो अंत समय संबंधी अनुदयकृष्टियां हैं और एक खंड में जुदा रखा हुआ एकभाग मिलानेपर जो प्रमाण हो उतनी प्रथम समय संबंधी अनुदयकृष्टियां हैं । इसतरह कृष्टिकरण काल के अंत समय में की हुयी अनुदयकृष्टियां अल्प हैं, उससे उसके प्रथम समय में की हुयी अनुदयकृष्टियां कुछ अधिक हैं, उससे सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में उदय आयी हुयी कृष्टियां असंख्यातगुणा हैं ।

यहां ऐसा अर्थ जानना – कृष्टिकरण काल के प्रथम समय में की हुयी कृष्टियां ऊपर लिखना, उसमें अंत कृष्टि ऊपर लिखी, उसके नीचे उपांत आदि

कृष्टियां क्रम से लिखना, सबसे नीचे जघन्य कृष्टि लिखना । उसके नीचे-नीचे द्वितीयादि समयों में की हुयी कृष्टियां भी इसीप्रकार लिखना । इन लिखी हुयी कृष्टियों में सबसे नीचे अंत समय में की हुयी कृष्टियां लिखना, वहां भी अंत कृष्टि ऊपर लिखना, उसके नीचे-नीचे उपांत आदि कृष्टियां लिखना, सबसे नीचे जघन्य कृष्टि लिखना । इसतरह अंत समय में की हुयी कृष्टियों की जघन्य कृष्टि से लेकर प्रथम समय में की हुयी कृष्टियों की अंत कृष्टि तक लिखना । उनमें ऊपर-ऊपर द्रव्य तो क्रम से एक-एक चय प्रमाण घटता जाता है परंतु अनुभाग अनंतगुणा-अनंतगुणा *(बढ़ता)* है । वहां सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में ऐसे कृष्टिरूप परमाणु थे, उनमें से यहां जितना प्रमाण कहा उतनी ऊपर की और नीचे की कृष्टियों के परमाणुओं को बीच की कृष्टियोंरूप परिणमाता है ।

अंकसंदृष्टि द्वारा जैसे सर्व कृष्टियों का प्रमाण एक हजार, उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का प्रमाण पांच, उसका भाग देनेपर बहुभाग मात्र आठ सौ बीच की कृष्टियां हैं, वे तो अपने रूप ही उदय में आती हैं । एकभाग दो सौ, उसको पांच का भाग देकर *(एकभाग)* चालीस जुदा स्थापित कर अवशेष एक सौ साठ के दो भाग करनेपर एकभाग अस्सी तो अंत समय में की हुयी कृष्टियों के जघन्य कृष्टि से लेकर जो नीचे की कृष्टियां हैं, वे अनुदयरूप हैं । इनके परमाणु अनुभाग बढ़ने से बीच की कृष्टियोंरूप परिणमित होकर उदय में आते हैं । दूसरे जुदे रखे एकभाग *(अस्सी)* में चालीस मिलानेपर एक सौ बीस होते हैं – इतनी प्रथम समय में की हुयी कृष्टियों के अंत कृष्टि से लेकर ऊपर की कृष्टियां हैं, वे अनुदयरूप हैं । इनके परमाणु अनुभाग घटने से बीच की कृष्टियोंरूप परिणमित होकर उदय में आते हैं । इसीतरह यथार्थ कथन समझना ।

बिदियादिसु समयेसु हि छंडदि पल्लासंखभागं तु ।
आफुददि हु अपुव्वा हेट्ठा तु असंखभागं तु ।।२९८।।

द्वितीयादिषु समयेषु हि त्यजति पल्यासंख्यभागं तु ।
आस्पृशति हि अपूर्वा अधस्तनास्तु असंख्यभागं तु ।।२९८।।

टीका – सूक्ष्मसाम्पराय के द्वितीय समय में जो प्रथम समय में उदयरूप कृष्टियां

हैं उनकी अंत कृष्टि से लेकर कृष्टियों को छोड़ते हैं – उदय को प्राप्त नहीं करते । उनका प्रमाण प्रथम समय में हीन शक्तिरूप होने योग्य जो ऊपर की कृष्टियां अनुदयरूप कही थी उनके प्रमाण को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र जानना । इतनी नवीन ऊपर की कृष्टियां यहां उदयरूप नहीं होती । ये कृष्टियां अनंतगुणा घटते अनुभागरूप परिणमित होकर अन्य नीचे की कृष्टिरूप परिणमित होकर उदय में आती हैं । अन्य प्रकार से प्रतिसमय उदयरूप कृष्टियों का अनंतगुणा शक्तियों का घटना नहीं बनता । पुनश्च प्रथम समय में अनंतगुणा *(बढ़कर)* शक्तिरूप परिणमने योग्य जो अधस्तन अनुदयरूप कृष्टियां हैं, उनको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एकभाग प्रमाण नीचे की नवीन कृष्टियां जो प्रथम समय में उदयरूप नहीं थी, वे उदयरूप होती हैं । ऐसे होनेपर प्रथम समय में उदयरूप कृष्टियों के प्रमाण से द्वितीय समय में उदयरूप कृष्टियों का प्रमाण कुछ विशेष से घटता जानना ।

यहां नवीन उदयरूप की हुयी कृष्टियों के प्रमाण को नवीन अनुदयरूप की हुयी कृष्टियों के प्रमाण में से घटानेपर अवशेष प्रमाण प्रथम समय में अनुदयरूप कृष्टियों को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर एकभाग मात्र है । इतना प्रथम समय की उदयरूप कृष्टियों के प्रमाण से द्वितीय समय की उदयरूप कृष्टियों का प्रमाण घटता जानना ।

यहां ऐसा अर्थ जानना – इस सूक्ष्मसाम्पराय के द्वितीय समय में जो प्रथम समय में उदयरूप कृष्टि कही थी, उनमें अंत कृष्टि से लेकर यहां जितना प्रमाण कहा उतनी कृष्टियां उदयरूप नहीं होती हैं । वे अनंतगुणा घटती मध्यमकृष्टिरूप परिणमित होकर उदय में आती हैं । उस प्रथम समय में जो नीचे की अनुदयकृष्टि कही थी उनमें से अंत कृष्टि से लेकर यहां जितना प्रमाण कहा, उतनी कृष्टियां उदयरूप होती हैं ।

अंकसंदृष्टि से जैसे प्रथम समय में उदयरूप कृष्टियां आठ सौ थी, उनमें से प्रथम समय में ऊपर की अनुदयकृष्टियों का प्रमाण एक सौ बीस था, उसको पांच का भाग देनेपर चौबीस आये, अवशेष रही कृष्टियों के अंत कृष्टि से लेकर इतनी कृष्टि तो यहां *(दूसरे समय में)* नवीन उदयरूप नहीं होती और उस प्रथम समय में नीचे की अस्सी कृष्टियां उदयरूप नहीं थी, उनको पांच का भाग देनेपर सोलह आये,

इतनी नीचे की अनुदयकृष्टियों की अंत कृष्टि से लेकर यहां उदयरूप हुयी ऐसी चौबीस में से सोलह घटानेपर आठ रहे । इतनी कृष्टियां प्रथम समय से दूसरे समय में हीन उदय में आती हैं, इसलिए दूसरे समय में सात सौ बानबे कृष्टियों का उदय जानना । ऐसे ही यथार्थ कथन समझना ।

यहां बहुत अनुभाग युक्त ऊपर की कृष्टियों का अभाव करने से और अल्प अनुभाग युक्त नीचे की कृष्टियों का सद्भाव करने से प्रथम समय में उदय में आये अनुभाग से द्वितीय समय में उदय में आये अनुभाग का घटना होता है ऐसा जानना । इसीतरह सूक्ष्मसाम्पराय के तृतीय आदि अंत समय तक विशेष घटते क्रम सहित कृष्टियों का उदय क्रम से जानना । विशेष का प्रमाण पूर्व में जितनी घटी थी, उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र जानना ।

किट्टिं सुहुमादीदो चरिमो त्ति असंखगुणिदसेढीए ।
उवसमदि हु तच्चरिमे अवरट्ठिदिबंधणं छण्हं ।।२९९।।

कृष्टिं सूक्ष्मादितः चरम इति असंख्यगुणितश्रेण्याः ।
उपशमयति हि तच्चरमे अवरस्थितिबंधनं षण्णाम् ।।२९९।।

टीका – सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में समस्त सूक्ष्मकृष्टियों के द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग का देकर एकभाग मात्र जो द्रव्य, उसको उपशमाता है । दूसरे समय में उससे असंख्यातगुणा द्रव्य को उपशमाता है । इसीतरह तीसरे समय से अंत समय तक के समयों में असंख्यातगुणा क्रम सहित द्रव्य को उपशमाता है । वहां अंत समय में एक कम सूक्ष्मसाम्पराय काल के समय प्रमाण मात्र बार असंख्यात का गुणकार करनेपर जो अंत फालि का द्रव्य हुआ, उसको उपशमाता है । पुनश्च एक समय कम दो आवली मात्र संज्वलन लोभ के नवक समयप्रबद्ध उपशमित नहीं हुये थे । उनके द्रव्य को सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय से लेकर प्रतिसमय असंख्यात गुणा क्रम सहित उपशमाता है । सूक्ष्मसाम्पराय के अंत समय में आयु और मोह बिना छह कर्मों का जघन्य स्थितिबंध होता है ।

अंतोमुहुत्तमेत्तं घादितियाणं जहण्णठिदिबंधो ।
णामदुग वेयणीये सोलस चउवीस य मुहुत्ता ।।३००।।

अंतर्मुहूर्तमात्रं घातित्रयाणां जघन्यस्थितिबंधः ।
नामद्विकवेदनीये षोडश चतुर्विंशश्च मुहूर्ताः ।।३००।।

टीका – वहां तीन घातिकर्मों का अंतर्मुहूर्त, नाम और गोत्र का सोलह मुहूर्त, सातावेदनीय का चौबीस मुहूर्त मात्र जघन्य स्थितिबंध होता है । यहां उपशमश्रेणी की अपेक्षा जघन्य स्थितिबंध कहा है । पुनश्च पहले जो बादरलोभ के उच्छिष्टावली मात्र निषेक रहे थे वे पूर्वोक्त थिउक्क संक्रमण विधान से कृष्टिरूप परिणमित होकर उदय में आते हैं ।

आगे पूर्वोक्त अर्थ का उपसंहार करते हैं –

पुरिसादीणुच्छिट्ठं समऊणावलिगदं तु पच्चिहिदि ।
सोदयपढमट्ठिदिणा कोहादीकिट्टियंताणं ।।३०१।।

पुरुषादीनामुच्छिष्टं समयोनावलिगतं तु प्रत्याहंति ।
सोदयप्रथमस्थितिना क्रोधादिकृष्ट्यंतानां ।।३०१।।

टीका – पुरुषवेद आदि का एक समय कम आवली मात्र निषेकों का द्रव्य उच्छिष्टावलीरूप है, वह क्रोधादि सूक्ष्मकृष्टि तक के उदयरूप निषेकों से लेकर प्रथम स्थिति के निषेकों के साथ तद्रूप परिणमन कर **'पक्ष्यति'** अर्थात् उदयरूप होते हैं । पुरुषवेद के उच्छिष्ट मात्र निषेक रहे वे तो संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति में तद्रूप परिणमित होकर उदय में आते हैं । वैसे ही संज्वलन क्रोध के संज्वलन मान में इत्यादि क्रम से बादरलोभ के उच्छिष्टावली के निषेक सूक्ष्मकृष्टि में तद्रूप परिणमित होकर उदय में आते हैं । उसका पहले वर्णन किया ही है ।

पुरिसादो लोहगयं णवकं समऊण दोण्णि आवलियं ।
उवसमदि हू कोहादीकिट्टीअंतेसु ठाणेसु ।।३०२।।

पुरुषात् लोभगतं नवकं समयोने द्वे आवलिके ।
उपशाम्यति हि क्रोधादिकृष्ट्यंतेषु स्थानेषु ।।३०२।।

टीका – पुरुषवेद से लेकर लोभ तक के एक समय कम दो आवली मात्र नवक समयप्रबद्धों का द्रव्य क्रोधादि कृष्टि तक के प्रथम स्थिति के कालों में प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम सहित उपशमित होता है । वहां पुरुषवेद का नवक समयप्रबद्ध संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति के काल में उपशमित होता है इत्यादि पहले वर्णन किया ही है । सूक्ष्मकृष्टि के प्रथम स्थिति में दो आवली अवशेष रहनेपर उसकी आगाल, प्रत्यागाल क्रिया का व्युच्छेद होता है तथा एक समय अधिक आवली मात्र अवशेष रहनेपर पूर्वोक्तवत् जघन्य उदीरणा होती है । और उच्छिष्टावली मात्र निषेक अवशेष रहनेपर वे अपने रूप में ही उदयरूप होकर निर्जरित होते हैं । इसतरह सूक्ष्मसाम्पराय के अंत समय में सर्व कृष्टि द्रव्य को उपशमाकर अनंतर समय में उपशांतकषाय *(उपशांतमोह)* होता है ।

उवसंतपढमसमये उवसंतं सयलमोहणीयं तु ।
मोहस्सुदयाभावा सव्वत्त समाणपरिणामो ।।३०३।।

उपशांतप्रथमसमये उपशांतं सकलमोहनीयं तु ।
मोहस्योदयाभावात् सर्वत्र समानपरिणामः ।।३०३।।

टीका – उपशांतकषाय के प्रथम समय में सकल चारित्रमोहनीयकर्म बंध, उदय, संक्रमण, उदीरणा, उत्कर्षण, अपकर्षण आदि सर्व करणों के नहीं उपजने से सर्व प्रकार से उपशमित हुआ है; उदयादि में निक्षेपण करने के लिये समर्थरूप नहीं रहा । उस उपशांतकषाय के प्रथम समय से अंत समय तक अंतर्मुहूर्त मात्र अपने गुणस्थान के काल में विशुद्धि के परिणाम समानरूप हैं, क्योंकि यहां हीनाधिक विशुद्धता के कारणभूत कषायों के उदय का अभाव है । ऐसा यथाख्यात चारित्र है ।

अंतोमुहुत्तमेत्तं उवसंतकसायवीयरायद्धा ।
गुणसेढीदीहत्तं तस्सद्धा संखभागो दु ।।३०४।।

अंतर्मुहूर्तमात्रं उपशांतकषायवीतरागाद्धा ।
गुणश्रेणीदीर्घत्वं तस्याद्धा संख्यभागस्तु ।।३०४।।

टीका – उपशांतकषाय वीतराग नामक ग्यारहवें गुणस्थान का काल अंतर्मुहूर्त मात्र है, उसके पश्चात् नियम से द्रव्यकर्म के उदय के निमित्त से संक्लेशरूप भावकर्म प्रकट होता है । इस काल के संख्यातवें भाग मात्र यहां उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम है । इसमें सूक्ष्मसाम्पराय के अंत समय में जितना द्रव्य अपकर्षण किया, उससे असंख्यातगुणा आयु और मोह बिना अन्य कर्मों के द्रव्य को अपकर्षण करके **'प्रक्षेपयोगोद्धतमिश्रपिंड'** इत्यादि विधान से असंख्यातगुणा क्रम से निक्षेपण करता है ।

उदयादिअवट्ठिदगा गुणसेढी दव्वमवि अवट्ठिदगं ।
पढमगुणसेढिसीसे उदये जेट्ठं पदेसुदयं ।।३०५।।

उदयाद्यवस्थितका गुणश्रेणी द्रव्यमपि अवस्थितकं ।
प्रथमगुणश्रेणिशीर्षे उदये ज्येष्ठं प्रदेशोदयम् ।।३०५।।

टीका – उपशांतकषाय के प्रथम समय में उदयावली के प्रथम समय से लेकर जितने प्रमाणवाले गुणश्रेणी आयाम का प्रारंभ किया उतने प्रमाणवाला ही द्वितीयादि समयों में भी गुणश्रेणी आयाम है । क्योंकि उदयावली में से एक समय व्यतीत होनेपर उपरितन स्थिति का एक समय गुणश्रेणी आयाम में आ मिलता है । इसीकारण उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम है । पुनश्च उपशांतकषाय के प्रथम समय में जितना द्रव्य अपकर्षण करके गुणश्रेणी में दिया, उतना ही प्रतिसमय देता है, क्योंकि यहां परिणाम अवस्थित हैं, उसके निमित्त से अपकर्षणरूप द्रव्य का भी प्रमाण अवस्थित है ।

प्रथम समय में की हुयी गुणश्रेणी का शीर्ष अर्थात् अंत निषेक जिस समय उदय में आता है, उस समय उत्कृष्ट कर्मपरमाणुओं का उदय जानना, क्योंकि उस समय प्रथम समय में की हुयी गुणश्रेणी का तो अंत निषेक, दूसरे समय में की हुयी गुणश्रेणी का द्विचरम निषेक आदि से लेकर इस समय में की हुयी गुणश्रेणी के प्रथम निषेक तक सर्व निषेक मिलकर गुणश्रेणी मात्र द्रव्य हुआ; वह उस समय संबंधी निषेक में

इकठ्ठा हुआ । उस निषेक में पूर्व सत्तारूप गोपुच्छ द्रव्य था, उस सहित सबका उदय होता है । इसके ऊपर के समयों में भी मिलकर गुणश्रेणी मात्र द्रव्य इकठ्ठा होता है, परंतु *(सत्तारूप)* गोपुच्छ द्रव्य में एक-एक चय मात्र घटता द्रव्य पाया जाता है । इसलिए यहां ही उत्कृष्ट प्रदेशों का उदय कहा है ।

कोई कहेगा कि पहले गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम था उसका जो शीर्षरूप समय *(निषेक)* है वह अब की हुयी गुणश्रेणी आयाम के अभ्यंतरवर्ती है – बीच में आ गया है, उस समय बहुत गुणश्रेणी के निषेक और उस समय संबंधी गोपुच्छ द्रव्य मिलकर बहुत अधिक द्रव्य उदयरूप होता है । तो वहां उत्कृष्ट द्रव्य का उदय क्यों नहीं कहते हो ?

उसको कहते हैं – पूर्व गुणश्रेणी में निक्षेपण किये हुये सर्वद्रव्य से भी यहां गुणश्रेणी के जघन्य निषेक में निक्षेपण किया हुआ द्रव्य असंख्यातगुणा है, इसलिए ऊपर-नीचे के सर्व निषेकों से यहां प्रथम समय में की हुयी गुणश्रेणी का शीर्ष जिस समय उदय में आता है उस समय में ही उत्कृष्ट द्रव्य का उदय होता है ।

णामधुवोदयबारस सुभगति गोदेक्क विग्घपणगं च ।
केवल णिद्दाजुयलं चेदे परिणामपच्चया होंति ।।३०६।।

नामध्रुवोदयद्वादश सुभगत्रि गोत्रकं विघ्नपंचकं च ।
केवलं निद्रायुगलं चैते परिणामप्रत्यया भवंति ।।३०६।।

टीका – उपशांतकषाय में जो उनसठ प्रकृतियां उदयरूप पायी जाती हैं, उनमें से तेजस कार्माण शरीर दो, वर्णादि चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, अगुरुलघु, निर्माण ये नामकर्म की ध्रुवोदयी बारह प्रकृतियां; सुभग, आदेय, यशस्कीर्ति - ये तीन; उच्चगोत्र; पांच अंतराय; केवलज्ञानावरण; केवलदर्शनावरण, निद्रा, प्रचला ये पच्चीस प्रकृतियां परिणाम प्रत्यय हैं । इनका उदय होने के समय में आत्मा के विशुद्ध-संक्लेश परिणाम हानि-वृद्धि सहित जैसे पाये जाते हैं वैसे ही हानि-वृद्धि सहित इनके अनुभाग का वहां उदय होता है । वर्तमान परिणाम के निमित्त से इनका अनुभाग उत्कर्षण-अपकर्षणादिरूप होकर उदय में आता है ।

तेसिं रसवेदमवट्ठाणं भवपच्चया हु सेसाओ ।
चोत्तीसा उवसंते तेसिं तिट्ठाण रसवेदं ।।३०७।।

तेषां रसवेदमवस्थानं भवप्रत्यया हि शेषाः ।
चतुस्त्रिंशत् उपशांते तेषां त्रिस्थानं रसवेदं ।।३०७।।

टीका – उन पच्चीस प्रकृतियों के अनुभाग का उदय उपशांतकषाय के प्रथम समय से लेकर अंत समय तक अवस्थित अर्थात् समानरूप है; क्योंकि यहां परिणाम समान हैं और इन प्रकृतियों के अनुभाग का उदय परिणामों के अनुसार है; इसलिए इनके अनुभाग के उदय में हानि वृद्धि नहीं है ।

अवशेष ज्ञानावरण की चार, दर्शनावरण की तीन, वेदनीय की दो, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, आदि के तीन संहनन, छह संस्थान, उपघात, परघात, उच्छ्वास, विहायोगति दो, प्रत्येक, त्रस, बादर, पर्याप्त, स्वर की दो ऐसी चौंतीस प्रकृतियां भवप्रत्यय हैं । आत्मा के परिणाम जैसे हो वैसे हो – उनकी अपेक्षा रहित पर्याय ही के आश्रय से इनके अनुभाग में षट्स्थानरूप हानि-वृद्धि पायी जाती है । इसलिए इनके अनुभाग का उदय यहां तीन अवस्था सहित है – कदाचित् हानिरूप होता है, कदाचित् वृद्धिरूप होता है, कदाचित् अवस्थित – जैसा का तैसा रहता है । इसतरह उपशांतकषाय के अंत समय तक चारित्रमोह की इक्कीस प्रकृतियों का उपशमन विधान समाप्त हुआ ।

अब उपशांतकषाय से गिरने का विधान कहते हैं –

उवसंते पडिवडिदे भवक्खये देवपढमसमयम्हि ।
उग्घाडिदाणि सव्वि करणाणि हवंति णियमेण ।।३०८।।

उपशांते प्रतिपतिते भवक्षये देवप्रथमसमये ।
उद्घाटितानि सर्वाण्यपि करणानि भवंति नियमेन ।।३०८।।

टीका – उपशांतकषाय से गिरना दो प्रकार का है – भवक्षय के कारण, उपशमकाल का क्षय होने के कारण । वहां मरण होनेपर पर्याय के नाश के निमित्त

से गिरना होता है, उसे भवक्षयहेतु कहते हैं और उपशमकाल के क्षय के निमित्त से गिरना होता है, उसे उपशमकालक्षय निमित्तक कहते हैं ।

वहां भवक्षयहेतु में कहते हैं – उपशांतकषाय के काल में प्रथम समय से लेकर अंत समय तक जहां तहां आयु के नाश से मरकर देवपर्याय संबंधी असंयत गुणस्थान में जाता है *(गिरता है)*, वहां असंयत के प्रथम समय में बंध, उदीरणा, संक्रमण आदि समस्त करण शुरु करता है – अपने-अपने स्वरूप सहित वे प्रकट वर्तते हैं; क्योंकि जो कर्म उपशांतकषाय में उपशमित किये थे वे सर्व असंयत में उपशम रहित हुये हैं ।

सोदीरणाण दव्वं देदि हु उदयावलिम्हि इयरं तु ।
उदयावलिबाहिरगे उंछाये देदि सेढीये ।।३०९।।

सोदीरणानां द्रव्यं ददाति हि उदयावलौ इतरत्तु ।
उदयावलिबाह्यके अंतरे ददाति श्रेण्याम् ।।३०९।।

टीका – वह देव असंयत जीव प्रथम समय में उदयरूप जो अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान, संज्वलनरूप क्रोधादि चार कषाय हैं, उनमें से कोई एक कषाय *(तीन प्रकार के क्रोध या मान या माया या लोभ)* और पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा में से यथासंभव प्रकृतियां जो उदयरूप पायी जाती हैं; उनके द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग को ग्रहण कर उसको असंख्यातलोक का भाग देकर एकभाग को उदयावली में देता है और अवशेष बहुभाग को उदयावली से बाह्य प्रथम निषेक से लेकर अवशेष अंतरायाम में और अंतरायाम के उपरवर्ती द्वितीय स्थिति में **'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा'** इत्यादि विधान से चय घटते क्रम से देता है ।

पुनश्च उदय से रहित नपुंसकवेद आदि मोहनीय की प्रकृति के द्रव्य को अपकर्षण करके उदयावली में नहीं देता; उदयावली से बाह्य अंतरायाम और उपरितन स्थिति ही में चय घटते क्रम से देता है । इस विधान से चारित्रमोह के अंतर को पूर्ण करता है *(अंतर भर देता है)* । अंतर करते समय निषेकों का अभाव किया था उनमें से उपशम काल व्यतीत होने के पश्चात् जो अवशेष अंतररूप निषेक

रहे, उनमें यहां द्रव्य का निक्षेपण करके उनका सद्भाव करता है । यहां असंयत में गुणश्रेणी का अभाव जानना ।

अद्धाखए पडंतो अधापवत्तो त्ति पडदि हु कमेण ।
सुज्झंतो आरोहदि पडदि हु सो संकिलिस्संतो ।।३१०।।

अद्धाक्षये पतन् अध:प्रवृत्त इति पतति हि क्रमेण ।
शुद्धयन् आरोहति पतति स संक्लिश्यन् ।।३१०।।

टीका – आयु के विद्यमान रहते हुये अद्धाक्षय *(कालक्षय)* के कारण अंतर्मुहूर्त मात्र उपशांतकषाय के काल का अंत होनेपर गिरकर सूक्ष्मसाम्पराय होता है, पश्चात् अनिवृत्तिकरण होता है, पश्चात् अपूर्वकरण होता है, पश्चात् अध:प्रवृत्तकरणरूप अप्रमत्तसंयत होता है । इसतरह अध:प्रवृत्तकरण तक तो अनुक्रम से गिरना होता ही होता है । पश्चात् यदि विशुद्धता से युक्त होता है तो ऊपर के गुणस्थानों में चढ़ता है और संक्लेशता से युक्त होता है तो नीचे के गुणस्थानों में गिरता है – कुछ नियम नहीं है ।

इसप्रकार संक्लेश-विशुद्धता के निमित्त से उपशांतकषाय से गिरना, चढ़ना नहीं होता; क्योंकि यहां परिणाम अवस्थित विशुद्धता सहित वर्तते हैं । वहां से जो गिरना होता है वह उस गुणस्थान का काल पूर्ण होने के पश्चात् नियम से उपशम काल का क्षय होकर उसके निमित्त होता है । विशुद्ध परिणामों की हानि के निमित्त से वहां से नहीं गिरना होता वैसे ही अन्य किसी निमित्त से नहीं है ऐसा जानना ।

सुहुमप्पविट्ठसमयेणद्धुवसामण तिलोहगुणसेढी ।
सुहुमद्धादो अहिया अवट्ठिदा मोहगुणसेढी ।।३११।।

सूक्ष्मप्रविष्टसमयेनाध्रुवशमं त्रिलोभगुणश्रेणी ।
सूक्ष्माद्धातोऽधिका अवस्थिता मोहगुणश्रेणी ।।३११।।

टीका – उपशांतकषाय के पश्चात् सूक्ष्मसाम्पराय में प्रवेश किया, वहां प्रथम समय में नष्ट हुआ है उपशमकरण जिनका ऐसे अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन

लोभ की गुणश्रेणी का आरंभ होता है । उस गुणश्रेणी आयाम का प्रमाण चढ़नेवाले सूक्ष्मसाम्पराय के काल से एक आवली मात्र अधिक है । इस अवसर में मोह की गुणश्रेणी का आयाम अवस्थितरूप जानना ।

उदयाणं उदयादो सेसाणं उदयबाहिरे देदि ।
छण्हं बाहिरसेसे पुव्वतिगादहियणिक्खेओ ।।३१२।।

उदयानामुदयत: शेषाणां उदयबाह्ये ददाति ।
षण्णां बाह्यशेषे पूर्वत्रिकादधिकनिक्षेप: ।।३१२।।

टीका – वहां उदयरूप संज्वलन लोभ की द्वितीय स्थिति में स्थित द्रव्य को अपकर्षण करके उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एकभाग को उदयरूप प्रथम समय से लेकर गुणश्रेणी आयाम के अंत निषेक तक असंख्यातगुणा क्रम सहित निक्षेपण करता है और बहुभाग मात्र द्रव्य को गुणश्रेणी आयाम के अंत निषेक के ऊपर जो अंतरायाम पाया जाता है उसको छोड़कर उसके ऊपर की द्वितीय स्थिति में चय घटते क्रम से निक्षेपण करता है ।

वहां उदय रहित अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान लोभ की द्वितीय स्थिति में स्थित द्रव्य को अपकर्षण करके उदयावली के बाह्य प्रथम समय से लेकर गुणश्रेणी आयाम के अंत तक असंख्यातगुणा क्रम सहित तथा उसके ऊपर अंतरायाम को छोड़कर द्वितीय स्थिति में चय घटते क्रम से पूर्ववत् निक्षेपण करता है ।

पुनश्च आयु और मोह बिना छह कर्मों के द्रव्य को अपकर्षण करके उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एकभाग को पुन: पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर, वहां एकभाग उदयावली में देता है । बहुभाग गुणश्रेणी आयाम में देता है । इनका यह गुणश्रेणी आयाम उतरनेवाले सूक्ष्मसाम्पराय, अनिवृत्तिकरण, अपूर्वकरणों के मिलाये हुये काल से कुछ अधिक प्रमाण सहित गलितावशेषरूप जानना । इसमें असंख्यातगुणा क्रम सहित द्रव्य देता है । अपकर्षण किये हुये द्रव्य में से बहुभाग रहे, उनको उपरितन स्थिति में चय घटते क्रम से देता है ।

ओदरसुहुमादीए बंधो अंतोमुहुत्त बत्तीसं ।
अडदालं च मुहुत्ता तिघादिणामदुगवेयणीयाणं ।।३१३।।

अवतरसूक्ष्मादिके बंधो अंतर्मुहूर्त द्वात्रिंशत् ।
अष्टचत्वारिंशत् च मुहूर्ता: त्रिघातिनामद्विकवेदनीयानाम् ।।३१३।।

टीका – उतरनेवाले सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में तीन घातिकर्मों का अंतर्मुहूर्त, नाम गोत्र का बत्तीस मुहूर्त, वेदनीय का अड़तालीस मुहूर्त मात्र स्थितिबंध जानना; क्योंकि आरोहक सूक्ष्मसाम्पराय के अंत समय में जो स्थितिबंध होता है उससे अवरोहक सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में दोगुणा स्थितिबंध होता है । उपशमश्रेणी चढ़नेवाले का नाम आरोहक है, उतरनेवाले का नाम अवरोहक अथवा अवतारक है, ऐसी संज्ञा आगे भी जानना ।

गुणसेढीसत्थेदररसबंधो उवसमादु विवरीयं ।
पढमुदओ किट्टीणमसंखाभागा विसेसअहियकमा ।।३१४।।

गुणश्रेणी शस्तेतररसबंध उपशमात् विपरीतम् ।
प्रथमोदय: कृष्टीनामसंख्यभागा विशेषाधिकक्रमा: ।।३१४।।

टीका – अवरोहक सूक्ष्मसाम्पराय द्वितीयादि समयों में प्रतिसमय प्रथमादि समय संबंधी से असंख्यातगुणा हीन क्रम सहित द्रव्य को अपकर्षण करके गुणश्रेणी करता है । तथा प्रशस्त प्रकृतियों का अनंतगुणा हीन क्रम सहित और अप्रशस्त प्रकृतियों का अनंतगुणा बढ़ते क्रम सहित अनुभागबंध होता है । क्योंकि यहां प्रतिसमय विशुद्ध संक्लेश की अनंतगुणा हानि वृध्दि होती है इसलिए उपशमश्रेणी चढ़ने से उतरने में विपरीतपना कहा है । उस प्रथम समय से लेकर अंतर्मुहूर्त तक स्थितिबंध समान ही है । अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में आरोहक के स्थितिबंध से अवरोहक के यथास्थान दोगुणा स्थितिबंध सूक्ष्मसाम्पराय के अंत समय तक जानना । चढ़ते हुये जिस स्थान में जो स्थितिबंध होता था, उससे उतरते समय उस स्थान में आकर दोगुणा स्थितिबंध होता है । जैसे चढ़ते हुये स्थितिबंधापसरण द्वारा स्थितिबंध घटाकर एक-एक अंतर्मुहूर्त में समान बंध करता था, वैसे यहां *(उतरते हुये)* स्थितिबंधोत्सरण द्वारा स्थितिबंध बढ़ाकर

एक-एक अंतर्मुहूर्त में समान बंध करता है ।

पुनश्च अवरोहक सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में उदय में आये निषेक में जो कृष्टियां पायी जाती हैं उनको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग मात्र बीच की कृष्टियां उदय में आती हैं और अवशेष एकभाग को पल्य के अंसख्यातवें भाग की सहनानी पांच का अंक, उसका भाग देकर दो भाग मात्र तो आदि कृष्टि से लेकर जो नीचे की कृष्टियां हैं वे अनुदयरूप हैं और तीन भाग मात्र अंत कृष्टि से लेकर जो ऊपर की कृष्टि हैं वे अनुदयरूप हैं, वे अनुदयरूपकृष्टि कही । वे अपने स्वरूप को छोड़कर जो आदि कृष्टि से लेकर नीचे की कृष्टि हैं वे तो अनंतगुणा अनुभागरूप परिणमित होकर मध्यम कृष्टिरूप होकर उदय में आती हैं । तथा अंत कृष्टि से लेकर जो ऊपर की कृष्टि हैं वे अनंतवें भाग अनुभागरूप परिणमित होकर मध्यम कृष्टिरूप होकर उदय में आती हैं ।

अंकसंदृष्टि से जैसे उदय में आये निषेक में कृष्टियां हजार, उनको पांच का भाग देकर बहुभाग मात्र आठ सौ बीच की कृष्टि तो उदयरूप जानना । अवशेष एक भाग दो सौ, उसको पांच का भाग देकर वहां एकभाग जुदा रखकर अवशेष के दो भाग करके वहां एकभाग मात्र अस्सी कृष्टियां तो जघन्य कृष्टि से लेकर नीचे की कृष्टियां अनुदयरूप हैं वे अनुभाग बढ़ने से मध्यम कृष्टिरूप परिणमित होकर उदय में आती हैं । पुनश्च *(दूसरे)* एकभाग में जुदा रखा हुआ भाग मिलानेपर एक सौ बीस कृष्टियां हुयी वे अंत कृष्टि से लेकर ऊपर की कृष्टियां अनुदयरूप हैं, वे अनुभाग घटने से मध्यम कृष्टिरूप होकर उदय में आती हैं – ऐसा अर्थ जानना ।

दूसरे समय में जो आदि कृष्टियां प्रथम समय में उदयरूप नहीं थी, उनको पल्य के अंसख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र नवीन कृष्टियां अनुदयरूप की है और अंत की कृष्टियां जो पहले समय में उदयरूप न थी, उनको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र कृष्टियां नवीन उदयरूप की हैं । यहां उदयरूप की हुयी कृष्टियों के प्रमाण में से अनुदयरूप की हुयी कृष्टियों का प्रमाण घटाकर जो अवशेष प्रमाण रहे उतने प्रमाण से अधिक प्रथम समय संबंधी उदयकृष्टियों से दूसरे समय में उदयकृष्टियां होती हैं ।

अंकसंदृष्टि से जैसे पहले समय में उदयकृष्टियां आठ सौ थी, उन उदयरूप कृष्टियों के ऊपर की एक सौ बीस कृष्टियां अनुदयरूप थी, उनको पांच का भाग देकर चौबीस आये, इतनी तो ऊपर की कृष्टियां दूसरे समय में नवीन उदयरूप हुयी । तथा नीचे की अस्सी कृष्टियां अनुदयरूप थी, उनको पांच का भाग देनेपर सोलह आये, इतनी कृष्टियां यहां नवीन अनुदयरूप होती हैं । *(पहले अस्सी अनुदयरूप थी उसमें और सोलह अनुदयरूप होती हैं, इसलिए दूसरे समय में नीचे की छानबे अनुदयरूप रहेगी ।)* ऐसे चौबीस में से सोलह घटानेपर आठ रहे, इतनी कृष्टियां बढ़ने से द्वितीय समय में आठ सौ आठ कृष्टियां उदयरूप होती हैं । ऐसे ही यथार्थ कथन समझना । यहां बहुत अनुभाग युक्त ऊपर की कृष्टियों के उदय होने से और अल्प अनुभाग युक्त नीचे की कृष्टियों का उदय नहीं होने से प्रथम समय से द्वितीय समय में अनुभाग का बढ़ना होता है, ऐसा अर्थ जानना । इसीतरह तृतीयादि अंत समय तक के समयों में विशेष अधिक क्रम से कृष्टियों का उदय होता है । इसीकारण प्रतिसमय कृष्टियों के अनंतगुणा अनुभाग का उदय होता है । इसतरह सूक्ष्मसाम्पराय का काल व्यतीत हुआ ।

बादरपढमे किट्टी मोहस्स य आणुपुव्विसंकमणं ।
णट्ठं ण च उच्छिट्ठं फड्डयलोहं तु वेदयदि ।।३१५।।

बादरप्रथमे कृष्टिः मोहस्य च आनुपूर्विसंक्रमणं ।
नष्टं न च उच्छिष्टं स्पर्धकलोभं तु वेदयति ।।३१५।।

टीका – अवरोहक अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में सूक्ष्मकृष्टियां हैं, वे उच्छिष्टावली मात्र निषेक बिना अन्य सर्व ही स्वरूप से नष्ट हुयी सूक्ष्मकृष्टि की अनुभागशक्ति से अनंतगुणा शक्ति युक्त जो स्पर्धक, उनस्वरूप होकर एक ही समय में परिणमित हो जाती हैं । तथा इन कृष्टियों के उच्छिष्टावली मात्र निषेक रहे वे प्रतिसमय एक-एक निषेकरूप से उदयमान स्पर्धक के निषेकों में थिउक्क संक्रमण करके तद्रूप परिणमित होकर उदय में आयेंगे । उसी प्रथम समय में मोह का आनुपूर्वी संक्रमण भी नष्ट हुआ ।

इतना विशेष – अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान लोभ का बध्यमान संज्वलन लोभ

ही में संक्रमण होने का प्रारंभ हुआ तथापि इसमें आनुपूर्वी संक्रमण की विवक्षा नहीं है । संज्वलन लोभ के बध्यमान अन्य कोई स्वजातीय प्रकृति नहीं है, इसलिए व्यक्ति अपेक्षा आनुपूर्वी संक्रमण नष्ट हुआ, शक्ति अपेक्षा संज्वलन लोभ के आनुपूर्वी द्वारा अन्य प्रकृति में संक्रमण होने का परिणाम हुआ है । सूक्ष्मसाम्पराय में मोह के बंध के अभाव से संक्रमण नहीं पाया जाता ।

स्पर्धकरूप बादरलोभ के उदय को भोगनेवाला जो अनिवृत्तिकरण बादरसाम्पराय, उसके प्रथम समय में संज्वलन लोभ के द्रव्य को अपकर्षण करके उदयरूप समय से लेकर बादरलोभवेदक काल के साधिक दो तीसरे *(दो तृतीयांश)* भाग आवली से अधिक प्रमाण मात्र जो गुणश्रेणी आयाम, उसमें असंख्यातगुणा क्रम सहित निक्षेपण करता है और अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान लोभ के द्रव्य को उदयावली से बाह्य पूर्वोक्त गुणश्रेणी आयाम में असंख्यातगुणा क्रम से निक्षेपण करता है । अनिवृत्तिकरण के द्वितीयादि समयों में असंख्यातगुणा घटते क्रम सहित द्रव्य को अपकर्षण करके अवस्थित गुणश्रेणी आयाम में पूर्वोक्त प्रकार से निक्षेपण करता है । अन्य कर्मों की गलितावशेष गुणश्रेणी पहले कही है, वही जानना ।

ओदरबादरपढमे लोहस्संतोमुहुत्तियो बंधो ।
दुदिणंतो घादितिये चउवस्संतो अघादितिये ।।३१६।।

अवतरबादरप्रथमे लोभस्यांतर्मुहूर्तको बंधः ।
द्विदिनांतो घातित्रिके चतुर्वर्षांतोऽघातित्रये ।।३१६।।

टीका – उतरनेवाले बादरसाम्पराय अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में संज्वलन लोभ का स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त मात्र है, वह चढ़नेवाले अनिवृत्तिकरण के अंत समय संबंधी स्थितिबंध से दोगुणा जानना । तीन घातिकर्मों का कुछ कम दो दिन; नाम-गोत्र का कुछ कम चार दिन; वेदनीय का उससे डेढ़गुणा स्थितिबंध है । अंतर्मुहूर्त तक ऐसा समान बंध हुये पश्चात् संज्वलन लोभ का पहले से कुछ अधिक, तीन घातिकर्मों का पृथक्त्व दिन मात्र, तीन अघातिकर्मों का संख्यात हजार वर्ष मात्र स्थितिबंध होता है । ऐसे वृद्धिरूप संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर लोभवेदक

काल के दूसरे त्रिभाग का संख्यातवां भाग व्यतीत होनेपर संज्वलन लोभ का पृथक्त्व मुहूर्त, तीन घातिकर्मों का पृथक्त्व हजार वर्ष, तीन अघातिकर्मों का संख्यात हजार वर्ष प्रमाण स्थितिबंध होता है । हजारों स्थितिबंध बीतनेपर लोभवेदक का काल समाप्त होता है । आरोहक के लोभवेदक काल से अवरोहक का लोभवेदक काल किंचित् कम है । इसीतरह मायावेदक काल आदि की किंचित् न्यूनता जानना । जिस कषाय का जितने काल में उदय का भोगना होता है, उस प्रमाण उसका वेदक काल जानना ।

ओदरमायापढमे मायातिण्हं च लोभतिण्हं च ।
ओदरमायावेदगकालादहियो दु गुणसेढी ।।३१७।।

अवतरमायाप्रथमे मायात्रयाणां च लोभत्रयाणां च ।
अवतरमायावेदककालादधिका तु गुणश्रेणी ।।३१७।।

टीका – उतरनेवाला अनिवृत्तिकरण *(जीव)* लोभवेदक काल के अनंतर मायावेदक काल के प्रथम समय में अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन माया के द्रव्य को अपनी-अपनी द्वितीय स्थिति में से अपकर्षण करके उदयरूप संज्वलन माया के द्रव्य को तो उदयावली के प्रथम समय से लेकर और उदय रहित दो माया के द्रव्य को उदयावली से बाह्य प्रथम समय से लेकर आवली से अधिक मायावेदक काल प्रमाण अवस्थित आयाम में गुणश्रेणी करता है । पुनश्च उदय रहित तीन लोभ के भी द्वितीय स्थिति के द्रव्य का अपकर्षण करके उदयावली से बाह्य साधिक मायावेदक काल मात्र अवस्थित आयाम में गुणश्रेणी करता है । तथा अवशेष *(ज्ञानावरणादि)* छह कर्मों की पूर्वोक्त गलितावशेष आयाम में गुणश्रेणी करता है । उसी मायावेदक काल के प्रथम समय में तीन लोभ और दो माया का द्रव्य संज्वलन माया में संक्रमण करता है । अथवा दो माया और तीन लोभ का द्रव्य संज्वलन लोभ में संक्रमण करता है; क्योंकि यहां संज्वलन लोभ और माया ही का बंध है तथा बंध में ही *(बंधनेवाली प्रकृति में ही)* संक्रमण होता है । आनुपूर्वी संक्रमण के अभाव से ऐसा बंध *(ऐसा संक्रमण)* पाया जाता है ।

ओदरमायापढमे मायालोभे दुमासठिदिबंधो ।
छण्हं पुण वस्साणं संखेज्जसहस्सवस्साणि ।।३१८।।

अवतरमायाप्रथमे मायालोभे द्विमासस्थितिबंधः ।
षण्णां पुनः वर्षाणां संख्येयसहस्रवर्षाणि ।।३१८।।

टीका – उतरनेवाले मायावेदक काल के प्रथम समय में संज्वलन माया और लोभ का दो मास, तीन घातिकर्मों का संख्यात हजार वर्ष, तीन अघातिकर्मों का उससे संख्यातगुणा स्थितिबंध होता है । ऐसे संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर मायावेदक काल समाप्त होता है ।

ओदरगमाणपढमे तेत्तियमाणादियाण पयडीणं ।
ओदरगमाणवेदगकालादहियं दु गुणसेढी ।।३१९।।

अवतरकमानप्रथमे तावन्मानादिकानां प्रकृतीनाम् ।
अवतरकमानवेदककालादधिकातु गुणश्रेणी ।।३१९।।

टीका – उसके अनंतर मानवेदक काल के प्रथम समय में संज्वलन मान के द्रव्य को अपकर्षण करके उदयावली के प्रथम समय से लेकर तथा दो मान, तीन माया, तीन लोभ के द्रव्य को अपकर्षण करके उदयावली से बाह्य प्रथम समय से लेकर आवली अधिक मानवेदक काल प्रमाण अवस्थित आयाम में गुणश्रेणी करता है । अन्य कर्मों का गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम है ही । उसी समय में अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन लोभ, माया, मान रूप नौ कषायों का द्रव्य यहां बध्यमान *(बंधनेवाले)* संज्वलन मान, माया, लोभ में आनुपूर्वी रहित जहां तहां संक्रमण करता है ।

ओदरगमाणपढमे चउमासा माणपहुदिठिदिबंधो ।
छण्हं पुण वस्साणं संखेज्जसहस्समेत्ताणि ।।३२०।।

अवतरकमानप्रथमे चतुर्मासा मानप्रभृतिस्थितिबंधः ।
षण्णां पुनः वर्षाणां संख्येयसहस्रमात्राणि ।।३२०।।

टीका – उसी उतरनेवाले मानवेदक काल के प्रथम समय में संज्वलन मान, माया, लोभ का चार मास, तीन घातिकर्मों का संख्यात हजार वर्ष और तीन अघातिकर्मों का उससे संख्यातगुणा स्थितिबंध होता है । ऐसे संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर मानवेदक का काल समाप्त होता है ।

ओदरगकोहपढमे छक्कम्मसमाणया हु गुणसेढी ।
बादरकसायाणं पुण एतो गलिदावसेसं तु ।।३२१।।

अवतरकक्रोधप्रथमे षट्कर्मसमानिका हि गुणश्रेणी ।
बादरकषायाणां पुनः इतः गलितावशेषं तु ।।३२१।।

टीका – उसके अनंतर उतरनेवाला अनिवृत्तिकरण संज्वलन क्रोध के उदय के प्रथम समय में अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ रूप बारह कषायों की ज्ञानावरणादि छह कर्मों के समान गलितावशेष गुणश्रेणी करता है । इसके आयाम का प्रमाण उतरनेवाले के अनिवृत्तिकरण, अपूर्वकरण के काल से कुछ अधिक है । इससे पहले मोह का गुणश्रेणी आयाम अवस्थित था, अब गलितावशेषरूप प्रारंभ हुआ । पुनश्च इतना जानना –

जिस कषाय के उदय से उपशमश्रेणी चढ़ा हो पश्चात् उतरने में उस कषाय का जिस समय उदय होता है उस समय से लेकर सर्व मोह की गलितावशेष गुणश्रेणी करता है । तथा अंतर का पूरना करता है । यहां क्रोध की विवक्षा है, इसलिए उसकी अपेक्षा ही कथन करते हैं –

वहां उदयवान संज्वलन क्रोध के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग को ग्रहण कर उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एकभाग तो उदय समय से लेकर गुणश्रेणी आयाम में निक्षेपण करता है । बहुभाग मात्र द्रव्य में से कितने ही द्रव्य को अंतरायाम में **'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे'** इत्यादि विधान से चय घटते क्रम से निक्षेपण करके अवशेष द्रव्य को उस क्रोध की द्वितीय स्थिति में **'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा'** इत्यादि विधान से नानागुणहानि में अंत में अतिस्थापनावली छोड़कर निक्षेपण करता है । यहां अंतरायाम में कितना द्रव्य

दिया, उसको जानने के लिये उपाय कहते हैं –

द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक का जो द्रव्य का प्रमाण, उसको **'पदहतमुखमादिधनं'** इस सूत्र से अंतरायाम मात्र गच्छ से गुणा करके अंतरायाम में समपट्टिकारूप आदिधन होता है । द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक को दोगुणहानि का भाग देनेपर द्वितीय स्थिति की प्रथम गुणहानि में चय का प्रमाण आता है । उसको दो से गुणा करके उसके नीचे के अंतरायाम में चय का प्रमाण आता है । पुनश्च **'सैकपदाहतपददलद्वयहतमुत्तरधनं'** इस सूत्र से एक अधिक गच्छ से गच्छ के आधे प्रमाण को गुणा करके फिरसे उसको चय के प्रमाण से गुणा करके उत्तरधन का प्रमाण आता है । यहां प्रथम स्थान में भी चय मिला है, इसलिए ऐसा सूत्र कहा है । आदिधन और उत्तरधन मिलानेपर जो प्रमाण आता है, इतना द्रव्य यहां अंतरायाम में देता है । यहां द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक के नीचे अंतरायाम है, इसलिए उसकी अपेक्षा कथन किया है । इतना द्रव्य देनेपर जिन निषेकों का अभाव किया था उनका सद्भाव जैसे प्रथम स्थिति के चय घटते क्रम सहित पाया जाता है वैसे होता है । इसप्रकार निक्षेपण करनेपर गुणश्रेणीशीर्ष में निक्षेपण किये हुये द्रव्य से अंतरायाम के प्रथम निषेक में निक्षेपण किया हुआ द्रव्य असंख्यातगुणा हीन है । अंतरायाम के अंत निषेक में निक्षेपण किये हुये द्रव्य से द्वितीय स्थिति के प्रथम समय में *(प्रथम निषेक में)* निक्षेपण किया हुआ द्रव्य असंख्यातगुणा हीन है ऐसा जानना । *(यहां दिये हुये द्रव्य की बात है । अंतरायाम में तो पूरे निषेक तैयार होने हैं और ऊपर तो निषेक हैं ही उसमें तो दृश्यमानद्रव्य चयहीन ही दिखेगा)*

पुनश्च संज्वलन मानादि तीन कषाय के द्रव्य में उसके अनंतवें भाग मात्र सर्वघाति अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान आठ कषायों के द्रव्य को अधिक करनेपर उदय रहित ग्यारह कषायों का द्रव्य होता है । उस द्रव्य से अपकर्षण करके उदयावली से बाह्य गुणश्रेणी आयाम में, अंतरायाम में, द्वितीय स्थिति में पूर्वोक्त प्रकार से निक्षेपण करता है । क्रोध के उदय के प्रथम समय में बारह कषायों के द्रव्य को तत्काल बध्यमान संज्वलन क्रोधादि चारों में आनुपूर्वी बिना जहां तहां संक्रमण करता है ।

ओदरगकोहपढमे संजलणाणं तु अट्ठमासठिदी ।
छण्हं पुण वस्साणं संखेज्जसहस्सवस्साणि ।।३२२।।

अवतरकक्रोधप्रथमे संज्वलनानां तु अष्टमासस्थितिः ।
षण्णां पुनः वर्षाणां संख्येयसहस्रवर्षाणि ।।३२२।।

टीका – उतरनेवाले के क्रोध उदय के प्रथम समय में संज्वलन चारों कषायों का आठ मास, तीन घातिकर्मों का संख्यात हजार वर्ष, नाम-गोत्र का उससे संख्यातगुणा और वेदनीय का उससे डेढ़गुणा स्थितिबंध होता है ।

ओदरगपुरिसपढमे सत्तकसाया पणट्ठुवसमणा ।
उणवीसकसायाणं छक्कम्माणं समाणगुणसेढी ।।३२३।।

अवतरकपुरुषप्रथमे सप्तकषायाः प्रणष्टोपशमकाः ।
एकोनविंशकषायाणां षट्कर्मणां समानगुणश्रेणी ।।३२३।।

टीका – संज्वलन क्रोधवेदक काल में पुरुषवेद का उदय होने के प्रथम समय में पुरुषवेद और हास्यादि छह ऐसे सात नोकषायों का उपशमकरण नष्ट होता है *(इन सात नोकषायों को प्रनष्टउपशमक कहा – जिनका उपशमकरण नष्ट हुआ है ऐसे वे होते हैं)* । तब ही बारह कषाय और सात नोकषायों की ज्ञानावरणादि छह कर्मों के समान आयाम में गुणश्रेणी करता है । वहां उदयरूप पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध के द्रव्य को तो अपकर्षण करके उदय समय से लेकर और अन्य कषायों के द्रव्य को अपकर्षण करके उदयावली से बाह्य समय से लेकर पूर्वोक्त प्रकार से गुणश्रेणी आयाम, अंतरायाम और द्वितीय स्थिति में निक्षेपण करता है । तब ही सात नोकषायों का द्रव्य आनुपूर्वी बिना जहां तहां संक्रमण करता है । तभी पुरुषवेद के बंध का प्रारंभ होता है ।

पुंसंजलणिदराणं वस्सा बत्तीसयं तु चउसट्ठी ।
संखेज्जसहस्साणि य तक्काले होदि ठिदिबंधो ।।३२४।।

पुंसंज्वलनेतरेषां वर्षाणि द्वात्रिंशत् चतु:षष्टि: ।
संख्येयसहस्राणि च तत्काले भवति स्थितिबंध: ।।३२४।।

टीका – उतरनेवाले के पुरुषवेद के उदय के प्रथम समय में पुरुषवेद का बत्तीस वर्ष, संज्वलन चतुष्क का चौंसठ वर्ष, तीन घातिकर्मों का संख्यात हजार वर्ष, नाम-गोत्र का उससे संख्यातगुणा और वेदनीय का उससे डेढ़गुणा स्थितिबंध होता है ।

पुरिसे दु अणुवसंते इत्थी उवसंतगो त्ति अद्धाए ।
संखाभागासु गदेससंखवस्सं अघादिठिदिबंधो ।।३२५।।

पुरुषे तु अनुपशांते स्त्री उपशांतका इति अद्धाया: ।
संख्यभागेषु गतेष्वसंख्यवर्षं अघातिस्थितिबंध: ।।३२५।।

टीका – पुरुषवेद के उदयकाल में स्त्रीवेद का उपशम जितने काल तक नष्ट नहीं होता उतने काल का संख्यात बहुभाग व्यतीत होकर एकभाग रहनेपर अघातिकर्मों का स्थितिबंध असंख्यात वर्ष मात्र होता है ।

णवरि य णामदुगाणं बीसियपडिभागदो हवे बंधो ।
तीसियपडिभागेण य बंधो पुण वेयणीयस्स ।।३२६।।

नवरि च नामद्विकयो: बीसियप्रतिभागतो भवेद् बंध: ।
तीसियप्रतिभागेन च बंध: पुन: वेदनीयस्य ।।३२६।।

टीका – वहां इतना विशेष है कि नाम और गोत्र का पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध है । बीसिय का इतना हुआ तो तीसिय का कितना होगा ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर वेदनीय का डेढ़गुणा पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध है । तीन घातिकर्मों का संख्यात हजार वर्ष मात्र, मोहनीय का उससे संख्यातगुणा हीन संख्यात हजार वर्ष मात्र स्थितिबंध है ।

थी अणुवसमे पढमे बीसकसायाण होदि गुणसेढी ।
संढुवसमो त्ति मज्झे संखाभागेसु तीदेसु ।।३२७।।

स्त्री अनुपशमे प्रथमे विंशकषायाणां भवति गुणश्रेणी ।
षंढोपशम इति मध्ये संख्यभागेष्वतीतेषु ।।३२७।।

टीका – उससे बढ़ते हुये संख्यात हजार स्थितिबंध होकर अंतर्मुहूर्त काल जानेपर स्त्रीवेद का उपशम नष्ट होता है । वहां से लेकर स्त्रीवेद का द्रव्य संक्रमण, अपकर्षण आदि करने योग्य हुआ । उसके प्रथम समय में स्त्रीवेद के द्रव्य को अपकर्षण करके, यह उदय रहित होने के कारण, उदयावली से बाह्य से लेकर अन्य कर्मों के गुणश्रेणी आयाम के समान गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम में, अंतरायाम में और द्वितीय स्थिति में निक्षेपण करता है । तथा बारह कषाय और सात नोकषायों के द्रव्य को अपकर्षण करके पूर्वोक्त प्रकार से निक्षेपण करता है । इसतरह यहां बीस कषायों की गुणश्रेणी होती है । उसी काल में जब तक नपुंसकवेद का उपशम पाया जाता है तब तक के काल का संख्यात बहुभाग व्यतीत होनेपर क्या होता है ? वह कहते हैं –

घादितियाणं णियमा असंखवस्सं तु होदि ठिदिबंधो ।
तक्काले दुट्ठाणं रसबंधो ताण देसघादीणं ।।३२८।।

घातित्रयाणां नियमात् असंख्यवर्षस्तु भवति स्थितिबंधः ।
तत्काले द्विस्थानं रसबंधः तेषां देशघातिनाम् ।।३२८।।

टीका – तीन घातिकर्मों का पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र, नाम-गोत्र का उससे असंख्यातगुणा, वेदनीय का उससे डेढ़गुणा, मोहनीय का संख्यात हजार वर्ष मात्र स्थितिबंध होता है । इसी अवसर में चार ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण, पांच अंतराय इन देशघातिकर्मों का लता और दारु समान द्विस्थानगत अनुभागबंध होता है ।

संढणुवसमे पढमे मोहिगिवीसाण होदि गुणसेढी ।
अंतरकदो त्ति मज्झे संखभागासु तीदासु ।।३२९।।

षंढानुपशमे प्रथमे मोहैकविंशानां भवति गुणश्रेणी ।
अंतरकृत इति मध्ये संख्यभागेष्वतीतेषु ।।३२९।।

टीका – उससे बढ़ते क्रम से संख्यात हजार स्थितिबंध जानेपर नपुंसकवेद का उपशम नष्ट होता है, उसके प्रथम समय में नपुंसकवेद के द्रव्य को अपकर्षण करके उदयावली से बाह्य समय से लेकर तथा मोहनीय की अन्य बीस प्रकृतियों के द्रव्य को अपकर्षण करके पूर्वोक्त प्रकार से अन्य कर्मों के समान गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम में, अंतरायाम में, द्वितीय स्थिति में निक्षेपण करता है । नपुंसकवेद के उपशम का नाश होने के समय से लेकर उतरते हुये, चढ़नेवाला जिस अवसर में अंतरकरण का समाप्तपना करता है उस अवसर पाने तक अंतर्मुहूर्त काल है उसका संख्यात बहुभाग व्यतीत होनेपर क्या होता है ? वह कहते हैं –

मोहस्स असंखेज्जा वस्सपमाणा हवेज्ज ठिदिबंधो ।
ताहे तस्स य जादं बंधं उदयं च दुट्ठाणं ।।३३०।।

मोहस्य असंख्येयानि वर्षप्रमाणानि भवेत् स्थितिबंधः ।
तस्मिन् तस्य च जातो बंधं उदयश्च द्विस्थानम् ।।३३०।।

टीका – मोहनीय का असंख्यात वर्ष, तीन घातिकर्मों का उससे असंख्यातगुणा, नाम-गोत्र का उससे असंख्यातगुणा, वेदनीय का उससे अधिक स्थितिबंध होता है । इसी अवसर में मोहनीय का लता-दारुरूप द्विस्थानगत बंध और उदय होता है ।

लोहस्स असंकमणं छावलितीदेसुदीरणत्तं च ।
णियमेण पडंताणं मोहस्सणुपुव्विसंकमणं ।।३३१।।

लोभस्य असंक्रमणं षडावल्यतीतेषूदीरणत्वं च ।
नियमेन पततां मोहस्यानुपूर्विसंक्रमणम् ।।३३१।।

टीका – उतरनेवाले के सूक्ष्मसाम्पराय के पहले समय से लेकर बंधनेवाले कर्मों की छह आवली व्यतीत होनेपर ही उदीरणा होने का नियम था, उसको छोड़कर अब बंधावली व्यतीत होते ही उदीरणा करता है । उतरनेवाले के अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय से लेकर लोभ का संक्रमण नहीं था, वह चढ़नेवाले से विपरीत रूप द्वारा नष्ट होता है । इसका अर्थ यह है कि संज्वलन लोभ की मायादि में

संक्रमित होने की शक्ति हुयी है ।

मोह की सर्व प्रकृतियों का आनुपूर्वी संक्रमण का नियम हुया था, वह नष्ट होता है, जहां तहां स्वजातीय किसी भी चारित्रमोह की प्रकृति का किसी भी चारित्रमोह की प्रकृतियों में संक्रमण होता है ।

विवरीयं पडिहण्णदि विरयादीणं च देसघादित्तं ।
तह य असंखेज्जाणं उदीरणा समयपबद्धाणं ।।३३२।।

विपरीतं प्रतिहन्यते वीर्यादीनां च देशघातित्वम् ।
तथा च असंख्येयानामुदीरणा समयप्रबद्धानाम् ।।३३२।।

टीका – इसीतरह बढ़ते हुये हजारों स्थितिबंध जानेपर वीर्यांतराय का, उसके पश्चात् बहुत स्थितिबंध जानेपर मतिज्ञानावरण, उपभोगांतराय का, उसके पश्चात् बहुत स्थितिबंध जानेपर चक्षुदर्शनावरण का, उसके पश्चात् बहुत स्थितिबंध जानेपर श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण, भोगांतराय का; उसके पश्चात् बहुत स्थितिबंध जानेपर अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण, लाभांतराय का और उसके पश्चात् बहुत स्थितिबंध जानेपर मन:पर्ययज्ञानावरण, दानांतराय का क्रम से पूर्वोक्त देशघाति बंध होता था उसको छोड़कर सर्वघातिरूप अनुभागबंध होने लगा । *(देखिये चढ़ते हुये देशघातिकरण गाथा क्र. २३९, २४०)* उसके पश्चात् हजारों स्थितिबंध होनेपर असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होने का अभाव हुआ ।

लोयाणमसंखेज्जं समयपबद्धस्स होदि पडिभागो ।
तत्तियमेत्तद्दव्वस्सुदीरणा वट्टदे तत्तो ।।३३३।।

लोकानामसंख्येयं समयप्रबद्धस्य भवति प्रतिभाग: ।
तावन्मात्रद्रव्यस्योदीरणा वर्तते तत: ।।३३३।।

टीका – गुणश्रेणी करने के लिये जो द्रव्य अपकर्षण किया है उसमें से चढ़नेवाले जीव के उदयावली में द्रव्य देने के लिये पहले पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र भागहार कहा था, वह यहां तक चला आ रहा था, अब इस अवसर में नष्ट

हुआ । अब वहां असंख्यातलोक का भागहार हुआ । इसलिए असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होती थी उसका नाश होकर अब एक समयप्रबद्ध के असंख्यातवें भाग मात्र द्रव्य की उदीरणा होने लगी ।

अब क्रमकरण का नाश कहते हैं –

तक्काले मोहणियं तीसीयं वीसियं च वेयणियं ।
मोहं वीसिय तीसिय वेयणियं कमं हवे तत्तो ।।३३४।।

तत्काले मोहनीयं तीसियं वीसियं च वेदनीयं ।
मोहं वीसियं तीसियं वेदनीयं क्रमं भवेत् ततः ।।३३४।।

टीका – उस असंख्यातलोक मात्र भागहार होने के समय में मोह का सबसे थोड़ा पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र, उससे असंख्यातगुणा तीन घातिकर्मों का, उससे असंख्यातगुणा नाम-गोत्र का, उससे साधिक वेदनीय का स्थितिबंध होता है । उसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंध जानेपर मोह का सबसे थोड़ा पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र, उससे असंख्यातगुणा नाम-गोत्र का, उससे विशेष अधिक तीन घातिकर्मों का, उससे विशेष अधिक वेदनीय का स्थितिबंध होता है ।

मोहं वीसिय तीसिय तो वीसिय मोहतीसयाण कमं ।
वीसिय तीसिय मोहं अप्पाबहुगं तु अविरुद्धं ।।३३५।।

मोहं वीसियं तीसियं ततो वीसियं मोहतीसियानां क्रमं ।
वीसियं तीसियं मोहं अल्पबहुकं तु अविरुद्धम् ।।३३५।।

टीका – उसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंध जानेपर सबसे थोड़ा मोह का, उससे असंख्यातगुणा नाम-गोत्र का, उससे विशेष अधिक तीन घातिकर्म और वेदनीय का स्थितिबंध होता है । उसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंध जानेपर सबसे थोड़ा नाम-गोत्र का पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र, उससे विशेष अधिक मोह का, उससे विशेष अधिक तीन घातिकर्म और वेदनीय का स्थितिबंध होता है । उसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंध जानेपर सबसे थोड़ा नाम-गोत्र का, उससे विशेष अधिक तीन

घातिकर्म और वेदनीय का, उससे तीसरा भाग अधिक मोह का स्थितिबंध होता है ।

कमकरणविणट्ठादो उवरिट्ठविदा विसेसअहियाओ ।
सव्वासिं तण्णद्धे हेट्ठा सव्वासु अहियकमं ।।३३६।।

क्रमकरणविनाशात् उपरि स्थिता विशेषाधिका: ।
सर्वासां तदद्धायां अधस्तना सर्वासु अधिकक्रमं ।।३३६।।

टीका – क्रमकरण का विनाश जिस काल में हुआ, उस काल के ऊपर उस काल के अंत समय में पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध हुआ उससे लेकर पश्चात् उत्तर काल में सर्व कर्मप्रकृतियों के जो स्थितिबंध हैं, वे पूर्व स्थितिबंध से उत्तर स्थितिबंध विशेष अधिक होते हैं, गुणकाररूप नहीं हैं । क्रमकरण के नाश के नीचे उस क्रमकरण के काल के आदि में असंख्यात वर्ष मात्र स्थितिबंध हैं, उसके पहले संख्यात हजार वर्ष प्रमाण स्थितिबंध तक आयु बिना सात कर्मों का बंध होता है । वे भी पूर्व स्थितिबंध से उत्तर स्थितिबंध अधिक क्रम सहित होते हैं, गुणकाररूप नहीं हैं ।

जत्तोपाये होदि हु असंखवस्सप्पमाणठिदिबंधो ।
तत्तोपाये अण्णं ठिदिबंधमसंखगुणियकमं ।।३३७।।

यदुत्पादे भवति हि असंख्यवर्ष प्रमाणस्थितिबंध: ।
तदुपायेन अन्यं स्थितिबंधमसंख्यगुणितक्रमम् ।।३३७।।

टीका – जहां से लेकर नाम-गोत्र आदिकों का असंख्यात वर्ष मात्र स्थितिबंध का प्रारंभ हुआ, वहां से लेकर पूर्व-पूर्व स्थितिबंध से पश्चात्-पश्चात् जो स्थितिबंध होता है वह असंख्यातगुणा है, जब तक सबसे पश्चात् पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध हो, तब तक ऐसा ही क्रम जानना ।

एवं पल्लासंखं संखं भागं च होइ बंधेण ।
एत्तोपाये अण्णं ठिदिबंधो संखगुणियकमं ।।३३८।।

एवं पल्यासंख्यं संख्यं भागं भवति बंधेन ।
एतदुपायेन अन्य: स्थितिबंध: संख्यगुणित क्रम: ।।३३८।।

टीका – इसतरह यथासंभव हीनाधिक प्रमाण सहित पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध बढ़ते क्रम सहित संख्यात हजार व्यतीत होनेपर वहां सबसे अंत में जो पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध हुआ, उसके पश्चात् एक-एक काल में सातों कर्मों का स्थितिबंध पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र होता है ।

वहां विशेष इतना है कि बीसियों से तीसियों का डेढ़गुणा, चालीसियों का दोगुणा स्थितिबंध जानना । पल्य के असंख्यातवें भाग के भेद बहुत हैं, इसलिए हीनाधिकरूप अनेक स्थितिबंधों को आलाप द्वारा पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र ही कहा है । चढ़नेवाले के दूरापकृष्टि नामक स्थितिबंध क्रम से हुआ था, यहां उतरनेवाले के प्रतिपाती परिणामों द्वारा एक ही बार दूरापकृष्टि नामक स्थितिबंध होता है, उसके पश्चात् अनंतर अन्य स्थितिबंध होता है, वह सातों कर्मों का संख्यातगुणा होता है ।

मोहस्स य ठिदिबंधो पल्ले जादे तदा दु परिवड्ढी ।
पल्लस्स संखभागं इगिविगलासण्णिबंधसमं ।।३३९।।

मोहस्य च स्थितिबंध: पल्ये जाते तदा तु परिवृद्धि: ।
पल्यस्य संख्यभागं एकविकलासंज्ञिबंधसमं ।।३३९।।

टीका – ऐसे संख्यातगुणा क्रम युक्त संख्यात हजार स्थितिबंधोत्सरण होनेपर सबसे अंत में नाम-गोत्र का पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र, उससे डेढ़गुणा तीसियों का, दोगुणा मोहनीय का स्थितिबंध होता है । उसके अनंतर मोहनीय का पल्य मात्र, तीसियों का पल्य के तीन चतुर्थांश भाग मात्र, बीसियों का आधा पल्य मात्र स्थितिबंध होता है । पूर्व-पूर्व स्थितिबंध के प्रमाण को उत्तर-उत्तर स्थितिबंध के प्रमाण में से घटानेपर जो अवशेष रहे, वही पूर्वोक्त स्थितिबंध से उत्तर स्थितिबंध में वृद्धि का प्रमाण होता है । वैसा यहां भी साधन करके जानना । पुनश्च चालीसियों का स्थितिबंध पल्य मात्र होगा तो तीसिय अथवा बीसिय का कितना होगा ? ऐसा त्रैराशिक करके तीसियों का पल्य के तीन चतुर्थांश मात्र, बीसियों का आधा पल्य मात्र स्थितिबंध सिद्ध होता

है । ऐसे अन्यत्र भी त्रैराशिक जानना । जैसे स्थिति घटाने में पहले स्थितिबंधापसरण संज्ञा कही थी, वैसे स्थिति बढ़ाने में यहां स्थितिबंधोत्सरण संज्ञा जानना । एक-एक स्थितिबंधोत्सरण में पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र स्थिति बढ़ती है, ऐसे प्रत्येक संख्यात हजार स्थितिबंध होकर क्रम से एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय के स्थितिबंध के समान स्थितिबंध होता है ।

मोहस्स पल्लबंधे तिसदुगे तत्तिपादमद्धं च ।
दुतिचरुसत्तमभागा वीसतिये एयवियलठिदी ।।३४०।।

मोहस्य पल्यबंधे त्रिंशद्द्विके तत्त्रिपादमर्धं च ।
द्वित्रिचतु:सप्तमभागा वीसत्रिके एकविकलस्थिति: ।।३४०।।

टीका – जब मोहनीय का स्थितिबंध पल्य मात्र हुआ तब तीसिय कर्मों का पल्य के तीन चतुर्थांश भाग मात्र, बीसिय कर्मों का आधा पल्य मात्र स्थितिबंध होता है, वही कहते आये हैं । पुनश्च एकेन्द्रिय समान स्थितिबंध होता है, वहां मोहनीय का सागर के चार सप्तमांश *(चार बटे सात)* भाग मात्र, तीसिय कर्मों का सागर के तीन सप्तमांश *(तीन बटे सात)* भाग मात्र और बीसिय कर्मों का सागर के दो सप्तमांश *(दो बटे सात)* भाग मात्र स्थितिबंध जानना । पुनश्च द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी समान स्थितिबंध जहां होता है, वहां क्रम से एकेन्द्रिय समान बंध से पच्चीसगुणा, पचासगुणा, सौगुणा, हजारगुणा स्थितिबंध जानना ।

तत्तो अणियट्टिस्स य अंतं पत्तो हु तत्थ उदधीणं ।
लक्खपुधत्तं बंधो से काले पुव्वकरणो हु ।।३४१।।

तत: अनिवृत्तेश्च अंतं प्राप्तो हि तत्र उदधीनाम् ।
लक्षपृथक्त्वं बंध: स्वे काले अपूर्वकरणो हि ।।३४१।।

टीका – उसके पश्चात् अर्थात् असंज्ञी समान बंध के पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंधोत्सरण होनेपर उतरनेवाला अनिवृत्तिकरण के अंत समय को प्राप्त होता है । वहां मोहनीय, तीसिय, बीसिय का क्रम से पृथक्त्व लक्ष सागरों का चार

सप्तमांश, तीन सप्तमांश और दो सप्तमांश भाग मात्र स्थितिबंध होता है । उसके अनंतर समय में उतरनेवाला अपूर्वकरण होता है ।

उवसामणा णिधत्ती णिकाचणुग्घाडिदाणि तत्थेव ।
चदुतीसदुगाणं च य बंधो अद्धापवत्तो य ।।३४२।।

उपशामना निधत्तिः निकाचना उद्घटितानि तत्रैव ।
चतुस्त्रिंशद्द्विकानां च च बंधो अधाप्रवृत्तः च ।।३४२।।

टीका – उसके प्रथम समय से लेकर अप्रशस्तोपशमकरण, निधत्तिकरण और निष्काचनकरण युगपत् प्रकट होते हैं, इनका लक्षण पहले कहा ही था । अपूर्वकरण काल के सात भाग करके वहां प्रथम भाग में हास्य, रति, भय, जुगुप्सा इन चार प्रकृतियों का, दूसरे भाग में तीर्थंकरादि तीस प्रकृतियों का और छठवें भाग के अंत समय से लेकर निद्रा, प्रचला का बंध होता है । उसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंधोत्सरण होनेपर उतरनेवाले अपूर्वकरण के अंत समय में मोहनीय, तीसिय, बीसिय का क्रम से पृथक्त्व लक्ष कोटि सागरों के चार सप्तमांश, तीन सप्तमांश, दो सप्तमांश मात्र स्थितिबंध होता है । सर्व कर्मों की गुणश्रेणी गलितावशेष आयाम सहित यहां तक वर्तती है । उसके अनंतर समय में उतरकर अप्रमत्त गुणस्थान में अधःकरण परिणाम को प्राप्त होता है ।

पढमो अधापवत्तो गुणसेढिमवट्ठिदं पुराणादो ।
संखगुणं तच्चंतोमुहुत्तमेत्तं करेदी हु ।।३४३।।

प्रथमोऽधाप्रवृत्तः गुणश्रेणीमवस्थितां पुराणात् ।
संख्यगुणं तच्च अंतर्मुहूर्तमात्रं करोति हि ।।३४३।।

टीका – उसके प्रथम समय में, उतरनेवाले अपूर्वकरण के अंत समय में जितना द्रव्य अपकर्षण किया, उससे असंख्यातगुणा हीन *(असंख्यातवें भाग प्रमाण)* द्रव्य को अपकर्षण करके गुणश्रेणी करता है । सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में जिसका प्रारंभ हुआ है ऐसे पुराने गुणश्रेणी आयाम से संख्यातगुणा है, तो भी अंतर्मुहूर्त

मात्र इसका अवस्थित आयाम जानना । यहां विशुद्धता की हानि होने से गुणश्रेणी में द्रव्य का प्रमाण घट जाता है और आयाम का प्रमाण बढ़ जाता है ।

ओदरसुहुमादीदो अपुव्वचरिमो त्ति गलिदसेसे व ।
गुणसेढी णिक्खेवो सट्ठाणे होदि तिट्ठाणं ।।३४४।।

अवतरसूक्ष्मादितो अपूर्वचरम इति गलितशेषो वा ।
गुणश्रेणी निक्षेपः स्वस्थाने भवति त्रिस्थानम् ।।३४४।।

टीका – उतरनेवाले सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय से लेकर अपूर्वकरण के अंत समय तक ज्ञानावरणादि कर्मों का गुणश्रेणी आयाम है वह गलितावशेष है, अवशेष अवस्थित नहीं है ।

इतना विशेष – सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय से लेकर कुछ काल तक मोहनीय का गुणश्रेणी आयाम अवस्थित रहता है, पश्चात् अन्य कर्मों के गुणश्रेणी आयाम के समान मोहनीय का भी गुणश्रेणी आयाम गलितावशेष होता है । क्योंकि तीन स्थानों में बढ़कर अवस्थित गुणश्रेणी आयाम होता है । वही कहते हैं –

उतरनेवाले सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय से लेकर अवस्थित गुणश्रेणी आयाम ही है । पुनश्च स्पर्धकरूप बादरलोभ के द्रव्य के अपकर्षण में एक बार गुणश्रेणी आयाम बढ़कर बादरलोभवेदक काल तक अवस्थित रहता है । पुनश्च माया के द्रव्य के अपकर्षण में दूसरी बार बढ़कर माया के वेदक काल तक अवस्थित गुणश्रेणी आयाम रहता है । पुनश्च मान के द्रव्य के अपकर्षण में तीसरी बार बढ़कर मान के वेदक काल तक अवस्थित गुणश्रेणी आयाम रहता है । इसतरह तीन बार अवस्थित गुणश्रेणी आयाम होता है । पुनश्च चौथी बार क्रोध के अपकर्षण में बढ़कर अपूर्वकरण के अंत तक अन्य कर्मों के समान मोहनीय का भी गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम होता है । पुनश्च अधःप्रवृत्तकरण के प्रथम समय से लेकर अंतर्मुहूर्त तक पुराने गुणश्रेणी आयाम से संख्यातगुणा ज्ञानावरणादि कर्मों का अवस्थित गुणश्रेणी आयाम प्रवर्तता है । अधःप्रवृत्तकरण का जितना अंतर्मुहूर्त काल है, उतने काल में प्रतिसमय एकांतपने से अनंतगुणी हीन विशुद्धता से उतरकर पश्चात् स्वस्थानअप्रमत्त होता है ।

सट्ठाणे तावदियं संखगुणूणं तु उवरि चडमाणे ।
विरदाविरदाहिमुहे संखेज्जगुणं तदो तिविहं ।।३४५।।

स्वस्थाने तावत्कं संख्यगुणोनं तु उपरि चटमाने ।
विरताविरताभिमुखे संख्येयगुणं ततः त्रिविधं ।।३४५।।

टीका – वहां प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान में स्वस्थानसंयत होकर वृद्धि-हानि रहित अवस्थित गुणश्रेणी आयाम करता है । वही जीव यदि विरताविरत नामक पंचम गुणस्थान के सन्मुख हो तो संक्लेशता द्वारा पूर्व गुणश्रेणी आयाम से संख्यातगुणा बढ़ता गुणश्रेणी आयाम करता है । और यदि पलटकर उपशम या क्षपकश्रेणी चढ़ने के सन्मुख हो तो विशुद्धता द्वारा उस गुणश्रेणी आयाम से संख्यातगुणा हीन गुणश्रेणी आयाम करता है । इसतरह स्वस्थानसंयमी के गुणश्रेणी आयाम की वृद्धि, हानि और अवस्थित रूप तीन स्थान कहे ।

करणे अधापवत्ते अधापवत्तो दु संकमो जादो ।
विज्झादमबंधाणे णट्ठो गुणसंकमो तत्थ ।।३४६।।

करणे अधःप्रवृत्ते अधःप्रवृत्तस्तु संक्रमो जातः ।
विध्यातमबंधने नष्टो गुणसंक्रमस्तत्र ।।३४६।।

टीका – उतरनेवाले अधःप्रवृत्तकरण में जिन प्रकृतियों का बंध पाया जाता है उनके तो अधःप्रवृत्त नामक संक्रमण होता है अर्थात् इनका अन्य प्रकृतियों में संक्रमण होने में अधःप्रवृत्त नामक भागहार पाया जाता है । जिनका बंध नहीं पाया जाता उनका विध्यात संक्रमण पाया जाता है । इनका अन्य प्रकृतियों में संक्रमण होने में विध्यात नामक भागहार पाया जाता है । तथा गुणसंक्रमण का नाश ही होता है । इनका स्वरूप पहले कहा है *(कर्मकाण्ड भाग १ में)* वह जानना ।

चडणोदरकालादो पुव्वादो पुव्वगोत्ति संखगुणं ।
कालं अधापवत्तं पालदि सो उवसमं सम्मं ।।३४७।।

चटनावतरकालतोऽपूर्वात् अपूर्वक इति संख्यगुणं ।
कालं अध:प्रवृत्तं पालयति स उपशमं सम्यं ।।३४७।।

टीका – द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सहित चढ़नेवाले अपूर्वकरण के पहले समय से लेकर उतरनेवाले अपूर्वकरण के अंत समय तक जितना काल होता है, उससे संख्यातगुणा ऐसे अंतर्मुहूर्त मात्र द्वितीयोपशम सम्यक्त्व का काल है । इतने काल तक अध:प्रवृत्तकरण सहित इस द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को पालता है ।

तस्सम्मत्तद्धाए असंजमं देससंजमं वापि ।
गच्छेज्जावलिछक्के सेसे सासणगुणं वापि ।।३४८।।

तत्सम्यक्त्वाद्धायां असंयमं देशसंयमं वापि ।
गत्वावलिषट्के शेषे सासनगुणं वापि ।।३४८।।

टीका – उसी द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के काल में अध:प्रवृत्तकरण काल को समाप्त कर अप्रत्याख्यान के उदय से असंयम को प्राप्त हो जाये तो चौथे गुणस्थान में आता है ।

अथवा प्रत्याख्यान के उदय से देशसंयम को प्राप्त हो जाये तो पांचवें गुणस्थान में आता है; अथवा असंयम होकर वहां अंतर्मुहूर्त रहकर देशसंयत होता है; अथवा देशसंयत होकर वहां अंतर्मुहूर्त रहकर असंयत होता है; अथवा उस काल में से छह आवली अवशेष रहनेपर अनंतानुबंधी क्रोधादि में से किसी के उदय से सासादन को भी प्राप्त होता है ।

जदि मरदि सासणो सो णिरयतिरक्खं णरं ण गच्छेदि ।
णियमा देवं गच्छदि जइवसहमुणिंदवयणेण ।।३४९।।

यदि म्रियते सासन: स निरयतिर्यञ्चं नरं न गच्छति ।
नियमात् देवं गच्छति यतिवृषभमुनींद्रवचनेन ।।३४९।।

टीका – उपशमश्रेणी से उतरा हुआ जो सासादन जीव यदि आयु के नाश से मरता है, तो नरक, तिर्यंच और मनुष्य गति को प्राप्त नहीं होता, नियम से देवगति

ही को प्राप्त होता है । इसप्रकार उपशमश्रेणी से उतरे हुये जीव के सासादन गुणस्थान की प्राप्ति और उसके मरण होने का विशेष कहा है वह कषायप्राभृत नामक दूसरे महाधवल *(जयधवल होना चाहिये)* शास्त्र में यतिवृषभ नामक आचार्य ने प्रतिपादन किया है । उसके अनुसार यहां कथन किया है ।

णरतिरियक्खणराउगसत्तो सक्को ण मोहमुवसमिदुं ।
तम्हा तिसुवि गदीसु ण तस्स उप्पज्जाणं होदि ।।३५०।।

नरकतिर्यग्नरायुष्कसत्त्व: शक्यो न मोहमुपशमयितुम् ।
तस्मात् त्रिष्वपि गतिषु न तस्य उत्पादो भवति ।।३५०।।

टीका – नरक, तिर्यंच या मनुष्य *(बध्यमान)* आयु के सत्त्व सहित जीव चारित्रमोहनीय को उपशमाने को समर्थ नहीं है, क्योंकि नरकायु, तिर्यंचायु या मनुष्यायु के सत्त्व सहित जीव के देशसंयम या सकलसंयम की भी प्राप्ति का अभाव है । इसलिए उपशमश्रेणी से उतरे हुये सासादन के देवगति बिना अन्य गतियों में उपजना नहीं होता । पुनश्च पहले जिसके आयु का बंध हुआ हो उसी उपशमश्रेणी से उतरे हुये सासादन का मरण होता है, अबद्धायु का नहीं होता ।

उवसमसेढीदो पुण ओदिण्णो सासणं ण पाउणदि ।
भूदबलिणाहणिम्मलसुत्तस्स फुडोवदेसेण ।।३५१।।

उपशमश्रेणीत: पुनरवतीर्ण: सासनं न प्राप्नोति ।
भूतबलिनाथनिर्मलसूत्रस्य स्फुटोपदेशेन ।।३५१।।

टीका – उपशमश्रेणी से उतरा हुआ जीव सासादन को प्राप्त नहीं होता, क्योंकि पहले अनंतानुबंधी का विसंयोजन करके उपशमश्रेणी चढ़ा है, उसके अनंतानुबंधी का उदय नहीं पाया जाता । इसतरह भूतबलि नामक मुनिनाथ के कहे हुये महाकर्मप्रकृतिप्राभृत नामक पहले धवल शास्त्र में पूर्वापर दोष रहित निर्मल प्रकट उपदेश है, उसके द्वारा हमने निश्चय किया है ।

आगे उपशमश्रेणी चढ़नेवाले बारह प्रकार के जीव हैं, उनकी क्रिया में विशेष

है, वह कहते हैं –

पुंकोधोदयचलियस्सेसाह परूवणा हु पुंमाणे ।
मायालोभे चलिदस्सत्थि विसेसं तु पत्तेयं ।।३५२।।

पुंक्रोधोदयचटितस्य शेषा अथ प्ररूपणा हि पुंमाने ।
मायालोभे चटितस्यास्ति विशेषं तु प्रत्येकं ।।३५२।।

टीका – पूर्वोक्त सब प्ररूपणा पुरुषवेद और क्रोध कषाय सहित उपशमश्रेणी चढ़नेवाले जीव की कही है । परंतु पुरुषवेद और संज्वलन मान या माया या लोभ सहित उपशमश्रेणी चढ़नेवालों की क्रिया विशेष है; वही कहते हैं –

दोण्हं तिण्हं चउण्हं कोहादीणं तु पढमठिदिमित्तं ।
माणस्स य मायाए बादरलोहस्स पढमठिदी ।।३५३।।

द्वयोः त्रयाणां चतुर्णां क्रोधादीनां तु प्रथमस्थितिमात्रम् ।
मानस्य च मायाया बादरलोभस्य प्रथमस्थितिः ।।३५३।।

टीका – पुरुषवेद और क्रोध के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव की क्रोध और मान की प्रथम स्थिति मिलाकर जितनी होती है, उतनी मान के उदय सहित चढ़नेवाले जीव की मान की प्रथम स्थिति होती है ।

भावार्थ – क्रोध के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवाले के तो पहले क्रोध का उदय होता है, पश्चात् मान का उदय होता है; परंतु मान के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवाले के क्रोध का उदय नहीं होता, मान का ही उदय होता है । उसके उन दोनों के उदयकाल के समान इसके मान का उदयकाल है इसलिए उन दोनों की प्रथम स्थिति के समान इसके मान की प्रथम स्थिति कही है । इसीतरह आगे समझना ।

पुनश्च क्रोध के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव की क्रोध, मान और माया की प्रथम स्थिति मिलाकर जितनी होती है उतनी माया के उदय सहित चढ़नेवाले जीव के माया की प्रथम स्थिति होती है । यहां ऐसा जानना –

क्रोध के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवाले के तो क्रम से चारों कषायों का उदय

होता है; मान सहित चढ़नेवाले के क्रोध बिना तीन का ही उदय होता है; माया सहित चढ़नेवाले के माया और लोभ का ही उदय होता है; लोभ सहित चढ़नेवाले के केवल लोभ ही का उदय होता है; इसलिए पूर्वोक्त प्रकार से प्रथम स्थिति कही है । पुनश्च चारों कषायों में से किसी भी कषाय के उदय सहित चढ़नेवाले सर्व ही जीवों के सूक्ष्मलोभ की प्रथम स्थिति समान है और उनके नपुंसकवेद, स्त्रीवेद तथा सात नोकषायों का उपशमन काल समान है ।

जस्सुदयेणारूढो सेढीं तस्सेव ठविदि पढमठिदि ।
सेसाणावलिमेत्तं मोत्तूण करेदि अंतरं णियमा ।।३५४।।

यस्योदयेनारूढो श्रेणिं तस्यैव स्थापयति प्रथमस्थितिः ।
शेषाणामावलिमात्रं मुक्त्वा करोति अंतरं नियमात् ।।३५४।।

टीका – जिस वेद और कषाय के उदय सहित जीव श्रेणी चढ़ा हो, उसकी तो अंतर्मुहूर्त मात्र प्रथम स्थिति स्थापित करता है, उस प्रथम स्थिति के ऊपर के निषेकों का अंतर करता है तथा उदय रहित वेद और कषायों की आवली मात्र स्थिति छोड़कर उसके ऊपर के निषेकों का अंतर करता है ।

जस्सुदयेणारूढो सेढिं तक्कालपरिसमत्तीए ।
पढमट्ठिदिं करेदि हु अणंतरुवरुदयमोहस्स ।।३५५।।

यस्योदयेनारूढः श्रेणिं तत्कालपरिसमाप्तौ ।
प्रथमस्थितिं करोति हि अनंतरोपर्युदयमोहस्य ।।३५५।।

टीका – जिस कषाय के उदय सहित श्रेणी चढ़ा है उस कषाय की प्रथम स्थिति समाप्त होनेपर उसके अनंतरवर्ती कषाय की प्रथम स्थिति करता है । वही कहते हैं – क्रोध सहित श्रेणी चढ़े हुये जीव के क्रोध की प्रथम स्थिति का काल पूर्ण होने के पश्चात् मान की प्रथम स्थिति होती है । ऐसे ही ऊपर मायादिक की जानना । मान सहित श्रेणी चढ़े हुये जीव के मान की प्रथम स्थिति समाप्त होने के पश्चात् माया की प्रथम स्थिति होती है, ऐसे ही ऊपर जानना । माया सहित श्रेणी चढ़े हुये जीव

के माया की प्रथम स्थिति पूर्ण होने के पश्चात् लोभ की प्रथम स्थिति होती है, ऐसे ही ऊपर जानना । लोभ सहित श्रेणी चढ़े हुये जीव के लोभ की प्रथम स्थिति पूर्ण होने के पश्चात् सूक्ष्मलोभ की प्रथम स्थिति होती है ।

माणोदएण चडिदो कोहं उवसमदि कोहअद्धाए ।
मायोदएण चडिदो कोहं माणं सगद्धाए ।।३५६।।

मानोदयेन चटित: क्रोधं उपशमयति क्रोधाद्धायाम् ।
मायोदयेन चटित: क्रोधं मानं स्वकाद्धायाम् ।।३५६।।

टीका – क्रोध के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव के जो क्रोध के उदय का काल है, उस काल में ही मान के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवाला जीव उदय रहित तीन क्रोधों को *(अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, संज्वलन क्रोध)* उपशमाता है ।

उसी प्रकार माया के उदय सहित चढ़नेवाला जीव उदय रहित तीन क्रोध और तीन मान को, क्रम से क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव के जो क्रोध की प्रथम स्थिति और मान की प्रथम स्थिति का काल है, उस काल में ही उपशमाता है ।

लोभोदएण चडिदो कोहं माणं च मायमुवसमदि ।
अप्पप्पण अद्धाणे ताणं पढमट्ठिदी णत्थि ।।३५७।।

लोभोदयेन चटित: क्रोधं मानं च मायामुपशमयति ।
आत्मात्मन: अध्वाने तेषां प्रथमस्थितिर्नास्ति ।।३५७।।

टीका – लोभ के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवाला जीव उदय रहित तीन क्रोध, तीन मान और तीन माया को क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव के जो क्रोध, मान और माया की प्रथम स्थिति का काल है, उस काल में क्रम से उपशमाता है । इस जीव के उन क्रोधादि की प्रथम स्थिति का अभाव है, क्योंकि लोभ सहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव के क्रोधादि का उदय नहीं पाया जाता ।

माणोदयचडपडिदो कोहोदयमाणमेत्तमाणुदओ ।
माणतियाणं सेसे सेससमं कुणदि गुणसेढी ।।३५८।।

मानोदयचटपतितः क्रोधोदयमानमात्रमानोदयः ।
मानत्रयाणां शेषे शेषसमं करोति गुणश्रेणीं ।।३५८।।

टीका – मान के उदय सहित श्रेणी चढ़कर उतरनेवाले *(गिरनेवाले)* जीव के क्रोध के उदय सहित चढ़नेवाले जीव के क्रोध और मान का उदय काल मिलानेपर जितना हो उतना मान का उदय काल है ।

इसीतरह माया के उदय सहित श्रेणी चढ़कर उतरनेवाले जीव के क्रोध सहित चढ़नेवाले के क्रोध, मान, माया के उदय का जितना काल हो, उतना माया का उदय काल है । लोभ के उदय सहित चढ़कर उतरनेवाले जीव के क्रोध सहित चढ़नेवाले के जितना क्रोध, मान, माया, लोभ का उदय काल हो उतना एक लोभ ही का उदय काल होता है । पुनश्च मान, माया सहित चढ़कर उतरनेवाले जीव क्रम से मान, माया, लोभ के द्रव्य को अपकर्षण करके ज्ञानावरणादि के गुणश्रेणी आयाम के समान गलितावशेष आयाम द्वारा गुणश्रेणी करते हैं ।

भावार्थ – मान के उदय सहित चढ़कर जो जीव उतरता है, उसके क्रम से लोभ, माया, मान का उदय होता है । वहां मान का उदय होनेपर मोह का गुणश्रेणी आयाम अन्य कर्मों के समान करता है, क्योंकि इसके क्रोध का उदय होनेवाला नहीं है । इसीतरह माया के उदय सहित चढ़कर उतरनेवाले जीव के लोभ का उदय आने के पश्चात् माया का उदय आनेपर अन्य कर्मों के समान मोह का गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम होता है तथा लोभ के उदय सहित चढ़कर उतरनेवाले के लोभ ही का उदय है, इसलिए पहले से ही अन्य कर्मों के समान मोह का गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम होता है ।

माणादितियाणुदये चडपडिये सगसगुदयसंपत्ते ।
णवछत्तिकसायाणं गलिदवसेसं करेदि गुणसेढी ।।३५९।।

मानादित्रयाणामुदये चटपतिते स्वकस्वकोदयसंप्राप्ते ।
नवषट्त्रिकषायाणां गलितावशेषां करोति गुणश्रेणिं ।।३५९।।

टीका – मान, माया, लोभ के उदय सहित चढ़कर उतरनेवाले जीव अपनी अपनी कषाय के उदय को प्राप्त होते हुये क्रम से नौ कषायों की और छह कषायों की और तीन कषायों की पूर्वोक्त प्रकार से गलितावशेष आयाम गुणश्रेणी करते हैं ।

भावार्थ – जिसतरह क्रोध के उदय सहित श्रेणी चढ़कर उतरनेवाला जीव क्रोध का उदय आनेपर बारह कषायों की पूर्वोक्त प्रकार से गलितावशेष आयाम युक्त गुणश्रेणी करता है; उसप्रकार मान के उदय सहित श्रेणी चढ़कर उतरनेवाला जीव मान का उदय आनेपर क्रोध बिना नौ कषायों की *(गलितावशेष आयाम गुणश्रेणी)* करता है; माया सहित श्रेणी चढ़कर उतरनेवाला जीव माया का उदय होनेपर लोभ, मायारूप छह कषायों की *(गलितावशेष आयाम गुणश्रेणी)* करता है; लोभ सहित श्रेणी चढ़कर उतरनेवाला जीव लोभ का उदय आनेपर तीन प्रकार के लोभ ही का अन्य कर्मों के समान गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम करता है ।

जस्सुदएण य चडिदो तम्हि य उक्कट्टियम्हि पडिऊण ।
अंतरमाऊरेदि हु एवं पुरिसोदए चडिदो ।।३६०।।

यस्योदयेन च चटितः तस्मिंश्च अपकर्षिते पतित्वा ।
अंतरमापूरयति हि एवं पुरुषोदये चटितः ।।३६०।।

टीका – जिस कषाय के उदय सहित चढ़कर उतरा हो, उसी कषाय के द्रव्य का अपकर्षण होते हुये अंतर को पूरता है *(भर देता है)* अर्थात् नष्ट किये हुये निषेकों का सद्भाव करता है ।

भावार्थ – जिसतरह क्रोध सहित चढ़कर उतरनेवाला जीव क्रोध का उदय आनेपर द्रव्य को अपकर्षण करके अंतर को पूर देता है, उसतरह मान सहित चढ़कर उतरनेवाला जीव मान का उदय आनेपर और माया सहित चढ़कर उतरनेवाला जीव माया का उदय आनेपर और लोभ सहित चढ़कर उतरनेवाला जीव लोभ का उदय आनेपर प्रथम समय में द्रव्य को अपकर्षण करके अंतरकरण में जो निषेक नष्ट किये

थे उनमें द्रव्य का निक्षेपण करके उनका सद्भाव करता है । इसप्रकार पुरुषवेद युक्त क्रोधादि सहित श्रेणी चढ़ने-उतरनेवालों का व्याख्यान जानना ।

थी उदयस्स य एवं अवगदवेदो हु सत्तकम्मंसे ।
सममुवसामदि संढस्सुदए चडिदस्स वोच्छामि ।।३६१।।

स्त्री उदयस्य च एवं अपगतवेदो हि सप्तकर्मांशान् ।
सममुपशमयति षंढस्योदये चटितस्य वक्ष्यामि ।।३६१।।

टीका – स्त्रीवेद युक्त क्रोधादि के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवाले चार प्रकार के जीव *(स्त्रीवेद के साथ क्रोध या मान या माया या लोभ सहित जीव)* वेद के उदय रहित होते हुये पुरुषवेद और हास्यादि छह इन सात नोकषायों को युगपत् उपशमाते हैं । अन्य सर्व विधान पुरुषवेद के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव के समान जानना ।

अब नपुंसकवेद के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवाले के विशेष है, वह कहते हैं –

संढुदयंतरकरणो संढद्धाणम्हि अणुवसंतेसे ।
इत्थिस्स य अद्धाए संढं इत्थिं च समगमुवसमदि ।।३६२।।

षंढोदयांतरकरण: षंढाद्धायां अनुपशांतांशे ।
स्त्रिय: च अद्धायां षंढं स्त्रीं च समकमुपशमयति ।।३६२।।

टीका – नपुंसकवेद युक्त क्रोधादि के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवाले चार प्रकार के जीव, नपुंसकवेद का अंतर करते हुये पुरुषवेद सहित चढ़नेवाले जीव के नपुंसकवेद और स्त्रीवेद को उपशमाने का जितना काल है, उसप्रमाण नपुंसकवेद की प्रथम स्थिति को स्थापते हैं । स्थापित करके पुरुषवेद सहित चढ़नेवाले जीव के नपुंसकवेद को उपशमाने का जो काल पाया जाता है उतने काल के अंत तक नपुंसकवेद को उपशमाता हुआ प्राप्त होता है फिर भी इसके नपुंसकवेद का उपशम समाप्त नहीं होता । उसके पश्चात् यह स्त्रीवेद और नपुंसकवेद इन दोनों का युगपत् उपशम करने लगता है ।

वहां पुरुषवेद सहित चढ़नेवाले जीव के स्त्रीवेद को उपशमाने का जो काल,

उस काल को प्राप्त होनेपर क्या होता है, वह कहते हैं –

ताहे चरिमसवेदो अवगदवेदो हु सत्तकम्मंसे ।
सममुवसामदि सेसा पुरिसोदयचलिदभंगा हु ।।३६३।।

तस्मिन् चरमसवेदो अवगतवेदो हि सप्तकर्मांशान् ।
सममुपशमयति शेषाः पुरुषोदयचलितभङ्गा हि ।।३६३।।

टीका – वहां सवेद अवस्था के अंत समय को प्राप्त होता हुआ स्त्रीवेद और नपुंसकवेद के उपशमन को युगपत् समाप्त करता है । उसके बाद अवगतवेदी *(अपगतवेदी, अवेदी)* होता हुआ पुरुषवेद और हास्यादि छह इन सात नोकषायों को युगपत् उपशमाता है । अन्य सर्व विधान पुरुषवेद सहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव के समान जानना ।

पुंकोहस्स य उदए चलपलिदेऽपुव्वदो अपुव्वो त्ति ।
एदिस्से अद्धाणं अप्पाबहुगं तु वोच्छामि ।।३६४।।

पुंक्रोधस्य च उदये चटपतितेऽपूर्वतः अपूर्व इति ।
एतस्य अद्धानामल्पबहुकं तु वक्ष्यामि ।।३६४।।

टीका – पुरुषवेद और क्रोध कषाय के उदय सहित चढ़कर उतरनेवाले जीव के आरोहक अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर अवरोहक अपूर्वकरण के अंत समय तक के काल में पाये जानेवाले अल्पबहुत्व के स्थानों को कहूंगा । यहां श्रेणी चढ़नेवाले का नाम आरोहक जानना और उतरनेवाले का नाम अवरोहक जानना । जहां विशेष अधिक है, वहां पूर्व से कुछ अधिक जानना ऐसी संज्ञा है ।

अवरादो वरमहियं रसखंडुक्कीरणस्स अद्धाणं ।
संखगुणं अवरट्ठिदिखंडस्सुक्कीरणो कालो ।।३६५।।

अवरात् वरमधिकं रसखंडोत्करणस्याध्वानम् ।
संख्यगुणं अवरस्थितिखंडोस्योत्करणः कालः ।।३६५।।

टीका – (१) सबसे अल्प जघन्य अनुभागकांडकोत्करण का काल अंतर्मुहूर्त मात्र है, जो ज्ञानावरणादि कर्मों का तो आरोहक सूक्ष्मसाम्पराय का अंतिम अनुभागकांडकोत्करण जानना और मोह का अंतर करते हुये अंतिम अनुभागकांडकोत्करण जानना । (२) उससे उत्कृष्ट अनुभागकांडकोत्करण काल विशेष अधिक है, यह सर्व कर्मों के आरोहक अपूर्वकरण के प्रथम समय में पाया जाता है । (३) उससे सूक्ष्मसाम्पराय के अंतिम समय में पाया जानेवाला ज्ञानावरणादि कर्मों का जघन्य स्थितिकांडकोत्करण काल और अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में पाया जानेवाला ऐसा मोहनीय का जघन्य स्थितिबंध जितने काल तक होता है, वह काल संख्यातगुणा है और वे दोनों परस्पर समान हैं ।

पडणजहण्णट्ठिदिबंधद्धा तह अंतरस्स करणद्धा ।
जेट्ठट्ठिदिबंधठिदीउक्कीरद्धा य अहियकमा ।।३६६।।

पतनजघन्यस्थितिबंधाद्धा तथा अंतरस्य करणाद्धा ।
ज्येष्ठस्थितिबंधस्थित्युत्करणाद्धा च अधिकक्रमा: ।।३६६।।

टीका – (४) उससे अवरोहक सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में पाया जानेवाला ज्ञानावरणादि कर्मों का जघन्य स्थितिबंधापसरण काल *(जघन्य स्थितिबंध का काल)* और अवरोहक अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में पाया जानेवाला मोह का जघन्य स्थितिबंधापसरण काल विशेष अधिक हैं । वे दोनों परस्पर समान हैं । (५) उससे अंतरकरण करने का काल विशेष अधिक है ।

यहां कोई कहेगा – कि पहले *(गाथा ९४ की टीका में)* स्थितिकांडकोत्करण काल के समान अंतरकरण काल कहा था, यहां अधिक कैसे कहते हो ?

उसका समाधान – पहले वहां पाया जानेवाला जो मध्य स्थितिकांडकोत्करण काल, उसके समान अंतरकरण काल कहा था; यहां जघन्य स्थितिकांडकोत्करण काल से अधिक कहा है ।

(६) उससे आरोहक अपूर्वकरण के प्रथम समय में पाया जानेवाला ऐसा उत्कृष्ट स्थितिबंध काल अर्थात् जितने काल तक समानरूप से उत्कृष्ट स्थितिबंध होता है

ऐसा स्थितिबंधापसरण काल और उत्कृष्ट स्थितिकांडकोत्करण काल विशेष अधिक हैं; वे दोनों परस्पर समान हैं ।

सुहमंतिमगुणसेढी उवसंतकसायगस्स गुणसेढी ।
पडिवदसुहुमद्धावि य तिण्णिवि संखेज्जगुणिदकमा ।।३६७।।

सूक्ष्मांतिमगुणश्रेणी उपशांतकषायकस्य गुणश्रेणी ।
प्रतिपतत्सूक्ष्माद्धापि च तिस्रोऽपि संख्येयगुणितक्रमाः ।।३६७।।

टीका – (७) उससे आरोहक सूक्ष्मसाम्पराय के अंतिम समय में पाया जानेवाला ऐसा गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम संख्यातगुणा है । (८) उससे उपशांतकषाय के प्रथम समय में प्रारंभ हुआ ऐसा गुणश्रेणी आयाम संख्यातगुणा है । (९) उससे उतरनेवाले सूक्ष्मसाम्पराय का काल संख्यातगुणा है ।

तग्गुणसेढी अहिया चलसुहुमो किट्टिउवसमद्धा य ।
सुहुमस्स य पढमठिदी तिण्णिवि सरिसा विसेसहिया ।।३६८।।

तद्गुणश्रेणी अधिका चलसूक्ष्मः कृष्ट्युपशमाद्धा च ।
सूक्ष्मस्य च प्रथमस्थितिः तिस्रोऽपि सदृशा विशेषाधिकाः ।।३६८।।

टीका – (१०) उससे उतरनेवाले सूक्ष्मसाम्पराय के सूक्ष्मलोभ का गुणश्रेणी आयाम आवली मात्र विशेष से अधिक है । (११) उससे आरोहक सूक्ष्मसाम्पराय का काल और सूक्ष्मकृष्टि उपशमाने का काल और सूक्ष्मसाम्पराय की प्रथम स्थिति का आयाम यथासंभव अंतर्मुहूर्त मात्र विशेष से अधिक हैं । ये तीनों परस्पर समान हैं ।

किट्टीकरणद्धहिया पडबादरलोभवेदगद्धा हु ।
संखगुणा तस्सेव य तिलोहगुणसेढिणिक्खेओ ।।३६९।।

कृष्टिकरणाद्धाधिका पतद्बादरलोभवेदकाद्धा हि ।
संख्यगुणं तस्यैव च त्रिलोभगुणश्रेणिनिक्षेपः ।।३६९।।

टीका – (१२) उससे सूक्ष्मकृष्टि करने का काल विशेष अधिक है । यह

लोभवेदक
अनिवृत्तिकरण काल के किंचित् कम त्रिभाग मात्र है । (१३) उससे उतरनेवाले के बादरलोभवेदक का काल संख्यातगुणा है । (१४) उससे उतरनेवाले अनिवृत्तिकरण के तीन लोभ की गुणश्रेणी का आयाम आवली मात्र अधिक है ।

चडबादरलोहस्स य वेदगकालो य तस्स पढमठिदी ।
पडलोहवेदगद्धा तस्सेव य लोहपढमठिदी ।।३७०।।

चटबादरलोभस्य च वेदककालश्च तस्य प्रथमस्थितिः ।
पतल्लोभवेदकाद्धा तस्यैव च लोभप्रथमस्थितिः ।।३७०।।

टीका – (१५) उससे आरोहक अनिवृत्तिकरण के बादरलोभ का वेदक काल अंतर्मुहूर्त से अधिक है । (१६) उससे आरोहक अनिवृत्तिकरण के बादरलोभ की प्रथम स्थिति का आयाम विशेष अधिक है । (१७) उससे उतरनेवाले के लोभ का वेदक काल विशेष अधिक है । (१८) उससे उतरनेवाले के लोभ की प्रथम स्थिति का आयाम आवली मात्र अधिक है ।

तम्मायावेदद्धा पडिवडछण्हं पि खित्तगुणसेढी।
तम्माणवेदगद्धा तस्स णवण्हं पि गुणसेढी ।।३७१।।

तन्मायावेदकाद्धा प्रतिपतत्षण्णामपि क्षिप्तगुणश्रेणी ।
तन्मानवेदकाद्धा तस्य नवानामपि गुणश्रेणी ।।३७१।।

टीका – (१९) उससे उतरनेवाले के मायावेदक काल अंतर्मुहूर्त से अधिक है । (२०) उससे उतरनेवाले के मायावेदक के छह कषायों का *(३ लोभ, ३ माया)* गुणश्रेणी आयाम आवली से अधिक है । (२१) उससे उतरनेवाले के मानवेदक काल अंतर्मुहूर्त से अधिक है । (२२) उससे उसीके नौ कषायों का *(३ लोभ, ३ माया, ३ मान)* गुणश्रेणी आयाम आवली से अधिक है ।

चडमायावेदद्धा पढमट्ठिदिमायउवसमद्धा य ।
चलमाणवेदगद्धा पढमट्ठिदिमाणउवसमद्धा य ।।३७२।।

चटमायावेदाद्धा प्रथमस्थितिमायाउपशमाद्धा च ।
चटमानवेदकाद्धा प्रथमस्थितिमानोपशमाद्धा च ।।३७२।।

टीका – (२३) उससे चढ़नेवाले के मायावेदक काल अंतर्मुहूर्त से अधिक है । (२४) उससे उसके माया की प्रथम स्थिति का आयाम उच्छिष्टावली से अधिक है । (२५) उससे माया के उपशमाने का काल एक समय कम आवली मात्र अधिक है । (२६) उससे चढ़नेवाले के मानवेदक काल अंतर्मुहूर्त से अधिक है । (२७) उससे उसकी प्रथम स्थिति का आयाम आवली मात्र अधिक है । (२८) उससे उसके मान उपशमाने का काल एक समय कम आवली मात्र अधिक है ।

कोहोवसामणद्धा छप्पुरिसित्थीण उवसमाणं च ।
खुद्दभवगहणं च य अहियकमा एक्कवीसपदा ।।३७३।।

क्रोधोपशामनाद्धा षट्पुरुषस्त्रीनामुपशमानां च ।
क्षुद्रभवग्रहणं च च अधिकक्रमाणि एकविंशपदानि ।।३७३।।

टीका – (२९) उससे क्रोध के उपशमाने का काल अंतर्मुहूर्त से अधिक है । (३०) उससे छह नोकषायों *(हास्यादि)* के उपशमाने का काल विशेष अधिक है । (३१) उससे पुरुषवेद के उपशमाने का काल एक समय कम दो आवली से अधिक है । (३२) उससे स्त्रीवेद के उपशमाने का काल अंतर्मुहूर्त से अधिक है । (३३) उससे नपुंसकवेद के उपशमाने का काल अंतर्मुहूर्त से अधिक है । (३४) उससे क्षुद्रभव का काल विशेष अधिक है, जो एक उच्छ्वास के अठारहवें भाग मात्र है ।

उवसंतद्धा दुगुणा तत्तो पुरिसस्स कोहपढमठिदी ।
मोहोवसामणद्धा तिण्णिवि अहियक्कमा होंति ।।३७४।।

उपशांताद्धा द्विगुणा ततः पुरुषस्य क्रोधप्रथमस्थितिः ।
मोहोपशमनाद्धा त्रीण्यपि अधिकक्रमाणि भवंति ।।३७४।।

टीका – (३५) उस क्षुद्रभव से उपशांतमोह का काल दोगुणा है ।

(३६) उससे पुरुषवेद की प्रथम स्थिति का आयाम विशेष अधिक है । (३७) उससे संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति का आयाम किंचित् कम त्रिभाग मात्र से अधिक है । (३८) उससे सर्व मोहनीय के उपशमाने का काल है, वह नपुंसकवेद के उपशमाने के प्रारंभ से लेकर मान, माया, लोभ के उपशमकाल से साधिक है ।

पडणस्स असंखाणं समयपबद्धाणुदीरणाकालो ।
संखगुणो चडणस्स य तक्कालो होदि अहियो य ।।३७५।।

पतनस्यासंख्यानां समयप्रबद्धानामुदीरणाकाल: ।
संख्यगुण: चटनस्य च तत्कालो भवत्यधिकश्च ।।३७५।।

टीका – (३९) उससे उतरनेवाले के असंख्यात समयप्रबद्ध की उदीरणा होने का काल संख्यातगुणा है *(देखिये गाथा ३३३ की टीका)* । (४०) उससे चढ़नेवाले के असंख्यात समयप्रबद्ध की उदीरणा होने का काल *(देखिये गाथा २३८ की टीका)* अंतर्मुहूर्त मात्र अधिक है ।

पडणाणियट्टियद्धा संख्यगुणा चडणगा विसेसहिया ।
पडमाणापुव्वद्धा संखगुणा चडणगा अहिया ।।३७६।।

पतनानिवृत्त्यद्धा संख्यगुणा चटनका विशेषाधिका ।
पतंत्यापूर्वाद्धा: संख्यगुणा: चटनका अधिका: ।।३७६।।

टीका – (४१) उससे उतरनेवाले के अनिवृत्तिकरण का काल संख्यातगुणा है । (४२) उससे चढ़नेवाले के अनिवृत्तिकरण का काल अंतर्मुहूर्त मात्र अधिक है । (४३) उससे उतरनेवाले के अपूर्वकरण का काल संख्यातगुणा है । (४४) उससे चढ़नेवाले के अपूर्वकरण का काल अंतर्मुहूर्त से अधिक है ।

पडिवडवरगुणसेढी चडमाणापुव्वपढमगुणसेढी ।
अहियकमा उवसामगकोहस्स य वेदगद्धा हु ।।३७७।।

प्रतिपतद्वरगुणश्रेणी चटदपूर्वप्रथमगुणश्रेणी ।
अधिकक्रमा उपशामकक्रोधस्य च वेदकाद्धा हि ।।३७७।।

टीका – (४५) उससे उतरनेवाले के सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में प्रारंभ किया हुआ उत्कृष्ट गुणश्रेणी आयाम अंतर्मुहूर्त से अधिक है । (४६) उससे चढ़नेवाले के अपूर्वकरण के प्रथम समय में जिसका प्रारंभ हुआ ऐसा उत्कृष्ट गुणश्रेणी आयाम अंतर्मुहूर्त से अधिक है । (४७) उससे चढ़नेवाले के क्रोधवेदक काल संख्यातगुणा है, क्योंकि इसका प्रारंभ तो अध:करण के प्रथम समय से ही है और गुणश्रेणी आयाम का प्रारंभ अपूर्वकरण के प्रथम समय से है; इसलिए संख्यातगुणापना पाया जाता है ।

संजदअधापवत्तगगुणसेढी दंसणोवसंतद्धा ।
चारित्तंतरिगठिदी दंसणमोहंतरठिदीओ ।।३७८।।

संयताध:प्रवृत्तकगुणश्रेणी दर्शनोपशांताद्धा ।
चारित्रांतरिकस्थिति: दर्शनमोहांतरस्थिति: ।।३७८।।

टीका – (४८) उससे उतरनेवाले अप्रमत्त संयमी के प्रथम समय में किया हुआ गुणश्रेणी आयाम संख्यातगुणा है । (४९) उससे दर्शनमोहनीय के उपशम अवस्था *(द्वितीयोपशम सम्यक्त्व)* का काल संख्यातगुणा है; क्योंकि चारित्रमोहनीय के उपशम काल के पश्चात् और पूर्व में अप्रमत्तादि से असंयत तक द्वितीयोपशम सम्यक्त्व का सद्भाव रहता है । (५०) उससे चारित्रमोहनीय का अंतरायाम संख्यातगुणा है । (५१) उससे दर्शनमोहनीय का अंतरामाय संख्यातगुणा है ।

अवराजेट्ठाबाहा चडपडमोहस्स अवरठिदिबंधो ।
चडपडतिघादिअवरट्ठिदिबंधंतोमुहुत्तो य ।।३७९।।

अवराज्येष्ठाबाधा चटपतमोहस्य अवरस्थितिबंध: ।
चटपतत्रिघात्यवरस्थितिबंधांतर्मुहूर्तश्च ।।३७९।।

टीका – (५२) उससे चढ़नेवाले के सूक्ष्मसाम्पराय के अंतिम समय में पाये

जानेवाले ज्ञानावरणादि के तथा अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में पाये जानेवाले मोहनीय के स्थितिबंध की जघन्य आबाधा संख्यातगुणी है । (५३) उससे उतरनेवाले के अपूर्वकरण के अंतिम समय में पाये जानेवाले सर्व कर्मों के स्थितिबंध की उत्कृष्ट आबाधा संख्यातगुणी है । (५४) उससे चढ़नेवाले के अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में पाया जानेवाला मोहनीय के जघन्य स्थितिबंध का प्रमाण संख्यातगुणा है । (५५) उससे उतरनेवाले के अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में पाया जानेवाला मोहनीय के जघन्य स्थितिबंध का प्रमाण संख्यातगुणा है; यहां संख्यात का प्रमाण दो जानना । (५६) उससे चढ़नेवाले के सूक्ष्मसाम्पराय के अंतिम समय में पाया जानेवाला ऐसा तीन घातिकर्मों का जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है । (५७) उससे उतरनेवाले के सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में पाया जानेवाला तीन घातिकर्मोंका जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है, वह दोगुणा जानना । (५८) उससे उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त संख्यातगुणा है, जो एक समय कम दो घडी प्रमाण जानना । यहां अंतदीपक न्याय से पहले जो सर्व काल कहे थे वे सर्व अंतर्मुहूर्त मात्र ही जानना, क्योंकि अंतर्मुहूर्त के भेद बहुत हैं ।

चडमाणस्स य णामागोदजहण्णट्ठिदीण बंधो य ।
तेरसपदासु कमसो संखेण य होंति गुणियकमा ।।३८०।।

चटत: च नामगोत्रजघन्यस्थितीनां बंधश्च ।
त्रयोदशपदेषु क्रमश: संख्येन च भवंति गुणितक्रमा: ।।३८०।।

टीका – (५९) उससे चढ़नेवाले के नाम-गोत्र का जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है, वह सोलह मुहूर्त मात्र है । यह जघन्य बंध अपनी अपनी व्युच्छित्ति के अंतिम समय में जानना ।

चलतदियअवरबंधं पडणामागोदअवरठिदिबंधो ।
पडतदियस्स य अवरं तिण्णि पदा होंति अहियकमा ।।३८१।।

चटतृतीयावरबंधं पतन्नामगोत्रावरस्थितिबंध: ।
पतत्तृतीयस्य च अवरं त्रीणि पदानि भवंति अधिकक्रमाणि ।।३८१।।

टीका – (६०) उससे चढ़नेवाले के वेदनीय का जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है, वह चौबीस मुहूर्त मात्र है । (६१) उससे उतरनेवाले के नाम-गोत्र का जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है, वह बत्तीस मुहूर्त मात्र है । (६२) उससे उतरनेवाले के वेदनीय का जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है, वह अड़तालीस मुहूर्त मात्र है ।

चडमायमाणकोहो मासादीदुगुण अवरठिदिबंधो ।
पडणे ताणं दुगुणं सोलसवस्साणि चलणपुरिसस्स ।।३८२।।

चटमायामानक्रोधो मासादिद्विगुणावरस्थितिबंधः ।
पतने तेषां द्विगुणं षोडशवर्षाणि चटनपुरुषस्य ।।३८२।।

टीका – (६३) उससे चढ़नेवाले के संज्वलन माया का जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है, वह एक मास मात्र है । (६४) उससे उसीके मान का जघन्य स्थितिबंध दोगुणा *(दो मास)* है । (६५) उससे उसीके क्रोध का जघन्य स्थितिबंध दोगुणा *(चार मास)* है । (६६) पुनश्च उतरनेवाले के उन्हीं मायादि का जघन्य स्थितिबंध चढ़नेवाले से दोगुणा है, वह माया का दो मास, (६७) मान का चार मास, (६८) क्रोध का आठ मास मात्र जानना । पुनश्च (६९) चढ़नेवाले के पुरुषवेद का जघन्य स्थितिबंध सोलह वर्ष मात्र है ।

पडणस्स तस्स दुगुणं संजलणाणं तु तत्थ दुट्ठाणे ।
बत्तीसं चउसट्ठी वस्सपमाणेण ठिदिबंधो ।।३८३।।

पतनस्य तस्य द्विगुणं संज्वलनानां तु तत्र द्विस्थाने ।
द्वात्रिंशत् चतुःषष्टिः वर्षप्रमाणेन स्थितिबंधः ।।३८३।।

टीका – (७०) उतरनेवाले के पुरुषवेद का जघन्य स्थितिबंध उससे दोगुणा बत्तीस वर्ष मात्र है । पुनश्च उस काल में संज्वलन चतुष्क का स्थितिबंध चढ़नेवाले के बत्तीस वर्ष और (७१) उतरनेवाले के चौंसठ वर्ष मात्र होता है ।

चडपडणमोहपढमं चरिमं तु तहा तिघादियादीणं ।
संखेज्जवस्सबंधो संखेज्जगुणक्कमो छण्हं ।।३८४।।

चटपतनमोहप्रथमं चरमं तु तथा त्रिघातकादीनाम् ।
संख्येयवर्षबंधः संख्येयगुणक्रमः षण्णाम् ।।३८४।।

टीका – (७२) उससे चढ़नेवाले के अंतरकरण करने की समाप्ति होने के अनंतर समय में पाया जानेवाला ऐसा मोहनीय का प्रथम स्थितिबंध संख्यातगुणा है, वह संख्यात हजार वर्ष मात्र है । (७३) उससे उतरनेवाले के उस समय की समान अवस्था में पाया जानेवाला ऐसा मोहनीय का अंतिम स्थितिबंध संख्यातगुणा है । वह भी संख्यात हजार वर्ष मात्र है । जिसप्रकार पहले चढ़नेवाले से उतरनेवाले के दोगुणा स्थितिबंध कहा था उसप्रकार अब न जानना । अब यथासंभव संख्यातगुणा जानना । (७४) उससे चढ़नेवाले के वहां तीन घातिकर्मों का प्रथम स्थितिबंध संख्यातगुणा है । (७५) उससे उतरनेवाले के उनका वहां अंतिम स्थितिबंध संख्यातगुणा है । (७६) उससे चढ़नेवाले के सात नोकषायों के उपशम काल में तीन अघातिकर्मों का प्रथम स्थितिबंध संख्यातगुणा है । (७७) उससे उतरनेवाले के वहां उनका अंतिम स्थितिबंध संख्यातगुणा है ।

चडपडणमोहचरिमं पढमं तु तहा तिघादियादीणं ।
असंखेज्जवस्सबंधो संखेज्जगुणक्कमो छण्हं ।।३८५।।

चटपतनमोहचरमं प्रथमं तु तथा त्रिघातकादीनाम् ।
असंख्येयवर्षबंधः संख्येयगुणक्रमः षण्णाम् ।।३८५।।

टीका – (७८) उससे चढ़नेवाले के मोहनीय का असंख्यात वर्ष मात्र अंतिम स्थितिबंध असंख्यातगुणा है । यह पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र है, जो अंतरकरण करने के प्रारंभ समय में पाया जाता है । (७९) उससे उतरनेवाले के मोहनीय का प्रथम स्थितिबंध असंख्यात वर्ष मात्र है, वह असंख्यातगुणा है । (८०) उससे चढ़नेवाले के तीन घातिकर्मों का असंख्यात वर्ष मात्र अंतिम स्थितिबंध असंख्यातगुणा है । यह स्त्रीवेद के उपशम काल का संख्यात भाग जानेपर होता है । (८१) उससे उतरनेवाले के तीन घातिकर्मों का असंख्यात वर्ष मात्र पहला स्थितिबंध असंख्यातगुणा है । (८२) उससे चढ़नेवाले के तीन अघातिकर्मों का असंख्यात वर्ष मात्र अंतिम स्थितिबंध असंख्यातगुणा है, वह सात नोकषायों के उपशम काल में से संख्यात भाग होनेपर होता है । (८३) उससे उतरनेवाले के उन्हीं का असंख्यात वर्ष मात्र प्रथम स्थितिबंध असंख्यातगुणा है । यह भी पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र है ।

यहां उतरनेवाले के जो स्थितिबंध कहे हैं, वे सर्व ही चढ़नेवाले के उस स्थितिबंध होने के काल को अंतर्मुहूर्त से अप्राप्ति होकर पाये जाते हैं । चढ़नेवाले के जहां प्रथम स्थितिबंध होता है, उतरनेवाले के उसके निकटवर्ती अवस्था पानेपर अंतिम स्थितिबंध होता है; क्योंकि चढ़नेवाला जिस अवस्था को पहले प्राप्त होता है, उस अवस्था को उतरनेवाला अंत में प्राप्त होता है ।

चडणे णामदुगाणं पढमो पलिदोवमस्स संखेज्जो ।
भागो ठिदिस्स बंधो हेट्ठिल्लादो असंखगुणो ।।३८६।।

चटने नामद्विकयोः प्रथमः पलितोपमस्यासंख्येयः ।
भागः स्थितेर्बंधः अधस्तनादसंख्यगुणः ।।३८६।।

टीका – (८४) उससे चढ़नेवाले के नाम-गोत्र का पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र हुआ पहला स्थितिबंध नीचे के अघातित्रय के स्थितिबंध से असंख्यातगुणा है ।

तीसियचउण्ह पढमो पलिदोवमसंखभागठिदिबंधो ।
मोहस्सवि दोण्णि पदा विसेसअहियक्कमा होंति ।।३८७।।

तीसियचतुर्णां प्रथमः पलितोपमासंख्यभागस्थितिबंधः ।
मोहस्यापि द्वे पदे विशेषाधिकक्रमा भवंति ।।३८७।।

टीका – (८५) उससे चढ़नेवाले के तीसिय चतुष्क *(ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय, वेदनीय)* का प्रथम स्थितिबंध विशेष अधिक है, वह भी पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र है । (८६) उससे चढ़नेवाले के मोहनीय के वहां चालीसिय का स्थितिबंध है, वह उसके त्रिभाग मात्र विशेष से अधिक है ।

ठिदिखंडयं तु चरिमं बंधोसरणट्ठिदी य पल्लद्धं ।
पल्लं चडपडबादरपढमो चरिमो य ठिदिबंधो ।।३८८।।

स्थितिखंडकं तु चरमं बंधापसरणस्थिती च पल्यार्धं ।
पल्यं चटपतद्बादरप्रथमः चरमश्च स्थितिबंधः ।।३८८।।

टीका – (८७) उससे अंतिम स्थितिखंड अर्थात् स्थितिकांडक आयाम संख्यातगुणा है, जो ज्ञानावरणादि कर्मों का तो सूक्ष्मसाम्पराय के अंत समय में और मोहनीय का अंतरकरण काल में पाया जाता है । (८८) उससे पल्य मात्र स्थिति की उत्पत्ति के निमित्त पल्य के संख्यातवें भाग तक स्थितिबंधापसरणों से उत्पन्न पल्य के संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबंध वे सर्व ही क्रम से संख्यातगुणे हैं – *(यहां अनेक बार संख्यातगुणा जानना ।)* पल्य के संख्यातवें भाग से पल्य का प्रमाण संख्यातगुणा जानना । (८९) उससे चढ़नेवाले के अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में पाया जानेवाला स्थितिबंध संख्यातगुणा है, वह पृथक्त्व लक्ष सागर प्रमाण है । (९०) उससे उतरनेवाले के अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में पाया जानेवाला स्थितिबंध संख्यातगुणा है ।

चडपडअपुव्वपढमो चरिमो ठिदिबंधओ य पडणस्स ।
तच्चरिमं ठिदिसंतं संखेज्जगुणक्कमा अट्ठ ।।३८९।।

चटपतदपूर्वप्रथमः चरमस्थितिबंधकश्च पतनस्य ।
तच्चरमं स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणक्रमं अष्ट ।।३८९।।

टीका – (९१) उससे चढ़नेवाले अपूर्वकरण के प्रथम समय में स्थितिबंध संख्यातगुणा है; वह अंतःकोडाकोडी सागर मात्र है । (९२) उससे उतरनेवाले के अपूर्वकरण के अंतिम समय में स्थितिबंध संख्यातगुणा है । वह दोगुणा अथवा यथासंभव संख्यातगुणा जानना । (९३) उससे उतरनेवाले के अपूर्वकरण के अंतिम समय में स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है ।

तप्पढमट्ठिदिसत्तं पडिवडअणियट्टिचरिमठिदिसत्तं ।
अहियकमा चलबादरपढमट्ठिदिसत्तयं तु संखगुणं ।।३९०।।

तत्प्रथमस्थितिसत्त्वं प्रतिपतदनिवृत्तिचरमस्थितिसत्त्वं ।
अधिकक्रमं चटबादरप्रथमस्थितिसत्त्वकं तु संख्यगुणम् ।।३९०।।

टीका – (९४) उससे उतरनेवाले के अपूर्वकरण के प्रथम समय में जो स्थितिसत्त्व है, वह एक समय कम अपूर्वकरण के काल मात्र विशेष से अधिक है; क्योंकि उतरने में प्रथम समय के स्थितिसत्त्व से अंतिम समय में स्थितिसत्त्व की हीनता

उतने समय मात्र की ही होती है *(क्योंकि एक-एक निषेक खिरता है और नया बंध कम स्थितिवाला हो रहा है)* । (९५) उससे उतरनेवाले अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में स्थितिसत्त्व एक समय से अधिक है । (९६) उससे चढ़नेवाले अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है, क्योंकि इसके अभी अनिवृत्तिकरण के परिणामों द्वारा स्थितिसत्त्व का खंडन नहीं पाया जाता ।

चडमाणअपुव्वस्स य चरिमट्ठिदिसत्तयं विसेसहियं ।
तस्सेव य पढमठिदिसत्तं संखेज्जसंगुणियं ।।३९१।।

चटदपूर्वस्य च चरमस्थितिसत्त्वकं विशेषाधिकम् ।
तस्यैव च प्रथमस्थितिसत्त्वं संख्येयगुणितम् ।।३९१।।

टीका – (९७) उससे चढ़नेवाले के अपूर्वकरण के अंतिम समय में स्थितिसत्त्व विशेष अधिक है, क्योंकि उसके अंतिम कांडक की अंतिम फालि का प्रमाण पल्य के संख्यातवें भाग मात्र होता है, इसलिए इतना अधिक जानना । (९८) उससे चढ़नेवाले के अपूर्वकरण के प्रथम समय में स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है, वह अंत:कोडाकोडी सागर प्रमाण है; क्योंकि अपूर्वकरण के काल में संख्यात हजार स्थितिकांडकघात होते हैं, उनके द्वारा उसके प्रथम समय में जितनी स्थिति पायी जाती है, उसके संख्यात बहुभाग मात्र स्थिति का घात होता है । उसके अंतिम समय में एकभाग मात्र स्थिति रहती है और उस प्रथम समयवर्ती स्थितिसत्त्व के पहले स्थितिकांडक का घात है नहीं, इसलिए उसके चरम समयवर्ती स्थितिसत्त्व से प्रथम समयवर्ती स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा जानना । इसतरह अल्पबहुत्व जानना ।

इसप्रकार चारित्रमोह के उपशमाने का विधान समाप्त हुआ ।

दोहा

कर्म शांति के अर्थि जिन नमौ शांति करतार ।
प्रशमित दुरित समूह सब महावीर जिनसार ।।

।। इति लब्धिसार: समाप्तम् ।।४।।

पांचवां अधिकार : क्षपणासार

यहां तक गाथा सूत्रों का व्याख्यान संस्कृत टीका के अनुसार किया, क्योंकि यहां तक की गाथाओं की ही टीका करके संस्कृत टीकाकार ने ग्रंथ समाप्त किया है । यहां से आगे गाथा सूत्र हैं उनमें क्षायिक चारित्र का वर्णन है, उनकी संस्कृत टीका तो अवलोकने *(देखने)* में आयी नहीं, इसलिए उनका व्याख्यान अपनी बुद्धि के अनुसार यहां करते हैं ।

पुनश्च भोज नामक राजा के बाहुबलि नामक मंत्री के ज्ञान उपजाने के लिये श्री माधवचंद्र नामक आचार्य द्वारा विरचित एक क्षपणासार ग्रंथ है, उसमें क्षायिक चारित्र ही के विधान का वर्णन है, यहां उस क्षपणासार के अनुसार सहित भी व्याख्यान करते हैं । वहां प्रथम मंगलाचरण करते हैं ।

श्रीवर धर्म जलधि के नंदन रत्नाकरवर्धक सुखकार ।
लोक प्रकाशक अतुल विमल प्रभु संतनिकर सेवित गुणधार ।।
माधववरबलभद्रनमितपदपद्म युगल धारैं विस्तार ।
नेमिचंद्र जिन नेमिचंद्र गुरु चंद्रसमान नमहुं सो सार ।।१।।

इसके नेमिनाथ तीर्थंकर और नेमिचंद्र आचार्य और चंद्रमा का विशेषण करने से तीन अर्थ होते हैं । वहां 'माधववरबलभद्रनमितपदपद्मयुगल' का अर्थ – नेमिनाथ तीर्थंकर के पक्ष में नारायण और बलभद्र द्वारा; नेमिचंद्र गुरु के पक्ष में माधवचंद्र आचार्य और कल्याणरूप बाहुबलि मंत्री द्वारा और चंद्रमा के पक्ष में वसंतराज उत्कृष्ट सप्तसेना में प्रधान द्वारा – नमित हैं चरणयुगल जिनके ऐसे हैं । अन्य अर्थ सुगम है ।

अब यहां गाथा सूत्र कहते हैं –

तिकरणमुभयोसरणं कमकरणं खवणदेसमंतरयं ।
संकम अपुव्वफड्डयकिट्टिकरणाणुभवण खमणाये ।।३९२।।

त्रिकरणमुभयापसरणं क्रमकरणं क्षपणं देशमंतरकम् ।
संक्रमं अपूर्वस्पर्धककृष्टिकरणानुभवनानि क्षपणायाम् ।।३९२।।

टीका – अध:करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण ये तीन करण; बंधापसरण, सत्त्वापसरण ये दो अपसरण; क्रमकरण, आठ कषाय और सोलह प्रकृतियों की क्षपणा, देशघातिकरण, अंतरकरण, संक्रमण, अपूर्वस्पर्धककरण, कृष्टिकरण, कृष्टिअनुभवन ऐसे ये चारित्रमोह की क्षपणा में अधिकार जानना । उसके पश्चात् ज्ञानावरणादि कर्मों की क्षपणा का अधिकार और योगनिरोध अधिकार का वर्णन होगा ।

वहां प्रथम अध:करण का वर्णन करते हैं –

पहले पूर्वोक्त प्रकार से तीन करण विधान से सात प्रकृतियों का नाश करके क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर, मोहनीय की इक्कीस प्रकृतियों के सत्त्व सहित होकर, जघन्य तो अंतर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट तो अंतर्मुहूर्त सहित आठ वर्ष कम दो कोटी पूर्व से अधिक तैंतीस सागर काल तक क्षायिक सम्यग्दृष्टि संसार में रहता है; वहां किसी काल में चारित्रमोहनीय की क्षपणा के योग्य विशुद्ध परिणाम से युक्त होकर प्रमत्त से अप्रमत्त और अप्रमत्त से प्रमत्त में हजारों बार गमनागमन करके महामुनी चक्रवर्ती हैं, वे यथाख्यातचारित्ररूप एकछत्र राज्य करने के लिये क्षपकश्रेणीरूप दिग्विजय करने के सन्मुख होते हुये प्रथम सातिशय अप्रमत्त गुणस्थान में अध:करणरूप प्रस्थान करते हैं । उसका विशेष जानने के लिये यहां प्रश्नोत्तर होते हैं –

कसायखवणो ठाणे परिणामो केरिसो हवे ।
कसाय उपजोगो को लेस्सा वेदा य को हवे ।।१।।

काणि वा पुव्वबद्धाणि कोवा अंसेण बंधदि ।
कदियावलि पविसंति कदिण्हं वा पवेसगो ।।२।।

केट्ठिय सेज्झीयदे पुव्वं बंधेण उदयेण वा ।
अंतरं वा कहिं किच्चा के के संकामगो कहिं ।।३।।

के ट्ठिदीयाणि कम्माणि अणुभागेसु केसु वा ।
उक्कट्ठिदूण सेसाणि कं ठाणं पडिवज्जदि ।।४।।

इन चार सूत्रों द्वारा प्रश्न किये ।

वहां प्रश्न – चारित्रमोहनीय की क्षपणा के प्रारंभक जीव का परिणाम कैसा

होता है ?

उत्तर – अति विशुद्ध होता है ।

प्रश्न – योग कैसा होता है ?

उत्तर – चार मनोयोगों में से कोई एक या चार वचनयोगों में से कोई एक या सात काययोगों में से औदारिक काययोग होता है ।

प्रश्न – कषाय कैसा होता है ?

उत्तर – चार संज्वलन में से कोई एक होता है; वह भी हीयमान होता है, वृद्धिरूप नहीं होता ।

प्रश्न – उपयोग कैसा होता है ?

उत्तर – अनेक मुनियों के प्रसिद्ध उपदेश से तो श्रुतज्ञान ही उपयोग है, दर्शन उपयोग नहीं है; अन्य आचार्यों के मत से मति, श्रुतज्ञान में से एक और चक्षु, अचक्षु दर्शन में से एक उपयोग है ।

प्रश्न – लेश्या कैसी *(कौनसी)* होती है ?

उत्तर – शुक्ल ही होती है ।

प्रश्न – वेद कैसा होता है ?

उत्तर – भाववेद तीनों में से कोई एक होता है; द्रव्यवेद पुरुषवेद ही है ।

प्रश्न – पूर्वबद्ध कर्म हैं, वे सत्त्वरूप कैसे हैं ?

उत्तर – सात मोहनीय और नरकायु, तिर्यंचायु, देवायु इन दस बिना सर्व प्रकृतियों का सत्त्व होता है; वहां आहारक, आहारक अंगोपांग, तीर्थंकर ये भजनीय हैं – किसी के होगी, किसी के नहीं होगी । पुनश्च स्थितिसत्त्व मनुष्यायु बिना उन प्रकृतियों का अंत:कोडाकोडी सागर प्रमाण है और उनमें अनुभागसत्त्व प्रशस्त प्रकृतियों का गुड़, खांड, शर्करा, अमृतरूप चतु:स्थानक; अप्रशस्त प्रकृतियों का दारु, लता और निंब, कांजीररूप द्विस्थानक होता है । तथा उनका प्रदेशसत्त्व अजघन्य वा अनुत्कृष्ट पाया जाता है । जघन्य या उत्कृष्ट कर्म परमाणुओं का समूह यहां नहीं पाया जाता ।

प्रश्न – नवीन कर्म किस अंश से बंधता है ?

उत्तर – ज्ञानावरण की पांच, दर्शनावरण की स्त्यानगृद्धित्रिक बिना छह, सातावेदनीय, संज्वलन चतुष्क, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र, अंतराय की पांच ऐसी सत्ताइस और नामकर्म में से देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक, तेजस, कार्माणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, प्रशस्त वर्णादि चार, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, निर्माण ये अट्ठाइस या किसी के तीर्थंकर सहित उनतीस या किसी के आहारकद्विक सहित तीस या किसी के आहारकद्विक, तीर्थंकर सहित इकतीस प्रकृतियां बंधती हैं । उन प्रकृतियों का स्थितिसत्त्व से संख्यातगुणा घटता अंत:कोडाकोडी सागर प्रमाण स्थितिबंध होता है । उनमें से अप्रशस्त प्रकृतियों का प्रतिसमय अनंतगुणा घटते हुये क्रम सहित द्विस्थानक अनुभागबंध होता है और प्रशस्त प्रकृतियों का प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ते हुये क्रम सहित चतु:स्थानक अनुभागबंध होता है । उनका अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध होता है । यहां जघन्य या उत्कृष्ट समयप्रबद्ध नहीं बंधता ।

वहां विशेष – प्रचला, निद्रा, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकद्विक, आहारकद्विक, प्रथम संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, तीर्थंकर इन प्रकृतियों का किसी प्रकार से उत्कृष्ट प्रदेशबंध भी होता है ।

प्रश्न – उदयावली प्रति कर्म कैसे प्रवेश करते हैं ?

उत्तर – मूलप्रकृतियां तो सर्व उदयरूप होकर ही खिरती हैं, उत्तर प्रकृतियां कोई उदयरूप होकर निर्जरित होती हैं *(खिरती हैं)*, कोई बिना ही उदय के खिरती हैं ।

प्रश्न – कितने कर्म उदीरणारूप होकर उदयावली प्रति प्रवेश करते हैं ?

उत्तर – सातावेदनीय और मनुष्यायु बिना स्वमुखोदयी सर्व ही कर्म उदयावली में प्रवेश करते हैं, उदीरणारूप होते हैं ।

प्रश्न – इससे पूर्व में कौनसे कर्म उदय और बंध से विनष्ट होते हैं ? *(कौनसे कर्मों की बंधव्युच्छित्ति और उदयव्युच्छित्ति इससे पूर्व हो चुकी होती है ?)*

उत्तर – स्त्यानगृद्धित्रिक, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, बारह कषाय, अरति, शोक, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, चार आयु, परावर्त अशुभनाम की उनतीस, मनुष्यगति, औदारिक शरीर और अंगोपांग, वज्रवृषभनाराच संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, नीचगोत्र इन प्रकृतियों की बंध की व्युच्छित्ति पहले हुयी है ।

यहां नरकगति, तिर्यंचगति, एकेन्द्रियादि चार जाति, संस्थान पांच, संहनन पांच, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दु:स्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति ये उनतीस प्रकृतियां परावर्त अशुभ नामकर्म की जानना ।

पुनश्च स्त्यानगृद्धित्रिक, दर्शनमोहनीय की तीन, बारह कषाय, नरकायु, तिर्यंचायु, देवायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी – ये छह, एकेन्द्रियादि चार जाति, वैक्रियिक शरीर और अंगोपांग, आहारक शरीर और अंगोपांग – ये चार, वज्रवृषभनाराच बिना संहनन पांच, मनुष्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति, तीर्थंकर, नीचगोत्र इनके उदय की व्युच्छित्ति पहले हुयी है, अवशेष कर्मों का यहां उदय पाया जाता है । *(तीर्थंकर प्रकृति यहां अनुदयरूप है ।)*

प्रश्न – अंतरकरण को कहां करता है ? कौन कौनसे कर्मों का कहां संक्रमण करानेवाला होता है ?

उत्तर – अनिवृत्तिकरण काल का संख्यातवां भाग रहनेपर अंतरकरण और संक्रमण क्रिया को करता है । इस अवसर में नहीं करता ।

प्रश्न – किस स्थिति में वर्तमान *(विद्यमान)* कर्म है ? उसे कांडकघात द्वारा कैसे स्थितिस्थान को प्राप्त होता है ?

भावार्थ – यहां स्थितिकांडकघात का प्रश्न किया ।

प्रश्न – किस अनुभाग में वर्तमान कर्म है, वह कांडकघात द्वारा अवशेष कैसे स्थान को प्राप्त होता है ?

भावार्थ – यहां अनुभागकांडकघात का प्रश्न किया ।

इन दोनों का उत्तर – स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात इस अध:करण में नहीं होते, अपूर्वकरण में होते हैं ।

ऐसा यह चारित्रमोह की क्षपणा के सन्मुख हुआ जीव प्रथम अध:प्रवृत्तकरण करता है ।

गुणसेढी गुणसंकमठिदिरसखंडाण णत्थि पढमम्हि ।
पडिसमयमणंतगुणं विसोहिवड्ढीहिं वड्ढदि हु ।।३९३।।

गुणश्रेणी गुणसंक्रमं स्थितिरसखंडनं नास्ति प्रथमे ।
प्रतिसमयमनंतगुणं विशुद्धिवृद्धिभि: वर्धते हि ।।३९३।।

टीका – पहले अध:प्रवृत्तकरण में गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात नहीं पाये जाते । वह जीव प्रतिसमय अनंतगुणा क्रम सहित विशुद्धता की वृद्धि से वर्धमान होता है ।

सत्थाणमसत्थाणं चउविट्ठाणं रसं च बंधदि हु ।
पडिसमयमणंतेण य गुणभजियकमं तु रसबंधे ।।३९४।।

शस्तानामशस्तानां चतुर्द्विस्थानं रसं च बध्नाति हि ।
प्रतिसमयमनंतेन च गुणभजितक्रमं तु रसबंधे ।।३९४।।

टीका – वह प्रशस्त प्रकृतियों का प्रतिसमय अनंतगुणा क्रम सहित चतु:स्थानक अनुभागबंध करता है और अप्रशस्त प्रकृतियों का प्रतिसमय अनंतवें भाग के क्रम सहित द्विस्थानक अनुभागबंध करता है ।

पल्लस्स संखभागं मुहुत्तअंतेण ओसरदि बंधे ।
संखेज्जसहस्साणि य अधापवत्तम्हि ओसरणा ।।३९५।।

पल्यस्य संख्यभागं मुहूर्तांतरपसरति बंधे ।
संख्येयसहस्राणि च अध:प्रवृत्ते अपसरणानि ।।३९५।।

टीका – पूर्व स्थितिबंध से पल्य के संख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध घटाकर एक

अंतर्मुहूर्त काल तक प्रतिसमय समान स्थितिबंध होता है, यह एक स्थितिबंधापसरण हुआ । ऐसे संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण अध:प्रवृत्तकरण में होते हैं ।

आदिमकरणद्धाए पढमट्ठिदिबंधदो दु चरिमम्हि ।
संखेज्जगुणविहीणो ठिदिबंधो होदि णियमेण ।।३९६।।

आद्यकरणाद्धायां प्रथमस्थितिबंधतस्तु चरमे ।
संख्येयगुणविहीन: स्थितिबंधो भवति नियमेन ।।३९६।।

टीका – ऐसे स्थितिबंधापसरण होने से प्रथम अध:प्रवृत्तकरण काल में प्रथम समय में जो स्थितिबंध होता है, उससे संख्यातगुणा घटता *(संख्यातवें भाग प्रमाण)* स्थितिबंध अंतिम समय में नियम से होता है । इसतरह इस अध:करण में आवश्यक होते हैं । जहां किसी जीव के नीचे के समयवर्ती भावों के समान अन्य किसी जीव के ऊपर के समयवर्ती भाव होते हैं, उसे अध:प्रवृत्तकरण ऐसा सार्थक नाम जानना ।

आगे अपूर्वकरण का वर्णन करते हैं –

गुणसेढी गुणसंकम ठिदिखंडमसत्थगाण रसखंडं ।
बिदियकरणादिसमए अण्णं ठिदिबंधमारभई ।।३९७।।

गुणश्रेणी गुणसंक्रमं स्थितिखंडमशस्तकानां रसखंडम् ।
द्वितीयकरणादिसमये अन्यं स्थितिबंधमारभते ।।३९७।।

टीका – दूसरा जो अपूर्वकरण, उसके प्रथम समय में गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिखंडन और अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभागखंडन होता है । अध:करण के अंतिम समय में जो स्थितिबंध होता था, उससे पल्य का असंख्यातवां भाग मात्र घटता ऐसे अन्य ही स्थितिबंध का प्रारंभ करता है, क्योंकि यहां एक स्थितिबंधापसरण होने से इतना स्थितिबंध घटाता है । *(उपशमक अपूर्वकरण में पल्य के संख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंधापसरण कहा है, यहां भी वही प्रमाण होता होगा । देखिये गाथा २२२; आगे भी गाथा ४११ और ४१९ में पल्य के संख्यातवें भाग से घटता स्थितिबंध कहा है ।)*

[*गुणश्रेणी*]

गुणसेढीदीहत्तं अपुव्वचउक्कादु साहियं होदि ।
गलिदवसेसे उदयावलिबाहिरदो दु णिक्खेओ ।।३९८।।

गुणश्रेणीदीर्घत्वं अपूर्वचतुष्कात् साधिकं भवति ।
गलितावशेषे उदयावलिबाह्यतस्तु निक्षेपः ।।३९८।।

टीका – यहां गुणश्रेणी आयाम का प्रमाण अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, क्षीणकषाय इन चारों गुणस्थानों के मिलाये हुये काल से अधिक है । वहां अधिक का प्रमाण क्षीणकषाय काल के संख्यातवें भाग मात्र है, उदयावली से बाह्य गलितावशेषरूप जो यह गुणश्रेणी आयाम है, उसमें अपकर्षण किये हुये द्रव्य का निक्षेपण होता है ।

पडिसमयं उक्कट्टदि असंखगुणिदक्कमेण संचदि य ।
इदि गुणसेढीकरणं पडिसमयमपुव्वपढमादो ।।३९९।।

प्रतिसमयमपकर्षति असंख्यगुणितक्रमेण सिंचति च ।
इति गुणश्रेणीकरणं प्रतिसमयमपूर्वप्रथमात् ।।३९९।।

टीका – प्रथम समय में अपकर्षित द्रव्य से द्वितीयादि समयों में प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम सहित द्रव्य को अपकर्षित करता है; और 'सिंचति' अर्थात् उदयावली में, गुणश्रेणी आयाम में और उपरितन स्थिति में निक्षेपण करता है । इसतरह अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर प्रतिसमय गुणश्रेणी का करना होता है । इसतरह गुणश्रेणी का स्वरूप कहा ।

[*गुणसंक्रमण*]

पडिसमयमसंखगुणं दव्वं संकमदि अप्पसत्थाणं ।
बंधुज्झियपयडीणं बंधंतसजादिपयडीसु ।।४००।।

प्रतिसमयमसंख्यगुणं द्रव्यं संक्रामति अप्रशस्तानाम् ।
बंधोज्झितप्रकृतीनां बध्यमानस्वजातिप्रकृतिषु ।।४००।।

टीका – अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर जिनका यहां बंध नहीं पाया जाता ऐसी अप्रशस्त प्रकृतियों का गुणसंक्रमण होता है । प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम सहित उन प्रकृतियों का द्रव्य जिनका यहां बंध पाया जाता है ऐसी स्वजाति प्रकृतियों में संक्रमण करता है, तद्रूप परिणमता है । जैसे, असातावेदनीय का द्रव्य सातावेदनीयरूप परिणमता है । ऐसे ही अन्य प्रकृतियों का जानना ।

उव्वट्टणा जहण्णा आउलियाऊणिया तिभागेण ।
एसा ठिदिसु जहण्णा तहाणुभागेसुणंतेसु ।।४०१।।

अतिस्थापना जघन्या आवलिकौनिका त्रिभागेन ।
एषा स्थितिषु जघन्या तथानुभागेष्वनंतेषु ।।४०१।।

टीका – संक्रमण में जघन्य अतिस्थापन अपने त्रिभाग से हीन आवली मात्र है, यही स्थिति विषयक जघन्य अतिस्थापना है, वैसे ही अनंत अनुभाग में भी जानना ।

संकामेदुक्कट्टदि जे अंसे ते अवट्ठिदा होंति ।
आवलियं से काले तेण परं होंति भजियव्वा ।।४०२।।

संक्रामे तु उत्कृष्यंते ये अंशास्ते अवस्थिता भवंति ।
आवलिकां स्वे काले तेन परं भवंति भजितव्याः ।।४०२।।

टीका – संक्रमण में प्रकृतियों के जो परमाणु उत्कर्षणरूप होते हैं, वे अपने काल में आवली तक तो अवस्थित ही रहते हैं । उसके पश्चात् भजनीय होते हैं, अवस्थित भी रहते हैं और स्थिति आदि की वृद्धि हानि आदिरूप भी होते हैं ।

उक्कट्टदि जे अंसे से काले ते च होंति भजियव्वा ।
वड्ढीए अवट्ठाणे हाणीए संकमे उदए ।।४०३।।

उत्कृष्यंते ये अंशा: स्वे काले ते च भवंति भजितव्या: ।
वृद्धौ अवस्थाने हानौ संक्रमे उदये ।।४०३।।

टीका – प्रकृतियों के जो परमाणु अपकर्षित होते हैं, वे अपने काल में भजनीय होते हैं, स्थिति आदि की वृद्धि, अवस्थान या हानि और संक्रमण और उदय इनरूप हो भी सकते हैं और नहीं भी होते, कुछ भी नियम नहीं है ।

एक्कं च ठिदिविसेसं तु असंखेज्जेसु ठिदिविसेसेसु ।
वट्टेदि रहस्सेदि व तहाणुभागेसुणंतेसु ।।४०४।।

एकं च स्थितिविशेषं तु असंख्येयेषु स्थितिविशेषेषु ।
वर्त्यते रहस्यते वा तथानुभागेष्वनंतेषु ।।४०४।।

टीका – एक स्थितिविशेष अर्थात् एक निषेक का द्रव्य असंख्यात निषेकों में वर्तता है, निक्षेपण किया जाता है, उसीप्रकार अनंत अनुभागों में भी एक स्पर्धक का द्रव्य अनंत स्पर्धकों में निक्षेपण किया जाता है, ऐसा जानना ।

इन चार गाथाओं का अर्थ ठीक तरह से मेरे जानने में नहीं आया है और क्षपणासार में भी इनका प्रयोजन कुछ लिखा नहीं है, इसलिए जो बुद्धिमान हैं वे इनका यथासंभव विशेष अर्थ जानें ।

[*जयधवला – कषायपाहुड पुस्तक १४ में पृष्ठ २७७ से २८८ तक इन गाथाओं के अर्थ लिखे हैं वहां से जानना*]

इसतरह गुणसंक्रमण का स्वरूप कहा ।

[*स्थितिकांडकघात*]

पल्लस्स संखभागं वरं पि अवरादु संखगुणिदं तु ।
पढमे अपुव्वखवगे ठिदिखंडपमाणयं होदि ।।४०५।।

पल्यस्य संख्यभागं वरमपि अवरात् संख्यगुणितं तु ।
प्रथमे अपूर्वक्षपके स्थितिखंडप्रमाणकं भवति ।।४०५।।

टीका – क्षपक अपूर्वकरण के प्रथम समय में स्थितिखंड अर्थात् स्थितिकांडकायाम का जघन्य और उत्कृष्ट प्रमाण पल्य के संख्यातवें भाग मात्र है, तथापि जघन्य से उत्कृष्ट संख्यातगुणा है । वहां जो जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर उपशमश्रेणी चढ़कर पश्चात् क्षपकश्रेणी चढ़ता है, उसके वहां उपशमश्रेणी में बहुत स्थितिकांडकघात होने से स्थितिसत्त्व अल्प रहता है । इसलिए यहां उसके स्थितिकांडकायाम जघन्य होता है ।

जो जीव उपशमश्रेणी न चढ़कर क्षपकश्रेणी चढ़ता है उसका स्थितिसत्त्व उससे संख्यातगुणा है । उसके स्थितिकांडकायाम भी संख्यातगुणा होता है, क्योंकि स्थिति के अनुसार कांडकघात होता है । इसतरह दूसरे जघन्य कांडक से दूसरा उत्कृष्ट कांडक, तीसरे से तीसरा इत्यादि सर्वत्र जघन्य कांडक से उत्कृष्ट कांडक संख्यातगुणा जानना ।

आउगवज्जाणं ठिदिघादो पढमादु चरिमठिदिसंतो ।
ठिदिबंधो य अपुव्वे होदि हु संखेज्जगुणहीणो ।।४०६।।

आयुष्कवर्ज्यानां स्थितिघातः प्रथमात् चरमस्थितिसत्त्वम् ।
स्थितिबंधश्च अपूर्वे भवति हि संख्येयगुणहीनः ।।४०६।।

टीका – आयु बिना सात कर्मों का स्थितिकांडकायाम, स्थितिसत्त्व और स्थितिबंध ये तीनों अपूर्वकरण के प्रथम समय में जितने पाये जाते हैं, उनसे उसके अंतिम समय में संख्यातगुणा हीन होते हैं *(संख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं)।*

अंतोकोडाकोडी अपुव्वपढमम्हि होदि ठिदिबंधो ।
बंधादो पुण सत्तं संखेज्जगुणं हवे तत्थ ।।४०७।।

अंतःकोटीकोटिः अपूर्वप्रथमे भवति स्थितिबंधः ।
बंधात् पुनः सत्त्वं संख्येयगुणं भवेत् तत्र ।।४०७।।

टीका – अपूर्वकरण के प्रथम समय में स्थितिबंध अंतःकोडाकोडी सागर प्रमाण है, जो पृथक्त्व लक्ष कोडी सागर प्रमाण है । यहां स्थितिसत्त्व आलाप से *(कथन में)* उतना ही है, तथापि स्थितिबंध से संख्यातगुणा है ।

इसतरह स्थितिकांडक का स्वरूप कहा ।

एक्केक्कट्ठिदिखंडयणिवडणठिदिओसरणकाले ।
संखेज्जसहस्साणि य णिवडंति रसस्स खंडाणि ।।४०८।।

एकैकस्थितिखंडकनिपतनस्थित्युत्करणकाले ।
संख्येयसहस्राणि च निपतंति रसस्य खंडानि ।।४०८।।

टीका – एक-एक स्थितिखंडनिपतन अर्थात् स्थितिकांडकघात जिसमें होता है ऐसा जो स्थितिकांडकोत्करण काल है, उसमें संख्यात हजार अनुभागकांडकों का निपतन अर्थात् घात होता है ।

भावार्थ – अपूर्वकरण के प्रथम समय में स्थितिकांडक और अनुभागकांडक का युगपत् प्रारंभ होता है । वहां यथायोग्य काल जानेपर प्रथम अनुभागकांडक पूर्ण होता है परंतु स्थितिकांडक वही रहता है । पश्चात् दूसरा, तीसरा आदि संख्यात हजार अनुभागकांडक होनेपर प्रथम स्थितिकांडक का काल पूर्ण होता है । ऐसे ही द्वितीयादि स्थितिकांडक काल में क्रम जानना ।

[*अनुभागकांडकघात*]

असुहाणं पयडीणं अणंतभागा रसस्स खंडाणि ।
सुहपयडीणं णियमा णत्थि त्ति रसस्स खंडाणि ।।४०९।।

अशुभानां प्रकृतीनां अनंतभागा रसस्य खंडानि ।
शुभप्रकृतीनां नियमात् नास्तीति रसस्य खंडानि ।।४०९।।

टीका – अशुभ प्रकृतियों का अनंत बहुभाग मात्र अनुभागकांडक का प्रमाण है । पहले जो अनुभाग था, उसको अनंत का भाग देनेपर वहां बहुभाग मात्र प्रथम अनुभागकांडक में घटाते हैं, अवशेष एकभाग मात्र अनुभाग रहता है । पुनश्च उसको अनंत का भाग देकर, वहां बहुभाग दूसरे अनुभागकांडक में घटाते हैं, अवशेष एकभाग अनुभाग रहता है । इसीतरह अंतिम अनुभागकांडक तक क्रम जानना । इसप्रकार यहां अप्रशस्त प्रकृतियों के अनुभागकांडक होते हैं । प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभागखंड

नियम से नहीं होता, क्योंकि विशुद्ध परिणामों से शुभ प्रकृतियों के अनुभाग का घटाना नहीं हो सकता ।

इसतरह अनुभागखंड का स्वरूप कहा ।

पढमे छट्ठे चरिमे भागे दुग तीस चदुर वोछिण्णा ।
बंधेण अपुव्वस्स य से काले बादरो होदि ।।४१०।।

प्रथमे षट्के चरमे भागे द्विकं त्रिंशत् चतस्रो व्युच्छिन्नाः ।
बंधेन अपूर्वस्य च स्वे काले बादरो भवति ।।४१०।।

टीका – पूर्वोक्त प्रकार से स्थितिबंधापसरणों द्वारा घटते घटते संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर क्या होता है ? वह कहते हैं –

अपूर्वकरण के काल के समान सात भाग करके, वहां प्रथम भाग के अंतिम समय में निद्रा, प्रचला इन दोनों के बंध की व्युच्छित्ति होती है । यहां ही निद्रा और प्रचला का द्रव्य गुणसंक्रमण विधान द्वारा बध्यमान स्वजातीय चक्षु-अचक्षु-अवधि-केवलदर्शनावरण में संक्रमण करता है । इसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर उसके छठवें भाग के अंतिम समय में देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक-तेजस-आहारक-कार्माण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक-आहारक अंगोपांग, वर्णादि चार, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर इन तीस प्रकृतियों के बंध की व्युच्छित्ति होती है । इसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर अपूर्वकरण के अंतिम समय में हास्य, रति, भय, जुगुप्सा इन चारों के बंध की व्युच्छित्ति होती है और यहां ही छह नोकषायों के उदय की व्युच्छित्ति होती है । जहां ऊपर के समय संबंधी भाव सर्वदा नीचे के समय संबंधी भावों के समान नहीं होते, ऐसा कर्म नाश करनेवाला सार्थक नाम का धारक अपूर्वकरण जानना । इसके समाप्त होनेपर उसके अनंतर समय में निज काल में बादर अर्थात् अनिवृत्तिकरण होता है । उसका व्याख्यान करते हैं ।

अणियट्टिस्स य पढमे अण्णं ठिदिखंडपहुदिमारभई ।
उवसामणा णिधत्ती णिकाचणा तत्थ वोच्छिण्णा ।।४११।।

अनिवृत्तेश्च प्रथमे अन्यं स्थितिखंडप्रभृतिमारभते ।
उपशामना निधत्तिः निकाचना तत्र व्युच्छिन्नाः ।।४११।।

टीका – अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में अन्य ही स्थितिखंडादि *(स्थितिकांडकायाम, अनुभागकांडकायाम, स्थितिबंध)* प्रारंभ किया जाता है । वहां अपूर्वकरण के अंतिम समयवर्ती से अन्य ही पल्य के संख्यातवें भाग मात्र तो स्थितिकांडकायाम होता है; और इसके पश्चात् अवशेष रहे अनुभाग का अनंत बहुभाग मात्र अन्य ही अनुभागकांडक होता है; और अपूर्वकरण के अंतिम समय संबंधी स्थितिबंध से पल्य के संख्यातवें भाग मात्र घटता अन्य ही स्थितिबंध यहां होता है । पुनश्च यहां ही अप्रशस्तोपशम, निधत्ति, निकाचना इन तीन करणों की व्युच्छित्ति होती है । अब सर्व ही कर्म उदय, संक्रमण, उत्कर्षण, अपकर्षण करने के योग्य हुये ।

बादरपढमे पढमं ठिदिखंडं विसरिसं तु बिदियादि ।
ठिदिखंडयं समाणं सव्वस्स समाणकालम्हि ।।४१२।।

बादरप्रथमे प्रथमं स्थितिखंडं विसदृशं तु द्वितीयादि ।
स्थितिखंडकं समानं सर्वस्य समानकाले ।।४१२।।

टीका – अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में पहला स्थितिखंड है वह तो विसदृश है, नाना जीवों के समान नहीं है । परंतु द्वितीयादि स्थितिखंड समान काल में सर्व जीवों के समान हैं । अनिवृत्तिकरण मांड़कर जिनके समान काल हुआ हो, उनके द्वितीयादि स्थितिकांडकों के आयाम का प्रमाण परस्पर समान जानना ।

पल्लस्स संखभागं अवरं तु वरं तु संखभागहियं ।
घादादिमठिदिखंडो सेसा सव्वस्स सरिसा हु ।।४१३।।

पल्यस्य संख्यभागं अवरं तु वरं तु संख्यभागाधिकम् ।
घातादिमस्थितिखंडः शेषाः सर्वस्य सदृशा हि ।।४१३।।

टीका – वहां प्रथम स्थितिखंड जघन्य तो पल्य के संख्यातवें भाग मात्र है । उत्कृष्ट उसके संख्यातवें भाग से अधिक है । अवशेष द्वितीयादि स्थितिखंड सर्व जीवों के समान होते हैं । यहां कारण कहते हैं –

किसी जीव के स्थितिसत्त्व अल्प होता है, किसी के उससे संख्यातवें भाग से अधिक है । इसलिए स्थितिसत्त्व के अनुसार स्थितिकांडक भी किसी के जघन्य, किसी के उत्कृष्ट होता है । अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर अनिवृत्तिकरण में जब तक प्रथम खंड का घात नहीं होता, तब तक ऐसे ही होता है । उस प्रथम कांडक का घात होने के पश्चात् समान समयों में प्राप्त सर्व जीवों के स्थितिसत्त्व की समानता होती है, इसलिए द्वितीयादि स्थितिकांडक आयामों की भी समानता जानना ।

उदधिसहस्सपुधत्तं लक्खपुधत्तं तु बंधः संतो य ।
अणियट्टीसादीए गुणसेढी पुव्वपरिसेसा ।।४१४।।

उदधिसहस्रपृथक्त्वं लक्षपृथक्त्वं तु बंधः सत्त्वं च ।
अनिवृत्तेरादौ गुणश्रेणी पूर्वपरिशेषा ।।४१४।।

टीका – अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में, पहले स्थितिबंध अंत:कोडाकोडी सागर *(पृथक्त्व लक्षकोडि सागर)* प्रमाण था वह अपूर्वकरण में हुये संख्यात हजार स्थितिबंधापसरणों द्वारा घटते-घटते पृथक्त्व हजार सागर प्रमाण हुआ । पहले स्थितिसत्त्व अंत:कोडाकोडी सागर प्रमाण था वह अर्पूकरण में हुये संख्यात हजार स्थितिकांडकघातों द्वारा घटते-घटते पृथक्त्व लक्ष सागर प्रमाण हुआ । गुणश्रेणी आयाम यहां अपूर्वकरण काल व्यतीत होने के पश्चात् जो अवशेष रहा उतना जानना । प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम सहित पूर्ववत् गुणश्रेणी और गुणसंक्रमण होता है ।

आगे स्थितिबंधापसरण का क्रम कहते हैं –

ठिदिबंधसहस्सगदे संखेज्जा बादरो गदा भागा ।
तत्थासण्णिस्स ट्ठिदिसरिसं ठिदिबंधणं होदि ।।४१५।।

स्थितिबंधसहस्रगते संख्येया बादरो गता भागाः ।
तत्रासंज्ञिनः स्थितिसदृशं स्थितिबंधनं भवति ।।४१५।।

टीका – इसतरह प्रथम समय में पूर्वोक्त अनुक्रम सहित एक स्थितिबंधापसरण करके स्थितिबंध घटने से एक स्थितिबंध होता है, ऐसे संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर अनिवृत्तिकरण के काल के संख्यात भागों में से बहुभाग व्यतीत होनेपर एकभाग अवशेष रहता है; वहां असंज्ञी पंचेन्द्रिय के समान स्थितिबंध होता है । वहां हजार सागर के चार सप्तमांश *(चार सातवां)* भाग मात्र मोहनीय का, तीन सप्तमांश भाग मात्र तीसिय का, दो सप्तमांश भाग मात्र बीसिय का स्थितिबंध होता है । चालीस, तीस, बीस कोडाकोडी सागर स्थिति की अपेक्षा चारित्रमोहनीय का नाम चालीसिय, ज्ञानावरणादि चार का नाम तीसिय, नाम-गोत्र का नाम बीसिय जानना ।

ठिदिबंधसहस्सगदे पत्तेयं चदुरतियबिएइंदी ।
ठिदिबंधसमं होदि हु ठिदिबंधमणुक्कमेणेव ।।४१६।।

स्थितिबंध सहस्रगते प्रत्येकं चतुस्त्रिद्विएकेंद्री ।
स्थितिबंधसमं भवति हि स्थितिबंधमनुक्रमेणैव ।।४१६।।

टीका – पूर्वोक्त क्रम सहित प्रत्येक के संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर अनुक्रम से चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, एकेन्द्रिय समान स्थितिबंध होता है । वहां चतुरिन्द्रिय के समान तो सौ सागर के, त्रीन्द्रिय के समान पचास सागर के, द्वीन्द्रिय के समान पच्चीस सागर के, एकेन्द्रिय के समान एक सागर के चार सप्तमांश भाग मात्र तो मोहनीय का, तीन सप्तमांश भाग मात्र तीसिय का, दो सप्तमांश भाग मात्र बीसिय का स्थितिबंध होता है । वहां एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय के सत्तर कोडाकोडी सागर उत्कृष्ट स्थिति के धारक मिथ्यात्व कर्म का क्रम से एक, पच्चीस, पचास, सौ, हजार सागर का स्थितिबंध होता है; तो चालीस, तीस, बीस कोडाकोडी सागर उत्कृष्ट स्थिति के धारक जो मोह *(चारित्रमोह)*, ज्ञानावरणादि और नाम-गोत्र का कितना बंध होगा ? ऐसे त्रैराशिक करनेपर पूर्वोक्त स्थितिबंध का प्रमाण आता है । ऐसे ही त्रैराशिक का क्रम आगे भी जानना ।

एइंदियट्ठिदीदो संखसहस्से गदे हु ठिदिबंधे ।
पल्लेकदिवड्ढदुगं ठिदिबंधो वीसियतियाणं ।।४१७।।

एकेंद्रियस्थितित: संख्यसहस्रे गते हि स्थितिबंधे ।
पल्यैकद्व्यर्धद्विकं स्थितिबंध: वीसियत्रिकाणाम् ।।४१७।।

टीका – एकेन्द्रिय के समान स्थितिबंध के पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर बीसिय का एक पल्य, तीसिय का डेढ़ पल्य, मोहनीय का दो पल्य मात्र स्थितिबंध होता है ।

तक्काले ठिदिसंतं लक्खपुधत्तं तु होदि उवहीणं ।
बंधोसरणा बंधो ठिदिखंडं संतमोसरदि ।।४१८।।

तत्काले स्थितिसत्त्वं लक्षपृथक्त्वं तु भवति उदधीनाम् ।
बंधापसरणं बंध: स्थितिखंडं सत्त्वमपसरति ।।४१८।।

टीका – उस काल में कर्मों का स्थितिसत्त्व पृथक्त्व लक्ष सागर प्रमाण होता है, वह अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय संबंधी स्थितिसत्त्व से संख्यातगुणा हीन जानना ।

सर्वत्र ऐसा जानना कि स्थितिबंधापसरणों द्वारा स्थितिबंध घटता है और स्थितिकांडकों द्वारा स्थितिसत्त्व घटता है ।

पल्लस्स संखभागं संखगुणूणं असंखगुणहीणं ।
बंधोसरणे पल्लं पल्लासंखं असंखवस्सं ति ।।४१९।।

पल्यस्य संख्यभागं संख्यगुणोनमसंख्यगुणहीनम् ।
बंधापसरणे पल्यं पल्यासंख्यं असंख्यवर्षमिति ।।४१९।।

टीका – पल्य के संख्यातवें भाग, पूर्व बंध से संख्यातगुणा हीन और असंख्यातगुणा हीन प्रमाण युक्त स्थितिबंधापसरणों द्वारा क्रम से पल्य मात्र, पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र और असंख्यात वर्ष मात्र स्थितिबंध होता है ।

भावार्थ – पल्य मात्र स्थितिबंध होने तक तो पल्य के संख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंधापसरण जानना । वहां पूर्व स्थितिबंध से अनंतर स्थितिबंध कुछ विशेष हीन है । उसके पश्चात् पल्य के संख्यातवें भाग मात्र जो दूरापकृष्टि नामक स्थितिबंध उसके होने तक पल्य को संख्यात का भाग देकर एकभाग बिना बहुभाग मात्र स्थितिबंधापसरण

जानना । वहां पूर्व स्थितिबंध से अनंतर स्थितिबंध संख्यातगुणा हीन होता है । पुनश्च उसके पश्चात् संख्यात हजार वर्ष मात्र स्थितिबंध होने तक पल्य को असंख्यात का भाग देकर एकभाग बिना बहुभाग मात्र स्थितिबंधापसरण जानना । वहां पूर्व स्थितिबंध से अनंतर स्थितिबंध असंख्यातगुणा हीन होता है । इसतरह एक-एक स्थितिबंधापसरण में स्थितिबंध घटनेपर अवशेष स्थितिबंध रहते हैं । वहां पूर्व स्थितिबंध से अनंतर स्थितिबंध कुछ विशेष हीन होता है । इसीप्रकार के प्रमाण युक्त स्थितिकांडकों द्वारा स्थितिसत्त्व को घटाकर पल्यादि मात्र स्थितिसत्त्व का होना जानना ।

एवं पल्लं जादा वीसीया तीसिया य मोहो य ।
पल्लासंखं च कमं बंधेण य वीसियतियाओ ।।४२०।।

एवं पल्यं जाते वीसिया तिसीया च मोहश्च ।
पल्यासंख्यं च क्रमेण बंधेन च वीसियत्रिका: ।।४२०।।

टीका – इसतरह बीसियों का पल्य मात्र स्थितिबंध होने तक तो बीसियों से डेढ़गुणा तीसियों का और दोगुणा मोह का स्थितिबंध है । ऐसा ही क्रम जानना ।

उसके पश्चात् एक स्थितिबंधापसरण होने से बीसियों का स्थितिबंध संख्यातगुणा हीन होता है; पल्य को संख्यात का भाग देकर वहां बहुभाग घटाकर एकभाग मात्र स्थितिबंध रहता है । अन्य कर्मों का पल्य मात्र स्थितिबंध नहीं होने के कारण पूर्व बंध से पल्य के संख्यातवें भाग मात्र विशेष से हीन स्थितिबंध होता है । वहां बीसिय का अल्प स्थितिबंध है । उससे तीसिय का संख्यातगुणा है । क्योंकि यहां बीसिय का तो पल्य के संख्यातवें भाग होता है और तीसिय का साधिक पल्य मात्र है । तीसियों से मोह का विशेष अधिक है । ऐसे अल्पबहुत्व हुआ ।

इस क्रम से संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर तीसियों का पल्य मात्र स्थितिबंध होता है; वहां उससे तीसरा भाग अधिक मोह का स्थितिबंध होता है; क्योंकि तीसिय का पल्य मात्र स्थितिबंध हो तो चालीसिय का कितना होगा ऐसा त्रैराशिक करके त्रिभाग अधिक पल्य मात्र मोह का स्थितिबंध आता है ।

पुनश्च इसके अनंतर तीसियों का पल्य के संख्यात बहुभाग मात्र एक

स्थितिबंधापसरण करके पूर्व स्थितिबंध से संख्यातगुणा हीन स्थितिबंध होता है । वहां नाम, गोत्र का अल्प, उससे तीसियों का संख्यातगुणा, उससे मोह का संख्यातगुणा स्थितिबंध होता है । यहां और आगे अल्पबहुत्व यथासंभव स्थितिबंधापसरण होने से पाया जाता है, उसका विचार करनेपर प्रकट भासित होता है ।

इस अनुक्रम से संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर मोह का पल्य मात्र स्थितिबंध होता है; वहां अवशेष छह कर्मों का स्थितिबंध पल्य के संख्यातवें भाग मात्र होता है । इसतरह बीसिय, तीसिय और मोह का पल्य मात्र स्थितिबंध होने का क्रम जानना । उसके अनंतर मोह का पल्य के संख्यात बहुभाग मात्र एक स्थितिबंधापसरण होता है तब सातों कर्मों का स्थितिबंध पल्य के संख्यातवें भाग मात्र हुआ । वहां नाम, गोत्र का अल्प, उससे तीसियों का संख्यातगुणा, उससे मोह का संख्यातगुणा स्थितिबंध जानना ।

इस अनुक्रम से संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर नाम, गोत्र का दूरापकृष्टि नामक पल्य का संख्यातवां भाग मात्र स्थितिबंध होता है ।

उसके अनंतर पल्य का असंख्यात बहुभाग मात्र एक स्थितिबंधापसरण होने से नाम, गोत्र का पल्य का असंख्यातवां भाग मात्र स्थितिबंध होता है । वहां अन्य कर्मों का पल्य के संख्यातवें भाग मात्र ही स्थितिबंध है, क्योंकि इनके दूरापकृष्टि का उल्लंघन न होने से स्थितिबंधापसरण पल्य के संख्यात बहुभाग मात्र ही है । वहां नाम, गोत्र का अल्प, उससे तीसियों का असंख्यातगुणा, उससे मोह का संख्यातगुणा स्थितिबंध जानना । पुनश्च इस क्रम से संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर तीसियों का स्थितिबंध दूरापकृष्टि को उल्लंघकर पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र हुआ । वहां नाम, गोत्र का अल्प, उससे तीसियों का असंख्यातगुणा, उससे मोह का असंख्यातगुणा स्थितिबंध जानना । पुनश्च इस क्रम से संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर मोह का भी पल्य का असंख्यातवां भाग मात्र स्थितिबंध हुआ । वहां सभी कर्मों का पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध होता है । इसतरह बीसियों, तीसियों, चालीसियों का पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध क्रम से होता है ।

उदधिसहस्सपुधत्तं अब्भंतरदो दु सदसहस्सस्स ।
तक्काले ठिदिसंतो आउगवज्जाण कम्माणं ।।४२१।।

उदधिसहस्रपृथक्त्वं अभ्यंतरतस्तु शतसहस्रस्य ।
तत्काले स्थितिसत्त्वं आयुर्वर्जितानां कर्मणाम् ।।४२१।।

टीका – मोहनीय का पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध होने के उस काल में आयु बिना अन्य कर्मों का स्थितिसत्त्व पृथक्त्व हजार सागर प्रमाण होता है, पृथक्त्व हजार शब्द से यहां लक्ष के अंदर यथासंभव प्रमाण जानना । पहले पृथक्त्व लक्ष सागर का स्थितिसत्त्व था, वह कांडकघातों द्वारा यहां इतना रहा है ।

मोहगपल्लासंखट्ठिदिबंधसहस्सगेसु तीदेसु ।
मोहो तीसिय हेट्ठा असंखगुणहीणयं होदि ।।४२२।।

मोहगपल्यासंख्यस्थितिबंधसहस्रकेष्वतीतेषु ।
मोहः तीसियं अधस्तना असंख्यगुणहीनकं भवति ।।४२२।।

टीका – मोह का पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध हुआ, उस काल में नाम, गोत्र का अल्प, उससे तीसियों का असंख्यातगुणा, उससे मोह का असंख्यातगुणा स्थितिबंध होता है । पुनश्च इसी अल्पबहुत्व युक्त संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर नाम, गोत्र का अल्प, उससे मोह का असंख्यातगुणा, उससे तीसियों का असंख्यातगुणा ऐसा अन्य प्रकार का स्थितिबंध होता है । यहां विशुद्धता के निमित्त से तीसियों के नीचे अति अप्रशस्त ऐसे मोह का स्थितिबंध असंख्यातगुणा हीन हुआ ।

तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे बीसियाण हेट्ठादु ।
एक्कसराहे मोहे असंखगुणहीणयं होदि ।।४२३।।

तावन्मात्रे बंधे समतीते वीसियानां अधस्तात् ।
एकसमये मोहोऽसंख्यगुणहीनको भवति ।।४२३।।

टीका – पुनश्च इसी अल्पबहुत्व के क्रम युक्त उतने ही संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर एक ही बार अन्य प्रकार का स्थितिबंध हुआ । वहां मोह का अल्प, उससे नाम, गोत्र का असंख्यातगुणा, उससे चारों तीसियों का असंख्यातगुणा स्थितिबंध होता है । यहां विशुद्धता के बल से अति अप्रशस्त मोह का स्थितिबंध

बीसियों के नीचे असंख्यातगुणा हीन हुआ ।

तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वेदणीयहेट्ठा दु ।
तीसियघादितियाओ असंखगुणहीणया होंति ।।४२४।।

तावन्मात्रे बंधे समतीते वेदनीयाधस्तात् तु ।
तीसियघातित्रिका असंख्यगुणहीनका भवंति ।।४२४।।

टीका – पुनश्च इसी क्रम युक्त उतने ही संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत होनेपर अन्य प्रकार का स्थितिबंध हुआ । वहां मोह का अल्प, उससे नाम, गोत्र का असंख्यातगुणा, उससे तीन घातिकर्मों का असंख्यातगुणा, उससे वेदनीय का असंख्यातगुणा स्थितिबंध होता है । यहां विशुद्धता के कारण तीसियों में से भी वेदनीय के नीचे अप्रशस्त तीन घातिकर्मों का असंख्यातगुणा घटता स्थितिबंध हुआ ।

तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वीसियाण हेट्ठा दु ।
तीसियघादितियाओ असंखगुणहीणया होंति ।।४२५।।

तावन्मात्रे बंधे समतीते वीसियानामधस्तात् तु ।
तीसियघातित्रिका असंख्यगुणहीनका भवंति ।।४२५।।

टीका – पुनश्च इसी क्रम युक्त संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत होनेपर वहां अंत स्थितिबंध से अन्य प्रकार का स्थितिबंध हुआ । वहां मोह का अल्प, उससे तीन घातिकर्मों का असंख्यातगुणा, उससे नाम, गोत्र का असंख्यातगुणा, उससे वेदनीय का साधिक स्थितिबंध होता है । यहां विशुद्धता के बल से बीसियों के नीचे अति अप्रशस्त तीन घातिकर्मों का असंख्यातगुणा घटता स्थितिबंध होता है ।

तक्काले वेयणियं णामागोदाउ साहियं होदि ।
इदि मोहतीसवीसिय वेयणियाणं कमो बंधे ।।४२६।।

तत्काले वेदनीयं नामगोत्रात् साधिकं भवति ।
इति मोहतीसियवीसिय वेदनीयानां क्रमो बंधे ।।४२६।।

टीका – उस काल में वेदनीय का स्थितिबंध नाम, गोत्र के स्थितिबंध से साधिक है; उसके आधे प्रमाण से अधिक है, क्योंकि बीसियों के स्थितिबंध से तीसिय का स्थितिबंध त्रैराशिक द्वारा डेढ़गुणा सिद्ध होता है । इसतरह मोह, तीसिय, बीसिय, वेदनीय का क्रम से बंध हुआ, वही क्रमकरण जानना । नाम, गोत्र से वेदनीय का डेढ़गुणा स्थितिबंधरूप क्रम युक्त अल्पबहुत्व होना, उसीको क्रमकरण कहते हैं ।

आगे स्थितिसत्त्वापसरण कहते हैं –

बंधे मोहादिकमे संजादे तेत्तियेहिं बंधेहिं ।
ठिदिसंतमसण्णिसमं मोहादिकमं तहा संते ।।४२७।।

बंधे मोहादिक्रमे संजाते तावद्भिर्बंधै: ।
स्थितिसत्त्वमसंज्ञिसमं मोहादिक्रमं तथा सत्त्वे ।।४२७।।

टीका – पुनश्च मोहादि के क्रम सहित जो क्रमकरणरूप बंध हुआ, उसके पश्चात् इसी क्रम सहित उतने ही संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर असंज्ञी पंचेन्द्रिय के स्थितिबंध के समान स्थितिसत्त्व होता है । उसके पश्चात् जैसे मोहादि के क्रमकरण तक स्थितिबंध का व्याख्यान किया वैसे ही स्थितिसत्त्व का होना अनुक्रम से जानना । वहां पल्य प्रमाण स्थितिबंध तक पल्य का संख्यातवां भाग मात्र, उसके पश्चात् दूरापकृष्टि तक पल्य का संख्यात बहुभाग मात्र, उसके पश्चात् संख्यात हजार वर्ष स्थितिबंध तक पल्य का असंख्यात बहुभाग मात्र आयाम सहित स्थितिबंधापसरणों द्वारा स्थितिबंध का घटना कहा था; वैसे यहां उतने आयाम सहित स्थितिकांडकों द्वारा स्थितिसत्त्व का घटना होता है । वहां संख्यात हजार स्थितिबंधों का व्यतीत होना कहा, वैसे यहां भी कहते हैं अथवा वहां उतने स्थितिकांडकों का व्यतीत होना कहते हैं; क्योंकि स्थितिबंधापसरण और स्थितिकांडकोत्करण का काल समान है । पुनश्च पहले जहां स्थितिबंध कहा था वहां अब स्थितिसत्त्व कहना । तथा अल्पबहुत्व त्रैराशिक आदि विशेष बंधापसरणवत् ही यहां जानना । अब स्थितिसत्त्व का क्रम कहते हैं –

प्रत्येक संख्यात हजार स्थितिकांडक होनेपर क्रम से असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, एकेन्द्रिय के स्थितिबंध के समान कर्मों का स्थितिसत्त्व हजार सागर,

सौ सागर, पचास सागर, पच्चीस सागर, एक सागर प्रमाण होता है ।

पुनश्च संख्यात हजार स्थितिकांडक होनेपर बीसियों का पल्य, तीसियों का डेढ़ पल्य, मोह का दो पल्य प्रमाण स्थितिसत्त्व होता है । उसके पश्चात् पूर्व सत्त्व का संख्यात बहुभाग मात्र एक कांडक होनेपर बीसियों का पल्य के संख्यात भाग मात्र स्थितिसत्त्व हुआ, उस काल में बीसियों से तीसियों का संख्यातगुणा, मोह का विशेष अधिक स्थितिसत्त्व हुआ । पुनश्च इस क्रम से संख्यात हजार स्थितिकांडक होनेपर तीसियों का पल्य मात्र, मोह का त्रिभाग अधिक पल्य मात्र स्थितिसत्त्व हुआ । उसके पश्चात् एक कांडक होनेपर तीसियों का भी पल्य के संख्यातवें भाग मात्र स्थितिसत्त्व हुआ । उस समय बीसियों का अल्प, उससे तीसियों का संख्यातगुणा, उससे मोह का संख्यातगुणा स्थितिसत्त्व होता है ।

पुनश्च इस क्रम सहित संख्यात हजार स्थितिकांडक होनेपर मोह का पल्य मात्र स्थितिसत्त्व होता है । पुनश्च एक कांडक होनेपर मोह का भी पल्य के संख्यातवें भाग मात्र स्थितिसत्त्व होता है । उस समय सातों कर्मों का स्थितिसत्त्व पल्य के संख्यातवें भाग मात्र हुआ । वहां बीसियों का अल्प, उससे तीसियों का संख्यातगुणा, उससे मोह का संख्यातगुणा स्थितिसत्त्व होता है । उसके पश्चात् इस क्रम सहित संख्यात हजार स्थितिकांडक होनेपर बीसियों का स्थितिसत्त्व दूरापकृष्टि को उल्लंघकर पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र हुआ । उस समय बीसियों का अल्प, उससे तीसियों का असंख्यातगुणा, उससे मोह का संख्यातगुणा स्थितिसत्त्व होता है ।

उसके पश्चात् इस क्रम सहित संख्यात हजार स्थितिकांडक होनेपर तीसियों का स्थितिसत्त्व दूरापकृष्टि को उल्लंघकर पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र हुआ । उसके पश्चात् इस क्रम सहित संख्यात हजार स्थितिकांडक होनेपर मोह का स्थितिसत्त्व दूरापकृष्टि को उल्लंघकर पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र हुआ; तब सर्व ही कर्मों का स्थितिसत्त्व पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र हुआ । वहां बीसियों का अल्प, उससे तीसियों का असंख्यातगुणा, उससे मोह का असंख्यातगुणा स्थितिसत्त्व होता है ।

पुनश्च इस क्रम सहित संख्यात हजार स्थितिकांडक होनेपर नाम, गोत्र का अल्प, उससे मोह का असंख्यातगुणा, उससे तीसियों का असंख्यातगुणा स्थितिसत्त्व होता

है । पुनश्च इस क्रम से संख्यात हजार स्थितिकांडक होनेपर मोह का अल्प, उससे बीसियों का असंख्यातगुणा, उससे तीसियों का असंख्यातगुणा स्थितिसत्त्व होता है । पुनश्च इस क्रम से संख्यात हजार स्थितिकांडक होनेपर मोह का अल्प, उससे बीसियों का असंख्यातगुणा, उससे तीन घातिकर्मों का असंख्यातगुणा, उससे वेदनीय का असंख्यातगुणा स्थितिसत्त्व होता है । इस क्रम से संख्यात हजार स्थितिकांडक होनेपर मोह का अल्प, उससे तीन घातिकर्मों का असंख्यातगुणा, उससे नाम, गोत्र का असंख्यातगुणा, उससे वेदनीय का विशेष अधिक स्थितिसत्त्व होता है । इसतरह अंत में नाम, गोत्र के स्थितिसत्त्व से वेदनीय का स्थितिसत्त्व साधिक हुआ, तब मोहादि के क्रम सहित स्थितिसत्त्व का क्रमकरण हुआ ।

तीदे बंधसहस्से पल्लासंखेज्जयं तु ठिदिबंधे ।
तत्थ असंखेज्जाणं उदीरणा समयबद्धाणं ।।४२८।।

अतीते बंधसहस्रे पल्यासंख्येयकं तु स्थितिबंधे ।
तत्र असंख्येयानां उदीरणा समयबद्धानाम् ।।४२८।।

टीका – इस क्रमकरण के पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत होनेपर जो पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध होता है, उसके होते हुये वहां असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होती है । यहां से पहले अपकर्षण किये हुये द्रव्य को उदयावली में देने के लिये असंख्यातलोक प्रमाण भागहार होता था, वहां समयप्रबद्ध के असंख्यातवें भाग मात्र उदीरणा द्रव्य था । अब वहां पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण भागहार होने से असंख्यात समयप्रबद्ध मात्र उदीरणा द्रव्य हुआ ।

आगे क्षपणाधिकार का प्रारंभ होता है –

ठिदिबंधसहस्सगदे अट्ठकसायाण होदि संकमगो ।
ठिदिखंडपुधत्तेण य तट्ठिदिसंतं तु आवलियविद्धं ।।४२९।।

स्थितिबंधसहस्रगते अष्टकषायाणां भवति संक्रमकः ।
स्थितिखंडपृथक्त्वेन च तत्स्थितिसत्त्वं तु आवलिकविद्धं ।।४२९।।

टीका – असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होने से लेकर संख्यात हजार स्थितिकांडक व्यतीत होनेपर अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभरूप आठ कषायों का संक्रमण होता है । यहां संक्रमक का अर्थ है – क्षपणा का प्रारंभक होता है । ये अति अप्रशस्त थे, इसलिए पहले इनकी क्षपणा होती है । इनके द्रव्य में से कितना ही क्षपणा के प्रारंभ के समय में, कितना ही दूसरे समय में इसतरह प्रतिसमय एक-एक फालि का संक्रमण होते हुये अंतर्मुहूर्त के जितने समय हैं उतनी फालि द्वारा प्रथम कांडक का संक्रमण होता है । इसीप्रकार द्वितीय कांडक का संक्रमण होता है ।

[***विशेषार्थ*** – *कांडकप्रमाण निषेकों में से सभी निषेकों के थोड़े-थोड़े परमाणु प्रथम समय में अन्य प्रकृतिरूप परिणमित होते हैं – संक्रमित होते हैं – इसे प्रथम फालि कहते हैं । दूसरे समय में जो परमाणु संक्रमित होते हैं उसे द्वितीय फालि कहते हैं । अंतिम फालि संक्रमित होनेपर उतने निषेकों का अभाव हो जाता है । उसके बाद द्वितीय कांडक का इसीप्रकार संक्रमण शुरु होता है ।*]

इसतरह क्रम से संख्यात हजार स्थितिकांडकों द्वारा आठ कषायों के द्रव्य का चार संज्वलन कषाय और पुरुषवेद में संक्रमण होता है । इसतरह ये परमुख से नष्ट होते हैं । अन्य प्रकृतिरूप होकर जिनका नाश होता है उसको परमुख से नष्ट होना कहते हैं । इसतरह मोह राजा की सेना के नायक अष्ट कषायों के अंतिम कांडक का नाश होनेपर अवशेष स्थितिसत्त्व काल की अपेक्षा आवली मात्र रहता है और निषेकों की अपेक्षा एक समय कम आवली मात्र रहता है; क्योंकि अंतिम कांडकघात के समय में प्रथम निषेक का स्वमुख उदय युक्त जो कोई संज्वलन हो, उसमें संक्रमण होकर उदय होता है । उदयावलि में प्राप्त निषेकों का कांडकघात नहीं होता इसलिए एक समय कम आवली मात्र निषेक अंतिम फालि के साथ नष्ट नहीं होते ।

[***विशेषार्थ*** : *कांडकों द्वारा संक्रमण होते-होते जब आवली में एक कम इतने निषेक बाकी रहते हैं तब कांडकघात नहीं होता । वर्तमान समय में तो संज्वलन चार कषायों में से किसी एक का उदय है वहां आठ कषायों का अपने स्वमुख से - अपने रूप से उदय नहीं है । इसलिए निषेकों की संख्या एक समय कम आवली प्रमाण*

है, परंतु उन्हीं को कितना काल शेष है उसकी अपेक्षा देखनेपर आवली प्रमाण काल है । प्रत्येक समय में नीचे का एक-एक निषेक संज्वलन कषाय कि जो उदयरूप है, उसमें संक्रमित होता है इसे परमुख से उदय होना कहते हैं । इस विधि से आठ कषायों का सत्ता में से पूर्ण नाश होता है – क्षय होता है ।]

ठिदिबंधपुधत्तगदे सोलसपयडीण होदि संकमगो ।
ठिदिखंडपुधत्तेण य तट्ठिदिसंतं तु आवलिपविट्ठं ।।४३०।।

स्थितिबंधपृथक्त्वगते षोडशप्रकृतीनां भवति संक्रमकः ।
स्थितिखंडपृथक्त्वेन च तत्स्थितिसत्त्वं तु आवलिप्रविष्टम् ।।४३०।।

टीका – इसके ऊपर *(इसके पश्चात्)* पृथक्त्व अर्थात् संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत होनेपर दर्शनावरण की तीन – निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि तथा नामकर्म की ~~सोलह~~ तेरह – नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि चार जाति, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण ऐसी सोलह प्रकृतियों का संक्रमक होता है । क्षपणा प्रारंभ के समय से लेकर प्रतिसमय इनके द्रव्य का पूर्वोक्त प्रकार से एक-एक फालि का संक्रमण होते-होते प्रथम कांडक होता है, ऐसे संख्यात हजार स्थितिकांडकों द्वारा संक्रमण होता है । वहां अंतिम कांडकघात होनेपर अवशेष स्थितिसत्त्व काल की अपेक्षा आवली मात्र तथा निषेक की अपेक्षा एक समय कम आवली मात्र रहता है । इसतरह इनका उदयावली से बाह्य सर्व निषेकों का द्रव्य स्वजाति की अन्य प्रकृतियों में संक्रमण होकर क्षय को प्राप्त होता है । अपनी जाति की अन्य प्रकृतियों को स्वजाति कहते हैं । जैसे, स्त्यानगृद्धित्रिक की स्वजाति दर्शनावरण की अन्य प्रकृतियां हैं; ऐसे ही अन्य जानना । यहां से लेकर पृथक्त्व का अर्थ संख्यात हजार जानना ।

इसतरह यहां तो मोह की आठ प्रकृतियों का नाश होनेपर तेरह प्रकृतियों का सत्त्व रहा, दर्शनावरण की तीन प्रकृतियों का नाश होनेपर छह प्रकृतियों का सत्त्व रहा और नामकर्म की तेरह प्रकृतियों का नाश होनेपर अस्सी प्रकृतियों का सत्त्व रहा । ज्ञानावरण, वेदनीय, गोत्र, अंतराय में से किसी प्रकृति का नाश नहीं हुआ ।

आगे देशघातिकरण कहते हैं –

ठिदिबंधपुधत्तगदे मणदाणा तत्तियेवि ओहि दुगं ।
लाभं च पुणोवि सुदं अचक्खुभोगं पुणो चक्खु ।।४३१।।

पुणरवि मदिपरिभोगं पुणरवि विरयं कमेण अणुभागो ।
बंधेण देसघादी पल्लासंखं तु ठिदिबंधो ।।४३२।।

स्थितिबंधपृथक्त्वगते मनोदाने तावत्यपि अवधिद्विकम् ।
लाभश्च पुनरपि श्रुतं अचक्षुभोगं पुनः चक्षुः ।।४३१।।

पुनरपि मतिपरिभोगं पुनरपि वीर्यं क्रमेण अनुभागः ।
बंधेन देशघातिः पल्यासंख्यस्तु स्थितिबंधः ।।४३२।।

टीका – मनःपर्यय आदि बारह प्रकृतियों का पहले सर्वघाति द्विस्थानगत अनुभागबंध होता था, यहां से आगे देशघाति दारु, लतारूप द्विस्थानगत अनुभागबंध होने लगा, वह देशघातिकरण है । वही कहते हैं –

सोलह प्रकृतियों के संक्रमण होने के पश्चात् पृथक्त्व - संख्यात हजार स्थितिकांडक होनेपर मनःपर्ययज्ञानावरण और दानांतराय का, पुनश्च उतने स्थितिकांडक व्यतीत होनेपर अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण, लाभांतराय का; पुनश्च उतने स्थितिकांडक होनेपर श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण, भोगांतराय का; पुनश्च उतने स्थितिकांडक होनेपर चक्षुदर्शनावरण का; पुनश्च उतने स्थितिकांडक होनेपर मतिज्ञानावरण, उपभोगांतराय का; पुनश्च उतने स्थितिकांडक होनेपर वीर्यांतराय का अनुभागबंध देशघाति होता है । पुरुषवेद, संज्वलन कषाय का पहले संयतासंयत आदि में ही देशघाति अनुभागबंध होता है इसलिए यहां नहीं कहा । इस अवसर में स्थितिबंध यथासंभव पल्य का असंख्यातवां भाग मात्र ही जानना ।

आगे अंतरकरण कहते हैं –

ठिदिखंडसहस्सगदे चदुसंजलणाण णोकसायाणं ।
एयट्ठिदिखंडुक्कीरणकाले अंतरं कुणइ ।।४३३।।

स्थितिखंडसहस्रगते चतु:संज्वलनानां नोकषायाणां ।
एकस्थितिखंडोत्कीरणकाले अंतरं करोति ।।४३३।।

टीका – देशघातिकरण के पश्चात् संख्यात हजार स्थितिकांडक होनेपर चार संज्वलन और नौ नोकषाय इनका अंतर करता है, अन्य कर्मों का अंतर नहीं होता । नीचे के और ऊपर के निषेकों को छोड़कर अंतर्मुहूर्त मात्र बीच के निषेकों का अभाव करना, उसे अंतरकरण जानना । वहां अंतरकरण काल के प्रथम समय में पहले से अन्य प्रमाण युक्त स्थितिकांडक, अनुभागकांडक, स्थितिबंध होता है । एक स्थितिकांडकोत्करण का जितना काल है, उतने काल द्वारा अंतर को पूर्ण करता है । इस काल के प्रथमादि समयों में उन निषेकों के द्रव्य को अन्य निषेकों के द्रव्य में निक्षेपण करता है ।

संजलणाणं एक्कं वेदाणेक्कं उदेदि तद्दोण्हं ।
सेसाणं पढमट्ठिदि ठवेदि अंतोमुहुत्तआवलियं ।।४३४।।

संज्वलनानामेकं वेदानामेकमुदेति तद्द्वयो: ।
शेषाणां प्रथमस्थितिं स्थापयति अंतर्मुहूर्तमावलिकां ।।४३४।।

टीका – संज्वलन चतुष्क में से कोई एक और तीन वेदों में से कोई एक ऐसे उदयरूप दो प्रकृतियों की तो अंतर्मुहूर्त मात्र प्रथम स्थिति स्थापित करता है । इनके बिना जिनका उदय नहीं पाया जाता ऐसी अन्य ग्यारह प्रकृतियों की आवली मात्र प्रथम स्थिति स्थापित करता है । जैसे, पुरुषवेद और क्रोध के उदय सहित श्रेणी मांडी है, इसलिए इन दोनों की तो अंतर्मुहूर्त मात्र तथा अन्य की आवली मात्र प्रथम स्थिति स्थापित करता है, वहां वर्तमान समय संबंधी निषेक से लेकर प्रथम स्थिति प्रमाण निषेकों को नीचे छोड़कर, इनके ऊपर के निषेकों का अंतर करता है ।

उक्कीरिदं तु दव्वं संते पढमट्ठिदिम्हि संथुहदि ।
बंधेवि य आबाधमदित्थिय उक्कट्टदे णियमा ।।४३५।।

अपकर्षितं तु द्रव्यं सत्त्वे प्रथमस्थितौ संस्थापयति ।
बंधेऽपि च आबाधामतिक्रम्योत्कर्षति नियमात् ।।४३५।।

टीका – उन अंतररूप निषेकों के द्रव्य को अंतरकरण काल के प्रथम समय में ग्रहण किया, वह प्रथम फालि; उससे असंख्यातगुणा दूसरे समय में ग्रहण किया, वह द्वितीय फालि; इसतरह असंख्यातगुणा क्रम युक्त अंतर्मुहूर्त मात्र फालियों द्वारा सर्व द्रव्य अन्य निषेकों में निक्षेपण करता है, अंतररूप निषेकों में निक्षेपण नहीं करता । कहां निक्षेपण करता है, वह कहते हैं –

बंध-उदय रहित *(छह नोकषाय)* और केवल बंध सहित उदय रहित *(संज्वलन तीन, पुरुषवेद)* जो प्रकृतियां हैं, उनकी प्रथम स्थिति एक समय कम आवली मात्र कही, उनके द्रव्य को अपकर्षण द्वारा उदयरूप अन्य प्रकृतियों की प्रथम स्थिति में संक्रमणरूप करके निक्षेपण करता है । बंध-उदय रहित प्रकृतियों के द्रव्य को अपनी द्वितीय स्थिति में निक्षेपण नहीं करता, क्योंकि बंध बिना उत्कर्षण होना संभव नहीं है ।

केवल बंध सहित *(संज्वलन तीन, पुरुषवेद)* प्रकृतियों के द्रव्य को उत्कर्षण द्वारा अपने द्वितीय स्थिति में निक्षेपण करता है अथवा बंधनेवाली अन्य प्रकृतियों के द्वितीय स्थिति में संक्रमणरूप करके निक्षेपण करता है । जो प्रकृति केवल उदय सहित हैं *(स्त्रीवेद, नपुंसकवेद)* वा बंध-उदय सहित हैं *(पुरुषवेद, संज्वलन एक कषाय)*, उनकी प्रथम स्थिति अंतर्मुहूर्त मात्र कही; उनमें से जो केवल उदय सहित ही हैं उनके द्रव्य को अपकर्षण करके अपनी प्रथम स्थिति में निक्षेपण करता है । अन्य प्रकृतियों के द्रव्य को भी इनकी प्रथम स्थिति में संक्रमणरूप निक्षेपण करता है । इनका जो द्रव्य है उसको उत्कर्षण द्वारा बंधनेवाली अन्य प्रकृतियों की आबाधा, जो अंतरायाम से संख्यातगुणा है, उसको छोड़कर द्वितीय स्थिति में जो जघन्य निषेक है उससे लेकर बंधनेवाली स्थिति के सर्व निषेकों में निक्षेपण करता है ।

केवल उदयमान प्रकृतियों *(स्त्रीवेद, नपुंसकवेद)* के द्रव्य को अपनी द्वितीय स्थिति में निक्षेपण नहीं करता । बंध-उदय सहित प्रकृतियों के द्रव्य को प्रथम स्थिति में और बंधनेवाली द्वितीय स्थिति में निक्षेपण करता है ।

यहां अंतरायाम के नीचे के निषेकरूप तो प्रथम स्थिति जानना और अंतरायाम के ऊपरवर्ती निषेकरूप द्वितीय स्थिति जानना । वहां छह नोकषाय तथा पुरुषवेद

सहित श्रेणी चढ़नेवाले के अन्य दो वेद, स्त्रीवेद सहित श्रेणी चढ़नेवाले के नपुंसकवेद और नपुंसकवेद सहित श्रेणी चढ़नेवाले के स्त्रीवेद ये तो बंध-उदय रहित हैं । स्त्रीवेद या नपुंसकवेद सहित श्रेणी चढ़नेवाले के लिये पुरुषवेद तथा सभी के लिये जिस कषाय सहित श्रेणी चढ़ी हो उसके बिना तीन संज्वलन कषाय उदय रहित केवल बंध सहित हैं ।

स्त्रीवेद वा नपुंसकवेद सहित श्रेणी चढ़नेवाले के स्त्रीवेद वा नपुंसकवेद केवल उदय सहित हैं । पुरुषवेद सहित श्रेणी चढ़नेवाले के पुरुषवेद तथा सभी के जिस कषाय सहित श्रेणी चढ़ी हो वह कषाय ये बंध-उदय सहित हैं । इनके अंतररूप निषेकों के द्रव्य को पूर्वोक्त प्रकार के सत्त्व में से अपकर्षण करके तो प्रथम स्थिति में और उत्कर्षण करनेपर आबाधा छोड़कर बंधरूप स्थिति में निक्षेपण करता है । इस अंतरकरण काल में अनुभागकांडक हजारों होते हैं । स्थितिकांडक, समान स्थितिबंध और अंतरकरण इन तीनों का काल समान है, इसलिए युगपत् समान होते हैं ।

आगे संक्रमण कहते हैं –

सत्त करणाणि अंतरकदपढमे ताणि मोहणीयस्स ।
इगिठाणियबंधुदओ तस्सेव य संखवस्सठिदिबंधो ।।४३६।।

तस्साणुपुव्विसंकम लोहस्स असंकमं च संढस्स ।
आवेत्तकरणसंकम छावलितीदेसुदीरणदा ।।४३७।।

सप्तकरणानि अंतरकृतप्रथमे तानि मोहनीयस्य ।
एकस्थानिकबंधोदयौ तस्यैव च संख्यवर्षस्थितिबंधः ।।४३६।।

तस्यानुपूर्विसंक्रमं लोभस्यासंक्रमं च षंढस्य ।
आवृत्तकरणसंक्रमं षडावल्यतीतेषूदीरणता ।।४३७।।

टीका – अंतर जिसने किया ऐसे अंतरकृत जीव के प्रथम समय में सात करणों का प्रारंभ होता है । वह कहते हैं –

मोहनीय का बंध और उदय दारुपना को छोड़कर केवल लतारूप एकस्थानगत

हुये – ये दो करण; उसी मोहनीय का स्थितिबंध पल्य के असंख्यातवें भाग से घटकर संख्यात वर्ष मात्र हुआ – यह एक करण; मोह की प्रकृतियों का पहले जहां तहां स्वजातीय प्रकृतियों में संक्रमण होता था, अब आगे कहेंगे ऐसा आनुपूर्वी संक्रमण होता है, अन्यथा नहीं होता – यह एक करण; पहले लोभ का अन्य प्रकृतिरूप संक्रमण होता था अब नहीं होता – यह एक करण; नपुंसकवेद का आवृत्तकरण संक्रमक हुआ – इसको अन्य प्रकृतिरूप परिणमाकर नाश करने का उद्यमी हुआ – यह एक करण; पहले कर्मबंध के पश्चात् आवली व्यतीत होनेपर ही उदीरणा होती थी, अब छह आवली व्यतीत होनेपर ही उदीरणा होती है – यह एक करण; इन सात करणों का अंतर करने के अनंतर समय में युगपत् प्रारंभ होता है ।

संछुहदि पुरिसवेदे इत्थीवेदं णउंसयं चेव ।
सत्तेव णोकसाए णियमा कोहम्हि संछुहदि ।।४३८।।

कोहं च छुहदि माणे माणं मायाए णियमि संछुहदि ।
मायं च छुहदि लोहे पडिलोमो संकमो णत्थि ।।४३९।।

संक्रामति पुरुषवेदे स्त्रीवेदं नपुंसकं चैव ।
सप्तैव नोकषायान् नियमात् क्रोधे संक्रामति ।।४३८।।

क्रोधश्च क्रामति माने मानो मायायां नियमेन संक्रामति ।
माया च क्रामति लोभे प्रतिलोमः संक्रमो नास्ति ।।४३९।।

टीका – स्त्रीवेद और नपुंसकवेद का द्रव्य तो पुरुषवेद में संक्रमण करता है । पुरुषवेद और हास्यादि छह नोकषाय इन सात नोकषायों का द्रव्य संज्वलन क्रोध में संक्रमण करता है । क्रोध का द्रव्य मान में संक्रमण करता है । मान का द्रव्य माया में संक्रमण करता है । माया का द्रव्य लोभ में संक्रमण करता है । इसतरह संक्रमण द्वारा अन्यरूप परिणमित होकर स्वयं नाश को प्राप्त होते हैं, यह आनुपूर्वी संक्रमण जानना । प्रतिलोम अर्थात् अन्यथा प्रकार से संक्रमण अब नहीं होता ।

यहां से आगे मोहनीय के स्थितिबंधापसरण का प्रमाण स्थितिबंध से संख्यातगुणा

हीन हुआ, क्योंकि संख्यात वर्ष स्थितिबंध होने के पश्चात् स्थितिबंधापसरण का प्रमाण स्थितिबंध से संख्यातगुणा घटता होता है; तथा बत्तीस वर्ष मात्र स्थितिबंध होने के पश्चात् स्थितिबंधापसरण का प्रमाण अंतर्मुहूर्त मात्र होता है । ऐसी व्याप्ति सर्वत्र जानना ।

ठिदिबंधसहस्सगदे संढो संकामिदो हवे पुरिसे ।
पडिसमयमसंखगुणं संकामगचरिमसमओ त्ति ।।४४०।।

स्थितिबंधसहस्रगते षंढः संक्रामितो भवेत् पुरुषे ।
प्रतिसमयमसंख्यगुणं संक्रामकचरमसमय इति ।।४४०।।

टीका – अंतरकरण के अनंतर समय से लेकर संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत होनेपर नपुंसकवेद पुरुषवेद में संक्रमित होता है । नपुंसकवेद की क्षपणा के प्रथम समय से लेकर प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम से संक्रमण काल के अंत समय तक नपुंसकवेद के द्रव्य का पुरुषवेद में संक्रमण होता है । वहां प्रतिसमय जितना द्रव्य संक्रमित हुआ वह फालि है, अंतर्मुहूर्त मात्र फालियों के समूहरूप कांडक है । ऐसे गुणसंक्रमणरूप कांडक अनुक्रम से संख्यात हजार होनेपर अंत समय में जो अंत कांडक की अंत फालि है, उसको सर्वसंक्रमण द्वारा संक्रमित करता है । इसतरह नपुंसकवेद के द्रव्य को पुरुषवेदरूप परिणमाकर नाश को प्राप्त करता है । ऐसा अर्थ स्त्रीवेद की क्षपणा आदि में भी जोड़ना ।

बंधेण होदि उदओ अहिओ उदएण संकमो अहिओ ।
गुणसेढि असंखेज्जापदेसअंगेण बोधव्वा ।।४४१।।

बंधेन भवति उदयः अधिक उदयेन संक्रमोऽधिकः ।
गुणश्रेणिरसंख्येयप्रदेशांगेन बोद्धव्या ।।४४१।।

टीका – नपुंसकवेद के संक्रमण काल में पुरुषवेद के बंधद्रव्य से उदयद्रव्य अधिक है और उदयद्रव्य से संक्रमणद्रव्य अधिक है । वह अधिकता असंख्यात प्रदेश समूह से गुणश्रेणीरूप अर्थात् गुणकार की पंक्तिरूप जानना ।

भावार्थ – यहां पुरुषवेद के जितने प्रदेशों *(परमाणुओं)* का बंध होता है, उससे

असंख्यातगुणा अधिक उसके प्रदेशों का उदय होता है और उससे असंख्यातगुणा अधिक प्रदेशों का वहां संक्रमण होता है । वही कहते हैं –

प्रदेश शब्द से परमाणुरूप द्रव्य जानना । यहां तो समयप्रबद्ध बंधता है उसको सात का भाग देनेपर मोह का द्रव्य आता है । उसको कषाय, नोकषाय के विभाजन के लिये दो का भाग देनेपर पुरुषवेद का द्रव्य आता है – इतना तो प्रदेशों का बंध होता है । पुनश्च सर्व सत्तारूप पुरुषवेद के द्रव्य में से गुणश्रेणी आदि के द्वारा दिये हुये द्रव्य सहित इस समय में उदय आने योग्य निषेक का द्रव्य जितना हो, उतने प्रदेशों का उदय होता है, वे इन बंधप्रदेशों से असंख्यातगुणा हैं । पुनश्च नपुंसकवेद के सर्व द्रव्य को गुणसंक्रमण *(भागहार)* का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है उतने नपुंसकवेद के प्रदेशों का पुरुषवेद में संक्रमण होता है । वे इन उदयप्रदेशों से असंख्यातगुणा जानना । इसतरह अल्पबहुत्व के कथन द्वारा गुणसंक्रमण के द्रव्य का प्रमाण जानते हैं ।

गुणसेढिअसंखेज्जापदेसअंगेण संकमो उदओ ।
से काले से काले भज्जो बंधो पदेसंगो ।।४४२।।

गुणश्रेण्यसंख्येयप्रदेशांगेन संक्रम उदयः ।
स्वे काले स्वे काले योग्यो बंधः प्रदेशांगः ।।४४२।।

टीका – अपने काल में स्वस्थान अपेक्षा संक्रमण से संक्रमण और उदय से उदय प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातरूप गुणकार की पंक्ति युक्त है ।

भावार्थ – नपुंसकवेद की क्षपणा के काल में प्रथम समय में नपुंसकवेद के जितने प्रदेशों का पुरुषवेद में संक्रमण होता है, उससे दूसरे समय में असंख्यातगुणा *(प्रदेशों का संक्रमण)* होता है । उससे तीसरे समय में असंख्यातगुणा होता है – इसतरह अंत समय तक जानना । पुनश्च अपने पुरुषवेद के उदयकाल में प्रथम समय में पुरुषवेद के जितने प्रदेशों का उदय होता है, उससे दूसरे समय में असंख्यातगुणा, उससे तीसरे समय में असंख्यातगुणा इसतरह अंत समय तक जानना । पुनश्च अपने पुरुषवेद के बंधकाल में प्रदेशरूप बंध भजनीय है, क्योंकि प्रदेशबंध योगों के अनुसार

होता है । इसकारण पुरुषवेद का प्रदेशबंध प्रथमादि समय से द्वितीयादि समयों में कदाचित् संख्यातवें भाग, असंख्यातवें भाग, संख्यातगुणा, असंख्यातगुणा बढ़ता अथवा कदाचित् ऐसे ही घटता अथवा कदाचित् जितना का उतना अवस्थितरूप होता है ।

इन अट्ठाइस गाथाओं का अर्थरूप व्याख्यान क्षपणासार में नहीं लिखा है; यहां मुझे प्रतिभासित हुआ वैसे लिखा है ।

इदि संढं संकामिय से काले इत्थिवेदसंकमगो ।
अण्णंठिदिरसखंडं अण्णं ठिदिबंधमारभई ।।४४३।।

इति षंढं संक्राम्य स्वे काले स्त्रीवेदसंक्रमक: ।
अन्यस्थितिरसखंडमन्यं स्थितिबंधमारभते ।।४४३।।

टीका – इसप्रकार नपुंसकवेद का संक्रमण करके अपने काल में स्त्रीवेद का संक्रामक होता है अर्थात् उसे पुरुषवेद में संक्रमण करके क्षपणा करनेवाला होता है । वहां प्रथम समय में पहले से अन्य प्रमाण युक्त स्थितिकांडक, अनुभागकांडक, स्थितिबंध को प्रारंभ करता है ।

थी अद्धा संख्येज्जभागेपगदे तिघादिठिदिबंधो ।
वस्साणं संखेज्जं थी संकंतापगद्धंते ।।४४४।।

स्त्री अद्धा संख्येयभागेपगते त्रिघातिस्थितिबंध: ।
वर्षाणां संख्येयं स्त्री संक्रमोपगताधीते ।।४४४।।

टीका – वहां संख्यात हजार स्थितिकांडकों द्वारा स्त्रीवेद क्षपणा काल का संख्यातवां भाग व्यतीत होनेपर ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय इन तीन घातिकर्मों का स्थितिबंध पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र होता था, उसको समाप्त कर, संख्यात वर्ष प्रमाण स्थितिबंध करता है । उसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिकांडक व्यतीत होनेपर स्त्रीवेद क्षपणा काल का अवशेष बहुभाग व्यतीत होनेपर घात *(कांडकघात)* करने के पश्चात् स्त्रीवेद का स्थितिसत्त्व पल्य का असंख्यातवां भाग मात्र अवशेष रहा, उसको अंत स्थितिकांडकरूप करता है । उसी काल में अवशेष कर्मों का स्थितिकांडक

पल्य का असंख्यातवां भाग मात्र, जो स्थितिसत्त्व के असंख्यातवें भाग मात्र था, वह उसके असंख्यात बहुभाग मात्र आयाम को धारण करता है ।

वहां अंत कांडक संपूर्ण होनेपर *(स्त्रीवेद के अंतिम स्थितिकांडक का घात होनेपर)* स्त्रीवेद भी संक्रमणरूप हुआ । द्वितीय स्थिति में स्थित ऐसा पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र आयाम का धारक जो अंत स्थितिकांडक, उसकी अंत फालि को पुरुषवेद में संक्रमण करके स्त्रीवेद की सत्ता का नाश करता है ।

ताहे संखसहस्सं वस्साणं मोहणीयठिदिसंतं ।
से काले संकमगो सत्तण्हं णोकसायाणं ।।४४५।।

तस्मिन् (अ) संख्यसहस्रं वर्षाणां मोहनीयस्थितिसत्त्वम् ।
स्वे काले संक्रमकः सप्तानां नोकषायाणाम् ।।४४५।।

टीका – वहां स्त्रीवेद क्षपणा काल के अंत में मोहनीय का स्थितिसत्त्व संख्यात वर्ष प्रमाण होता है । उसके अनंतर अपने काल में सात नोकषायों का संक्रमक अर्थात् संज्वलन क्रोधरूप परिणमाकर नाश करनेवाला होता है ।

ताहे मोहो थोवो संखेज्जगुणं तिघादिठिबंधो ।
तत्तो असंखगुणियो णामदुगं साहियं तु वेयणियं ।।४४६।।

तत्र मोहः स्तोकः संख्येयगुणं त्रिघातिस्थितिबंधः ।
ततोऽसंख्येयगुणितो नामद्विकं साधिकं तु वेदनीयम् ।।४४६।।

टीका – वहां प्रथम समय में मोह का अल्प, उससे तीन घातिकर्मों का संख्यातगुणा, उससे नाम, गोत्र का पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र होने के कारण असंख्यातगुणा, उससे वेदनीय का त्रैराशिक के द्वारा आधे प्रमाण से साधिक स्थितिबंध होता है ।

ताहे असंखगुणियं मोहादु तिघादिपयडिठिदिसंतं ।
तत्तो असंखगुणियं णामदुगं साहियं तु वेयणियं ।।४४७।।

तस्मिन् असंख्यगुणितं मोहात् त्रिघातिप्रकृतिस्थितिसत्त्वम् ।
ततोऽसंख्यगुणितं नामद्विकं साधिकं तु वेदनीयं ।।४४७।।

टीका – वहां ही प्रथम समय में संख्यात वर्ष मात्र मोह का स्थितिसत्त्व अल्प है, उससे असंख्यातगुणा तीन घातिकर्मों का स्थितिसत्त्व पल्य का असंख्यातवां भाग मात्र है, उससे असंख्यातगुणा नाम, गोत्र का स्थितिसत्त्व है, उससे अधिक वेदनीय का स्थितिसत्त्व है । क्रमकरण के अल्पबहुत्व का अनुक्रम यहां तक भी रहता है ऐसा जानना ।

सत्तण्हं पढमट्ठिदिखंडे पुण्णे दु मोहठिदिसंतं ।
संखेज्जगुणविहीणं सेसाणमसंखगुणहीणं ।।४४८।।

सप्तानां प्रथमस्थितिखंडे पूर्णे तु मोहस्थितिसत्त्वं ।
संख्येयगुणविहीनं शेषाणामसंख्यगुणहीनम् ।।४४८।।

टीका – सात नोकषायों का पहला स्थितिकांडकघात पूर्ण होनेपर पूर्व स्थितिसत्त्व से मोह का तो स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा हीन हुआ, क्योंकि संख्यात वर्ष स्थितिसत्त्व होने से स्थितिकांडक आयाम पूर्व स्थितिसत्त्व के संख्यात बहुभाग मात्र है । तथा अवशेष कर्मों का स्थितिसत्त्व पूर्व स्थितिसत्त्व से असंख्यातगुणा हीन हुआ, क्योंकि पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिसत्त्व होने से स्थितिकांडक आयाम पूर्व स्थितिसत्त्व के असंख्यात बहुभाग मात्र है ।

सत्तण्हं पढमट्ठिदिखंडे पुण्णे ति घादिठिदिबंधो ।
संखेज्जगुणविहीणं अघादितियाणं असंखगुणहीणं ।।४४९।।

सप्तानां प्रथमस्थितिखंडे पूर्णे इति घातिस्थितिबंधः ।
संख्येयगुणविहीनो अघातित्रयाणामसंख्यगुणहीनः ।।४४९।।

टीका – सात नोकषायों का प्रथम स्थितिकांडक पूर्ण होनेपर पूर्व स्थितिबंध से चारों घातिकर्मों का तो संख्यातगुणा हीन और तीन अघातिकर्मों का असंख्यातगुणा हीन स्थितिबंध होता है । क्योंकि एक स्थितिबंधापसरण के द्वारा इतना स्थितिबंध

का घटना होता है ।

ठिदिबंधपुधत्तगदे संखेज्जदिमं गतं तदद्धाए ।
एत्थ अघादितियाणं ठिदिबंधो संखवस्सं तु ।।४५०।।

स्थितिबंधपृथक्त्वगते संख्येयं गतं तदद्धायाम् ।
अत्र अघातित्रयाणां स्थितिबंधः संख्यवर्षस्तु ।।४५०।।

टीका – उसके पश्चात् पृथक्त्व अर्थात् संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत होनेपर उस सात नोकषाय क्षपणा काल का संख्यातवां भाग व्यतीत हुआ, वहां नाम, गोत्र, वेदनीय इन तीन अघातिकर्मों का स्थितिबंध पल्य के असंख्यातवें भागपने को छोड़कर संख्यात हजार वर्ष मात्र होता है ।

ठिदिखंडपुधत्तगदे संखाभागा गदा तदद्धाए ।
घादितियाणं तत्थ य ठिदिसंतं संखवस्सं तु ।।४५१।।

स्थितिखंडपृथक्त्वगते संख्यभागा गता तदद्धायाः ।
घातित्रयाणां तत्र च स्थितिसत्त्वं संख्यवर्षं तु ।।४५१।।

टीका – उसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिकांडक जानेपर सात नोकषाय क्षपणा काल का संख्यात बहुभाग व्यतीत होनेपर एकभाग अवशेष रहता है, तब तीन घातिकर्मों का स्थितिसत्त्व संख्यात वर्ष प्रमाण हुआ । उससे आगे चारों घातिकर्मों के स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व एक कांडक काल तक समानरूप होते हैं । स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व पूर्व से संख्यातगुणा हीन होते हैं; क्योंकि घातिकर्मों का स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व संख्यात् वर्ष मात्र होने से स्थितिबंधापसरण और स्थितिकांडक का प्रमाण पूर्व स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व के संख्यात बहुभाग मात्र है । पुनश्च नाम, गोत्र, वेदनीय का स्थितिकांडक पूर्ण होनेपर पूर्व स्थितिसत्त्व से असंख्यातगुणा हीन स्थितिसत्त्व होता है; और इनका स्थितिबंधापसरण पूर्ण होनेपर पूर्व स्थितिबंध से संख्यातगुणा हीन स्थितिबंध होता है । ऐसा अनुक्रम सात नोकषाय क्षपणा काल के अंत तक जानना ।

पडिसमयं असुहाणं रसबंधुदया अणंतगुणहीणा ।
बंधो वि य उदयादो तदणंतरसमय उदयोत्थ ।।४५२।।

प्रतिसमयमशुभानां रसबंधोदयौ अनंतगुणहीनौ ।
बंधोऽपि च उदयात् तदनंतरसमय उदयोऽथ ।।४५२।।

टीका – अशुभ प्रकृतियों का अनुभागबंध और अनुभागउदय प्रतिसमय अनंतगुणा हीन होता है । प्रथम समय से दूसरे समय में, दूसरे समय से तीसरे समय में अनंतगुणा हीन क्रम से अनुभाग का बंध और उदय यहां जानना । पूर्व समय संबंधी उदय से उत्तर समय का बंध भी और अनंतर समय का उदय अनंतगुणा घटते अनुभागरूप जानना ।

बंधेण होदि उदओ अहियो उदएण संकमो अहियो ।
गुणसेढि अनंतगुणा बोधव्वा होदि अणुभागे ।।४५३।।

बंधेन भवति उदयोऽधिक उदयेन संक्रमोऽधिकः ।
गुणश्रेणिरनंतगुणा बोद्धव्या भवति अनुभागे ।।४५३।।

टीका – बंध से उदय अधिक और उदय से संक्रमण अधिक है । इसतरह अनुभाग में अनंतगुणा गुणश्रेणी अर्थात् गुणकार की पंक्ति जानना ।

भावार्थ – विवक्षित एक समय में अनुभाग के बंध से अनंतगुणा तो अनुभाग का उदय है और उससे अनंतगुणा अनुभाग का संक्रमण होता है ।

गुणसेढि अणंतगुणेणूणा य वेदगो दु अणुभागो ।
गणणादिकंतसेढी पदेसअंगेण बोधव्वा ।।४५४।।

गुणश्रेणिरनंतगुणेनोना च वेदकस्तु अनुभागः ।
गणनातिक्रांतश्रेणी प्रदेशांगेन बोद्धव्या ।।४५४।।

टीका – यद्यपि वेदक अर्थात् उदयरूप अनुभाग प्रतिसमय अनंतगुणा हीनरूप गुणकार पंक्ति युक्त है तथापि प्रदेश अंग (अंश) से गणनातिक्रांत अर्थात् असंख्यातगुणा

गुणकार की पंक्तिरूप जानना ।

भावार्थ – प्रतिसमय अनुभाग का उदय अनंतगुणा घटता है तथापि प्रदेश अर्थात् कर्मपरमाणुओं का उदय प्रतिसमय असंख्यातगुणा बढ़ता जानना ।

बंधोदएहि णियमा अणुभागो होदि णंतगुणहीणो ।
से काले से काले भज्जो पुण संकमो होदि ।।४५५।।

बंधोदयाभ्यां नियमादनुभागो भवति अनंतगुणहीनः ।
स्वे काले स्वे काले भाज्यः पुनः संक्रमो भवति ।।४५५।।

टीका – अपने काल में अनुभाग बंध और उदय की अपेक्षा तो प्रतिसमय अनंतगुणा घटता ही है; परंतु अपने काल में संक्रमण भजनीय है – घटने के नियम से रहित है ।

संकमणं तदवट्ठं जाव दु अणुभागखंडयं पडिदि ।
अण्णाणुभागखंडे आढंते णंतगुणहीणं ।।४५६।।

संक्रमणं तदवस्थं यावत्तु अनुभागखंडकं पतति ।
अन्यानुभागखंडे आरब्धे अनंतगुणहीनम् ।।४५६।।

टीका – जिस अनुभागकांडक का संक्रमण हो रहा हो उस अनुभागकांडक का घात होकर समाप्त नहीं होता तब तक प्रतिसमय अवस्थित अर्थात् समानरूप ही अनुभाग का संक्रमण होता है । पश्चात् अन्य नये अनुभागकांडक का प्रारंभ होनेपर पहले से अनंतगुणा हीन अनुभाग का संक्रमण होता है ।

इन पांच गाथाओं का अर्थरूप व्याख्यान क्षपणासार में नहीं लिखा है, यहां जैसा प्रतिभासित हुआ वैसा अर्थ लिखा है । बुद्धिमान हो, वे स्पष्ट अर्थ जैसा हो, वैसा जानें ।

सत्तण्हं संकामगचरिमे पुरिसस्स बंधमडवस्सं ।
सोलस संजलणाणं संखसहस्साणि सेसाणं ।।४५७।।

सप्तानां संक्रामकचरमे पुरुषस्य बंधोऽष्टवर्षम् ।
षोडश संज्वलनानां संख्यसहस्राणि शेषाणाम् ।।४५७।।

टीका – सात नोकषाय संक्रमण काल के अंत समय में पुरुषवेद का अंत स्थितिबंध अष्ट वर्ष प्रमाण होता है; संज्वलन चतुष्क का सोलह वर्ष मात्र, अवशेष मोह, आयु बिना छह कर्मों का संख्यात हजार वर्ष मात्र स्थितिबंध होता है ।

ठिदिसंतं घादीणं संखसहस्साणि होंति वस्साणं ।
होंति अघातियाणं वस्साणमसंखमेत्ताणि ।।४५८।।

स्थितिसत्त्वं घातिनां संख्यसहस्राणि भवंति वर्षाणां ।
भवंति अघातित्रयाणां वर्षाणामसंख्यमात्राणि ।।४५८।।

टीका – वहीं पर स्थितिसत्त्व तो चार घातिकर्मों का संख्यात हजार वर्ष मात्र और तीन अघातिकर्मों का असंख्यात वर्ष प्रमाण जानना ।

पुरिसस्स य पढमट्ठिदि आवलिदोसुवरिदासु आगाला ।
पडिआगाला छिण्णा पडिआवलियादुदीरणदा ।।४५९।।

पुरुषस्य च प्रथमस्थितौ आवलिद्वयोरुपरतयोरागालाः ।
प्रत्यागालाः छिन्नाः प्रत्यावलिकाया उदीरणता ।।४५९।।

टीका – पुरुषवेद की प्रथम स्थिति में आवली और प्रत्यावली दो *(आवली)* शेष रहनेपर आगाल, प्रत्यागाल नष्ट होते हैं । द्वितीय स्थिति में स्थित परमाणुओं को अपकर्षण के वश प्रथम स्थिति में प्राप्त करना, उसे आगाल कहते हैं । प्रथम स्थिति में स्थित परमाणुओं को उत्कर्षण के वश द्वितीय स्थिति में प्राप्त करना, उसे प्रत्यागाल कहते हैं । प्रत्यावली अर्थात् द्वितीयावली से उदीरणा वर्तती है अर्थात् प्रत्यावली के निषेकों का द्रव्य उदयावली में दिया जाता है । एक समय अधिक प्रत्यावली अवशेष रहनेपर जघन्य स्थिति की उदीरणा होती है, क्योंकि प्रत्यावली के प्रथम एक निषेक की उदीरणा होती है – उदयावली में उसको प्राप्त कराता है । उसी समय वेद सहितपने का अंत समय होता है, क्योंकि उच्छिष्टावली है नाम जिसका ऐसी जो

प्रत्यावली उसके निषेकों का उदय नहीं होता ।

[***विशेषार्थ*** – *प्रथम स्थिति में दो आवली शेष रहनेपर आगाल, प्रत्यागाल नष्ट होते हैं । द्वितीयावली से नीचे की उदयावली में उदीरणा होती जाती है । एक-एक निषेक उदय में आता रहता है, द्वितीयावली का एक-एक निषेक उदयावली में प्रवेश करता है । एक समय कम आवली काल बीतनेपर प्रत्यावली का एक निषेक उदयावली के ऊपर शेष रहता है, बाकी निषेक उदयावली में प्रवेश करते हैं । उस समय मात्र एक निषेक में से उदीरणा होगी, जिसे जघन्य स्थिति उदीरणा कहते हैं । उसके अनंतर समय में उदीरणा तो नष्ट होती ही है, अब उदय भी नहीं रहता; क्योंकि अब उच्छिष्टावली मात्र निषेक शेष रहनेपर पुरुषवेद का उदय नहीं होता उनमें से एक-एक निषेक वर्तमान में संज्वलन क्रोधरूप होकर उदय में आता रहता है ।*]

अंतरकदपढमादो कोहे छण्णोकसाययं छुहदि ।
पुरिसस्स चरिमसमए पुरिसवि एदेण सव्वयं छुहदि ।।४६०।।

अंतरकृतप्रथमात् क्रोधे षण्णोकषायकं संक्रामति ।
पुरुषस्य चरमसमये पुरुषमपि एतेन सर्वं संक्रामति ।।४६०।।

टीका – अंतरकरण करने के अनंतरवर्ती प्रथम समय से लेकर संक्रमण होता था, पुरुषवेद के उदय काल के अंत समय में छह नोकषायों के सर्व सत्त्व को संज्वलन क्रोध में संक्रमण करता है । वहां अंत समय में द्वितीय स्थिति में प्राप्त संख्यात हजार वर्ष मात्र स्थितिसत्त्वरूप अंत फालि, उसको सर्वसंक्रमण से संज्वलन क्रोध में निक्षेपण करके उन छह नोकषायों की सत्ता का नाश करता है । उसी समय में पुरुषवेद भी सर्व संज्वलन क्रोध में निक्षेपण करता है ।

कुछ अवशेष रहता है, वह कहते हैं –

समऊणदोण्णिआवलिपमाणसमयप्पबद्धणवबंधो ।
बिदिये ठिदिये अत्थि हु पुरिसस्सुदयावली च तदा ।।४६१।।

समयोनद्व्यावलिप्रमाणसमयप्रबद्धनवबंधः ।
द्वितीयस्यां स्थितौ अस्ति हि पुरुषस्योदयावली च तदा ।।४६१।।

टीका – वहां द्वितीय स्थिति में तो एक समय कम दो आवली मात्र नवक समयप्रबद्ध और प्रथम स्थिति में असंख्यात समयप्रबद्ध मात्र उदयावली अर्थात् उच्छिष्टावली के निषेक पुरुषवेद के सत्त्व में से अवशेष रहते हैं, अन्य सर्व संख्यात हजार वर्ष मात्र स्थितिबंध युक्त पुरुषवेद का पुरातन सत्त्व था, वह संज्वलन क्रोध में संक्रमणरूप किया । यहां द्वितीय स्थिति में एक समय कम दो आवली मात्र नवक समयप्रबद्ध कैसे अवशेष रहता है ? वह कहते हैं –

नवीन बंधे हुये समयप्रबद्ध को नवक समयप्रबद्ध कहते हैं । क्षपणा काल में बंधने के पश्चात् आवली तक जो बंधावली है उसमें क्षपाता *(खिपाता)* नहीं है, पश्चात् प्रतिसमय एक-एक फालि द्वारा आवली काल में एक-एक समयप्रबद्ध को क्षपाता है । इसलिए पुरुषवेद की प्रथम स्थिति में बंधावली, क्षपणावली, उच्छिष्टावली ऐसी तीन आवली अवशेष रहनेपर बंधावली के प्रथम समय में जो समयप्रबद्ध बंधा, उसको बंधावली बीतनेपर क्षपणावली में एक-एक फालि द्वारा सर्व क्षपाया और बंधावली के द्वितीय, तृतीय आदि समयों में जो समयप्रबद्ध बंधे उनकी क्रम से एक, दो, तीन आदि फालि अवशेष रखकर क्षपणावली में उनको क्षपाता है । इसतरह बंधावली के अंत समय में बंधे हुये समयप्रबद्ध की क्षपणावली के अंत समय में एक ही फालि खिपायी, एक समय कम आवली मात्र फालि अवशेष रहीं । क्षपणावली के प्रथमादि समयों में बंधे हुये समयप्रबद्धों की एक भी फालि नहीं खिपायी तथा उच्छिष्टावली में बंध है ही नहीं । इसतरह यहां 'एकदेश को सर्व कहते हैं' इस न्याय से अवशेष रही फालियों की समयप्रबद्ध संज्ञा कहकर बंधावली में बंधे हुये एक कम आवली मात्र समयप्रबद्ध और क्षपणावली में बंधे हुये संपूर्ण आवली मात्र समयप्रबद्ध मिलकर एक समय कम दो आवली मात्र नवक समयप्रबद्ध अवशेष रहते हैं । अपगतवेदी होकर उच्छिष्टावली के प्रथम समय से लेकर एक-एक समय में एक-एक समयप्रबद्ध को संज्वलन क्रोधरूप परिणमाकर, एक समय कम दो आवली काल में इन नवक समयप्रबद्धों का भी नाश करता है । अब सवेद अनिवृत्तिकरण के अनंतर अपगतवेदी होकर अश्वकर्ण क्रिया सहित अपूर्वस्पर्धककरण का प्रारंभ

करता है । वहां घातने के पश्चात् अवशेष रहे संज्वलन चतुष्क के सत्त्व में स्थिति-अनुभाग कांडक की प्रवृत्ति जानना ।

अब अश्वकर्णकरण का स्वरूप कहते हैं –

से काले ओवट्टणुवट्टण अस्सकण्ण आदोलं ।
करणं तियसण्णगयं संजलणरसेसु वट्टिहिदि ।।४६२।।

स्वे काले अपवर्तनोद्वर्तनं अश्वकर्णमांदोलं ।
करणं त्रिसंज्ञागतं संज्वलनरसेषु वर्तयति ।।४६२।।

टीका – अपने काल में अपवर्तनोद्वर्तनकरण, अश्वकर्णकरण, आंदोलकरण ऐसी तीन संज्ञा *(नाम)* को प्राप्त किया है *(जिसने)* वह संज्वलन चतुष्क के अनुभाग में प्राप्त होता है । उसमें यहां आरंभ किये हुये प्रथम अनुभागकांडक का घात करने के पश्चात् अवशेष अनुभाग क्रोध से लेकर लोभ तक अनंतगुणा घटता अथवा लोभ से लेकर क्रोध तक अनंतगुणा बढ़ता होता है । इसलिए अपवर्तनोद्वर्तनकरण संज्ञा है । पुनश्च जैसे घोडे का कान मध्य प्रदेश से आदि तक क्रम से घटता होता है, वैसे प्रथम अनुभागकांडक का घात होने के पश्चात् क्रोध से लेकर लोभ तक का अनुभाग क्रम से घटता होता है, इसलिए अश्वकर्णकरण संज्ञा है । पुनश्च *(हिंडोले की)* बंधी हुयी रस्सियों के बीच के प्रदेश आदि से अंत तक क्रम से घटते होते हैं वैसे पूर्ववत् क्रोध से लोभ तक अनुभाग घटता होता है, इसलिए आंदोलकरण संज्ञा है । *(अश्व को हय भी कहते हैं, इसे हयकर्णकरण भी कहा है ।)*

ताहे संजलणाणं ठिदिसंतं संखवस्सयसहस्सं ।
अंतोमुहुत्तहीणो सोलसवस्साणि ठिदिबंधो ।।४६३।।

तत्र संज्वलनानां स्थितिसत्त्वं संख्यवर्षसहस्रम् ।
अंतर्मुहूर्तहीनः षोडशवर्षाणि स्थितिबंधः ।।४६३।।

टीका – वहां अश्वकर्णकरण के प्रारंभ समय में संज्वलन चतुष्क का स्थितिसत्त्व संख्यात हजार वर्ष मात्र है । पुनश्च स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त कम सोलह वर्ष मात्र है ।

एक स्थितिबंधापसरण द्वारा पूर्व स्थितिबंध से अंतर्मुहूर्त हीन स्थितिबंध यहां हुआ । अन्य कर्मों के बंध और सत्त्व का आलाप पूर्ववत् यहां ही कहना ।

रससंतं आगहिदं खंडेण समं तु माणगे कोहे ।
मायाए लोभेवि य अहियकमा होदि बंधे वि ।।४६४।।

रससत्त्वमागृहीतं खंडेन समं तु मानके क्रोधे ।
मायायां लोभेऽपि च अधिकक्रमं भवति बंधेऽपि ।।४६४।।

टीका – अपगतवेदी होकर जो प्रथम अनुभागकांडक आगृहितं अर्थात् प्रारंभ किया उस सहित इस प्रथम अनुभागकांडक का घात होने से पहले मान, क्रोध, माया, लोभ में अनुभागसत्त्व अधिक क्रम सहित है । एक गुणहानि में जितने स्पर्धक पाये जाते हैं उस प्रमाण को नानागुणहानि के प्रमाण से गुणित करनेपर मान के स्पर्धक होते हैं, वे अल्प हैं, उनसे क्रोध के विशेष अधिक हैं; उनसे माया के विशेष अधिक हैं ; उनसे लोभ के विशेष अधिक हैं । यहां अपने-अपने स्पर्धकों का प्रमाण स्थापित करके अनंत का भाग देनेपर विशेष का प्रमाण आता है, यह विशेष भी अनंत स्पर्धक मात्र है, इससे अधिक-अधिक जानना । जैसे, अंकसंदृष्टि से मान के स्पर्धक पांच सौ बारह, उससे क्रोध, माया, लोभ के क्रम से तीन-तीन अधिक अर्थात् क्रोध - ५१५, मान - ५१२, माया - ५१८, लोभ - ५२१ ।

इस अश्वकर्ण के प्रारंभ समय में जो अनुभागबंध होता है उसमें भी ऐसे ही अल्पबहुत्व का क्रम जानना । यह अनुभाग का कथन अंतदीपक के समान है; इसलिए इसके पहले के गुणस्थानों में भी जो अनुभागसत्त्व है उसमें भी ऐसा ही अल्पबहुत्व है, ऐसे जानना ।

रसखंडफड्डयाओ कोहादीया हवंति अहियकमा ।
अवसेसफड्डयाओ लोहादि अणंतगुणियकमा ।।४६५।।

रसखंडस्पर्धकानि क्रोधादिकानां भवंति अधिकक्रमाणि ।
अवशेषस्पर्धकानि लोभादेः अनंतगुणितक्रमाणि ।।४६५।।

टीका – घात करने के लिये प्रथम अनुभागकांडकरूप से ग्रहण किये हुये स्पर्धक क्रोध के अल्प हैं, उससे मान के विशेष अधिक हैं, उससे माया के विशेष अधिक हैं, उससे लोभ के विशेष अधिक हैं । इससे पहले जो अनुभागकांडक हुये, उनमें अनुभागसत्त्व के अनुसार मान के अल्प, उससे क्रोध, माया, लोभ के क्रम से विशेष अधिक स्पर्धक ग्रहण होते थे, अब परिणामों की विशेषता से विशेष घात पाकर अपने-अपने अनुभागसत्त्व को अनंत का भाग देकर वहां बहुभाग मात्र अब किये हुये इस कांडक द्वारा गृहित जो अनुभाग है, वह क्रोध का अल्प, उससे मान, माया, लोभ के क्रम से विशेष अधिक होता है ।

अंकसंदृष्टि से इस कांडक द्वारा गृहित क्रोध के तीन सौ सत्तासी, मान के चार सौ अस्सी, माया के पांच सौ दस, लोभ के पांच सौ उन्नीस स्पर्धक जानना । (क्रोध - ३८७, मान - ४८०, माया - ५१०, लोभ - ५१९) । पुनश्च प्रथम अनुभागकांडक का घात होने के पश्चात् अवशेष स्पर्धक रहे वे लोभ के अल्प, उससे माया के अनंतगुणा, उससे मान के अनंतगुणा, उससे क्रोध के अनंतगुणा जानना । अंकसंदृष्टि द्वारा जैसे, प्रथम कांडक का घात होने के पश्चात् अवशेष रहे स्पर्धक लोभ के दो, उससे माया, मान, क्रोध के क्रम से चौगुणा-चौगुणा जानना । (क्रोध - १२८, मान - ३२, माया - ८, लोभ - २)

यहां आशंका – यदि कांडक में विशेष अधिकपना कहा तो अवशेष अनुभाग में अनंतगुणापना कैसे पाया जाता है ?

उसका समाधान – अंकसंदृष्टि की अपेक्षा कहते हैं । मान का अनुभागसत्त्व पांच सौ बारह, उससे क्रोध का तीन अधिक, माया का छह अधिक, लोभ का नौ अधिक है । वहां अधिक प्रमाण को जुदा रखकर पांच सौ बारह को अनंत की संदृष्टि चार का भाग देकर वहां एकभाग बिना बहुभाग $\left(\frac{५१२}{४} \times ३\right)$ तीन सौ चौरासी; उसमें क्रोध के तीन अधिक कहे थे, उनको मिलानेपर क्रोधकांडक में स्पर्धकों का प्रमाण तीन सौ सत्तासी होता है । अवशेष एकभागमात्र $\frac{५१२}{४}$ एक सौ अट्ठाइस स्पर्धक प्रमाण क्रोध का अवशेष अनुभागसत्त्व होता है ।

इस अवशेष एकभाग को चार का भाग देकर वहां बहुभाग $\frac{५१२}{४} \times \frac{३}{४}$ छानबे; उनको पहले बहुभाग तीन सौ चौरासी कहे थे उनमें जोड़नेपर मानकांडक का प्रमाण चार सौ अस्सी होता है । अवशेष एकभाग मात्र $\frac{५१२}{४ \mid ४}$ बत्तीस स्पर्धक प्रमाण मान का अवशेष अनुभागसत्त्व होता है ।

यह अवशेष एकभाग रहा, उसको चार का भाग देकर वहां बहुभाग $\frac{५१२ \mid ३}{४ \mid ४ \mid ४}$ चौबीस, उनको पहले मानकांडक चार सौ अस्सी कहा था उसमें जोड़नेपर और माया का अधिक प्रमाण छह, उनको अधिक करनेपर मायाकांडक का प्रमाण पांच सौ दस (**५१०**) होता है । अवशेष एकभाग मात्र $\frac{५१२}{४ \mid ४ \mid ४}$ आठ स्पर्धकप्रमाण माया का अवशेष सत्त्व होता है । इस अवशेष एकभाग को चार का भाग देकर वहां बहुभाग $\frac{५१२ \mid ३}{४ \mid ४ \mid ४ \mid ४}$ छह, उनको अधिक प्रमाण रहित जो मायाकांडक पांच सौ चार उसमें जोड़कर यहां लोभ का अधिक प्रमाण नौ, उनको अधिक करनेपर लोभ कांडक का प्रमाण पांच सौ उन्नीस आता है (**५१९**) । अवशेष एकभाग मात्र $\frac{५१२}{४ \mid ४ \mid ४ \mid ४}$ दो स्पर्धक प्रमाण लोभ के अवशेष अनुभागसत्त्व का प्रमाण होता है । इसतरह क्रोध, मान, माया, लोभ कांडक का प्रमाण तो विशेष अधिक क्रम सहित होता है तथा अवशेष रहे अनुभाग (सत्त्व) का प्रमाण अनंतगुणा हीन क्रम सहित होता है । उनकी रचना ऐसी –

नाम	क्रोध	मान	माया	लोभ
पूर्व अनुभाग	५१५	५१२	५१८	५२१
कांडक अनुभाग	३८७	४८०	५१०	५१९
अवशेष अनुभाग	१२८	३२	८	२

यहां कांडक अनुभाग और अवशेष अनुभाग के बीच में डेढ़ लकीर की है वह हीनाधिक अनुभाग प्रकट करने के लिये जानना । इसतरह क्रोधादि में घटते क्रम युक्त अनुभाग करना वह अश्वकर्णकरण है, उसका वर्णन किया ।

अब अश्वकर्णकरण अवस्था में ही हुये हैं ऐसे अपूर्वस्पर्धक, जो पूर्व संसार अवस्था में पाये जानेवाले पूर्वस्पर्धकों से अनंतगुणा हीन अनुभाग युक्त हैं, उनका स्वरूप कहते हैं । पहले पूर्वस्पर्धक जाने बिना अपूर्वस्पर्धकों का ज्ञान नहीं होता; इसलिए यहां पूर्वस्पर्धकों का कुछ स्वरूप कहते हैं –

सर्व कर्म परमाणुओं में से जिनमें अनुभाग के सबसे थोड़े अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं ऐसे जो परमाणु, उन्हें जघन्य वर्ग कहते हैं । ऐसे-ऐसे समान परमाणुओं के पुंज का नाम जघन्य वर्गणा है । जघन्य वर्गणा से जिनमें एक अविभागप्रतिच्छेद अधिक पाया जाता है ऐसे एक-एक वर्ग अर्थात् परमाणुओं के पुंज को द्वितीय वर्गणा कहते हैं । ऐसे क्रम से एक-एक अविभागप्रतिच्छेद से बढ़ते हुये जो वर्ग अर्थात् वर्गों के पुंजरूप एक-एक वर्गणा जब तक होती हैं, तब तक जितनी वर्गणा हुयी, उन सर्व वर्गणाओं के पुंज को जघन्य स्पर्धक कहते हैं ।

उसके अनंतर जघन्य वर्ग से दोगुणा अविभागप्रतिच्छेद युक्त जो वर्ग हैं, उनके समूहरूप द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा होती है । पूर्ववत् इससे एक-एक अविभागप्रतिच्छेद बढ़ते हुये वर्गों के पुंजरूप उसकी द्वितीयादि वर्गणा होती हैं । इसीतरह जघन्य वर्गणा से तीनगुणा, चौगुणा आदि जितनेवां स्पर्धक हो, उतने गुणा अविभागप्रतिच्छेद युक्त वर्गों के समूहरूप जो वर्गणा होती है, वह तृतीय, चतुर्थ आदि स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा जानना । तथा ऊपर एक-एक अविभागप्रतिच्छेद से अधिक क्रम युक्त वर्गों से समूहरूप अपनी-अपनी द्वितीयादि वर्गणा जानना ।

यहां सर्व कर्म परमाणुओं के प्रमाण को किंचित् अधिक डेढ़ गुणहानि का भाग देनेपर प्रथम वर्गणा के वर्गों का प्रमाण आता है । इसको *(प्रथम वर्गणा को)* दोगुणहानि का भाग देनेपर विशेष *(चय)* का प्रमाण आता है । एक विशेष से हीन द्वितीयादि वर्गणाओं में वर्गों का प्रमाण होता है । इसतरह प्रथम गुणहानि में क्रम जानना ।

प्रथम गुणहानि से द्वितीयादि गुणहानियों में आधे-आधे प्रमाण युक्त वर्गणा के वर्गों

का और विशेष का प्रमाण जानना । ऐसे कर्म परमाणुओं में नानागुणहानि पायी जाती हैं । यहां अनुभागरचना में गुणहानि और नानागुणहानि का प्रमाण यथासंभव अनंत है । वहां एक-एक गुणहानि में पूर्वोक्त प्रकार से स्पर्धक अनंत हैं ।

एक-एक स्पर्धक में वर्गणा अनंत हैं । एक गुणहानि में जो वर्गणाओं का प्रमाण है वही गुणहानि आयाम का प्रमाण जानना । ऐसी गुणहानियां जितनी पायी जाती हैं, उनके प्रमाण का नाम नानागुणहानि है ।

अंकसंदृष्टि द्वारा सर्व कर्म प्रदेशरूप द्रव्य इकतीस सौ (३१००), गुणहानि प्रमाण आठ, नानागुणहानि पांच । वहां सर्वद्रव्य को किंचित् अधिक डेढ़ गुणहानि का भाग देनेपर प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में वर्ग दो सौ छप्पन हैं । इसको दोगुणहानि का भाग देनेपर विशेष *(चय)* का प्रमाण सोलह, इतने-इतने से हीन द्वितीयादि वर्गणा होती हैं । इस क्रम से जिस वर्गणा में प्रथम गुणहानि के प्रथम वर्गणा से आधे – एक सौ अट्ठाइस वर्ग पाये जायेंगे वह द्वितीय गुणहानि की प्रथम वर्गणा है । यहां चय का प्रमाण भी आधा-आठ है । इसलिए आठ-आठ घटनेपर द्वितीयादि वर्गणा के वर्ग जानना । इसतरह गुणहानि-गुणहानि प्रति आधा-आधा प्रमाण जानना । ऐसी पांच गुणहानि सर्वत्र जानना । इसीतरह यथार्थ कथन का अर्थ जानना ।

वहां जघन्य स्पर्धक से लेकर अनंत स्पर्धक लताभागरूप हैं । उनके ऊपर अनंत स्पर्धक दारुभागरूप हैं । उनके ऊपर अनंत स्पर्धक अस्थिभागरूप हैं । उनके ऊपर उत्कृष्ट स्पर्धक तक अनंत स्पर्धक शैलभागरूप हैं । वहां प्रथम स्पर्धक देशघाति का जघन्य स्पर्धक है । उससे लेकर लताभाग के सर्व स्पर्धक और दारुभाग के अनंतवें भाग मात्र स्पर्धक देशघाति हैं । वहां अंत में देशघाति का उत्कृष्ट स्पर्धक है ।

उसके ऊपर सर्वघाति का जघन्य स्पर्धक है । उससे लेकर ऊपर के सर्व स्पर्धक सर्वघाति हैं । वहां अंत स्पर्धक उत्कृष्ट सर्वघाति जानना । वहां केवलज्ञानावरण बिना चार ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण, सम्यक्त्वमोहनीय, संज्वलनचतुष्क, नौ नोकषाय, पांच अंतराय इन छब्बीस प्रकृतियों के लता समान स्पर्धक की प्रथम वर्गणा हैं, वे एक-एक वर्ग के अविभागप्रतिच्छेदों की अपेक्षा समान हैं ।

वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र इन अघातिकर्मों की भी प्रथम वर्गणा भी वैसे

ही परस्पर समान हैं ।

पुनश्च मिथ्यात्व बिना केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, पांच निद्रा, मिश्रमोहनीय, संज्वलन बिना बारह कषाय इन सर्वघाति बीस प्रकृतियों के देशघाति स्पर्धक हैं नहीं, इसलिए सर्वघाति जघन्य स्पर्धक वर्गणा वैसे ही परस्पर समान जानना । वहां पूर्वोक्त देशघाति छब्बीस प्रकृतियों की अनुभागरचना देशघाति जघन्य स्पर्धक से लेकर उत्कृष्ट देशघाति स्पर्धक तक जानना । वहां सम्यक्त्वमोहनीय का तो यहीं पर उत्कृष्ट अनुभाग समाप्त होता है; शेष पच्चीस प्रकृतियों की रचना वहां से ऊपर सर्वघाति उत्कृष्ट स्पर्धक तक जानना । सर्वघाति बीस प्रकृतियों की रचना सर्वघाति के जघन्य स्पर्धक से लेकर उत्कृष्ट स्पर्धक तक है ।

वहां विशेष इतना है कि सर्वघाति दारुभाग के स्पर्धकों के अनंतवें भाग मात्र स्पर्धक तक मिश्रमोहनीय के स्पर्धक हैं, ऊपर नहीं हैं । यहां तक मिथ्यात्व के स्पर्धक नहीं हैं । यहां से ऊपर उत्कृष्ट स्पर्धक तक मिथ्यात्व के स्पर्धक हैं ।

चार अघातिकर्मों की भी देशघाति जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक और सर्वघाति जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक परस्पर समान अनुभागरचना जानना । इसतरह संसार अवस्था में पाये जानेवाले पूर्वस्पर्धक जानना ।

अब यहां अश्वकर्णकरण के प्रथम समय में हुये अपूर्वस्पर्धकों का व्याख्यान करते हैं –

ताहे संजलणाणं देसावरफड्डयस्स हेट्ठादो ।
णंतगुणूणमपुव्वं फड्डयमिह कुणदि हु अणंतं ।।४६६।।

तस्मिन् संज्वलनानां देशावरस्पर्धकस्य अधस्तनात् ।
अनंतगुणोनमपूर्वं स्पर्धकमिह करोति हि अनंतं ।।४६६।।

टीका – वहां अश्वकर्णकरण के प्रारंभ समय में चारों संज्वलन कषायों के युगपत् देशघाति जघन्य स्पर्धक के नीचे अनंतगुणा हीन अनुभागरूप अपूर्वस्पर्धक करता है । पूर्वस्पर्धकों में जघन्य स्पर्धक की जो जघन्य वर्गणा थी उसके नीचे हीन अनुभागवाली कोई वर्गणा नहीं थी, अब यहां जघन्य स्पर्धक की जघन्य वर्गणा के नीचे

अपूर्वस्पर्धकों के वर्गणा की रचना हुयी । वहां पूर्वस्पर्धकों की जघन्य वर्गणा से भी अपूर्वस्पर्धकों की उत्कृष्ट वर्गणा में भी अनुभाग के अविभागप्रतिच्छेद अनंतवें भाग मात्र होते हैं । ऐसे अपूर्वस्पर्धक होते हैं, उनका प्रमाण अनंत जानना ।

गणणादेयपदेसगगुणहाणिट्ठाणफड्डयाणं तु ।
होदि असंखेज्जदिमं अवरादु वरं अणंतगुणं ।।४६७।।

गणनादेकप्रदेशकगुणहानिस्थानस्पर्धकानां तु ।
भवति असंख्येयं अवरतो वरमनंतगुणं ।।४६७।।

टीका – वह अनंत कैसा है ? वह कहते हैं –

गणना द्वारा प्रदेश गुणहानि अर्थात् अनुभागरचना में वर्गणाओं में प्रदेश यानि परमाणुओं का प्रमाण एक-एक विशेष *(चय)* घटते हुये जहां आधा हो जाये, उससे पहले तक एक गुणहानि कहते हैं । उस एक गुणहानि में स्पर्धकों का प्रमाण अभव्यराशि से अनंतगुणा और सिद्धराशि के अनंतवें भाग मात्र है । उसको अपकर्षण भागहार से असंख्यातगुणा जो भागहार, उसका भाग देनेपर एकभाग मात्र अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण अनंत संख्यात मात्र जानना । वहां जघन्य अपूर्वस्पर्धक से उत्कृष्ट अपूर्वस्पर्धक में अनुभाग के अविभागप्रतिच्छेद अनंतगुणा जानना । अब अनुभाग के अल्पबहुत्व का विशेष यहां कहते हैं –

अपूर्वस्पर्धकों में प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद जीवराशि से अनंतगुणा हैं, तथापि अन्य से अल्प हैं । इसको अनंत का भाग देकर बहुभाग उसीमें मिलानेपर द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद होते हैं । ऐसा ही अंत स्पर्धक तक क्रम जानना । यह अल्पबहुत्व वर्गणाओं में पाया जाता है । जो सर्व परमाणुरूप वर्ग, उन सभी के अविभागप्रतिच्छेद मिलाकर कहा है । पुनश्च एक-एक वर्ग की अपेक्षा प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा से द्वितीय, तृतीय आदि स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा में दोगुणा, तीनगुणा आदि अविभागप्रतिच्छेद जानना । क्योंकि आदि वर्ग से आदि वर्ग के अविभागप्रतिच्छेद का प्रमाण जितनेवां स्पर्धक हो, उतने गुणा ही होता है । कषायप्राभृत द्वितीय नाम महाधवल *(जयधवल शब्द चाहिये)* में

भी ऐसे ही कहा है । वही विशेष करके कहते हैं –

स्थिति संबंधी असंख्यात प्रमाणवाली डेढ़ गुणहानि से गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण अपना-अपना द्रव्य स्थापित कर उसको अनुभाग संबंधी अनंत प्रमाणवाली किंचित् कम डेढ़ गुणहानि का भाग देनेपर प्रथम वर्गणा में परमाणुओं का प्रमाण आता है । एक गुणहानि में जितना स्पर्धकों का प्रमाण, उसको एक गुणहानि स्पर्धकशलाका कहते हैं । एक स्पर्धक में जितना वर्गणाओं का प्रमाण, उसको एक स्पर्धक वर्गणाशलाका कहते हैं । इन दोनों को परस्पर गुणित करनेपर अनुभाग संबंधी गुणहानि आयाम का प्रमाण आता है ।

प्रथम वर्गणा को गुणहानि से दोगुणा प्रमाणवाले दोगुणहानि का भाग देनेपर विशेष का प्रमाण आता है । वर्गणा-वर्गणा प्रति जितने परमाणु कम हुये, उसका नाम यहां विशेष जानना । विशेष को दोगुणहानि से गुणित करनेपर प्रथम वर्गणा होती है । एक परमाणु में जितने अविभागप्रतिच्छेद होते हैं, उनके समूह का नाम वर्ग है । इससे प्रथम वर्गणा को गुणित करनेपर प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण होता है । इससे दोगुणा द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद हैं । इससे द्वितीय भाग अधिक तृतीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के हैं; इससे तृतीय भाग अधिक चतुर्थ स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के हैं । इस क्रम से उत्कृष्ट संख्यातवें भाग अधिक तक तो संख्यात भागवृद्धि, उसके ऊपर उत्कृष्ट असंख्यातवें भाग अधिक तक असंख्यातभागवृद्धि, उसके ऊपर अंत तक अनंतभागवृद्धि होती है ।

वहां द्विचरम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद को एक कम अपूर्वस्पर्धकप्रमाण का भाग देकर वहां एकभाग उसमें जोड़नेपर चरम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण आता है । इसतरह प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों से द्वितीय, तृतीय आदि स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद क्रम से दोगुणा, तीनगुणा आदि होते-होते, अंत स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में अपूर्वस्पर्धकप्रमाण से गुणित अविभागप्रतिच्छेद होते हैं । यह स्थूलपने से कथन है ।

सूक्ष्मपने से जितने विशेष *(चय)* घटते हैं, उन विशेषों के जितने वर्ग हो,

उनके अविभागप्रतिच्छेद घटाने के लिये द्वितीयादि स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा में स्थूलपने से जो अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण कहा, उसमें किंचित् न्यूनपना जानना । वहां प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा से द्वितीय वर्गणा में एक विशेष, तृतीय वर्गणा में दो विशेष, चतुर्थ वर्गणा में तीन विशेष, इस क्रम से विशेष हीन-हीन पाये जाते हैं । इसलिए सिद्धराशि के अनंतवें भाग और अभव्यराशि से अनंतगुणा ऐसी जो एक स्पर्धक वर्गणाशलाका उतने विशेष प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा से द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में हीन जानना ।

वहां विशेषों के परमाणुओं के प्रमाण को दोगुणा जघन्य वर्ग से गुणित करके जो प्रमाण हो, उतना द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में ऋण जानना । तृतीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में से एक स्पर्धक वर्गणाशलाका से दोगुणा मात्र विशेष घटते हैं, उनके परमाणुओं के प्रमाण को तीनगुणा जघन्य वर्ग से गुणित करनेपर वहां ऋण होता है । इस क्रम से अंत स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में एक कम अपूर्वस्पर्धक प्रमाण से गुणित एक स्पर्धक वर्गणाशलाका मात्र विशेष घटते हैं, उनके परमाणुओं के प्रमाण को अपूर्वस्पर्धक के प्रमाण से गुणित जघन्य वर्ग, उससे गुणित करनेपर वहां ऋण होता है ।

ऐसे कहे हुये अपने-अपने ऋण को, पूर्वोक्त अपने-अपने स्थूल प्रमाण में से घटानेपर सूक्ष्म तारतम्यरूप अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण आता है । इसतरह अव्यवधान अर्थात् निरंतर से स्पर्धकों का अल्पबहुत्व कहा । अब व्यवधान अर्थात् सांतर से कहते हैं –

प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा से अंत स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद अनंतगुणा हैं । किंचित् कम अपूर्वस्पर्धक प्रमाण से गुणित जानना । इसतरह क्रोध, मान, माया, लोभ के अपूर्वस्पर्धकों में अनुभाग के अविभागप्रतिच्छेदों के अल्पबहुत्व का व्याख्यान समान जानना ।

पुव्वाण फड्डयाणं छेत्तूण असंखभागदव्वं तु ।
कोहादीणमपुव्वं फड्डयमिह कुणदि अहियकमा ।।४६८।।

पूर्वान् स्पर्धकान छित्वा असंख्यभागद्रव्यं तु ।
क्रोधादीनामपूर्वं स्पर्धकमिह करोति अधिकक्रमं ।।४६८।।

टीका – संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ के पूर्वस्पर्धकों का जो सर्व द्रव्य, उसको अपकर्षण भागहार मात्र असंख्यात का भाग देकर वहां एकभाग मात्र द्रव्य को ग्रहण कर यहां अपूर्वस्पर्धक करता है । वही कहते हैं –

स्थिति संबंधी डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र मोहनीय का देशघाति द्रव्य है, क्योंकि मोहनीय के सर्वघाति द्रव्य का यहां अभाव है । उसको अनुभाग संबंधी किंचित् अधिक डेढ़ गुणहानि का भाग देनेपर प्रथम वर्गणा होती है, इसलिए प्रथम वर्गणा को किंचित् अधिक डेढ़ गुणहानि से गुणित करनेपर मोहनीय के सर्वद्रव्य का प्रमाण आता है । उसको आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर, वहां एकभाग को जुदा रखकर बहुभागों के समान दो भाग करना । एक समान भाग में जुदा रखा हुआ एक भाग मिलानेपर कषायों का द्रव्य साधिक आधा है और एक समान भाग मात्र नोकषायों का द्रव्य किंचित् कम आधा है ।

वहां कषायों के द्रव्य को आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एकभाग जुदा रखकर, बहुभागों के चार समान भाग करना । पुनश्च जुदे रखे हुये एकभाग को आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग को प्रथम समान भाग में जोड़ने से लोभ का द्रव्य आता है ।

पुनश्च अवशेष एकभाग को आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर *(एकभाग जुदा रखकर)* बहुभाग को द्वितीय समान भाग में जोड़ने से माया का द्रव्य होता है । पुनश्च अवशेष एकभाग को आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग तृतीय समान भाग में जोड़ने से क्रोध का द्रव्य आता है । अवशेष एकभाग को चतुर्थ समान भाग में मिलानेपर मान का द्रव्य आता है ।

यहां नोकषायों का सर्वद्रव्य क्रोधरूप संक्रमण हुआ, इसलिए इसको क्रोध के द्रव्य में मिलाना । इसतरह मोह के सर्व द्रव्य का साधिक आठवां भाग मात्र लोभ का द्रव्य हुआ, किंचित् कम आठवां भाग मात्र माया का द्रव्य हुआ, किंचित् कम आठवां भाग मात्र मान का द्रव्य हुआ तथा किंचित् कम पांच गुणा आठवां *(पांच*

अष्टमांश) भाग मात्र क्रोध का द्रव्य हुआ ।

[*नोकषायों का द्रव्य* $\frac{१}{२}$ + *क्रोध का द्रव्य* $\frac{१}{८}$; $\frac{१}{२} + \frac{१}{८} = \frac{४}{८} + \frac{१}{८} = \frac{५}{८}$]

इसतरह अपने-अपने द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर, वहां एकभाग मात्र द्रव्य ग्रहण कर अपूर्वस्पर्धक करता है । वहां क्रोधादि के अपूर्वस्पर्धक अधिक क्रम सहित हैं । क्रोध के अपूर्वस्पर्धक अल्प हैं, उससे इसको अनंत का भाग देकर एकभाग मात्र अधिक मान के अपूर्वस्पर्धक हैं । उससे इसको पूर्व भागहार से एक अधिक भागहार का भाग देनेपर एकभाग मात्र अधिक माया के अपूर्वस्पर्धक हैं । उससे इसको पूर्व भागहार से एक अधिक भागहार का भाग देनेपर एकभाग मात्र अधिक लोभ के अपूर्वस्पर्धक हैं । अंकसंदृष्टि से जैसे, क्रोध के अपूर्वस्पर्धक अठारह, इसको छह का भाग देकर तीन आये, उनको वहां अधिक करनेपर मान के इक्कीस हुये । इसको पूर्व भागहार से एक अधिक अर्थात् सात का भाग देनेपर तीन आये उनसे अधिक माया के चौबीस हुये । इसको पूर्व भागहार से एक अधिक अर्थात् आठ का भाग देनेपर तीन आये, उससे अधिक लोभ के सत्ताइस हुये । इसतरह यथार्थ से क्रोधादि के अपूर्वस्पर्धक क्रम से अधिक-अधिक जानना । इसतरह अपूर्वस्पर्धक करने के काल के प्रथमादि समयों में अपूर्वस्पर्धक करता है ।

समखंडं सविसेसं णिक्खवियोकट्टिदादु सेसधणं ।
पक्खेवकरणसिद्धं इगिगोउंछेण उभयत्थ ।।४६९।।

समखंडं सविशेषं निक्षिप्यापकर्षितात् शेषधनं ।
प्रक्षेपकरणसिद्धं एकगोपुच्छेन उभयत्र ।।४६९।।

टीका – अपकर्षण किये हुये द्रव्य में से कितना ही द्रव्य तो विशेष सहित समखण्डरूप अपूर्वस्पर्धकों में निक्षेपण करके अवशेष धन एक गोपुच्छ द्वारा उभयत्र अर्थात् पूर्व, अपूर्वस्पर्धकों में निक्षेपण करना सिद्ध हुआ । वही कहते हैं –

अपकर्षण किये हुये द्रव्य में से कितने ही द्रव्य द्वारा तो अपूर्वस्पर्धक पहले नहीं

थे, वे नवीन सद्भावरूप किये जाते हैं और अवशेष द्रव्य को पूर्वस्पर्धक पहले थे और अपूर्वस्पर्धक नये हुये – उनमें निक्षेपण करता है ।

वहां अपूर्वस्पर्धक कितने द्रव्य द्वारा किये जाते हैं ? वह कहते हैं –

पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग मात्र द्रव्य ग्रहण कर अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में उस द्रव्य द्वारा कितने ही वर्ग करता है । इसीतरह दो कम अपकर्षण भागहार मात्र पूर्वस्पर्धक की द्वितीयादि वर्गणाओं के परमाणुओं को अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग मात्र द्रव्य को ग्रहण कर, अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में निक्षेपण करता है । इनको मिलानेपर वर्गणा के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग बिना बहुभाग मात्र द्रव्य हुआ । वर्गणा के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देने से और एक कम अपकर्षण भागहार मात्र वर्गणा का द्रव्य ग्रहण किया इसलिए एक कम अपकर्षण भागहार से गुणन करने से यह द्रव्य पूर्वस्पर्धक की वर्गणा के द्रव्य के समान होता है; क्योंकि पूर्वस्पर्धकों की सर्व वर्गणाओं के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग मात्र द्रव्य अपकर्षण किया तब वहां बहुभाग मात्र द्रव्य रहा, पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा का द्रव्य भी वर्गणा द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर बहुभाग मात्र रहा, सो इतना ही यह द्रव्य हुआ, इतने द्रव्य से तो अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा हुयी । उसके ऊपर इतने-इतने द्रव्य से ही अपूर्वस्पर्धक की अन्य द्वितीयादि वर्गणा हुयी । अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण और एक-एक स्पर्धक में वर्गणाओं का प्रमाण इन दोनों को परस्पर गुणित करनेपर जो प्रमाण होता है, उतनी अपूर्वस्पर्धकों की वर्गणा हैं । सो एक वर्गणा का पूर्वोक्त प्रमाण द्रव्य होता है तो इतनी वर्गणाओं का कितना द्रव्य होगा – ऐसा त्रैराशिक करके पूर्वोक्त द्रव्य को अपूर्वस्पर्धक की वर्गणाओं के प्रमाण से गुणा करनेपर अपूर्वस्पर्धक की वर्गणाओं के आदिधन का प्रमाण आता है । यह तो पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा के सदृश अपूर्वस्पर्धकों की सर्व वर्गणाओं की समान अपेक्षा से समपट्टिका द्रव्य हुआ । अब इनमें जो विशेष अर्थात् चय जैसे बढ़ता पाया जाता है, वह कहते हैं –

पूर्वस्पर्धकों में गुणहानि-गुणहानि प्रति ऊपर से नीचे विशेष का प्रमाण दोगुणा-दोगुणा है । यहां पूर्वस्पर्धक की प्रथम गुणहानि के नीचे अपूर्वस्पर्धकों की रचना हुयी

है । इसलिए पूर्वस्पर्धकों के प्रथम गुणहानि में जो विशेष *(चय)* का प्रमाण पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा को दोगुणहानि का भाग देनेपर आता है, उससे दोगुणा अपूर्वस्पर्धकों में विशेष का प्रमाण जानना । ऐसा एक विशेष तो पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा के नीचे हुयी जो अंत अपूर्वस्पर्धक की अंत वर्गणा उसमें अधिक होता है । उसके नीचे द्विचरम वर्गणा में दो विशेष *(चय)* अधिक होते हैं । इसी क्रम से एक-एक विशेष अधिक होते-होते अपूर्वस्पर्धकों की वर्गणा का जितना प्रमाण उतने विशेष प्रथम अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में होते हैं ।

यहां आदि एक, उत्तर एक, गच्छ अपूर्वस्पर्धक वर्गणा मात्र स्थापित करके **'सैकपदाहतपददले'** इत्यादि सूत्र से जितना संकलनधन होगा उतना उत्तरधन *(चयधन)* जानना । पूर्वोक्त आदिधन *(समपट्टिका का द्रव्य)* और इस उत्तरधन को जोड़नेपर जो प्रमाण हो, उतने द्रव्य को उस अपकर्षित द्रव्य में से ग्रहण कर इस अपूर्वस्पर्धकों की रचना करते हैं । पूर्वस्पर्धक तो पहले थे, अपूर्वस्पर्धक पहले नहीं थे, इसलिए उनका सद्भाव होने के लिये इतना द्रव्य तो जुदा ही अपूर्वस्पर्धकों में दिया । गाय की पूंछ जैसे क्रम से मोटाई की अपेक्षा घटती जाती है वैसे यहां चय घटता क्रम होने से अपूर्वस्पर्धकों का एक गोपुच्छ हुआ । उसके ऊपर पूर्वस्पर्धकों की रचना भी चय घटते क्रम सहित है । इसकारण पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों को मिलकर भी एक गोपुच्छ हुआ । ऐसा एक गोपुच्छ होने से उस अपकर्षित द्रव्य में से पूर्वोक्त द्रव्य घटानेपर अवशेष द्रव्य रहा, उसे पूर्वस्पर्धकों और अपूर्वस्पर्धकों में सर्वत्र विभाग करके देना ।

वहां अपूर्वस्पर्धक वर्गणा प्रमाण एक शलाका स्थापित कर उसका भाग अपूर्वस्पर्धक वर्गणा प्रमाण को देनेपर अपूर्वस्पर्धक संबंधी तो एक शलाका हुयी और उसीका भाग डेढ़ गुणहानि गुणित पूर्वस्पर्धक वर्गणा प्रमाण को देनेपर असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहार को डेढ़गुणा करे इतनी पूर्वस्पर्धक की वर्गणाशलाका हुयी । यहां पूर्वस्पर्धक की एक गुणहानि में जो स्पर्धकों का प्रमाण है, उसको असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहार का भाग देनेपर अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण होता है, इसलिए असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहार कहा । और पूर्वस्पर्धकों में नानागुणहानि अनंत हैं तथापि द्रव्य की अपेक्षा डेढ़ गुणहानि गुणित वर्गणा मात्र ही है, इसलिए डेढ़ का गुणकार किया है ऐसा जानना । पूर्व-अपूर्वस्पर्धकों की शलाकाओं को मिलाकर उसका भाग

अपकर्षित द्रव्य में अवशेष रहे द्रव्य को देनेपर जो प्रमाण आया, उसको पूर्वस्पर्धक संबंधी बहुशलाका से गुणित करनेपर पूर्वस्पर्धकों में देने योग्य द्रव्य का विभाग आता है । और उसीको अपूर्वस्पर्धक संबंधी एक शलाका से गुणित करनेपर अपूर्वस्पर्धकों में देने योग्य द्रव्य का विभाग आता है ।

इस अपूर्वस्पर्धक का विभागरूप द्रव्य और जिस द्रव्य से पहले अपूर्वस्पर्धक की रचना कही थी ऐसे चयधन सहित समपट्टिकारूप धन इन दोनों को मिलानेपर अपूर्वस्पर्धक संबंधी सर्वद्रव्य हुआ । **'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे'** इत्यादि सूत्र से उसको अपूर्वस्पर्धक वर्गणा प्रमाण गच्छ का भाग देनेपर मध्यधन आता है । इसको एक कम गच्छ के आधे प्रमाण से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर विशेष *(चय)* होता है । सो एक कम गच्छ के आधे का जो प्रमाण हो, उतने विशेष उस मध्यधन में जोड़नेपर जो हो, उतना द्रव्य अपूर्वस्पर्धक की आदिवर्गणा में देता है । उससे एक-एक विशेष घटते क्रम सहित द्वितीयादि वर्गणाओं में क्रम से देता है । एक कम गच्छ प्रमाण चयों से हीन द्रव्य अंत वर्गणा में देता है । ऐसे तो अपूर्वस्पर्धक नवीन किये ।

पूर्वस्पर्धकों की रचना तो पहले थी ही, अब इनमें यहां पूर्वोक्त बहुशलाका का जो विभागरूप द्रव्य कहा था, वह देना । **'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा'** इत्यादि सूत्र से उस पूर्वस्पर्धक संबंधी विभागरूप द्रव्य को साधिक डेढ़ गुणहानि का भाग देनेपर जितना प्रमाण हो, उतना द्रव्य तो पूर्वस्पर्धकों की आदिवर्गणा में निक्षेपण करता है । इसको दोगुणहानि का भाग देनेपर विशेष का प्रमाण आता है । ऊपर द्वितीयादि वर्गणाओं में प्रथम गुणहानि तक एक-एक विशेष घटते क्रम से और गुणहानि-गुणहानि प्रति आधा-आधा क्रम सहित द्रव्य निक्षेपण किया जाता है ।

उक्कट्ठिदं तु देदि अपुव्वादिमवग्गणाउ हीणकमं ।
पुव्वादिवग्गणाए असंखगुणहीणयं तु हीणकमा ।।४७०।।

अपकर्षितं तु ददाति अपूर्वादिमवर्गणा हीनक्रमं ।
पूर्वादिवर्गणायामसंख्यगुणहीनकं तु हीनक्रमाः ।।४७०।।

टीका – पूर्वोक्त विधान से अपकर्षित किये हुये द्रव्य में से अपूर्वस्पर्धक की

आदिवर्गणा में बहुत द्रव्य दिया जाता है, उससे उसकी द्वितीयादि अंत वर्गणा तक में विशेष घटते क्रम से द्रव्य देता है । अपूर्वस्पर्धक की अंत वर्गणा में जो द्रव्य दिया उससे साधिक अपकर्षण भागहार मात्र जो असंख्यात, उतने गुणा घटता पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में द्रव्य देता है । यहां नवीन द्रव्य दिया, उसीकी विवक्षा जानना । इस पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा का पुरातन द्रव्य वर्गणा के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर बहुभाग मात्र है उस सहित नवीन दिया हुआ द्रव्य है, वह अपूर्वस्पर्धक की अंत वर्गणा के द्रव्य से एक विशेष मात्र ही घटता जानना; क्योंकि पूर्व-अपूर्वस्पर्धकों का एक गोपुच्छ हुआ है ।

उस पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा के ऊपर द्वितीयादि वर्गणाओं में एक-एक चय घटता द्रव्य निक्षेपण करता है । इसी कथन का विशेष निर्णय करने के लिये कल्पना द्वारा क्षेत्ररूप स्थापित करके कथन करते हैं –

पूर्वस्पर्धकों का सर्वद्रव्य डेढ़ गुणहानि गुणित प्रथम वर्गणा मात्र है; डेढ़ गुणहानि का जितना प्रमाण है उतना लंबा और प्रथम वर्गणा के परमाणुओं का जो प्रमाण उतना चौड़ा क्षेत्र ऐसे स्थापना । इसमें अपकर्षित द्रव्य को जुदा करने के लिये चौड़ाई में अपकर्षण भागहार का जितना प्रमाण है उतने खंड करनेपर ऐसा होता है – 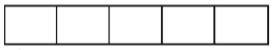 । वहां ऐसे अपकर्षण भागहार का भाग देनेपर एकभाग मात्र चौड़ा क्षेत्र एक खंड का है । ऐसे अपकर्षण किये द्रव्य का स्वरूप जानना । अवशेष बहुभाग मात्र चौड़ा क्षेत्र अवशेष खंडों का रहा, वह अपकर्षण करने के पश्चात् अवशेष पूर्वस्पर्धक स्वरूप जानना । लंबे तो वे दोनों ही स्पर्धक गुणहानि मात्र हैं । एक खंड के बहुखंड ऐसे हुये 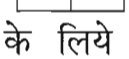 । वहां एक खंड ऐसा । उसमें अपकर्षित द्रव्य का विभाग करने के लिये एक गुणहानि के स्पर्धक प्रमाण को असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहार का भाग देकर अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण होता है और वहां लंबाई डेढ़ गुणहानि मात्र थी, उससे असंख्यातगुणा जो अपकर्षण भागहार, उसको डेढ़गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतने उस एक खंड की लंबाई में खंड करना – वहां एक खंड में लंबाई का प्रमाण 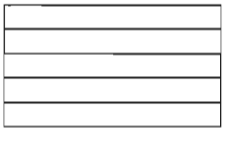 अपूर्वस्पर्धकों के प्रमाण मात्र आया, चौड़े पूर्वोक्त प्रमाण मात्र है ही । इन खंडों में जिस द्रव्य से अपूर्वस्पर्धक नवीन बने, उस द्रव्यरूप साधिक एक कम अपकर्षण

भागहार मात्र खंड ग्रहण करना । यहां अपूर्वस्पर्धक प्रमाण गच्छ का एक बार संकलनधन मात्र जो पूर्वस्पर्धक संबंधी विशेष से दोगुणा प्रमाणवाले विशेष, उनका अधिकपना साधिक शब्द से जानना । उन खंडों को ग्रहण करके पहले जो अवशेष बहुखंड मात्र पूर्वस्पर्धक क्षेत्र ऐसा रहा था, उसके नीचे अविरोधपने जोड़ना । जोड़ने योग्य उन सर्व खंडों को चौड़ाई में बराबर आगे ऐसे स्थापना तब प्रथम वर्गणा को अपकर्षण भागहार का भाग देकर एक खंड की चौड़ाई को, यहां ग्रहण किये हुये खंडों का प्रमाण एक कम अपकर्षण भागहार मात्र, उससे गुणा करनेपर चौड़ाई का प्रमाण आता है । वह अवशेष पूर्वस्पर्धकरूप क्षेत्र की चौड़ाई के समान होता है ।

पुनश्च यहां ग्रहण किये हुये खंडों के प्रमाण में विशेषों का साधिकपना कहा है, इसलिए उस पूर्वस्पर्धक स्वरूप क्षेत्र से चौड़ाई का प्रमाण क्रम से कुछ साधिक जानना । और यहां जोड़ने योग्य खंडों की लंबाई अपूर्वस्पर्धक प्रमाण मात्र है, इसलिए नीचे जोड़े हुये क्षेत्र की लंबाई का प्रमाण अपूर्वस्पर्धक प्रमाण मात्र हुआ । इसतरह पूर्वस्पर्धकों के क्षेत्र के नीचे जिस द्रव्य द्वारा अपूर्वस्पर्धक की रचना हुयी उसी द्रव्यरूप जो ग्रहण किये हुये खंडों का अपूर्वस्पर्धकरूप क्षेत्र उसको जोड़नेपर ऐसा हुआ । इसतरह पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा से अपूर्वस्पर्धकों की वर्गणा अनुक्रम से विशेष अधिक जानना ।

पूर्वस्पर्धक क्षेत्र
अपूर्वस्पर्धक क्षेत्र

इसतरह अपकर्षित द्रव्य में से जितने द्रव्य द्वारा अपूर्वस्पर्धक बने, उनरूप क्षेत्र जोड़ने का विधान तो कहा; अब अवशेष रहा द्रव्य पूर्व-अपूर्वस्पर्धकों में देनेरूप क्षेत्र जोड़ने का विधान कहते हैं –

असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहार से डेढ़गुणा प्रमाण युक्त खंड किये थे, उनमें से साधिक एक कम अपकर्षण भागहार मात्र खंड ग्रहण करने के पश्चात् अवशेष जो खंड रहे, उनमें एक खंड ऐसा । उसको सकल खंड कहते हैं । उसकी चौड़ाई में असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहार से डेढ़गुणा प्रमाण मात्र खंड ऐसे 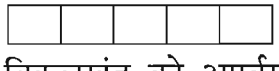 करना, उतने खंडों को विकलखंड कहते हैं । वहां एक विकलखंड को अपूर्वस्पर्धक संबंधी क्षेत्र की चौड़ाई में क्रम से जोड़ना और अवशेष विकलखंडों को वैसे ही पूर्वस्पर्धक संबंधी क्षेत्र की चौड़ाई में अनुक्रम परिपाटी सहित

जोड़ना । इसीप्रकार जितने अवशेष सकलखंड रहे, उनको पूर्व-अपूर्वस्पर्धक संबंधी क्षेत्र में अविरोधपने चौड़ाई में जानना । ऐसा जोड़नेपर ऐसा क्षेत्र हुआ –

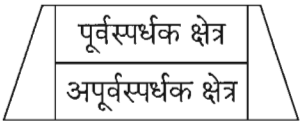

यहां पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में जोड़े हुये समस्त विकल खंड मिलकर भी एक सकल खंड प्रमाण नहीं हुये, क्योंकि अपकर्षण भागहार मात्र विकल खंडों से हीन है । इसतरह पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में दिया हुआ किंचित् कम एक सकल खंड है और अपूर्वस्पर्धक की अंत वर्गणा में पहले और पश्चात् दिये हुये एक कम अपकर्षण भागहार मात्र सकल खंड हैं । इसलिए अपूर्वस्पर्धक की अंत वर्गणा में दिये हुये द्रव्य से पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में दिया हुआ द्रव्य असंख्यातगुणा हीन है । असंख्यात का प्रमाण यहां साधिक अपकर्षण भागहार मात्र जानना । ऐसे पूर्वोक्त कथन को क्षेत्ररूप स्थापित कर कथन किया ।

कोहादीणमपुव्वं जेट्ठं सरिसं तु अवरमसरित्थं ।
लोहादिआदिवग्गणअविभागा होंति अहियकमा ।।४७१।।

क्रोधादीनामपूर्वं ज्येष्ठं सदृशं तु अवरमसदृशं ।
लोभादिआदिवर्गणाअविभागा भवंति अधिकक्रमाः ।।४७१।।

टीका – क्रोधादि चारों कषायों के अपूर्वस्पर्धकों की उत्कृष्ट वर्गणा जो अंत स्पर्धक की प्रथम वर्गणा वह अनुभाग के अविभागप्रतिच्छेदों की अपेक्षा समान है, परंतु जघन्य वर्गणा जो प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा, वह असमान है । वहां लोभादि की जघन्य वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद क्रम से अधिक हैं । लोभ की जघन्य वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद तो अल्प हैं, उससे माया के अधिक हैं, उससे मान के अधिक हैं, उससे क्रोध के अधिक हैं ।

सगसगफड्डयएहिं सगजेट्ठे भाजिदे सगीआदि ।
मज्झेवि अणंताओ वग्गणगाओ समाणाओ ।।४७२।।

स्वकस्वकस्पर्धकैः स्वकज्येष्ठे भाजिते स्वकीयादि ।
मध्येऽपि अनंता वर्गणाः समानाः ।।४७२।।

टीका – सामान्य आलाप से अभव्यराशि से अनंतगुणा और सिद्धराशि के अनंतवें भाग मात्र हीनाधिकरूप जो अपने-अपने स्पर्धकों का प्रमाण, उसका भाग अपनी-अपनी उत्कृष्ट वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों के प्रमाण को देनेपर अपनी-अपनी आदि *(प्रथम)* वर्गणा का प्रमाण आता है ।

अंकसंदृष्टि द्वारा जैसे, चारों कषायों के समान प्रमाणवाले उत्कृष्ट वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद पन्द्रह सौ बारह (१५१२), इनको लोभ, माया, मान, क्रोध के स्पर्धकों का प्रमाण क्रम से सत्ताइस, चौबीस, इक्कीस, अठारह का भाग देनेपर लोभ की जघन्य वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद छप्पन (५६), माया की जघन्य वर्गणा के तिरसठ (६३), मान की जघन्य वर्गणा के बहत्तर (७२) और क्रोध की जघन्य वर्गणा के चौरासी (८४) होते हैं ।

अथवा अपनी-अपनी जघन्य वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों के प्रमाण को अपने-अपने स्पर्धकों के प्रमाण से गुणित करनेपर अपनी-अपनी उत्कृष्ट वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण आता है । कैसे ? वह कहते हैं –

लोभादि के प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद समूह से दूसरे स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के दोगुणा, तीसरे स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के तीनगुणा, चौथे स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के चारगुणा इस क्रम से जितने अपने स्पर्धकों का प्रमाण, उतने गुणा अंत स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण होता है, वह चारों कषायों का समान है । मध्य में भी अनंत वर्गणा चारों कषायों की परस्पर समान होती हैं, उसका वर्णन आगे करते हैं ।

जे हीणा अवहारे रूवा तेहिं गुणित्तु पुव्वफलं ।
हीणवहारेणहिये अद्धं (लद्धं) पुव्वं फलेणहियं ।।४७३।।

ये हीणा अवहारे रूपाः तैः गुणितं पूर्वफलं ।
हीनावहारेणाधिके अर्धं (लब्धं) पूर्वं फलेनाधिकं ।।४७३।।

टीका – इस गाथा का अर्थरूप व्याख्यान क्षपणासार में कुछ किया नहीं है और मेरे जानने में भी स्पष्ट नहीं आया, इसलिए यहां नहीं लिखा । बुद्धिमान हो यथार्थ

इसका अर्थ हो वह जानना ।

कोहदुसेसेणवहिदकोहे तक्कंडयं तु माणतिए ।
रूपहियं सगकंडयहिदकोहादी समाणसला ।।४७४।।

क्रोधद्विशेषेणावहितक्रोधे तत्कांडकं तु मानत्रयं ।
रूपाधिकं स्वककांडकहितक्रोधादि समानशलाका: ।।४७४।।

टीका – क्रोधद्विक अवशेष अर्थात् क्रोध के स्पर्धकों के प्रमाण को मान के स्पर्धकों के प्रमाण में से घटानेपर जो अवशेष रहे, उसका भाग क्रोध के स्पर्धकों के प्रमाण को देनेपर जो प्रमाण आता है, उसका नाम क्रोधकांडक है । मानत्रिक में एक-एक अधिक है, इसलिए क्रोधकांडक से एक अधिक का नाम मानकांडक है, इससे एक अधिक का नाम मायाकांडक है, इससे एक अधिक का नाम लोभकांडक है ।

अंकसंदृष्टि द्वारा जैसे, क्रोध के स्पर्धक अठारह, उनको मान के इक्कीस स्पर्धकों में से घटानेपर अवशेष तीन, उसका भाग क्रोध के अठारह स्पर्धक को देनेपर क्रोधकांडक का प्रमाण छह, इससे एक-एक अधिक मान, माया, लोभ के कांडकों का प्रमाण क्रम से सात, आठ, नौ रूप जानना । पुनश्च अपने-अपने कांडकों का भाग अपने-अपने स्पर्धकों के प्रमाण को देनेपर जो नाना कांडकों का प्रमाण आता है, उतनी वर्गणाओं के अविभागप्रतिच्छेद चारों कषायों के परस्पर समान होते हैं । कैसे ? वह कहते हैं –

क्रोधादि के प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा से द्वितीय, तृतीय आदि स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद क्रम से दोगुणा, तीनगुणा आदि होकर, अपने-अपने कांडक का जितना प्रमाण है, उतने स्थान जानेपर जो स्पर्धक है, उसकी प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद चारों कषायों के समान होते हैं । उसके ऊपर प्रथम स्पर्धक की वर्गणा के जितने अविभागप्रतिच्छेद हैं, उतने-उतने एक-एक स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में बढ़ते-बढ़ते अपने कांडक प्रमाण स्थान होनेपर जो स्पर्धक, उसकी प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद समान होते हैं । इसप्रकार अपने-अपने कांडक मात्र स्पर्धक होनेपर चारों कषायों की वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों की समानता होते हुये

नाना कांडक वर्गणाओं में समानता होती हैं ।

अंकसंदृष्टि द्वारा जैसे, क्रोध, मान, माया, लोभ के प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद क्रम से चौरासी, बहत्तर, तिरसठ, छप्पन हैं । उसके ऊपर एक-एक स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में उतने-उतने बढ़ते हुये अपने कांडक मात्र छह, सात, आठ, नौ स्पर्धक हुये । वहां प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद चारों कषायों के परस्पर समान पांच सौ चार हैं । पुनश्च उसके ऊपर वैसे ही बढ़ते हुये अपने कांडक मात्र स्पर्धक होनेपर वहां प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद चारों कषायों के समान एक हजार आठ होते हैं । पुनश्च उसके उपर वैसे ही बढ़ते हुये अपने कांडक मात्र स्थान होनेपर वहां प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद चारों कषायों के समान पन्द्रह सौ बारह होते हैं । इसतरह अपने-अपने कांडक का भाग अपने-अपने स्पर्धकों के प्रमाण को देनेपर नाना कांडक का प्रमाण तीन आया, सो तीन स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा परस्पर समान हैं, अन्य वर्गणाओं का समान रूप नहीं है ।

क्रोध	मान	माया	लोभ
१५१२	१५१२	१५१२	१५१२
०	०	०	०
०	०	०	०
१०९२	१०८०	१०७१	१०६४
१००८	१००८	१००८	१००८
०	०	०	०
०	०	०	०
५८८	५७६	५६७	५६०
५०४	५०४	५०४	५०४
४२०	४३२	४४१	४४८
३३६	३६०	३७८	३९२
२५२	२८८	३१५	३३६
१६८	२१६	२५२	२८०
८४	१४४	१८९	२२४
	७२	१२६	१६८
		६३	११२
			५६

इसतरह यहां अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण कहा है, वह विवक्षित वर्गणा में एक परमाणुरूप वर्ग में जिनते अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं, उसकी अपेक्षा कथन किया है । सर्व वर्गों के समूहरूप वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण यथासंभव जानना ।

[***विशेषार्थ*** *: यहां क्रोध के कांडक का प्रमाण छह, मान के सात, माया के आठ और लोभ के नौ है । इसलिए क्रोध के छठवें, मान के सातवें, माया के आठवें और लोभ के नौवें स्पर्धक की प्रथम वर्गणा समान अर्थात् ५०४ है । क्रोधादि के प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा क्रम से ८४, ७२, ६३, ५६ हैं, उनको अपने-अपने कांडक प्रमाण से गुणा करते हैं । ८४ × ६ = ५०४, ७२ × ७ = ५०४, ६३ × ८ = ५०४, ५६ × ९ = ५०४ । इसीतरह आगे भी समझना ।*]

ताहे दव्ववहारो पदेसगुणहाणिफड्डयवहारो ।
पल्लस्स पढममूलं असंखगुणियक्कमा होंति ।।४७५।।

तत्र द्रव्यावहारः प्रदेशगुणहानिस्पर्धकावहारः ।
पल्यस्य प्रथममूलं असंख्यगुणितक्रमा भवंति ।।४७५।।

टीका – अश्वकर्णकरण के प्रथम समय में अपूर्वस्पर्धक करने का द्रव्य ग्रहण करने के लिये सर्वद्रव्य को उस अपकर्षण भागहार का भाग दिया, उससे प्रदेश संबंधी एक गुणहानि में जितना स्पर्धकों का प्रमाण उसको अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण लाने के लिये जिसका भाग दिया वह *(भागहार)* असंख्यातगुणा है । उससे पल्य का वर्गमूल असंख्यातगुणा है । यहां ऐसा प्रयोजन जानना –

अपकर्षण भागहार से असंख्यातगुणा वा पल्य के प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भाग मात्र जो भागहार, उसका भाग अनुभाग संबंधी एक गुणहानि की स्पर्धकशलाका को देनेपर प्रथम समय में किये हुये अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण आता है ।

ताहे अपुव्वफड्डयपुव्वस्सादीदणंतिममुदेदि ।
बंधो हु लताणंतिमभागो त्ति अपुव्वफड्डयदो ।।४७६।।

तस्मिन् अपूर्वस्पर्धकपूर्वस्यादितोऽनंतिममुदेति ।
बंधो हि लतानंतिमभाग इति अपूर्वस्पर्धकत: ।।४७६।।

टीका – उस अश्वकर्णकरण के प्रथम समय में उदयनिषेक *(उदयरूप निषेक)* संबंधी सर्व अपूर्वस्पर्धक और पूर्वस्पर्धक के आदि से लेकर उसके अनंतवें भाग उदय होता है । कैसे ? वह कहते हैं –

अपूर्वस्पर्धकरूप परिणमित हुआ है अनुभागसत्त्व ऐसा जो कर्म, उसके असंख्यातवें भाग मात्र प्रदेशों को अपकर्षण करके उदीरणा करनेवाले जीव के वर्तमान समय में उदय आने योग्य उदयनिषेक में सर्व ही अनुभागसत्त्व अपूर्वस्पर्धक स्वरूप है । इसलिए वे तो सर्व ही स्पर्धक उदीरणारूप हैं और उदयनिषेक के ऊपर के निषेकों के समान अनुभाग शक्ति के धारक जो अपूर्वस्पर्धक हैं वे उदय न होने से अनुदीरणारूप हैं । इसतरह कई अपूर्वस्पर्धकों का उदय और कई अपूर्वस्पर्धकों का अनुदय जानना । पुनश्च पूर्वस्पर्धकों में भी जो प्रथम स्थिति में लता, दारु रूप स्पर्धक हैं उनमें से लता समान अनुभाग के अनंतवें भाग मात्र स्पर्धक उदय होता है, सो उदीरणारूप है । उदयनिषेक के ऊपर के निषेकों के समान शक्ति युक्त लता भाग के अनंतवें भाग उदय नहीं होने से अनुदीरणारूप हैं । पुनश्च उसके ऊपरवर्ती लताभाग के अनंत बहुभागों में से बहुभाग और समस्त दारुभाग है, वह उदय को प्राप्त नहीं होता । इसतरह पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा से लेकर अनंतवां भाग उदयरूप होता है, अन्य अनुदयरूप है । ऐसे अश्वकर्णकरण के प्रथम समय में उदय होने का स्वरूप कहा । इस समय में संज्वलन का बंध होता है । वहां पहले लताभाग के अनंतवें भागमात्र बंध होता था, अब उससे अनंतवें भाग मात्र अपूर्वस्पर्धकों के प्रथम स्पर्धक से लेकर अंत स्पर्धक तक और पूर्वस्पर्धकों के लता भाग के अनंतवें भाग तक के जो स्पर्धक, उनरूप होकर बंधरूप स्पर्धक परिणमित होते हैं । यहां उदयरूप अनुभाग से बंधरूप अनुभाग अनंतगुणा घटता है ऐसा जानना ।

इसतरह यह कही हुयी प्ररूपणा अश्वकर्णकरण काल की प्रथम समय संबंधी प्ररूपणा जानना ।

बिदियादिसु समयेसु वि पढमं व अपूव्वफड्डयाण विही ।
णवरि य संखगुणूणं ..... पडिसमयं ।।४७७।।

द्वितीयादिषु समयेषु अपि प्रथमं व अपूर्वस्पर्धकानां विधिः ।
नवरि च संख्यगुणोनं ..... तु प्रतिसमयम् ।।४७७।।

टीका – अश्वकर्णकरण के द्वितीयादि समयों में अपूर्वस्पर्धकों का विधान उसके प्रथम समयवत् जानना । वहां विशेष है, वह कहते हैं – इस गाथा में लिखनेवाले ने कितने ही अक्षर नहीं लिखे हैं, इसलिए आधी गाथा का अर्थ न जानकर यहां नहीं लिखा है ।

[*अन्य प्रति में प्राकृत में 'निव्वत्तयदि' और संस्कृत में 'निर्वर्तयति' शब्द हैं । इसका अर्थ – अनुभागबंध प्रतिसमय असंख्यगुणा हीन होता है ।*]

णवफड्डयाण करणं पडिसमयं एवमेव णवरिं तु ।
दव्वमसंखेज्जगुणं फड्डयमाणं असंख्यगुणहीणं ।।४७८।।

नवस्पर्धकानां करणं प्रतिसमयं एवमेव नवरिं तु ।
द्रव्यमसंख्येयगुणं स्पर्धकमानं असंख्यगुणहीनम् ।।४७८।।

टीका – ऐसे ही प्रथम समयवत् प्रतिसमय नवीन स्पर्धकों को करता है ।

विशेष इतना – वहां द्रव्य तो क्रम से असंख्यातगुणा बढ़ता अपकर्षण करता है और नवीन स्पर्धक किये उनका प्रमाण असंख्यातगुणा हीन होता है । वही कहते हैं –

अश्वकर्णकरण के द्वितीय समय में, जो प्रथम समय में पूर्वस्पर्धकों के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र द्रव्य अपकर्षण किया था, उससे असंख्यातगुणा द्रव्य को पूर्वस्पर्धक तथा प्रथम समय में किये अपूर्वस्पर्धक के द्रव्य से अपकर्षण करके उस द्रव्य के असंख्यातवें भाग मात्र द्रव्य से तो यहां नवीन

अपूर्वस्पर्धक करता है । वे प्रथम समय में किये अपूर्वस्पर्धकों के प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के नीचे घटते अनुभाग सहित करता है ।

वहां उस प्रथम वर्गणा से *(नीचे की)* एक-एक वर्गणा प्रति एक-एक विशेष मात्र द्रव्य की अधिकता द्वितीय समय संबंधी नवीन अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा तक जानना । वहां पूर्वोक्त प्रकार से समपट्टिकाधन, चयधन जोड़नेपर जितना द्रव्य हो, उतने द्रव्य से तो यहां नवीन स्पर्धक बने । अपकर्षण किये द्रव्य में से इतना द्रव्य घटानेपर जो अवशेष द्रव्य रहा उसको द्वितीय समय में किये नवीन अपूर्वस्पर्धक, *(प्रथम समयवाले)* अपूर्वस्पर्धक और पूर्वस्पर्धक, उनका एक गोपुच्छ हुआ – उनमें चय घटते क्रम से सर्वत्र देना । प्रथम समय में किये हुये अपूर्वस्पर्धकों के प्रमाण से द्वितीय समय में किये हुये नवीन अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण असंख्यातगुणा घटता जानना ।

पुनश्च अश्वकर्णकरण के तृतीय समय में, जो द्वितीय समय में द्रव्य अपकर्षण किया, उससे असंख्यातगुणा द्रव्य पूर्वस्पर्धक तथा प्रथम और द्वितीय समय में किये हुये अपूर्वस्पर्धक, इनके द्रव्य में से अपकर्षण करता है । उसके असंख्यातवें भाग मात्र द्रव्य से तो द्वितीय समय में किये हुये स्पर्धकों के नीचे यहां नवीन अपूर्वस्पर्धक करता है तथा अवशेष द्रव्य को तृतीय, द्वितीय, प्रथम समय संबंधी अपूर्वस्पर्धकों का एक गोपुच्छ हुआ, उसमें क्रम से निक्षेपण करता है । यहां द्वितीय समय संबंधी किये हुये अपूर्वस्पर्धकों के प्रमाण से तृतीय समय में किये हुये नवीन अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण असंख्यातगुणा घटता जानना । इसीतरह अपूर्वस्पर्धककरण काल के अंत समय तक प्रतिसमय असंख्यातगुणा द्रव्य को अपकर्षण करता है और नीचे-नीचे नवीन अपूर्वस्पर्धक होते जाते हैं, उनका प्रमाण असंख्यातगुणा घटता होता है । अन्य विशेष जैसे प्रथम समय में कहा, वैसे ही जानना ।

पढमादिसु दिज्जकमं तक्कालजफड्डयाण चरिमो त्ति ।
हीणकमं से काले असंखगुणहीणयं तु हीणकमं ।।४७९।।

प्रथमादिषु देयक्रमं तत्कालजस्पर्धकानां चरम इति ।
हीनक्रमं स्वे काले असंख्यगुणहीनकं तु हीनक्रमम् ।।४७९।।

टीका – अपकर्षण किये द्रव्य को जैसे दिया, वैसा जो अनुक्रम, उसे देयक्रम कहते हैं । वह ऐसा है –

अपूर्वस्पर्धककरण काल के प्रथमादि समयों में उस काल *(उस समय)* में किये स्पर्धकों के अंत तक तो विशेष हीन क्रम सहित और उसके अनंतर असंख्यातगुणा हीन और उसके ऊपर विशेष हीन क्रम सहित जानना । वह कहते हैं –

प्रथम समय में अपकर्षण किये द्रव्य में से उस समय किये हुये अपूर्वस्पर्धकों की प्रथम वर्गणा में बहुत द्रव्य देता है । उससे उनकी द्वितीय वर्गणा से लेकर अंत वर्गणा तक चय घटते क्रम से द्रव्य देता है । अपूर्वस्पर्धक की अंत वर्गणा में दिये द्रव्य से पूर्वस्पर्धकों की प्रथम वर्गणा में दिया द्रव्य असंख्यातगुणा हीन है । उससे उसके ऊपर उनकी अंत वर्गणा तक चय घटते क्रम से द्रव्य देता है ।

द्वितीय समय में अपकर्षण किये द्रव्य में से उस समय किये हुये नवीन अपूर्वस्पर्धकों की प्रथम वर्गणा में बहुत द्रव्य और उनकी द्वितीयादि अंत वर्गणा तक चय घटते क्रम से द्रव्य देता है । उनकी अंत वर्गणा में दिये द्रव्य से प्रथम समय में किये अपूर्वस्पर्धकों की प्रथम वर्गणा में असंख्यातगुणा हीन द्रव्य देता है । उससे उसके ऊपर उनकी अंत वर्गणा तक और उसके ऊपर *(पूर्व)* स्पर्धकों के प्रथमादि अंत वर्गणा तक चय घटते क्रम से द्रव्य देता है ।

पुनश्च तृतीय समय में नवीन बने अपूर्वस्पर्धकों की प्रथम वर्गणा में बहुत द्रव्य, उसके ऊपर उनकी अंत वर्गणा तक चय घटते क्रम से द्रव्य देता है । उसके ऊपर द्वितीय समय में किये अपूर्वस्पर्धकों की प्रथम वर्गणा में असंख्यातगुणा हीन द्रव्य देता है । उसके ऊपर उनकी अंत वर्गणा तक तथा प्रथम समय में किये अपूर्वस्पर्धकों की प्रथमादि अंत वर्गणा तक और पूर्वस्पर्धकों की प्रथमादि अंत वर्गणा तक चय घटते क्रम से द्रव्य देता है । ऐसे ही चतुर्थादि समयों में भी जानना ।

यहां विवक्षित समय में जो *(नवीन)* अपूर्वस्पर्धक बने, वे तो अपकर्षण किये द्रव्य में से कितने ही द्रव्य में से बने और ऊपर के तो पहले थे ही । उन सभी में अवशेष द्रव्य विभाग करके दिया । इसलिए निज काल में बने *(नवीन)* अपूर्वस्पर्धक की अंत वर्गणा में दिये द्रव्य से अनंतर वर्गणा में *(जो पहले से विद्यमान थी)*

असंख्यातगुणा हीन द्रव्य दिया कहा । अन्यत्र चय घटते क्रम से कहा है ।

पढमादिसु दिस्सकमं तक्कालजफड्डयाण चरिमो त्ति ।
हीणकमं से काले हीणं हीणं कमं तत्तो ।।४८०।।

प्रथमादिषु दृश्यक्रमं तत्कालजस्पर्धकानां चरम इति ।
हीनक्रमं स्वे काले हीनं हीनं क्रमं ततः ।।४८०।।

टीका – अपूर्वस्पर्धककरण काल के प्रथमादि समयों में दृश्य अर्थात् देखने में आये ऐसा परमाणुओं के प्रमाण के अनुक्रम को दृश्यक्रम कहते हैं । वह कैसे है ? वह कहते हैं –

वहां उस विवक्षित समय में बने हुये अपूर्वस्पर्धकों का तो जो देयद्रव्य वही दृश्यद्रव्य है, क्योंकि उस समय अपकर्षण किये द्रव्य में से ही उनकी रचना हुयी है । उनकी प्रथम वर्गणा से अंत वर्गणा तक विशेष घटते क्रम सहित दृश्यद्रव्य है । उस अंत वर्गणा के द्रव्य से उसके ऊपर की वर्गणा का भी दृश्यद्रव्य एक चय मात्र घटता है, क्योंकि दिया द्रव्य तो उस अंत वर्गणा द्रव्य से असंख्यातगुणा हीन है तथापि दिया द्रव्य और उसका सत्तारूप पुरातन द्रव्य दोनों मिलकर उससे एक चय मात्र घटता दृश्यद्रव्य होता है । उसके ऊपर पूर्वस्पर्धकों की अंत वर्गणा तक दिया द्रव्य और पूर्वद्रव्य मिलकर क्रम से चय प्रमाण से घटता दृश्यद्रव्य जानना । इसतरह विवक्षित समय में किये अपूर्वस्पर्धकों की प्रथम वर्गणा से लेकर पूर्वस्पर्धकों की अंत वर्गणा तक एक गोपुच्छ हुआ, इसलिए वहां चय घटते क्रम सहित ही दृश्यद्रव्य जानना ।

इसतरह अश्वकर्णकरण काल के प्रथमादि समयों में जब तक प्रथम अनुभागकांडकघात नहीं होता तब तक स्थितिकांडक, अनुभागकांडक, स्थितिबंध और अनुभागसत्त्व तो उन समयों में समानरूप है; अप्रशस्त कर्मों का अनुभागबंध प्रतिसमय अनंतगुणा घटता है; गुणश्रेणी में प्रतिसमय असंख्यातगुणा द्रव्य को अपकर्षण करके देता है और अतीत समय संबंधी स्पर्धकों के नीचे अपूर्वशक्ति युक्त नवीन अपूर्वस्पर्धक प्रतिसमय करता है ।

इसतरह प्रथम अनुभागकांडक का घात होनेपर क्या होता है ? वह कहते हैं –

पढमाणुभागखंडे पडिदे अणुभागसंतकम्मं तु ।
लोभादणंतगुणिदं उवरिं पि अणंतगुणिदकमं ।।४८१।।

प्रथमानुभागखंडे पतिते अनुभागसत्त्वकर्मं तु ।
लोभादनंतगुणितमुपर्यपि अनंतगुणितक्रमं ।।४८१।।

टीका – इसतरह प्रथम अनुभागकांडक का पतन होनेपर लोभ से अनंतगुणा क्रम युक्त अनुभागसत्त्वरूप कर्म होता है । वहां लोभ का अल्प, उससे माया का अनंतगुणा, उससे मान का अनंतगुणा, उससे क्रोध का अनंतगुणा अनुभागसत्त्व होता है ऐसा जानना, क्योंकि वहां अश्वकर्ण क्रिया द्वारा प्रथम अनुभागकांडक का घात होने के पश्चात् अवशेष अनुभागसत्त्व होता है । इसके ऊपर अश्वकर्ण काल के सर्व समयों में भी इसी अल्पबहुत्व के क्रम सहित अनुभागसत्त्व जानना ।

आदोलस्स य पढमे णिव्वत्तिदअपुव्वफड्डयाणि बहू ।
पडिसमयं पलिदोवममूलासंखेज्जभागभजियकमा ।।४८२।।

आंदोलस्य च प्रथमे निर्वर्तितापूर्वस्पर्धकानि बहूनि ।
प्रतिसमयं पलिदोपममूलासंख्येयभागभजितक्रमं ।।४८२।।

टीका – आंदोल अर्थात् अश्वकर्ण, उसके प्रथम समय में जो अपूर्वस्पर्धक किये, वे बहुत हैं । पश्चात् प्रतिसमय पल्य के वर्गमूल के असंख्यातवें भाग से भाजित क्रम सहित जानना । प्रथम समय में किये अपूर्वस्पर्धकों के प्रमाण को पल्य के वर्गमूल के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर द्वितीय समय में नवीन किये अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण होता है । इसको पल्य के वर्गमूल के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर तृतीय समय में किये नवीन अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण होता है । ऐसे ही अपूर्वस्पर्धककरण काल के अंत समय तक क्रम जानना ।

आदोलस्स य चरिमे अपुव्वादिमवग्गणाविभागादो ।
दोचढिमादीणादी चढिदव्वा मेत्तणंतगुणा ।।४८३।।

आंदोलस्य च चरमेऽपूर्वादिमवर्गणाविभागात् ।
द्विचटितादीनामादिः चटितव्यामात्रानंतगुणा ।।४८३।।

टीका – इस क्रम से अपूर्वस्पर्धक होते हुये अपूर्वस्पर्धक सहित अश्वकर्णकरण काल के अंत समय में सर्व अपूर्वस्पर्धक हुये । वहां प्रथम स्पर्धक की आदि वर्गणा में अनुभाग के अविभागप्रतिच्छेद अल्प हैं । उससे दूसरे स्पर्धक की आदि वर्गणा में दोगुणा, तीसरे स्पर्धक की आदि वर्गणा में तीनगुणा ऐसे जितनेवां स्पर्धक हो उसकी आदि वर्गणा में उतने गुणा है, ऐसे अनंतगुणा तक चढ़ना । अंत स्पर्धक की आदि वर्गणा में अनंतगुणा होते हैं ऐसा जानना । यहां विवक्षित वर्गणा के एक-एक परमाणु में जो अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं, उनकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहा है । सर्व परमाणुओं की अपेक्षा किंचित् कम दोगुणा, तीनगुणा क्रम जानना । इसतरह पहले ही यतिवृषभ आचार्य द्वारा कथन किया है *(गाथा ४६७ की टीका)* । चारों कषायों में ऐसा ही क्रम जानना ।

आदोलस्स य पढमे रसखंडे पाडिदे अपुव्वादो ।
कोहादो अहियकमा पदेसगुणहाणिफड्डया तत्तो ।।४८४।।

होदि असंखेज्जगुणं इगिफड्डयवग्गणा अणंतगुणा ।
तत्तो अणंतगुणिदा कोहस्स अपुव्वफड्डयाणं च ।।४८५।।

माणादीणहियकमा लोभगपुव्वं च वग्गणा तेसिं ।
कोहो त्ति य अट्ठपदा अणंतगुणिदक्कमा होंति ।।४८६।।

आंदोलस्य च प्रथमे रसखंडे पातिते अपूर्वात् ।
क्रोधात् अधिकक्रमाः प्रदेशगुणहानिस्पर्धकास्ततः ।।४८४।।

भवति असंख्येयगुणं एकस्पर्धकवर्गणा अनंतगुणा ।
ततः अनंतगुणितं क्रोधस्य अपूर्वस्पर्धकानां च ।।४८५।।

मानादीनामधिकक्रमं लोभगपूर्वं च वर्गणा तेषां ।
क्रोध इति च अष्ट पदानि अनंतगुणितक्रमाणि भवंति ।।४८६।।

टीका – अश्वकर्णकरण के प्रथम अनुभागकांडक का घात होनेपर हुये ऐसे क्रोध के अपूर्वस्पर्धक अल्प हैं, उससे मान के अपूर्वस्पर्धक विशेष अधिक हैं, उससे माया के अपूर्वस्पर्धक विशेष अधिक हैं, उससे लोभ के अपूर्वस्पर्धक विशेष अधिक हैं । उससे प्रदेश संबंधी एक गुणहानि में स्पर्धकों का प्रमाण असंख्यातगुणा है, क्योंकि इसको असंख्यात का भाग देनेपर अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण आता है । इसलिए अपूर्वस्पर्धकों के प्रमाण को असंख्यात से गुणित करके इसका प्रमाण हुआ ऐसा कहा है । उससे एक स्पर्धक में पायी जानेवाली वर्गणाओं का प्रमाण अनंतगुणा है, क्योंकि पूर्व और अपूर्वस्पर्धकों में वर्गणा अभव्यराशि से अनंतगुणा तथा सिद्धराशि के अनंतवें भाग मात्र पायी जाती हैं । इसलिए अनंत का गुणकार पाया जाता है । उनसे क्रोध की सर्व अपूर्वस्पर्धकों की वर्गणा का प्रमाण अनंतगुणा है, क्योंकि एक स्पर्धक की वर्गणा का प्रमाण कहा, उसको क्रोध के अपूर्वस्पर्धकों के प्रमाण से गुणा करके यह आता है, यह अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण प्रदेश संबंधी गुणहानि में स्पर्धकों का जो प्रमाण है उसके असंख्यातवें भाग मात्र है । उनसे मान के सर्व अपूर्वस्पर्धकों की वर्गणा विशेष अधिक हैं । उनसे माया के सर्व अपूर्वस्पर्धकों की वर्गणा विशेष अधिक हैं । उनसे लोभ के सर्व अपूर्वस्पर्धकों की वर्गणा विशेष अधिक हैं । यहां इनके अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण विशेष अधिक क्रम सहित है इसलिए उनकी वर्गणाओं का प्रमाण भी विशेष अधिक क्रम सहित है ।

पुनश्च लोभ के अपूर्वस्पर्धकों की वर्गणाओं के प्रमाण से लोभ के पूर्वस्पर्धकों का प्रमाण अनंतगुणा है, क्योंकि लोभ के अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण प्रदेश गुणहानि की स्पर्धकशलाका के असंख्यातवें भाग मात्र, उसको एक स्पर्धक की वर्गणा के प्रमाण से गुणा करनेपर लोभ के अपूर्वस्पर्धकों की वर्गणाओं का प्रमाण आता है और एक गुणहानि की स्पर्धकशलाका को प्रदेश संबंधी नानागुणहानि से गुणा करनेपर लोभ के पूर्वस्पर्धकों का प्रमाण आता है । यहां एक स्पर्धकवर्गणा के प्रमाण से नानागुणहानि का प्रमाण अनंतगुणा है । इसलिए अनंत का गुणकार पाया जाता है ।

उससे लोभ के पूर्वस्पर्धकों की वर्गणाओं का प्रमाण अनंतगुणा है; क्योंकि उसको एक स्पर्धक की वर्गणाशलाका से गुणा करनेपर यह प्रमाण आता है । उससे माया के पूर्वस्पर्धकों का प्रमाण अनंतगुणा है, क्योंकि प्रथम अनुभागकांडक का घात करने

के पश्चात् अनुभागसत्त्व अश्वकर्ण के आकार हुआ, इसलिए अनंतगुणापना होता है । इससे माया के पूर्वस्पर्धकों की वर्गणाओं का प्रमाण अनंतगुणा है । उससे मान के पूर्वस्पर्धकों का प्रमाण अनंतगुणा है । उससे मान के पूर्वस्पर्धकों की वर्गणाओं का प्रमाण अनंतगुणा है । उससे क्रोध के पूर्वस्पर्धकों का प्रमाण अनंतगुणा है । उससे क्रोध के पूर्वस्पर्धकों की वर्गणाओं का प्रमाण अनंतगुणा है । इनमें कारण पूर्वोक्त है । इसतरह अल्पबहुत्व जानना ।

रसठिदिखंडाणेवं संखेज्जसहस्सगाणि गंतूणं ।
तत्थ य अपुव्वफड्डयकरणविही णिट्ठिदा होई ।।४८७।।

रसस्थितिखंडानामेवं संख्येयसहस्रकाणि गत्वा ।
तत्र च अपूर्वस्पर्धककरणविधिर्निष्ठिता भवति ।।४८७।।

टीका – ऐसे क्रम से हजारों अनुभागकांडक जानेपर एक स्थितिकांडक होता है, ऐसे संख्यात हजार स्थितिकांडक जिसमें होते हैं ऐसा अंतर्मुहूर्त मात्र अश्वकर्णकरण का काल होनेपर वहां अपूर्वस्पर्धककरण की विधि 'निष्ठिता' अर्थात् पूर्ण हुयी ।

भावार्थ – अपूर्वस्पर्धक क्रिया सहित अश्वकर्णकरण का काल समाप्त हुआ । आगे कृष्टि क्रिया सहित अश्वकर्ण क्रिया होगी ऐसा यतिवृषभ आचार्य का तात्पर्य जानना ।

हयकण्णकरणचरिमे संजलणाणट्ठवस्सठिदिबंधो ।
वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवंति सेसाणं ।।४८८।।

हयकर्णकरणचरमे संज्वलनानामष्टवर्षस्थितिबंधः ।
वर्षाणां संख्येयसहस्राणि भवंति शेषाणां ।।४८८।।

टीका – अपूर्वस्पर्धक सहित अश्वकर्णकरण काल के अंत समय में संज्वलन चतुष्टय का आठ वर्ष मात्र स्थितिबंध है । उसके प्रथम समय में सोलह वर्ष मात्र था । एक-एक स्थितिबंधापसरण में अंतर्मुहूर्त मात्र घटते-घटते यहां अवशेष आठ वर्ष मात्र रहा है । अवशेष कर्मों का स्थितिबंध संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है । उसके प्रथम

समय में संख्यात हजार वर्ष मात्र था, एक-एक स्थितिबंधापसरण में संख्यातगुणा घटकर संख्यात हजार स्थितिबंधापसरणों द्वारा घट गया, परंतु आलाप से इतना ही कहते हैं ।

ठिदिसत्तमघादीणं असंखवस्साण होंति घादीणं ।
वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवंति णियमेण ।।४८९।।

स्थितिसत्त्वमघातिनामसंख्यवर्षा भवंति घातिनाम् ।
वर्षाणां संख्येयसहस्राणि भवंति नियमेन ।।४८९।।

टीका – उसी अंत समय में अघाति नाम, गोत्र, वेदनीय का स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्ष मात्र है । प्रथम समय में असंख्यात वर्ष मात्र था, वहां असंख्यातगुणा घटते क्रम सहित संख्यात हजार स्थितिकांडकों के द्वारा घटा, परंतु आलाप से इतना ही कहते हैं । यहां चार घातिकर्मों का स्थितिसत्त्व संख्यात वर्ष मात्र है । प्रथम समय में भी संख्यात वर्ष मात्र था, वह संख्यातगुणा घटते क्रम सहित संख्यात हजार स्थितिकांडकों से घटा, परंतु सामान्य आलाप से इतना ही कहते हैं ।

इति अपूर्वस्पर्धक अधिकार समाप्त ।

अब अपूर्वस्पर्धक करने के काल के अनंतर समय से लेकर कृष्टिकरण का काल है । जिस करण से कर्म का अनुभाग कृष अर्थात् हीन करते हैं, उसका सार्थक नाम कृष्टि जानना । वह दो प्रकार की है – बादरकृष्टि, सूक्ष्मकृष्टि । वहां संज्वलन कषायों के पूर्व-अपूर्वस्पर्धक जैसे ईटों की पंक्ति हो वैसे अनुभाग का एक-एक अविभागप्रतिच्छेद की वृद्धि युक्त परमाणुओं के समूहरूप वर्गणा, उनके समूहरूप है ।

[*एक-एक स्पर्धक एक-एक अविभागप्रतिच्छेद से बढ़ते हुये परमाणुओं के समूहरूप वर्गणाओं का समूह है ।*]

उनके अनंतगुणा घटता अनुभाग होने द्वारा स्थूल खंड करते हैं वह बादरकृष्टिकरण है और उन स्थूल खंडों को अनंतगुणा घटता अनुभागरूप करके सूक्ष्म खंड करते हैं, वह सूक्ष्मकृष्टिकरण है । वहां बादरकृष्टिकरण के काल का प्रमाण जानने के लिये सूत्र कहते हैं –

छक्कमे संछुद्धे कोहे कोहस्स वेदगद्धा जा ।
तस्स य पढमतिभागो होदि हु हयकण्णकरणद्धा ।।४९०।।

बिदियतिभागो किट्टीकरणद्धा किट्टिवेदगद्धा हु ।
तदियतिभागो किट्टिकरणो हयकण्णकरणं च ।।४९१।।

षट्कर्मणि संक्षुब्धे क्रोधे क्रोधस्य वेदकाद्धा या ।
तस्य च प्रथमत्रिभाग: भवति हि हयकर्णकरणाद्धा ।।४९०।।

द्वितीयत्रिभाग: कृष्टिकरणाद्धा किट्टीवेदकाद्धा हि ।
तृतीयत्रिभाग: कृष्टिकरणं हयकर्णकरणं च ।।४९१।।

टीका – छह नोकषायों को संज्वलन क्रोध में संक्रमण द्वारा नाश करने के अनंतर समय से लेकर जो अंतर्मुहूर्त मात्र क्रोधवेदक काल है, उसको संख्यात का भाग देकर, वहां बहुभाग के समानरूप तीन भाग करना । अवशेष एकभाग को संख्यात का भाग देकर बहुभाग को प्रथम त्रिभाग में जोड़ना । अवशेष एकभाग को संख्यात का भाग देकर, वहां बहुभाग दूसरे त्रिभाग में जोड़ना । अवशेष एक भाग तीसरे त्रिभाग में जोड़ना ।

[*विशेषार्थ – जैसे १००० को १० का भाग देकर एकभाग १०० और बहुभाग ९०० हुये । ९०० के तीन समान भाग ३००, ३००, ३०० हुये । एकभाग १०० को १० का भाग देकर बहुभाग ९० आये, उन्हें प्रथम ३०० में मिलानेपर ३९० हुये । एकभाग १० को १० का भाग देकर बहुभाग ९ आये, उन्हें दूसरे ३०० में मिलानेपर ३०९ हुये । एकभाग १ को तीसरे ३०० में मिलानेपर ३०१ हुये । इसतरह ३९०, ३०९, ३०१ हुये ।*]

पूर्वोक्त करनेपर पहला त्रिभाग साधिक हुआ, वह तो अपूर्वस्पर्धक सहित अश्वकर्णकरण का काल है, वह पहले हो गया । दूसरा त्रिभाग किंचित् कम है; वह चारों संज्वलन कषायों का कृष्टि करने का काल है, वह अब वर्त रहा है । तीसरा त्रिभाग किंचित् कम है, वह क्रोध कृष्टि का वेदक काल है, जो आगे प्रवर्तेगा । इस

कृष्टिकरण काल में भी अश्वकर्णकरण पाया जाता है, क्योंकि यहां भी अश्वकर्ण के आकार संज्वलन कषायों का अनुभागसत्त्व और अनुभागकांडक वर्तता है । इसलिए यहां कृष्टिकरण सहित अश्वकर्णकरण पाया जाता है ऐसा जानना ।

वहां प्रथम समय में एक स्थितिबंधापसरण होने से संज्वलन चतुष्क का अंतर्मुहूर्त कम आठ वर्ष प्रमाण और अन्य कर्मों का पूर्व स्थितिबंध से संख्यातगुणा घटता संख्यात वर्ष प्रमाण स्थितिबंध होता है । पुनश्च एक स्थितिकांडकघात होने से चारों घातिकर्मों का पूर्व स्थितिसत्त्व से संख्यात बहुभाग मात्र घटता संख्यात हजार वर्ष मात्र और तीन अघातिकर्मों का पूर्व स्थितिसत्त्व से असंख्यात बहुभाग मात्र घटता असंख्यात वर्ष मात्र स्थितिसत्त्व पाया जाता है ।

कोहादीणं सगसगपुव्वापुव्वगयफड्डयेहिंतो ।
उक्कड्डिदूण दव्वं ताणं किट्टी करेदि कमे ।।४९२।।

क्रोधादीनां स्वकस्वकपूर्वापूर्वगतस्पर्धकान् ।
अपकर्षयित्वा द्रव्यं तेषां कृष्टिं करोति क्रमेण ।।४९२।।

टीका – संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ का अपना-अपना पूर्व-अपूर्वस्पर्धकरूप जो सर्वद्रव्य, उसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र द्रव्य ग्रहण कर यथाक्रम सहित उन क्रोधादि की कृष्टि करता है ।

उक्कड्डिददव्वस्स य पल्लासंखेज्जभागबहुभागो ।
बादरकिट्टिणिबद्धो फड्डयगे सेसइगिभागो ।।४९३।।

अपकर्षितद्रव्यस्य च पल्यासंख्येयभागबहुभाग: ।
बादरकृष्टिनिबद्ध: स्पर्धके शेषैकभाग: ।।४९३।।

टीका – अपकर्षण किये द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग मात्र द्रव्य तो बादरकृष्टि संबंधी है । इससे बादरकृष्टि बनती है । अवशेष एकभाग मात्र द्रव्य पूर्व-अपूर्वस्पर्धकों में निक्षेपण करता है ।

किट्टीयो इगिफड्ढयवग्गणसंखाणणंतभागो दु ।
एक्केक्कम्हि कसाये तिगतिग अहवा अणंता वा ।।४९४।।

कृष्टय एकस्पर्धकवर्गणासंख्यानामनंतभागस्तु ।
एकैकस्मिन् कषाये त्रिकत्रिकमथवा अनंता वा ।।४९४।।

टीका – एक-एक अविभागप्रतिच्छेद बढ़ने के क्रम सहित प्रत्येक सिद्धराशि के अनंतवें भाग मात्र परमाणुओं के समूहरूप ईटों की पंक्ति के आकार जो वर्गणा हैं, वे एक स्पर्धक में, एक गुणहानि में जितने स्पर्धक होते हैं, उनसे अनंतगुणा पायी जाती हैं ।

[***विशेषार्थ*** *: एक गुणहानि में जितने स्पर्धक होते हैं, उनसे अनंतगुणा एक-एक स्पर्धक में वर्गणा होती हैं । एक-एक वर्गणा में सिद्धराशि के अनंतवें भाग प्रमाण अनंत वर्ग होते हैं । ये वर्गणायें ईंटों की पंक्तियों की समान एक के ऊपर दूसरी, तीसरी जानना । नीचे की वर्गणा से अनंतर ऊपर की वर्गणा में परमाणुओं में एक-एक अविभागप्रतिच्छेद अधिक होता है ।*]

इसप्रकार एक स्पर्धक में जो वर्गणाओं का प्रमाण है, उसको वर्गणाशलाका कहते हैं । उसके अनंतवें भाग मात्र सर्व कृष्टियों का प्रमाण है । अनुभाग के अल्पबहुत्व अपेक्षा कृष्टियों का विभाग करते हैं –

वहां एक-एक कषाय में संग्रहकृष्टि तीन-तीन हैं और एक-एक संग्रहकृष्टि में अंतरकृष्टि अनंत-अनंत हैं । वहां नीचे ही नीचे लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि है, उसमें अंतरकृष्टि अनंत हैं । उसके ऊपर लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि है, उसमें अंतरकृष्टि अनंत हैं । उसके ऊपर लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि है, उसमें अंतरकृष्टि अनंत हैं । इसीतरह क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि तक अवशेष नौ संग्रहकृष्टि जानना । वहां एक-एक संग्रहकृष्टि में अनंत-अनंत अंतरकृष्टि जानना । एक प्रकार के बढ़ते गुणकाररूप जो अंतरकृष्टि, उनके समूह ही का नाम संग्रहकृष्टि जानना ।

[***विशेषार्थ*** *: जैसे एक-एक स्पर्धक में अनंत वर्गणा पंक्तिरूप होती हैं, जो*

एक-एक अविभागप्रतिच्छेद से बढ़ती हुयी होती हैं । यहां एक-एक संग्रहकृष्टि में अनंत कृष्टि पंक्तिरूप होती हैं, परंतु एक-एक कृष्टि से उसकी अनंतर ऊपर की कृष्टि अनंतगुणा अविभागप्रतिच्छेद सहित होती है ।]

अकसायकसायाणं दव्वस्स विभंजणं जहा होई ।
किट्टिस्स तहेव हवे कोहो अकसायपडिबद्धं ।।४९५।।

अकषायकषायाणां द्रव्यस्य विभंजनं यथा भवति ।
कृष्टेस्तथैव भवेत् क्रोधः अकषायप्रतिबद्धः ।।४९५।।

टीका – अकषाय अर्थात् नोकषाय और कषाय इनके द्रव्य का विभाग जैसे होता है, वैसे ही इन कृष्टियों के प्रमाण का विभाग जानना । नोकषाय संबंधी कृष्टियों को क्रोध की कृष्टियों में जोड़ना, क्योंकि नोकषायों का सर्व द्रव्य संज्वलन क्रोधरूप संक्रमण हुआ है । वहां द्रव्य विभाग कैसे होता है ? वह कहते हैं –

पहले अपूर्वस्पर्धककरण के काल में जैसा अनुक्रम कह आये हैं, उस अनुक्रम से सर्व चारित्रमोह का द्रव्य साधिक डेढ़ गुणहानि गुणित प्रथम वर्गणा मात्र है । वहां लोभ का द्रव्य साधिक आठवां भाग मात्र, माया का किंचित् कम आठवां भाग मात्र, मान का किंचित् कम आठवां भाग मात्र, क्रोध का किंचित् कम आठवां भाग मात्र और इसीमें *(क्रोध में)* किंचित् कम द्वितीय भाग मात्र नोकषाय का द्रव्य मिलानेपर क्रोध का द्रव्य पांचगुणा किंचित् कम आठवां भाग मात्र होता है ।

$$\left[\frac{१}{८} + \frac{१}{२} = \frac{५}{८} \right]$$

इस अपने-अपने द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देनेपर अपने अपने अपकर्षण किये द्रव्य का प्रमाण आता है । इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र द्रव्य पूर्व-अपूर्वस्पर्धकों में देना है । उसको जुदा रखकर अवशेष बहुभागों में क्रोध में जो नोकषायों का द्रव्य मिला उसको जुदा करके जो अपना-अपना द्रव्य रहा, उसको जुदा-जुदा पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर, वहां बहुभागों के समानरूप तीन पुंज करना । अवशेष एकभाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर, वहां बहुभाग प्रथम पुंज में जोड़ना । उसके

अवशेष एकभाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर, वहां बहुभाग द्वितीय पुंज में जोड़ना, अवशेष एक भाग तृतीय पुंज में जोड़ना ।

इसतरह साधिक त्रिभाग मात्र प्रथम पुंज हुआ, वह अपनी-अपनी प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य है । किंचित् कम त्रिभाग मात्र द्वितीय पुंज, वह अपनी-अपनी द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य है । किंचित् कम त्रिभाग मात्र तृतीय पुंज, वह अपनी-अपनी तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य है । नोकषाय संबंधी सर्व द्रव्य को क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि में मिलाना । इसप्रकार कृष्टि संबंधी सर्वद्रव्य को चौबीस का भाग देनेपर क्रोध की तृतीय कृष्टि का तेरह भाग मात्र और अन्य ग्यारह कृष्टियों का एक-एक भाग मात्र द्रव्य होता है ।

[***विशेषार्थ*** *: कषाय और नोकषायों में स्थूलरूप से आधा-आधा द्रव्य दिया था । नोकषाय का द्रव्य* $\frac{१}{२}$*, कषाय का द्रव्य* $\frac{१}{२}$ *। कषाय का द्रव्य चार कषायों में विभाजित करनेपर प्रत्येक का द्रव्य* $\frac{१}{२} \div ४ = \frac{१}{२} \times \frac{१}{४} = \frac{१}{८}$ *। हर एक की तीन-तीन संग्रहकृष्टि करने से* $\frac{१}{८} \div ३ = \frac{१}{८} \times \frac{१}{३} = \frac{१}{२४}$ *प्रत्येक संग्रहकृष्टि का द्रव्य आता है । क्रोध के तृतीय संग्रहकृष्टि के* $\frac{१}{२४}$ *में नोकषाय का* $\frac{१}{२}$ *द्रव्य मिलानेपर* $\frac{१}{२४} + \frac{१}{२} = \frac{१}{२४} + \frac{१२}{२४} = \frac{१३}{२४}$ *होता है । अन्य ग्यारह संग्रहकृष्टियों में प्रत्येक में* $\frac{१}{२४}$ *रहता है ।*]

यहां लोभ की कृष्टि में साधिकपना, अन्यत्र किंचित् न्यूनपना यथासंभव जानना । इसतरह द्रव्य का विभाग किया ।

पुनश्च इसी प्रकार अब कृष्टि के प्रमाण का विभाग करते हैं –

एक स्पर्धक की वर्गणाशलाका के अनंतवें भाग मात्र सर्व कृष्टियों का प्रमाण है । उसको आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग के समान दो भाग करके अवशेष एकभाग को प्रथम समान भाग में मिलानेपर साधिक

आधा तो कषायों के द्रव्य द्वारा किये हुये कृष्टियों का प्रमाण होता है तथा द्वितीय समान भाग मात्र किंचित् कम आधा नोकषायों के द्रव्य द्वारा किये हुये कृष्टियों का प्रमाण होता है ।

पुनश्च कषाय संबंधी कृष्टियों के प्रमाण को आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एकभाग जुदा रखकर बहुभागों के समानरूप चार भाग करना । पुनश्च अवशेष एकभाग को आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग प्रथम समान भाग में मिलानेपर साधिक चौथा भाग मात्र लोभ की कृष्टियों का प्रमाण होता है । अवशेष एकभाग को आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग द्वितीय समान भाग में मिलानेपर किंचित् कम चौथा भाग मात्र माया की कृष्टियों का प्रमाण होता है । अवशेष एकभाग को आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग तृतीय समान भाग में मिलानेपर किंचित् कम चौथा भाग मात्र क्रोध की कृष्टियों का प्रमाण होता है । अवशेष एकभाग चतुर्थ समान भाग में मिलानेपर किंचित् कम चौथा भाग मात्र मान की कृष्टियों का प्रमाण होता है ।

[*ऐसा ही विभाजन गाथा ४६८ की टीका में देखा था – लोभ, माया, क्रोध और बाद में मान – इस क्रम से वहां भी था ।*]

पुनश्च नोकषाय संबंधी कृष्टियों का प्रमाण क्रोध की कृष्टियों के प्रमाण में जोड़ना । इसतरह सर्व कृष्टियों के प्रमाण को आठ का भाग देकर वहां एक-एक भाग मात्र लोभ, माया, मान की और पांच भाग मात्र क्रोध की कृष्टियों का प्रमाण होता है । वहां लोभ की कृष्टियों के प्रमाण में साधिकपना और अन्य के प्रमाण में किंचित् न्यूनपना यथासंभव जानना ।

पुनश्च क्रोध की कृष्टियों में से नोकषाय संबंधी कृष्टि जुदी करके अवशेष अपनी-अपनी कृष्टियों का जो प्रमाण, उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर, वहां बहुभाग के समान तीन भाग करना । अवशेष एकभाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग प्रथम समान भाग में मिलानेपर अपना-अपना प्रथम संग्रहकृष्टियों का आयाम साधिक होता है । अवशेष एक भाग को

पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग द्वितीय समान भाग में मिलानेपर अपनी-अपनी द्वितीय संग्रहकृष्टि का आयाम किंचित् कम होता है । एकभाग तृतीय समान भाग में मिलानेपर अपनी-अपनी तृतीय संग्रहकृष्टि का आयाम किंचित् कम होता है । नोकषाय संबंधी कृष्टियों के प्रमाण को क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि के आयाम में जोड़ना ।

इसतरह सर्व कृष्टियों के प्रमाण को चौबीस का भाग देकर वहां क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि का आयाम तेरह भाग मात्र और अन्य ग्यारह संग्रहकृष्टियों का आयाम एक-एक भाग मात्र होता है । वहां लोभ की संग्रहकृष्टियों में साधिकपना, अन्यत्र किंचित् न्यूनपना यथासंभव जानना । यहां संग्रहकृष्टि में जितना अंतरकृष्टियों का प्रमाण है उसका नाम संग्रहकृष्टि का आयाम है ।

पढमादिसंगहाओ पल्लासंखेज्जभागहीणाओ ।
कोहस्स तदीयाए अकसायाणं तु किट्टीओ ।।४९६।।

प्रथमादिसंग्रहाः पल्यासंख्येयभागहीनाः ।
क्रोधस्य तृतीयायामकषायानां तु कृष्टयः ।।४९६।।

टीका – पूर्वोक्त प्रकार से प्रथमादि बारह संग्रहकृष्टियों का आयाम पल्य के असंख्यातवें भाग के क्रम से घटता जानना । नोकषाय संबंधी सर्वकृष्टि क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि में प्राप्त जानना ।

कोहस्स य माणस्स य मायालोभोदएण चडिदस्स ।
बारस णव छत्तिण्णि य संगहकिट्टी कमे होंति ।।४९७।।

क्रोधस्य च मानस्य च मायालोभोदयेन चटितस्य ।
द्वादश नव षट् त्रीणि च संग्रहकृष्टयः क्रमेण भवंति ।।४९७।।

टीका – संज्वलन क्रोध के उदय सहित जो जीव श्रेणी चढ़ता है उसके तो चारों कषायों की बारह संग्रहकृष्टि होती हैं । मान के उदय सहित श्रेणी चढ़ता है उसके क्रोध का पहले ही संक्रमण द्वारा क्षय होता है, इसलिए अवशेष तीन

कषायों की नौ संग्रहकृष्टि होती हैं । माया के उदय सहित जो श्रेणी चढ़ता है, उसका क्रोध, मान का पहले ही संक्रमण द्वारा क्षय होता है, इसलिए दो कषायों की छह संग्रहकृष्टि होती हैं । लोभ के उदय सहित जो श्रेणी चढ़ता है, उसका क्रोध, मान, माया का पहले ही संक्रमण द्वारा क्षय होता है, इसलिए एक लोभ ही की तीन संग्रहकृष्टि होती हैं । वहां जितनी संग्रहकृष्टि होती हैं, उन्हीं में कृष्टि प्रमाण का विभाग यथासंभव जानना ।

संगहगे एक्केक्के अंतरकिट्टी हवदि हु अणंता ।
लोभादि अणंतगुणा कोहादि अणंतगुणहीणा ।।४९८।।

संग्रहके एकैकस्मिन् अंतरकृष्टि: भवति हि अनंता ।
लोभादौ अनंतगुणा क्रोधादौ अनंतगुणहीना ।।४९८।।

टीका – एक-एक संग्रहकृष्टि में अंतरकृष्टि अनंत पायी जाती हैं, क्योंकि अनंत कृष्टियों के समूह का ही नाम संग्रहकृष्टि है । वहां कृष्टियों में लोभ से लेकर क्रम से अनंतगुणा बढ़ता और क्रोध से अनंतगुणा घटता अनुभाग पाया जाता है । वही कहते हैं –

लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में जो जघन्य कृष्टि है वह अल्प है सर्व से मंद अनुभाग सहित है । उससे उसकी दूसरी कृष्टि अनंतगुणी है । अभव्यराशि से अनंतगुणा और सिद्धराशि के अनंतवें भाग मात्र अनंत प्रमाणवाला जो गुणकार, उससे जघन्य कृष्टि के अनुभाग को गुणा करनेपर द्वितीय कृष्टि का अनुभाग होता है, ऐसे ही आगे भी जानना । दूसरी कृष्टि से तीसरी कृष्टि अनंतगुणी है । इसीतरह प्रथम संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि तक अनुक्रम जानना ।

उस प्रथम संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि से द्वितीय संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि अनंतगुणी है, यहां गुणकार का प्रमाण अन्य प्रकार का है, क्योंकि यहां परस्थान गुणकार हुआ; वह सर्व स्वस्थान गुणकारों से अनंतगुणा है । इसतरह गुणकार के भेद से ही संग्रहकृष्टियों का भेद हुआ है । कृष्टियों के अनुभाग में गुणकार का प्रमाण जब तक एक प्रकार से बढ़ता है तब तक वही संग्रहकृष्टि कही । परंतु जहां नीचे

की कृष्टि से ऊपर की कृष्टि का गुणकार अन्य प्रकार से हुआ, वहां से अन्य संग्रहकृष्टि कही है । इस कथन को आगे व्यक्त करके दिखायेंगे ।

द्वितीय संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि से उसकी द्वितीय कृष्टि अनंतगुणी है । इसतरह उसकी अंत कृष्टि तक क्रम जानना ।

पुनश्च द्वितीय संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि से तृतीय संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि अनंतगुणी है । यहां परस्थान गुणकार जानना । उससे उसकी द्वितीयादि अंत तक की कृष्टि क्रम से अनंतगुणी हैं । ऐसी लोभ की तीन संग्रहकृष्टि हुयी ।

पुनश्च लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि से माया की प्रथम संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि अनंतगुणी है । यहां भी लोभवत् क्रम जानना । माया की तृतीय संग्रहकृष्टि के अंत कृष्टि से मान की प्रथम संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि अनंतगुणी है । पुनश्च पूर्वोक्त प्रकार से क्रम जानना । मान की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि से क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि अनंतगुणी है । यहां भी पूर्वोक्त प्रकार से क्रम जानना ।

क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि से अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा अनंतगुणी है, क्योंकि कृष्टि के अनुभाग से स्पर्धक का अनुभाग अनंतगुणापने सहित है । यहां गुणकार अनुभाग अपेक्षा ही जानना ।

अब इस कथन को स्पष्ट करने के लिये सूत्र कहते हैं –

लोभादी कोहो त्ति य सट्ठाणंतरमणंतगुणिदकमं ।
तत्तो बादरसंगहकिट्टी अंतरमणंतगुणिदकमं ।।४९९।।

लोभादितः क्रोधांतं च स्वस्थानांतरमनंतगुणितक्रमं ।
ततो बादरसंग्रहकृष्टेरंतरमनंतगुणितक्रमं ।।४९९।।

टीका – लोभ से लेकर क्रोध तक स्वस्थान अंतर है, वह अनंतगुणा क्रम सहित है । उस स्वस्थान अंतर से बादर संग्रहकृष्टियों का अंतर अनंतगुणा क्रम सहित है । वही कहते हैं –

बादर संग्रहकृष्टि है वहां एक-एक संग्रहकृष्टि में अंतरकृष्टि सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र हैं । उनके अंतराल एक कम कृष्टिप्रमाण हैं, क्योंकि दो कृष्टियों के बीच अंतराल एक होता है, तीन के बीच दो होते हैं, इसतरह विवक्षित प्रमाण में अंतराल एक कम उस प्रमाण मात्र होते हैं । यहां अंतर की उत्पत्ति को कारणभूत गुणकार को अंतर कहते हैं, क्योंकि कारण में कार्य का उपचार होता है । यहां कृष्टियों में गुणकार का ही नाम अंतर हुआ, इसलिए उनका नाम कृष्ट्यंतर है । नीचे की संग्रहकृष्टि और ऊपर की संग्रहकृष्टि इनमें ग्यारह अंतर होते हैं, क्योंकि बारह संग्रहकृष्टियों में एक कम अंतरों का प्रमाण होता है, इनका नाम संग्रहकृष्ट्यंतर है ।

भावार्थ – जितने अंतराल हो, उतनी बार गुणकार होता है । वहां स्वस्थान गुणकारों का नाम कृष्ट्यंतर है । परस्थान गुणकारों का नाम संग्रहकृष्ट्यंतर है । एक ही संग्रहकृष्टि में नीचे की अंतरकृष्टि से ऊपर की अंतरकृष्टि में जो गुणकार हो, उसको तो स्वस्थान गुणकार कहते हैं । वहां नीचे की संग्रहकृष्टि के अंत की अंतरकृष्टि से अन्य *(ऊपर की)* संग्रहकृष्टि की आदि *(प्रथम)* अंतरकृष्टि में जो गुणकार हो उसको परस्थान गुणकार कहते हैं । इसतरह संज्ञा कहकर कृष्ट्यंतर और संग्रहकृष्ट्यंतर का अल्पबहुत्व कहा है । वहां निस्संदेह होने के लिये अंकसंदृष्टि द्वारा भी कथन करते हैं –

वहां अनंत की संदृष्टि दो और एक संग्रहकृष्टि में अंतरकृष्टि के प्रमाण की संदृष्टि चार जानना । वहां पहले लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि स्थापित करके उसको जिस अनंत गुणकार से गुणित करनेपर उसकी द्वितीय कृष्टि होती है उस गुणकार का नाम जघन्य कृष्ट्यंतर है, उसकी संदृष्टि दो का अंक है । द्वितीय कृष्टि को जिस गुणकार से गुणित करनेपर तृतीय कृष्टि होती है उस गुणकार का नाम द्वितीय कृष्ट्यंतर है । यह जघन्य कृष्ट्यंतर से अनंतगुणा है, उसकी संदृष्टि चार का अंक है । इसी क्रम से तृतीयादि कृष्ट्यंतर क्रम से अनंतगुणा होकर, जिस गुणकार से द्विचरम कृष्टि को गुणित करनेपर अंत कृष्टि होती है, वह गुणकार द्विचरम गुणकार से अनंतगुणा है, उसकी संदृष्टि आठ का अंक है ।

इस प्रथम संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि को जिस गुणकार से गुणित करनेपर

द्वितीय संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि होती है, वह परस्थान गुणकार है, इसलिए इसको छोड़कर द्वितीय संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि को जिस गुणकार से गुणित करनेपर उसकी द्वितीय कृष्टि होती है, वह प्रथम गुणकार पूर्वोक्त अंत के स्वस्थान गुणकार से अनंतगुणा है, उसकी संदृष्टि सोलह का अंक । इसीतरह बीच-बीच में परस्थान गुणकार को छोड़कर एक-एक कृष्टि प्रति गुणकार का प्रमाण अनंतगुणा जानना । कृष्टियों का जितना प्रमाण हो, उनमें एक कम तो अंतराल पाये जाते हैं और वहां ग्यारह परस्थान गुणकार हैं और एक जघन्य गुणकार है । ऐसे तेरह घटानेपर अवशेष जितना प्रमाण, उतनी बार जघन्य गुणकार को अनंत से गुणित करनेपर जो गुणकार आया उससे क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की द्विचरम कृष्टि को गुणा करनेपर उसकी अंत कृष्टि होती है ।

अंकसंदृष्टि से अड़तालीस कृष्टियों में से तेरह घटानेपर पैंतीस रहे । सो पैंतीस बार दो को दो से गुणा करनेपर सोलह गुणा बादाल प्रमाण होता है । यहां से स्वस्थान गुणकार छोड़कर फिरसे लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि को जिस गुणकार से गुणित करनेपर द्वितीय संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि होती है वह परस्थान गुणकार पूर्वोक्त अंत के स्वस्थान गुणकार से अनंतगुणा है, उसकी संदृष्टि बत्तीसगुणा बादाल है ।

पुनश्च लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि को जिस गुणकार से गुणित करनेपर लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि होती है, वह द्वितीय परस्थान गुणकार प्रथम परस्थान गुणकार से अनंतगुणा है । लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि को जिस गुणकार से गुणित करनेपर माया की प्रथम संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि होती है, वह तीसरा परस्थान गुणकार द्वितीय परस्थान गुणकार से अनंतगुणा है । इसीप्रकार ग्यारह परस्थान गुणकारों को क्रम से अनंत से गुणित करनेपर क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि को जिस गुणकार से गुणित करनेपर क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि होती है उस गुणकार का प्रमाण आता है ।

यह गुणकारों का यंत्र है । वहां पण्णट्ठी की संदृष्टि ऐसी ६५ = बादाल की ऐसी ४२ = । इनके आगे जितने का अंक है, उतने का इनको गुणकार जानना ।

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध
तृतीय संग्रहकृष्टि में स्वस्थान गुणकार	५१२ २५६ १२८	६५ =| ४ ६५ =| २ ६५ =| १	६५ =| २०४८ ६५ =| १०२४ ६५ =| ५१२	४२ =| १६ ४२ =| ८ ४२ =| ४
परस्थान गुणकार	४२ =| ६४	४२ =| ५१२	४२ =| ४०९६	४२ =|३२७६८
द्वितीय संग्रहकृष्टि में स्वस्थान गुणकार	६४ ३२ १६	३२७६८ १६३८४ ८१९२	६५ =| २५६ ६५ =| १२८ ६५ =| ६४	४२ =| २ ४२ =| १ ६५ =|३२७६८
परस्थान गुणकार	४२ =| ३२	४२ =|२५६	४२ =| २०४८	४२ =| १६३८४
प्रथम संग्रहकृष्टि में स्वस्थान गुणकार	८ ४ २ जघन्य	४०९६ २०४८ १०२४	६५ =|३२ ६५ =|१६ ६५ =|८	६५ =|१६३८४ ६५ =|८१९२ ६५ =| ४०९६
परस्थान गुणकार	-	४२ =|१२८	४२ =| १०२४	४२ =| ८१९२
लोभ के अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा का गुणकार ४२ =| ६५ =				

अंकसंदृष्टि से ग्यारह परस्थानों को दोगुणा-दोगुणा करनेपर जैसे बत्तीस हजार सात सौ अड़सठ गुणा बादाल [३२७६८ × ४२९४९६७२९६] प्रमाण होता है । इससे जिस गुणकार से क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि को गुणित करनेपर लोभ के अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अनुभाग का अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण आता है, उस परस्थान गुणकार का प्रमाण अनंतगुणा जानना । उसकी संदृष्टि पण्णट्ठी गुणा बादाल है । इसतरह गुणकारों का प्रमाण कहा ।

यहां ऐसा अर्थ जानना – अंकसंदृष्टि से जैसे लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि में जो अनुभाग पाया जाता है, उससे दोगुणा द्वितीय कृष्टि में, उससे चौगुणा तृतीय कृष्टि में, उससे आठगुणा अंत कृष्टि में है । उससे बत्तीस गुणित बादाल गुणा लोभ के द्वितीय संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि में अनुभाग है । यहां से

पहले अन्य प्रकार का गुणकार था इसलिए वहां तक प्रथम संग्रहकृष्टि कही, यहां अन्य प्रकार का गुणकार हुआ इसलिए यहां से लेकर द्वितीय संग्रहकृष्टि कही । ऐसे ही अंत तक विधान जानना ।

इसीतरह यथार्थ कथन जानना । दो की जगह अनंत जानना तथा संग्रहकृष्टि में चार अंतरकृष्टि कही हैं वहां अनंती जानना ।

इसतरह अनुभाग के अविभागप्रतिच्छेदों की अपेक्षा कृष्टियों का कथन जानना ।

लोहस्स अवरकिट्टीगदव्वादो कोधजेट्ठकिट्टिस्स ।
दव्वोत्ति य हीणकमं देदि अणंतेण भागेण ।।५००।।

लोभस्य अवरकृष्टिगद्रव्यात् क्रोधज्येष्ठकृष्टेः ।
द्रव्यांतं च हीनक्रमं दीयते अनंतेन भागेन ।।५००।।

टीका – लोभ की जघन्य कृष्टि के द्रव्य से लेकर क्रोध की उत्कृष्ट कृष्टि के द्रव्य तक हीन क्रम सहित द्रव्य देता है । वही कहते हैं –

कृष्टि में देने योग्य अपकर्षण किये द्रव्य में जो द्रव्य है, वह सर्वधन है । इसको कृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ का भाग देनेपर मध्य कृष्टि में जितना द्रव्य दिया, उसका प्रमाण मात्र मध्यधन होता है । इसको एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर एक विशेष *(चय)* का प्रमाण आता है । इसको दोगुणहानि से गुणित करनेपर जो प्रमाण आये, उतना द्रव्य तो लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि में देता है । इसके आगे द्वितीयादि कृष्टि से लेकर सर्व संग्रहकृष्टियों की अंतरकृष्टि उल्लंघकर क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि तक एक-एक विशेष घटते क्रम से द्रव्य देता है । यहां पूर्व-पूर्व कृष्टि से उत्तर-उत्तर कृष्टि में द्रव्य दिया, वही दृश्यमान है । वह अनंतभाग घटते क्रम सहित है । पूर्वकृष्टि को अनंत का भाग देकर वहां एकभाग मात्र घटता उत्तरकृष्टि का द्रव्य प्रमाण होता है ।

लोभस्स अवरकिट्टिगदव्वादो कोधजेट्ठकिट्टिस्स ।
दव्वं तु होदि हीणं असंखभागेण जोगेण ।।५०१।।

लोभस्यावरकृष्टिगद्रव्यतः क्रोधज्येष्ठकृष्टेः ।
द्रव्यं तु भवति हीनं असंख्यभागेन योगेन ।।५०१।।

टीका – लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि का द्रव्य अर्थात् प्रदेशसमूह, उससे क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि का द्रव्य एक कम कृष्टि प्रमाण मात्र विशेषों से *(चयों से)* हीन हुआ, वह अनंतवां भाग मात्र हीन हुआ जानना । चूंकि सर्व कृष्टियों का प्रमाण एक स्पर्धक की वर्गणा के अनंतवें भाग मात्र है, इसलिए एक कम इतने चय घटने से लोभ की जघन्य कृष्टि के द्रव्य के अनंतवें भाग मात्र ही द्रव्य हीन हुआ । पूर्व-अपूर्वस्पर्धकों में जो देने योग्य द्रव्य कहा था, उसको साधिक डेढ़ गुणहानि का भाग देनेपर अपूर्वस्पर्धक की आदि वर्गणा में दिये द्रव्य का प्रमाण आता है । यह क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि में दिये द्रव्य के असंख्यातवें भाग मात्र है । उससे उनकी द्वितीय वर्गणा से लेकर पूर्वस्पर्धकों की अंत वर्गणा तक की वर्गणाओं में विशेष घटते क्रम से द्रव्य देता है ।

इसतरह कृष्टिकारक के प्रथम समय का निरूपण जानना ।

पडिसमयमसंखगुणं कमेण उक्कट्टिदूण दव्वं खु ।
संगहहेट्ठापासे अपुव्वकिट्टी करेदी हु ।।५०२।।

प्रथमसमयमसंख्यगुणं क्रमेणापकृष्य द्रव्यं खलु ।
संग्रहाधस्तनपार्श्वे अपूर्वकृष्टिं करोति हि ।।५०२।।

टीका – प्रथम समय से द्वितीयादि समयों में असंख्यातगुणा क्रम सहित द्रव्य को अपकर्षण करके संग्रहकृष्टि के नीचे और पार्श्व में अपूर्वकृष्टि को करता है । पूर्व समय में जो कृष्टि की थी, उनमें बारह-बारह संग्रहकृष्टियों की जो जघन्य कृष्टि, उनसे अनंतगुणा घटता अनुभागवाली नीचे कितनी ही नवीन कृष्टि अपूर्वशक्ति युक्त करता है । इसीलिए इनका नाम अधःस्तनकृष्टि जानना । पुनश्च पूर्व समयों में जो कृष्टि की थी उन्हीं के समान शक्ति युक्त उनके पास कितनी ही कृष्टि करता है ।

भावार्थ – पूर्व समयों में की हुयी कृष्टियों में जो नवीन द्रव्य का निक्षेपण करते हैं, उसे पार्श्व में की हुयी कृष्टि कहते हैं ।

हेट्ठा असंखभागं फासे वित्थारदो असंखगुणं ।
मज्झिमखंडं उभयं दव्वविसेसे हवे फासे ।।५०३।।

अधस्तनमसंख्यभागं पार्श्वे विस्तारतोऽसंख्यगुणं ।
मध्यमखंडमुभयं द्रव्यविशेषे भवेत् पार्श्वे ।।५०३।।

टीका – संग्रहकृष्टियों के नीचे की हुयी कृष्टियों का प्रमाण तो सर्व कृष्टियों के प्रमाण के असंख्यातवें भाग मात्र है । पार्श्व में की हुयी कृष्टियों का प्रमाण उनसे असंख्यातगुणा है । वहां पार्श्व में की हुयी कृष्टियों में मध्यमखंड और उभयद्रव्यविशेष होता है । अल्प जानकर नहीं कहा तथापि वहां अध:स्तनशीर्षविशेष का भी होना जानना । कैसे ? वह कहते हैं –

द्वितीयादि समयों में प्रतिसमय असंख्यातगुणा द्रव्य को पूर्व-अपूर्वस्पर्धक संबंधी द्रव्य से अपकर्षित करके वहां पूर्व-अपूर्वस्पर्धकों में देने योग्य द्रव्य को जुदा करनेपर कृष्टि संबंधी द्रव्य होता है । उसमें अध:स्तनशीर्ष, अध:स्तनकृष्टि, मध्यमखंड और उभयद्रव्यविशेष ऐसे चार विभाग करना । अध:स्तनशीर्षादि का स्वरूप उपशमचारित्र में सूक्ष्मकृष्टि का वर्णन करने के पहले विशेष करके कहा है, वह जानना । यहां भी कुछ कहते हैं –

वहां पूर्व समय में की हुयी कृष्टियों में प्रथम कृष्टि से लेकर विशेष *(चय)* घटता क्रम है, वहां सर्व पूर्वकृष्टियों को आदि कृष्टि के समान करने के लिये घटे हुये विशेषों के द्रव्य प्रमाण द्रव्य वहां देते हैं, उसका नाम अध:स्तनशीर्षविशेष द्रव्य है ।

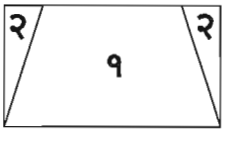

[***विशेषार्थ*** *: यहां इन आकृतियों द्वारा क्रमांक लिखकर समझना आसान होगा इसलिए उन्हें मैंने लिख दिया है, जो मूल प्रति में नहीं है ।*]

पुनश्च पहले नहीं थी ऐसी की हुयी नवीन कृष्टि को पूर्वकृष्टि की आदि कृष्टि के समान करने के लिये जो द्रव्य दिया उसका नाम अध:स्तनकृष्टि द्रव्य है ।

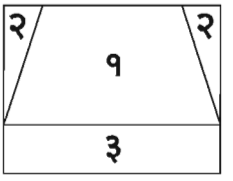

(१) पूर्वकृष्टि

(२) अध:स्तनशीर्षविशेष द्रव्य

(३) अध:स्तनकृष्टि द्रव्य

पुनश्च इन सर्व पूर्व-अपूर्व कृष्टियों में आदि कृष्टि से लेकर अंत कृष्टि तक विशेष घटता क्रम करने के लिये जो द्रव्य दिया उसका नाम उभयद्रव्यविशेष द्रव्य है ।

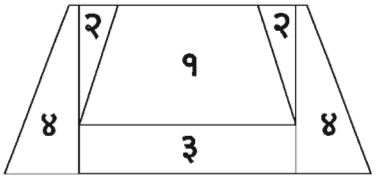

(४) उभयद्रव्यविशेष द्रव्य

(५) मध्यमखंड द्रव्य

इन तीनों को जुदा करनेपर अवशेष जो द्रव्य रहा उसको सर्व कृष्टियों में समानरूप देते हैं, उसका नाम मध्यमखंड द्रव्य है ।

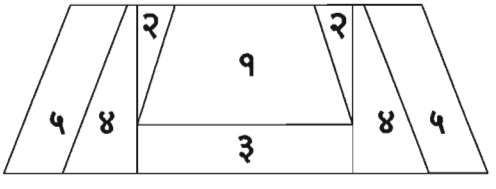

इसतरह संग्रहकृष्टि के पार्श्ववर्ती कृष्टियों में तो अध:स्तनशीर्षविशेष, मध्यमखंड और उभयद्रव्यविशेष रूप तीन प्रकार का द्रव्य दिया जाता है । और संग्रहकृष्टियों के नीचे जो नवीन कृष्टि की जाती हैं, उनमें अध:स्तनकृष्टि, मध्यमखंड और उभयद्रव्यविशेष रूप तीन प्रकार का द्रव्य दिया जाता है । अब इसका विशेष दिखाते हैं अर्थात् वहां द्वितीय समय में द्रव्य कैसे देते हैं उसका वर्णन करते हैं –

क्रोध, मान, माया, लोभ के पूर्व-अपूर्वस्पर्धक संबंधी द्रव्य में से पहले समय में अपकर्षण किये द्रव्य से असंख्यातगुणा द्रव्य *(दूसरे समय में)* अपकर्षण करता है । वहां सर्वद्रव्य को आठ का भाग देकर एक-एक भाग मात्र लोभ, माया, मान का और पांच भाग मात्र क्रोध का द्रव्य पूर्वोक्त प्रकार से यथासंभव साधिक और किंचित् न्यून जानना । इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र द्रव्य पूर्व-अपूर्वस्पर्धकों में देना । उसको जुदा रखकर अवशेष *(बहुभाग)* द्रव्य का प्रथम समयवत् बारह संग्रहकृष्टियों में विभाग करनेपर सर्वद्रव्य को चौबीस

का भाग देकर वहां ग्यारह संग्रहकृष्टियों का एक-एक भाग मात्र और क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि का तेरह भाग मात्र द्रव्य होता है । यहां साधिकपना और न्यूनपना यथासंभव जान लेना ।

अब द्वितीय समय में अपकर्षण किये द्रव्य में से एक-एक संग्रहकृष्टि का जो द्रव्य कहा, उसमें अधःस्तनशीर्षादि चार प्रकार के द्रव्य का प्रमाण लाते हैं – वहां प्रथम समय में अंत कृष्टि से लेकर कृष्टि-कृष्टि प्रति जितना द्रव्य बढ़ा, वह एक विशेष है । उसका प्रमाण पहले कहा था, सो आदि में जो विशेष का प्रमाण वह आदि और एक-एक विशेष कृष्टि-कृष्टि प्रति बढ़ा इसलिए एक विशेष उत्तर और प्रथम समय में की हुयी कृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ; इसतरह आदि, उत्तर, गच्छ स्थापित करके श्रेणी व्यवहार नामक गणित के अनुसार –

रूपेणोनो गच्छो दलीकृतः प्रचयताडितो मिश्रः ।
प्रभवेण पदाभ्यस्तः संकलितं भवति सर्वेषां ।।१।।

इस सूत्र के अनुसार एक कम गच्छ के आधे को विशेष से गुणा करके उसको आदि में जोड़कर गच्छ से गुणा करनेपर सबका संकलितधन अर्थात् जोड़ा हुआ प्रमाण होता है । उसका जो-जो प्रमाण होता है, उतना-उतना अधःस्तनशीर्ष *(विशेष)* द्रव्य होता है । वही कहते हैं –

एक विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और प्रथम कृष्टि में विशेष मिलाया नहीं है इसलिए एक कम लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में प्रथम समय में की हुयी अंतरकृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके वहां संकलनधन मात्र लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि का जो द्वितीय समय में अपकर्षित किये द्रव्य में से द्रव्य *(विभाग)* कहा था, उस द्रव्य को द्वितीय समय में अपकर्षित किया । उसमें जो कृष्टियों में देने योग्य द्रव्य कहा था, उसमें से अधःस्तनशीर्ष *(विशेष)* द्रव्य होता है ।

इसीतरह लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि की अंतरकृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष तो आदि और एक विशेष उत्तर और द्वितीय संग्रहकृष्टि की अंतरकृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके वहां संकलनधन मात्र लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि के द्रव्य में अधःस्तनशीर्ष *(विशेष)* द्रव्य होता है ।

पुनश्च लोभ की प्रथम और द्वितीय संग्रहकृष्टियों में जो अंतरकृष्टियों का प्रमाण है उतने विशेष तो आदि और एक विशेष उत्तर तथा लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंतरकृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके वहां संकलनधन मात्र लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि के द्रव्य में अधःस्तनशीर्ष *(विशेष)* द्रव्य होता है ।

पुनश्च लोभ की प्रथम, द्वितीय, तृतीय संग्रहकृष्टियों की अंतरकृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष तो आदि और एक विशेष उत्तर और माया की प्रथम संग्रहकृष्टि की अंतरकृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके वहां संकलनधन मात्र माया की प्रथम संग्रहकृष्टि के द्रव्य में अधःस्तनशीर्ष *(विशेष)* द्रव्य होता है । इसीतरह अवशेष आठ संग्रहकृष्टियों में अपने-अपने नीचे की संग्रहकृष्टियों के अंतरकृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष तो आदि और एक विशेष उत्तर और अपनी-अपनी अंतरकृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके, वहां संकलनधन मात्र अपने-अपने संग्रहकृष्टि के द्रव्य में अधःस्तनशीर्ष *(विशेष)* द्रव्य होता है । इन सबको जोड़नेपर एक विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और एक कम प्रथम समय में की हुयी सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके जो संकलनधन होगा उतना सर्व अधःस्तनशीर्षविशेष द्रव्य जानना ।

प्रथम समय में लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि में जो द्रव्य का प्रमाण कहा था, उस प्रमाण एक-एक कृष्टि का द्रव्य स्थापित करके उसको अपनी-अपनी संग्रहकृष्टि में की हुयी नवीन कृष्टियों के प्रमाण से गुणित करनेपर अपनी अपनी संग्रहकृष्टि के द्रव्य में अधःस्तनकृष्टि के द्रव्य का प्रमाण होता है । सर्व कृष्टियों के द्रव्य से उसको गुणा करनेपर सर्व अधःस्तनकृष्टि द्रव्य होता है ।

पुनश्च प्रथम समय और द्वितीय समय संबंधी जो कृष्टियों में देने योग्य द्रव्य उसको जोड़नेपर सर्वधन होता है । इसको पुरातन और नवीन कृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ का भाग देनेपर मध्यधन होता है । उसको एक कम गच्छ के आधे प्रमाण से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर एक उभयद्रव्य का विशेष होता है । वहां एक विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की पुरातन, नवीन कृष्टिप्रमाण गच्छ स्थापित करके, वहां पूर्वोक्त सूत्र अनुसार संकलनधन मात्र क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि में जो द्वितीय समय में कृष्टियों में देने योग्य अपकर्षण द्रव्य कहा था, उसमें से उभयद्रव्यविशेष द्रव्य का प्रमाण होता है ।

पुनश्च एक अधिक क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि के पुरातन, नवीन कृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष तो आदि और एक विशेष उत्तर और क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि की पुरातन, नवीन कृष्टि प्रमाण गच्छ स्थापित करके वहां संकलनधन मात्र क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि में उभयद्रव्यविशेष द्रव्य होता है । पुनश्च एक अधिक क्रोध की तृतीय, द्वितीय संग्रह कृष्टियों के पुरातन, नवीन कृष्टि प्रमाण मात्र विशेष आदि और एक विशेष उत्तर और क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की पुरातन, नवीन कृष्टि मात्र गच्छ स्थापित करके, वहां संकलनधन मात्र क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में उभयद्रव्यविशेष द्रव्य होता है ।

पुनश्च एक अधिक क्रोध की तीनों संग्रहकृष्टियों की पुरातन, नवीन कृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष आदि और एक विशेष उत्तर और मान की तृतीय संग्रहकृष्टि की पुरातन, नवीन कृष्टि प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके, वहां संकलनधन मात्र मान की तृतीय संग्रहकृष्टि में उभयद्रव्यविशेष द्रव्य होता है । इसतरह एक अधिक अपनी ऊपर की संग्रहकृष्टियों की पुरातन, नवीन कृष्टि प्रमाण मात्र विशेष तो आदि और एक विशेष उत्तर और अपनी-अपनी संग्रहकृष्टि की पुरातन, नवीन कृष्टि प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके संकलनधन करनेपर अवशेष आठ संग्रहकृष्टियों में भी अपने-अपने उभयद्रव्यविशेष द्रव्य का प्रमाण आता है । इन सबको जोड़नेपर एक उभयद्रव्यविशेष आदि, एक उभयद्रव्यविशेष उत्तर और सब पुरातन, नवीन कृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके संकलनधन करनेपर सर्व उभयद्रव्यविशेष द्रव्य का प्रमाण आता है ।

पुनश्च द्वितीय समय में अपकर्षण किये द्रव्य में से जो कृष्टि संबंधी द्रव्य है, उसमें से पूर्वोक्त तीन प्रकार का द्रव्य घटानेपर जो अवशेष रहा, उसको सर्व पुरातन, नवीन कृष्टियों के प्रमाण का भाग देनेपर एक खंड का प्रमाण आता है, उसको अपनी-अपनी पुरातन, नवीन कृष्टियों के प्रमाण से गुणित करनेपर अपनी-अपनी संग्रहकृष्टि के द्रव्य में मध्यमखंड का प्रमाण आता है । उस एक खंड को सर्व पुरातन, नवीन कृष्टियों के प्रमाण से गुणित करनेपर सर्व मध्यमखंड का द्रव्य आता है । यहां प्रथम समय में की हुयी कृष्टियों को पुरातन कहते हैं, द्वितीय समय में कर रहे हैं उनको नवीन कहते हैं । इसतरह द्वितीय समय में अपकर्षण किये द्रव्य में जो कृष्टि संबंधी

द्रव्य, उसमें चार प्रकार कहे । अब इनके देने का विधान कहते हैं –

लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि के नीचे जो अपूर्व नवीन कृष्टि की है, उनकी जघन्य कृष्टि में बहुत द्रव्य देता है । वहां अध:स्तनशीर्ष *(विशेष)* का द्रव्य तो नहीं देता, अध:स्तनकृष्टि के द्रव्य में से एक कृष्टि का द्रव्य, मध्यमखंड के द्रव्य में से एक खंड का द्रव्य और उभयद्रव्यविशेष के द्रव्य में से सर्व नवीन, पुरातन कृष्टियों का जितना प्रमाण है, उतने विशेषों का द्रव्य ग्रहण करके वहां देता है । ऐसा यतिवृषभ आचार्य का तात्पर्य है ।

पुनश्च द्वितीयादि अंत तक जो नवीन कृष्टि, उनमें अध:स्तनकृष्टि द्रव्य में से एक कृष्टि का द्रव्य, मध्यमखंड द्रव्य में से एक खंड तो समानरूप से सर्वत्र देता है; तथा उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से एक-एक विशेष मात्र द्रव्य घटते क्रम से देता है । इसलिए कृष्टि-कृष्टि प्रति उभयद्रव्यविशेष द्रव्य का जो एक विशेष घटा, वह अनंतवें भाग मात्र घटा, इसलिए पूर्वकृष्टि से उत्तरकृष्टि में अनंतवें भाग मात्र घटता द्रव्य दिया कहते हैं । यहां प्रथम संग्रहकृष्टि का अध:स्तनकृष्टि द्रव्य तो समाप्त हुआ । पुनश्च नवीन कृष्टि की अंत कृष्टि के ऊपर पुरातन कृष्टि की जघन्य कृष्टि है, उसमें मध्यमखंड द्रव्य में से एक खंड और उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से जितनी कृष्टि नीचे नवीन हुयी उनके प्रमाण से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेषों का द्रव्य देता है । सो यहां नवीन कृष्टि की अंत कृष्टि में दिये द्रव्य से एक अध:स्तनकृष्टि का द्रव्य और एक उभयद्रव्यविशेष द्रव्य का एक विशेष का द्रव्य कम दिया । सो उस नवीन अंत कृष्टि में दिये द्रव्य से एक अध:स्तनकृष्टि का द्रव्य तो असंख्यातवें भाग मात्र और एक उभयद्रव्य का विशेष अनंतवें भाग मात्र है; इसलिए उस नवीन अंत कृष्टि से असंख्यातवां भाग मात्र घटता द्रव्य पुरातन कृष्टि की जघन्य कृष्टि में दिया कहते हैं ।

यहां पुरातन जघन्य कृष्टि में प्रथम समय में दिया द्रव्य एक अध:स्तनकृष्टि के द्रव्य के समान है । उसको मिलानेपर एक गोपुच्छाकार हो जाता है, परंतु उसकी यहां विवक्षा नहीं है । यहां द्वितीय समय में दिये द्रव्य की ही विवक्षा है, इसलिए असंख्यातवां भाग घटता कहा । इसतरह आगे भी जहां नवीन अंत कृष्टि में दिये द्रव्य से पुरातन जघन्य कृष्टि में दिया द्रव्य असंख्यात बहुभाग मात्र घटता

है, वहां ऐसी ही युक्ति जानना ।

इसके ऊपर पुरातन कृष्टि की द्वितीय कृष्टि में अध:स्तनशीर्षविशेष के द्रव्य में से एक विशेष का द्रव्य, मध्यमखंड द्रव्य में से एक खंड का द्रव्य, उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से जितनी कृष्टि नीचे नवीन और एक पुरातन होते आयी उनके प्रमाण से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेषों का द्रव्य देता है । यहां पुरातन जघन्य कृष्टि में दिये द्रव्य से एक अध:स्तनशीर्षविशेष का द्रव्य बढ़ा और एक उभयद्रव्य का विशेष घटा । इसलिए उभयद्रव्य के विशेष में से प्रथम समय संबंधी विशेष मात्र अध:स्तनशीर्ष का विशेष घटानेपर जो अवशेष रहा, वह पुरातन प्रथम कृष्टि में दिये द्रव्य के अनंतवें भाग मात्र है । इसलिए उस पुरातन प्रथम कृष्टि में दिये द्रव्य से इस द्वितीय कृष्टि में दिया द्रव्य अनंतवें भाग मात्र घटता कहते हैं ।

पुनश्च पुरातन कृष्टि की तृतीयादि अंत तक की कृष्टियों में मध्यमखंड द्रव्य में से एक-एक खंड का द्रव्य तो समानरूप और अध:स्तनशीर्षविशेष द्रव्य में से एक-एक विशेष का द्रव्य क्रम से बढ़ता और उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से एक-एक विशेष का द्रव्य क्रम से घटता देता है । इसलिए अनंतवां भाग मात्र घटता द्रव्य दिया कहते हैं । इसतरह लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि संबंधी चार प्रकार का द्रव्य देने का विधान कहा ।

पुनश्च लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि के ऊपर लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि की नवीन कृष्टि की जघन्य कृष्टि है, उसमें लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि संबंधी चार प्रकार के द्रव्य में से अध:स्तनशीर्षविशेष द्रव्य तो नहीं देता, अध:स्तनकृष्टि द्रव्य में से एक कृष्टि का द्रव्य, मध्यमखंड द्रव्य में से एक खंड का द्रव्य और उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से नीचे होती आयी प्रथम संग्रहकृष्टि की जो नवीन, पुरातन कृष्टि, उनके प्रमाण से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेषों का द्रव्य देता है ।

सो यहां प्रथम संग्रहकृष्टि की पुरातन अंत कृष्टि में दिये द्रव्य से एक अध:स्तनशीर्षविशेष का द्रव्य और एक उभयद्रव्यविशेष का द्रव्य तो घटता दिया और एक अध:स्तनकृष्टि का द्रव्य बढ़ता दिया । इसलिए एक अध:स्तनकृष्टि के द्रव्य में से एक अध:स्तनशीर्ष का विशेष और एक उभयद्रव्यविशेष का द्रव्य

घटानेपर जो अवशेष रहा, वह प्रथम संग्रहकृष्टि की पुरातन अंत कृष्टि में दिये द्रव्य के असंख्यातवें भाग मात्र है; इसलिए उस पुरातन अंत कृष्टि में दिये द्रव्य के असंख्यातवें भाग मात्र बढ़ता कहते हैं । इसतरह यहां दीयमान द्रव्य की अपेक्षा गोपुच्छ का अभाव हुआ । इसीतरह आगे भी जहां पुरातन कृष्टि की अंत कृष्टि में दिये द्रव्य से नवीन कृष्टि की प्रथम कृष्टि में दिया द्रव्य असंख्यातवें भाग मात्र बढ़ता है, वहां ऐसी ही युक्ति जानना ।

इसके ऊपर नवीन कृष्टि की द्वितीयादि अंत तक की कृष्टियों में एक-एक उभयद्रव्यविशेष मात्र घटता द्रव्य देता है । वहां क्रम से अनंतवां भाग घटता दिया द्रव्य क्रम से जानना । यहां अध:स्तनकृष्टि द्रव्य समाप्त हुआ ।

द्वितीय संग्रहकृष्टि की उस नवीन अंत कृष्टि के ऊपर पुरातन जघन्य कृष्टि है, उसमें अध:स्तनशीर्ष का द्रव्य तो नीचे होते आयी जो प्रथम संग्रहकृष्टि संबंधी पुरातन कृष्टि उनके प्रमाण मात्र विशेषों का द्रव्य, मध्यमखंड द्रव्य में से एक खंड का द्रव्य और उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से नीचे होते आयी सर्व नवीन और पुरातन कृष्टियों के प्रमाण से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेषों का द्रव्य देता है । सो एक-एक अध:स्तनकृष्टि द्रव्य में से यहां अध:स्तनशीर्षविशेष का द्रव्य दिया, उसको घटाने पर अवशेष द्वितीय संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि के समान होता है, उभयद्रव्यविशेष द्रव्य का विशेष मिलानेपर जो द्रव्य हुआ वह नवीन अंत कृष्टि में दिये द्रव्य के असंख्यातवें भाग मात्र है, इसलिए नवीन अंत कृष्टि में दिये द्रव्य से यहां जघन्य पुरातन कृष्टि में दिया द्रव्य असंख्यातवें भाग मात्र घटता दिया कहते हैं ।

उसके ऊपर द्वितीयादि अंत तक की पुरातन कृष्टियों में क्रम से एक-एक अध:स्तनशीर्ष का विशेष बढ़ता और एक-एक उभयद्रव्य का विशेष घटता देता है । वहां अनंतवां भाग मात्र घटता अनुक्रम पूर्वोक्त प्रकार से है । इसतरह लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि का चार प्रकार से द्रव्य देने का विधान है ।

उसके ऊपर लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की नवीन, पुरातन कृष्टि हैं, उनमें द्रव्य देने का विधान लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि का चार प्रकार का द्रव्य स्थापित करके, द्वितीय संग्रहकृष्टिवत् जानना ।

विशेष इतना – पुरातन कृष्टियों में अध:स्तनशीर्षविशेष के द्रव्य में से जितनी नीचे पुरातन कृष्टि हुयी उनके प्रमाण मात्र विशेषों का द्रव्य देना तथा नवीन और पुरातन कृष्टियों में उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से जितनी नीचे नवीन, पुरातन कृष्टि हुयी उनके प्रमाण से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेषों का द्रव्य देना ।

यहां लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि का चार प्रकार का द्रव्य समाप्त हुआ ।

लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की पुरातन अंत कृष्टि के ऊपर माया की प्रथम संग्रहकृष्टि की नवीन जघन्य कृष्टि है, उसमें माया की प्रथम संग्रहकृष्टि के चार प्रकार के द्रव्य में से अध:स्तनशीर्षविशेष के द्रव्य बिना एक अध:स्तनकृष्टि का द्रव्य, एक मध्यमखंड का द्रव्य और लोभ की सर्व नवीन, पुरातन कृष्टियों के प्रमाण से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र उभयद्रव्य के विशेषों का द्रव्य देता है । सो एक अध:स्तनकृष्टि के द्रव्य में से लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि में जो अध:स्तनशीर्षविशेष का द्रव्य दिया, उसको घटानेपर अवशेष लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि का जो प्रथम समय में द्रव्य था, उसका प्रमाण होगा, उसमें से एक उभयद्रव्य का विशेष घटानेपर अवशेष द्रव्य लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि के असंख्यातवें भाग मात्र है; इसलिए लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि में दिये द्रव्य से यहां माया की जघन्य नवीन कृष्टि में दिया द्रव्य असंख्यातवां भाग मात्र बढ़ता जानना ।

उसके ऊपर द्वितीयादि अंत तक नवीन कृष्टियों में एक-एक उभयद्रव्य के विशेष प्रमाण अनंतवां भाग घटते क्रम से द्रव्य देता है । उसके ऊपर माया की प्रथम संग्रहकृष्टि की पुरातन जघन्य कृष्टि से लेकर क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की पुरातन अंत कृष्टि तक पूर्वोक्त प्रकार से द्रव्य देने का विधान जानना । वहां सर्व नवीन, पुरातन कृष्टियों में एक-एक मध्यमखंड के द्रव्य को देना और नीचे जितनी नवीन, पुरातन कृष्टि हुयी उनके प्रमाण से हीन सर्व नवीन, पुरातन कृष्टियों के प्रमाण मात्र उभयद्रव्य के विशेषों का द्रव्य देना और नवीन कृष्टियों में एक-एक अध:स्तनकृष्टि का द्रव्य देना और पुरातन कृष्टियों में जितनी नीचे पुरातन कृष्टि हुयी उनके प्रमाण मात्र अध:स्तनशीर्ष के विशेषों का द्रव्य देना । इसतरह द्वितीय समय में अपकर्षण किये द्रव्य में से जो कृष्टि संबंधी द्रव्य था, उसके निक्षेपण करने का विधान कहा ।

पुनश्च जो अपना-अपना पूर्व-अपूर्वस्पर्धक संबंधी द्रव्य था, उसको **'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा'** इत्यादि विधान से उस द्रव्य को साधिक डेढ़ गुणहानि का भाग देनेपर लब्ध प्रमाण मात्र अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में बहुत द्रव्य देता है । ऊपर प्रथम गुणहानि तक चय घटते क्रम से देता है । ऊपर गुणहानि-गुणहानि प्रति आधा-आधा द्रव्य देता है ।

इसप्रकार जैसे यह द्वितीय समय में वर्णन किया, वैसे ही कृष्टिकरण काल के तृतीयादि अंत तक के समयों में विधान जानना ।

विशेष इतना – समय-समय प्रति अपकर्षण किया द्रव्य का प्रमाण क्रम से असंख्यातगुणा बढ़ता जानना और नीचे-नीचे जो नवीन कृष्टि करता है उनका प्रमाण क्रम से असंख्यातगुणा घटता जानना ।

पुव्वादिम्हि अपुव्वा पुव्वादि अपुव्वपढमगे सेसे ।
दिज्जदि असंखभागेणूणं अहियं अणंतभागूणं ।।५०४।।

पूर्वादौ अपूर्वा पूर्वादौ अपूर्वप्रथमके शेषे ।
दीयते असंख्यभागेनोनमधिकं अनंतभागोनं ।।५०४।।

टीका – अपूर्व अर्थात् नवीन कृष्टि की अंत कृष्टि से पूर्व की जो पुरातन कृष्टि की आदि कृष्टि में तो असंख्यातवें भाग घटता द्रव्य देता है । तथा पूर्व जो पुरातन कृष्टि की अंत कृष्टि से अपूर्व जो नवीन कृष्टि, उसकी प्रथम कृष्टि में असंख्यातवें भाग मात्र अधिक द्रव्य देता है । अवशेष सर्व कृष्टियों में पूर्वकृष्टि से उत्तरकृष्टि में अनंतवां भाग मात्र घटता द्रव्य देता है । उसका कथन कर ही आये हैं ।

वारेक्कारमणंतं पुव्वादि अपुव्वआदि सेसं तु ।
तेवीस ऊंटकूडा दिज्जे दिस्से अणंतभागूणं ।।५०५।।

द्वादशैकादशमनंतं पूर्वादि अपूर्वादि शेषं तु ।
त्रयोविंशतिरुष्ट्रकूटा देये दृश्ये अनंतभागोनम् ।।५०५।।

टीका – वहां पुरातन प्रथम कृष्टि बारह और प्रथम संग्रहकृष्टि बिना नवीन

संग्रहकृष्टि ग्यारह और अवशेष कृष्टि अनंत जानना । इसतरह देय जो देनेयोग्य द्रव्य उसमें तेइस स्थानों में उष्ट्रकूट रचना होती है ।

जैसे ऊंट की पीठ पिछाडी में तो ऊंची और मध्य में नीची और आगे ऊंची और नीची होती है, वैसे यहां पहले नवीन जघन्य कृष्टि में बहुत, द्वितीयादि नवीन कृष्टियों में क्रम से घटता, आगे पुरातन कृष्टियों में अध:स्तनशीर्षविशेष से बढ़ता और अध:स्तनकृष्टि और उभयद्रव्य के विशेष से घटता द्रव्य देता है । इसलिए देयमान द्रव्य में तेइस उष्ट्रकूट रचना होती हैं ।

दृश्यमान द्रव्य में लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि की नवीन जघन्य कृष्टि से लेकर क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की पुरातन अंत कृष्टि तक अनंतवें भाग मात्र घटते क्रम सहित द्रव्य जानना; क्योंकि नवीन कृष्टियों में तो विवक्षित समय में दीयमान द्रव्य ही दृश्यमान द्रव्य है और पुरातन कृष्टियों में पूर्व समयों में दिये द्रव्य और विवक्षित समय में दिया द्रव्य मिलानेपर दृश्यमान द्रव्य होता है । नवीन कृष्टियों में तो अध:स्तनकृष्टियों का द्रव्य देनेपर और पुरातन कृष्टियों में अध:स्तनशीर्षविशेष का द्रव्य देनेपर सर्व कृष्टि पुरातन प्रथम कृष्टि के समान होती हैं । वहां एक-एक मध्यमखंड देनेपर उनका प्रमाण समान ही रहा ।

पुनश्च उभयद्रव्यविशेष क्रम से एक-एक विशेष घटता दिया, यह विशेष विवक्षित कृष्टि के नीचे की कृष्टि के द्रव्य के अनंतवें भाग मात्र है; इसलिए दृश्यमान द्रव्य की अपेक्षा सर्वत्र अनंतवां भाग मात्र घटता क्रम कहा है । पुनश्च अंत कृष्टि से अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में दिया द्रव्य अनंतगुणा घटता है, क्योंकि वहां एक भाग में डेढ़ गुणहानि का भाग देनेपर उसका प्रमाण आता है ।

किट्टीकरणद्धाए चरिमे अंतोमुहुत्तसंजुत्तो ।
चत्तारि होंति मासा संजलणाणं तु ठिदिबंधो ।।५०६।।

कृष्टिकरणद्धाया: चरमे अंतर्मुहूर्तसंयुक्ता: ।
चत्वारो भवंति मासा: संज्वलनानां तु स्थितिबंध: ।।५०६।।

टीका – कृष्टिकरण काल अंतर्मुहूर्त मात्र है, उसके अंत समय में अंतर्मुहूर्त

अधिक चार मास प्रमाण संज्वलन चतुष्क का स्थितिबंध है । अपूर्वस्पर्धककरण काल के अंत समय में आठ वर्ष मात्र था, वह एक-एक स्थितिबंधापसरण में अंतर्मुहूर्त मात्र घटकर यहां इतना रहता है ।

सेसाणं वस्साणं संखेज्जसहस्सगाणि ठिदिबंधो ।
मोहस्स य ठिदिसंतं अडवस्संतोमुहुत्तहियं ।।५०७।।

शेषाणां वर्षाणां संख्येयसहस्रकानि स्थितिबंध: ।
मोहस्य च स्थितिसत्त्वं अष्टवर्षोंऽतर्मुहूर्ताधिक: ।।५०७।।

टीका – अवशेष कर्मों का स्थितिबंध संख्यात हजार वर्ष मात्र है । पहले भी संख्यात हजार वर्ष मात्र ही था, वह संख्यातगुणा घटते क्रमरूप संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण होनेपर भी आलाप द्वारा इतना ही कहा है ।

मोहनीय का स्थितिसत्त्व पहले संख्यात हजार वर्ष मात्र था, वह घटकर यहां अंतर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष मात्र रहा ।

घादितियाणं संखं वस्ससहस्साणि होदि ठिदिसंतं ।
वस्साणमसंखेज्जसहस्साणि अघादितिण्णं तु ।।५०८।।

घातित्रयाणां संख्यं वर्षसहस्राणि भवति स्थितिसत्त्वम् ।
वर्षाणामसंख्येयसहस्राणि अघातित्रयाणां तु ।।५०८।।

टीका – तीन घातिकर्मों का संख्यात हजार वर्ष प्रमाण स्थितिसत्त्व है । तीन अघातिकर्मों का असंख्यात हजार वर्ष मात्र यहां स्थितिसत्त्व है ।

पडिपदमणंतगुणिदा किट्टीयो फड्डया विसेसहिया ।
किट्टीण फड्डयाणं लक्खणमणुभागमासेज्ज ।।५०९।।

प्रतिपदमनंतगुणिता कृष्ट्य: स्पर्धका विशेषाधिका: ।
कृष्टीनां स्पर्धकानां लक्षणमनुभागमासाद्य ।।५०९।।

टीका – कृष्टि हैं, वे तो प्रतिपद अनंतगुणा अनुभाग युक्त हैं । प्रथम कृष्टि के

अनुभाग से द्वितीय कृष्टि का अनुभाग अनंतगुणा, उससे तृतीय कृष्टि का ऐसे अंत कृष्टि तक क्रम से अनंतगुणा अनुभाग पाया जाता है । स्पर्धक हैं, वे प्रतिपद विशेष अधिक अनुभाग युक्त हैं । स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा से द्वितीय वर्गणा में, उससे तृतीय वर्गणा में, ऐसे अनंत वर्गणा तक क्रम से कुछ विशेष अधिक अनुभाग पाया जाता है ।

इसतरह अनुभाग के आश्रय से कृष्टि और स्पर्धकों का लक्षण है । द्रव्य अपेक्षा तो चय घटता क्रम दोनों में ही है, परंतु अनुभाग की अपेक्षा इनका लक्षण जुदा जानकर जुदापना कहा है ।

पुव्वापुव्वफड्डयमणुहवदि हु किट्टिकारओ णियमा ।
तस्सद्धा णिट्ठायदि पढमट्ठिदि आवलीसेसे ।।५१०।।

पूर्वापूर्वस्पर्धकमनुभवति हि कृष्टिकारको नियमात् ।
तस्याद्धा निष्ठापयति प्रथमस्थितौ आवलिशेषे ।।५१०।।

टीका – कृष्टि करनेवाला उस काल में पूर्व-अपूर्वस्पर्धकों के ही उदय को नियम से भोगता है । जिसतरह अपूर्वस्पर्धक करने *(के काल)* से पूर्वस्पर्धक सहित अपूर्वस्पर्धकों को भोगता है *(उसका उदय होता है)* उसतरह कृष्टि करते हुये कृष्टि को नहीं भोगता ऐसा जानना । इसप्रकार संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति में उच्छिष्टावली मात्र काल अवशेष रहनेपर उस कृष्टिकरण काल का निष्ठापन करता है, समाप्त करता है ।

।। इति कृष्टिकरणाधिकार: ।।

अब कृष्टिवेदनाधिकार कहते हैं –

से काले किट्टीओ अणुहवदि हु चारिमासमडवस्सं ।
बंधो संतं मोहे पुव्वालावं तु सेसाणं ।।५११।।

स्वे काले कृष्टीन् अनुभवति हि चतुर्मासमष्टवर्षं ।
बंध: सत्त्वं मोहे पूर्वालापस्तु शेषाणाम् ।।५११।।

टीका – कृष्टिकरण काल के अनंतर अपने कृष्टिवेदक काल में कृष्टियों के उदय को अनुभवता है । द्वितीय स्थिति के निषेकों में स्थित कृष्टियों को प्रथम स्थिति के निषेकों में प्राप्त करके भोगता है । उस भोगने का ही नाम वेदना है । उस काल के प्रथम समय में चार संज्वलनरूप मोह का स्थितिबंध चार मास है और स्थितिसत्त्व आठ वर्ष मात्र है । पहले अंतर्मुहूर्त अधिक थे, वे अंतर्मुहूर्त घटकर इतने रहे । अवशेष कर्मों का स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व यद्यपि घटता हुआ है, तथापि आलाप द्वारा पूर्वोक्त प्रकार से जैसे कृष्टिकरण के अंत समय में करता है, वैसे ही जानना ।

ताहे कोहुच्छिट्ठं सव्वं घादी हु देसघादी हु ।
दोसमऊणदुआवलिणवकं ते फड्डयगदाओ ।।५१२।।

तत्र क्रोधोच्छिष्टं सर्वं घाति हि देशघाति हि ।
द्विसमयोनद्व्यावलिनवकं तत् स्पर्धकगतम् ।।५१२।।

टीका – यहां अनुभागबंध तो *(प्रशस्त प्रकृतियों में)* गुड, खांड, शर्करा, अमृतरूप यथासंभव उत्कृष्ट है । अनुभागसत्त्व तो क्रोध की उच्छिष्टावली का तो सर्वघाति है । किस कारण ? समय कम आवली प्रमाण क्रोध के जो निषेक उदयावली को प्राप्त हुये हैं, उनमें पूर्वस्पर्धकरूप अनुभागसत्त्व लता, दारु समान शक्ति युक्त है । ऐसी शक्ति की अपेक्षा यहां सर्वघाति कहे हैं । शैलसमान आदि की अपेक्षा सर्वघाति नहीं कहे हैं । ये निषेक उदयकाल में कृष्टिरूप परिणमित होकर जो वर्तमान समय में उदय आने योग्य निषेक उनमें उदयरूप होकर निर्जरित होते हैं । यहां आवली में एक समय कम कहा है, वह उच्छिष्टावली का प्रथम निषेक वर्तमान समय में कृष्टिरूप परिणमन करके परमुखरूप होकर उदय में आता है इसलिए कहा है । पुनश्च संज्वलन चतुष्क के दो समय कम दो आवली मात्र नवक समयप्रबद्ध रहे हैं, उनमें अनुभाग देशघाति शक्ति से युक्त है । क्योंकि कृष्टिकरण काल में कृष्टिरूप बंध नहीं है, इसलिए वे स्पर्धकरूप शक्ति से युक्त हैं, वे दो समय कम दो आवली काल में कृष्टिरूप परिणमित होकर सत्ता नाश को प्राप्त होगी । नवक समयप्रबद्ध का स्वरूप और अन्यरूप परिणमने का विधान पहले कहा है, वही जानना । नवकबंध और उच्छिष्टावली मात्र निषेक अवशेष रहे थे, उनका तो ऐसा स्वरूप जानना । अवशेष सर्व निषेक कृष्टिकरण काल

के अंत समय में ही कृष्टिरूप परिणमित हुये हैं ।

लोहादो कोहादो कारउ वेदउ हवे किट्टी ।
आदिमसंगहकिट्टिं वेदयदि ण बिदीय तिदियं च ।।५१३।।

लोभात् क्रोधात् कारको वेदको भवेत् कृष्टेः ।
आदिमसंग्रहकृष्टिं वेदयति न द्वितीयां तृतीयां च ।।५१३।।

टीका – कृष्टि का कारक तो लोभ से लेकर क्रम युक्त है और कृष्टिवेदक है, वह क्रोध से लेकर क्रम युक्त है ।

भावार्थ – कृष्टिकरण में तो पहले लोभ की, पश्चात् माया की, पश्चात् मान की, पश्चात् क्रोध की ऐसे क्रम सहित कृष्टि कही थी । यहां कृष्टि के वेदने में पहले क्रोध की, पश्चात् मान की, पश्चात् माया की, पश्चात् लोभ की कृष्टियों का अनुभवन होता है ।

पुनश्च इतना जानना कि कृष्टिकरण में जिसको तृतीय संग्रहकृष्टि कही है, उसीको यहां कृष्टिवेदन में प्रथम संग्रहकृष्टि कहना और जिसको वहां प्रथम संग्रहकृष्टि कही, उसको यहां तृतीय संग्रहकृष्टि कहना । यदि ऐसा न हो तो पहले अल्प शक्ति युक्त कृष्टियों का अनुभव होकर पश्चात् बहुत शक्ति युक्त कृष्टियों का अनुभव होगा, वह तो बनता नहीं, क्योंकि प्रतिसमय अनंतगुणा घटते अनुभाग का उदय होता है । इसलिए संग्रहकृष्टियों में कृष्टिकारक से कृष्टिवेदक के उलटा क्रम जानना । वहां अंतरकृष्टियों में पूर्वोक्त प्रकार से ही क्रम जानना । यहां पहले क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि को ही अनुभवता है, द्वितीय, तृतीय संग्रहकृष्टि को नहीं अनुभवता, ऐसा जानना ।

किट्टीवेदगपढमे कोहस्स य पढमसंगहादो दु ।
कोहस्स य पढमठिदी पत्तो उव्वट्टगो मोहे ।।५१४।।

कृष्टिवेदकप्रथमे क्रोधस्य च प्रथमसंग्रहात् तु ।
क्रोधस्य च प्रथमस्थितिः प्राप्तः अपवर्तको मोहे ।।५१४।।

टीका – कृष्टिवेदक काल के प्रथम समय में क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि से

क्रोध की प्रथम स्थिति करता है । किस प्रकार ? वह कहते हैं –

कृष्टिकरण काल के अंत समय तक तो कृष्टियों के दृश्यमान प्रदेशों का समूह चय घटते क्रम सहित गोपुच्छाकाररूप अपने स्थान में स्थित है और स्पर्धकों का अपने स्थान में प्रदेश समूह एक गोपुच्छाकाररूप स्थित है । वहां कृष्टियों के द्रव्य से स्पर्धकों का द्रव्य असंख्यातगुणा है, इसलिए कृष्टियों के और स्पर्धकों के एक गोपुच्छाकार नहीं है । कृष्टिकरण काल की समाप्ति के अनंतर सर्व ही द्रव्य कृष्टिरूप परिणमित होकर एक गोपुच्छाकार होता है । वहां संज्वलन के सर्वद्रव्य को आठ का भाग देकर वहां एक-एक भाग मात्र लोभ, माया, मान का, पांच भाग मात्र क्रोध का द्रव्य जानना ।

बारह संग्रहकृष्टियों में विभाग करनेपर सर्व संज्वलन द्रव्य को चौबीस का भाग देकर वहां अन्य संग्रहकृष्टियों का एक-एक भाग मात्र, क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का तेरह भाग मात्र द्रव्य है । यहां साधिकपना, न्यूनपना है, वह यथासंभव पूर्वोक्त प्रकार जानना । पहले कृष्टिकरण काल के द्वितीय समय में जैसे विधान कहा है, वैसे कहना ।

प्रथम समय में की हुयी कृष्टियों के प्रमाण में उसके असंख्यातवें भाग मात्र द्वितीयादि समयों में की हुयी कृष्टियों का प्रमाण जोड़नेपर सर्व पूर्व-अपूर्व कृष्टियों का प्रमाण होता है । कृष्टिवेदक के प्रथम समय में क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग ग्रहण करके, उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एकभाग मात्र द्रव्य को ग्रहण कर प्रथम स्थिति को करता है । सो क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टिवेदक के काल से उच्छिष्टावली मात्र अधिक प्रथम स्थिति के निषेकों का प्रमाण है । वही यहां गुणश्रेणी आयाम जानना । उसके वर्तमान उदयरूप प्रथम निषेक में तो अल्प द्रव्य देता है । उससे द्वितीयादि अंत समय तक असंख्यातगुणा क्रम सहित द्रव्य देता है । इसतरह उस एकभाग मात्र द्रव्य का गुणश्रेणीरूप देना होता है । यहां प्रथम स्थिति का जो अंत का निषेक है, उसीका नाम गुणश्रेणीशीर्ष है ।

अवशेष बहुभाग मात्र द्रव्य कहा उसको स्थिति की अपेक्षा क्रोध की द्वितीय,

तृतीय संग्रहकृष्टि से भी अपकर्षण किये द्रव्य में मिलानेपर जो द्रव्य हुआ उसको, यहां आठ वर्ष मात्र स्थिति है, उसकी संख्यात आवली हुयी वही गच्छ, उसका भाग देनेपर मध्यधन होता है । उसमें एक कम गच्छ के आधे प्रमाण मात्र चय मिलानेपर द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में दिये द्रव्य का प्रमाण होता है, यह गुणश्रेणीशीर्ष में दिये द्रव्य से असंख्यातगुणा है । उसके असंख्यातवें भाग मात्र विशेष का प्रमाण है । सो द्वितीयादि निषेकों में अतिस्थापनावली के नीचे एक-एक विशेष घटते क्रम सहित द्रव्य देता है । इस क्रम से प्रतिसमय उदयादि गलितावशेष गुणश्रेणी करता है । यहां मोह का अपवर्तनघात होता है *(देखिये – लब्धिसार भूमिका)* । इससे पहले अश्वकर्णरूप अनुभाग का अंतर्मुहूर्त में संपूर्ण हो ऐसा कांडकघात होता था । अब संज्वलन की बारह संग्रहकृष्टियों का प्रतिसमय अनंतगुणा घटता अनुभाग होने से अपवर्तनघात वर्तता है । *(इसीको अनुसमयापवर्तन कहते हैं ।)*

पढमस्स संगहस्स य असंखभागा उदेदि कोहस्स ।
बंधेवि तहा चेव य माणतियाणं तहा बंधे ।।५१५।।

प्रथमस्य संग्रहस्य च असंख्यभागान् उदयति क्रोधस्य ।
बंधेऽपि तथा चैव च मानत्रयाणां तथा बंधे ।।५१५।।

टीका – कृष्टिवेदक के प्रथम समय में क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि संबंधी जो अंतरकृष्टि, उनके प्रमाण को असंख्यात का भाग देकर, वहां बहुभाग मात्र कृष्टि उदय में आती हैं । वहां एकभाग मात्र नीचे की और ऊपर की कृष्टि को छोड़कर बीच की बहुभाग मात्र कृष्टियों का उदय होता है । प्रथम, द्वितीय आदि कृष्टियों को नीचे की कृष्टि कहते हैं, अंत, उपांत आदि कृष्टियों को ऊपर की कृष्टि कहते हैं । वहां उदयरूप न हो ऐसी नीचे की कृष्टि तो अनंतगुणा बढ़ता अनुभागरूप होकर और ऊपर की कृष्टि अनंतगुणा घटता अनुभागरूप होकर, वे कृष्टि बीच की कृष्टिरूप परिणमित होकर उदय में आती हैं ।

बंध में भी नीचे और ऊपर की असंख्यातवें भाग मात्र कृष्टियों को छोड़कर बीच की असंख्यात बहुभाग मात्र कृष्टि जानना । उदयरूप कृष्टियों में से जो ऊपर की अनुदयकृष्टियों का प्रमाण, उससे साधिक दोगुणा प्रमाण सहित नीचे की और

ऊपर की कृष्टियों का प्रमाण घटानेपर बंधरूप कृष्टियों का प्रमाण होता है । इनका बंध यहां होता है । यहां मानादि की अपनी-अपनी प्रथम संग्रहकृष्टि की नीचे की और ऊपर की कृष्टि, जो कृष्टि प्रमाण के असंख्यातवें भाग मात्र हैं, उनको नीचे और ऊपर छोड़कर बीच की बहुभाग मात्र कृष्टि बंधती हैं । यहां मानादि की तीनों ही संग्रहकृष्टियों का उदय नहीं है और क्रोध की द्वितीय, तृतीय संग्रहकृष्टि का बंध और उदय नहीं है, ऐसा जानना ।

कोहस्स पढमसंगहकिट्टिस्स य हेट्ठिमणुभयट्ठाणा ।
तत्तो उदयट्ठाणा उवरिं पुण अणुभयट्ठाणा ।।५१६।।

उवरिं उदयट्ठाणा चत्तारि पदाणि होंति अहियकमा ।
मज्झे उभयट्ठाणा होंति असंखेज्जसंगुणिया ।।५१७।।

क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकृष्टेश्चाधस्तनानुभयस्थानानि ।
तत उदयस्थानानि उपरि पुनरनुभयस्थानानि ।।५१६।।

उपरि उदयस्थानानि चत्वारि पदानि भवंति अधिकक्रमाणि ।
मध्ये उभयस्थानानि भवंति असंख्येयसंगुणितानि ।।५१७।।

टीका – क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की अंतरकृष्टियों में से अध:स्तन अर्थात् प्रथम, द्वितीयादि नीचे की अनुभयस्थाना अर्थात् जिनका उदय और बंध दोनों नहीं है, ऐसी नीचे की कृष्टियों का प्रमाण अल्प है । उसकी संदृष्टि दो का अंक । उससे उसी को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एकभाग मात्र विशेष से अधिक उन अनुभयकृष्टियों के ऊपरवर्ती जो नीचे की, उदयस्थाना अर्थात् जिनका उदय पाया जाता है परंतु बंध नहीं पाया जाता ऐसी कृष्टियों का प्रमाण है । उसकी संदृष्टि तीन का अंक । उससे उसीको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एकभाग मात्र विशेष से अधिक उपरितन अर्थात् अंत, उपांत आदि ऊपर की अनुभयस्थाना अर्थात् बंध, उदय रहित कृष्टियों का प्रमाण है । उसकी संदृष्टि चार का अंक । उससे उसीको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एकभाग मात्र विशेष से अधिक उन कृष्टियों के नीचे पायी जानेवाली ऐसी ऊपर की उदयस्थाना

अर्थात् उदय सहित, बंध रहित कृष्टि उनका प्रमाण है । उसकी संदृष्टि सात का अंक । ऐसे चार पद तो अधिक क्रम सहित हैं । उससे असंख्यातगुणा बीच की उभयस्थाना अर्थात् जिनका उदय भी पाया जाता है और बंध पी पाया जाता है ऐसी कृष्टियों का प्रमाण है । वही कहते हैं –

क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में जो कृष्टियों का प्रमाण है, उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग मात्र तो बीच की उभयकृष्टियों का प्रमाण है । अवशेष एकभाग रहा उसको **'प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिंड:'** इत्यादि सूत्र विधान से अंकसंदृष्टि अपेक्षा दो, तीन, चार, सात शलाकाओं को जोड़नेपर सोलह हुये उसका भाग देकर जो एकभाग का प्रमाण आया उसको अपनी-अपनी दो आदि शलाकाओं से गुणा करनेपर नीचे की अनुभयकृष्टि आदि का प्रमाण आता है । इसीतरह बारह संग्रहकृष्टियों के वेदककाल के प्रथम समय में अल्पबहुत्व जानना ।

[*विशेषार्थ* :

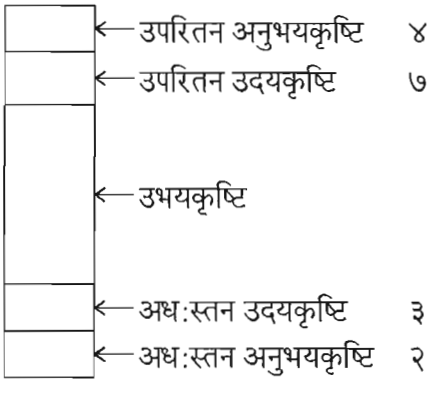

]

बिदियादिसु चउठाणा पुव्विल्लेहिं असंखगुणहीणा ।
तत्तो असंखगुणिदा उवरिमणुभया तदो उभया।।५१८।।

द्वितीयादिषु चतु:स्थानानि पूर्वेभ्योऽसंख्यगुणहीनानि ।
तत: असंख्यगुणितानि उपर्यनुभयानि तत उभयानि ।।५१८।।

टीका – अब कृष्टिवेदक काल के द्वितीयादि समयों में कहते हैं – पूर्व समय में जो नीचे की बंध रहित केवल उदयकृष्टि थी, वे तो उत्तर समय में उभयकृष्टिरूप

होती हैं और पूर्व समय में अनुभयकृष्टि थी, उनमें से अंत की कितनी ही कृष्टि उभयरूप, उनके नीचे की कितनी ही केवल उदयरूप उत्तर समय में होती हैं । पूर्व समय में जो ऊपर की केवल उदयकृष्टि थी, वे सर्व उत्तर समय में अनुभयरूप होती हैं, पूर्वसमय में जो उभयकृष्टि थी, उनमें से अंत की कितनी ही कृष्टि अनुभयरूप, उनके नीचे कितनी ही केवल उदयरूप कृष्टि उत्तर समय में होती हैं । इसतरह प्रतिसमय बंध और उदय में अनुभाग का घटना होता है, क्योंकि नीचे की कृष्टियों में अनुभाग अल्प पाया जाता है, ऊपर की कृष्टियों में अनुभाग बहुत पाया जाता है । ऐसे होनेपर अल्पबहुत्व कहते हैं –

नीचे की अनुभयकृष्टि तो अल्प हैं, उससे उनके ऊपर की जो नीचे की केवल उदयकृष्टि, वे विशेष अधिक हैं । उसके पश्चात् पूर्व समय में जो उत्कृष्ट अनुभागवाली अंत की बंधरूप कृष्टि थी उससे लेकर नीचे जो उत्तर समय में अनुभयकृष्टि हुयी, वे विशेष अधिक हैं । उससे उनके नीचे जो विवक्षित समय में केवल उदयरूप कृष्टि हुयी, वे विशेष अधिक हैं । ऐसे ये चार स्थान तो पूर्व समय में नीचे की अनुभयकृष्टि आदि का जो प्रमाण था, उससे असंख्यातगुणा हीन हैं ।

पुनश्च उन उदयकृष्टियों से पूर्व समय में जो ऊपर की उदयकृष्टि थी उनमें से अल्प अनुभागवाली जो आदि की जघन्य कृष्टि, उस समान कृष्टि से लेकर जो उत्तर समय में सर्व अनुभयकृष्टि हुयी, वे असंख्यातगुणा हैं; क्योंकि पूर्व समय में जो ऊपर की अनुभयकृष्टि का प्रमाण था, उसके असंख्यातवें भाग मात्र कृष्टि पूर्व समय संबंधी ऊपर की जघन्य उदयकृष्टि से नीचे उतर कर उत्तर समय में ऊपर की जघन्य अनुभयकृष्टि होती हैं । उससे पूर्व समय संबंधी ऊपर की उदयकृष्टि के प्रमाण के असंख्यातवें भाग मात्र कृष्टि नीचे उतरनेपर इस विवक्षित समय में ऊपर की जघन्य उदयकृष्टि होती है । उन अनुभयकृष्टियों के प्रमाण से बीच में जो बंध, उदय युक्त उभयकृष्टि हैं, वें असंख्यातगुणा हैं । इसतरह द्वितीयादि समयों में कृष्टियों का अल्पबहुत्व जानना ।

[***विशेषार्थ*** *: यहां मेरी बुद्धि के अनुसार निम्नप्रकार समझाने की कोशिश कर रही हूँ । वैसे तो प्रत्यक्ष सिखाते समय यह समझाना आसान हुआ था ।*

प्रथम समय		*द्वितीय समय*
उपरितन अनुभयकृष्टि	→	*वैसे ही अनुभयरूप रही*
उपरितन उदयकृष्टि	→	*सर्व अनुभयरूप हुयी*
उभयकृष्टि	→	*ऊपर की कुछ अनुभयरूप हुयी* *उसके नीचे कुछ उदयरूप हुयी* *शेष उभयरूप रही*
अध:स्तन उदयकृष्टि	→	*सर्व उभयरूप हुयी*
अध:स्तन अनुभयकृष्टि	→	*ऊपर की कुछ उभयरूप हुयी* *उसके नीचे उदयरूप हुयी* *शेष अनुभयरूप रही*

अब इस विशेषार्थ सहित गाथा ५१८ की टीका दुबारा पढ़ना, हो सकता है, थोड़ा और सरल लगे ।]

पुव्विल्लबंधजेट्ठा हेट्ठासंखेज्जभागमोदरिय ।
संपडिगो चरिमोदयवरमवरं अणुभयाणं च ।।५१९।।

पौर्विकबंधज्येष्ठात् अधस्तनमसंख्येयभागमवतीर्य ।
सांप्रतिक: चरमोदयवरमवरं अनुभयानां च ।।५१९।।

टीका – पूर्वसमय संबंधी बंध की उत्कृष्ट कृष्टि अर्थात् अंत की बंधकृष्टि से लेकर पूर्व समय संबंधी उभयकृष्टियों के असंख्यातवें भाग मात्र कृष्टि नीचे उतरकर सांप्रतिक अर्थात् वर्तमान उत्तर समय संबंधी अंत की केवल उदयरूप उत्कृष्ट कृष्टि होती है और उसके अनंतर ऊपर अनुभयकृष्टि की जघन्य कृष्टि पायी जाती है । उस उत्कृष्ट उदयकृष्टि के नीचे पूर्व समय संबंधी उदयकृष्टियों के असंख्यातवें भाग मात्र कृष्टि नीचे उतरकर सांप्रतिक उदयकृष्टि की जघन्य कृष्टि होती है । उसके अनंतर नीचे उभयकृष्टि की उत्कृष्ट कृष्टि होती है । इसतरह तो ऊपर की कृष्टियों में विधान जानना ।

हेट्ठिमणुभयवरादो असंखबहुभागमेत्तमोदरिय ।
संपडिबंधजहण्णं उदयुक्कस्सं च होदि त्ति ।।५२०।।

अध:स्तनानुभयवरान् असंख्यबहुभागमात्रमवतीर्य ।
संप्रतिबंधजघन्यं उदयोत्कृष्टं च भवतीति ।।५२०।।

टीका – पूर्व समय संबंधी अध:स्तन अनुभयकृष्टि की उत्कृष्ट कृष्टि अर्थात् अंत कृष्टि से पूर्व समय संबंधी अनुभयकृष्टियों के असंख्यात बहुभाग मात्र कृष्टि नीचे उतरकर सांप्रतिक बंधकृष्टि अर्थात् बंध उदय युक्त उभयकृष्टि की जघन्य कृष्टि होती है । उसके अनंतर नीचे की कृष्टि केवल उदयकृष्टियों की उत्कृष्ट कृष्टि है । उससे लेकर पूर्व समय संबंधी उदयकृष्टियों के असंख्यातवें भाग मात्र कृष्टि उतरकर सांप्रतिक उदयकृष्टि की जघन्य कृष्टि होती है । उसके नीचे पूर्व समय संबंधी अनुभयकृष्टियों के असंख्यातवें भाग मात्र कृष्टि नीचे उतरकर सांप्रतिक जघन्य अनुभयकृष्टि होती है । वही सर्व कृष्टियों में जघन्य कृष्टि है । इसतरह नीचे की अर्थात् अध:स्तनकृष्टियों में विधान जानना ।

इसतरह प्रतिसमय पूर्व समय संबंधी नीचे की अनुभय, उदय कृष्टि और ऊपर की उदयकृष्टियों के प्रमाण से उत्तर समय संबंधी उनका प्रमाण असंख्यातगुणा घटता है । तथा बीच में जो उभयकृष्टि हैं, उनका प्रमाण विशेष अधिक होता है ऐसा जानना ।

पडिसमयं अहिगदिणा उदये बंधे च होदि उक्कस्सं ।
बंधुदये च जहण्णं अणंतगुणहीणया किट्टी ।।५२१।।

प्रतिसमयमहिगतिना उदये बंधे च भवति उत्कृष्टं ।
बंधोदये च जघन्यं अनंतगुणहीनका कृष्टि: ।।५२१।।

टीका – प्रतिसमय सर्प की गतिवत् उत्कृष्ट कृष्टि तो उदय और बंध में और जघन्य कृष्टि बंध और उदय में अनंतगुणा घटते अनुभाग सहित अनुभाग अपेक्षा जानना । वही कहते हैं –

सर्व कृष्टियों के अनंत बहुभाग मात्र बीच की कृष्टि बंधरूप हैं, उनसे साधिक उदयरूप हैं । उनमें से जो सबसे अल्प अनुभाग युक्त प्रथम कृष्टि है, उसको जघन्य कृष्टि कहते हैं । सबसे उत्कृष्ट अनुभाग युक्त जो अंत कृष्टि, उसको उत्कृष्ट कृष्टि कहते हैं । वहां कृष्टिवेदक के प्रथम समय में जो उदय की उत्कृष्ट कृष्टी है, वह बहुत अनुभाग युक्त है । उससे उसी समय में बंध की उत्कृष्ट कृष्टि अनंतगुणा हीन अनुभाग युक्त है । उससे द्वितीय समय में उदय की उत्कृष्ट कृष्टि अनंतगुणा हीन अनुभाग युक्त है । उससे उसी समय में बंध की उत्कृष्ट कृष्टि अनंतगुणा हीन अनुभाग युक्त है । उससे तीसरे समय में उदय की उत्कृष्ट कृष्टि अनंतगुणा हीन अनुभाग युक्त है । उससे उसी समय में बंध की उत्कृष्ट कृष्टि अनंतगुणा हीन अनुभाग युक्त है । इसप्रकार जैसे सर्प इधर से उधर, उधर से इधर गमन करता है वैसे विवक्षित समय में उदय की उत्कृष्ट से बंध की उत्कृष्ट और पूर्व समय संबंधी बंध की उत्कृष्ट से उत्तर समय संबंधी उदय की उत्कृष्ट कृष्टि में अनंतगुणा हीन अनुभाग क्रम से जानना ।

पुनश्च कृष्टिवेदक के प्रथम समय में बंध की जघन्य कृष्टि बहुत अनुभाग युक्त है । उससे उस समय में उदय की जघन्य कृष्टि अनंतगुणा हीन अनुभाग युक्त है । उससे दूसरे समय में बंध की जघन्य कृष्टि अनंतगुणा हीन अनुभाग युक्त है । उससे उस समय में उदय की जघन्य कृष्टि अनंतगुणा हीन अनुभाग युक्त है । इसतरह सर्प की चालवत् एक समय में बंध की जघन्य से उदय की जघन्य और पूर्व समय संबंधी उदय की जघन्य से उत्तर समय संबंधी बंध की जघन्य कृष्टि में अनंतगुणा हीन अनुभाग जानना । ऐसी प्ररूपणा क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टिवेदक काल के अंत समय तक है । उसकी द्वितीय और तृतीय संग्रहकृष्टिवेदक के भी ऐसा ही क्रम जानना ।

अब संक्रमणद्रव्य का विभाग कहते हैं –

संकमदि संगहाणं दव्वं सगहेट्ठिमस्स पढमोत्ति ।
तदणुदये संखगुणं इदरेसु हवे जहाजोग्गं।।५२२।।

संक्रामति संग्रहाणां द्रव्यं स्वकाधस्तनस्य प्रथम इति ।
तदनुदये संख्यगुणमितरेषु भवेत् यथायोग्यम् ।।५२२।।

टीका – संग्रहकृष्टियों का द्रव्य विवक्षित स्वकीय कषाय के नीचे के कषाय की प्रथम संग्रहकृष्टि तक संक्रमण करता है ।

भावार्थ – स्वस्थान में विवक्षित कषाय की संग्रहकृष्टि का द्रव्य यदि उसी कषाय की अन्य संग्रहकृष्टि में संक्रमण करे तो तीसरी संग्रहकृष्टि तक करता है । तथा यदि परस्थान में अन्य कषाय में संक्रमण करे तो उस विवक्षित कषाय से लगती जो कषाय; उसकी प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमण करता है । जो द्रव्य जिसमें संक्रमण करता है, वह द्रव्य उसीरूप परिणमता है । वहां जिस संग्रहकृष्टि को भोगता है, उसके अपकर्षण किये हुये द्रव्य में से उसके अनंतर भोगने योग्य संग्रहकृष्टि में संख्यातगुणा द्रव्य का संक्रमण होता है, अन्य में यथायोग्य संक्रमण होता है । वही कहते हैं –

जैसे लौकिक में जमा खर्च कहते हैं, वैसे यहां आयद्रव्य, व्ययद्रव्य कहते हैं । अन्य संग्रहकृष्टि का द्रव्य संक्रमण करके विवक्षित संग्रहकृष्टि में आया – प्राप्त हुआ, उसका नाम आयद्रव्य है । विवक्षित संग्रहकृष्टि का द्रव्य संक्रमण द्वारा अन्य संग्रहकृष्टि में गया, उसका नाम व्ययद्रव्य है ।

यहां क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि बिना अन्य ग्यारह संग्रहकृष्टियों का अपना-अपना जो द्रव्य, उसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर जो एकभाग मात्र द्रव्य संक्रमण करता है, उसे एक द्रव्य कहते हैं । क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर जो एकभाग मात्र द्रव्य संक्रमण करता है, उसे तेरह द्रव्य कहते हैं; क्योंकि अन्य संग्रहकृष्टि के द्रव्य से क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य नोकषाय का द्रव्य मिलने से तेरहगुणा है ।

वहां लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि और द्वितीय संग्रहकृष्टि का अपकर्षण किया हुआ द्रव्य संक्रमण करता है, इसलिए उसके आयद्रव्य दो है । लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि में लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि का ही अपकर्षण किया हुआ द्रव्य संक्रमण करता है, इसलिए उसके आयद्रव्य एक है । लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में माया की प्रथम, द्वितीय, तृतीय संग्रहकृष्टि का अपकर्षण किया हुआ द्रव्य संक्रमण करता है, इसलिए उसके आयद्रव्य तीन है ।

माया की तृतीय संग्रहकृष्टि में माया की द्वितीय, प्रथम संग्रहकृष्टि का अपकर्षण किया हुआ द्रव्य संक्रमण करता है, इसलिए उसके आयद्रव्य दो है । माया की द्वितीय संग्रहकृष्टि में माया की प्रथम संग्रहकृष्टि का अपकर्षण किया हुआ द्रव्य संक्रमण करता है, इसलिए उसके आयद्रव्य एक है । माया की प्रथम संग्रहकृष्टि में मान की प्रथम, द्वितीय, तृतीय संग्रहकृष्टि का अपकर्षण किया हुआ द्रव्य संक्रमण करता है, इसलिए उसके आयद्रव्य तीन है ।

मान की तृतीय संग्रहकृष्टि में मान की द्वितीय, प्रथम संग्रहकृष्टि का अपकर्षण किया हुआ द्रव्य संक्रमण करता है, इसलिए उसके आयद्रव्य दो है । मान की द्वितीय संग्रहकृष्टि में मान की प्रथम संग्रहकृष्टि का ही अपकर्षण किया हुआ द्रव्य संक्रमण करता है, इसलिए उसके आयद्रव्य एक है । मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में क्रोध की प्रथम, द्वितीय, तृतीय संग्रहकृष्टि का अपकर्षण किया हुआ द्रव्य संक्रमण करता है, इसलिए उसके आयद्रव्य पंद्रह है ।

क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि में क्रोध की प्रथम, द्वितीय संग्रहकृष्टि का अपकर्षण किया हुआ द्रव्य संक्रमण करता है, इसलिए उसके आयद्रव्य चौदह है । क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि में क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का अपकर्षण किया हुआ द्रव्य तेरह उससे चौदह गुणा संक्रमण होता है इसलिए उसके आयद्रव्य एक सौ बयासी है । यहां चौदहगुणा करने का प्रयोजन कहते हैं –

अनंतर भोगने योग्य संग्रहकृष्टि में संख्यातगुणा द्रव्य का संक्रमण होना कहा है, यहां संख्यात का प्रमाण अपने गुणकार से एक अधिक जानना । यह क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि को भोगता है और उसके अनंतर क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि को भोगेगा । इसलिए क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि से अपकर्षण किये हुये द्रव्य में से संख्यातगुणा द्रव्य का द्वितीय संग्रहकृष्टि में संक्रमण होता है । यहां प्रथम संग्रहकृष्टि के द्रव्य में तेरह का गुणकार है, उससे एक अधिक करनेपर संख्यात का प्रमाण यहां चौदह जानना । अन्य संग्रहकृष्टि वेदक में संख्यात का प्रमाण अन्य होगा, वह आगे कहेंगे । क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में आयद्रव्य है नहीं, क्योंकि आनुपूर्वी संक्रमण पाया जाता है । यहां संक्रमणद्रव्य को अपकर्षित द्रव्य का अनुभाग घटने

की अपेक्षा हानि होने से कहा है ।

इसतरह आयद्रव्य का विभाग कहा ।

अब व्ययद्रव्य का विभाग कहते हैं –

क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य क्रोध की द्वितीय, तृतीय और मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में गया; इसलिए एक सौ बयासी, तेरह, तेरह द्रव्य मिलकर उसके व्ययद्रव्य दो सौ आठ होता है । क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य क्रोध की तृतीय और मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में गया, इसलिए उसके व्ययद्रव्य दो है । क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में ही गया, इसलिए उसके व्ययद्रव्य एक है ।

मान की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य मान की द्वितीय, तृतीय, माया की प्रथम संग्रहकृष्टि में गया, इसलिए उसके व्ययद्रव्य तीन है । मान की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य मान की तृतीय, माया की प्रथम संग्रहकृष्टि में गया, इसलिए उसके व्ययद्रव्य दो है । मान की तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य माया की प्रथम संग्रहकृष्टि में गया, इसलिए उसके व्ययद्रव्य एक है ।

माया की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य माया की द्वितीय, तृतीय, लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में गया इसलिए उसके व्ययद्रव्य तीन है । माया की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य माया की तृतीय, लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में गया, इसलिए उसके व्ययद्रव्य दो है । माया की तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में ही गया, इसलिए उसके व्ययद्रव्य एक है ।

लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य लोभ की द्वितीय, तृतीय संग्रहकृष्टि में गया, इसलिए उसके व्ययद्रव्य दो है । लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में गया, इसलिए उसके व्ययद्रव्य एक है । लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य अन्यत्र नहीं जाता क्योंकि विपरीत संक्रमण का अभाव है, इसलिए उसके व्ययद्रव्य नहीं है ।

इसतरह व्ययद्रव्य का विभाग कहा ।

[*विशेषार्थ :*

कषाय	संग्रहकृष्टि	आयद्रव्य	व्ययद्रव्य
क्रोध	I	०	१८२ + १३ + १३ = २०८
	II	१८२	२
	III	१४	१
मान	I	१५	३
	II	१	२
	III	२	१
माया	I	३	३
	II	१	२
	III	२	१
लोभ	I	३	२
	II	१	१
	III	२	०

]

आगे अनुसमय अपवर्तन की प्रवृत्ति का क्रम कहते हैं –

पडिसमयमसंखेज्जदिभागं णासेदि कंडयेण विणा ।
बारससंगहकिट्टीणग्गादो किट्टिवेदगो णियमा ।।५२३।।

प्रतिसमयमसंख्येयभागं नाशयति कांडकेन विना ।
द्वादशसंग्रहकृष्टीनामग्रतः कृष्टिवेदको नियमात् ।।५२३।।

टीका – कृष्टिवेदक जीव कांडक बिना बारह संग्रहकृष्टियों के अग्र भाग से सर्व कृष्टियों के असंख्यातवें भाग मात्र कृष्टियों को नियम से नष्ट करता है ।

भावार्थ – कृष्टिकरण काल के अंत समय तक तो अंतर्मुहूर्त काल द्वारा निष्पन्न कांडक विधान से अनुभाग का नाश होता था । अब कृष्टिवेदक के प्रथम समय से लेकर प्रतिसमय अग्रघात होने लगा । वहां बारह संग्रहकृष्टियों की अंतरकृष्टियों में अंत कृष्टि से लगती बहुत अनुभाग युक्त ऊपर की कितनी ही

कृष्टियों का नाश करके उन कृष्टियों के द्रव्य को अल्प अनुभाग युक्त नीचे की कृष्टियों में निक्षेपण करता है । वहां जिन कृष्टियों का घात किया, उनका नाम घातकृष्टि है । अपनी-अपनी संग्रहकृष्टि में अंतरकृष्टियों का प्रमाण स्थापित करके, उसको अपकर्षण भागहार के असंख्यातवें भाग मात्र जो असंख्यात, उसका भाग देनेपर अपनी-अपनी घातकृष्टियों का प्रमाण आता है । इन घातकृष्टियों के जो परमाणु, उनका नाम घातद्रव्य है । अपनी-अपनी अंत कृष्टि के द्रव्य को घातकृष्टियों के प्रमाण से गुणा करके, अंत कृष्टि के नीचे एक-एक विशेष बढ़ता है इसलिए, विशेष अधिक करनेपर घातद्रव्य का प्रमाण आता है ।

णासेदि परट्ठाणिय गोउच्छं अग्गकिट्टिघादादो ।
सट्ठाणियगोउच्छं संकमदव्वादु घादेदि ।।५२४।।

नाशयति परस्थानकं गोपुच्छमग्रकृष्टिघातात् ।
स्वस्थानिकगोपुच्छं संक्रमद्रव्यात् घातयति ।।५२४।।

टीका – अग्रकृष्टि घात से तो परस्थान गोपुच्छ नष्ट करता है और संक्रमणद्रव्य जो अन्य संग्रहरूप हुआ ऐसा पूर्वोक्त व्ययद्रव्य, उससे स्वस्थान गोपुच्छ को नष्ट करता है । कैसे ? वह कहते हैं –

विवक्षित एक संग्रहकृष्टि में अंतरकृष्टियों के जो विशेष घटता क्रम पाया जाता है, उसे यहां स्वस्थान गोपुच्छ कहते हैं; तथा नीचे की विवक्षित संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि से ऊपर की अन्य संग्रहकृष्टि की आदि कृष्टि के विशेष घटता क्रम पाया जाता है, उसे यहां परस्थान गोपुच्छ कहते हैं । वहां कृष्टियों के हीन अधिक द्रव्य का संक्रमण होने से चय घटता क्रम नष्ट हुआ, इसलिए पहले स्वस्थान गोपुच्छ था, उसका संक्रमणद्रव्य से नाश हुआ । पुनश्च नीचे के संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि और ऊपर के संग्रहकृष्टि की आदि कृष्टि इनके बीच की कृष्टियों का घात होने से एक विशेष घटता क्रम नहीं रहा, इसलिए पहले परस्थान गोपुच्छ था, उसका घातद्रव्य से नाश हुआ ।

आयादो वयमहियं हीणं सरिसं कहिंपि अण्णं च ।
तम्हा आयद्दव्वा ण होदि सट्ठाणगोउच्छं ।।५२५।।

आयतो व्ययमधिकं हीनं सदृशं कुत्रापि अन्यच्च ।
तस्मादायद्रव्यान्न भवति स्वस्थानगोपुच्छम् ।।५२५।।

टीका – यहां कोई कहेगा कि व्ययद्रव्य गया और आयद्रव्य आया, इसलिए व्ययद्रव्य से स्वस्थान गोपुच्छ का नाश कहो और आयद्रव्य से स्वस्थान गोपुच्छ का होना कहो; वहां कहते हैं –

कहीं संग्रहकृष्टि में आयद्रव्य से व्ययद्रव्य अधिक है, कहीं हीन है, कहीं समान है, कहीं आयद्रव्य है व्ययद्रव्य नहीं है, कहीं व्ययद्रव्य है आयद्रव्य नहीं है । इसलिए आयद्रव्य से स्वस्थान गोपुच्छ नहीं होता । *(देखिये गाथा ५२२ की टीका का विशेषार्थ, जिसमें इन कथनों का अर्थ स्पष्ट भासित होगा)*

अब जैसे स्वस्थान, परस्थान गोपुच्छ का सद्भाव होता है, वैसे कहते हैं –

घादयदव्वादो पुण वय आयदखेत्तदव्वगं देदि ।
सेसासंखाभागे अणंतभागूणयं देदि ।।५२६।।

घातकद्रव्यात् पुनर्व्ययमायतक्षेत्रद्रव्यकं ददाति ।
शेषासंख्यभागं अनंतभागोनकं ददाति ।।५२६।।

टीका – घातद्रव्य से व्ययद्रव्य और आयतक्षेत्र द्रव्य को देनेपर एक गोपुच्छ होता है । कैसे ? वह कहते हैं –

पहले जो व्ययद्रव्य कहा उनमें जिन कृष्टियों का घात किया उन कृष्टियों का व्ययद्रव्य घटाकर अवशेष रहे उतना द्रव्य घातद्रव्य से ग्रहण करके जिन कृष्टियों का जितना-जितना व्ययद्रव्य हुआ था, उन कृष्टियों का उतना-उतना देकर पूर्ण करनेपर स्वस्थान गोपुच्छ का सद्भाव होता है ।

घातकृष्टि संबंधी व्ययद्रव्य कितना ? वह कहते हैं –

अपनी-अपनी संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देनेपर उस अंत कृष्टि के व्ययद्रव्य का प्रमाण आता है । उसको अपनी-अपनी घातकृष्टियों के प्रमाण से गुणित करके वहां विशेष अधिक करनेपर सर्व घातकृष्टि संबंधी व्ययद्रव्य का प्रमाण होता है । घातकृष्टियों का तो नाश ही हुआ, वहां द्रव्य

देना ही नहीं, इसलिए इसको व्ययद्रव्य में से घटाकर अवशेष व्ययद्रव्य मात्र द्रव्य देने से स्वस्थान गोपुच्छ की सिद्धि होती है ।

लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की घात करने के पश्चात् अवशेष रही कृष्टियों में से जो अंत कृष्टि, उससे लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि है, वह बीच की कृष्टियों का घात होने से एक अधिक लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की घातकृष्टियों के प्रमाण मात्र जो विशेष अर्थात् चय उनसे हीन हुयी । इसलिए अपने नीचे लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की घातकृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेषों का जितना द्रव्य हो उतने द्रव्य को अपने घातद्रव्य से ग्रहण करके वहां लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि में देनेपर यह प्रथम कृष्टि उस तृतीय संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि से एक विशेष मात्र हीन होती है । ऐसे ही इसकी द्वितीयादि घात किये पीछे अवशेष रही कृष्टियों की अंत कृष्टि तक की कृष्टियों में उतना-उतना द्रव्य घातद्रव्य से ग्रहण करके देनेपर लोभ की तृतीय, द्वितीय संग्रहकृष्टि में एक गोपुच्छ हुआ । इसलिए यहां आय से नीचे तृतीय संग्रहकृष्टि की घातकृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष, उनके द्रव्य प्रमाण तो चौड़ा और अपनी घात किये पीछे अवशेष रही कृष्टियों के प्रमाण मात्र लंबा क्षेत्र कल्पना करनेपर एक आयत चतुरस्र क्षेत्र हुआ ।

इसी प्रकार आय के नीचे द्वितीय, तृतीय संग्रहकृष्टि, उन दोनों की घातकृष्टियों का जितना प्रमाण उतने विशेष प्रमाण तो जुदा-जुदा चौड़ा और अपने घात किये पीछे अवशेष रही कृष्टियों के प्रमाण मात्र लंबा ऐसे दो आयत चतुरस्र क्षेत्र प्रमाण द्रव्य को अपने घातद्रव्य से ग्रहण करके लोभ के प्रथम संग्रहकृष्टि की प्रथमादि कृष्टियों में देनेपर लोभ की तीनों संग्रहकृष्टियों का एक गोपुच्छ हुआ ।

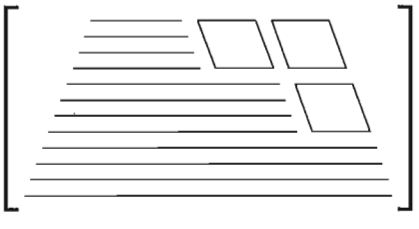

इसी क्रम से अपने नीचे की संग्रहकृष्टियों के घातकृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेषों द्वारा तो जुदा जुदा चौड़ा और अपना घात करने के पश्चात् अवशेष रहीं कृष्टियों के प्रमाण मात्र लंबा ऐसे क्रम से तीन, चार, पांच, छह, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह आयत चतुरस्र क्षेत्ररूप द्रव्य को अपने-अपने घातद्रव्य से ग्रहण करके क्रम से माया की तृतीय संग्रहकृष्टि से लेकर क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि तक की

संग्रहकृष्टियों में देनेपर बारह संग्रहकृष्टियों का एक गोपुच्छ होता है । इसतरह आयत चतुरस्र क्षेत्ररूप द्रव्य देने से परस्थान गोपुच्छ की सिद्धि हुयी । इसप्रकार स्वस्थान, परस्थान गोपुच्छ संपूर्ण होता है ।

पुनश्च यहां मोहनीय का सर्वद्रव्य साधिक डेढ़ गुणहानि गुणित आदि वर्गणा मात्र है, उसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर साधिक नौगुणा करनेपर समस्त व्ययद्रव्य का प्रमाण आता है । क्योंकि मोह के सर्वद्रव्य को चौबीस का और अपकर्षण भागहार का भाग देनेपर एक व्ययद्रव्य का प्रमाण होता है तथा पूर्वोक्त समस्त व्ययद्रव्यों को जोड़नेपर दो सौ छब्बीस होते हैं *(देखिये वही विशेषार्थ)* । वहां दो सौ छब्बीस गुणकार का चौबीस *(भागहार)* से अपवर्तन करनेपर *(भाग देनेपर)* साधिक नौ का गुणकार होता है ।

[*विशेषार्थ :*

$$\text{एक व्ययद्रव्य} = \frac{\text{सर्वद्रव्य}}{२४ \times \text{अ}} \qquad \text{अ} = \text{अपकर्षणभागहार}$$

$$\text{समस्त व्ययद्रव्य} = \frac{\text{सर्वद्रव्य} \times \cancel{२२६}^{९}}{\cancel{२४}_{१} \times \text{अ}}$$

]

पुनश्च मोहनीय के सर्वद्रव्य को अपकर्षण भागहार के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर सर्व घातद्रव्य का प्रमाण होता है । इस घातद्रव्य से पूर्वोक्त व्ययद्रव्य और आयत चतुरस्र क्षेत्ररूप जो द्रव्य ग्रहण किया वह उसके असंख्यातवें भाग मात्र है, उसको घटानेपर अवशेष बहुभाग मात्र द्रव्य रहा, उसको अनंतवें भाग मात्र एक विशेष, उससे घटते क्रम से देता है । कैसे ? वह कहते हैं –

सर्व अवशेष घातद्रव्य को घात करने के पश्चात् अवशेष रही कृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ का भाग देनेपर मध्यधन होता है । उसको एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर विशेष का प्रमाण आता है । गच्छ का एक बार संकलनधन करके उस चय को गुणा करनेपर उत्तरधन *(चयधन)* आता है । उसको उस द्रव्य में से घटानेपर आदिधन आता है, उसको गच्छ का भाग देनेपर एक खंड

का प्रमाण आता है । वहां एक खंड को और उत्तरधन से गच्छ प्रमाण विशेषों को ग्रहण कर लोभ की जघन्य कृष्टि में देता है । उसकी द्वितीय कृष्टि से लेकर क्रोध की उत्कृष्ट कृष्टि तक एक-एक खंड समानरूप और उत्तरधन में से एक-एक विशेष घटता देता है । इसतरह अवशेष घातद्रव्य सर्व समाप्त होता है । ऐसे होनेपर सर्वत्र एक गोपुच्छ होता है ।

उदयगदसंगहस्स य मज्झिमखंडादिकरणमेदेण ।
दव्वेण होदि णियमा एवं सव्वेसु समयेसु ।।५२७।।

उदयगतसंग्रहस्य च मध्यमखंडादिकरणमेतेन ।
द्रव्येण भवति नियमादेवं सर्वेषु समयेषु ।।५२७।।

टीका – उदय को प्राप्त जो संग्रहकृष्टि, उसका इस घातद्रव्य से ही मध्यमखंडादिक करना होता है ।

भावार्थ – जिस संग्रहकृष्टि को वेदता है, उसमें आयद्रव्य का अभाव है । इसलिए संक्रमणद्रव्य से किये जानेवाले मध्यमखंडादिक होगे नहीं । इसलिए मध्यमखंड, उभयद्रव्यविशेष इत्यादि वक्ष्यमान विधान करने के लिये उस भोगनेरूप संग्रहकृष्टि के घातद्रव्य से उसके असंख्यातवें भाग मात्र द्रव्य को जुदा रखकर, अवशेष घातद्रव्य ही को पूर्वोक्त प्रकार से विशेष घटते क्रम सहित एक गोपुच्छाकार से देता है । एकभाग का आगे मध्यमखंडादि विधान से द्रव्य देना कहेंगे, वह जानना । इसतरह प्रतिसमय सर्व समयों में विधान होता है ।

इसप्रकार घातद्रव्य द्वारा एक गोपुच्छ हुआ । अब अन्य संग्रहकृष्टि का जो विवक्षित संग्रहकृष्टि में द्रव्य आया, उसको पहले आयद्रव्य कहा था, उसका नाम यहां संक्रमणद्रव्य है । नवीन समयप्रबद्ध में जो द्रव्य बंध द्वारा कृष्टिरूप होता है, उसे बंधद्रव्य कहते हैं । उसका विधान कैसे है ? वह कहते हैं –

कितने ही संक्रमणद्रव्य और बंधद्रव्य से कितनी ही नवीन अपूर्वकृष्टि करता है । वहां संक्रमणद्रव्य से तो उन संग्रहकृष्टियों की तो जघन्य कृष्टि, उसके नीचे कितनी ही नवीन अपूर्वकृष्टि करता है । इनका नाम अधःस्तनकृष्टि है । पुनश्च कितनी

ही उन संग्रहकृष्टियों की पूर्व अवयवकृष्टियों के बीच-बीच नवीन अपूर्वकृष्टि करता है, इनका नाम अंतरकृष्टि है । बंधद्रव्य से अवयवकृष्टियों के बीच-बीच ही नवीन अपूर्वकृष्टि करता है, इनका भी नाम अंतरकृष्टि है । पुनश्च कितने ही संक्रमणद्रव्य और बंधद्रव्य को पूर्वकृष्टियों में ही निक्षेपण करता है, यह विधान कहते हैं ।

हेट्ठाकिट्टिप्पहुदिसु संकमिदासंखभागमेत्तं तु ।
सेसासंखाभागा अंतरकिट्टिस्स दव्वं तु ।।५२८।।

अध:स्तनकृष्टिप्रभृतिषु संक्रमितासंख्यभागमात्रं तु ।
शेषा असंख्यभागा अंतरकृष्टेर्द्रव्यं तु ।।५२८।।

टीका – संक्रमणद्रव्य को असंख्यात का भाग देकर वहां एकभाग मात्र द्रव्य तो नीचे की कृष्टि आदि में देता है ।

भावार्थ – इस द्रव्य द्वारा अध:स्तन अपूर्वकृष्टि करता है । अवशेष असंख्यात बहुभाग है, वह अंतरकृष्टियों का द्रव्य है, इसके द्वारा अंतरकृष्टि करता है ।

बंधद्दव्वाणंतिमभागं पुण पुव्वकिट्टिपडिबद्धं ।
सेसाणंता भागा अंतरकिट्टिस्स दव्वं तु ।।५२९।।

बंधद्रव्यानंतिमभागं पुन: पूर्वकृष्टिप्रतिबद्धं ।
शेषानंता भागा अंतरकृष्टेर्द्रव्यं तु ।।५२९।।

टीका – बंधद्रव्य को अनंत का भाग देकर वहां एकभाग मात्र तो पूर्वकृष्टि संबंधी है । इस द्रव्य को पूर्वोक्त पूर्वकृष्टि में निक्षेपण करता है । अवशेष अनंत बहुभाग अंतरकृष्टियों का द्रव्य है । इस द्रव्य से नवीन अंतरकृष्टि करता है ।

कोहस्स पढमकिट्टि मोत्तूणेकारसंगहाणं तु ।
बंधणसंकमदव्वादपुव्वकिट्टिं करेदी हु ।।५३०।।

क्रोधस्य प्रथमकृष्टि मुक्त्वा एकादशसंग्रहाणां तु ।
बंधनसंक्रमद्रव्यादपूर्वकृष्टिं करोति हि ।।५३०।।

टीका – क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि बिना अवशेष ग्यारह संग्रहकृष्टियों में यथासंभव बंधद्रव्य और संक्रमणद्रव्य से अपूर्वकृष्टि करता है । क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमणद्रव्य के अभाव से बंधद्रव्य द्वारा ही अपूर्वकृष्टि करता है ।

बंधणदव्वादो पुण चदुसुट्ठाणेसु पढमकिट्टीसु ।
बंधापुव्वकिट्टीदो संकमकिट्टी असंखगुणा ।।५३१।।

बंधनद्रव्यात्पुनः चतुर्षु स्थानेषु प्रथमकृष्टिषु ।
बंधापूर्वकृष्टितः संक्रमकृष्टिः असंख्यगुणा ।।५३१।।

टीका – बंधद्रव्य से क्रोधादि चार कषायों की प्रथम संग्रहकृष्टिरूप जो चार स्थान, उन्हीं में अपूर्वकृष्टि करता है । संक्रमणद्रव्य से पूर्व में ग्यारह स्थानों में कृष्टि करनी कही है । बंधद्रव्य से उत्पन्न अपूर्वकृष्टियों से संक्रमणद्रव्य से उत्पन्न अपूर्वकृष्टि पल्य के असंख्यातवें भागगुणी हैं; क्योंकि बंधद्रव्य समयप्रबद्ध मात्र है, उससे संक्रमणद्रव्य असंख्यातगुणा है । और कृष्टि हैं, वे द्रव्य के अनुसार निर्जरती हैं ।

संखातीदगुणाणि य पल्लस्सादिमपदाणि गंतूण ।
एक्केक्कबंधकिट्टी किट्टीणं अंतरे होदि ।।५३२।।

संख्यातीतगुणानि च पल्यस्यादिमपदानि गत्वा ।
एकैकबंधकृष्टिः कृष्टिनामंतरं भवति ।।५३२।।

टीका – जिन संग्रहकृष्टियों का बंध पाया जाता है, उनकी जो अवयवकृष्टि हैं, उनमें से उनके असंख्यातवें भाग मात्र नीचे की और ऊपर की कृष्टि तो बंधयोग्य ही नहीं हैं और बीच में जो बहुभाग मात्र बध्यमान कृष्टि हैं, उनकी दो कृष्टियों के बीच एक अंतराल, फिर एक कृष्टि यह और एक ऊपर की उनके बीच एक अंतराल ऐसे जो अंतराल हैं; उनमें से पहला, दूसरा आदि असंख्यात पल्य के प्रथम वर्गमूल मात्र अंतराल उल्लंघकर जो अंतराल है, उसमें नवीन एक अपूर्वकृष्टि करता है । उसके ऊपर उतने ही अंतराल उल्लंघकर जो अंतराल आता है, वहां दूसरी अपूर्वकृष्टि करता है । ऐसे ही बंध की उत्कृष्ट कृष्टि के नीचे असंख्यात पल्य के वर्गमूल मात्र

कृष्टि उतरकर वहां अंतराल में जो उत्कृष्ट अपूर्वकृष्टि करता है, वहां तक इसी क्रम सहित कृष्टियों के बीच अपूर्वकृष्टियों का होना जानना ।

दिज्जदि अणंतभागेणूणकमं बंधगे य णंतगुणं ।
तण्णंतरे णंतगुणूणं तत्तोणंतभागूणं ।।५३३।।

दीयते अनंतभागेनोनक्रमं बंधके चानंतगुणं ।
तदनंतरेऽनंतगुणोनं ततोऽनंतभागोनं ।।५३३।।

टीका – बंधद्रव्य कृष्टियों में कैसे देता है ? वह कहते हैं –

प्रथम पूर्वकृष्टि में बहुत द्रव्य देता है । दूसरी पूर्वकृष्टि में उसके अनंतवें भाग मात्र जो एक विशेष, उससे हीन द्रव्य देता है । ऐसे जब तक अपूर्वकृष्टि प्राप्त न हो तब तक अनंतभागरूप विशेष घटता क्रम से द्रव्य देता है । वहां अंत कृष्टि में दिये द्रव्य से अपूर्वकृष्टि में अनंतगुणा द्रव्य देता है, क्योंकि यह कृष्टि इसी द्रव्य द्वारा नवीन उत्पन्न होती है । इससे इसके अनंतरवर्ती जो पूर्वकृष्टि, उसमें अनंतगुणा हीन द्रव्य देता है । उसके ऊपर अनंतवां भागरूप विशेष घटते क्रम से द्रव्य तब तक देता है, जब तक अपूर्वकृष्टि प्राप्त न हो । इसी अनुक्रम से बंध की उत्कृष्ट कृष्टि तक बंधद्रव्य देने का विधान जानना । नवीन बंधद्रव्य से की हुयी अपूर्वकृष्टि भी अनंत हैं ।

ऐसा बंधकृष्टियों का स्वरूप कहा ।

संकमदो किट्टीणं संगहकिट्टीणमंतरे होदि ।
संगह अंतरजादो किट्टी अंतरभवा असंखगुणा ।।५३४।।

संक्रमत: कृष्टीनां संग्रहकृष्टीनामंतरे भवति ।
संग्रहे अंतरजात: कृष्टिरंतर्भवा असंख्यगुणा ।।५३४।।

टीका – संक्रमणद्रव्य से निपजी *(उत्पन्न)* जो अपूर्वकृष्टि, कितनी ही तो संग्रहकृष्टियों के नीचे निपजती हैं और कितनी ही पूर्व अवयवकृष्टियों के अंतराल में निपजती हैं । वहां संग्रहकृष्टियों के अंतराल में निपजी कृष्टियों से अवयवकृष्टियों

के अंतराल में निपजी कृष्टि असंख्यातगुणा हैं ।

संगहअंतरजाणं अपुव्वकिट्टिं व बंधकिट्टिं वा ।
इदराणमंतरं पुण पल्लपदासंखभागं तु ।।५३५।।

संग्रहांतरजानामपूर्वकृष्टिमिव बंधकृष्टिमिव ।
इतरेषामंतरं पुनः पल्यपदासंख्यभागस्तु ।।५३५।।

टीका – संग्रहकृष्टियों के नीचे जो कृष्टि की, वहां द्रव्य देने का विधान तो जैसे कृष्टिकारक के द्वितीय समय में अपूर्वकृष्टियों का विधान कहा था वैसे जानना । विशेष इतना –

वहां अधःस्तन अपूर्वकृष्टि की अंत कृष्टि में दिये द्रव्य से पूर्वकृष्टि की जघन्य कृष्टि में दिया द्रव्य असंख्यातवें भाग घटता कहा था, यहां असंख्यातगुणा घटता जानना, क्योंकि यहां अधःस्तनकृष्टि द्रव्य से मध्यमखंड द्रव्य असंख्यातगुणा घटता है । पुनश्च वहां पूर्वकृष्टि की अंत कृष्टि में दिये द्रव्य से अपूर्वकृष्टि की आदि कृष्टि में दिया द्रव्य असंख्यातवां भाग अधिक कहा था, यहां असंख्यातगुणा बढ़ता जानना; क्योंकि यहां मध्यमखंड के द्रव्य से अधःस्तनकृष्टि का द्रव्य असंख्यातगुणा है । पुनश्च अवयवकृष्टियों के बीच जो नवीन कृष्टि की, वहां द्रव्य देने का विधान, जैसे बंधद्रव्य से निपजी अपूर्वकृष्टियों में विधान कहा, वैसे जानना । विशेष इतना –

वहां असंख्यात पल्य के वर्गमूल प्रमाण अंतरालरूप स्थान जा-जाकर बंधद्रव्य से निपजी एक-एक अपूर्वकृष्टि कही थी । यहां पल्य के प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भाग मात्र जो उत्कर्षण वा अपकर्षण भागहार, उसका जितना प्रमाण, उतने-उतने अंतराल जानेपर संक्रमणद्रव्य द्वारा एक-एक अपूर्वकृष्टि निपजाता है ।

अब यहां प्रथम द्रव्य देने का विशेष तात्पर्य निरूपण करते हैं –

वहां प्रथम ही क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि बिना अंत ग्यारह संग्रहकृष्टियों में जो आयद्रव्य है, उसीका नाम संक्रमणद्रव्य है । क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में आयद्रव्य का तो अभाव है, इसलिए उसका और पहले कहा था *(गाथा ५२७ के भावार्थ में)* जो वेद्यमान संग्रहकृष्टि में घातद्रव्य के असंख्यातवें भाग मात्र द्रव्य को

जुदा स्थापना । उस जुदा स्थापित घातद्रव्य को देने का विधान कहते हैं – पूर्वकृष्टियों में एक-एक विशेष घटता क्रम है, उस विशेष का प्रमाण लाते हैं –

यहां घात करने के पश्चात् अवशेष सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र जो गच्छ, उस एक कम गच्छ के आधे से हीन जो दोगुणहानि, उससे गुणित जो गच्छ, उसका भाग सर्वद्रव्य को देनेपर एक विशेष होता है । लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में एक-एक विशेष आदि और एक विशेष उत्तर और एक कम अपनी कृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके, श्रेणी व्यवहार गणित से जो संकलनधन आता है उतना अध:स्तनशीर्ष *(विशेष)* द्रव्य है । और अन्य संग्रहकृष्टियों में जितनी नीचे की संग्रहकृष्टियों संबंधी कृष्टियों का प्रमाण उतने विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और अपनी-अपनी कृष्टियों का प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके जो संकलनधन आता है उतना-उतना **अध:स्तनशीर्ष *(विशेष)* द्रव्य** है । इसको ग्यारह संग्रहकृष्टियों के आयद्रव्य से और क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के घातद्रव्य से ग्रहण कर जुदा स्थापना । इसको यथायोग्य कृष्टियों में देनेपर सर्व पूर्वकृष्टि लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि के समान होती हैं ।

पुनश्च लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि को अपकर्षण भागहार से असंख्यातगुणा ऐसे पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एक खंड का प्रमाण आता है, उसको अपनी-अपनी कृष्टियों के प्रमाण से गुणा करनेपर अपना-अपना **मध्यमखंड द्रव्य** होता है । इसको ग्यारह संग्रहकृष्टियों के आयद्रव्य से और क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के घातद्रव्य से ग्रहण करके जुदा स्थापना । इसको एक-एक खंड करके कृष्टियों में देनेपर सर्व कृष्टि समान ही रहती हैं ।

पुनश्च एक मध्यमखंड से अधिक जो लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि का द्रव्य, उस प्रमाण एक अध:स्तनकृष्टि का द्रव्य स्थापित करके, उसको अपनी-अपनी कृष्टियों के प्रमाण को अपकर्षण भागहार से असंख्यातगुणा ऐसे पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर संग्रहकृष्टियों के नीचे की हुयी अध:स्तनकृष्टियों का प्रमाण आता है, उससे गुणा करनेपर **अध:स्तन अपूर्वकृष्टि संबंधी द्रव्य** होता है । इसको ग्यारह संग्रहकृष्टियों के आयद्रव्य से ग्रहण करके जुदा स्थापना । इसके द्वारा संग्रहकृष्टियों के नीचे नवीन अपूर्वकृष्टि निपजती हैं । क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में

संक्रमणद्रव्य के अभाव से *(उसके)* नीचे अपूर्वकृष्टि नहीं होती ।

पुनश्च पूर्व-अपूर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ, सो एक कम गच्छ के आधे से हीन जो दोगुणहानि, उससे गुणित गच्छ, उसका भाग यहां पाये जानेवाले सर्वद्रव्य को देनेपर उभयद्रव्य का एक विशेष होता है । क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में एक विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और अपनी भोगनेरूप क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके, वहां जितना संकलनधन हुआ, उतना **उभयद्रव्यविशेष द्रव्य** हुआ । उसमें से अपना एक विशेष का अनंतवां भाग मात्र द्रव्य घटानेपर जो द्रव्य हुआ, उसको क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के घातद्रव्य से ग्रहण करके जुदा स्थापना । यहां क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का घातद्रव्य जुदा स्थापित किया था, वह पूर्ण हुआ ।

पुनश्च जो पहले संग्रहकृष्टि हुयी उनकी कृष्टियों के प्रमाण से एक अधिक विशेष तो आदि, एक विशेष उत्तर और अपनी-अपनी पूर्व-अपूर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके संकलन करनेपर अपना-अपना उभयद्रव्यविशेष द्रव्य होता है । इसको ग्यारह संग्रहकृष्टियों के अपने-अपने आयद्रव्य से ग्रहण करके जुदा स्थापना ।

विशेष इतना – जो संग्रहकृष्टि बंधती है उसके उभयद्रव्यविशेष में से एक विशेष का अनंतवां भाग मात्र द्रव्य घटाना । यह घटाया द्रव्य बंधद्रव्य से ग्रहण करके देना । इसको यथायोग्य कृष्टियों में देनेपर सर्व पूर्व-अपूर्व कृष्टियों के विशेष घटता क्रमरूप गोपुच्छ होता है । इन पूर्वोक्त चार द्रव्यों को *(जो मोटे अक्षरों में लिखे हैं)* घटाकर अवशेष जो अपना-अपना आयद्रव्य रहा, उसको अपनी-अपनी संक्रमणद्रव्य से की हुयी अपूर्व अंतरकृष्टियों के प्रमाण का भाग देनेपर, एक अंतरकृष्टि संबंधी एक खंड होगा उसको अपनी-अपनी संक्रमणद्रव्य से की हुयी अंतरकृष्टियों के प्रमाण से गुणित करनेपर, अपने-अपने संक्रमणद्रव्य से निपजी हुयी अंतरकृष्टियों के समान द्रव्य होता है । उसको जुदा स्थापित करना । इसके द्वारा पूर्वकृष्टियों के बीच-बीच नवीन अपूर्वकृष्टि निपजाता है ।

यहां संक्रमणद्रव्य से हुयी अंतरकृष्टियों का प्रमाण लाने का उपाय कहते हैं । एक मध्यमखंड से अधिक लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की प्रथम कृष्टि के द्रव्य

मात्र द्रव्य से एक कृष्टि होती है, तो पूर्वोक्त चार प्रकार के द्रव्य से हीन अपने-अपने आयद्रव्य से कितनी कृष्टि होगी ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर लब्ध मात्र संक्रमणद्रव्य द्वारा की हुयी अंतरकृष्टियों का प्रमाण आता है । इसका भाग अपनी-अपनी पूर्वकृष्टियों को देनेपर अपनी-अपनी अंतरकृष्टि के अंतराल का प्रमाण आता है । दो अपूर्व अंतरकृष्टियों के बीच इतनी पूर्वकृष्टि पायी जाती हैं । इसतरह संक्रमणद्रव्य से उत्पन्न कृष्टियों का द्रव्य विभाग कहा ।

अब बंधद्रव्य द्वारा उत्पन्न कृष्टियों का द्रव्य विभाग कहते हैं । मोहनीय के एक समयप्रबद्ध को आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग के चार समान पुंज करना । अवशेष एकभाग को आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग प्रथम पुंज में जोड़नेपर लोभ का बंधद्रव्य होता है । अवशेष एकभाग को आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग द्वितीय पुंज में जोड़नेपर माया का बंधद्रव्य होता है । अवशेष एकभाग को आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग तृतीय पुंज में जोड़नेपर क्रोध का बंधद्रव्य होता है । अवशेष एक भाग चतुर्थ पुंज में जोड़नेपर मान का बंधद्रव्य होता है । अब बंधद्रव्य द्वारा की हुयी अंतरकृष्टियों का और वहां अंतरालों का प्रमाण लाने के लिये इन द्रव्य में से बंधद्रव्य द्वारा की हुयी अंतरकृष्टियों का विशेष संकलनरूप द्रव्य और पूर्व एक विशेष का अनतंवां भाग मात्र द्रव्य जो आगे कहेंगे, उनको घटानेपर अवशेष जितना-जितना द्रव्य रहा उसको इच्छाराशि करके त्रैराशिक करते हैं –

एक मध्यमखंड से अधिक लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि के द्रव्य मात्र द्रव्य से एक अंतरकृष्टि द्रव्य होता है तो पूर्वोक्त द्रव्य से कितनी अंतरकृष्टि होगी ? ऐसे त्रैराशिक करनेपर लब्ध मात्र बंधद्रव्य से उत्पन्न अंतरकृष्टियों का प्रमाण आता है, जो सर्व पूर्वकृष्टियों के प्रमाण को छह गुणहानि का भाग देनेपर जितना प्रमाण हो, उतना होता है । वे अंतरकृष्टि मान में अल्प, उससे क्रोध में विशेष अधिक, उससे माया में विशेष अधिक, उससे लोभ में विशेष अधिक जानना, क्योंकि इनके द्रव्य में भी ऐसा ही क्रम है । यहां एक-एक कषाय की एक-एक संग्रहकृष्टि का ही बंध है, इसलिए चार संग्रहकृष्टियों में ही बंधकृष्टि की रचना जानना । इन बंधद्रव्य से की हुयी अंतरकृष्टियों का प्रमाण पूर्वोक्त संक्रमणद्रव्य से

की हुयी अंतरकृष्टियों के प्रमाण से असंख्यातगुणा हीन है; क्योंकि संक्रमण की अंतरकृष्टियों का प्रमाण लाने के लिये सर्व कृष्टियों को अपकर्षण भागहार का भाग दिया और यहां बंध की अंतरकृष्टियों का प्रमाण लाने के लिये सर्व कृष्टियों को असंख्यात पल्य के प्रथम वर्गमूल का भाग दिया, यह भागहार उस भागहार से असंख्यातगुणा है । *(जहां भागहार असंख्यातगुणा होता है, वहां लब्ध का प्रमाण असंख्यातवें भाग मात्र होता है ।)*

पुनश्च अपनी-अपनी संग्रहकृष्टि की ऊपर और नीचे की असंख्यातवें भाग मात्र कृष्टि छोड़कर संक्रमण की अंतरकृष्टि सहित जो बीच की असंख्यात बहुभाग मात्र बंधरूप पूर्वकृष्टि, उनको बंधद्रव्य द्वारा की हुयी अपनी-अपनी अपूर्व अंतरकृष्टियों के प्रमाण का भाग देनेपर लोभ, माया, मान में गुणहानि का चौथा भाग मात्र और क्रोध में इससे तेरहगुणा अंतराल का प्रमाण होता है । बंधद्रव्य द्वारा की हुयी ऐसी दो अपूर्वअंतरकृष्टियों के बीच जितनी पूर्वकृष्टि पायी जाती हैं, उनके प्रमाण का नाम यहां अंतराल जानना । यह अंतराल संक्रमण की अंतरकृष्टियों के अंतराल से असंख्यातगुणा है । ऐसे प्रमाण लाकर अब बंधद्रव्य का विभाग कहते हैं –

अपने-अपने पूर्वोक्त बंधद्रव्य को स्थापित करके, उसको अनंत का भाग देकर वहां एकभाग जुदा रखकर अवशेष बहुभाग रहे, उनसे बंधांतरकृष्टिविशेष द्रव्य ग्रहण करके जुदा स्थापना, उसका प्रमाण कहते हैं – बंधद्रव्य द्वारा की हुयी जो अपूर्वअंतरकृष्टि, उनमें से अंत कृष्टि में, पूर्वकृष्टि की अंत कृष्टि से जितनी कृष्टि नीचे यह पायी जाती है, उतने विशेष इसमें चाहिये, उसको तो आदि स्थापना और बीच में जो अंतराल का प्रमाण उतने विशेष उत्तर स्थापना और अपनी-अपनी बंधद्रव्य द्वारा की हुयी अंतरकृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ स्थापना । ऐसे स्थापनेपर जो संकलनधन आता है उतना बंधांतरकृष्टिविशेष द्रव्य जानना । इस द्रव्य से बंधद्रव्य से जो नवीन अपूर्वकृष्टि की हैं उनमें, जैसे अन्य कृष्टियों का और इनका एक गोपुच्छ हो वैसे विशेषों का सद्भाव होता है । सो एक विशेष के अनंतवें भाग मात्र से हीन पहले उभयद्रव्यविशेष कहे थे, उनमें इनका अवस्थान जानना ।

भावार्थ – अन्य कृष्टियों में तो पूर्वोक्त संक्रमणद्रव्य का उभयद्रव्यविशेष द्रव्य देना और बंध की अंतरकृष्टियों में यहां कहा हुआ बंधांतरविशेष द्रव्य देना । यहां

भी एक विशेष का अनंतवां भाग मात्र हीनपना जानना, क्योंकि यहां भी आगे कहेंगे ऐसे एक विशेष के अनंतवें भाग मात्र बंधद्रव्य का निक्षेपण होता है । ऐसे देनेपर अन्य कृष्टियों के और बंधद्रव्य की हुयी नवीन कृष्टियों के एक गोपुच्छ होता है ।

उन बहुभागों में से इतना द्रव्य घटानेपर अवशेष रहे द्रव्य को बंध की नवीन अंतरकृष्टियों के प्रमाण का भाग देनेपर एक खंड मात्र एक कृष्टि का द्रव्य होता है । उसको बंध की अंतरकृष्टियों के प्रमाण से गुणित करनेपर सर्व कृष्टियों संबंधी द्रव्य होता है, इसका नाम बंधांतरकृष्टिसमानखंड द्रव्य है । इस द्रव्य से समान प्रमाण सहित बंध की नवीन अपूर्वकृष्टि निपजती हैं ।

पहले जो बंध के द्रव्य को अनंत का भाग देकर एकभाग जुदा रखा था, उसमें से बंधविशेष द्रव्य ग्रहण करके जुदा स्थापना । वह कितना है ? सो कहते हैं –

पूर्व-अपूर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र यहां गच्छ, एक/गच्छ के आधे से हीन जो दोगुणहानि, उससे गुणित गच्छ का भाग उस जुदे रखे एकभाग को देनेपर एक विशेष होता है, उसको अपने सर्व बंधकृष्टियों के प्रमाण से गुणा करनेपर बंधविशेष द्रव्य होता है । इस द्रव्य को जहां उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से अनंतवां भाग घटाया था, वहां देना । जुदे रखे एकभाग में से इतना द्रव्य घटानेपर जो अवशेष रहा, उसको अपनी सर्व बंधकृष्टियों के प्रमाण का भाग देनेपर एक खंड होता है, उसको अपनी बंधकृष्टियों के प्रमाण से गुणा करनेपर जो द्रव्य होता है, वह बंध का मध्यमखंड द्रव्य जानना । यह द्रव्य अवशेष रहा, उसको बंधकृष्टियों में समानरूप जहां उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से एक विशेष का अनंतवां भाग घटाया था, वहां ही देना ।

भावार्थ – बंध का विशेष और मध्यमखंड का द्रव्य देनेपर उभयद्रव्य के विशेष में से जो द्रव्य घटाया था, वह पूर्ण हुआ । ऐसे बंधद्रव्य का विभाग जानना ।

अब इन संक्रमणद्रव्य का और बंधद्रव्य देने का विधान कहते हैं –

वहां लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में तो बंधद्रव्य का अभाव है, इसलिए वहां संक्रमणद्रव्य ही को देने का विधान कहते हैं –

लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में पांच प्रकार का द्रव्य कहा । वहां नीचे जो अपूर्वकृष्टि की उनकी जघन्य कृष्टि में (१) अधःस्तनखंड में से एक खंड, (२) मध्यमखंड में

से एकखंड (३) उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से सर्व पूर्व-अपूर्व कृष्टि मात्र विशेषों को ग्रहण करके यहां निक्षेपण करता है इसलिए यह आगे कृष्टियों में दिये द्रव्य से बहुत है । उसके ऊपर जो द्वितीयादि अंत तक की जो अध:स्तन अपूर्वकृष्टि, उनमें एक-एक अध:स्तनखंड और एक-एक मध्यमखंड तो समानरूप देता है और उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से एक-एक विशेष घटता ऐसा द्रव्य देता है । यहां अध:स्तनखंड द्रव्य तो समाप्त हुआ । उसके ऊपर पूर्वकृष्टि की प्रथम कृष्टि में मध्यमखंड द्रव्य में से एक खंड, उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से जितनी कृष्टि होती आयी उनसे हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष ग्रहण करके निक्षेपण करता है । यह अपूर्वकृष्टियों के अंत कृष्टि में दिये द्रव्य से असंख्यातगुणा हीन है, क्योंकि मध्यमखंड से अध:स्तनकृष्टि खंड असंख्यातगुणा है और एक उभयद्रव्यविशेष भी यहां घटा है ।

उसके ऊपर द्वितीयादि पूर्वकृष्टियों में एक, दो आदि एक-एक बढ़ते (४) अध:स्तनशीर्ष के विशेष और एक-एक मध्यमखंड और पहले हो चुकी कृष्टियों से हीन सर्वकृष्टि प्रमाण उभयद्रव्य के विशेष क्रम से जब तक अपकर्षण भागहार के अर्ध प्रमाण मात्र पूर्वकृष्टि होगी तब तक निक्षेपण करता है । यहां कृष्टियों में एक उभयद्रव्य के विशेष में से एक अध:स्तनशीर्षविशेष घटानेपर जो प्रमाण होता है, उतने विशेष से घटता दिये द्रव्य का क्रम जानना ।

उनके ऊपर संक्रमणद्रव्य से की हुयी अपूर्वअंतरकृष्टि हैं । उनमें (५) अंतरकृष्टि संबंधी समानखंड द्रव्य में से एक खंड, उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से हुयी कृष्टियों से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेषों को ग्रहण करके निक्षेपण करता है । यह नीचे की पूर्वकृष्टि में दिये द्रव्य से असंख्यातगुणा है । क्योंकि एक कम हुयी कृष्टियों के प्रमाण मात्र पूर्व विशेष और एक मध्यमखंड का द्रव्य इनसे हीन जो यह अंतरकृष्टि संबंधी एक खंड है, वह पूर्वकृष्टि के समान है, सो उस दिये द्रव्य से असंख्यातगुणा है । वहां एक उभयद्रव्य *(विशेष)* का हीनपना जानना ।

उसके ऊपर जो पूर्वकृष्टि उसमें, हुयी पूर्वकृष्टियों के प्रमाण मात्र अध:स्तनशीर्ष के विशेष, एक मध्यमखंड और हुयी पूर्व-अपूर्व कृष्टियों के प्रमाण से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र उभयद्रव्य के विशेष देता है, यह संक्रमण की अंतरकृष्टि में दिये द्रव्य से असंख्यातगुणा हीन है, क्योंकि यहां मिले अध:स्तनशीर्ष का विशेष और

मध्यमखंड का द्रव्य, इनसे हीन अंतरकृष्टि संबंधी समानखंड का द्रव्य जो पूर्वकृष्टि के समान है, इसलिए असंख्यातगुणा हीन है ।

उसके ऊपर पूर्वकृष्टियों में एक-एक अध:स्तनशीर्ष बढ़ता, एक-एक मध्यमखंड समानरूप और एक-एक उभयद्रव्य का विशेष घटता इस क्रम से जब तक आधे अपकर्षण भागहार मात्र पूर्वकृष्टि होगी तब तक निक्षेपण करता है ।

उनके ऊपर संक्रमण की अपूर्वअंतरकृष्टि है, उसमें संक्रमण अंतरकृष्टि संबंधी समानखंड द्रव्य से एक खंड, उभयद्रव्यविशेष द्रव्य से हुयी कृष्टियों से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेषों को ग्रहण करके निक्षेपण करता है । यह इसके नीचे की पूर्वकृष्टि में दिये द्रव्य से पूर्वोक्त प्रकार से असंख्यातगुणा है ।

इसके ऊपर की पूर्वकृष्टि में, हुयी कृष्टियों के प्रमाण मात्र अध:स्तनशीर्ष के विशेष, एक मध्यमखंड और हुयी कृष्टियों से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र उभयद्रव्य के विशेष देता है । यह उन अंतरकृष्टियों में दिये द्रव्य से पूर्वोक्त प्रकार से असंख्यातगुणा हीन जानना । इसीप्रकार अपूर्वकृष्टि से पूर्वकृष्टि में असंख्यातगुणा घटते और पूर्वकृष्टि से अपूर्वकृष्टि में असंख्यातगुणा बढ़ते क्रम से लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि तक द्रव्य देने का विधान जानना ।

उसके ऊपर लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि, उसके पांच प्रकार के द्रव्य स्थापित करके, वहां उसके नीचे संक्रमणद्रव्य से की हुयी जो अध:स्तन अपूर्वकृष्टि उनकी जघन्य कृष्टि में अध:स्तनखंड से एक खंड, मध्यमखंड से एक खंड, उभयद्रव्यविशेष द्रव्य से हुयी कृष्टियों से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष ग्रहण करके निक्षेपण करता है । यह लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि में दिये द्रव्य से असंख्यातगुणा है । कारण पूर्वोक्त प्रकार से जानना । इसके ऊपर एक-एक अध:स्तनखंड और एक-एक मध्यमखंड समानरूप तथा एक-एक उभयद्रव्यविशेष घटते क्रम से अध:स्तन अपूर्वकृष्टियों की अंत कृष्टि तक देना । यहां अध:स्तनकृष्टि द्रव्य समाप्त हुआ ।

उनके ऊपर पूर्वकृष्टि की आदि कृष्टि में – हुयी पूर्वकृष्टियों के प्रमाण मात्र अध:स्तनशीर्ष के विशेष, एक मध्यमखंड और हुयी कृष्टियों से हीन सर्व कृष्टियों

के प्रमाण मात्र उभयद्रव्य के विशेष देता है, यह अपूर्वकृष्टि की अंत कृष्टि में दिये द्रव्य से असंख्यातगुणा हीन है । कारण पूर्वोक्त प्रकार से जानना । उससे आगे जैसे लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में विधान कहा, वैसे ही सर्व जानना ।

विशेष इतना – यहां अपकर्षण भागहार मात्र बीच में पूर्वकृष्टि होनेपर अपूर्वकृष्टि को निपजाता है । *(क्योंकि यहां आयद्रव्य एक है, तृतीय संग्रहकृष्टि में आयद्रव्य दो था, इसलिए आधा अपकर्षण भागहार मात्र अंतराल था ।)*

उसके ऊपर लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि है, इसका बंध भी है और इसका आयद्रव्य भी है । इसलिए यहां पांच प्रकार का संक्रमणद्रव्य और चार प्रकार का बंधद्रव्य स्थापित करके देने का विधान कहते हैं । संक्रमणद्रव्य द्वारा की हुयी नीचे की अध:स्तन अपूर्वकृष्टि की जघन्य कृष्टि में एक-एक अध:स्तनखंड, एक मध्यमखंड और हुयी कृष्टियों से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र उभयद्रव्य के विशेष निक्षेपण करता है । यह लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि में दिये द्रव्य से असंख्यातगुणा है । उसके ऊपर द्वितीयादि अंत तक की अध:स्तनकृष्टियों में एक-एक अध:स्तनखंड, एक-एक मध्यमखंड और हुयी कृष्टियों से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र उभयद्रव्य के विशेष क्रम से देता है ।

उनके ऊपर पूर्वकृष्टियों की प्रथम कृष्टि में हुयी पूर्वकृष्टियों के प्रमाण मात्र अध:स्तनशीर्ष के विशेष, एक मध्यमखंड और हुयी कृष्टियों से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र उभयद्रव्य के विशेष देता है । यह अपूर्वअध:स्तनकृष्टि की अंत कृष्टि में दिये द्रव्य से असंख्यातगुणा हीन है । यहां असंख्यातगुणा का और असंख्यातगुणा हीन का कारण पूर्वोक्त प्रकार से ही जानना ।

उसके ऊपर संक्रमण अंतरकृष्टि के अंतराल से एक कम कृष्टियों तक की कृष्टियों में एक-एक अध:स्तनशीर्ष का विशेष बढ़ते और एक-एक उभयद्रव्य का विशेष घटते ऐसे क्रम से देता है । उसके ऊपर संक्रमणद्रव्य से की हुयी अपूर्व अंतरकृष्टि में संक्रमण अंतरकृष्टि संबंधी समानखंड से एक खंड, उभयद्रव्यविशेष से, हुयी कृष्टियों से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष देता है । उसके ऊपर इसी क्रम से अपकर्षण भागहार के तीसरे भाग मात्र बीच में पूर्वकृष्टि होनेपर

एक संक्रमण की अंतरकृष्टि निपजाता है । *(कारण यहां आयद्रव्य तीन है)* वहां पूर्वकृष्टियों में तो, हुयी पूर्वकृष्टियों के प्रमाण मात्र तो अध:स्तनशीर्ष के विशेष, एक मध्यमखंड और हुयी कृष्टियों से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र उभयकृष्टिविशेष द्रव्य के विशेष देता है । तथा संक्रमण की अंतरकृष्टियों में संक्रमण अंतरकृष्टि संबंधी समान एक खंड और हुयी कृष्टियों से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र उभयद्रव्य के विशेष देता है ।

वहां इतना विशेष जानना – इनमें बंध होने योग्य कृष्टि की जघन्य कृष्टि से लेकर जो पूर्वकृष्टि और संक्रमणद्रव्य द्वारा की हुयी अपूर्वकृष्टि हैं, उनमें पूर्वोक्त संक्रमणद्रव्य अपने एक निषेक का अनंतवां भाग मात्र हीन देता है । और वहां बंधद्रव्य से पूर्व जघन्य बंधकृष्टि में तो बंधद्रव्य संबंधी मध्यमखंड से एक खंड और बंधविशेष द्रव्य से सर्व बंधकृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष द्रव्य देता है और उसके ऊपर की कृष्टियों में इससे एक-एक बंध का विशेष मात्र घटते क्रम से देता है । इसतरह संक्रमणद्रव्य में से एक विशेष का अनंतवां भाग मात्र हीन द्रव्य दिया था, वह पूर्ण होता है । इसप्रकार द्रव्य दिया, वहां अपूर्वकृष्टि में दिया द्रव्य तो आय से नीचे की पूर्वकृष्टि में दिये द्रव्य से असंख्यातगुणा बढ़ता और पूर्वकृष्टि में दिया द्रव्य आय से नीचे की अपूर्वकृष्टि में दिये द्रव्य से असंख्यातगुणा घटता जानना । इसतरह एक अधिक संक्रमणकृष्टि के अंतराल का भाग, गुणहानि का चौथा भाग मात्र जो बंधकृष्टि का अंतराल उसको देनेपर जो प्रमाण आता है, उतनी संक्रमण की अपूर्वअंतरकृष्टि जबतक पूर्ण होती है तब तक ऐसे ही क्रम जानना ।

$$\left[\text{संक्रमण की अपूर्वअंतरकृष्टि का प्रमाण} = \frac{\text{बंध की अपूर्वकृष्टि का अंतराल}}{१ + \text{संक्रमण की अपूर्वकृष्टि का अंतराल}}\right]$$

यहां जो संक्रमण की अंतरकृष्टि अंत में हुयी उसके ऊपर के अंतराल में बंध द्वारा अपूर्वअंतरकृष्टि निपजाता है । उसमें संक्रमणद्रव्य नहीं देता ।

बंधद्रव्य ही के बंधांतरकृष्टि समानखंड द्रव्य में से एक खंड, उभयद्रव्यविशेष की जगह जो अंतरकृष्टि संबंधी विशेष द्रव्य कहा उसमें से हुयी सर्व कृष्टियों के प्रमाण से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष जानना । एक विशेष के अनंतवें

भाग से हीन और मध्यमखंड में से एक खंड और बंधविशेष द्रव्य में से हुयी बंधकृष्टियों से हीन सर्व बंधकृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष ग्रहण करके देता है । सो यह इसके नीचे जो संक्रमणद्रव्य की अंतरकृष्टि में दिये बंधद्रव्य से अनंतगुणा जानना । उसके ऊपर की पूर्वकृष्टि में संक्रमणद्रव्य से हुयी कृष्टियों के प्रमाण मात्र अध:स्तनशीर्ष के विशेष, एक मध्यमखंड और हुयी कृष्टियों से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र उभयद्रव्य के विशेष अपने एक विशेष के अनंतवें भाग से हीन देता है । वहां ही बंधद्रव्य से एक मध्यमखंड और बंधविशेष द्रव्य में से, हुयी बंध कृष्टियों से हीन सर्व बंधकृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष ग्रहण करके देता है । इसके नीचे बंधांतरकृष्टियों में दिया बंधद्रव्य अनंतगुणा हीन है ।

यहां अनंतगुणा और अनंतगुणा हीन द्रव्य कहा, उसका कारण यह है कि यहां दिये बंधद्रव्य से बंधांतर का द्रव्य अनंतगुणा है । उसके ऊपर पूर्वोक्त प्रकार से बीच-बीच में पूर्वकृष्टि होगी, संक्रमण की अपूर्वकृष्टि होगी इसतरह एक अधिक संक्रमण अंतराल से बंध के अंतराल को भाग देकर जो प्रमाण आये, उतनी संक्रमण की अपूर्वअंतरकृष्टि होनेपर एक बंध की अपूर्वअंतरकृष्टि होती है, वहां द्रव्य देने का विधान पूर्वोक्त प्रकार से जानना । इसी प्रकार जब तक बंधांतरकृष्टियों की अंत कृष्टि होती है तब तक जानना । यहां बंधद्रव्य के अंतरकृष्टि संबंधी समान खंड द्रव्य और बंधांतरकृष्टिविशेष द्रव्य समाप्त हुआ । उसके ऊपर चार प्रकार के संक्रमणद्रव्य और दो प्रकार के बंधद्रव्य का ही यथायोग्य निक्षेपण होता है । वह बंध की उत्कृष्ट कृष्टि तक जानना । यहां सर्व बंधद्रव्य समाप्त हुआ । उसके ऊपर चार प्रकार का संक्रमणद्रव्य ही का यथायोग्य निक्षेपण होता है, वह अंत कृष्टि तक जानना । यहां सर्व संक्रमणद्रव्य भी समाप्त हुआ ।

जैसे लोभ की तीन संग्रहकृष्टियों में द्रव्य देने का विधान कहा वैसे ही मान, माया में भी कहना ।

विशेष इतना – मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमणद्रव्य द्वारा उत्पन्न अपूर्वकृष्टियों के बीच अंतराल अपकर्षण भागहार के पंद्रहवें भाग मात्र है । क्रोध की तृतीय, द्वितीय संग्रहकृष्टि में भी लोभवत् विधान जानना ।

विशेष इतना – संक्रमण की अंतरकृष्टियों का अंतराल यहां क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि में अपकर्षण भागहार का चौदहवां भाग मात्र, द्वितीय संग्रहकृष्टि में अपकर्षण भागहार का एक सौ बयासीवां भाग मात्र जानना । तथा लोभ, मान, माया की बध्यमान संग्रहकृष्टियों के बंध रहित जो नीचे, ऊपर की कृष्टि उनके बीच संक्रमणद्रव्य द्वारा अपूर्वअंतरकृष्टि करता है, ऐसा जानना ।

उसके ऊपर क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमणद्रव्य का तो अभाव है, इसलिए घातद्रव्य का एकभाग जुदा रखा था उसका तीन प्रकार का द्रव्य और बंधद्रव्य का चार प्रकार का द्रव्य स्थापित करना, वहां अध:स्तन अपूर्वकृष्टि होने का तो अभाव है । क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि के ऊपर प्रथम संग्रहकृष्टि की प्रथम पूर्वकृष्टि है । उसमें घातद्रव्य की हुयी पूर्वकृष्टियों के प्रमाण मात्र अध:स्तनशीर्ष के विशेष, एक मध्यमखंड और हुयी कृष्टियों से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र उभयद्रव्य के विशेष निक्षेपण करता है । यह दिया द्रव्य क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि में दिये संक्रमणद्रव्य के अनंतवें भाग मात्र हीन है ।

उसके ऊपर एक-एक अध:स्तनशीर्षविशेष बढ़ते और एक-एक उभयद्रव्य का विशेष घटते क्रम से द्रव्य देता है ।

यहां विशेष इतना – बंध होने योग्य कृष्टि की जघन्य कृष्टि समान पूर्वकृष्टि से लेकर कृष्टियों में उभयद्रव्य का विशेष द्रव्य अपने विशेष का अनंतवां भाग मात्र घटता देता है । वहां जघन्य बंधकृष्टि में बंधद्रव्य का एक मध्यमखंड और अपनी बंधकृष्टियों के प्रमाण मात्र बंध के विशेष देता है और उसके ऊपर की कृष्टियों में एक-एक बंध का विशेष घटते क्रम से देता है । इसतरह जघन्य बंधकृष्टि के ऊपर सवा तीन गुणहानि मात्र कृष्टि होनेपर उसके ऊपर के अंतराल में बंधद्रव्य द्वारा अपूर्वअंतरकृष्टि निपजाता है ।

[***विशेषार्थ*** *: बंधकृष्टि का अंतराल मान, माया, लोभ में गुणहानि का चौथा भाग होता है –* $\frac{\text{गु}}{४}$*, परंतु क्रोध में* $\frac{\text{गु}}{४} \times १३ = \text{गु} \times \frac{१३}{४} = \text{गु} \times ३\frac{१}{४}$ *= सवा तीन गुणहानि । यह बंध की अपूर्वकृष्टियों का अंतराल है ।*]

वहां (१) बंधांतरकृष्टि संबंधी समानखंड में से एक खंड, बंधांतरकृष्टिविशेष द्रव्य में से (२) जितनी सर्व कृष्टियां होते आयी उनसे हीन सर्वकृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष अपने एक विशेष के अनंतवें भाग से हीन, (३) मध्यमखंड में से एक खंड और ४) हुयी सर्व बंधकृष्टियों के प्रमाण से हीन सर्व बंधकृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष ऐसे चार प्रकार का बंधद्रव्य ही देता है; घातद्रव्य नहीं देता । यह दिया द्रव्य उसके नीचे की पूर्वकृष्टि में दिये द्रव्य से अनंतगुणा है ।

उसके ऊपर पूर्वकृष्टि में घातद्रव्य से ग्रहण करके (१) पहले हुयी सर्व पूर्वकृष्टियों के प्रमाण मात्र अध:स्तनशीर्ष के विशेष (२) एक मध्यमखंड और (३) हुयी कृष्टियों से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र उभयद्रव्य के विशेष अपने अपने विशेष के अनंतवें भाग से हीन निक्षेपण करता है । वहां बंधद्रव्य का एक मध्यमखंड और हुयी बंधकृष्टियों से हीन बंधकृष्टियों के प्रमाण मात्र बंधविशेष निक्षेपण करता है । यह बंधद्रव्य बंधांतरकृष्टि के बंधद्रव्य से अनंतगुणा हीन है । इसका सर्व पूर्व द्रव्य और दिया द्रव्य मिलकर उस बंधांतरकृष्टि से उभयद्रव्य का एक विशेष मात्र हीन है ।

उसके ऊपर पूर्वोक्त प्रमाण *(सवा तीन गुणहानि प्रमाण)* पूर्वकृष्टि होनेपर बंधद्रव्य द्वारा एक अपूर्वकृष्टि निपजती है । उनमें द्रव्य का देना पूर्वोक्त प्रकार से जानना । इसतरह बंध की उत्कृष्ट कृष्टि तक जानना । उसके ऊपर की कृष्टियों में घातद्रव्य ही का निक्षेपण अपनी उत्कृष्ट कृष्टि तक होता है । ऐसे दीयमान द्रव्य की पंक्ति का अनुक्रम जानना । सो यहां जैसे ऊंट की पीठ आदि में ऊंची, आगे नीची, आगे कहीं ऊंची, कहीं नीची होती है; वैसे कहीं बहुत, कहीं अल्प, कहीं कुछ हीन, कुछ अधिक द्रव्य देने से अनंत जगह उष्ट्रकूट रचना होती है क्योंकि ऐसे देनेपर ही सर्व कृष्टियों का एक गोपुच्छ *(दृश्यमान का)* होता है । ऐसे ही यतिवृषभ मुनि का उपदेश है । इसतरह दीयमान प्रदेशों का निरूपण किया ।

पुनश्च दृश्यमान अर्थात् पहले था और दिया हुआ द्रव्य मिलकर जैसे हुआ, *(उसकी अपेक्षा)* लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि में बहुत द्रव्य है; उससे लेकर क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की घात करने के पश्चात् जो उत्कृष्ट कृष्टि रही वहां तक कृष्टि के द्रव्य के अनंतवें भाग मात्र जो एक-एक उभयद्रव्य का विशेष

उससे हीन अनुक्रम से दृश्यमान द्रव्य जानना ।

इसप्रकार ऐसे प्रथम समय में दीयमान द्रव्य का निरूपण किया, वैसे ही द्वितीयादि समयों में जानना । ऐसे तात्पर्य निरूपण किया ।

कोहादिकिट्टिवेदगपढमे तस्स य असंखभागं तु ।
णासेदि हु पडिसमयं तस्सासंखेज्जभागकमं ।।५३६।।

क्रोधादिकृष्टिवेदकप्रथमे तस्य च असंख्यभागस्तु ।
नाशयति हि प्रतिसमयं तस्यासंख्यभागक्रमम् ।।५३६।।

टीका – क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का वेदक जीव प्रथम समय में सर्व कृष्टियों के असंख्यातवें भाग मात्र कृष्टियों का नाश करता है – घात करता है । पुनश्च द्वितीय समय में उसके असंख्यातवें भाग मात्र कृष्टियों का घात करता है । इसी क्रम से प्रतिसमय असंख्यातवें भाग मात्र क्रम से घातकृष्टियों का प्रमाण क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के द्विचरम समय तक जानना; क्योंकि अंत समय में नवकबंध और उच्छिष्टावली बिना विवक्षित संग्रहकृष्टि की सर्व ही कृष्टियों का अभाव होता है ।

कोहस्स य जे पढमे संगहकिट्टिम्हि णट्ठकिट्टीओ ।
बंधुज्झियकिट्टीणं तस्स असंखेज्जभागो हु ।।५३७।।

क्रोधस्य च याः प्रथमे संग्रहकृष्टौ नष्टकृष्टयः ।
बंधोज्झितकृष्टीनां तस्यासंख्येयभागो हि ।।५३७।।

टीका – क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टिवेदक के सर्व काल में जो कृष्टि नष्ट हुयी – जिन कृष्टियों का घात किया, उनका प्रमाण कृष्टिवेदक के प्रथम समय में क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में से ऊपर की बंधरहित कृष्टियों का प्रमाण जो पहले कहा था, उसके असंख्यातवें भाग मात्र जानना ।

कोहादिकिट्टियादिट्ठिदिम्हि समयाहियावलीसेसे ।
ताहे जहण्णुदीरइ चरिमो पुण वेदगो तस्स ।।५३८।।

क्रोधादिकृष्टिकादिस्थितौ समयाधिकावलीशेषे ।
तत्र जघन्यमुदीरयति चरमः पुनर्वेदकस्तस्य ।।५३८।।

टीका – क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की प्रथम स्थिति में समय अधिक आवली शेष रहनेपर, वहां जघन्य स्थितिउदीरणा करनेवाला होता है अर्थात् आवली के ऊपर जो एक समय संबंधी निषेक है उसमें से अपकर्षण करके उदयावली में निक्षेपण करता है । वहींपर क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टिवेदक का अंत समय होता है ।

[***विशेषार्थ*** *: यहां जो उदीरणा का अंत समय है वही प्रथम संग्रहकृष्टि के उदय का भी अंत समय है, क्योंकि सर्व निषेक उदयावली में प्रवेश कर चुकनेपर उदय रुक जाता है, द्वितीय संग्रहकृष्टि का उदय शुरु होता है ।*]

ताहे संजलणाणं बंधो अंतोमुहुत्तपरिहीणो ।
सत्तो वि य सददिवसा अडमासब्भहियछव्वरिसा ।।५३९।।

तत्र संज्वलनानां बंधो अंतर्मुहूर्तपरिहीनः ।
सत्त्वमपि च शतदिवसा अष्टमासाभ्यधिकषड्वर्षाः ।।५३९।।

टीका – वहां संज्वलन चतुष्क का स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त कम सौ दिन अर्थात् तीन महिना और दस दिन है । पहले समय में चार मास था, वह संख्यात स्थितिबंधापसरणों के द्वारा घटकर यहां इतना रहा । क्रोध की तीनों संग्रहकृष्टिवेदक काल में यदि दो मास घटता है तो एक संग्रहकृष्टिवेदक काल में कितना घटेगा, ऐसे त्रैराशिक द्वारा स्थितिबंध घटने का प्रमाण पूर्वोक्त आया ।

[***विशेषार्थ*** *: तीन कृष्टिवेदक काल में २ महिने अर्थात् ६० दिन घटे इसलिए एक कृष्टिवेदक काल में २० दिन घटे । चार महिने में बीस दिन घटकर तीन महिने दस दिन रहे ।*]

वहां संज्वलन चतुष्क का स्थितिसत्त्व अंतर्मुहूर्त कम आठ महिना अधिक छह वर्ष है । प्रथम समय में आठ वर्ष था, वह घटकर इतना रहा । क्रोध की तीनों संग्रहकृष्टिवेदक काल में यदि चार वर्ष घटता है तो एक संग्रहकृष्टिवेदक काल में

कितना घटेगा ऐसे त्रैराशिक से स्थितिसत्त्व घटने का प्रमाण पूर्वोक्त आता है ।

[*विशेषार्थ : स्थितिसत्त्व तीन संग्रहकृष्टिवेदक कालों में ४ वर्ष अर्थात् ४८ महिने घटता है इसलिए एक संग्रहकृष्टिवेदक काल में १६ महिने घटता है ।*]

घादितियाणं बंधो दसवासंतोमुहुत्तपरिहीणा ।
सत्तं संखं वस्सा सेसाणं संखऽसंखवस्साणि ।।५४०।।

घातित्रयाणां बंधो दशवर्षा अंतर्मुहूर्तपरिहीना: ।
सत्त्वं संख्यं वर्षा: शेषाणां संख्यासंख्यवर्षा: ।।५४०।।

टीका – तीन घातिकर्मों का स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त कम दस वर्ष मात्र है । प्रथम समय में संख्यात हजार वर्ष मात्र था, यहां संख्यातगुणा क्रम से घटकर इतना रहा । उन घातिकर्मों का स्थितिसत्त्व संख्यात हजार वर्ष मात्र है । पहले संख्यात हजार वर्ष मात्र था, वह संख्यात हजार स्थितिकांडकों के द्वारा संख्यातगुणा क्रम से घटा, तथापि आलाप से संख्यात हजार वर्ष मात्र ही रहा । अघातिकर्मों का स्थितिबंध संख्यात हजार वर्ष मात्र है । यहां भी पूर्ववत् तात्पर्य जानना । आयु बिना तीन अघातिकर्मों का स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्ष मात्र है । यद्यपि पहले से असंख्यात गुणा घटते क्रम से घटा तथापि आलाप से इतना ही रहा । इसतरह क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टिवेदक का निरूपण किया ।

से काले कोहस्य य बिदियादो संगहादु पढमठिदी ।
कोहस्स विदियसंगहकिट्टिस्स य वेदगो होदि ।।५४१।।

स्वे काले क्रोधस्य च द्वितीयत: संग्रहात् प्रथमस्थिति: ।
क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकृष्टेश्च वेदको भवति ।।५४१।।

टीका – क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टिवेदक काल के अनंतर समयरूप अपने काल में क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि समूह का अपकर्षण करके उदयादि गुणश्रेणी रूप प्रथम स्थिति करता है । उसका *(प्रथम स्थिति का)* प्रमाण क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टिवेदक काल से आवली मात्र अधिक है । इसके प्रथमादि समयों में

असंख्यातगुणा क्रम सहित अपकर्षण किया हुआ द्रव्य देता है । वहां ही क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि का वेदक होता है ।

कोहस्स पढमसंगहकिट्टिस्सावलिपमाण पढमठिदी ।
दोसमऊणदुआवलिणवकं च वि चउदे ताहे ।।५४२।।

क्रोधस्य प्रथम संग्रहकृष्टेरावलिप्रमाणं प्रथमस्थितिः ।
द्विसमयोनद्व्यावलिनवकं चापि चतुर्दश तत्र ।।५४२।।

टीका – उस समय क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की प्रथम स्थिति में उच्छिष्टावली मात्र निषेक और द्वितीय स्थिति में दो समय कम दो आवली मात्र नवक समयप्रबद्धरूप निषेक अवशेष सत्त्वरूप रहते हैं इन बिना क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के अन्य सर्व प्रदेश क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि के नीचे अनंतगुणा हीन अनुभागरूप होकर उसकी अपूर्वकृष्टि होकर परिणमित होती है । तब ही अन्य संग्रहकृष्टियों में भी यथासंभव संक्रमण होता है । उसी काल में क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य चौदहगुणा होता है । एकगुणा आय का था, उससे तेरहगुणा प्रथम संग्रहकृष्टि का आया, मिलकर चौदहगुणा हुआ ।

पढमादिसंगहाणं चरिमे फालिं तु बिदियपहुदीणं ।
हेट्ठा सव्वं देदि हु मज्झे पुव्वं व इगिभागं ।।५४३।।

प्रथमादिसंग्रहाणां चरमे फालिं तु द्वितीयप्रभृतीनाम् ।
अधस्तनं सर्वं ददाति हि मध्ये पूर्वं इव एकभागम् ।।५४३।।

टीका – प्रथमादि संग्रहकृष्टियों के अंत समय में जो संक्रमणद्रव्यरूप फालि, उसको द्वितीयादि संग्रहकृष्टियों के नीचे सर्व देता है और मध्य *(अंतरअपूर्वकृष्टि)* में पूर्ववत् एक भाग को देता है ।

भावार्थ – जिस संग्रहकृष्टि को भोगता है, उसके नवक समयप्रबद्ध बिना सर्व द्रव्य सर्वसंक्रमणरूप है । जो उच्छिष्टावली है, वह अंत फालि है । उसको अनंतर समय में इसके अनंतर जो संग्रहकृष्टि भोगता है, उसके नीचे और बीच में अपूर्वकृष्टिरूप

परिणमाता है । वहां उस संग्रहकृष्टि की अवयवकृष्टियों के बीच जो अपूर्वकृष्टि करता है, वे पूर्ववत् अंत समय में अपने द्रव्य के असंख्यातवें भाग मात्र द्रव्य से निपजाता है । अवशेष सर्व द्रव्य द्वारा उस संग्रहकृष्टि के नीचे अपूर्वकृष्टि निपजाता है, ऐसा विधान है । चूंकि यहां क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के अनंतर द्वितीय संग्रहकृष्टि भोगता है, यहां भी ऐसा ही विधान जानना ।

यहां प्रश्न – पहले *(गाथा ५३४ की टीका में)* कृष्टिवेदक के प्रथम समय के व्याख्यान में नीचे की हुयी कृष्टियों के प्रमाण से बीच में की हुयी कृष्टियों का प्रमाण असंख्यातगुणा कहा था, यहां बीच में की हुयी कृष्टियों में दिये द्रव्य से नीचे की हुयी कृष्टियों में दिया द्रव्य असंख्यातगुणा कहा है; इसलिए विरोध आता है ?

उसका समाधान – वहां तो संग्रहकृष्टि के द्रव्य का असंख्यातवां भाग मात्र द्रव्य ग्रहण किया था, उसका विधान कहा था; यहां सर्व संग्रहकृष्टि के द्रव्य की अपेक्षा वर्णन है, इसलिए यहां ऐसा विधान जानना । पुनश्च यदि यहां भी पूर्ववत् विधान करे तो अंतरकृष्टियों के बीच नवीन कृष्टि बहुत निपजनेपर सर्व अवयवकृष्टियों के बीच-बीच अपूर्वकृष्टि होगी, तब पूर्वकृष्टियों में दिये द्रव्य से असंख्यातगुणा घटता द्रव्य जो कृष्टियों में दिया, उससे अनंतरवर्ती कृष्टियों में दिया द्रव्य असंख्यातगुणा होगा, ऐसा द्रव्य देना / सूत्र में नहीं कहा, इसलिए यहां विधान कहा वही अंगीकार करना ।

कोहस्स बिदियकिट्टी वेदयमाणस्स पढमकिट्टि वा ।
उदओ बंधो णासो अपुव्वकिट्टीण करणं च ।।५४४।।

क्रोधस्य द्वितीयकृष्टि: वेदकस्य प्रथम कृष्टिरिव ।
उदयो बंधो नाश: अपूर्वकृष्टीनां करणं च ।।५४४।।

टीका – क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टिवेदक के कृष्टियों का उदय, बंध, घात, संक्रमणद्रव्य से और बंधद्रव्य से अपूर्वकृष्टि का करना इत्यादि विधान जैसे प्रथम संग्रहकृष्टि *(वेदक)* के कहा वैसे ही समस्त कहना ।

कोहस्स बिदियसंगहकिट्टी वेदंतयस्स संकमणं ।
सट्ठाणे तदियो त्ति य तदणंतरहेट्ठिमस्स पढमं च ।।५४५।।

क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकृष्टिं वेद्यमानस्य संक्रमणं ।
स्वस्थाने तृतीयांतं च तदनंतरमधस्तनस्य प्रथमं च ।।५४५।।

टीका – क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टिवेदक के स्वस्थान अर्थात् विवक्षित कषाय में ही संक्रमण तो तीसरी संग्रहकृष्टि तक होता है और परस्थान अर्थात् अन्य कषाय में संक्रमण वह आय के नीचे जो कषाय उसकी प्रथम संग्रहकृष्टि में होता है । वही कहते हैं –

पढमो बिदिये तदिये हेट्ठिमपढमे च बिदियगो तदिये ।
हेट्ठिमपढमे तदियो हेट्ठिमपढमे च संकमदि ।।५४६।।

प्रथमो द्वितीये तृतीये अधस्तनप्रथमे च द्वितीयकस्तृतीये ।
अधस्तनप्रथमे तृतीयोऽधस्तनप्रथमे संक्रामति ।।५४६।।

टीका – विवक्षित कषाय की पहली संग्रहकृष्टि का द्रव्य तो अपनी दूसरी, तीसरी और नीचे के कषाय की पहली संग्रहकृष्टि में संक्रमण करता है; दूसरी संग्रहकृष्टि का द्रव्य अपनी तीसरी और नीचे के कषाय की पहली संग्रहकृष्टि में संक्रमण करता है; और तीसरी संग्रहकृष्टि का द्रव्य नीचे के कषाय की पहली संग्रहकृष्टि में ही संक्रमण करता है । यहां वेदक अपेक्षा जिसको भोग रहा है, उसके पश्चात् जिसको भोगेगा, उसको नीचे का कषाय कहना ।

सो क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि से प्रदेशसमूह क्रोध की तीसरी और मान की पहली संग्रहकृष्टि में संक्रमण करता है; और क्रोध की तीसरी संग्रहकृष्टि का द्रव्य मान की पहली *(संग्रहकृष्टि)* में ही संक्रमण करता है । मान की पहली *(संग्रहकृष्टि)* का द्रव्य मान की दूसरी, तीसरी, माया की पहली में संक्रमण करता है । मान की दूसरी का द्रव्य मान की तीसरी, माया की पहली में संक्रमण करता है । मान की तीसरी का द्रव्य माया की पहली में संक्रमण करता है । माया की पहली का द्रव्य माया की दूसरी, तीसरी, लोभ की पहली में संक्रमण करता है । माया की दूसरी का द्रव्य माया की तीसरी, लोभ की पहली में संक्रमण करता है । माया की तीसरी का द्रव्य लोभ की पहली में संक्रमण करता है । लोभ की पहली का द्रव्य लोभ

की दूसरी, तीसरी में संक्रमण करता है । लोभ की दूसरी का द्रव्य लोभ की तीसरी में संक्रमण होकर प्रवेश करता है ।

यहां स्वस्थान में तो विवक्षित संग्रह *(कृष्टि)* के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग मात्र अपनी अन्य संग्रहकृष्टियों में संक्रमण करता है । और परस्थान में उसीको अधःप्रवृत्त भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र द्रव्य अन्य कषाय की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमण करता है, ऐसा विशेष जानना ।

कोहस्स पढमकिट्टी सुण्णो त्ति ण तस्स अत्थि संकमणं ।
लोभंतिमकिट्टिस्स य णत्थि पडित्थावणूणादो ।।५४७।।

क्रोधस्य प्रथमकृष्टिः शून्या इति न तस्या अस्ति संक्रमणं ।
लोभांतिमकृष्टेश्च नास्ति प्रतिस्थापनमूनतः ।।५४७।।

टीका – यहां क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि तो शून्य हुयी – नास्ति हुयी, इसलिए उसका संक्रमण नहीं है और लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि का भी संक्रमण नहीं है, क्योंकि प्रतिलोम अर्थात् उलटा संक्रमण, उसका अभाव है ।

ऐसे दो बिना अवशेष दस संग्रहकृष्टियों का संक्रमण किया । वहां भोगनेरूप द्वितीय संग्रहकृष्टि में आयद्रव्य का अभाव है । वहां घातद्रव्य ही का पूर्वकृष्टियों में देना पूर्वोक्त प्रकार से होता है । लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में व्ययद्रव्य नहीं है, परंतु आयद्रव्य है, इसलिए दस संग्रहकृष्टियों में संक्रमणद्रव्य का पूर्व-अपूर्व कृष्टियों में देना पूर्वोक्त प्रकार से होता है, ऐसा जानना ।

जस्स कसायस्स जं किट्टि वेदयदि तस्स तं चेव ।
सेसाणं कसायाणं पढमं किट्टि तु बंधदि हु ।।५४८।।

यस्य कषायस्य यां कृष्टिं वेदयति तस्या तां चैव ।
शेषाणां कषायाणां प्रथमा कृष्टिं बध्नाति हि ।।५४८।।

टीका – जिस कषाय की जिस संग्रहकृष्टि को वेदता-भोगता है उस कषाय की तो उसी संग्रहकृष्टि को बांधता है और अन्य कषायों के प्रथम संग्रहकृष्टि

को बांधता है, ऐसी व्याप्ति है । इसलिए बंधद्रव्य का विधान चार ही संग्रहकृष्टियों में जानना । यहां क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि को और अन्य कषायों की प्रथम संग्रहकृष्टि को बांधता है ।

माणतिय कोहतदिये मायालोहस्स तिसतिये अहिया ।
संखगुणं वेदिज्जे अंतरकिट्टि पदेसो य ।।५४९।।

मानत्रयं क्रोधतृतीये मायालोभस्य त्रिकत्रिके अधिका ।
संख्यगुणं वेद्यमाने अंतरकृष्टि: प्रदेशश्च ।।५४९।।

टीका – यहां संग्रहकृष्टियों में अवयवकृष्टियों का और द्रव्य का अल्पबहुत्व कहते हैं । सो मान की तीन, क्रोध की एक तीसरी ही और माया, लोभ की तीन-तीन संग्रहकृष्टियों में तो विशेष अधिक क्रम से और वेद्यमान क्रोध की दूसरी कृष्टि में संख्यातगुणा कृष्टियों का और प्रदेशों का प्रमाण क्रम से है । वही कहते हैं –

मान की प्रथम संग्रहकृष्टि का अल्प, उससे मान की दूसरी का, उससे मान की तीसरी का, उससे क्रोध की तीसरी का, उससे माया की प्रथम का, उससे माया की द्वितीय का, उससे माया की तृतीय का, उससे लोभ की प्रथम का, उससे लोभ की दूसरी का, उससे लोभ की तीसरी का अवयवकृष्टियों का प्रमाण क्रम से विशेष अधिक है । वहां विशेष का प्रमाण स्वस्थान में तो पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर आता है । जैसे, मान की प्रथम संग्रहकृष्टि की अवयवकृष्टियों के प्रमाण से इसी को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर जो एकभाग मात्र विशेष से अधिक मान की द्वितीय संग्रहकृष्टियों के अवयवकृष्टियों का प्रमाण आता है, ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

पुनश्च परस्थान में आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर विशेष का प्रमाण आता है । जैसे मान की तृतीय संग्रहकृष्टि की अवयवकृष्टि प्रमाण से इसीको आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र विशेष से अधिक क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की अवयवकृष्टियों का प्रमाण होता है । ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की अवयवकृष्टियों के प्रमाण से वेद्यमान क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि की अवयवकृष्टियों का प्रमाण संख्यातगुणा है – वह चौदहगुणा जानना । इसतरह अवयवकृष्टियों के प्रमाण का अल्पबहुत्व कहा । इसीप्रकार प्रदेश जो इन संग्रहकृष्टियों के परमाणु, उनके प्रमाण का भी अल्पबहुत्व जानना, क्योंकि बंधद्रव्य, संक्रमणद्रव्य मिलकर ऐसा क्रम होता है । इस द्रव्य ही के अनुसार कृष्टियों का भी अल्पबहुत्व जानना, क्योंकि वे थोड़े द्रव्य से थोड़ी और बहुत द्रव्य से बहुत होती हैं ।

वेदिज्जादिट्ठिदिए समयाहियआवलीयपरिसेसे ।
ताहे जहण्णुदीरणचरिमो पुण वेदगो तस्स ।।५५०।।

वेद्यमानादिस्थितौ समयाधिकावलिक परिशेषे ।
तत्र जघन्योदीरणचरमः पुनः वेदकस्तस्य ।।५५०।।

टीका – जिस संग्रहकृष्टि को वेदता है, उसकी प्रथम स्थिति में दो आवली अवशेष रहनेपर तो आगाल, प्रत्यागाल का नाश होता है । समय अधिक आवली अवशेष रहनेपर जघन्य स्थिति जो उदयावली के ऊपर का एक निषेक उसका उदीरक अर्थात् उदयावली में देनेरूप उदीरणा करनेवाला होता है । वहीं उसके वेदककाल का अंत समय होता है । सो यहां क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि की प्रथम स्थिति में समय अधिक आवली अवशेष रहनेपर जघन्य स्थिति का उदीरक और उसके वेदक का अंत समय हुआ ।

ताहे संजलणाणं बंधो अंतोमुहुत्तपरिहीणो ।
सत्तोवि य दिणसीदी चउमासब्भहियपणवस्सा ।।५५१।।

तत्र संज्वलनानां बंधो अंतर्मुहूर्तपरिहीनः ।
सत्त्वमपि च दिनाशीतिः चतुर्मासाभ्यधिकपंचवर्षाः ।।५५१।।

टीका – वहां संज्वलन चतुष्क का स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त कम अस्सी दिन अर्थात् दो मास और बीस दिन मात्र है और उनका स्थितिसत्त्व अंतर्मुहूर्त कम चार मास

अधिक पांच वर्ष मात्र है । यहां भी पूर्ववत् निरूपण जानना ।

घादितियाणं बंधो वासपुधत्तं तु सेसपयडीणं ।
वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवंति णियमेण ।।५५२।।

घातित्रयाणां बंधो वर्षपृथक्त्वं तु शेषप्रकृतीनाम् ।
वर्षाणां संख्येयसहस्राणि भवंति नियमेन ।।५५२।।

टीका – तीन घातिकर्मों का स्थितिबंध पृथक्त्व वर्ष मात्र है । तीन से अधिक यथायोग्य पृथक्त्व संज्ञा जानना । अवशेष अघातिकर्मों का स्थितिबंध नियम से संख्यात हजार वर्ष मात्र है ।

घादितियाणं सत्तं संखसहस्साणि होंति वस्साणं ।
तिण्हं पि अघादीणं वस्साणि असंखमेत्ताणि ।।५५३।।

घातित्रयाणां सत्त्वं संख्यसहस्राणि भवंति वर्षाणां ।
त्रयाणामपि अघातिनां वर्षा असंख्यमात्राः ।।५५३।।

टीका – तीन घातिकर्मों का स्थितिसत्त्व संख्यात हजार वर्ष मात्र है । आयु बिना तीन अघातिकर्मों का स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्ष मात्र है ।

से काले कोहस्स य तदियादो संगहादु पढमठिदी ।
अंते संजलणाणं बंधं सत्तं दुमास चउवस्सा ।।५५४।।

स्वे काले क्रोधस्य च तृतीयतः संग्रहात् प्रथमस्थितिः ।
अंते संज्वलनानां बंधं सत्त्वं द्विमासं चतुर्वर्षाः ।।५५४।।

टीका – उसके अनंतर अपने काल में क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि का वेदक होता है । इसका द्रव्य पहले एकगुणा था और इसके चौदहगुणा द्वितीय संग्रहकृष्टि का उच्छिष्टावली और नवक समयप्रबद्ध बिना द्रव्य मिलने से यह पंद्रहगुणा हो गया । उस द्रव्य से उसके वेदककाल से आवली मात्र अधिक प्रथम स्थिति करता है । वहां वर्णन क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टिवेदकवत् जानना । वहां अंत समय में

संज्वलन चतुष्क का स्थितिबंध दो मास और स्थितिसत्त्व चार वर्ष मात्र जानना । अवशेष कर्मों का पूर्ववत् आलाप है ।

से काले माणस्स य पढमादो संगहादु पढमठिदी ।
माणोदयअद्धाये तिभागमेत्ता हु पढमठिदी ।।५५५।।

स्वे काले मानस्य च प्रथमात् संग्रहात् प्रथमस्थितिः ।
मानोदयाद्धायाः त्रिभागमात्रा हि प्रथमथितिः ।।५५५।।

टीका – क्रोधवेदक के अनंतर अपने काल में *(मान की प्रथम संग्रहकृष्टि का वेदक होता है)* मान की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य एकगुणा था और पंद्रहगुणा क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य मिला, वह मिलकर वह सोलहगुणा हुआ । उसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र द्रव्य ग्रहण करके *(उदयादि)* गुणश्रेणीरूप प्रथम स्थिति करता है । सो क्रोधवेदक काल से कुछ कम जो मानवेदक काल, उसका तीसरा भाग आवली से अधिक उस प्रथम स्थिति का प्रमाण है । वहां मान की प्रथम संग्रहकृष्टि का वेदक होता है ।

कोहपढमं व माणो चरिमे अंतोमुहुत्तपरिहीणो ।
दिणमासपण्णचत्तं बंधं सत्तं तिसंजलणाणं ।।५५६।।

क्रोधप्रथमं व मानः चरमे अंतर्मुहूर्तपरिहीनः ।
दिनमासपंचाशच्चत्वारिंशत् बंधः सत्त्वं त्रिसंज्वलनानां ।।५५६।।

टीका – क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के वेदकवत् मान की प्रथम संग्रहकृष्टि के वेदक का विधान जानना ।

विशेष इतना – क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टिवेदक के बंधद्रव्य द्वारा उत्पन्न नवीन अंतरकृष्टियों का प्रमाण लाने के लिये भागहार का प्रमाण छह गुणहानि मात्र कहा था, यहां उससे चौथाई हीन है, इसलिए साढ़ेचार गुणहानि मात्र है । आगे लोभ तक इतना इतना ही हीन जानना । *(अर्थात्)* माया की प्रथम संग्रहकृष्टिवेदक के तीन गुणहानि मात्र, लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टिवेदक के डेढ़ गुणहानि मात्र भागहार जानना । इसका

भाग सर्व कृष्टियों को देनेपर क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टिवेदक के तो गुणहानि का चौथा भाग मात्र अंतराल का प्रमाण कहा था, यहां और आगे उससे सोलहवां भाग मात्र क्रम से घटता जानना । सो मान, माया, लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टिवेदक के बंधद्रव्य द्वारा उत्पन्न नवीन कृष्टियों के बीच जो पूर्व कृष्टि पायी जाती हैं उनका प्रमाण मात्र अंतराल क्रम से – गुणहानि का तीन सोलहवां भाग मात्र, दो सोलहवां भाग मात्र, एक सोलहवां भाग मात्र गुणा स्थापित करना ।

क्रोध की प्रथम, द्वितीय, तृतीय संग्रहकृष्टिवेदक के गुणकार क्रम से तेरह, चौदह, पंद्रह का; मान की प्रथमादि संग्रहकृष्टिवेदक के गुणकार क्रम से सोलह, सत्रह, अठारह का; माया की प्रथमादि संग्रहकृष्टिवेदक के गुणकार क्रम से उन्नीस, बीस, इक्कीस का और लोभ की प्रथमादि संग्रहकृष्टिवेदक के गुणकार क्रम से बाइस, तेइस, चौबीस का है । वहां अपने-अपने गुणकार से गुण्य को गुणा करनेपर अंतराल का प्रमाण आता है ।

पुनश्च इतना जानना – क्रोधवेदक के चारों कषायों का, मानवेदक के क्रोध बिना तीन कषायों का, मायावेदक के क्रोध, मान बिना दो कषायों का, लोभवेदक के लोभ ही का बंध है । इसलिए इनके ही बंधद्रव्य से अंतरकृष्टि निपजती है । जिस *(संग्रह)* कृष्टि को भोग रहा है, उसका द्रव्य जिन *(संग्रह)* कृष्टियों में संक्रमण करता है, उनमें संक्रमणद्रव्य द्वारा उत्पन्न कृष्टियों के अंतराल में भी यथासंभव जानना ।

मान प्रथम संग्रहकृष्टिवेदक की प्रथम स्थिति में समय अधिक आवली अवशेष रहनेपर अंत समय होता है । वहां क्रोध बिना तीन संज्वलन का स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त कम पचास दिन है और स्थितिसत्त्व अंतर्मुहूर्त कम चालीस मास मात्र है । यहां क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टिवत् त्रैराशिक आदि विधान जानना । यहां से आगे पूर्व संग्रहकृष्टि का द्रव्य मिलने से वेद्यमान कृष्टि के द्रव्य में एक-एक गुणकार क्रम से बढ़ता है । वहां मान की द्वितीय, तृतीय, माया की प्रथम, द्वितीय, तृतीय और लोभ की प्रथम, द्वितीय, तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य क्रम से सत्रह, अठारह, उन्नीस, बीस, इक्कीस, बाइस, तेइस, चौबीस गुणा है । सो अपने-अपने द्रव्य को अपकर्षण करके अपने वेदक काल से आवली मात्र अधिक प्रथम स्थिति करता है । वहां पूर्वोक्त विधान से उस प्रथम स्थिति में समय अधिक आवली अवशेष

रहनेपर अपने-अपने वेदककाल का अंत समय होता है ।

वहां स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व का विशेष कहते हैं –

बिदियस्स माणचरिमे चत्तं बत्तीसदिवसमासाणि ।
अंतोमुहुत्तहीणा बंधो सत्तो तिसंजलणाणं ।।५५७।।

द्वितीयस्य मानचरमे चत्वारिंशद्द्वात्रिंशद्दिवसमासाः ।
अंतर्मुहूर्तहीना बंधः सत्त्वं त्रिसंज्वलनानां ।।५५७।।

टीका – उसके अनंतर मान की द्वितीय संग्रहकृष्टि का वेदक होता है । उसके अंत समय में तीन संज्वलन का स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त कम चालीस दिन और स्थितिसत्त्व अंतर्मुहूर्त कम बत्तीस मास मात्र है ।

तदियस्स माणचरिमे तीसं चउवीस दिवसमासाणि ।
तिण्हं संजलणाणं ठिदिबंधो तह य सत्तो य ।।५५८।।

तृतीयस्य मानचरिमे त्रिंशद्चतुर्विंशद्दिवसमासाः ।
त्रयाणां संज्वलनानां स्थितिबंधस्तथा च सत्त्वं च ।।५५८।।

टीका – उसके अनंतर मान की तृतीय संग्रहकृष्टि का वेदक होता है । उसके अंत समय में तीन संज्वलनों का स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त कम तीस दिन और स्थितिसत्त्व अंतर्मुहूर्त कम चौबीस मास मात्र होता है ।

पढमगमायाचरिमे पणवीसं वीसदिवसमासाणि ।
अंतोमुहुत्तहीणा बंधो सत्तो दुसंजलणगाणं ।।५५९।।

प्रथमगमायाचरिमे पंचविंशतिः विंशतिः दिवसमासाः ।
अंतर्मुहूर्तहीनाः बंधः सत्त्वं द्विसंज्वलनकयोः ।।५५९।।

टीका – उसके अनंतर माया की प्रथम संग्रहकृष्टि का वेदक होता है । इसका काल मायावेदक काल के तीसरे भाग मात्र है । उसके अंत समय में संज्वलन माया, लोभ का स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त कम पच्चीस दिन और स्थितिसत्त्व

अंतर्मुहूर्त कम बीस मास मात्र होता है ।

बिदियगमायाचरिमे वीसं सोलं च दिवसमासाणि ।
अंतोमुहुत्तहीणा बंधो सत्तो दुसंजलणगाणं ।।५६०।।

द्वितीयगमायाचरिमे विंशं षोडश च दिवसमासाः ।
अंतर्मुहूर्तहीनाः बंधः सत्त्वं द्विसंज्वलनकयोः ।।५६०।।

टीका – उसके अनंतर माया की द्वितीय संग्रहकृष्टि का वेदक होता है । उसके अंत समय में दो संज्वलनों का स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त कम बीस दिन और स्थितिसत्त्व अंतर्मुहूर्त कम सोलह मास मात्र होता है ।

तदियगमायाचरिमे पण्णर बारसय दिवसमासाणि ।
दोण्हं संजलणाणं ठिदिबंधो तह य सत्तो य ।।५६१।।

तृतीयकमायाचरमे पंचदश द्वादश दिवसमासाः ।
द्वयोः संज्वलनयोः स्थितिबंधस्तथा च सत्त्वं च ।।५६१।।

टीका – उसके अनंतर माया की तृतीय संग्रहकृष्टि का वेदक होता है । उसके अंत समय में दो संज्वलनों का स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त कम पंद्रह दिन और स्थितिसत्त्व अंतर्मुहूर्त कम बारह मास प्रमाण होता है ।

मासपुधत्तं वासा संखसहस्साणि बंध सत्तो य ।
घादितियाणिदराणं संखमसंखेज्जवस्साणि ।।५६२।।

मासपृथक्त्वं वर्षाः संख्यसहस्राः बंधः सत्त्वं च ।
घातित्रयाणामितरेषां संख्यमसंख्येयवर्षाः ।।५६२।।

टीका – वहां ही तीन घातिकर्मों का स्थितिबंध पृथक्त्व मास प्रमाण है और स्थितिसत्त्व यथायोग्य संख्यात हजार वर्ष मात्र है । तीन अघातिकर्मों का स्थितिबंध यथायोग्य संख्यात वर्ष मात्र है और स्थितिसत्त्व यथायोग्य असंख्यात वर्ष मात्र है ।

लोहस्स पढमचरिमे लोहस्संतोमुहुत्त बंधदुगे ।
दिवसपुधत्तं वासा संखसहस्साणि घादितिये ।।५६३।।

लोभस्य प्रथमचरिमे लोभस्यांतर्मुहूर्त बंधद्विके ।
दिवसपृथक्त्वं वर्षा: संख्यसहस्रा घातित्रये ।।५६३।।

टीका – उसके अनंतर लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि का वेदक होता है । उसका काल समस्त लोभवेदक काल के तीसरे भाग मात्र और बादरलोभवेदक काल से आधा है । उसके अंत समय में संज्वलन लोभ का स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व अंतर्मुहूर्त मात्र है । वहां स्थितिबंध से स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा जानना । तीन घातिकर्मों का स्थितिबंध पृथक्त्व दिन मात्र और स्थितिसत्त्व संख्यात हजार वर्ष मात्र है ।

सेसाणं पयडीणं वासपुधत्तं तु होदि ठिदिबंधो ।
ठिदिसत्तमसंखेज्जा वस्साणि हवंति णियमेण ।।५६४।।

शेषाणां प्रकृतीनां वर्षपृथक्त्वं तु भवति स्थितिबंध: ।
स्थितिसत्त्वमसंख्येया वर्षा भवंति नियमेन ।।५६४।।

टीका – अवशेष तीन अघातिकर्मों का स्थितिबंध पृथक्त्व वर्ष मात्र और स्थितिसत्त्व नियम से यथायोग्य असंख्यात वर्ष मात्र है ।

से काले लोहस्स य बिदियादो संगहादु पढमठिदी ।
ताहे सुहुमं किट्टिं करेदि तव्विदियतदियादी ।।५६५।।

स्वे काले लोभस्य च द्वितीयत: संग्रहात् प्रथमस्थिति: ।
तत्र सूक्ष्मां कृष्टिं करोति तद्द्वितीयतृतीयत: ।।५६५।।

टीका – उसके अनंतर अपने काल में लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि के द्रव्य से प्रदेशसमूह का अपकर्षण करके उदयादि गलितावशेष गुणश्रेणीरूप प्रथम स्थिति करता है । उसका प्रमाण अवशेष रहे अनिवृत्तिकरण काल से आवली मात्र अधिक है । उसी काल में लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि और तृतीय संग्रहकृष्टि का जो द्रव्य,

उसके प्रदेशसमूह को अपकर्षण द्वारा सूक्ष्म है अनुभागशक्ति जिनमें ऐसी सूक्ष्मकृष्टि करता है । सो बादरलोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य सर्व मोह द्रव्य के चौबीसवें भाग से तेइसगुणा है *(तेइस बटे चौबीस है)* । उससे अपकर्षण किया द्रव्य अनुभाग की अपेक्षा सर्व मोह द्रव्य के चौबीसवें भाग को अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग, उससे पांच सौ पचहत्तरगुणा है । वहां तेइसगुणा तो लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टिरूप द्रव्य है और अवशेष पांच सौ बावन गुणा द्रव्य रहा, उससे सूक्ष्मकृष्टि करता है । (२३ × २४ = ५५२; ५५२ + २३ = ५७५)

यहां अपकर्षण किये द्रव्य में तेइस का गुणकार था, उसको उससे एक अधिक चौबीस से गुणा करनेपर उसके अनंतर भोगने योग्य सूक्ष्मकृष्टि, उसमें संक्रमण होने योग्य द्रव्य पांच सौ बावन गुणा होता है; क्योंकि अनंतर भोगने योग्य कृष्टि में संक्रमणद्रव्य संख्यातगुणा कहा है । पुनश्च लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि के द्रव्य से अपकर्षण किया द्रव्य, सर्व मोह द्रव्य के चौबीसवें भाग को अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र है, उससे सूक्ष्मकृष्टि करता है । मिलकर मोह द्रव्य के चौबीसवें भाग को अपकर्षण भागहार का भाग देकर उससे पांच सौ तिरपन गुणा द्रव्य हुआ । इतने द्रव्य द्वारा सूक्ष्मकृष्टि करता है, ऐसा तात्पर्य जानना ।

लोहस्स तदियसंगहकिट्टीए हेट्ठदो अवट्ठाणं ।
सुहुमाणं किट्टीणं कोहस्स य पढमकिट्टिणिभा ।।५६६।।

लोभस्य तृतीयसंग्रहकृष्ट्या अधस्तनत: अवस्थानम् ।
सूक्ष्मानां कृष्टीनां क्रोधस्य च प्रथमकृष्टिनिभा ।।५६६।।

टीका – उन सूक्ष्मकृष्टियों का लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि के नीचे अवस्थान है । वह सूक्ष्मकृष्टि क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के समान होती है । कैसे ? वह कहते हैं –

जैसे अपूर्वस्पर्धक के नीचे अनंतगुणा हीन अनुभाग युक्त क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि है, वैसे बादरकृष्टि के नीचे अनंतगुणा हीन अनुभाग युक्त सूक्ष्मकृष्टियों की रचना होती है । पुनश्च जैसे क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की अवयवकृष्टियों का

प्रमाण इसको छोड़कर अवशेष बादरकृष्टियों के प्रमाण से संख्यातगुणा है, वैसे ही सूक्ष्मकृष्टियों का प्रमाण क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि बिना अवशेष कृष्टियों के प्रमाण से संख्यातगुणा है । पुनश्च जैसे क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि जघन्य कृष्टि से लेकर उत्कृष्ट कृष्टि तक अनंतगुणा अनुभाग क्रम सहित है, वैसे ही सूक्ष्मकृष्टि भी जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक अनंतगुणा अनुभागसहित है ।

कोहस्स पढमकिट्टी कोहे छुद्धे दु माणपढमं च ।
माणे छुद्धे मायापढमं मायाए संछुद्धे ।।५६७।।

लोहस्स पढमकिट्टी आदिमसमयकदसुहुमकिट्टी य ।
अहियकमा पंचपदा सगसंखेज्जदिमभागेण ।।५६८।।

क्रोधस्य प्रथमकृष्टि: क्रोधे क्षुब्धे तु मानप्रथमं च ।
मानक्षुब्धे मायाप्रथमं मायायां संक्षुब्धायाम् ।।५६७।।

लोभस्य प्रथमकृष्टिरादिमसमयकृतसूक्ष्मकृष्टिश्च ।
अधिकक्रमाणि पंचपदानि स्वकसंख्येय भागेन ।।५६८।।

टीका – प्रथम समय में की हुयी सूक्ष्मकृष्टियों का प्रमाण लाने के लिये अल्पबहुत्व कहते हैं –

क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि की अवयवकृष्टि अल्प है । कृष्टि प्रमाण के चौबीसवें भाग से तेरहगुणा है । क्रोध की तीनों संग्रहकृष्टि मान की संग्रहकृष्टि के ऊपर मिलानेपर मान की प्रथम संग्रहकृष्टि की अवयवकृष्टि विशेष अधिक होती है । पूर्वराशि को त्रिभाग अधिक चार का भाग देनेपर एकभाग मात्र अधिक है, सो सोलहगुणी है ।

[*विशेषार्थ* : $४\frac{१}{३} = \frac{१३}{३}$; $१३ \div \frac{१३}{३} = \cancel{१३} \times \frac{३}{\cancel{१३}}$;

$१३ + ३ = १६$ अथवा $\frac{\cancel{१३}}{२४} \times \frac{३}{\cancel{१३}} = \frac{३}{२४}$; $\frac{१३}{२४} + \frac{३}{२४} = \frac{१६}{२४}$;

$\frac{१}{२४}$ से १६ गुणा है ।]

पुनश्च मान की तीनों संग्रहकृष्टि माया के ऊपर मिलानेपर माया की प्रथम संग्रहकृष्टि की अवयवकृष्टि विशेष अधिक है । सो पूर्वराशि को त्रिभाग अधिक पांच का भाग देकर एकभाग मात्र अधिक है, सो तेरह की जगह उन्नीसगुणा होती है ।

$$\left[\text{१६} \div ५\frac{\text{१}}{\text{३}} \; ; \; \cancel{\text{१६}} \times \frac{\text{३}}{\cancel{\text{१६}}} = \text{३} \; ; \; \text{१६} + \text{३} = \text{१९} \right]$$

पुनश्च माया की तीनों संग्रहकृष्टि लोभ के ऊपर मिलानेपर लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि की अवयवकृष्टि विशेष अधिक होती है । सो पूर्वराशि को त्रिभाग अधिक छह का भाग देकर एकभाग मात्र अधिक होता है, सो बाइसगुणा होती है ।

$$\left[\text{१९} \div ६\frac{\text{१}}{\text{३}} \; ; \; \cancel{\text{१९}} \times \frac{\text{३}}{\cancel{\text{१९}}} = \text{३} \; ; \; \text{१९} + \text{३} = \text{२२} \right]$$

पुनश्च उससे प्रथम समय में की हुयी सूक्ष्मकृष्टियों का प्रमाण विशेष अधिक है । पूर्वराशि को ग्यारह का भाग देकर एकभाग मात्र अधिक होता है, सो चौबीसगुणा होता है ।

$$\left[\text{२२} \div \text{११} = \text{२} \; ; \; \text{२२} + \text{२} = \text{२४} \right]$$

इसतरह पांच स्थान संख्यातवें भाग अधिक क्रम युक्त जानना ।

सुहुमाओ किट्टिओ पडिसमयमसंखगुणविहीणाओ ।
दव्वमसंखेज्जगुणं बिदियस्स य लोहचरिमो त्ति ।।५६९।।

सूक्ष्माः कृष्टयः प्रतिसमयमसंख्यगुणविहीनाः ।
द्रव्यमसंख्येयगुणं द्वितीयस्य च लोभचरम इति ।।५६९।।

टीका – सूक्ष्मकृष्टि के प्रथम समय में की हुयी *(सूक्ष्मकृष्टि)* बहुत हैं । उससे दूसरे समय में की हुयी अपूर्व सूक्ष्मकृष्टि *(अ)*संख्यातगुणी हीन है । इसतरह प्रतिसमय की हुयी नवीन अपूर्व *(सूक्ष्म)* कृष्टि *(अ)*संख्यातगुणी हीन हैं । सूक्ष्मकृष्टि में दिया द्रव्य प्रथम समय में अल्प है, उससे दूसरे समय में *(अ)*संख्यातगुणा है । इसतरह प्रतिसमय सूक्ष्मकृष्टि में दिया द्रव्य क्रम से *(अ)*संख्यातगुणा जानना । ऐसा द्वितीय संग्रहकृष्टिवेदक कालरूप जो कृष्टि करने का काल उसके अंत समय तक जानना ।

[*यहां मूल प्राकृत व संस्कृत गाथा में प्रतिसमयम् असंख्यगुणविहीना: तथा द्रव्यम् असंख्येयगुणं आया है । इसलिए असंख्यात ठीक लगता है । चूर्णिसूत्र तथा जयधवला में भी असंख्यात गुणाहीन ही लिखा है । जयधवला पु. १३ पृष्ठ ३०८*]

दव्वं पढमे समये देदि हु सुहुमेसणंतभागूणं ।
थूलपढमे असंखगुणूणं तत्तो अणंतभागूणं ।।५७०।।

द्रव्यं प्रथमे समये ददाति हि सूक्ष्मेष्वनंतभागोनं ।
स्थूलप्रथमे असंख्यगुणोनं तत अनंतभागोनं ।।५७०।।

टीका – सूक्ष्मकृष्टिकरण काल के प्रथम समय में सूक्ष्मकृष्टि की जघन्य कृष्टि से लेकर *(उत्कृष्ट सूक्ष्मकृष्टि तक)* अनंतवें भाग घटते क्रम से और उत्कृष्ट सूक्ष्मकृष्टि से प्रथम जघन्य बादरकृष्टि में असंख्यातगुणा घटता और उससे द्वितीयादि बादरकृष्टियों में अनंतवां भाग घटते क्रम से द्रव्य देता है । यहां विशेष निर्णय के लिये व्याख्यान करते हैं – बादरकृष्टिकरण के द्वितीय समय में जो विधान कहा था उसका स्मरण करके यहां जो विधान कह रहे हैं, उसको समझना ।

वहां प्रथम आयद्रव्य, व्ययद्रव्य, घातद्रव्य का स्वरूप कहते हैं –

लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग मात्र लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में आयद्रव्य है और इतना ही लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि में व्ययद्रव्य है । आनुपूर्वी संक्रमण *(देखिये गाथा २४९ टीका)* के नियम से लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि में आयद्रव्य नहीं है । अपनी-अपनी संग्रहकृष्टि की अंत कृष्टि के द्रव्य को, अपनी-अपनी कृष्टियों के प्रमाण को अपकर्षण भागहार के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र जो अंत में नष्ट की ऐसी, घातकृष्टियों के प्रमाण से गुणा करके विशेष अधिक करनेपर घातद्रव्य का प्रमाण आता है । वहां घातकृष्टि संबंधी व्ययद्रव्य सर्व व्ययद्रव्य के असंख्यातवें भाग मात्र है *(देखिये गाथा ५२६ की टीका)* । उसको घटानेपर जो व्ययद्रव्य रहा, उतना घातद्रव्य से ग्रहण करके जिन कृष्टियों का व्ययद्रव्य हुआ था, वहीं देनेपर स्वस्थान गोपुच्छ होता है । पुनश्च घातकृष्टियों के प्रमाण मात्र जो विशेष, उनको घात करने के पश्चात् अवशेष रही

कृष्टियों में एक-एक में देना । इसलिए उसको अवशेष कृष्टियों के प्रमाण से गुणा करके जो द्रव्य होता है उतना द्रव्य घातद्रव्य से ग्रहण करके देनेपर परस्थान गोपुच्छ भी होता है । इसतरह सर्व कृष्टियों का एक गोपुच्छ हुआ ।

पुनश्च पूर्वोक्त दो प्रकार का द्रव्य देनेपर अवशेष जो घातद्रव्य रहा उसमें घात करने के पश्चात् अवशेष रही कृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ का भाग देकर जो एक खंड मध्यमधनरूप हुआ उसको एक कम गच्छ के आधा प्रमाण मात्र जो विशेष उनसे अधिक करनेपर जो द्रव्य हुआ, उसको तृतीय संग्रहकृष्टि के अवशेष घातद्रव्य से ग्रहण करके तृतीय संग्रहकृष्टि के जघन्य कृष्टि में देता है । अवशेष द्रव्य में से घटते क्रम से अन्य कृष्टियों में देता है । इसतरह अपने-अपने अवशेष घातद्रव्य को देनेपर अवशेष कृष्टि एक गोपुच्छाकार होती हैं । इसतरह एक गोपुच्छाकार स्थित इन कृष्टियों में से संक्रमणद्रव्य और बंधद्रव्य द्वारा उत्पन्न कृष्टियों में संक्रमणद्रव्य और बंधद्रव्य देने का विधान कहते हैं –

वहां द्वितीय संग्रहकृष्टि में आयद्रव्य का अभाव है इसलिए घातद्रव्य से कुछ द्रव्य जुदा रखकर यहां कह रहे हैं वैसा देना, अवशेष को पूर्वोक्त प्रकार से देना । वहां बादरकृष्टि संबंधी एक विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और घात करने के पश्चात् तृतीय संग्रहकृष्टि की अवशेष रही कृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित कर जो संकलनधन हो, उतना द्रव्य तृतीय संग्रहकृष्टि के आयद्रव्य से ग्रहण कर जुदा स्थापना । और जितनी तृतीय संग्रहकृष्टि हुयी उतने विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और अपनी-अपनी अवशेष कृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके जो संकलनधन होता है, उतना द्रव्य द्वितीय संग्रहकृष्टि के घातद्रव्य से ग्रहण करके जुदा रखना । इन दोनों का नाम अधःस्तनशीर्ष द्रव्य है ।

पुनश्च तृतीय संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि के द्रव्य को असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र जो गुण्य, वह एक खंड है । उसको तृतीय संग्रहकृष्टि संबंधी कृष्टियों के प्रमाण से गुणा करनेपर जो होता है, उतने द्रव्य को तृतीय संग्रहकृष्टि के आयद्रव्य से ग्रहण करके स्थापना; और उसी गुण्य को द्वितीय संग्रहकृष्टि की कृष्टियों के प्रमाण से गुणा करनेपर जो होता है, उतने द्रव्य को द्वितीय संग्रहकृष्टि के घातद्रव्य से ग्रहण करके स्थापना । इन्हीं का नाम मध्यमखंड द्रव्य है ।

पुनश्च उभयद्रव्य संबंधी एक विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और द्वितीय संग्रहकृष्टि की कृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके वहां संकलनधन मात्र उभयद्रव्य के विशेष उनमें से अपने एक विशेष का अनंतवां भाग घटानेपर अवशेष रहा उतना द्वितीय संग्रहकृष्टि के घातद्रव्य से ग्रहण करके जुदा स्थापना । यह वेद्यमानकृष्टि होने से इसका बंध नाम भी है । इसलिए इस घटाये द्रव्य को बंधद्रव्य में से देकर पूर्ण करेंगे । यहां द्वितीय संग्रहकृष्टि का घातद्रव्य पूर्ण हुआ । पुनश्च एक अधिक द्वितीय संग्रहकृष्टि की जितनी कृष्टि हुयी, उतने विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और संक्रमणद्रव्य से निपजी हुयी अपूर्वकृष्टि सहित सर्व तृतीय संग्रहकृष्टि के कृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके, वहां संकलनधन मात्र उभयद्रव्य के विशेषों को तृतीय संग्रहकृष्टि के आयद्रव्य से ग्रहण करके स्थापना । इन दोनों का नाम उभयद्रव्यविशेष द्रव्य है । इन तीन-तीन प्रकार के द्रव्य से हीन जो तृतीय संग्रहकृष्टि का आयद्रव्य, उससे अपूर्व नूतनकृष्टि निपजाता है । उनका प्रमाण लाते हैं –

एक मध्यमखंड अधिक जो तृतीय संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि का द्रव्य, उस प्रमाण द्रव्य से एक संक्रमण संबंधी अंतरकृष्टि निपजती है, तो पूर्वोक्त तीन प्रकार के द्रव्य रहित संक्रमणद्रव्य से कितनी नवीन कृष्टि निपजती हैं, ऐसे त्रैराशिक करनेपर संक्रमणद्रव्य से निपजी कृष्टियों का प्रमाण आता है । इसका भाग तृतीय संग्रहकृष्टि की पूर्वकृष्टियों के प्रमाण को देनेपर संक्रमणकृष्टियों के बीच अंतराल का प्रमाण आता है । संक्रमणकृष्टियों के प्रमाण का भाग अवशेष संक्रमणद्रव्य को देनेपर एक खंड होता है, उसको संक्रमणकृष्टियों के प्रमाण से गुणा करनेपर जो द्रव्य हुआ उसका नाम संक्रमणअंतरकृष्टि संबंधी समानखंड द्रव्य है ।

अब बंधद्रव्य का विभाग कहते हैं –

बंधद्रव्य से निपजी हुयी अपूर्व अंतरकृष्टियों में से जो अंत कृष्टि, उससे लेकर ऊपर जितनी कृष्टि पायी जाती हैं उतने विशेष तो आदि, बंधांतरकृष्टियों का अंतराल मात्र विशेष उत्तर और बंधांतरकृष्टियों का प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके वहां संकलन *(धन)* मात्र द्रव्य को मोहनीय के समयप्रबद्ध से ग्रहण करके जुदा स्थापित करना । इसका नाम बंधांतरकृष्टिविशेष द्रव्य है । यहां एक मध्यमखंड अधिक तृतीय संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि के द्रव्य मात्र द्रव्य से एक कृष्टि निपजती है, तो किंचित्

कम मोह के समयप्रबद्ध मात्र द्रव्य से कितनी निपजेगी ? ऐसे त्रैराशिक करनेपर बंधद्रव्य द्वारा की हुयी अपूर्व अंतरकृष्टियों का प्रमाण आता है । इसका भाग किंचित् कम सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र जो द्वितीय संग्रहकृष्टि की कृष्टियों का प्रमाण, उसको देनेपर बंधांतरकृष्टियों के बीच अंतराल का प्रमाण आता है ।

पुनश्च बंधद्रव्य से पूर्वोक्त बंधांतरकृष्टिविशेष द्रव्य और बंधद्रव्य का अनंतवां भाग मात्र द्रव्य जुदा स्थापित कर अवशेष रहे द्रव्य को बंधांतरकृष्टियों *(के प्रमाण)* का भाग देनेपर एक खंड होता है । इसको बंधांतरकृष्टियों के प्रमाण से गुणा करनेपर पूर्वोक्त द्रव्य होता है, उसका नाम बंधांतरकृष्टि संबंधी समानखंड द्रव्य है ।

पुनश्च पहले जो समयप्रबद्ध का एकभाग मात्र द्रव्य जुदा रखा उसको, बंधकृष्टियों के प्रमाण मात्र जो यहां गच्छ, उसको एक कम गच्छ के आधे प्रमाण से हीन दोगुणहानि से गुणा करके उसका भाग देनेपर यहां विशेष का प्रमाण होता है; उसको सर्व बंधकृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ का एक बार संकलनधन मात्र प्रमाण से गुणा करके जो द्रव्य होता है, उतना द्रव्य जुदे स्थापित बंधद्रव्य के अनंतवें भाग मात्र द्रव्य से ग्रहण कर जुदा स्थापना । इसका नाम बंधविशेष द्रव्य है ।

पुनश्च बंधद्रव्य के अनंतवें भाग में से इतना घटानेपर जो अवशेष रहा उसको सर्व बंधकृष्टियों के प्रमाण का भाग देनेपर एक खंड होता है । उसको बंधकृष्टियों के प्रमाण से ही गुणा करके जो द्रव्य होता है उसका नाम बंधद्रव्य मध्यमखंड है ।

अब यहां सूक्ष्मकृष्टि में संक्रमण होने योग्य जो द्वितीय, तृतीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य अपकर्षण किया उसका विभाग कहते हैं –

सूक्ष्मकृष्टि संबंधी जो द्रव्य उसको, प्रथम समय में की हुयी सूक्ष्मकृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ को एक कम गच्छ के आधे प्रमाण से हीन दोगुणहानि से गुणित करके उसका भाग देनेपर एक विशेष होता है । उसको *(उस विशेष को)* सूक्ष्मकृष्टि के प्रमाण मात्र गच्छ का एक बार संकलनधन मात्र प्रमाण से गुणा करके जो हो, उतना द्रव्य सूक्ष्मकृष्टि संबंधी द्रव्य से ग्रहण करके जुदा स्थापित करना । इसका नाम सूक्ष्मकृष्टि संबंधी विशेष द्रव्य है । इसको घटाकर अवशेष रहे सूक्ष्मकृष्टि संबंधी द्रव्य को सूक्ष्मकृष्टियों के प्रमाण का भाग देनेपर एक खंड होता है और

(फिर) इसको सूक्ष्मकृष्टियों के प्रमाण से ही गुणा करनेपर जो द्रव्य होता है वह 'सूक्ष्मकृष्टि संबंधी समानखंड द्रव्य' है ।

इस क्रम से विभागरूप किये हुये द्रव्य के देने का विधान कहते हैं –

सूक्ष्मकृष्टि की जघन्य कृष्टि में बहुत द्रव्य देता है । वहां सूक्ष्मकृष्टि संबंधी समानखंड द्रव्य से एक खंड और सूक्ष्मकृष्टिविशेष द्रव्य से सूक्ष्मकृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष ग्रहण करके देता है । उसके ऊपर द्वितीयादि अंत तक की सूक्ष्मकृष्टियों में कृष्टिद्रव्य के अनंतवें भाग मात्र जो एक सूक्ष्मकृष्टि संबंधी विशेष उससे घटते अनुक्रम से द्रव्य देता है । *(एक-एक विशेष से हीन द्रव्य देता है ।)*

भावार्थ – एक-एक तो सूक्ष्मकृष्टि संबंधी समानखंड और बीच में हो गयी कृष्टियों के प्रमाण से हीन सूक्ष्मकृष्टियों के प्रमाण मात्र सूक्ष्मकृष्टि संबंधी विशेष उनमें क्रम से देता है ।

यहां सूक्ष्मकृष्टि संबंधी द्रव्य समाप्त हुआ ।

पुनश्च अंत सूक्ष्मकृष्टि में दिये द्रव्य से उसके ऊपर जघन्य बादरकृष्टि में दिया द्रव्य असंख्यातगुणा हीन है । वहां तृतीय संग्रहकृष्टि के चार प्रकार के द्रव्य में से मध्यमखंड से और उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से सर्व बादरकृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष ग्रहण करके जघन्य बादरकृष्टि में देता है । उसके ऊपर द्वितीयादि बादरकृष्टियों में अनंतवां भाग मात्र विशेष घटते क्रम से द्रव्य देता है ।

भावार्थ – द्वितीयादि बादरकृष्टियों में एकादि एक-एक बढ़ते क्रम सहित अध:स्तनशीर्षविशेष और एकादि एक अधिक से हीन सर्व बादरकृष्टि प्रमाण मात्र उभयद्रव्य के विशेष और एक-एक मध्यमखंड वहां देता है । सो एक उभयद्रव्य के विशेष में से एक अध:स्तनशीर्षविशेष घटाकर जितना हो, उतना-उतना क्रम से घटता द्रव्य देता है ।

संक्रमणद्रव्य से निपजी अपूर्वकृष्टि तक यह अनुक्रम जानना । जहां संक्रमणद्रव्य से नवीन अपूर्वकृष्टि निपजी, उसमें संक्रमणांतरकृष्टि संबंधी समानखंड द्रव्य से एक खंड, उभयद्रव्यविशेष द्रव्य से हुयी कृष्टियों के प्रमाण से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष ग्रहण करके देता है । यह अपने नीचे की पूर्वकृष्टि में दिये द्रव्य से

असंख्यातगुणा है । उसके ऊपर पूर्वकृष्टि में – हुयी कृष्टियों के प्रमाण मात्र अध:स्तनशीर्ष के विशेष, एक मध्यमखंड और हुयी कृष्टियों से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र उभयद्रव्य के विशेष देता है । यह इसके नीचे की अपूर्वकृष्टि में दिये द्रव्य से असंख्यातगुणा हीन है । इसके ऊपर भी पूर्वोक्त प्रकार से द्रव्य देता है ।

पुनश्च द्वितीय संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि में, हुयी कृष्टियों के प्रमाण मात्र अध:स्तनशीर्ष के विशेष, एक मध्यमखंड, हुयी कृष्टियों के प्रमाण से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र उभयद्रव्य के विशेष देता है । उसके ऊपर एक-एक अध:स्तनशीर्ष विशेष बढ़ते और एक-एक उभयद्रव्य का विशेष घटते क्रम से देता है ।

विशेष इतना – बंधकृष्टि की जघन्य कृष्टि से लेकर उभयद्रव्य के विशेष में से एक विशेष का अनंतवां भाग मात्र घटते क्रम से द्रव्य देता है । वहां बंधद्रव्य से एक-एक मध्यमखंड और हुयी बंधकृष्टियों से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र बंधविशेष को ग्रहण करके देता है । ऐसे क्रम से होते हुये जहां बंधद्रव्य से अपूर्वकृष्टि निपजाता है वहां बंधद्रव्य से बंधांतरकृष्टि संबंधी समानखंड द्रव्य से एक खंड और बंधांतरकृष्टि संबंधी विशेष द्रव्य से हुयी कृष्टियों के प्रमाण से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष ग्रहण करके देता है । यह नीचे की कृष्टि में दिये बंधद्रव्य से अनंतगुणा है । उसके ऊपर की पूर्वकृष्टि में तीन प्रकार का घातद्रव्य और दो प्रकार का बंधद्रव्य देता है । सो यहां दिया बंधद्रव्य अपूर्व अंतरकृष्टि में दिये द्रव्य से अनंतगुणा हीन है । उसके ऊपर बंधरूप पूर्वकृष्टि और बंधद्रव्य से निपजी अपूर्वकृष्टि और बंधरहित पूर्वकृष्टियों में द्रव्य देने का विधान पूर्वोक्त प्रकार से ही जानना । इसतरह प्रथम समय में सूक्ष्मकृष्टि संबंधी प्ररूपणा समाप्त हुयी ।

बिदियादिसु समयेसु अपुव्वाओ पुव्वकिट्टिहेट्ठाओ ।
पुव्वाणमंतरेसु वि अंतरजणिदा असंखगुणा ।।५७१।।

द्वितीयादिषु समयेषु अपूर्वा: पूर्वकृष्ट्यधस्तना: ।
पूर्वाणामंतरेष्वपि अंतरजनिता असंख्यगुणा ।।५७१।।

टीका – द्वितीयादि समयों में अपूर्व नवीन सूक्ष्मकृष्टि करता है । उनको पूर्व

समय में की हुयी सूक्ष्मकृष्टियों के नीचे करता है और उनके बीच-बीच में करता है । नीचे करता है, उन्हें अध:स्तनकृष्टि कहते हैं, बीच में करता है, उन्हें अंतरकृष्टि कहते हैं । वहां अध:स्तनकृष्टियों का प्रमाण अल्प है, उनसे अंतरकृष्टियों का प्रमाण असंख्यातगुणा है ।

दव्वगपढमे समये देदि अपुव्वेसणंतभागूणं ।
पुव्वापुव्वपवेसे असंखभागूणमहियं च ।।५७२।।

द्रव्यगप्रथमे समये ददाति अपूर्वेष्वनंतभागोनम् ।
पूर्वापूर्वप्रवेशे असंख्यभागोनमधिकं च ।।५७२।।

टीका – द्वितीयादि समयों में प्रथम समयवत् द्रव्य देता है ।

विशेष इतना – सूक्ष्मकृष्टि संबंधी द्रव्य को अध:स्तन अपूर्वकृष्टियों में अनंतवें भाग घटते क्रम से, पूर्वकृष्टि के प्रवेश में असंख्यातवां भाग मात्र घटता और अपूर्वकृष्टि का प्रवेश होनेपर असंख्यातवां भाग मात्र अधिक द्रव्य देता है । वही विशेषरूप से कहते हैं –

द्वितीयादि समयों में घातद्रव्य और संक्रमणद्रव्य का विभाग तो पूर्ववत् करना । सूक्ष्मकृष्टि के लिये अपकर्षण किया द्रव्य प्रतिसमय असंख्यातगुणा है । उसके विभाग में विशेष है, वह कहते हैं –

उस अपकर्षण किये द्रव्य में से पूर्व समय में की हुयी कृष्टि संबंधी एक विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और पूर्व समय में की हुयी कृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके वहां संकलनधन मात्र द्रव्य ग्रहण करके जुदा स्थापना । इसका नाम (१) अध:स्तनशीर्षविशेष *(द्रव्य)* है । पुनश्च पूर्वसमय में की हुयी कृष्टियों में से जो जघन्य कृष्टि उसका द्रव्य मात्र एक खंड, उसको इस वर्तमान समय में की हुयी अध:स्तनकृष्टियों के प्रमाण से गुणा करनेपर जो द्रव्य होता है, उसको ग्रहण करके जुदा स्थापना । इसका नाम (२) अध:स्तन अपूर्वकृष्टि संबंधी समानखंड द्रव्य है । उसी जघन्य पूर्वकृष्टि के द्रव्य मात्र एक खंड को वर्तमान समय में की हुयी अंतरअपूर्वकृष्टियों के प्रमाण से गुणा करनेपर जो द्रव्य *(का प्रमाण)*

होता है उसको ग्रहण करके जुदा स्थापना । इसका नाम (३) अंतरअपूर्वकृष्टि संबंधी समानखंड द्रव्य है ।

पुनश्च पूर्व समय और इस विवक्षित समय संबंधी सर्व सूक्ष्मकृष्टि के द्रव्य को, पूर्व-अपूर्व सर्व सूक्ष्मकृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ को एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि से गुणा करके, उसका भाग देनेपर एक उभयद्रव्य संबंधी विशेष होता है । उसको सर्व पूर्व-अपूर्व सूक्ष्मकृष्टि प्रमाण गच्छ का एक बार संकलनधन मात्र प्रमाण से गुणा करके जो द्रव्य होता है, उसको ग्रहण करके जुदा स्थापना । इसका नाम (४) उभयद्रव्यविशेष द्रव्य है ।

पूर्वोक्त चार प्रकार के द्रव्य को इस विवक्षित समय में अपकर्षण किये द्रव्य में से घटानेपर अवशेष जो द्रव्य रहा उसको, सर्व पूर्व-अपूर्व सूक्ष्मकृष्टियों के प्रमाण का भाग देनेपर एक खंड होता है, उसको उस भागहार मात्र प्रमाण से गुणा करके जो द्रव्य होता है उसको जुदा स्थापना । इसका नाम (५) मध्यमखंड द्रव्य है । इसतरह सूक्ष्मकृष्टि के लिये अपकर्षण किये द्रव्य के पांच प्रकार विभाग कहे। उनका सूक्ष्मकृष्टि में देने का विधान, पूर्वोक्त बादरकृष्टि संबंधी चार प्रकार के संक्रमणद्रव्य का तृतीय संग्रहकृष्टि में देने का विधान और चार प्रकार का बंधद्रव्य तथा तीन प्रकार के घातद्रव्य के अनंतवें भाग का द्वितीय संग्रहकृष्टि में देने का विधान इस विवक्षित समय में निरूपण करते हैं –

विवक्षित समय में की हुयी अध:स्तन अपूर्वकृष्टि की जघन्य कृष्टि में बहुत द्रव्य देता है । वहां पांच प्रकार के सूक्ष्मकृष्टि संबंधी द्रव्यों में अध:स्तनकृष्टि संबंधी समानखंड द्रव्य से एक खंड, मध्यमखंड द्रव्य से एक खंड, उभयद्रव्यविशेष द्रव्य से सर्व पूर्व-अपूर्व सूक्ष्मकृष्टि मात्र द्रव्य ग्रहण करके देता है । द्वितीय कृष्टि में अनंतवां भाग घटता द्रव्य देता है । वहां एक अधस्तनकृष्टि संबंधी समानखंड, एक मध्यमखंड, एक कम सर्व पूर्व-अपूर्व कृष्टि मात्र उभयद्रव्य के विशेष ग्रहण करके देता है । ऐसे ही तृतीयादि अंत तक अध:स्तन अपूर्वकृष्टियों में एक-एक उभयद्रव्य का विशेष मात्र घटते क्रम से देता है ।

उस अंत कृष्टि में दिये द्रव्य से पूर्व समय संबंधी सूक्ष्मकृष्टियों की जो जघन्य

कृष्टि, उसमें असंख्यातवां भाग मात्र घटता द्रव्य देता है । वहां मध्यमखंड से एक खंड, उभयद्रव्यविशेष द्रव्य से हुयी कृष्टियों से हीन सर्व सूक्ष्मकृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष ग्रहण करके देता है । उसके ऊपर द्वितीय पूर्वकृष्टि में अनंतवां भाग घटता द्रव्य देता है । वहां अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य से एक विशेष, मध्यमखंड से एक खंड, उभयद्रव्यविशेष द्रव्य से हुयी कृष्टियों से हीन सर्व सूक्ष्मकृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष ग्रहण करके देता है । इसीतरह तृतीयादि पूर्वकृष्टियों में एक-एक अध:स्तनशीर्ष विशेष बढ़ते और एक-एक उभयद्रव्य के विशेष घटते और एक-एक मध्यमखंड समानरूप द्रव्य देता है । जब तक अपूर्वअंतरकृष्टि प्राप्त नहीं होती तब तक ऐसा क्रम जानना ।

इसतरह पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र कृष्टि होनेपर वहां अंत कृष्टि में दिये द्रव्य से उसके ऊपर नवीन निपजायी हुयी जो अपूर्वअंतरकृष्टि, उसमें असंख्यातवां भाग मात्र अधिक द्रव्य देता है । वहां अंतरकृष्टि संबंधी समानखंड द्रव्य से एक खंड, मध्यमखंड द्रव्य से एक खंड और उभयद्रव्यविशेष द्रव्य से हुयी कृष्टियों से हीन सर्व सूक्ष्मकृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष ग्रहण करके देता है । उससे उसके ऊपर की पूर्वकृष्टि में असंख्यातवां भाग मात्र घटता द्रव्य देता है । वहां अध:स्तनशीर्षविशेष *(द्रव्य)* से हुयी पूर्वकृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष, मध्यमखंड *(द्रव्य)* से एक खंड और उभयद्रव्यविशेष *(द्रव्य)* से हुयी सर्व कृष्टियों से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष ग्रहण करके देता है । उसके ऊपर एक-एक अध:स्तनशीर्ष विशेष बढ़ते, एक-एक उभयद्रव्य का विशेष घटते क्रम से तथा एक-एक मध्यमखंड समानरूप से तब तक देता है जब तक अपूर्वअंतरकृष्टि प्राप्त नहीं होती ।

उसके ऊपर अपूर्वअंतरकृष्टि में एक अंतरकृष्टि संबंधी समानखंड, एक मध्यमखंड और हुयी कृष्टियों से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र उभयद्रव्य के विशेष देता है । यह दिया द्रव्य अपनी नीचे की कृष्टि में दिये द्रव्य से असंख्यातवें भाग मात्र अधिक है ।

उसके ऊपर पूर्वकृष्टि में हुयी पूर्वकृष्टि प्रमाण मात्र अध:स्तनशीर्षविशेष, एक मध्यमखंड, हुयी सर्व कृष्टियों से हीन सर्व कृष्टियों के प्रमाण मात्र उभयद्रव्य

के विशेष – इनका द्रव्य देता है । यह *(द्रव्य)* उस अपूर्वअंतरकृष्टि में दिये द्रव्य से असंख्यातवें भाग मात्र हीन है । उसके ऊपर पूर्व-अपूर्व कृष्टियों में इसी अनुक्रम से द्रव्य का देना *(तब तक)* जानना जब तक प्रथम समय कृत सूक्ष्मकृष्टियों की अंत कृष्टि होती है ।

उसके ऊपर लोभ की तृतीय बादरसंग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि, उसमें अंत सूक्ष्मकृष्टि में दिये द्रव्य से असंख्यातगुणा घटता द्रव्य देता है । वहां चार प्रकार के संक्रमणद्रव्य में से मध्यमखंड से एक खंड, उभयद्रव्यविशेष द्रव्य से सर्व बादरकृष्टि मात्र विशेष ग्रहण करके देता है । उसके ऊपर तृतीय संग्रहकृष्टि में चार प्रकार का संक्रमणद्रव्य देने का और द्वितीय संग्रहकृष्टि में चार प्रकार का बंधद्रव्य, तीन प्रकार का घातद्रव्य देने का विधान द्वितीय संग्रह की उत्कृष्ट कृष्टि तक जैसे प्रथम समय में द्रव्य देने का विधान कहा वैसे ही जानना । इसप्रकार द्वितीयादि समयों में द्रव्य देने का विधान जानना ।

पढमादिसु दिस्सकमं सुहुमेसु अणंतभागहीणकमं ।
बादरकिट्टिपदेसो असंखगुणिदं तदो हीणं ।।५७३।।

प्रथमादिषु दृश्यक्रमं सूक्ष्मेष्वनंतभागहीनक्रमं ।
बादरकृष्टिप्रदेशः असंख्यगुणितस्ततो हीनः ।।५७३।।

टीका – अब दिया द्रव्य और पूर्व द्रव्य मिलकर कृष्टियों में देखने में आया ऐसा दृश्यमान द्रव्य, इनका क्रम कहते हैं ।

प्रथमादि समयों में जघन्य सूक्ष्मकृष्टि में दृश्यमान द्रव्य बहुत है । उसके ऊपर द्वितीयादि अंत तक सूक्ष्मकृष्टियों में अनंत(बहुभाग) घटते क्रम सहित दृश्यमान द्रव्य है । एक-एक विशेष मात्र घटता है । उसके ऊपर तृतीय संग्रहकृष्टि की बादर जघन्य कृष्टि, उसका प्रवेश होनेपर उसमें दृश्यमान द्रव्य अंत सूक्ष्मकृष्टि के दृश्यमान द्रव्य से असंख्यातगुणा है । उसके ऊपर द्वितीयादि *(तृतीय संग्रहकृष्टि की द्वितीय कृष्टि से लेकर)* द्वितीय संग्रहकृष्टि की अंत बादरकृष्टि तक दृश्यमान द्रव्य अनंत(बहुभाग) घटते क्रम सहित एक-एक विशेष मात्र घटता है, ऐसा जानना ।

लोहस्स य तदियादो सुहुमगदं बिदियदो दु तदियगदं ।
बिदियादो सुहुमगदं दव्वं संखेज्जगुणिदकमं ।।५७४।।

लोभस्य च तृतीयतः सूक्ष्मगतं द्वितीयस्तु तृतीयगतं ।
द्वितीयतः सूक्ष्मगतं द्रव्यं संख्येयगुणितक्रमं ।।५७४।।

टीका – लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि से जो द्रव्य सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणमित हुआ वह अल्प है । उससे लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि से जो द्रव्य लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टिरूप परिणमित हुआ, वह संख्यातगुणा है । उससे लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि से जो द्रव्य सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणमित हुआ, वह संख्यातगुणा है, क्योंकि लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की कृष्टियों के प्रमाण से सूक्ष्मकृष्टि का प्रमाण संख्यातगुणा है ।

किट्टीवेदगपढमे कोहस्स य बिदियदो दु तदियादो ।
माणस्स य पढमगदो माणतियादो दु मायपढमगदो ।।५७५।।

मायतियादो लोभस्सादिगदो लोभपढमदो बिदियं ।
तदियं च गदा दव्वा दसपदमहियकमा होंति ।।५७६।।

कृष्टिवेदकप्रथमे क्रोधस्य च द्वितीयतस्तु तृतीयतः ।
मानस्य च प्रथमगतं मानत्रयात् तु मायाप्रथमगतः ।।५७५।।

मायत्रिकात् लोभस्यादिगता लोभप्रथमतो द्वितीयं ।
तृतीयं च गतानि द्रव्याणि दशपदमधिकक्रमाणि भवंति ।।५७६।।

टीका – यहां सूक्ष्मकृष्टियों में संक्रमण हुये द्रव्य का प्रमाण लाने का साधक ऐसा बादरकृष्टियों में संक्रमण हुये प्रदेशों का अल्पबहुत्व कहते हैं –

बादरकृष्टिवेदक काल के प्रथम समय में क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि से मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमण हुआ द्रव्य अल्प है । उससे क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि से मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमण हुआ द्रव्य विशेष अधिक है, क्योंकि अल्प अनुभाग युक्त तृतीय संग्रहकृष्टि की कृष्टियों का प्रमाण बहुत अनुभाग युक्त द्वितीय

संग्रहकृष्टि की कृष्टियों के प्रमाण से विशेष अधिक है । इसलिए संक्रमणद्रव्य भी विशेष अधिक जानना । यहां पात्र के अनुसार अधिकपना जानना । पात्र के अनुसार क्या है ? द्वितीय संग्रहकृष्टि की कृष्टियों के प्रमाण से तृतीय संग्रहकृष्टि की कृष्टियों का प्रमाण जैसे अधिक कहा, तैसे ही संक्रमणद्रव्य भी अधिक कहना । सो यहां पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र अधिक जानना ।

पुनश्च उससे मान की प्रथम संग्रहकृष्टि से माया की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमण हुआ द्रव्य विशेष अधिक है । यहां भी पात्रानुसारी क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि की कृष्टियों से मान की प्रथम संग्रहकृष्टि की कृष्टि जैसे अधिक हैं, वैसे ही आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र अधिक जानना । उससे मान की द्वितीय संग्रहकृष्टि से माया की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमण हुआ द्रव्य विशेष अधिक है । उससे मान की तृतीय संग्रहकृष्टि से माया की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमण हुआ द्रव्य विशेष अधिक है । यहां दोनों जगह पात्रानुसार अधिक का प्रमाण पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र है ।

उससे माया की प्रथम संग्रहकृष्टि से लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमण हुये प्रदेश *(द्रव्य)* विशेष अधिक हैं । यहां पात्रानुसारी विशेष का प्रमाण आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र है । उससे माया की द्वितीय संग्रहकृष्टि से लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमण हुये प्रदेश विशेष अधिक हैं । उससे माया की तृतीय संग्रहकृष्टि से लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमण हुये प्रदेश विशेष अधिक हैं । यहां दोनों जगह विशेष का प्रमाण पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र है ।

उससे लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि से लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि में संक्रमण हुआ प्रदेशसमूह विशेष अधिक है । यहां पात्रानुसारी विशेष का प्रमाण आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र है ।

यहां प्रश्न – जहां अन्य कषाय की संग्रहकृष्टि का द्रव्य अन्य कषाय की संग्रहकृष्टि में संक्रमण होना कहा, वहां परस्थान संक्रमण में अपने-अपने द्रव्य को अध:प्रवृत्त भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र द्रव्य का संक्रमण होता है, इसलिए

अन्य कषाय में संक्रमणद्रव्य के विशेष अधिक का क्रम कहा, वह तो बनता है । परंतु लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि से उसीकी द्वितीय संग्रहकृष्टि में संक्रमण हुआ वह यहां स्वस्थान संक्रमण है । यहां अपने द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र द्रव्य का संक्रमण होता है । चूंकि अधःप्रवृत्त भागहार से अपकर्षण भागहार असंख्यातगुणा हीन है, इसलिए पूर्वोक्त संक्रमणद्रव्य से इसका संक्रमणद्रव्य असंख्यात गुणा कहो, विशेष अधिक कैसे कहते हो ?

उसका समाधान – यहां परिणाम के अतिशय से अधःप्रवृत्त भागहार भी अपकर्षण भागहार के ही अनुसार वर्तता है । इसलिए ऐसा विशेष यहां ही पाया जाता है, अन्यत्र सर्वत्र अधःप्रवृत्त भागहार से अपकर्षण भागहार असंख्यातगुणा हीन ही जानना ।

उससे लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि से लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में संक्रमण हुये प्रदेश विशेष अधिक हैं । यहां पात्रानुसारि विशेष का प्रमाण पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र है । ऐसे दस स्थान अधिक क्रम सहित जानना ।

कोहस्स य पढमादो माणादी कोधतदियबिदियगदं ।
तत्तो संखेज्जगुणं अहियं संखेज्जसंगुणियं ।।५७७।।

क्रोधस्य च प्रथमात् मानादौ क्रोधतृतीयद्वितीयगतम् ।
ततः संख्येयगुणमधिकं संख्येयसंगुणितम् ।।५७७।।

टीका – पुनश्च उस पूर्वोक्त क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि से मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमण हुआ द्रव्य संख्यातगुणा है; क्योंकि लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि के द्रव्य से क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य तेरहगुणा है । उससे क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि से क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि में संक्रमण हुये प्रदेश विशेष अधिक हैं । यहां विशेष का प्रमाण पात्रानुसारि पल्य के असंख्यातवें भागमात्र है *(यहां मात्र पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा है, परंतु क्या वह पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र होना चाहिये था ?)*

उससे क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि से क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि में संक्रमण हुआ प्रदेशसमूह संख्यातगुणा है । यद्यपि यहां पूर्वोक्त से पात्र अल्प है, कृष्टियों का

प्रमाण अल्प है तथापि जिस संग्रहकृष्टि का वेदक है उसका द्रव्य, उसके अनंतर जो संग्रहकृष्टि वेदने में आयेगी वहां संक्रमण होने योग्य औरों से संख्यातगुणा कहा है । इसलिए यहां वेद्यमान क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का उसके अनंतर वेद्यमान द्वितीय संग्रहकृष्टि में संक्रमण हुआ द्रव्य संख्यातगुणा कहा है । इसतरह कथन का अवसर उल्लंघकर आये हैं तो भी यहां कथन किया, वह सूक्ष्मकृष्टि का प्रमाण लाने के पहले कथन किया वह उसका क्रम मिलाने के लिये कहा है । कैसे ?

लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि से जो उसकी तृतीय संग्रहकृष्टि में प्रदेश संक्रमण हुये, उससे संख्यातगुणा प्रदेश सूक्ष्मकृष्टिरूप होते हैं । ऐसे यह अनुक्रम कहा, सो यहां ही यह गुणकार की प्रवृत्ति नहीं हुयी है, परंतु पहले बादरकृष्टि में भी संख्यातगुणा द्रव्य से संक्रमण हुआ द्रव्य संख्यातगुणा कहा है । जैसे क्रोध का द्रव्य तेरहगुणा था, उससे संक्रमण हुआ द्रव्य चौदह गुणकार सहित कहा था (१३ × १४); इसी क्रम से यहां लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य तेइसगुणा है उससे संक्रमण हुआ द्रव्य चौबीस के गुणकार सहित जानना (२३ × २४) । इस अनुक्रम को जानने के लिये यहां यह कथन किया है ।

लोभस्स बिदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जाव पढमठिदि ।
आवलितियमवसेसं आगच्छदि बिदियदो तदियं ।।५७८।।

लोभस्य द्वितीयकृष्टिं वेद्यमानस्य यावत् प्रथमस्थितिः ।
आवलित्रिकमवशेषमागच्छति द्वितीयतस्तृतीयं ।।५७८।।

टीका – इसप्रकार लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि के वेदक जीव के, उसकी प्रथम स्थिति में जब तक तीन आवली अवशेष रहे तब तक द्वितीय संग्रहकृष्टि से तृतीय संग्रहकृष्टि में द्रव्य संक्रमणरूप होकर प्राप्त होता है । वह कहते हैं –

लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि की प्रथम स्थिति में विश्रमणावली, संक्रमणावली, उच्छिष्टावली ये तीन अवशेष रहे तब तक लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि में देता है । क्योंकि तृतीय संग्रहकृष्टि में संक्रमण हुआ द्रव्य वहां विश्रमणावली तक तो विश्राम करता है, पश्चात् संक्रमणावली में सूक्ष्मकृष्टिरूप

होकर संक्रमण करता है, तब उच्छिष्टावली मात्र प्रथम स्थिति रह जाती है । इसलिए तीन आवली अवशेष रहे तब तक द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य तृतीय संग्रहकृष्टि में संक्रमण होना कहा है । उसके ऊपर द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य अपकर्षण संक्रमण द्वारा सूक्ष्मकृष्टि में ही संक्रमण करता है । जब तक दो आवली शेष रह जाती है, तब तक ऐसे जानना । वहां आगाल प्रत्यागाल की व्युच्छित्ति करके समय कम आवली मात्र निषेकों को अधोगलनरूप क्रम से भोगकर समय अधिक आवली अवशेष रखता है ।

तत्तो सुहुमं गच्छदि समयाहियआवलीयसेसाए ।
सव्वं तदियं सुहुमे णव उच्छिट्ठं विहाय बिदियं च ।।५७९।।

ततः सूक्ष्मं गच्छति समयाधिकावलीशेषायां ।
सर्वं तृतीयं सूक्ष्मे नवकमुच्छिष्टं विहाय द्वितीयं च ।।५७९।।

टीका – वहां द्वितीय संग्रहकृष्टि की प्रथम स्थिति में समय अधिक आवली अवशेष रहनेपर अनिवृत्तिकरण का अंत समय होता है । वहां लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि का तो सर्व द्रव्य सूक्ष्मकृष्टि को प्राप्त होता है । लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि के द्रव्य में समय अधिक उच्छिष्टावली मात्र निषेक और एक समय कम आवली मात्र नवक समयप्रबद्ध ये तो बादरकृष्टिरूप रहते हैं । अन्य सर्व द्रव्य सूक्ष्मकृष्टिरूप द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा तो इस समय में परिणमता है और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा अगले समय में उच्छिष्टावली मात्र निषेक और दो समय कम दो आवली मात्र नवक समयप्रबद्ध बिना अन्य सर्व द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणमता है, ऐसा जानना ।

लोभस्स तिघादीणं ताहे अघादितियाण ठिदिबंधो ।
अंतो दु मुहुत्तस्स य दिवसस्स य होदि वरिसस्स ।।५८०।।

लोभस्य त्रिघातिनां तत्राघातित्रयाणां स्थितिबंधः ।
अंतस्तु मुहूर्तस्य च दिवसस्य च भवति वर्षस्य ।।५८०।।

टीका – वहां अनिवृत्तिकरण के अंत समय में संज्वलन लोभ का जघन्य स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त मात्र है । यहां ही मोहबंध की व्युच्छित्ति हुयी । तीन घातिकर्मों का एक दिन से कुछ कम और तीन अघातिकर्मों का एक वर्ष से किंचित् न्यून स्थितिबंध होता है ।

ताणं पुण ठिदिसंतं कमेण अंतोमुहुत्तयं होइ ।
वस्साणं संखेज्जसहस्साणि असंखवस्साणि ।।५८१।।

तेषां पुनः स्थितिसत्त्वं क्रमेणांतर्मुहूर्तकं भवति ।
वर्षाणां संख्येयसहस्राणि असंख्यवर्षाणि ।।५८१।।

टीका – वहां उनका स्थितिसत्त्व क्रम से लोभ का अंतर्मुहूर्त, तीन घातिकर्मों का यथायोग्य संख्यात हजार वर्ष मात्र और तीन अघातिकर्मों का यथायोग्य असंख्यात वर्ष मात्र है ।

से काले सुहुमगुणं पडिवज्जदि सुहुमकिट्टिठिदिखंडं ।
आणायदि तद्दव्वं उक्कट्टिय कुणदि गुणसेढिं ।।५८२।।

स्वे काले सूक्ष्मगुणं प्रतिपद्यते सूक्ष्मकृष्टिस्थितिखंडं ।
आनयति तद्द्रव्यं अपकृष्य करोति गुणश्रेणिं ।।५८२।।

टीका – अनिवृत्तिकरण के अंत समय के अनंतर सूक्ष्मकृष्टियों को वेदता हुआ अपने काल में सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान को प्राप्त होता है । यहां उसके प्रथम समय में लोभ की सूक्ष्मकृष्टियों की अंतर्मुहूर्त मात्र स्थिति है, उसके संख्यातवें भाग मात्र स्थितिकांडक आयाम लांछित होता है । मोह के कृष्टि को प्राप्त हुये अनुभाग का अनुसमयापवर्तन और ज्ञानावरणादि का स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात पूर्वोक्तवत् वर्तता है । उस समय में द्रव्य निक्षेपण का विधान कहते हैं –

सूक्ष्मकृष्टि संबंधी द्वितीय स्थिति में प्राप्त जो मोह का सर्वद्रव्य, उसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग का अपकर्षण करके गुणश्रेणी करता है –

गुणसेढि अंतरट्ठिदि बिदियट्ठिदि इदि हवंति पव्वतिया ।
सुहुमगुणादो अहिया अवट्ठिदुदयादि गुणसेढी ।।५८३।।

गुणश्रेणिरंतरस्थितिः द्वितीयस्थितिरिति भवंति पर्वत्रयाणि ।
सूक्ष्मगुणतोऽधिका अवस्थितोदयादि गुणश्रेणिः ।।५८३।।

टीका – गुणश्रेणी, अंतरस्थिति और द्वितीय स्थिति ये तीन पर्व हैं । अपकर्षण किया हुआ द्रव्य इन तीनों में विभाग करके देता है । जहां तक अपकर्षण किये हुये द्रव्य को असंख्यात गुणा क्रम सहित देता है उसका नाम गुणश्रेणी है । उसके ऊपरवर्ती जिन निषेकों का पहले अभाव किया था, उनके प्रमाणरूप अंतरस्थिति है । उसके ऊपर अवशेष सर्व स्थिति का नाम द्वितीय स्थिति है ।

मोहनीय की यह गुणश्रेणी यहां सूक्ष्मसाम्पराय के काल से कुछ विशेष अधिक है तो भी यहां पाये जानेवाले ज्ञानावरणादि के गुणश्रेणी आयाम से अंतर्मुहूर्त मात्र हीन है, यह उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी है । उदयरूप जो वर्तमान समय, उससे लेकर यह पायी जाती है, पूर्ववत् उदयावली के पश्चात् नहीं; इसलिए इसे उदयादि कहते हैं । तथा अवस्थित प्रमाणवाली है । पूर्व गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम में एक-एक समय व्यतीत होनेपर गुणश्रेणी आयाम घटता जाता है, अब एक-एक समय व्यतीत होनेपर उसके अनंतरवर्ती अंतरायाम का एक-एक समय मिलकर गुणश्रेणी आयाम जितना का उतना रहता है, इसलिए इसे अवस्थित कहते हैं ।

उक्कट्ठिदइगिभागं गुणसेढीए असंखबहुभागं ।
अंतरहिद बिदियठिदी संखसलागा हि अवहरिया ।।५८४।।

गुणिय चउरादिखंडे अंतरसयलट्ठिदिम्हि णिक्खिवदि ।
सेसबहुभागमावलिहीणे बिदियट्ठिदीए हु ।।५८५।।

अपकर्षितैकभागं गुणश्रेण्यामसंख्यबहुभागम् ।
अंतरहिते द्वितीयस्थितिः संख्यशलाका हि अपहरिताः ।।५८४।।

गुणित्वा चतुरादिखंडे अंतरसकलस्थितौ निक्षिपति ।
शेषबहुभागमावलिहीने द्वितीयस्थितौ हि ।।५८५।।

टीका – अपकर्षण किये द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यात का भाग देकर वहां एकभाग मात्र द्रव्य को गुणश्रेणी आयाम में देता है । अवशेष बहुभाग मात्र द्रव्य को, अंतरस्थिति का भाग द्वितीय स्थिति को देनेपर जो संख्यात प्रमाणवाली एक शलाका का प्रमाण आता है, उसका भाग देकर वहां एकभाग को संदृष्टि की अपेक्षा चार से गुणा करके इतना द्रव्य अंतरस्थिति में देता है । अवशेष सर्व द्रव्य अंत में अतिस्थापनावली से हीन जो द्वितीय स्थिति उसमें देता है । वही दिखाते हैं –

अंतरस्थिति का प्रमाण सबसे अल्प, वह संदृष्टि की अपेक्षा चौगुणा अंतर्मुहूर्त मात्र है । उससे स्थितिकांडकायाम का प्रमाण संख्यातगुणा, वह संदृष्टि से सोलहगुणा अंतर्मुहूर्त मात्र है । उससे स्थितिकांडक के नीचे जो अवशेष स्थिति रहती है उसका प्रमाण संख्यातगुणा, वह संदृष्टि से चौंसठगुणा अंतर्मुहूर्त मात्र है । स्थितिकांडकायाम और अवशेष स्थिति जोड़नेपर सर्व द्वितीय स्थिति का प्रमाण होता है, वह अस्सीगुणा अंतर्मुहूर्त मात्र । यहां अंतरस्थिति आयाम का भाग द्वितीय स्थिति आयाम को देनेपर संदृष्टि से बीस आये, सो ऐसे संख्यात प्रमाणवाली शलाका का भाग असंख्यात बहुभाग मात्र अपकर्षण द्रव्य को देकर, वहां एक खंड को अंतरस्थिति में देना कहेंगे तो अंतरस्थिति के अंत निषेक में दिये द्रव्य से द्वितीय स्थिति में दिया द्रव्य किंचित् कम होगा और दो खंड देना कहेंगे तो किंचित् कम त्रिभाग मात्र होगा । इस क्रम से यथायोग्य संख्यात खंड ग्रहण करके अंतरस्थिति में देता है । यह अपकर्षण किये सर्वद्रव्य के संख्यातवें भाग मात्र होता है ।

संदृष्टि से उस असंख्यात बहुभाग मात्र द्रव्य को बीस का भाग देकर चार से गुणा करनेपर अंतरस्थिति में दिये द्रव्य का प्रमाण आता है । उस असंख्यात बहुभाग मात्र द्रव्य में से इतना घटाकर जो अवशेष रहा, उसे द्वितीय स्थिति में अंत में अतिस्थापनावली छोड़कर सर्वत्र देता है । संदृष्टि से असंख्यात बहुभाग मात्र द्रव्य को बीस का भाग देकर वहां सोलह भाग मात्र द्रव्य द्वितीय स्थिति में देता है ।

अंतरपढमठिदि त्ति य असंखगुणिदक्कमेण दिज्जदि हु ।
हीणकमं संखेज्जगुणूणं हीणक्कमं तत्तो ।।५८६।।

अंतरप्रथमस्थित्यंतं असंख्यगुणितक्रमेण दीयते हि ।
हीनक्रमं संख्येयगुणोनं हीनक्रमं ततः ।।५८६।।

टीका – अंतरायाम की प्रथम स्थिति अर्थात् प्रथम निषेक, वहां तक तो असंख्यातगुणा क्रम सहित द्रव्य देता है । उसके ऊपर हीन क्रम सहित संख्यातगुणा घटता, पुनश्च हीन क्रम सहित द्रव्य देता है । वही कहते हैं –

गुणश्रेणी आयाम के प्रथम निषेक में दिये द्रव्य की एक शलाका, उससे द्वितीय निषेक में दिये द्रव्य की शलाका पल्य के असंख्यातवें भाग गुणा है । इस क्रम से गुणकार युक्त अंत निषेक तक जितनी शलाका होगी, उनका जोड़ देकर जो प्रमाण हो, उसका भाग गुणश्रेणी में देने योग्य पूर्वोक्त द्रव्य को देकर, वहां एकभाग को अपनी-अपनी शलाका के प्रमाण से गुणा करनेपर प्रथमादि निषेकों में द्रव्य देने का प्रमाण आता है ।

अंकसंदृष्टि से जैसे एक से लेकर चौगुणी-चौगुणी शलाका चार निषेकों में स्थापित करके १ | ४ | १६ | ६४ जोड़नेपर पचासी होगी । उसका भाग द्रव्य को देकर एक, चार आदि से गुणा करनेपर प्रथमादि निषेकों में दिये द्रव्य का प्रमाण आता है । यहां गुणकार में जोड़ देने का प्रमाण करणसूत्र यह जानना –

पदमितगुणहतिगुणितप्रभेदः स्याद्गुणधनं तदा तदा द्व्यूनं ।
एकोनगुणविभक्तं गुणसंकलितं विजानीयात् ।।१।।

गच्छ मात्र गुणकारों को परस्पर गुणा करनेपर गुणधन होता है । वहां प्रथम स्थान घटाकर अवशेष को एक कम गुणकार का भाग देनेपर गुणकार में संकलनधन आता है । जैसे यहां संदृष्टि में गच्छ चार, गुणकार चार, सो चार जगह चार, चार लिखकर परस्पर गुणा करनेपर दो सौ छप्पन होते हैं । उसमें से आदि एक घटाकर अवशेष को *(दो सौ पचपन को)* एक कम गुणकार तीन का भाग देनेपर जोड़ पचासी होता है ।

इसतरह वर्तमान उदयरूप गुणश्रेणी के प्रथम निषेक से लेकर गुणश्रेणीशीर्ष तक देता है । गुणश्रेणी के अंत के निषेक को गुणश्रेणीशीर्ष कहते हैं । सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में यहां कहे हुये गुणश्रेणी आयाम का अंत निषेक ही गुणश्रेणीशीर्ष है । पुनश्च द्वितीयादि समयों में एक-एक समय व्यतीत होनेपर अंतरायाम का प्रथमादि निषेक गुणश्रेणी में आ मिलता है वह गुणश्रेणीशीर्ष है, क्योंकि यहां अवस्थित गुणश्रेणी आयाम है ।

अब गुणश्रेणी के ऊपरवर्ती अंतरायाम के निषेकों में द्रव्य देने का विधान कहते हैं –

अंतरायाम में देनेयोग्य पूर्वोक्त द्रव्य को अंतरायाम मात्र गच्छ का भाग देनेपर मध्यमधन होता है । उसमें एक कम गच्छ का आधा प्रमाण मात्र विशेष मिलाकर जो हो उतना द्रव्य अंतरायाम के प्रथम निषेक में देता है । यह द्रव्य गुणश्रेणीशीर्ष में दिये द्रव्य से असंख्यातगुणा है, इसलिए सूत्र में अंतरायाम के प्रथम निषेक तक असंख्यातगुणा देयद्रव्य कहा । उसके ऊपर अंतरायाम के द्वितीयादि निषेकों में एक-एक विशेष से हीन क्रम सहित द्रव्य देता है । अंतरायाम के अंत निषेक तक ऐसा क्रम जानना ।

अब द्वितीय स्थिति में निषेकों में द्रव्य देने का विधान कहते हैं –

द्वितीय स्थिति में देने योग्य पूर्वोक्त द्रव्य को आवली रहित द्वितीय स्थिति के प्रमाण मात्र गच्छ का भाग देनेपर मध्यमधन आता है । इसमें एक कम गच्छ के आधे प्रमाण मात्र विशेष जोड़नेपर जो हो, उतना द्रव्य द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में देता है । यह दिया द्रव्य अंतरायाम के अंत निषेक में दिये द्रव्य से संख्यातगुणा हीन है । इसलिए सूत्र में यहां दिया द्रव्य संख्यातगुणा हीन कहा । उसके ऊपर द्वितीय स्थिति के द्वितीयादि निषेकों में एक-एक विशेष घटते क्रम से द्रव्य देता है । ऐसे देयद्रव्य का विधान कहा ।

अंतरपढमठिदित्ति य असंखगुणिदक्कमेण दिस्सदि हु ।
हीणकमेण असंखेज्जेण गुणं तो विहीणकमं ।।५८७।।

अंतरप्रथमस्थित्यंतं च असंख्यगुणितक्रमेण दृश्यते हि ।
हीनक्रमेण असंख्येयेन गुणमतो विहीनक्रमम् ।।५८७।।

टीका – पूर्वद्रव्य और दिया द्रव्य मिलकर जो दृश्यमानद्रव्य होता है, उसका विधान कहते हैं –

वर्तमान समय संबंधी निषेक में दृश्यमानद्रव्य अल्प है, उससे अंतरायाम के प्रथम निषेक तक असंख्यातगुणा क्रम सहित है । उसके ऊपर अंतरायाम के अंत निषेक तक विशेष घटते क्रम सहित है । यहां तक देयद्रव्य का जैसे क्रम कहा वैसे ही दृश्यमानद्रव्य का भी क्रम जानना । उससे उसके ऊपर द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक का दृश्यमानद्रव्य असंख्यातगुणा है । उसके ऊपर उसके अंत निषेक तक विशेष घटते क्रम सहित दृश्यमानद्रव्य है । इसप्रकार सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय से लेकर प्रथम स्थितिकांडक का घात जब तक पूर्ण नहीं होता तब तक ऐसा क्रम जानना । विशेष इतना है कि अपकर्षण किये द्रव्य का प्रमाण प्रतिसमय असंख्यातगुणा जानना ।

वहां प्रथम कांडक की अंत फालि के द्रव्य का प्रमाण लाने के लिये कहते हैं –

कंडयगुणचरिमठिदी सविसेसा चरिमफालिया तस्स ।
संखेज्जभागमंतरठिदिम्हि सव्वे तु बहुभागं ।।५८८।।

कांडकगुणचरमस्थितिः सविशेषा चरमस्फालिका तस्य ।
संख्येयभागमंतरस्थितौ सर्वायां तु बहुभागम् ।।५८८।।

टीका – कांडकायाम से गुणित जो विशेष सहित अंत स्थिति उस प्रमाण अंत फालि का द्रव्य है । उसका संख्यातवां भाग तो अंतरस्थिति में, बहुभाग सर्वस्थिति में देता है, वही कहते हैं –

द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में से एक कम द्वितीय स्थिति आयाम मात्र विशेष घटानेपर अंत निषेक का द्रव्य होता है । उससे लेकर नीचे के कांडकआयाम मात्र निषेकों का द्रव्य अंत फालि में ग्रहण करता है । इसलिए उस अंत निषेक के द्रव्य

को जो कांडक का आयाम वही फालि का आयाम, उससे गुणा करके, वहां नीचे के निषेकों में जो विशेष अधिक पाये जाते हैं, उनको *(उनके द्रव्य को)* अधिक करनेपर अंत फालि के सर्वद्रव्य का प्रमाण होता है । इसमें नीचे के *(कांडक के नीचे के)* निषेकों का अपकर्षण किया द्रव्य जोड़नेपर जो द्रव्य होगा, उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग को गुणश्रेणी आयाम में देने के पश्चात् अवशेष जो द्रव्य रहा, उसके देने का विधान कहते हैं –

अंतरायाम का भाग फालि के आयाम को देकर जो संख्यात मात्र प्रमाण होगा, उसका भाग उस अवशेष द्रव्य को देनेपर जो एक खंड होगा, उसमें से पहले जो अंतरस्थिति में द्रव्य दिया था उसको घटाकर अवशेष को अंगीकार करना, इतना द्रव्य घटाकर जो अवशेष रहा उसको कांडक के नीचे की अवशेष स्थिति को अंतरायाम का भाग देकर जो संख्यात का प्रमाण आता है उसमें एक मिलाकर, उसका भाग देनेपर जो एक खंड का प्रमाण आता है उसको पहले अंगीकार किये हुये द्रव्य में जोड़नेपर जितना हो, उतना द्रव्य अंतरायाम में पूर्वोक्त प्रकार से गोपुच्छाकार से चय घटते क्रम सहित देना । उस बहुभाग मात्र द्रव्य में से इतना द्रव्य घटानेपर जो अवशेष रहा उसको द्वितीय स्थिति में पूर्वोक्त प्रकार से गोपुच्छाकार से चय घटते क्रम सहित देना । वहां अंतरस्थिति के अंत निषेक में दिये द्रव्य से द्वितीय स्थिति के आदि निषेक में दिया द्रव्य संख्यातगुणा हीन जानना । ऐसे ही अंत फालि के द्रव्य का संख्यातवां भाग अंतरायाम में, बहुभाग द्वितीय स्थिति में देने का विधान जानना । यहां संदृष्टि में संख्यात की सहनानी चार जानकर कथन समझना । यहां इतना जानना –

कांडक में से स्थिति घटाकर उसके द्रव्य को नीचे के निषेकों में देने के लिये प्रतिसमय जितना ग्रहण करते हैं, उसे तो फालिद्रव्य कहते हैं और गुणश्रेणी आदि के लिये जो सर्वस्थिति के द्रव्य को अपकर्षण करके ग्रहण करते हैं, उसे अपकृष्टद्रव्य कहते हैं । वहां कांडक की प्रथमादि फालिपतन समय में तो अपकृष्टद्रव्य बहुत है, फालिद्रव्य अल्प है; इसलिए अपकृष्टद्रव्य का ही मुख्यपने देने का विधान कहा । परंतु अंत फालि में फालिद्रव्य बहुत है, अपकृष्टद्रव्य अल्प है । इसलिए फालिद्रव्य में अवशेष रही स्थिति के अपकृष्टद्रव्य को साधिक करके द्रव्य देने का विधान कहा है ।

इसप्रकार प्रथम कांडक काल संपूर्ण होनेपर अंतरपूरण हुआ । जिन बीच के निषेकों का अभाव हुआ था, उनका सद्भाव हुआ । तब अंतर पूरण होने से गुणश्रेणी आयाम बिना ऊपर के सर्व निषेकों में एक गोपुच्छ हुआ । इसतरह सूक्ष्मसाम्पराय काल के प्रथम समय से लेकर प्रथम कांडक की अंत फालिपतन तक तो तीन स्थानों में द्रव्य देने का विधान समानरूप कहा ।

अब द्वितीयादि कांडकों में देयद्रव्य, दृश्यद्रव्य का विधान कहते हैं –

अंतरपढमठिदि त्ति य असंखगुणिदक्कमेण दिज्जदि हु ।
हीणं तु मोहबिदियट्ठिदिखंडयदो दुघादो त्ति ।।५८९।।

अंतरप्रथमस्थितिरिति च असंख्यगुणितक्रमेण दीयते हि ।
हीनं तु मोहद्वितीयस्थितिकांडकतो द्विघात इति ।।५८९।।

टीका – मोह के द्वितीय स्थितिकांडकघात से लेकर द्विचरम कांडकघात तक कांडक द्वारा गृहित स्थिति के नीचे और उदयावली के ऊपर जो निषेक, उनके द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग मात्र द्रव्य ग्रहण कर उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर, वहां एकभाग को पूर्वोक्त प्रकार से गुणश्रेणी आयाम में प्रथम उदय निषेक में तो अल्प और द्वितीयादि निषेकों में गुणश्रेणीशीर्ष तक असंख्यातगुणा क्रम सहित देता है । अवशेष बहुभाग मात्र द्रव्य को गुणश्रेणी के ऊपर की अंतर्मुहूर्त मात्र स्थिति प्रमाण जो गच्छ उसका भाग देकर वहां एक खंड में, एक कम गच्छ के आधे प्रमाण मात्र विशेष मिलानेपर जो द्रव्य होगा, उतना गुणश्रेणीशीर्ष के ऊपर के निषेक में देता है । यह गुणश्रेणीशीर्ष में दिये द्रव्य से असंख्यातगुणा है । इसतरह अंतर के प्रथम निषेक तक तो असंख्यातगुणा क्रम सहित द्रव्य देता है । उसके ऊपर एक-एक विशेष घटते क्रम सहित द्रव्य देता है । अतिस्थापनावली प्राप्त होने तक ऐसा क्रम जानना । यहां प्रथम स्थितिकांडक काल के अंत समय में ही अंतर पूरण हुआ, इसलिए अंतरायाम में जुदा द्रव्य देने का विधान न कहा ।

सर्व स्थितिकांडकों में अंत फालि तक जो अपकृष्टद्रव्य है वह तो सकल द्रव्य के असंख्यातवें भाग मात्र जानना और अंत फालि के पतन समय में कांडकस्थिति

से आयाम जो फालिद्रव्य है, वह सर्वद्रव्य के संख्यातवें भाग मात्र जानना ।

अंतरपढमठिदि त्ति य असंखगुणिदक्कमेण दिस्सदि हु ।
हीणं तु मोहबिदियट्ठिदिखंडयदो दुघादो त्ति ।।५९०।।

अंतरप्रथमस्थितिरिति च असंख्यगुणितक्रमेण दृश्यते हि ।
हीनं तु मोहद्वितीयस्थितिकांडकतो द्विघातांतम् ।।५९०।।

टीका – मोह के द्वितीय स्थितिकांडकघात से लेकर द्विचरम स्थितिकांडकघात तक दृश्यमानद्रव्य गुणश्रेणी के प्रथम निषेक में अल्प है, उससे गुणश्रेणीशीर्ष के ऊपर का अंतरायाम का पहला निषेक, वहां तक असंख्यातगुणा क्रम सहित है । उसके ऊपर अंत निषेक तक विशेष घटते क्रम सहित दृश्यमानद्रव्य है; क्योंकि प्रथम कांडक की अंत फालि के पतन के समय में गुणश्रेणी के ऊपर सर्व स्थिति का एक गोपुच्छ होता है ।

पढमगुणसेढिसीसं पुव्विल्लादो असंखसंगुणियं ।
उवरिमसमये दिस्सं विसेसअहियं हवे सीसे ।।५९१।।

प्रथमगुणश्रेणिशीर्षं पूर्वस्मात् असंख्यसंगुणितं ।
उपरिमसमये दृश्यं विशेषाधिकं भवेत् शीर्षे ।।५९१।।

टीका – प्रथम समय में जो गुणश्रेणीशीर्ष है वही गाथा के अर्थ की जगह चाहिये ।

[*पं. फूलचंदजी कृत अर्थ इसप्रकार है – इसप्रकार प्रथम गुणश्रेणीशीर्ष तक जानना चाहिये । गुणश्रेणीशीर्ष के ऊपर पूर्व के द्रव्य से उपरिम समय में असंख्यातगुणा दृश्यद्रव्य है । आगे मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति के प्राप्त होने तक विशेष हीन प्रदेशपुंज दिखायी देता है ।*]

सुहुमद्धादो अहिया गुणसेढी अंतरं तु तत्तो दु ।
पढमे खंडं पढमे संतो मोहस्स संखगुणिदकमा ।।५९२।।

सूक्ष्माद्धातः अधिका गुणश्रेणि अंतरं तु ततस्तु ।
प्रथमं खंडं प्रथमे सत्त्वं मोहस्य संख्यगुणितक्रमं ।।५९२।।

टीका – अंतर्मुहूर्त मात्र जो सूक्ष्मसाम्पराय का काल, उससे उसीके असंख्यातवें भाग से अधिक सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में मोहनीय गुणश्रेणी का आयाम है । उससे अंतरायाम संख्यातगुणा है । उससे सूक्ष्मसाम्पराय के मोह का प्रथम स्थितिकांडक आयाम संख्यातगुणा है। उससे सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में मोह का स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है ।

एदेणप्पाबहुगविधाणेण बिदीयखंडयादीसु ।
गुणसेढिमुज्झियेया गोपुच्छा होदि सुहुमम्हि ।।५९३।।

एतेनाल्पबहुकविधानेन द्वितीयकांडकादिषु ।
गुणश्रेणिमुज्झित्वा एकं गोपुच्छं भवति सूक्ष्मे ।।५९३।।

टीका – इस अल्पबहुत्व विधान से सूक्ष्मसाम्पराय में द्वितीयादि स्थितिकांडकों के काल में गुणश्रेणी को छोड़कर उसके ऊपरवर्ती सर्व स्थिति का एक गोपुच्छ होता है । कैसे ? वह कहते हैं –

यहां अंतरायाम से प्रथम स्थितिकांडक आयाम संख्यातगुणा कहा । इसलिए प्रथम स्थितिकांडक की अंत फालि के द्रव्य में से अंतरायाम में देने योग्य गोपुच्छरूप द्रव्य को अंतरायाम में देकर द्वितीय स्थिति के और इस अंतरायाम के एक गोपुच्छ किया । यदि प्रथम स्थितिकांडक आयाम से अंतरायाम बहुत होता तो वहां अंतरायाम पूर्ण न होता तब अंतरस्थिति के और द्वितीय स्थिति के एक गोपुच्छ न होता । यहां अंतरायाम से प्रथम स्थितिकांडकायाम बहुत कहा, इसलिए अंतरायाम के और द्वितीय स्थिति के एक गोपुच्छ प्रथम स्थितिकांडक की अंत फालि के पतन समय में ही हुआ । जहां विशेष घटते क्रम सहित हो, वहां गोपुच्छ संज्ञा है ।

सुहुमाणं किट्टीणं हेट्ठा अणुदिण्णगा हु थोवाओ ।
उवरिं तु विसेसहिया मज्झे उदया असंखगुणा ।।५९४।।

सूक्ष्माणां कृष्टीनामधस्तना अनुदीर्णका हि स्तोका: ।
ऊपरि तु विशेषाधिका मध्ये उदया असंख्यगुणा: ।।५९४।।

टीका – सूक्ष्मसाम्पराय में जो सूक्ष्मकृष्टि है, उनमें से जो जघन्य कृष्टि आदि नीचे की कृष्टियां उदयरूप नहीं होती, उनका प्रमाण अल्प है । इससे इसीको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एकभाग से अधिक जो अंत कृष्टि से लेकर ऊपर की कृष्टियां उदयरूप नहीं होती, उनका प्रमाण है । इससे पल्य के असंख्यातवें भाग गुणा जो बीच की कृष्टि उदयरूप होती हैं उनका प्रमाण है । यहां सर्व सूक्ष्मकृष्टियों के प्रमाण को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग मात्र बीच की उदयकृष्टियों का प्रमाण है । तथा एकभाग को अंकसंदृष्टि की अपेक्षा पांच का भाग देकर दोभाग मात्र नीचे की और तीनभाग मात्र ऊपर की अनुदय कृष्टियों का प्रमाण है । यहां जो अनुदयरूप कृष्टि कही, वे बीच की कृष्टिरूप परिणमित होकर उदय में आती हैं, ऐसा जानना ।

सुहुमे संखसहस्से खंडे तीदेऽ वसाणखंडेण ।
आगायदि गुणसेढी आगादो संखभागे च ।।५९५।।

सूक्ष्मे संख्यसहस्रे खंडेऽतीतेऽवसानखंडेन ।
आगाप्यते गुणश्रेणी अग्रत: संख्यभागे च ।।५९५।।

टीका – पूर्वोक्त क्रम से सूक्ष्मसाम्पराय में उसके काल का संख्यात बहुभाग जानेपर संख्यातवां भाग अवशेष रहनेपर संख्यात हजार स्थितिकांडक व्यतीत होकर अवसानखंड जो अंत का स्थितिकांडक, उसके द्वारा पूर्व गुणश्रेणी आयाम के संख्यातवें भाग मात्र आयाम में गुणश्रेणी करता है । इससे पहले सर्व सूक्ष्मसाम्पराय काल से साधिक अवस्थित गुणश्रेणी आयाम था, अब जितना अवशेष सूक्ष्मसाम्पराय का काल रहा, उतना गुणश्रेणी आयाम जानना ।

एत्तो सुहुमंतो त्ति य दिज्जस्स य दिस्समाणगस्स कमो ।
सम्मत्तचरिमखंडे तक्कदिकज्जे वि उत्तं च ।।५९६।।

इतः सूक्ष्मांत इति च देयस्य च दृश्यमानस्य क्रमः ।
सम्यक्त्वचरमखंडे तत्कृतकार्येऽपि उक्तमिव ।।५९६।।

टीका – यहां से लेकर सूक्ष्मसाम्पराय के अंत तक देयद्रव्य और दृश्यमानद्रव्य का क्रम है । जैसे क्षायिक सम्यक्त्व विधान में सम्यक्त्व मोहनीय के अंत स्थितिकांडक में और उसके कृतकृत्यपने में कहा था, वैसे ही जानना । वह कहते हैं –

यहां सर्व मोह की स्थिति में से सूक्ष्मसाम्पराय का जितना काल अवशेष रहा उतनी स्थिति बिना अवशेष सर्व स्थिति का घात अंत कांडक द्वारा करता है । वहां इस कांडक की स्थिति के निषेकों के द्रव्य में से जो द्रव्य अंत कांडकोत्करण काल के प्रथम समय में ग्रहण किया, उसको प्रथम फालि कहते हैं । उसको देने का विधान कहते हैं –

प्रथम फालि द्रव्य को अपकर्षण करके उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग मात्र द्रव्य को यहां संबंधी सूक्ष्मसाम्पराय काल के अंत समय तक तो गुणश्रेणी आयामरूप प्रथम पर्व में देना । वहां उसके उदयरूप प्रथम निषेक में अल्प, उससे द्वितीयादि निषेकों में असंख्यातगुणा क्रम सहित द्रव्य देता है । वहां सर्व गुणकारशलाका के जोड़ का भाग उस द्रव्य को देकर अपनी-अपनी गुणकारशलाका से गुणा करनेपर निषेकों में द्रव्य देने का प्रमाण आता है । यहां सूक्ष्मसाम्पराय का जो अंत समय उसका नाम गुणश्रेणीशीर्ष है । अवशेष एकभाग मात्र द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग मात्र द्रव्य को उस गुणश्रेणीशीर्ष के ऊपर पहले जो गुणश्रेणी आयाम था उसके शीर्ष तक जो द्वितीय पर्व, उसमें देता है । वहां उस द्रव्य को द्वितीय पर्व मात्र गच्छ का भाग देकर वहां एक भाग में, एक कम गच्छ के आधे प्रमाण मात्र विशेष जोड़नेपर गुणश्रेणीशीर्ष के अनंतर निषेक में दिये द्रव्य का प्रमाण आता है । यह गुणश्रेणीशीर्ष में दिये द्रव्य से असंख्यातगुणा हीन है । उसके ऊपर उसके द्वितीयादि निषेकों में चय घटते क्रम से द्रव्य देता है ।

अवशेष एकभाग मात्र द्रव्य रहा, उसको द्वितीय पर्व के ऊपर जो सर्वस्थिति उसके अंत में अतिस्थापनावली छोड़कर सर्व निषेकरूप जो तृतीय पर्व उसमें देता

है । वहां उस द्रव्य को तृतीय पर्व मात्र गच्छ का भाग देकर वहां एकभाग में, एक कम गच्छ के आधे प्रमाण मात्र विशेष जोड़नेपर जो हो उतना द्रव्य पुरातन गुणश्रेणीशीर्ष के अनंतरवर्ती निषेक में देता है । यह पुरातन गुणश्रेणीशीर्ष में दिये द्रव्य से असंख्यातगुणा हीन है । उसके ऊपर चय घटते क्रम सहित द्रव्य देता है । इसतरह अंत कांडक की प्रथम फालि पतन समय में द्रव्य देने का विधान कहा । इसीप्रकार अंत कांडक की द्विचरम फालि पतन तक द्रव्य देने का विधान जानना ।

अब अंत कांडक की अंत फालि के द्रव्य देने का विधान कहते हैं –

किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र अंत फालि का द्रव्य है । उसको असंख्यातगुणा पल्य के वर्गमूल मात्र पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एकभाग मात्र द्रव्य को वर्तमान उदयरूप समय से लेकर सूक्ष्मसाम्पराय के द्विचरम समय तक जो प्रथम पर्व, उसमें देता है । वहां प्रथम निषेक में अल्प, द्वितीयादि निषेकों में असंख्यातगुणा क्रम सहित द्रव्य देता है । वहां सर्व गुणकारशलाकाओं के जोड़ का भाग द्रव्य को देकर अपनी-अपनी गुणकारशलाका से गुणा करनेपर निषेकों में देने योग्य द्रव्य का प्रमाण आता है । अवशेष बहुभाग मात्र द्रव्य को सूक्ष्मसाम्पराय के अंत समय संबंधी निषेकरूप जो द्वितीय पर्व उसमें देता है । यह द्विचरम समय *(संबंधी निषेक)* में दिये द्रव्य से असंख्यात पल्यवर्गमूल से गुणित जानना । इसतरह देयद्रव्य का विधान कहा । दृश्यमानद्रव्य का विधान भी यथासंभव जानना ।

उक्किण्णे अवसाणे खंडे मोहस्स णत्थि ठिदिघादो ।
ठिदिसत्तं मोहस्स य सुहुमद्धासेसपरिमाणं ।।५९७।।

उत्कीर्णेऽवसाने खंडे मोहस्य नास्ति स्थितिघातः ।
स्थितिसत्त्वं मोहस्य च सूक्ष्माद्धाशेषपरिमाणं ।।५९७।।

टीका – इसप्रकार मोहराजा के मस्तक समान जो लोभ का अंत कांडक, उसका घात करनेपर अब मोह का स्थितिघात नहीं होता । अब सूक्ष्मसाम्पराय का जितना काल अवशेष रहा, उतना ही मोह का स्थितिसत्त्व रहा है, वह अनुसमयापवर्तमान सूक्ष्मकृष्टिरूप अनुभाग को प्राप्त होता है । उसके एक-एक निषेक को एक-एक

समय में भोगता हुआ सूक्ष्मसाम्पराय के अंत समय को प्राप्त होता है ।

णामदुगे वेयणीये अडबारमुहुत्तयं तिघादीणं ।
अंतोमुहुत्तमेत्तं ठिदिबंधो चरिम सुहमम्हि ।।५९८।।

नामद्विके वेदनीये अष्टद्वादशमुहूर्तकं त्रिघातिनाम् ।
अंतर्मुहूर्तमात्रं स्थितिबंधः चरमे सूक्ष्मे ।।५९८।।

टीका – वहां सूक्ष्मसाम्पराय के अंत समय में नाम, गोत्र का आठ मुहूर्त, वेदनीय का बारह मुहूर्त, तीन घातिकर्मों का अंतर्मुहूर्त मात्र जघन्य स्थितिबंध होता है ।

तिण्हं घादीणं ठिदिसंतो अंतोमुहुत्तमेत्तं तु ।
तिण्हमघादीणं ठिदिसंतमसंखेज्जवस्साणि ।।५९९।।

त्रयाणां घातिनां स्थितिसत्त्वमंतर्मुहूर्तमात्रं तु ।
त्रयाणामघातिनां स्थितिसत्त्वमसंख्येयवर्षाः ।।५९९।।

टीका – वहां ही तीन घातिकर्मों का स्थितिसत्त्व अंतर्मुहूर्त मात्र है । वह क्षीणकषाय के काल से संख्यातगुणा है । तीन अघातिकर्मों का स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्ष मात्र है । मोह का स्थितिसत्त्व क्षय के सन्मुख है । द्रव्यार्थिकनय से इस समय विद्यमान है तथापि नष्ट ही हुआ जानना । ऐसे क्षय के सन्मुख लोभ की संग्रहकृष्टि *(सूक्ष्मकृष्टि)*, उसको अनुभवता है । ऐसा पांचवें सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र से संयुक्त सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती जीव जानना ।

इसतरह कृष्टिवेदना अधिकार समाप्त हुआ ।

से काले सो खीणकसाओ ठिदिरसगबंधपरिहीणो ।
सम्मत्तडवस्सं वा गुणसेढी दिज्जं दिस्सं च ।।६००।।

स्वे काले स क्षीणकषायः स्थितिरसगबंधपरिहीणः ।
सम्यक्त्वाष्टवर्षमिव गुणश्रेणी देयं दृश्यं च ।।६००।।

टीका – समस्त चारित्रमोह के क्षय के अनंतर अपने काल में वह जीव, क्षीण हुये हैं द्रव्य, भावरूप समस्त कषाय जिसके, ऐसा क्षीणकषाय होता है, वह स्थिति, अनुभागबंध रहित है । योग के निमित्त से प्रकृति, प्रदेश बंध इसके सातावेदनीय का पाया जाता है, वह ईर्यापथबंध है । प्रथम समय में बंधकर अनंतर समय में निर्जरित होता है । जैसे क्षायिक सम्यक्त्व के विधान में सम्यक्त्वमोहनीय की आठ वर्ष की स्थिति अवशेष रहनेपर कथन किया था, वैसे यहां गुणश्रेणी, देयद्रव्य और दृश्यमान द्रव्य जानना । वही कहते हैं –

छह कर्मों के प्रदेशसमूह को अपकर्षण करके उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एकभाग को गुणश्रेणी आयाम में देता है । उसका प्रमाण क्षीणकषाय के काल से उसीके संख्यातवें भाग मात्र अधिक है । वहां पूर्वोक्त क्रम से उदयरूप प्रथम निषेक में अल्प, द्वितीयादि गुणश्रेणीशीर्ष तक के निषेकों में असंख्यातगुणा क्रम सहित देता है । गुणश्रेणीशीर्ष के ऊपर की अतिस्थापनावली रहित अवशेष स्थिति मात्र गच्छ को, एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि से गुणा करके उसका भाग अवशेष बहुभाग मात्र द्रव्य को देकर, वहां एक खंड को दोगुणहानि से गुणा करनेपर जो हो, उतना द्रव्य गुणश्रेणीशीर्ष के अनंतरवर्ती निषेक में देता है । यह गुणश्रेणीशीर्ष में दिये द्रव्य से असंख्यातगुणा है । उसके ऊपर विशेष घटते क्रम से द्रव्य देता है । जब तक अतिस्थापनावली प्राप्त न हो तब तक ऐसा क्रम जानना । सूक्ष्मसाम्पराय के अंत समय में अपकर्षण किये द्रव्य से यहां अपकर्षण किया द्रव्य असंख्यातगुणा जानना, क्योंकि सकषाय परिणाम संबंधी गुणश्रेणी निर्जरा से निष्कषाय गुणश्रेणी निर्जरा के असंख्यातगुणापना पाया जाता है ।

यहां क्षीणकषाय के प्रथमादि समयों में अपकर्षण किये द्रव्य का प्रमाण समानरूप है, क्योंकि यहां विशुद्धता समान होती है । यहां दीयमान और दृश्यमान द्रव्य का अन्य विशेष निरूपण जैसे सम्यक्त्वमोहनीय की क्षपणा में किया था, वैसे यहां तीन घातिकर्मों का जानना ।

यहां ऐसा जानना – क्षीणकषाय के प्रथम समय से लेकर अतंर्मुहूर्त तक तो पहला पृथक्त्ववितर्कवीचार नामक शुक्लध्यान वर्तता है । क्षीणकषाय काल का संख्यातवां

भाग अवशेष रहनेपर एकत्ववितर्कअवीचार नामक दूसरा शुक्लध्यान वर्तता है ।

घादीण मुहुत्तंतं अघादियाणं असंखगा भागा ।
ठिदिखंडं रसखंडो अणंतभागा अपसत्थाणं ।।६०१।।

घातिनां मुहूर्तांतमघातिकानामसंख्यका भागाः ।
स्थितिखंडं रसखंडं अनंतभागा अप्रशस्तानाम् ।।६०१।।

टीका – यहां क्षीणकषाय में तीन घातिकर्मों का तो अंतर्मुहूर्त मात्र और तीन अघातिकर्मों के पूर्व सत्त्व के असंख्यात बहुभाग मात्र स्थितिकांडक आयाम है । अप्रशस्त प्रकृतियों के पूर्व अनुभाग को अनंत का भाग देकर वहां बहुभाग मात्र अनुभागकांडक आयाम है ।

बहुठिदिखंडे तीदे संखा भागा गदा तदद्धाए ।
चरिमं खंडं गिण्हदि लोभं वा तत्थ दिज्जादि ।।६०२।।

बहुस्थितिखंडेऽतीते संख्यभागा गतास्तद्धायाः ।
चरमं खंडं गृण्हाति लोभ इव तत्र देयादि ।।६०२।।

टीका – पूर्वोक्त प्रकार के क्रम सहित संख्यात हजार स्थितिकांडक व्यतीत होनेपर क्षीणकषाय काल को संख्यात का भाग देकर वहां बहुभाग जाकर एकभाग अवशेष रहा, तब तीन घातिकर्मों के अंत कांडक को ग्रहण करता है । वहां देयादि द्रव्य का विधान सूक्ष्मलोभ में कहा था वैसे जानना । वह कहते हैं –

यहां क्षीणकषाय काल जितना अवशेष रहा उस बिना *(उतने निषेकों को छोड़कर ऊपर के सर्व निषेक)* तीन घातिकर्मों की अवशेष रही सर्व स्थिति को अंत कांडक द्वारा घातता है । क्षीणकषाय संबंधी गुणश्रेणीशीर्ष से लेकर उसके नीचे के क्षीणकषाय काल के संख्यातवें भाग मात्र निषेक और उससे संख्यातगुणा गुणश्रेणीशीर्ष के ऊपरवर्ती निषेकों को ग्रहण करके अंत कांडक से लांछित करता है, ऐसा जानना । उसके द्रव्य देने का विधान जैसे लोभ के अंत कांडक में कहा वैसे जानना ।

पुनश्च इसतरह अंत कांडक की प्रथमादि फालियों का घात करके पश्चात् किंचित्

कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र जो अंत फालि का द्रव्य, उसको उदय निषेक से लेकर क्षीणकषाय के द्विचरम समय तक असंख्यातगुणा क्रम सहित और द्विचरम समय में दिये द्रव्य से असंख्यात पल्यवर्गमूलगुणा क्षीणकषाय के अंत समय संबंधी निषेक में द्रव्य देता है ।

चरिमे खंडे पडिदे कदकरणिज्जयो त्ति भण्णदे एसो ।
तस्स दुचरिमे णिद्दा पयला सत्तुदयवोच्छिण्णा ।।६०३।।

चरिमे खंडे पतिते कृतकरणीय इति भण्यते एषः ।
तस्य द्विचरमे निद्रा प्रचला सत्त्वोदयव्युच्छिन्ना ।।६०३।।

टीका – ऐसे अंत कांडक का घात होनेपर इसको कृतकृत्यछद्मस्थ कहते हैं, क्योंकि इसके ऊपर तीन घातिकर्मों का स्थितिकांडकघात नहीं है । केवल उदयावली के बाह्य स्थित द्रव्य को उदयावली में प्राप्त करनेरूप उदीरणा ही करता है जो एक समय अधिक आवली अवशेष रहे तब तक चलती है । उसके पश्चात् एक-एक समय में एक-एक निषेक का क्रम से उदय ही होता है, क्योंकि उदयावली में प्राप्त द्रव्य की उदीरणा नहीं होती ।

इसतरह क्षीणकषाय का द्विचरम *(उपांत)* समय प्राप्त हुआ तब निद्रा, प्रचला कर्म के सत्त्व और उदय की व्युच्छित्ति हुयी । यहां शुक्लध्यान होते हुये भी अव्यक्त निद्रा और प्रचला का उदय पाया जाता था, उसका भी नाश हुआ ।

क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले जीव तीन वेद में से एक वेद और चार कषाय में से एक कषाय के उदय सहित श्रेणी चढ़ने की अपेक्षा बारह प्रकार के हैं । पूर्वोक्त सर्व प्ररूपणा पुरुषवेद और क्रोध कषाय सहित श्रेणी चढ़नेवाले की जानना । अवशेष ग्यारह प्रकार के जीवों में विशेष है, वह कहते हैं ।

पुरुषवेद और मानादि कषाय सहित श्रेणी चढ़नेवाले के विशेष कहते हैं –

कोहस्स य पढमठिदीजुत्ता कोहादिएक्कदोतीहिं ।
खवणद्धा हि कमसो माणतियाणं तु पढमठिदी ।।६०४।।

क्रोधस्य च प्रथमस्थितियुक्ता क्रोधादि एकद्वित्रयाणाम् ।
क्षपणाद्धा हि क्रमशो मानत्रयाणां तु प्रथमस्थिति ।।६०४।।

टीका – पुरुषवेद युक्त मानादि कषाय सहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव की अध:करण से लेकर अंतरकरण की समाप्ति तक तो सर्व प्ररूपणा पुरुषवेद-क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाले के समान जानना । उसके अनंतर क्रोध की प्रथम स्थिति सहित क्रोधादि एक, दो, तीन कषायों का क्षपणाकाल वह क्रम से मानादि तीन कषायों की प्रथम स्थिति होती है, वह कहते हैं –

मान सहित श्रेणी चढ़नेवाला जीव अंतरकरण की समाप्ति के अनंतर क्रोध की प्रथम स्थिति नहीं स्थापित करता, परंतु मान की प्रथम स्थिति अंतर्मुहूर्त मात्र स्थापित करता है । क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाले के नपुंसकवेद के क्षपणाकाल से लेकर कृष्टिकारक काल तक तो क्रोध की प्रथम स्थिति और क्रोध की तीनों संग्रहकृष्टि का वेदककाल मात्र क्रोध का क्षपणाकाल इन दोनों को मिलाकर जितना प्रमाण हो, वह मान सहित श्रेणी चढ़नेवाले के मान की प्रथम स्थिति का प्रमाण जानना ।

माया सहित श्रेणी चढ़नेवाला जीव अंतरकरण की समाप्ति के अनंतर क्रोध और मान की प्रथम स्थिति स्थापित नहीं करता । माया की प्रथम स्थिति अंतर्मुहूर्त मात्र स्थापित करता है । क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव के पूर्वोक्त क्रोध की प्रथम स्थिति, क्रोध का क्षपणाकाल और मान की तीनों संग्रहकृष्टि का वेदककाल मात्र मान क्षपणाकाल इन तीनों को मिलानेपर जो *(प्रमाण)* हो, उतना माया सहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव के माया की प्रथम स्थिति का प्रमाण होता है ।

लोभ सहित श्रेणी चढ़नेवाला जीव अंतरकरण की समाप्ति के अनंतर क्रोध, मान और माया की प्रथम स्थिति स्थापित नहीं करता । लोभ की प्रथम स्थिति स्थापित करता है । क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाले के पूर्वोक्त क्रोध की प्रथम स्थिति, क्रोध क्षपणाकाल, मान क्षपणाकाल और माया का वेदककाल मात्र माया का क्षपणाकाल इन चारों को मिलानेपर जो हो, उतना लोभ सहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव के लोभ की प्रथम स्थिति का प्रमाण जानना ।

[*विशेषार्थ : इसको निम्न चार्ट द्वारा समझ सकते हैं –*

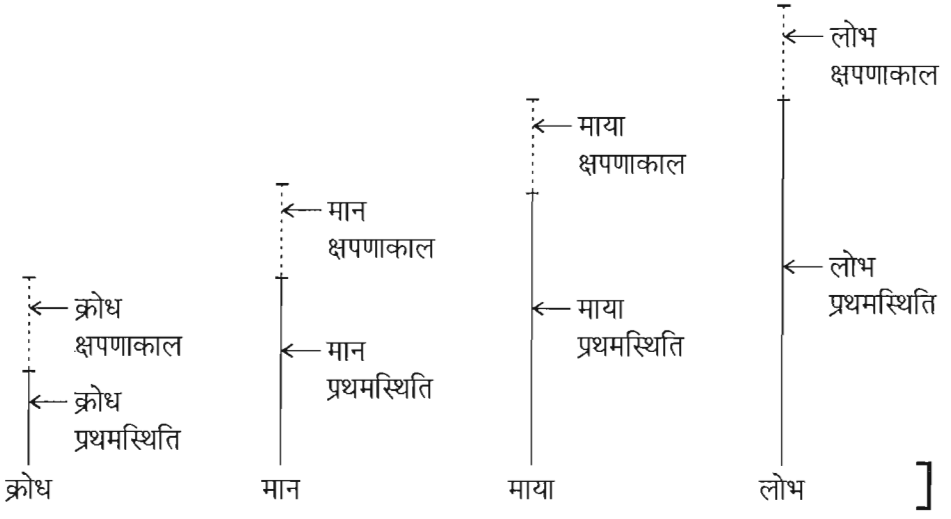

]

माणतियाणुदयमहो कोहादिगिदुतिय खवियपणिधम्हि ।
हयकण्णकिट्टिकरणं किच्चा लोहं विणासेदि ।।६०५।।

मानत्रयाणामुदयमथ क्रोधाद्येकद्वित्रयं क्षपकप्रणिधौ ।
हयकर्णकृष्टिकरणं कृत्वा लोभं विनाशयति ।।६०५।।

टीका – मानादि तीन कषायों के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव क्रम से क्रोधादि एक, दो, तीन कषायों के क्षपणाकाल के निकट अश्वकर्ण सहित कृष्टिकरण करके लोभ का विनाश करता है । वही कहते हैं –

वहां प्रथम मान सहित श्रेणी चढ़नेवाले का व्याख्यान करते हैं । क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाला जीव जिस काल में चारों कषायों का अश्वकर्णकरण और अपूर्वस्पर्धक विधान को करता है, उस काल में मान सहित श्रेणी चढ़नेवाला जीव पूर्वस्पर्धकरूप क्रोध का मान कषायरूप परिणमाकर क्षय करता है । इसलिए क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाले के बारह संग्रहकृष्टि होती हैं और मान सहित श्रेणी चढ़नेवाले के तीन कषायों की नौ ही संग्रहकृष्टि होती हैं ।

पुनश्च क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाला जिस काल में बादरकृष्टि करता है, उस

काल में मान सहित श्रेणी चढ़नेवाला जीव तीन कषायों की अश्वकर्ण सहित अपूर्वस्पर्धक क्रिया करता है । क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाला जीव जिस काल में क्रोध की तीन संग्रहकृष्टियों को वेदकर क्षपाता है, उस काल में मान सहित श्रेणी चढ़नेवाला जीव मानादि तीन कषायों की नौ बादर संग्रहकृष्टि करता है । उसके ऊपर मान कषाय का वेदककाल आदि सर्व प्ररूपणा क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाले के और मान सहित श्रेणी चढ़नेवाले के समान है ।

अब माया सहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव का व्याख्यान करते हैं – क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाला जिस काल में अश्वकर्ण क्रिया करता है, उस काल में यह क्रोध को मानरूप परिणमाकर क्षय करता है । पुनश्च क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाला जिस काल में कृष्टि करता है, उस काल में यह मान को मायारूप परिणमाकर क्षय करता है । पुनश्च क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाला जिस काल में क्रोध की तीन संग्रहकृष्टि को वेदकर क्षपाता है उस काल में माया सहित श्रेणी चढ़नेवाला यह जीव दो कषायों की अश्वकर्ण सहित अपूर्वस्पर्धक क्रिया करता है । पुनश्च क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाला जीव जिस काल में मान की तीन संग्रहकृष्टि को वेदकर क्षपाता है उस काल में यह माया और लोभ की छह बादर संग्रहकृष्टि करता है । उसके ऊपर माया कषाय का वेदककाल आदि सर्व प्ररूपणा क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाले के और इसके समान है ।

अब लोभ सहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव का व्याख्यान करते हैं – क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाला जिस काल में अश्वकर्ण करता है, उस काल में यह पूर्वस्पर्धकरूप क्रोध को मानरूप परिणमाकर क्षय करता है । क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाला जीव जिस काल में कृष्टि करता है, उस काल में यह पूर्वस्पर्धकरूप मान को मायारूप परिणमाकर क्षय करता है । क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाला जिस काल में क्रोध की तीन संग्रहकृष्टियों को वेदकर क्षय करता है, उस काल में यह पूर्वस्पर्धकरूप माया को लोभरूप परिणमाकर क्षय करता है । क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाला जीव जिस काल में मान की तीन संग्रहकृष्टियों को वेदकर क्षय करता है, उस काल में यह लोभ की अपूर्वस्पर्धक क्रिया करता है । क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाला जीव जिस काल में माया की तीन संग्रहकृष्टियों को वेदकर क्षय करता है, उस काल में यह लोभ

की तीन बादर संग्रहकृष्टि करता है । उसके ऊपर लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि वेदककाल आदि सर्व प्ररूपणा क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाले के और इसके समान है ।

इसतरह पुरुषवेद सहित चढ़नेवाले चारों प्रकार के जीवों के विशेष का वर्णन किया ।

अब स्त्रीवेद सहित चढ़नेवाले चारों प्रकार के जीवों के विशेष कहते हैं –

पुरिसोदएण चडिदस्सित्थी खवणद्धउ त्ति पढमठिदी ।
इत्थिस्स सत्तकम्मं अवगदवेदो समं विणासेदि ।।६०६।।

पुरुषोदयेन चटितस्य स्त्री क्षपणाद्धांतं प्रथमस्थितिः ।
स्त्रिया सप्तकर्माणि अपगतवेदः समं विनाशयति ।।६०६।।

टीका – स्त्रीवेद सहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव के जब तक अंतरकरण नहीं होता, तब तक सर्व प्ररूपणा समान है । अंतरकरण करता हुआ यह पुरुषवेद की प्रथम स्थिति नहीं करता, स्त्रीवेद की ही प्रथम स्थिति स्थापित करता है, क्योंकि जिस वेद और कषाय के उदय सहित श्रेणी चढ़ता है उसीकी प्रथम स्थिति स्थापित करता है । उस स्त्रीवेद की प्रथम स्थिति का प्रमाण पुरुषवेद के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव के जितना नपुंसकवेद के क्षपणाकाल सहित स्त्रीवेद का क्षपणाकाल हो, उतना जानना । नपुंसकवेद की और स्त्रीवेद की क्षपणा करने में स्त्रीवेद सहित चढ़नेवाले जीव के पुरुषवेद सहित चढ़नेवाले जीव के समान काल है ।

उसके ऊपर पुरुषवेद सहित श्रेणी चढ़नेवाला जीव तो पुरुषवेद के उदय युक्त हुआ सात नोकषायों के क्षपणाकाल में सात नोकषायों को क्षपाता है और उसके पश्चात् एक समय कम दो आवली काल में पुरुषवेद के नवक समयप्रबद्ध को क्षपाता है । यह स्त्रीवेद सहित श्रेणी चढ़नेवाला जीव वेद के उदय से रहित होकर सप्त नोकषाय के क्षपणाकाल में सर्व सात नोकषायों को क्षपाता है । इसके पुरुषवेद का बंध नहीं है । इसलिए नवक समयप्रबद्ध का पश्चात् क्षपाना इसके नहीं पाया जाता । उसके ऊपर अश्वकर्णादि क्रियाओं में जैसे पुरुषवेद सहित श्रेणी चढ़नेवाले चारों प्रकार के जीवों का विशेष कहा, वैसे ही स्त्रीवेद सहित श्रेणी

चढ़नेवाले चारों प्रकार के जीवों का विशेष वर्णन जानना ।

अब नपुंसकवेद सहित श्रेणी चढ़नेवाले चारों प्रकार के जीवों का व्याख्यान करते हैं –

थीपढमट्ठिदिमेत्ता संढस्स वि अंतरादु संढेक्क ।
तस्सद्धा त्ति तदुवरिं संढ इत्थि च खवदि थीचरिमे ।।६०७।।

अवगयवेदो संतो सत्त कसाये खवेदि कोहुदये ।
पुरिसुदये चडणविही सेसुदयाणं तु हेट्ठुवरिं ।।६०८।।

स्त्रीप्रथमस्थितिमात्रा षंढस्यापि अंतरात् षंढैकः ।
तस्याद्धा इति तदुपरि षंढं स्त्रीं च क्षपयति स्त्रीचरमे ।।६०७।।

अपगतवेदः संतः सप्त कषायान् क्षपयति स्त्रीचरमे ।
पुरुषोदयेन चटनविधिः शेषोदयानां तु अधस्तनोपरि ।।६०८।।

टीका – नपुंसकवेद सहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव के जब तक अंतरकरण नहीं करता तब तक सर्व प्ररूपणा समान है । उसके ऊपर पुरुषवेद की प्रथम स्थिति स्थापित नहीं करता, नपुंसकवेद की ही प्रथम स्थिति स्थापित करता है; उसका प्रमाण स्त्रीवेद सहित चढ़नेवाले के जितना स्त्रीवेद की प्रथम स्थिति का प्रमाण कहा उतना ही है ।

पुनश्च अंतरकरण करने के पश्चात् जब तक पुरुषवेद सहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव के नपुंसकवेद का क्षपणाकाल है, तब तक इसके एक नपुंसकवेद की ही क्षपणा हुआ करती है; परंतु वहां नपुंसकवेद की क्षपणा समाप्त नहीं होती । उसके पश्चात् पुरुषवेद सहित श्रेणी चढ़नेवाले के जो स्त्रीवेद का क्षपणाकाल है, उसमें उसके नपुंसकवेद और स्त्रीवेद इन दोनों की क्षपणा होने लगती है, वहां स्त्रीवेद क्षपणाकाल के अंत समय में सर्व नपुंसकवेद और स्त्रीवेद को युगपत् क्षय करता है । यहां द्रव्यार्थिकनय विद्यमान के नाश को कहता है उस अपेक्षा इस समय नष्ट हुआ कहा । पर्यायार्थिकनय अविद्यमान वस्तु के नाश को कहता है, उस अपेक्षा इस समय में एक निषेक का सत्त्व है, वह अगले समय में नष्ट होगा ऐसा जानना ।

उसके अनंतर स्त्रीवेद सहित श्रेणी चढ़नेवाले जीव के समान अपगतवेद होकर सात नोकषायों के क्षपणाकाल में सर्व सात नोकषायों को क्षपाता है । यहां भी पुरुषवेद के बंध का अभाव है, इसलिए नवक समयप्रबद्ध का पश्चात् क्षपाना नहीं पाया जाता ।

उसके ऊपर जैसे पुरुषवेद सहित श्रेणी चढ़नेवाले चारों प्रकार के जीवों का वर्णन किया, वैसे ही नपुंसकवेद सहित श्रेणी चढ़नेवाले चारों प्रकार के जीवों का वर्णन जानना ।

इसतरह पुरुषवेद सहित श्रेणी चढ़नेवाले तीन प्रकार के जीव, स्त्रीवेद सहित चढ़नेवाले चार प्रकार के जीव और नपुंसकवेद सहित चढ़नेवाले चार प्रकार के जीव इन ग्यारह प्रकार के जीवों के बीच की क्रियाओं में यहां विशेष वर्णन किया, वह विशेष जानना । अब शेष नीचे और ऊपर का सर्व विधान पुरुषवेद और क्रोध के उदय सहित श्रेणी चढ़नेवाले के जैसा कहा, वैसा ही अवशेष ग्यारह प्रकार के उदय सहित जीवों के जानना ।

यहां तर्क – यदि अनिवृत्तिकरण में एक समयवर्ती सब जीवों के परिणाम समान कहे हैं, तो यहां तुम परस्पर विशेष कैसे कहते हो ?

उसका समाधान – परिणामों की विशुद्धता की अपेक्षा समान हैं, परंतु नाना प्रकार के वेद और कषाय के उदयरूप सहकारी कारण के निकट होने से नाना प्रकार के क्षपणाकार्य होते हैं ।

इसतरह अवसर पाकर विशेष का कथन करके, पहले क्षीणकषाय के द्विचरम समय तक कथन किया था, अब आगे कथन करते हैं –

चरिमे पढमं विग्घं चउदंसण उदयसत्त वोच्छिण्णा ।
से काले जोगिजिणो सव्वण्हू सव्वदरसी य ।।६०९।।

चरमे प्रथमं विघ्नं चतुर्दर्शनं उदयसत्त्वव्युच्छिन्ना: ।
स्वे काले योगिजिन: सर्वज्ञ: सर्वदर्शी च ।।६०९।।

टीका – क्षीणकषाय के अंत समय में पहला अर्थात् पांच प्रकार का

ज्ञानावरण, विघ्न अर्थात् पांच प्रकार का अंतराय, चउदंसण अर्थात् चार प्रकार का दर्शनावरण – ये उदय से और सत्त्व से व्युच्छित्तिरूप हुये । यहां अघातिकर्मों का स्थितिसत्त्व पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यात वर्ष का है । जैसे घातिकर्मों में मोह विशेष अप्रशस्त था, उसका पहले नाश हुआ, अवशेष का यहां नाश हुआ वैसे कर्मों में घातिकर्म विशेष अप्रशस्त थे, उनका यहां नाश हुआ, अघातिकर्मों का आगे नाश होगा ।

यहां कोई पूछेगा कि – छद्मस्थ का शरीर तो निगोद सहित था और केवली का शरीर निगोद रहित कहते हैं, वह कैसे हुआ ?

उसका समाधान – क्षीणकषाय के प्रथम समय में निगोद जीव अनंत मरते हैं, दूसरे समय में उनको आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र अधिक मरते हैं । इसतरह पृथक्त्व आवली तक क्रम जानना । उसके पश्चात् पूर्व समय में मरे हुये जीवों से उनको संख्यात का भाग देकर एकभाग मात्र अधिक जीव मरते हैं । इसतरह क्षीणकषाय का काल आवली के असंख्यातवें भाग मात्र अवशेष रहने तक क्रम जानना । इस विशेष अधिकरूप मरणकाल के अंत समय में मरे हुये जीवों के प्रमाण को पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणित करके उसको अनंतर गुणकार की श्रेणी युक्त मरणकाल के प्रथम समय में मरे हुये जीवों का प्रमाण आता है । उसके पश्चात् क्षीणकषाय के अंत समय तक प्रतिसमय पल्य के असंख्यातवें भाग गुणा निगोद जीव मरते हैं । इसतरह सर्व निगोद जीवों का अभाव होने से केवली का शरीर निगोद रहित है ।

यहां तर्क – ऐसे मरण होनेपर यथाख्यात चारित्र कैसे कहते हैं ?

उसका समाधान – यहां शुक्लध्यान के बल से उनकी उत्पत्ति का निरोध होता है । जो उपजे थे, वे स्वयमेव अपनी आयुनाश से मरते हैं । जब तक निगोद जीवों की जघन्य आयु मात्र क्षीणकषाय का काल अवशेष रहे तब तक निगोद जीव वहां उत्पन्न भी होते हैं । पहले उपजे हुये जीव मरते हैं, उसके पश्चात् उपजते नहीं । आयु नाश से केवल मरते ही हैं, इसलिए इनके कोई दोष नहीं उत्पन्न होता ।

इसतरह क्षीणकषाय के अंत समय में कर्मों का नाश करके उसके अनंतर

अपने काल में सयोगकेवली जिन होते हैं । वे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होते हैं । सर्व पदार्थों के आकाररूप विशेषों को ग्रहण करते हैं, इसलिए सर्वज्ञ कहते हैं तथा सर्व पदार्थों के निराकाररूप सामान्य को ग्रहण करते हैं, इसलिए सर्वदर्शी कहते हैं ।

खीणे घादिचउक्के णंतचउक्कस्स होदि उप्पत्ती ।
सादी अपज्जवसिदा उक्कसाणंतपरिसंखा ।।६१०।।

क्षीणे घातिचतुष्केऽनंतचतुष्कस्य भवति उत्पत्तिः ।
सादिरपर्यवसिता उत्कृष्टानंतपरिसंख्या ।।६१०।।

टीका – घातिकर्मों के चतुष्क का नाश होनेपर अनंतचतुष्क की उत्पत्ति होती है । अनंतपना कैसे पाया जाता है? वह कहते हैं –

सादि अर्थात् उपजने के काल में आदि सहित है तथापि अपर्यवसिता अर्थात् अवसान जो अंत, उससे रहित है इसलिए अनंत कहते हैं । अथवा अविभागप्रतिच्छेदों की अपेक्षा इनकी उत्कृष्ट अनंतानंत मात्र संख्या है, इसलिए भी अनंत कहते हैं ।

अब किस कर्म के नाश से कौनसा गुण होता है, वह कहते हैं –

आवरणदुगाण खये केवलणाणं च दंसणं होइ ।
विरियंतरायियस्स य खएण विरियं हवे णंतं ।।६११।।

आवरणद्विकयोः क्षये केवलज्ञानं च दर्शनं भवति ।
वीर्यांतरायिकस्य च क्षयेण वीर्यं भवेदनंतम् ।।६११।।

टीका – ज्ञानावरण और दर्शनावरण इन दोनों के नाश से केवलज्ञान और केवलदर्शन होता है । वहां केवलज्ञान है, वह इन्द्रिय, मन, प्रकाशादि की सहाय रहित है, वह सूक्ष्म, अंतरित, दूर आदि सर्व पदार्थों को प्रत्यक्ष युगपत् जानता है । वहां परमाणु आदि सूक्ष्म कहलाते हैं; अतीत, अनागत काल संबंधी अंतरित कहलाते हैं और दूर क्षेत्रवर्ती दूर कहलाते हैं । पुनश्च वैसे ही केवलदर्शन है, वह देखता है । जिस प्रकार चन्द्र में शीत स्पर्श और श्वेत वर्ण युगपत् हैं, वैसे जिनेन्द्र में केवलज्ञान, केवलदर्शन युगपत् प्रवर्तते हैं, छद्मस्थवत् क्रमवर्ती नहीं हैं ।

पुनश्च वीर्यांतराय के क्षय से अनंतवीर्य होता है, वह समस्त ज्ञेयों को सदा काल जानते हुये भी खेद उपजने के अभाव को उपकारी और किसी के द्वारा घात न किया जाये ऐसी समर्थतारूप है ।

णवणोकसायविग्घचउक्काणं च य खयादणंतसुहं ।
अणुवममव्वाबाहं अप्पसमुत्थं णिरावेक्खं ।।६१२।।

नवनोकषायविघ्नचतुष्काणां च क्षयादनंतसुखम् ।
अनुपममव्याबाधमात्मसमुत्थं निरपेक्षम् ।।६१२।।

टीका – नौ नोकषाय और दानादि अंतराय चतुष्क के क्षय से अनंतसुख होता है । वह अन्यत्र ऐसा नहीं पाया जाता इसलिए अनौपम्य *(अनुपम)* है; किसी से बाधित नहीं इसलिए अव्याबाध है; आत्मा में से उत्पन्न है इसलिए आत्मसमुत्थ है; इन्द्रिय, विषय, प्रकाश आदि की अपेक्षा रहित है इसलिए निरपेक्ष है; इसतरह ज्ञानवैराग्य की उत्कृष्टता को प्राप्त हुये केवली के अनाकुल लक्षण अनंतसुख जानना ।

सत्तण्हं पयडीणं खयादु खइयं तु होदि सम्मत्तं ।
वरचरणं उवसमदो खयदो दु चरित्तमोहस्स ।।६१३।।

सप्तानां प्रकृतीनां क्षयात् क्षायिकं तु भवति सम्यक्त्वम् ।
वरचरणं उपशमतः क्षयतस्तु चारित्रमोहस्य ।।६१३।।

टीका – चार अनंतानुबंधी, तीन मिथ्यात्व *(दर्शनमोहनीय)* इन सात प्रकृतियों के क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व होता है, वह तत्त्वार्थों के यथार्थ श्रद्धानरूप जानना । चारित्रमोहनीय की इक्कीस प्रकृतियों के उपशम से और क्षय से उत्कृष्ट यथाख्यात चारित्र प्राप्त होता है, वह निष्कषाय आत्मचरणरूप है । यहां क्षायिक यथाख्यातचारित्र ही है । तथापि यथाख्यात का प्रसंग पाकर उपशांतकषाय में पाये जानेवाले उपशम यथाख्यात का भी कारण दिखाया है ।

अब यहां कोई कहेगा कि केवली के असातावेदनीय के उदय से क्षुधादि परिषह पाये जाते हैं इसलिए आहारादि क्रिया होती हैं, उससे कहते हैं –

जं णोकसायविग्घचउक्काण बलेण दुक्खपहुदीणं ।
असुहपयडिणुदयभवं इंदियखेदं हवे दुक्खं ।।६१४।।

यत् नोकषायविघ्नचतुष्काणां बलेन दु:खप्रभृतीनाम् ।
अशुभप्रकृतीनामुदयभवं इंद्रियखेदं भवेत् दु:खं ।।६१४।।

टीका – जो नोकषाय और अंतरायचतुष्क के उदय के बल से दु:खरूप असातावेदनीय आदि अशुभप्रकृतियों के उदय से उत्पन्न ऐसे इन्द्रियों के खेद, आकुलता, उसका नाम दु:ख है । वह केवली के नहीं पाया जाता ।

जं णोकसायविग्घचउक्काण बलेण सादपहुदीणं ।
सुहपयडीणुदयभवं इंदियतोसं हवे सोक्खं ।।६१५।।

यत् नोकषाय विघ्नचतुष्काणां बलेन सातप्रभृतीनां ।
शुभप्रकृतीनामुदयभवं इंद्रियतोषं भवेत् सौख्यं ।।६१५।।

टीका – जो नोकषाय और अंतरायचतुष्क के उदय के बल से सातावेदनीय आदि शुभ प्रकृतियों के उदय से उत्पन्न इन्द्रियों के संतोष, कुछ निराकुलता – उसका नाम इन्द्रियजनित सुख है; वह भी केवली के नहीं पाया जाता ।

णट्ठा य रायदोसा इंदियणाणं च केवलिम्हि जदो ।
तेण दु सातासादजसुहदुक्खं णत्थि इंदियजं ।।६१६।।

नष्टौ च रागद्वेषौ इंद्रियज्ञानं च केवलिनि यत: ।
तेन तु सातासातजसुखदु:खं नास्ति इंद्रियजं ।।६१६।।

टीका – क्योंकि केवली के रागद्वेष नष्ट हुये हैं तथा इन्द्रियजनित ज्ञान भी नष्ट हो गया है, इसलिए साता-असाता वेदनीय के उदय से उत्पन्न ऐसा इन्द्रियजनित सुख-दु:ख नहीं है । इस हेतु से यह सिद्ध हुआ कि कारण के सद्भाव से केवली के असातावेदनीय के उदय से उत्पन्न ऐसे परिषह उपचार मात्र कहे हैं तथापि उनका दु:ख नहीं व्यापता है; क्योंकि घातिकर्मों के उदय का बल होनेपर वेदनीय के उदय

से सुख, दु:ख व्यापते हैं । जैसे उपघात, परघात नामकर्म का उदय होनेपर भी घातिकर्मों के बल बिना अपना या अन्य का घात नहीं होता । यदि ऐसा न हो तो परिषहों के निमित्त से केवली को दु:ख होता; तब जैसे लाभ *(व्याज)* के लिये कार्य करते हुये मूल *(मुद्दल)* नाश हो जाये वैसे यह कार्य ठहरा; जो संभव नहीं है । इसलिए केवली के भोजन है ऐसा वचन अयुक्त है ।

अब अन्य हेतु कहते हैं –

समयट्ठिदिगो बंधो सादस्सुदयाप्पिगो जदो तस्स ।
तेण असादस्सुदओ सादसरूवेण परिणमदि ।।६१७।।

समयस्थितिको बंध: सातस्योदयात्मको यत: तस्य ।
तेन असातस्योदय: सातस्वरूपेण परिणमति ।।६१७।।

टीका – चूंकि केवली के एक समय मात्र स्थिति सहित सातावेदनीय का बंध होता है वह उदयरूप ही है, इसलिए उसके असाता का उदय है वह भी सातारूप होकर परिणमता है, क्योंकि यहां परम विशुद्धता से साता के अनुभाग की बहुत अधिकता पायी जाती है, इसलिए असाताजनित क्षुधादि परिषह की वेदना नहीं है । वेदना बिना उसके प्रतिकाररूप आहार कैसे संभव है ?

यहां कोई कहेगा कि यदि आहार संभव नहीं है तो शास्त्रों में केवली के आहारमार्गणा का सद्भाव कैसे कहा ? उससे कहते हैं –

पडिसमयं दिव्वतमं जोगी णोकम्मदेहपडिबद्धं ।
समयपबद्धं बंधदि गलिदवसेसाउमेत्तठिदी ।।६१८।।

प्रतिसमयं दिव्यतमं योगी नोकर्मदेहप्रतिबद्धम् ।
समयप्रबद्धं बध्नाति गलितावशेषायुर्मात्रस्थिति: ।।६१८।।

टीका – सयोगिजिन प्रतिसमय नोकर्म अर्थात् औदारिकशरीर संबंधी समय प्रबद्ध को बांधते हैं, ग्रहण करते हैं । उसकी *(नोकर्म की)* स्थिति आयु व्यतीत होने के पश्चात् जितनी अवशेष रही है उतनी मात्र जानना । नोकर्मवर्गणा के ग्रहण

का नाम ही आहारमार्गणा *(आहारक)* है, उसका सद्भाव केवली के है । ओज, लेप्य, मानस, कवल, कर्म और नोकर्म भेद से आहार छह प्रकार का है, उनमें से केवली के कर्म और नोकर्म दो आहार पाये जाते हैं । सातावेदनीय के समयप्रबद्ध को ग्रहण करते हैं, वह कर्म-आहार है और औदारिकशरीर का समयप्रबद्ध ग्रहण करते हैं, वह नोकर्मआहार है ।

णवरि समुग्घादगदे पदरे तह लोगपूरणे पदरे ।
णत्थि तिसमये णियमा णोकम्माहारयं तत्थ ।।६१९।।

नवरि समुद्घातगते प्रतरे तथा लोकपूरणे प्रतरे ।
नास्ति त्रिसमये नियमात् नोकर्माहारकस्तत्र ।।६१९।।

टीका – इतना विशेष है कि केवलीसमुद्घात को प्राप्त केवली के दो तो प्रतर के समय और एक लोकपूरण का समय इन तीन समयों में नोकर्म का आहार नियम से नहीं है । अन्य सर्व काल में सयोगिजिन को नोकर्म का आहार है ।

अब यहां समुद्घात कब होता है, वह कहना । वहां क्षीणकषाय के अनंतर ईर्यापथबंध को कारण जो योग उनसे युक्त जो तीर्थंकरकेवली हुआ, वह *(जीव)* समवशरण में मंडप के मध्य तीन पीठिका के ऊपर जो सिंहासन, उसमें विराजमान है । अष्ट प्रातिहार्य, चौंतीस अतिशय सहित है । धातु मल रहित परम औदारिकशरीर सहित है । सर्वलोकपूज्य है । एक योजन में स्थित ऐसे दूर और निकटवर्ती तिर्यंच, मनुष्य और देव इनकी अठारह महाभाषा और सात सौ क्षुल्लक भाषाओं के आकार तद्रूप परिणमित ऐसी दिव्यध्वनी द्वारा आसन्न-भव्य जीवों को संसार से पार करते हैं । जैसे बिना इच्छा चन्द्रमा समुद्र को बढ़ाता है वैसे अबुद्धिपूर्वकपने से *(इच्छारहित)* केवली जगत का हित करते हैं । क्योंकि सर्व जीवों के उपकाररूप परिणामों से ऐसा कर्म पहले बंधा है जिसके उदय से सर्व जीवों का स्वयमेव उपकार होता है तथा भव्य जीवों का भला होना है इसलिए ऐसा निमित्त बना है ।

भगवान विहार करते हैं तब आकाश में दो सौ पच्चीस कमलों के ऊपर स्वयमेव गमन करते हैं । इसप्रकार उत्कृष्ट तो किंचित् कम एक करोड पूर्व

और जघन्य पृथक्त्व वर्ष प्रमाण तीर्थंकरकेवली की स्थिति सयोगकेवली गुणस्थान में जानना । सामान्यकेवली के अतिशयादि यथासंभव जानना और जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त जानना ।

वहां सयोगि के प्रथम समय से लेकर उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी निर्जरा होती है । वहां प्रथम समय में वेदनीय, नाम, गोत्र के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग मात्र द्रव्य ग्रहण करके पूर्वोक्त प्रकार से गुणश्रेणी में देने योग्य द्रव्य को उदयरूप प्रथम निषेक में तो अल्प और द्वितीयादि गुणश्रेणीशीर्ष तक निषेकों में असंख्यातगुणा क्रम सहित निक्षेपण करते हैं । उपरितन स्थिति में देने योग्य द्रव्य को प्रथम निषेक में गुणश्रेणीशीर्ष में दिये द्रव्य से असंख्यातगुणा और द्वितीयादि अतिस्थापनावली जब तक प्राप्त न हो तब तक के निषेकों में विशेष घटते क्रम सहित निक्षेपण करते हैं । यहां क्षीणकषाय द्वारा अपकर्षण किये द्रव्य से सयोगकेवली द्वारा अपकर्षण किया द्रव्य असंख्यातगुणा जानना । उसके गुणश्रेणी आयाम से इसका गुणश्रेणी आयाम संख्यातगुणा हीन जानना ।

सयोगकेवली के द्वितीयादि समयों में भी ऐसा ही विधान जानना । परिणाम अवस्थित हैं वहां अपकर्षण किये द्रव्य की और गुणश्रेणी आयाम की समानता जानना । इतना ही विशेष है कि गुणश्रेणी आयाम अवस्थित है, इसलिए जैसे-जैसे गुणश्रेणी आयाम का एक-एक समय व्यतीत होता है, वैसे-वैसे उपरितन स्थिति का एक-एक समय गुणश्रेणी में मिलता है ।

इसप्रकार सयोगी का काल बहुत व्यतीत होनेपर समुद्घात क्रिया जिस काल में होती है, वह कहते हैं –

अंतोमुहुत्तमाऊ परिसेसे केवली समुग्घादं ।
दंड कवाटं पदरं लोगस्स य पूरणं कुणई ।।६२०।।

अंतर्मुहूर्तमायुषि परिशेषे केवली समुद्घातं ।
दंडं कपाटं प्रतरं लोकस्य च पूरणं करोति ।।६२०।।

टीका – अपनी आयु अंतर्मुहूर्त मात्र अवशेष रहनेपर केवली समुद्घात क्रिया

करते हैं । वहां दंड, कपाट, प्रतर, लोकपूरणरूप क्रिया को करते हैं ।

हेट्ठा दंडस्संतोमुहुत्तमावज्जिदं हवे करणं ।
तं च समुग्घादस्स य अहिमुहभावो जिणिंदस्स ।।६२१।।

अधस्तनं दंडस्यांतर्मुहूर्तमावर्जितं भवेत् करणं ।
तच्च समुद्घातस्य च अभिमुखभावो जिनेंद्रस्य ।।६२१।।

टीका – दंड समुद्घात करने के काल के अंतर्मुहूर्त काल पहले आवर्जित नामक करण होता है । जिनेन्द्र देव के जो समुद्घात क्रिया के सन्मुखपना, वही आवर्जितकरण है ।

सट्ठाणे आवज्जिदकरणेवि य णत्थि ठिदिरसाण हदी ।
उदयादि अवट्ठिदया गुणसेढी तस्स दव्वं च ।।६२२।।

स्वस्थाने आवर्जितकरणेऽपि च नास्ति स्थितिरसयोः हतिः ।
उदयादि अवस्थितौ गुणश्रेणिः तस्य द्रव्यं च ।।६२२।।

टीका – आवर्जितकरण के पहले स्वस्थान में और आवर्जितकरण में भी सयोगकेवली के कांडकादि विधान द्वारा स्थिति, अनुभाग का घात नहीं है । उदयादि अवस्थितरूप गुणश्रेणी का आयाम है और उस गुणश्रेणी का द्रव्य भी अवस्थित है । वहां विशेष इतना है कि स्वस्थानकेवली के गुणश्रेणी आयाम से आवर्जितकरण युक्त केवली का गुणश्रेणी आयाम संख्यातगुणा हीन है । पुनश्च स्वस्थानकेवली द्वारा अपकर्षण किये द्रव्य से आवर्जितकरण युक्त केवली द्वारा अपकर्षण किया द्रव्य असंख्यातगुणा है, क्योंकि गुणश्रेणी निर्जरा के ग्यारह स्थान कहे हैं वहां ऐसा ही क्रम कहा है । यद्यपि केवली के परिणामों की समानता है तथापि आयु का अंतर्मुहूर्त मात्र अवशेष रहने का निमित्त पाकर विशेष होने से स्वस्थानकेवली से समुद्घात के सन्मुख केवली के गुणश्रेणी आयाम और अपकर्षण किये द्रव्य की समानता नहीं कही है । स्वस्थानकेवली के प्रथमादि अंत समय तक गुणश्रेणी आयाम और अपकर्षण किया द्रव्य समान है, इसलिए अवस्थित जानना । आवर्जितकरण के प्रथम समय से लेकर सयोगी के

द्विचरम स्थितिकांडक की अंत फालि का पतन जिस समय होगा वहां तक गुणश्रेणी आयाम और अपकर्षण किया द्रव्य समान है, इसलिए अवस्थित जानना ।

अब आवर्जितकरण में गुणश्रेणी आयाम कितना है ? वह कहते हैं –

जोगिस्स सेसकाले गयजोगी तस्स संखभागो य ।
जावदियं तावदिया आवज्जिदकरणगुणसेढी ।।६२३।।

योगिनः शेषकाले गतयोगी तस्य संख्यभागश्च ।
यावत् तावत्कं आवर्जितकरणगुणश्रेणिः ।।६२३।।

टीका – आवर्जितकरण करने के पहले समय में सयोगि का जो अवशेष काल रहा और अयोगि का सर्व काल और अयोगि के काल का संख्यातवां भाग इन सबको मिलाकर जितना हो, उतना आवर्जितकरण काल के प्रथम समय से लेकर द्विचरमकांडक की अंत फालि के पतन समय तक के समयों में अवस्थित गुणश्रेणी आयाम जानना । वहां अपकर्षण किये द्रव्य का देने का विधान जैसे स्वस्थानकेवली में कहा, वैसे जानना ।

इसप्रकार अंतर्मुहूर्त मात्र आवर्जितकरण काल में क्रियाविशेष कहे, उसके अनंतर समुद्घात क्रिया होती है । अघातिकर्मों की स्थिति समान करने के लिये जीव के प्रदेशों का समुद्गमन-फैलना, उसका नाम समुद्घात है । वह दंड, कपाट, प्रतर, लोकपूरण भेद से चार प्रकार का है । समुद्घात करनेवाले जीव पूर्व या उत्तर के सन्मुख होते हैं, पद्मासन या कायोत्सर्ग आसन युक्त होते हैं । वे प्रथम समय में दंड समुद्घात करते हैं । वहां उत्कृष्ट अवगाह युक्त केवली का शरीर एक सौ आठ प्रमाणांगुल प्रमाण ऊंचा होता है, उसके नौवें भाग चौड़ाई होती है, सो बारह अंगुल चौड़ाई की सूक्ष्म परिधि सैंतीस अंगुल और एक अंगुल के एक सौ तेरह भागों में से पंचानबे भाग मात्र होती है । यह तो कायोत्सर्ग स्थित केवली के परिधि का प्रमाण जानना ।

पद्मासन स्थित केवली के चौड़ाई का प्रमाण उससे तीनगुणा छत्तीस अंगुल है । उसके सूक्ष्म परिधि का प्रमाण एक सौ तेरह अंगुल और एक अंगुल के एक सौ

तेरह भागों में से सत्ताइस भाग मात्र होती है । ऐसी परिधिरूप होकर किंचित् कम चौदह राजू ऊंचे प्रदेश होते हैं । यहां नीचे के और ऊपर के वातवलयों में जीव के प्रदेश नहीं फैलते, इसलिये उनके घटाने के लिये किंचित् कम कहा है । ऐसे दंड के आकार प्रदेश फैलने से दंड समुद्घात कहा ।

द्वितीय समय में कपाट समुद्घात करते हैं । वहां पूर्व दिशा सन्मुख कार्योत्सर्ग आसन युक्त केवली के प्रदेश किंचित् कम चौदह राजू ऊंचे, सात राजू चौड़े, बारह अंगुल मोटे होते हैं । तथा पूर्व सन्मुख पद्मासन स्थित केवली के प्रदेश ऊंचे और चौड़े पूर्वोक्त, मोटे छत्तीस अंगुल होते हैं । उत्तर सन्मुख कायोत्सर्ग स्थित केवली के प्रदेश किंचित् कम चौदह राजू ऊंचे, और *(चौड़ाई में)* नीचे सात राजू, क्रम से घटकर मध्यलोक के निकट एक राजू, क्रम से बढ़कर ब्रह्म स्वर्ग के निकट पांच राजू, क्रम से घटकर ऊपर एक राजू चौड़े और बारह अंगुल मोटे होते हैं । उत्तर सन्मुख पद्मासन स्थित केवली के प्रदेश ऊंचे वैसे ही, चौड़े ~~सर्वत्र किंचित् कम सात राजू~~ पूर्वोक्त और मोटे छत्तीस अंगुल हैं । ऐसे कपाट के आकार प्रदेश फैलने से कपाट कहा ।

तीसरे समय में प्रतर करता है । वहां वातवलय बिना अवशेष सर्व लोक में आत्मा के प्रदेश फैलते हैं । इसका नाम मंथान भी है ।

चतुर्थ समय में लोकपूरण होता है । वहां वातवलय सहित सर्व लोक में आत्मा के प्रदेश फैलते हैं । इसतरह चार समयों में दंड, कपाट, प्रतर, लोकपूरण क्रम से प्रदेश फैलते हैं ।

वहां कार्यविशेष होता है, वह कहते हैं –

ठिदिखंडमसंखेज्जे भागे रसखंडमप्पसत्थाणं ।
हणदि अणंता भागा दंडादी चउसु समएसु ।।६२४।।

स्थितिखंडमसंख्येयान् भागान् रसखंडमप्रशस्तानां ।
हंति अनंतान् भागान् दंडादिचतुर्षु समयेषु ।।६२४।।

टीका – दंडादि के चार समयों में स्थितिखंड तो असंख्यातबहुभाग मात्र, अप्रशस्त कर्मों का अनुभागखंड अनंतभाग मात्र घातते हैं । वही कहते हैं –

दंडरूप प्रथम समय में जो नाम, गोत्र, वेदनीय का स्थितिसत्त्व पहले पल्य के असंख्यातवां भाग मात्र था, उसको असंख्यात का भाग देकर वहां बहुभाग मात्र घटाकर एकभाग मात्र अवशेष रखते हैं । अप्रशस्त प्रकृतियों का क्षीणकषाय के अंत समय में जो अनुभाग रहा था, उसको अनंत का भाग देकर वहां बहुभाग घटाकर एकभाग मात्र अवशेष रखते हैं । कपाटरूप द्वितीय समय में जो दंड समय में स्थिति, अनुभाग रहे थे उनको क्रम से असंख्यात, अनंत का भाग देकर वहां बहुभाग घटाकर एकभाग मात्र अवशेष रखते हैं । प्रतररूप तीसरे समय में कपाट समय में जो स्थिति, अनुभाग रहा उसको क्रम से असंख्यात, अनंत का भाग देकर वहां बहुभाग घटाकर एकभाग मात्र अवशेष रखते हैं । लोकपूरणरूप चौथे समय में जो प्रतर समय में स्थिति, अनुभाग रहा था उसको क्रम से असंख्यात, अनंत का भाग देकर वहां बहुभाग मात्र घटाकर एकभाग अवशेष रखते हैं । प्रशस्त प्रकृतियों का स्थितिघात होता है, अनुभागघात नहीं होता ऐसा जानना । गुणश्रेणी निर्जरा आवर्जितकरणवत् होती है ।

चउसमएसु रसस्स य अणुसमओवट्टणा असत्थाणं ।
ठिदिखंडस्सिगिसमयिगघादो अंतोमुहुत्तुवरिं ।।६२५।।

चतुः समयेषु रसस्य च अनुसमयापवर्तनमशस्तानां ।
स्थितिखंडस्यैकसमयिकघातो अंतर्मुहूर्तोपरि ।।६२५।।

टीका – इसतरह चार समयों में अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुसमयापवर्तन हुआ । प्रतिसमय अनुभाग का घटना हुआ । स्थितिखंड का एक समय द्वारा घात हुआ । एक-एक समय में एक-एक स्थितिकांडकघात किया, यह माहात्म्य समुद्घात क्रिया का जानना । लोकपूरण के अनंतर अंतर्मुहूर्त मात्र स्थितिकांडक और अनुभागकांडक का आयाम *(काल)* जानना – अंतर्मुहूर्त काल द्वारा स्थिति, अनुभाग का घटाना जानना ।

[*यहां आयाम के स्थानपर काल उचित लगता है क्योंकि यहां स्थितिकांडकोत्करण और अनुभागकांडकोत्करण काल की बात है ।*]

जगपूरणम्हि एक्का जोगस्स य वग्गणा ठिदी तत्थ ।
अंतोमुहुत्तमेत्ता संखगुणा आउआ होदि ।।६२६।।

जगत्पूरणे एका योगस्य च वर्गणा स्थितिस्तत्र ।
अंतर्मुहूर्तमात्रा संख्यगुणा आयुषो भवति ।।६२६।।

टीका – लोकपूरण के समय में योगों की एक वर्गणा है । पहले आत्मा के प्रदेशों में हीनाधिक योगों के अविभागप्रतिच्छेद थे । यहां आत्मा के सर्व प्रदेशों में समान प्रमाण युक्त योगों के अविभागप्रतिच्छेद हुये । इसका नाम समयोग परिणाम है । सूक्ष्म निगोद के जघन्य योगस्थान की जघन्य वर्गणा से असंख्यातगुणा जो मध्यम वर्गणा, उसके वर्गों के समान यहां सर्व आत्मप्रदेशों में समानरूप अविभागप्रतिच्छेद होते हैं । यह *(समयोग)* एक समय ही रहता है, पश्चात् हीनाधिकता युक्त पूर्वस्पर्धकरूप योग परिणमित हो जाता है ।

वहां लोकपूरण समय में अंतर्मुहूर्त मात्र स्थिति अवशेष रखते हैं । यह अवशेष रहे आयु से संख्यातगुणा जानना । यहां पहले जो स्थिति थी, उसमें से इतनी स्थिति बिना अवशेष सर्व स्थिति का कांडक द्वारा घात हुआ है ।

इस लोकपूरण क्रिया के अनंतर समुद्घात क्रिया को समेटते हैं, उसका क्रम कहते हैं –

एत्तो पदर कवाडं दंडं पच्चा चउत्थसमयम्हि ।
पविसिय देहं तु जिणो जोगणिरोधं करेदीदि ।।६२७।।

अतः प्रतरं कपाटं दंडं प्रतीत्य चतुर्थसमये ।
प्रविश्य देहं तु जिनो योगनिरोधं करोतीति ।।६२७।।

टीका – इस लोकपूरण के अनंतर प्रथम समय में लोकपूरण को समेट कर प्रतररूप आत्मप्रदेश करते हैं । द्वितीय समय में प्रतर को समेट कर कपाटरूप आत्मप्रदेशों को करते हैं । तीसरे समय में कपाट समेट कर दंडरूप आत्मप्रदेश करते हैं । उसके अनंतर चौथे समय में दंड समेट कर सर्व प्रदेश मूलशरीर में

प्रवेश करते हैं । यहां समुद्घात क्रिया करने समेटने में सात समय हुये । वहां दंड के दो समयों में औदारिक काययोग है, क्योंकि यहा अन्य योग नहीं पाया जाता । कपाट के दो समयों में औदारिकमिश्र काययोग है क्योंकि यहां मूल औदारिकशरीर और कार्माणशरीर इन दोनों के अवलंबन से आत्मप्रदेश चंचल होते हैं । प्रतर के दो समय और लोकपूरण के एक समय में कार्माण काययोग है, क्योंकि वहां मूलशरीर के अवलंबन द्वारा आत्मप्रदेश चंचल नहीं होते और शरीर योग्य नोकर्मरूप पुद्गल को नहीं ग्रहण करते । वहां अनाहारक है ऐसा जानना । पश्चात् मूलशरीर में प्रवेश करके उस शरीर प्रमाण आत्मा हुआ, वहां औदारिक योग ही है । ऐसे समुद्घात क्रिया का वर्णन किया ।

लोकपूरण के पश्चात् स्थिति, अनुभागकांडकघात का आरंभ किया था, सो मूलशरीर में प्रवेश करके शरीर प्रमाण आत्मा होकर अंतर्मुहूर्त काल तक वहां विश्राम किया । वहां संख्यात हजार स्थितिकांडक होने के पश्चात् योगों का निरोध करता है । यहां निरोध नाम नाश का जानना ।

बादरमण वचि उस्सास कायजोगं तु सुहुमजचउक्कं ।
रुंभदि कमसो बादरसुहुमेण य कायजोगेण ।।६२८।।

बादरमनो वच उच्छ्वास काययोगं तु सूक्ष्मजचतुष्कं ।
रुणद्धि क्रमशो बादरसूक्ष्मेण च काययोगेन ।।६२८।।

टीका – बादर काययोगरूप होकर बादर मनोयोग, वचनयोग, उच्छ्वास, काययोग इन चारों को क्रम से नष्ट करते हैं । पुनश्च सूक्ष्म काययोगरूप होकर उन चारों सूक्ष्म को क्रम से नष्ट करते हैं । वही कहते हैं –

केवली भगवान बादर काययोग में प्रवर्तते हुये पहले बादर मनोयोग को नष्ट करके सूक्ष्मरूप करते हैं । पश्चात् बादर वचनयोग को नष्ट करके सूक्ष्मरूप करते हैं । पश्चात् बादर उच्छ्वास को नष्ट करके सूक्ष्मरूप करते हैं । पश्चात् बादर काययोग को नष्ट करके सूक्ष्मरूप करते हैं । इसप्रकार जो बादररूप इनकी शक्ति पहले थी, उनको घटाकर सूक्ष्म की; पश्चात् केवली भगवान सूक्ष्म काययोगरूप

प्रवर्तते हुये पहले सूक्ष्म मनोयोग को, पश्चात् सूक्ष्म वचनयोग को, पश्चात् सूक्ष्म उच्छ्वास को, पश्चात् सूक्ष्म काययोग को नष्ट करते हैं ।

यहां प्रश्न – विद्यमान का नाश होता है । यहां कायरूप प्रवर्तना अन्य योग नहीं है, क्योंकि सिद्धांत में एक काल में एक योग कहा है । यदि योग नहीं है, तो उसका नाश कैसे करते हैं ?

उसका समाधान – वर्तमान व्यक्तरूप काययोग ही प्रवर्तता है; परंतु मन, वचन योग की वर्गणाओं में मन, वचन उपजाने की शक्ति वहां पायी जाती है, उसको नष्ट करते हैं । पहले उनकी बादर योग उपजाने की शक्ति दूर करके सूक्ष्मकृष्टि योग उपजाने की शक्तिरूप उनको करते हैं । पश्चात् उसको भी मिटाकर योग उपजाने की शक्ति से रहित करते हैं, ऐसा अर्थ जानना ।

यहां कारण में कार्य का उपचार होता है इस न्याय से योग के कारणभूत वर्गणा में जो शक्ति, उसको योग कहते हैं ।

यहां पहले बादर योग थे, उनको सूक्ष्मरूप परिणमानेपर वे कैसे हुये ? वह कहते हैं –

सण्णिविसुहुमणि पुण्णे जहण्णमणवयणकायजोगादो ।
कुणदि असंखगुणूणं सुहुमणिपुण्णवरदो वि उस्सासं ।।६२९।।

संज्ञिद्विसूक्ष्मे पूर्णे जघन्यमनोवचनकाययोगतः ।
करोति असंख्यगुणोनं सूक्ष्मनिपूर्णावरतोऽपि उच्छ्वासं ।।६२९।।

टीका – संज्ञी पर्याप्त के जो जघन्य मनोयोग पाया जाता है, उससे असंख्यातगुणा हीन ऐसा सूक्ष्म मनोयोग करते हैं और द्वीन्द्रिय पर्याप्त के जो जघन्य वचनयोग पाया जाता है उससे असंख्यातगुणा बादर वचनयोग था उसको घटाकर उससे असंख्यातगुणा हीन सूक्ष्म वचनयोग करते हैं । सूक्ष्म निगोद पर्याप्त के जघन्य काययोग से असंख्यातगुणा बादर काययोग था, उसको मिटाकर उससे असंख्यातगुणा हीन सूक्ष्म काययोग करते हैं ।

सूक्ष्म निगोद पर्याप्त के जघन्य उच्छ्वास से असंख्यातगुणा बादर उच्छ्वास था,

उसको मिटाकर उससे असंख्यातगुणा हीन सूक्ष्म उच्छ्वास करते हैं ।

एक्केक्कस्स णिठंभणकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो हु ।
सुहुमं देहणिमाणमाणं हियमाणि करणाणि ।।६३०।।

एकैकस्य निष्टंभनकालो अंतर्मुहूर्तमात्रो हि ।
सूक्ष्मं देहनिर्माणं आनं हीयमानं करणानि ।।६३०।।

टीका – एक-एक बादर और सूक्ष्म मनोयोगादि के निरोध करने का काल प्रत्येक अंतर्मुहूर्त मात्र जानना । सूक्ष्म काययोग में रहते हुये सूक्ष्म उच्छ्वास को नष्ट करने के अनंतर सूक्ष्म काययोग का नाश करने के लिये प्रवर्तते हैं ।

उनके इच्छा के बिना अबुद्धिपूर्वक आगे कहेंगे, वे कार्य होते हैं –

सुहुमस्स य पढमादो मुहुत्तअंतो त्ति कुणदि हु अपुव्वे ।
पुव्वगफड्डगहेट्ठा सेढिस्स असंखभागमिदो ।।६३१।।

सूक्ष्मस्य च प्रथमात् मुहूर्तांतरिति करोति हि अपूर्वान् ।
पूर्वस्पर्धकाधस्तनं श्रेण्या असंख्यभागमितं ।।६३१।।

टीका – सूक्ष्म काययोग होने के प्रथम समय से लेकर अंतर्मुहूर्त काल तक पूर्वस्पर्धकों के नीचे जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र अपूर्वस्पर्धक करते हैं । वही कहते हैं –

पूर्वस्पर्धकों का स्वरूप गोम्मटसार के कर्मकांड में जो बंधोदयसत्त्व अधिकार है, उसमें प्रदेशबंध के कथन का प्रसंग पाकर योगों का वर्णन किया है, वहां से जानना । यहां भी कुछ कहते हैं –

जघन्य योगस्थान युक्त जीव के लोक मात्र प्रदेशों में से जिन प्रदेशों में सबसे जघन्य योगशक्ति पायी जाती है उन्हें स्थापित करके उसके ऊपर सबसे बढ़ती परंतु अन्य प्रदेशों से हीन योगशक्ति जिन अन्य प्रदेशों में पायी जाती है, उन्हें स्थापित करना; पूर्व प्रदेशों से उन प्रदेशों में जितनी योगशक्ति अधिक है, उसका नाम अविभागप्रतिच्छेद है । बुद्धि में इतने प्रमाणवाले खंड कल्पित कर इससे योगशक्ति

का प्रमाण करनेपर जघन्य शक्तियुक्त प्रदेशों में असंख्यातलोक मात्र अविभागप्रतिच्छेद होते हैं । इनके समूहरूप जो एक प्रदेश, उसको जघन्य वर्ग कहते हैं । इतने-इतने अविभागप्रतिच्छेद जिन प्रदेशों में समानरूप से पाये जाते हैं, उनके समूह का नाम जघन्य वर्गणा है । वे प्रदेश कितने हैं ?

जीव के सर्व प्रदेशों को साधिक डेढ़ गुणहानि का भाग देकर एकभाग मात्र है, जो असंख्यात जगत्प्रतर प्रमाण हैं । यहां एक गुणहानि में जो स्पर्धकों का प्रमाण है, उसको एक स्पर्धक में जो वर्गणा का प्रमाण, उससे गुणा करनेपर एक गुणहानि का प्रमाण होता है । उसके *(जघन्य वर्गणा के)* ऊपर जघन्य वर्ग के अविभागप्रतिच्छेदों से एक अविभागप्रतिच्छेद जिनमें अधिक है, ऐसे वर्गों के समूहरूप द्वितीय वर्गणा है । वे वर्गरूप प्रदेश कितने हैं ? जघन्य वर्गणा के प्रदेशों से एक विशेष *(चय)* मात्र हीन हैं । विशेष का प्रमाण जघन्य वर्गणा को दोगुणहानि का भाग देनेपर जो हो, वह जानना । यहां से ऊपर द्वितीय गुणहानि की प्रथम वर्गणा तक की वर्गणाओं में प्रदेशरूप वर्गों का प्रमाण एक-एक विशेष मात्र घटते क्रम से जानना ।

वहां द्वितीय वर्गणा के वर्ग के अविभागप्रतिच्छेदों से एक अधिक अविभागप्रतिच्छेद युक्त वर्गों के समूहरूप तृतीय वर्गणा होती है । इसतरह एक-एक अधिक अविभागप्रतिच्छेद युक्त वर्गों के क्रम सहित जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र वर्गणाओं की रचना होती है, इनके समूह का नाम जघन्य स्पर्धक है । उसके ऊपर जघन्य वर्ग के अविभागप्रतिच्छेदों से दोगुणा अविभागप्रतिच्छेद युक्त वर्गों के समूहरूप द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा होती है । उसके ऊपर उससे एक अधिक अविभागप्रतिच्छेद युक्त वर्गों के समूहरूप उसकी द्वितीय वर्गणा है, इस क्रम से श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र वर्गणा होती हैं, उनके समूह का नाम द्वितीय स्पर्धक है ।

उसके ऊपर जघन्य वर्ग के अविभागप्रतिच्छेदों से तीनगुणा अविभागप्रतिच्छेद युक्त वर्गों के समूहरूप तृतीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा होती है । उसके ऊपर पूर्वोक्तवत् एक-एक अधिक अविभागप्रतिच्छेद युक्त वर्गों के समूहरूप द्वितीयादि वर्गणा होती हैं । ऐसी श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र वर्गणा होती हैं, उनके समूह का नाम तृतीय स्पर्धक है । इसप्रकार अनुभाग बढ़ने का जब तक क्रम हो तब तक वही स्पर्धक होता है तथा युगपत् अनेकें अविभागप्रतिच्छेद बढ़नेपर अन्य स्पर्धक

होता है । ऐसे जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र स्पर्धक होनेपर उनके समूहरूप प्रथम गुणहानि होती है ।

उसके ऊपर एक गुणहानि में जो स्पर्धकों का प्रमाण उससे एक अधिक प्रमाण से गुणित जघन्य वर्ग के अविभागप्रतिच्छेदों का जो प्रमाण हो, उतने अविभागप्रतिच्छेद युक्त वर्गों के समूहरूप द्वितीय गुणहानि के प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा होती है । इसमें वर्गों का प्रमाण प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा के वर्गों के प्रमाण से आधा जानना । उसके ऊपर प्रथम गुणहानिवत् अनुक्रम जानना । वर्गणाओं में वर्गों का प्रमाण एक-एक विशेष से घटता है । यहां विशेष का प्रमाण प्रथम गुणहानि के विशेष से आधा है । इसतरह द्वितीय गुणहानि समाप्त होती है ।

ऐसे जघन्य स्पर्धक से लेकर जितने स्पर्धक हो, उतने गुणकार से जघन्य वर्ग के अविभागप्रतिच्छेदों को गुणा करनेपर विवक्षित स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के वर्ग में अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण होता है । ऊपर द्वितीयादि वर्गणाओं में एक-एक अविभागप्रतिच्छेद बढ़ते क्रम सहित वर्ग होते हैं । असंख्यातलोक मात्र अविभागप्रतिच्छेदों के समूहरूप एक प्रदेश का नाम वर्ग है । असंख्यात जगत्प्रतर मात्र वर्गों के समूहरूप एक वर्गणा है । जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र वर्गणाओं के समूहरूप एक स्पर्धक है । उसके असंख्यातवें भाग मात्र जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्पर्धकों के समूहरूप एक गुणहानि होती है । गुणहानि-गुणहानि प्रति वर्गणाओं में वर्गों का प्रमाण और विशेष का प्रमाण क्रम से आधा-आधा होता है । इसीलिए गुणहानि ऐसा नाम है । ऐसे पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र नानागुणहानियों के समूहरूप जघन्य योगस्थान होता है ।

स्पर्धकों की संदृष्टि यहां जघन्य वर्ग में अविभागप्रतिच्छेद आठ-ऐसे वर्गों के समूहरूप प्रथम वर्गणा है । उसके ऊपर नौ-नौ अविभागप्रतिच्छेद युक्त वर्गों के समूहरूप द्वितीय वर्गणा, ऐसे एक-एक से बढ़ता क्रम ग्यारह अविभागप्रतिच्छेद युक्त वर्ग तक किया । यहां प्रथम स्पर्धक हुआ । दूसरे स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के वर्गों में सोलह-सोलह अविभागप्रतिच्छेद, ऊपर एक-एक बढ़ता, पुनश्च तीसरे स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के वर्गों में चौबीस-चौबीस, ऊपर एक-एक बढ़ता अविभागप्रतिच्छेद है । इसतरह अंकसंदृष्टि द्वारा पूर्वोक्त कथन के अनुसार रचना जानना –

	अंतर		अंतर		अंतर		अंतर	
११	०	१९	०	२७	०	३५	०	४३
१० १०	०	१८ १८	०	२६ २६	०	३४ ३४	०	४२ ४२
९ ९ ९	०	१७ १७ १७	०	२५ २५ २५	०	३३ ३३ ३३	०	४१ ४१ ४१
८ ८ ८ ८	०	१६ १६ १६ १६	०	२४ २४ २४ २४	०	३२ ३२ ३२ ३२	०	४० ४० ४० ४०

यह जघन्य योगस्थान सूक्ष्म निगोद लब्धिअपर्याप्त के विग्रहगति में प्रथम समयवर्ती जीव के होता है । उसके प्रदेशों में योगशक्ति की हीनाधिकता पूर्वोक्त प्रकार जानना । इनमें सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र जो जघन्य स्पर्धक, उनके जितने अविभागप्रतिच्छेद होते हैं, उतने मिलानेपर दूसरा स्थान होता है । उस जघन्य योगस्थान से अधिक और अन्य से हीन ऐसा योगस्थान किसी जीव के होगा तो यह दूसरा स्थान होगा, इससे हीन नहीं होगा ।

इसप्रकार एक-एक स्थान के प्रति सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र जघन्य स्पर्धक बढ़ते हुये ऐसे जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र स्थान होनेपर सर्वोत्कृष्ट योगस्थान होता है, वह संज्ञी पर्याप्तक के पाया जाता है । इसप्रकार जो योगस्थान हैं, उनमें से सयोगिजिन पहले संज्ञी पर्याप्त में पाये जानेवाले बादर काययोगरूप स्थानरूप से प्रवर्तते थे, उसको नष्ट करके सूक्ष्म निगोद के जघन्य स्थान से असंख्यातगुणा हीन सूक्ष्म काययोगरूप प्रवर्तते हैं । उस पूर्वस्पर्धकरूप सूक्ष्मकाययोग की शक्ति को अपूर्वस्पर्धकरूप परिणमाते हैं । यहां से पहले कभी भी ऐसी क्रिया नहीं हुयी थी, इसलिए सार्थक अपूर्वस्पर्धक नाम है । वे अपूर्वस्पर्धक योगों के जघन्य स्थान संबंधी जघन्य स्पर्धक के नीचे असंख्यातगुणा हीन अविभागप्रतिच्छेद युक्त होते हैं । उनका प्रमाण जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण है ।

पुव्वादिवग्गणाणं जीवपदेसा विभागपिंडादो ।
होदि असंखं भागं अपुव्वपढमम्हि ताण दुगं ।।६३२।।

पूर्वादिवर्गणानां जीवप्रदेशाविभागपिंडतः ।
भवति असंख्यं भागमपूर्वप्रथमे तयोर्द्विकम् ।।६३२।।

टीका – पूर्वस्पर्धकों के जीव के प्रदेशों के पिंड से और आदि वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों के पिंड से, प्रथम समय के अपूर्वस्पर्धकों के वे दोनों असंख्यातवें

भाग मात्र होते हैं ।

भावार्थ – पूर्वस्पर्धकों के सर्व प्रदेश साधिक डेढ़ गुणहानि गुणित प्रथम वर्गणा मात्र हैं । उनको अपकर्षण भागहार मात्र असंख्यात का भाग देकर जो एकभाग मात्र प्रदेश उनको अपूर्वस्पर्धकरूप करते हैं । पूर्वस्पर्धक की आदि वर्गणा के वर्ग में जितने अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं, उसको पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यात का भाग देकर वहां एकभाग मात्र अपूर्वस्पर्धक की अंत वर्गणा के वर्ग में अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं ।

यहां प्रथम समय में अपकर्षण किये हुये जीव के प्रदेशों में से अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में तो बहुत प्रदेश देते हैं और द्वितीय से लेकर अंत तक की वर्गणाओं में विशेष घटते क्रम से देते हैं । यहां विशेष का प्रमाण प्रथम वर्गणा को जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर आता है । अपूर्वस्पर्धक की अंत वर्गणा में दिये प्रदेशसमूह को साधिक अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में दिया प्रदेश समूह होता है । इसके ऊपर विशेष घटते क्रम से प्रदेश देते हैं । यहां प्रदेश देने का अर्थ यह जानना कि उन प्रदेशों को ऐसे योगरूप परिणमाते हैं । यहां प्रथम समय में किये हुये अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण एक गुणहानि में पूर्वस्पर्धकों के प्रमाण के असंख्यातवें भाग मात्र जानना ।

ओक्कट्टदि पडिसमयं जीवपदेसे असंखगुणियकमे ।
कुणदि अपुव्वफड्डयं तग्गुणहीणक्कमेणेव ।।६३३।।

अपकर्षति प्रतिसमयं जीव प्रदेशान् असंख्यगुणितक्रमेण ।
करोति अपूर्वस्पर्धकं तद्गुणहीनक्रमेणैव ।।६३३।।

टीका – द्वितीयादि समयों में प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम से जीवप्रदेशों को अपकर्षण करते हैं और असंख्यातगुणा घटते क्रम से नवीन अपूर्वस्पर्धक करते हैं । वहां प्रदेश देने का विधान कहते हैं –

द्वितीय समय में प्रथम समय में अपकर्षण किये प्रदेशों से असंख्यातगुणा प्रदेशों को अपकर्षण करके प्रथम समय में किये हुये अपूर्वस्पर्धकों के नीचे इस

समय में नवीन अपूर्वस्पर्धक करते हैं । वहां अपकर्षण किये हुये प्रदेशों में से नवीन किये हुये अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में बहुत प्रदेश देते हैं । इसके ऊपर द्वितीयादि अंत तक की वर्गणाओं में विशेष घटते क्रम सहित देते हैं । यहां प्रथम समय में किये अपूर्वस्पर्धकों से द्वितीय समय में किये नवीन अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण असंख्यातगुणा हीन जानना । उसकी अंत वर्गणा के ऊपर प्रथम समय में किये अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में उससे असंख्यातगुणा हीन देते हैं । उसके ऊपर पूर्वस्पर्धक की अंत वर्गणा तक विशेष घटते क्रम से देते हैं । तृतीयादि समयों में भी ऐसा ही विधान जानना ।

विशेष इतना – प्रतिसमय अपकर्षण किये प्रदेशों का प्रमाण असंख्यातगुणा क्रम सहित जानना और नीचे-नीचे नवीन अपूर्वस्पर्धक करते हैं उनका प्रमाण असंख्यातगुणा घटते क्रम सहित जानना । वहां अपकर्षण किये प्रदेशों में से नवीन अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में बहुत प्रदेश देते हैं । उसके ऊपर उसकी अंत वर्गणा तक तो विशेष घटते क्रम सहित देते हैं । उसके ऊपर पूर्व समय में किये स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में असंख्यातगुणा हीन प्रदेश देते हैं । उसके ऊपर विशेष घटते क्रम सहित देते हैं । इसतरह देय प्रदेशों का विधान कहा । दृश्यमान प्रदेश सर्व समयों में पूर्व-अपूर्वस्पर्धकों में विशेष घटते क्रम सहित ही जानना ।

सेढिपदस्स असंखं भागं पुव्वाण फड्डयाणं वा ।
सव्वे होंति अपुव्वा हु फड्डया जोगपडिबद्धा ।।६३४।।

श्रेणिपदस्यासंख्यं भागं पूर्वेषां स्पर्धकानां वा ।
सर्वे भवंति अपूर्वा हि स्पर्धका योगप्रतिबद्धा ।।६३४।।

टीका – सर्व समयों में किये योग संबंधी अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण जगत्श्रेणी के प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भाग मात्र है अथवा सर्व पूर्वस्पर्धकों के असंख्यातवें भाग मात्र है; क्योंकि पूर्वस्पर्धकों में पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र गुणहानि होती है और वहां एक गुणहानि में जो स्पर्धकों का प्रमाण होता है उसके असंख्यातवें भाग मात्र सर्व अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण है । इसतरह अंतर्मुहूर्त काल में अपूर्वस्पर्धक क्रिया होती है । यहां स्थिति, अनुभाग कांडक का घात और गुणश्रेणी निर्जरा

पूर्ववत् ही प्रवर्तते हैं ।

एत्तो करेदि किट्टिं मुहुत्तअंतो त्ति ते अपुव्वाणं ।
हेट्ठा दु फड्डयाणं सेढिस्स असंखभागमिदं ।।६३५।।

इतः करोति कृष्टिं मुहूर्तांतरिति ता अपूर्वेषाम् ।
अधस्तनात् स्पर्धकानां श्रेण्या असंख्यभागमितं ।।६३५।।

टीका – इसके अनंतर अंतर्मुहूर्त काल तक अपूर्वस्पर्धकों के नीचे सूक्ष्मकृष्टि करते हैं । जो पूर्व-अपूर्व स्पर्धकरूप योगशक्ति थी उसको घटाकर असंख्यातगुणा हीन करते हैं । उन सूक्ष्मकृष्टियों का प्रमाण जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र है – एक स्पर्धक में जो वर्गणाओं का प्रमाण, उसके असंख्यातवें भाग मात्र है ।

अपुव्वादिवग्गणाणं जीवपदेसाविभागपिंडादो ।
होंति असंखं भागं किट्टीपढमम्हि ताण दुगं ।।६३६।।

अपूर्वादिवर्गणानां जीवप्रदेशाविभागपिंडतः ।
भवंति असंख्यं भागं कृष्टिप्रथमे तयोर्द्विकम् ।।६३६।।

टीका – अपूर्वस्पर्धक संबंधी सर्व जीवप्रदेशों के और अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों के असंख्यातवें भाग मात्र इनके कृष्टिकरण के प्रथम समय में वे दोनों होते हैं ।

भावार्थ – सर्व पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों का जो प्रदेशसमूह, उसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र प्रदेश प्रथम समय में ग्रहण करके कृष्टि करते हैं । इनका प्रमाण सर्व अपूर्वस्पर्धकों के प्रदेशों के प्रमाण के असंख्यातवें भाग मात्र है । तथा अपूर्वस्पर्धक की जघन्य वर्गणा के वर्ग के जितने अविभागप्रतिच्छेद हैं, उनके असंख्यातवें भाग मात्र उत्कृष्ट अंत कृष्टि के एक प्रदेश संबंधी अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण होता है ।

यहां प्रथम समय में अपकर्षण किये प्रदेश देने का विधान कहते हैं – जघन्य कृष्टि में बहुत प्रदेश देते हैं । उसके ऊपर द्वितीयादि अंत तक की कृष्टियों में

विशेष घटते क्रम से प्रदेश देते हैं । यहां विशेष का प्रमाण प्रथम कृष्टि को जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर आता है । अंत कृष्टि से अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में असंख्यातगुणा हीन देते हैं और ऊपर विशेष घटते क्रम से प्रदेश देते हैं । यहां प्रथम समय में की हुयी कृष्टियों का प्रमाण एक स्पर्धक में जितना वर्गणाओं का प्रमाण है उसके असंख्यातवें भाग मात्र है ।

उक्कट्टदि पडिसमयं जीवपदेसे असंखगुणियकमे ।
तग्गुणहीणकमेण य करेदि किट्टिं तु पडिसमए ।।६३७।।

अपकर्षति प्रतिसमयं जीवप्रदेशान् असंख्यगुणितक्रमेण ।
तद्गुणहीनक्रमेण च करोति कृष्टिं तु प्रतिसमयं ।।६३७।।

टीका – द्वितीयादि समय में प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम से जीव के प्रदेशों को अपकर्षण करते हैं । प्रतिसमय पूर्व में की हुयी कृष्टियों के नीचे असंख्यातगुणा घटते क्रम से नवीन कृष्टि करते हैं ।

यहां अपकर्षण किये प्रदेश देने का विधान कहते हैं – नवीन कृष्टि की प्रथम कृष्टि में बहुत प्रदेश देते हैं, उसके ऊपर द्वितीयादि अंत तक की कृष्टियों में विशेष घटते क्रम से देते हैं । उसके ऊपर पूर्व समय में की हुयी कृष्टियों की प्रथम कृष्टि में असंख्यातगुणा हीन देते हैं । इस कृष्टि में पहले जितने प्रदेश थे उतने और एक विशेष इतने प्रदेश नवीन अंत कृष्टि से इसमें कम देते हैं । इसके ऊपर अंत कृष्टि तक विशेष घटते क्रम से देते हैं । यहां मध्यमखंडादि विधान पूर्वोक्त प्रकार जानना । अंत कृष्टि में दिये प्रदेशों से अपूर्वस्पर्धक की आदि वर्गणा में दिये प्रदेश संख्यातगुणा जानना । उसके ऊपर अंत पूर्वस्पर्धक वर्गणा तक विशेष घटते क्रम सहित प्रदेश देते हैं ।

सेढिपदस्स असंखं भागमपुव्वाण फड्डयाणं व ।
सव्वाओ किट्टीओ पल्लस्स असंखभागगुणिदकमा ।।६३८।।

श्रेणिपदस्य असंख्यं भागं अपूर्वेषां स्पर्धकानां वा ।
सर्वाः कृष्टयः पल्यस्य असंख्यभागगुणितक्रमाः ।।६३८।।

टीका – सर्व समयों में की हुयी कृष्टियों का प्रमाण जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र है अथवा अपूर्वस्पर्धकों के प्रमाण के असंख्यातवें भाग मात्र है ।

यहां कोई कहेगा – स्पर्धक और कृष्टि में विशेष *(अंतर)* क्या है ?

उसका समाधान – अविभागप्रतिच्छेद अपेक्षा स्पर्धक तो विशेष बढ़ते क्रम सहित हैं । अपूर्वस्पर्धकों में भी पूर्वस्पर्धकवत् ही अविभागप्रतिच्छेदों का क्रम होता है, परंतु कृष्टि गुणकार से बढ़ते हुये क्रम सहित है – ऐसा विशेष *(अंतर)* है । कृष्टियों में गुणकार पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र जानना । जघन्य कृष्टि में समान अविभागप्रतिच्छेद युक्त असंख्यात जगत्प्रतर प्रमाण जीवप्रदेश हैं । उनमें से एक प्रदेश में जितने अविभागप्रतिच्छेद हैं, उनसे द्वितीय कृष्टि के एक प्रदेश में पल्य के असंख्यातवें भाग गुणा हैं । उससे तृतीय कृष्टि के एक प्रदेश में उतने गुणा हैं, ऐसे अंत कृष्टि तक क्रम जानना ।

अंत कृष्टि से अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा के एक प्रदेश में अविभागप्रतिच्छेद पल्य के असंख्यातवें भाग गुणा हैं । इस गुणकार को कृष्टि स्पर्धक संबंधी *(गुणकार)* कहते हैं । उसके ऊपर द्वितीयादि वर्गणाओं के प्रदेशों में यथासंभव स्पर्धक विधानवत् विशेष बढ़ते अविभागप्रतिच्छेद होते हैं, इसतरह एक-एक प्रदेश अपेक्षा कथन किया ।

नाना प्रदेशों की अपेक्षा जघन्य कृष्टि के सर्व प्रदेशों संबंधी अविभागप्रतिच्छेदों को पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणा करनेपर द्वितीय कृष्टि के सर्व अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण होता है । इसतरह अंत कृष्टि तक गुणकार जानना । अंत कृष्टि से अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा के सर्व प्रदेशों संबंधी अविभागप्रतिच्छेद असंख्यातगुणा हीन हैं, क्योंकि अपूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा में अविभागप्रतिच्छेद अंत कृष्टि से जितने गुणा हैं, उस गुणकार से असंख्यातगुणा गुणकार से उस प्रथम वर्गणा के प्रदेशों को गुणित करनेपर अंत कृष्टि के प्रदेश पाये जाते हैं ।

एत्थापुव्वविहाणं अपुव्वफड्डयविहिं व संजलणे ।
बादरकिट्टिविहिं वा करणं सुहुमाण किट्टीणं ।।६३९।।

अत्रापूर्वविधानं अपूर्वस्पर्धकविधिरिव संज्वलने ।
बादरकृष्टिविधिरिव करणं सूक्ष्माणां कृष्टीनां ।।६३९।।

टीका – यहां योगों के अपूर्वस्पर्धक करने का विधान जैसे पहले संज्वलन कषाय के अपूर्वस्पर्धक करने का विधान कहा, वैसे जानना । पुनश्च यहां योगों की सूक्ष्मकृष्टि करने का विधान पहले जैसे संज्वलन कषाय की बादरकृष्टि करने का विधान कहा है, वैसे जानना । प्रमाणादि का विशेष है, वह विशेष जानना ।

किट्टीकरणे चरमे से काले उभयफड्डये सव्वे ।
णासेइ मुहुत्तं तु किट्टीगदवेदगो जोगी ।।६४०।।

कृष्टिकरणचरमे स्वे काले उभयस्पर्धकान् सर्वान् ।
नाशयति मुहूर्तं तु कृष्टिगतवेदको योगी ।।६४०।।

टीका – कृष्टिकरण काल का अंत समय होनेपर, उसके अनंतर अपने काल में सर्व पूर्व-अपूर्व स्पर्धकरूप प्रदेशों को नष्ट करते हैं । कृष्टिकरण काल के अंत समय तक पूर्व-अपूर्व स्पर्धक दृश्यमान थे, अब वे सर्व ही कृष्टिरूप परिणमित हुये । इस समय से लेकर सयोगी गुणस्थान के अंत तक के अंतर्मुहूर्त काल में कृष्टि को प्राप्त योग को वेदते हैं – अनुभवते हैं । प्रदेशों में जो कृष्टिरूप योगशक्ति हुयी, अब वह प्रकट परिणमति है ।

प्रथमे असंखभागं हेट्ठुवरिं णासिदूण बिदियादी ।
हेट्ठुवरिमसंखगुणं कमेण किट्टिं विणासेदि ।।६४१।।

प्रथमे असंख्यभागं अधस्तनोपरि नाशयित्वा द्वितीयादौ ।
अधस्तनोपर्यसंख्यगुणं क्रमेण कृष्टिं विनाशयति ।।६४१।।

टीका – कृष्टिवेदक काल के प्रथम समय में अल्प अविभागप्रतिच्छेद युक्त नीचे की और बहुत अविभागप्रतिच्छेद युक्त ऊपर की जो कृष्टि, उनको बीच की कृष्टिरूप परिणमाकर नष्ट करते हैं । उनका प्रमाण सर्व कृष्टियों के असंख्यातवें भाग मात्र है । द्वितीयादि समयों में उनसे असंख्यातगुणा क्रम सहित नीचे ऊपर की

कृष्टियों को वैसे ही नष्ट करते हैं । यहां ऐसा जानना –

नीचे, ऊपर की कृष्टियों को नहीं वेदते, बीच की कृष्टियों को वेदते हैं । वेदककाल में नीचे, ऊपर की कृष्टियों को बीच की कृष्टिरूप परिणमाकर वेदते हैं ।

मज्झिम बहुभागुदया किट्टिं पक्खिय विसेसहीणकमा ।
पडिसमयं सत्तीदो असंखगुणहीणया होंति ।।६४२।।

मध्या बहुभागोदया: कृष्टिमपेक्ष्य विशेषहीनक्रमा: ।
प्रतिसमयं शक्तित: असंख्यगुणहीनका भवंति ।।६४२।।

टीका – सर्व कृष्टियों को असंख्यात का भाग देकर वहां बहुभाग मात्र बीच की कृष्टि उदयरूप होती हैं । वे प्रथम समय से द्वितीयादि समयों में विशेष घटते क्रम सहित जानना । इसतरह कृष्टि का नाश करने से प्रथम समय से द्वितीयादि सयोगी के अंत समय तक अविभागप्रतिच्छेदरूप शक्ति की अपेक्षा असंख्यातगुणा घटते क्रम युक्त योग होता है ।

किट्टिगजोगी झाणं झायदि तदियं खु सुहुमकिरियं तु ।
चरिमे असंखभागे किट्टीणं णासदि सजोगी ।।६४३।।

कृष्टिगयोगी ध्यानं ध्यायति तृतीयं खलु सूक्ष्मक्रियं तु ।
चरमे असंख्यभागान् कृष्टिनां नाशयति सयोगी ।।६४३।।

टीका – इसतरह सूक्ष्मकृष्टि के वेदक सयोगिजिन तीसरे सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति नामक शुक्लध्यान को ध्याते हैं । सूक्ष्मकृष्टि को प्राप्त काययोग जनित यहां क्रिया अर्थात् परिस्पंद पाया जाता है और अप्रतिपाति अर्थात् गिरने से रहित है, इसलिए इस ध्यान का नाम सार्थ है । इसका फल योगनिरोध होना ही जानना ।

यद्यपि प्रत्यक्ष निरंतर ज्ञानी के चिंतानिरोध लक्षणरूप ध्यान संभव नहीं है तथापि योग का निरोध होने से आस्रव निरोधरूप ध्यान के फल को देखकर उपचार से केवली के ध्यान कहा है । अथवा छद्मस्थों के चिंता का कारण योग है, इसलिए कारण में कार्य का उपचार करके योग का भी नाम चिंता है, उसका यहां निरोध

होता है; इसलिए भी ध्यान कहना होता है । छद्मस्थों के चिंता के निरोध का नाम ध्यान है, केवली के योग निरोध का नाम ध्यान है, ऐसा जानना ।

इसतरह पूर्वोक्त प्रकार से प्रतिसमय असंख्यातगुणा कृष्टियों को नष्ट करते हुये सयोगी के अंत समय में जो कृष्टियों के संख्यात बहुभाग मात्र बीच की कृष्टि अवशेष रही, उनको नष्ट करते हैं, क्योंकि इसके अनंतर अयोगी होना है ।

जोगिस्स सेसकालं मोत्तूण अजोगिसव्वकालं च ।
चरिमं खंडं गेण्हदि सीसेण य उवरिमठिदीओ ।।६४४।।

योगिनः शेषकालं मुक्त्वा अयोगिसर्वकालं च ।
चरमं खंडं गृण्हाति शीर्षेण च उपरिमस्थितिः ।।६४४।।

टीका – सयोगी गुणस्थान का अंतर्मुहूर्त मात्र काल अवशेष रहनेपर वेदनीय, नाम, गोत्र के अंत स्थितिकांडक का ग्रहण करते हैं । उसके द्वारा सयोगी का अवशेष रहा काल और अयोगी का सर्व काल मिलानेपर जितना हो, उतने निषेकों को छोड़कर अवशेष सर्व स्थिति के गुणश्रेणीशीर्ष सहित जो उपरितन स्थिति के निषेक, उनको लांछित करते हैं, नष्ट करने का प्रारंभ करते हैं ।

तत्थ गुणसेढिकरणं दिज्जादिकमो य सम्मखवणं वा ।
अंतिमफालीपडणं सजोगगुणठाणचरिमम्हि ।।६४५।।

तत्र गुणश्रेणिकरणं देयादिक्रमश्च सम्यक्षपणमिव ।
अंतिमस्फालिपतनं सयोगगुणस्थानचरमे ।।६४५।।

टीका – वहां गुणश्रेणी का करना और वहां देयद्रव्यादि का अनुक्रम जैसे पहले क्षायिक सम्यक्त्व होते हुये सम्यक्त्वमोहनीय के क्षपणाविधान में कहा था, वैसे जानना । अंत कांडक के द्रव्य को अपकर्षण करके पूर्वोक्त क्रम से उदय निषेक में अल्प द्रव्य देना । उसके ऊपर कांडकघात होने के पश्चात् जो अवशेष स्थिति रहेगी उसके अंत समय तक असंख्यातगुणा क्रम सहित द्रव्य देते हैं । यहां जो गुणश्रेणी आयाम प्रारंभ हुआ है, वह गलितावशेष जानना । इसके अंत समय संबंधी निषेक

का ही नाम गुणश्रेणीशीर्ष है । इससे इसके ऊपर जो स्थितिकांडक का प्रथम निषेक है, उसमें असंख्यातगुणा द्रव्य देते हैं । उसके ऊपर पहले जो गुणश्रेणी आयाम था उसके अंत तक विशेष घटते क्रम से देते हैं । उसके ऊपर के अनंतरवर्ती निषेक में *(उससे)* असंख्यातगुणा हीन द्रव्य देते हैं । उसके ऊपर विशेष घटते क्रम से देते हैं । इसतरह अंत कांडकोत्करण के प्रथमादि समयों में द्रव्य देने का विधान है ।

इसतरह अंत कांडक की द्विचरम फालि के पतनरूप जो सयोगी का द्विचरम समय, वहां तक तो ऐसा ही विधान है । सयोगी के अंत समय में उसकी अंत फालि का पतन होता है । उस अंत फालि के द्रव्य को उदय निषेक में अल्प और द्वितीयादि अयोगी के अंत समय संबंधी निषेक तक के निषेकों में असंख्यातगुणा क्रम से द्रव्य देते हैं । वहां विशेष है, वह जान लेना ।

इसतरह सयोगी के अंत समय में अघातिकर्मों के अंत कांडक की अंत फालि का पतन, योग का निरोध और सयोग गुणस्थान की समाप्ति युगपत् होते हैं । इसके ऊपर *(पश्चात्)* गुणश्रेणी और स्थिति, अनुभाग का घात नहीं होता । अधःस्थितिगलन द्वारा एक-एक समय में एक-एक निषेक क्रम से उदयरूप होकर निर्जरित होता है । वहां प्रतिसमय असंख्यातगुणा द्रव्य की निर्जरा होती है । ऐसे सयोग गुणस्थान का प्ररूपण समाप्त हुआ ।

से काले जोगिजिणो ताहे आउगसमा हि कम्माणि ।
तुरियं तु समुच्छिण्णं किरियं झायदि अयोगिजिणो ।।६४६।।

स्वे काले योगिजिनः तत्र आयुष्कसमानि कर्माणि ।
तुरीयं तु समुच्छिन्नक्रियं ध्यायति अयोगिजिनः ।।६४६।।

टीका – उसके अनंतर अपने काल में अयोगीजिन होते हैं । वहां आयु समान तीन अघातिकर्मों की स्थिति होती है । वे अयोगीजिन चौथे समुच्छिन्नक्रिया निवृत्ति *(क्रिया अनिवृत्ति)* नामक शुक्लध्यान को ध्याते हैं । समुच्छिन्न अर्थात् उच्छेद हुयी मन, वचन, काय की क्रिया और निवृत्ति अर्थात् प्रतिपात से रहित यह ध्यान है, इसलिए इसका नाम सार्थ है । यहां भी ध्यान का उपचार पूर्वोक्त प्रकार

जानना, क्योंकि वस्तुवृत्ति से एकाग्र चिंतानिरोध ध्यान का लक्षण केवली में नहीं पाया जाता । समस्त आस्रव रहित केवली के अवशेष कर्मनिर्जरा को कारण जो स्वात्मा में प्रवृत्ति, उसीका नाम ध्यान है ।

सीलेसिं संपत्तो णिरुद्धणिस्सेसआसओ जीवो ।
बंधरयविप्पमुक्को गयजोगो केवली होइ ।।६४७।।

शीलेशत्वं संप्राप्तो निरुद्धनि:शेषास्रवो जीव: ।
बंधरजोविप्रमुक्त: गतयोग: केवली भवति ।।६४७।।

टीका – गया है योग जिनका, ऐसे अयोगकेवली जीव हैं, वे समस्त शील गुण का स्वामीपना होने से शैलेश्य अवस्था को प्राप्त हो गये हैं । यद्यपि सयोगकेवली के समस्त शीलगुण का स्वामीपना पाया जाता है, परंतु योगों का आस्रव होता है, इसकारण सकल संवर के न पाये जाने के कारण उनके शैलेश्य अवस्था नहीं पायी जाती । अयोगी के योगास्रव भी नहीं होता, इसलिए सकल संवर होने से उनके शैलेश्य अवस्था होती है । वे अयोगी जीव निरोधे हैं समस्त आस्रव जिनने ऐसे हैं । तथा कर्मबंधरूपी रज से विप्रमुक्त अर्थात् रहित हैं ।

भावार्थ – अयोगिजिन सर्वथा निरास्रव निर्बंध हुये हैं ।

बाहत्तरिपयडीओ दुचरिमगे तेरसं च चरिमम्हि ।
झाणजलणेण कवलिय सिद्धो सो होदि से काले ।।६४८।।

द्वासप्तति प्रकृतय: द्विचरमके त्रयोदश च चरमे ।
ध्यानज्वलनेन कवलित: सिद्ध: स भवति स्वे काले ।।६४८।।

टीका – अयोगी का काल पांच ह्रस्व अक्षर जितने काल में उच्चारण करते हैं, उतना है । एक-एक समय में एक-एक निषेक के गलनरूप जो अध:स्थितिगलन, उससे क्षीण हुयी उस काल के द्विचरम समय में बहत्तर प्रकृतियां और अंत समय में तेरह प्रकृतियां शुक्लध्यानरूपी ज्वलन अर्थात् अग्नि से कवलित अर्थात् ग्रासीभूत होती हैं ।

वहां अनुदयरूप वेदनीय, देवगति, शरीर पांच, बंधन पांच, संघात पांच, संस्थान छह, अंगोपांग तीन, संहनन छह, वर्णादि बीस, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्त-प्रशस्त विहायोगति, अपर्याप्त, प्रत्येक , स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र ये बहत्तर प्रकृतियां तो द्विचरम समय में क्षय हुयी ।

पुनश्च उदयरूप वेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, मनुष्यानुपूर्वी, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थंकर, उच्चगोत्र ये तेरह प्रकृतियां अंत समय में क्षय हुयी । *(मनुष्यानुपूर्वी का उदय नहीं है, उसके बिना शेष बारह का उदय है ।)*

इसतरह क्षय करके अनंतर समय में सिद्ध होते हैं । जैसे कालिमा रहित शुद्ध सोना निष्पन्न होता है, वैसे सर्व कर्ममल रहित कृतकृत्य दशारूप आत्मा निष्पन्न होता है ।

तिहुवणसिहरेण मही वित्थारे अट्ठजोयणुदयथिरे ।
धवलच्छत्तायारे मणोहरे ईसिपब्भारे ।।६४९।।

त्रिभुवनशिखरेण मही विस्तारे अष्ट योजनान्युदयस्थिरा ।
धवलछत्राकारा मनोहरा ईषत्प्रभारा ।।६४९।।

टीका – वह जीव ऊर्ध्वगमन स्वभाव से तीन लोक के शिखर में स्थित ईषत्प्राग्भार नामक आठवीं पृथ्वी के ऊपर एक समय मात्र काल में जाकर तनुवातवलय के अंत में विराजमान होता है । कैसी है वह पृथ्वी ? मनुष्य पृथ्वी के समान पैंतालीस लाख योजन चौड़ी गोल आकार है, आठ योजन ऊंची है, स्थिर है, श्वेत छत्र के आकार है, श्वेत वर्ण है, बीच में मोटी अंत में पतली है, मनोहर है । यद्यपि ईषत्प्राग्भार नामक पृथ्वी घनोदधिवातवलय तक है परंतु यहां उस पृथ्वी के बीच पायी जानेवाली सिद्धशिला की अपेक्षा ऐसा प्ररूपण किया है । धर्मास्तिकाय के अभाव से वहां से ऊपर गमन नहीं होता । वहां ही चरम शरीर से किंचित् न्यून आकाररूप जीवद्रव्य अनंत ज्ञानानंदमय विराजता है ।

पुव्वण्हस्स तिजोगो संतो खीणो य पढमसुक्कं तु ।
बिदियं सुक्कं खीणो इगिजोगो झायदे झाणी ।।६५०।।

पूर्वज्ञस्य त्रियोग: शांत: क्षीणश्च प्रथमशुक्लं तु ।
द्वितीयं शुक्लं क्षीण एकयोगो ध्यायति ध्यानी ।।६५०।।

टीका – शुक्लध्यान चार प्रकार का है । वहां सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति, व्युपरतक्रियानिवृत्ति ये दो तो सयोगकेवली, अयोगकेवली के होते हैं, वे पहले कहे हैं । अन्य दो शुक्लध्यान किसके होते हैं उसका गाथा में वर्णन नहीं किया था, सो अब यहां वर्णन करते हैं –

जो महामुनि पूर्वों का ज्ञाता, तीन योगों का धारक, उपशमश्रेणीवर्ती या क्षपकश्रेणीवर्ती, वह पृथक्त्ववितर्कवीचार नामक पहले शुक्लध्यान को ध्याता है । दूसरे शुक्लध्यान को क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती तीन योगों में से एक योग का धारक हो, वह ध्याता है ।

यहां पृथक्त्व अर्थात् जुदा-जुदा, वितर्क अर्थात् भावश्रुतज्ञान उससे वीचार अर्थात् अर्थ, व्यंजन, योगों का संक्रमण । वहां अर्थ यानि ध्याने योग्य द्रव्य, गुण या पर्याय का और व्यंजन जो श्रुत के शब्द का और मन, वचन, काय योगों का पलटना वह वीचार है । ऐसी जिस ध्यान में प्रवृत्ति होती है, वह पृथक्त्ववितर्कवीचार जानना ।

जहां एकत्व अर्थात् एकता सहित, वितर्क अर्थात् भावश्रुत, उससे अवीचार अर्थात् जिस अर्थ को, जिस श्रुत शब्दरूप, जिस योग की प्रवृत्ति सहित ध्याता है, उसको वैसे ही ध्याते रहे, पलटना न हो, ऐसे एकत्ववितर्कअवीचार ध्यान में प्रवृत्ति जानना ।

सो मे तिहुवणमहियो सिद्धो बुद्धो णिरंजणो णिच्चो ।
दिसदु वरणाणदंसणचरित्तसुद्धिं समाहिं च ।।६५१।।

स मे त्रिभुवनमहित: सिद्ध: बुद्धो निरंजनो नित्य: ।
दिशतु वरज्ञानदर्शनचारित्रशुद्धिं समाधिं च ।।६५१।।

टीका – सिद्ध भगवान त्रिभुवन द्वारा पूजित, बुद्ध अर्थात् सब के ज्ञाता,

निरंजन अर्थात् कर्म रहित और नित्य अर्थात् विनाश रहित हैं । वे मुझको उत्कृष्ट ज्ञान, दर्शन, चारित्र की शुद्धता और समाधि अर्थात् अनुभवदशा और संन्यासमरण, उसे दे-प्राप्त करावें । यहां सिद्धों की जो मोक्ष अवस्था हुयी उसका स्वरूप सर्व कर्मों के संपूर्ण नाश से संपूर्ण आत्मस्वरूप की प्राप्तिरूप जानना । अन्यमति अन्यथा कहते हैं, उसका श्रद्धान मत करना । वहां –

बौद्ध तो कहता है जैसे दीपक का निर्वाण अर्थात् बुझना, वैसे आत्मा का स्कंध संतान के नाश होने से जो अभाव होना वह निर्वाण है ।

उसको कहते हैं कि यदि मूल वस्तु का नाश होगा तो उसके लिये उपाय क्यों करते हो ? ज्ञानी तो अपूर्व लाभ के लिये उपाय करता है, इसलिए अभाव मात्र मोक्ष कहना युक्त नहीं है ।

योगमतवाला कहता है – बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार, ए नौ आत्मा के गुण हैं, उनका नाश वही मोक्ष है । उसका भी उस पूर्वोक्त वचन द्वारा ही निराकरण – समाधान किया । जहां विशेषरूप गुणों का अभाव हुआ, वहां आत्मवस्तु का अभाव आया, वह बनता नहीं ।

सांख्यमतवाला कहता है – दूर हुआ है कार्य-कारण संबंध जिसका ऐसा जो आत्मा, उसके बहुत सोनेवाले पुरुष के समान जो अव्यक्त चैतन्यतारूप होना, वह निर्वाण है । उसका भी पूर्वोक्त वचन द्वारा निराकरण हुआ । यहां भी अपना चैतन्य गुण था, वह उलटा अव्यक्त हुआ । इसतरह नाना प्रकार से अन्यथा प्ररूपण करते हैं । उनका निराकरण जैन के न्यायशास्त्रों में किया है, वह जानना ।

मोक्ष अवस्था को प्राप्त सिद्ध भगवान हैं, वे निरंतर अनंत अतीन्द्रिय आनंद को अनुभवते हैं । चूंकि इन्द्रिय, मन, द्वारा किंचित् जानना होता है और कुछ निराकुलता होती है, तब ही आत्मा अपने को सुखी मानता है, तो जहां सर्व का जानना हुआ और सर्वथा निराकुलपना हुआ तो वहां परम सुख कैसे नहीं होता है ? तीन लोक के तीन काल संबंधी पुण्यवंत जीवों के सुख से भी अनंतगुणा सुख सिद्धों के एक समय में होता है । क्योंकि संसार में सुख ऐसे हैं जैसे महारोगी रोग की किंचित् हीनता होनेपर अपने को सुखी मानता है और सिद्धों के सुख ऐसा है जैसे रोग रहित

निराकुल पुरुष सहज ही सुखी है । ऐसे अनंत सुख विराजमान सम्यक्त्वादि अष्ट गुण सहित लोकाग्र में विराजमान सिद्ध भगवान हैं, वे कल्याण करें ।

इसतरह बाहुबली नामक मंत्री द्वारा पूजित माधवचंद्र आचार्य ने यतिवृषभ आचार्य जिसके मूलकर्ता, वीरसेन आचार्य जिसके टीका कर्ता ऐसे धवल, जयधवल शास्त्र के अनुसार क्षपणासार ग्रंथ किया, उसके अनुसार यहां क्षपणा के वर्णनरूप जो लब्धिसार की गाथा, उनका व्याख्यान किया ।

अब आचार्य लब्धिसार ग्रंथ की समाप्ति करते हुये अपना नाम प्रकट करते हैं –

वीरिंदणंदिवच्छेणप्पसुदेणभयणंदिसिस्सेण ।
दंसणचरित्तलद्धी सुसूयिया णेमिचंदेण ।।६५२।।

वीरेंद्रनंदिवत्सेनाल्पश्रुतेनाभयनंदिशिष्येण ।
दर्शनचारित्रलब्धिः सुसूत्रिता नेमिचन्द्रेण ।।६५२।।

टीका – नेमिचन्द्र आचार्य द्वारा इस लब्धिसार नामक ग्रंथ में दर्शन, चारित्र की लब्धि सुसूत्रिता अर्थात् अच्छी तरह से कही है । कैसा है नेमिचन्द्र ? वीरनंदि और इन्द्रनंदि आचार्यों का वत्स है, ज्ञानदान से पोषित है तथा अभयनंदि नामक आचार्य का शिष्य है । अब आचार्य अपने गुरु को नमस्काररूप अंत मंगल करते हैं –

जस्स य पायपसाए णणंतसंसारजलहिमुत्तिण्णो ।
वीरिंदणंदिवच्छो णमामि तं अभयणंदिगुरुं ।।६५३।।

यस्य च पादप्रसादेनानंतसंसारजलधिमुत्तीर्णः ।
वीरेंद्रनंदिवत्सो नमामि तमभयनंदिगुरुम् ।।६५३।।

टीका – वीरनंदि और इन्द्रनंदि का वत्स जो मैं नेमिचन्द्र आचार्य, वह जिनके चरणों के प्रसाद से अनंत संसार समुद्र से पार हुआ, उन अभयनंदि नामक गुरु को नमस्कार करता हूँ ।

ऐसे लब्धिसार नामक शास्त्र के जो गाथासूत्र, उनका अर्थ उपशमश्रेणी के व्याख्यान तक संस्कृत टीका के अनुसार और क्षपणा का व्याख्यान क्षपणासार के अनुसार यहां अपनी बुद्धि के माफिक मैंने किया है । यहां जो भूल होगी उसको सम्यग्ज्ञानी जीव शुद्ध करें ।

पुनश्च इस शास्त्र के अभ्यास से दर्शन, चारित्र की लब्धि का स्वरूप जानकर आप स्वरूप श्रद्धान, आचरण से सम्यग्दर्शन, चारित्र का धारक होकर केवलज्ञान को प्राप्त कर सर्व कर्मों का नाश कर उत्कृष्ट ज्ञानानंदमय कृतकृत्य अवस्थारूप सिद्ध पद को प्राप्त हो ।

दोहा

सम्यग्दर्शन चरण के कारण कर्ता कर्म ।
फल भोक्ता मम देहु सब अपनौ अपनौ धर्म ।।१।।

चौपाई

मंगल तत्त्वनि कौ श्रद्धान मंगल है फुनि सम्यग्ज्ञान ।
मंगल शुद्ध चरित्र अनूप इनके धारक मंगलरूप ।।१।।

इति लब्धिसार क्षपणासार व्याख्यानं संपूर्ण ।

श्री क्षपणासारगर्भित लब्धिसार का अर्थसंदृष्टि अधिकार

संदृष्टेर्लब्धिसारस्य क्षपणासारामीयुषः ।
प्रकाशिनः पदं स्तौमि नेमीन्दोर्माधवप्रभोः ।।१।।

अथ लब्धिसार क्षपणासार शास्त्र में कहे हुये अर्थों में से कितने ही अर्थों की संदृष्टि अर्थात् पूर्वाचार्यों ने की हुयी संकेतरूप सहनानी *(चिन्ह)*, उनके स्वरूप का निरूपण करते हैं । यह संदृष्टि तो मूलग्रंथ में और टीका में जैसी लिखी है, वैसी यहां लिखते हैं । वहां परंपरा लेखक दोष से जो संदृष्टि अन्यथा लिखी है उनको बुद्धि अनुसार ठीक करके लिखूंगा । तथा बुद्धि भ्रम से अन्यथा लिखूं तो विशेषबुद्धि संवारी लेना *(ठीक करना)* । उनका स्वरूप गाथा में लिखा नहीं है, टीका में भी लिखा नहीं है । मैं मेरी बुद्धि अनुसार विधि मिला-मिलाकर उनके स्वरूप को लिखूंगा । वहां आकारादि संदृष्टि तो कठिन और मेरी बुद्धि अल्प, शास्त्र में लिखा नहीं और बतानेवाला मिला नहीं, इसलिए जानता हूँ कि उनके लिखने में भूल होगी; परंतु मार्ग तो जाना जायेगा इसलिए मैं लिख रहा हूँ । इसलिए जहां भूल होगी वहां विशेष बुद्धिमान संवार कर शुद्ध करें । मुझे बालक मान कर क्षमा करें ।

यहां संदृष्टि और उनके स्वरूप में से जिनका मुझे स्पष्ट ज्ञान नहीं हुआ, वे यहां नहीं लिखी है, मूलग्रंथ से जानना । तथा कितनी ही सुगम जानकर ग्रंथ विस्तार के भय से नहीं लिखी है, उनको विधि मिलाकर जानिये । कितनी ही गोम्मटसार टीका के संदृष्टि अधिकार *(जीवकाण्ड की अर्थसंदृष्टि एवं कर्मकाण्ड की अर्थसंदृष्टि अधिकार)* में लिखी हैं, वे इस शास्त्र में थी, उनको यहां नहीं लिखी है, वहां से जानिये । जो संदृष्टि और उनका स्वरूप यहां लिखा है, वे यहां से जानिये । वहां एक बार जिस अर्थ की जो संदृष्टि लिखी होगी, वही उस अर्थ की सब जगह संदृष्टि जान लेना । ग्रंथविस्तार के भय से बारम्बार लिखी नहीं है । यहां लिखी संदृष्टियों को और उनके स्वरूप को जानना चाहो तो पहले श्री गोम्मटसार की भाषा टीका में जो जुदा-जुदा संदृष्टि अधिकार किया है, उसका अभ्यास करना । *(जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड दोनों के हिन्दी अनुवाद संदृष्टि अधिकार सहित हैं – उन्हें पढ़ना)* वहां पहले

सामान्यस्वरूप निरूपण किया है, उसको जाननेपर संदृष्टि को पहिचाना जायेगा और विशेष का जानना होगा ।

वहां ऊर्ध्वरचना में घटते क्रम सहित निषेकादि की संदृष्टि ऐसी –

निषेकों का घटता क्रम – 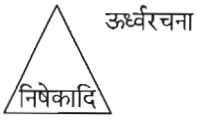

और गुणश्रेणी आयामादि में बढ़ते क्रम की ऐसी 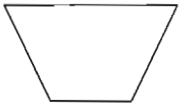 गुणश्रेणी आयाम निषेकों का बढ़ता हुआ क्रम ।

पहले द्रव्य था तथा नवीन द्रव्य और मिलाया – वहां दो बड़ी लकीर, वहां पहले घटता क्रम था और दीया द्रव्य का बढ़ता क्रम हो अथवा पहले बढ़ता क्रम था और दीया द्रव्य घटते क्रम से था उनकी ऐसी संदृष्टि

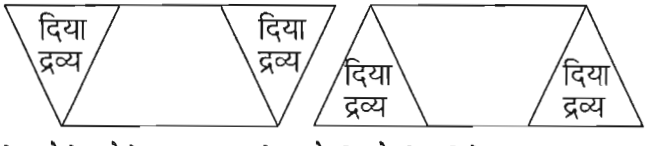

नीचे के और ऊपर के निषेकों में जैसे-जैसे विधान हो, वैसी-वैसी नीचे ऊपर रचना लिखनी ।

समपट्टिका में समरूप रचना ऐसी करना 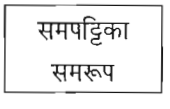

। अनुभाग आदि तिर्यक्रचना में आड़ी रचना करना । वहां समपट्टिका की सीधी ऐसी और घटते क्रम की ऐसी करना – इत्यादि अनेक प्रकार है । वह आगे जहां लिखेंगे, वहां उनका स्वरूप भी लिखेंगे वह जानना ।

वहां पहले प्रथमोपशम सम्यक्त्व के विधान की संदृष्टि कहते हैं –

वहां प्रकृतियों के बंध, उदय, सत्त्व में कूट रचना गोम्मटसार के स्थानसमुत्कीर्तन अधिकार में जैसे कही है वैसे यहां होती है । तीनों करणों की संदृष्टि गोम्मटसार *(सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड)* के संदृष्टि अधिकार के गुणस्थानाधिकार में जैसी कही है, वैसी जाननी । अपकर्षण, उत्कर्षण के कथन में परमाणुओं की अपेक्षा घटते क्रम सहित निषेकों की ऐसी संदृष्टि की ।

अपकर्षण में जघन्य अतिस्थापन, जघन्य निक्षेप की संदृष्टि में तो जघन्य अतिस्थापन, जघन्य निक्षेप, ग्रहण किया हुआ निषेक इनके विभाग के लिये ऐसी – 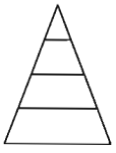 अपकर्षण विवरण में विविध विभाग रचना ।

बीच में लकीर की वहां आवली की सहनानी यहां सोलह, उसमें से एक घटानेपर पन्द्रह, उसका त्रिभाग एक अधिक (**१५ ÷ ३, + १ = ६**) जघन्य निक्षेप है और उसमें से पन्द्रह का दो त्रिभाग (**१०**) मात्र बीच के निषेक जघन्य अतिस्थापन है । उसके ऊपर ग्रहण किया हुआ निषेक एक लिखना और उसके ऊपर अपकर्षण के अन्य भेदों के लिये बिंदी लिखनी ।

उत्कृष्ट निक्षेप, उत्कृष्ट अतिस्थापन की संदृष्टि में नीचे तो आबाधावली और ऊपर उत्कृष्ट निक्षेप, उसके ऊपर अतिस्थापन, उसके ऊपर ग्रहण किया हुआ अंत निषेक स्थापना । यहां आबाधा में निषेक रचना नहीं है, इसलिए ऊभी (खड़ी-सीधी) लकीर ही करनी । अतिस्थापन और ग्रहण किये हुये निषेक के विभाग के लिये निषेकरचना के बीच में लकीर करनी । वहां आवली की सहनानी चार का अंक, उत्कृष्ट निक्षेप में कर्मस्थिति की सहनानी ऐसी (क) । उसके आगे घटाने की ऐसी – । उसके आगे हीन का प्रमाण एक समय अधिक दो आवली $\frac{\text{१}}{\text{४ | २}}$ लिखना । ग्रहण किया हुआ निषेक एक लिखना ।

पुनश्च व्याघात में अतिस्थापन और निक्षेप की रचना में वहां निक्षेप, अतिस्थापन और ग्रहण किये हुये निषेक के विभाग के लिये बीच में लकीर की । वहां निक्षेप का प्रमाण अंत:कोडाकोडी (अंको२); अतिस्थापना का प्रमाण कर्मस्थिति (क) में से घटाना (–) । एक समय अधिक अंत:कोडाकोडी $\frac{\text{१}}{\text{अंको २}}$ । ग्रहण किया हुआ अंत निषेक एक । ऐसे करनेपर अपकर्षण में ऐसी संदृष्टिरचना होती है – *(गाथा ५६ से ६०)*

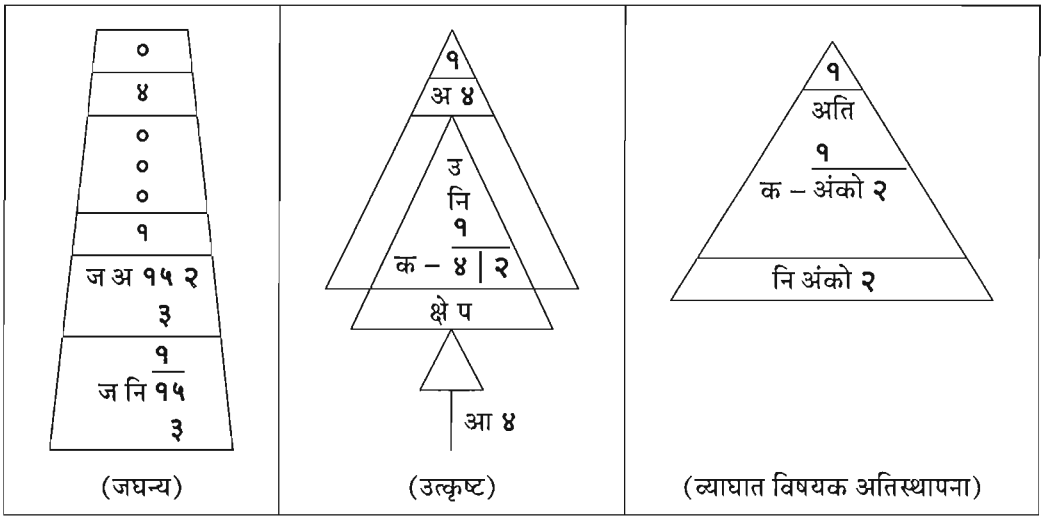

यहां ग्रहण किये हुये निषेक का द्रव्य ग्रहण कर निक्षेपरूप निषेकों में देते हैं, अतिस्थापनरूप निषेकों में नहीं देते, ऐसा जानना ।

उत्कर्षण के कथन में *(गाथा ६१ ते ६७)* पूर्व सत्तारूप निषेक का द्रव्य नवीन बंधे समयप्रबद्धों के निषेकों में देते हैं, इसलिए पूर्व सत्तारूप निषेकों की रचना करके उसके आगे नवीन बंधे हुये समयप्रबद्ध की नीचे तो आबाधा की और ऊपर निषेकों की संदृष्टि लिखनी । वहां जो पूर्व सत्ता का निषेक ग्रहण किया *(ग्राह्य निषेक)* उसके और नवीन बंधे समयप्रबद्ध के मिलाने के लिये दोनों को अंतराल में रेखा द्वारा मिला देना । नवीन समयप्रबद्ध में अतिस्थापन, निक्षेप का विभाग करने के लिये बीच में लकीर करनी । वहां पूर्व सत्ता के अंत निषेक का उत्कर्षण होनेपर जघन्य रचना होती है । उसके अतिस्थापन में आवली के असंख्यातवें भाग की सहनानी ऐसी ४ । निक्षेप में आवली के असंख्यातवें भाग की सहनानी ऐसी २ । *(यहां अतिस्थापन में आवली की संदृष्टि ४ है, निक्षेप में २ है ।)*

पूर्व सत्ता के उदयावली के ऊपर के निषेक का उत्कर्षण होनेपर उत्कृष्ट रचना होती है । उसके अतिस्थापन में एक समय अधिक आवली से हीन आबाधाकाल ऐसा आ – १/४ । उत्कृष्ट निक्षेप में एक समय अधिक आवली से युक्त जो आबाधाकाल,

$\frac{१}{४}$

उससे हीन कर्मस्थितिमात्र काल ऐसा **क – आ** उसके ऊपर एक समय अधिक आवली मात्र अंत निषेकों में नहीं देते वे ऐसा $\frac{१}{४}$ जानना ।

यहां ऐसा जानना कि जघन्य में तो पूर्वसत्ता का निषेक ग्रहण किया उसका जिसका समय उदय होगा, उस समय उदय आने योग्य जो नवीन समयप्रबद्ध उसके ऊपर अतिस्थापन के निषेक और उनके ऊपर निक्षेपरूप निषेक जानना । तथा उत्कृष्ट में पूर्व सत्ता का ग्राह्य निषेक वर्तमान समय से आवली काल पश्चात् उदय आने योग्य है और एक समय उस निषेक के उदय आने का है तथा नवीन समयप्रबद्ध का आबाधाकाल वर्तमान समय से लेकर है; इसलिए एक आवली एक समय घटानेपर अतिस्थापन होता है । और नवीन समयप्रबद्ध के प्रथमादि निषेक निक्षेपरूप होते हैं, अंत में नहीं देते । इसतरह उत्कर्षण में ऐसी संदृष्टि होती है –

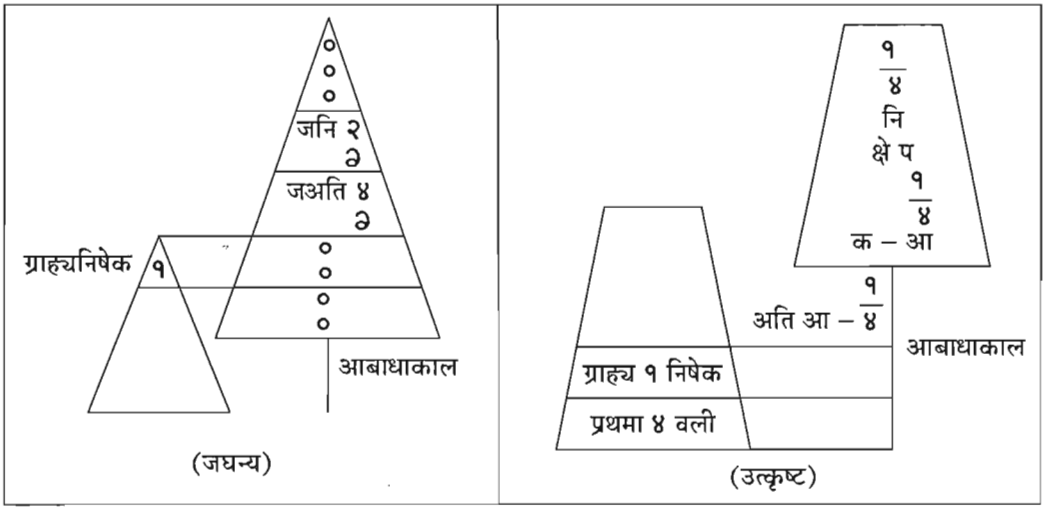

आचार्यों के मत की अपेक्षा विशेष कहे है, उनकी संदृष्टि ऐसे ही यथासंभव जान लेना । यहां पहले निषेकों की रचना नीचे लिखते हैं, पीछे के निषेकों की ऊपर लिखते हैं, ऐसे ही अन्यत्र जान लेना ।

गुणश्रेणी निर्जरा के कथन में ऐसी रचना करना – *(गाथा ६८ से ७४)*

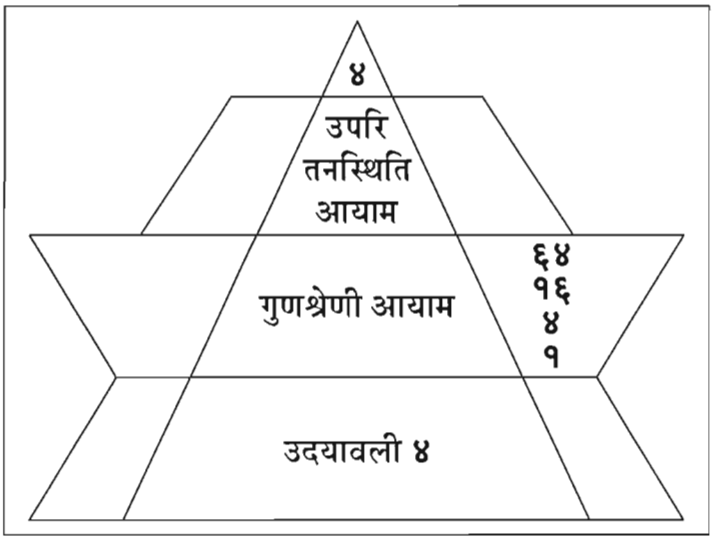

यहां अपकर्षण करने के पश्चात् जो हीन क्रम युक्त रचना रही उसकी ऐसी △ संदृष्टि करके निक्षेपण किये द्रव्य (दिये द्रव्य) की दूसरी लकीरों द्वारा रचना की है । वहां उदयावली तक निषेकों में हीन क्रम युक्त द्रव्य दिया, इसलिए हीन क्रमवाली दूसरी लकीर बनायी । उसके ऊपर गुणश्रेणी काल में असंख्यातगुणा अधिक क्रम युक्त द्रव्य दिया, इसलिए अधिक क्रम युक्त दूसरी लकीर बनायी । उसके ऊपर उपरितन स्थिति में हीन क्रम युक्त द्रव्य दिया इसलिए हीन क्रम युक्त दूसरी लकीर बनायी । ऊपर अतिस्थापनावली में द्रव्य दिया ही नहीं, इसलिए वहां दूसरी लकीर नहीं बनायी । यहां उदयावली के अंत निषेक में दिये द्रव्य से गुणश्रेणी के प्रथम निषेक में दिया द्रव्य बहुत है और गुणश्रेणी के अंत निषेक में दिये द्रव्य से उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक में दिया द्रव्य अल्प है । इसलिए दिये द्रव्य का हीनाधिक जानने के लिये संकोचविस्ताररूप रचना की है । इसीतरह आगे भी ऐसी रचना आयेगी वहां ऐसा अर्थ समझ लेना । बारम्बार लिखने में विस्तार होगा इसलिए नहीं लिखूंगा ।

पुनश्च इन उदयावली आदि में दिये द्रव्य के और उनके निषेकों में दिये द्रव्य के प्रमाण की संदृष्टि गोम्मटसार के संदृष्टि अधिकार में गुणस्थानाधिकार में लिखी है, वैसे जाननी । गुणश्रेणी में दिये द्रव्य को अंकसंदृष्टि की अपेक्षा पचासी का भाग

देकर क्रम से एक, चार, सोलह, चौंसठ से गुणा करनेपर प्रथमादि निषेक होते हैं, इसलिए गुणश्रेणी में एक आदि अंक लिखे हैं । आवली की सहनानी चार का अंक है, इसलिए उदयावली, अतिस्थापनावली में चार का अंक लिखा है । इसतरह गुणश्रेणी रचना जानना ।

स्थितिकांडक के व्याख्यान में *(गाथा ७७)* किसी जीव की जघन्य स्थिति संख्यात पल्य मात्र ऐसी **प॰**, किसी जीव के उससे संख्यातगुणी उत्कृष्ट स्थिति ऐसी **प॰॰** । उत्कृष्ट में से जघन्य घटाने के लिये आगे के *(दूसरे)* संख्यात में से एक घटाकर और सर्व में एक अधिक करनेपर नाना जीवों के सर्व स्थितिभेद ऐसे $\frac{१}{\text{प॰॰}^{\frac{१}{\text{प॰}}}}$ होते हैं । इसके संख्यातवें भाग मात्र नाना जीवों के स्थितिकांडकभेद ऐसे $\frac{१}{\text{प॰॰}^{\frac{१}{\text{प॰}}}_{\text{प॰}}}$ होते हैं ।

यहां प्रमाणराशि स्थितिकांडकभेद, फलराशि स्थितिभेद और इच्छाराशि एक करनेपर *(लब्धराशि संख्यात स्थितिभेद आते हैं)* संख्यात स्थितिभेदों में एक कांडकभेद आता है । उसकी रचना –

(अंकसंदृष्टि की अपेक्षा)

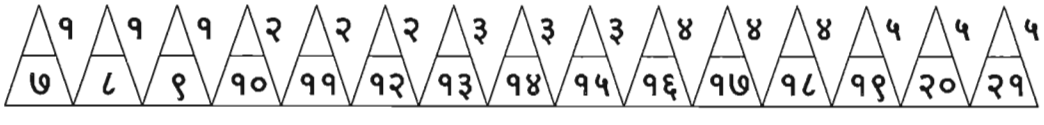

(अर्थसंदृष्टि की अपेक्षा)

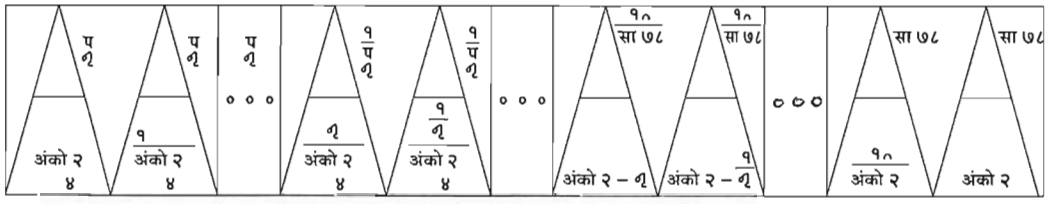

(मूल पुस्तक में दोनों संदृष्टि एक के नीचे दूसरी जोड़कर लिखी थी, मैंने अर्थ समझने के लिये उनकी अपेक्षा लिखकर जुदा-जुदा लिखा है)

यहां पहले सत्तारूप क्रमहीन प्रमाण युक्त निषेकों की ऐसी संदृष्टि की थी । स्थितिकांडक में ऊपर के निषेक नष्ट किये और अवशेष नीचे के निषेक रखे, उनके विभाग के लिये बीच में लकीर बनानेपर ऐसी संदृष्टि हुयी । पुनश्च कैसे *(कितने)* स्थितिसत्त्व में कैसा *(कितना)* स्थितिकांडकायाम पाया जाता है ? – उसको जानने के लिये ऊपर तो कांडक द्वारा घटाये हुये निषेकों का प्रमाण लिखा और नीचे जो स्थितिसत्त्व था उसका प्रमाण लिखा । वहां पहले अंकसंदृष्टि द्वारा सात, आठ और नौ समय स्थिति में कांडकायाम एक समयप्रमाण है । दस, ग्यारह और बारह समय स्थितिसत्त्व में स्थितिकांडकायाम दो समयप्रमाण है । ऐसे ही अंत तक जानना ।

पुनश्च अर्थसंदृष्टि द्वारा संख्यात पल्य मात्र जघन्य स्थिति अंत:कोडाकोडी सागर के संख्यातवें भाग मात्र, उसकी संदृष्टि ऐसी $\frac{\text{अंको २}}{४}$ उसमें और उससे एक समय अधिक स्थिति में स्थितिकांडकायाम पल्य के संख्यातवें भाग मात्र है, उसकी संदृष्टि ऐसी $\frac{\text{प}}{\text{नृ}}$ । बीच में एक एक समय अधिक स्थितिसत्त्व में उतना ही स्थितिकांडकायाम जानने के लिये बिंदी की संदृष्टि की । जघन्य से संख्यात समय अधिक की संदृष्टि ऐसी $\frac{\text{नृ}}{\text{अंको २}}$ और इसमें एक समय अधिक स्थिति ऐसी $\frac{\frac{१}{\text{नृ}}}{\text{अंको २}}$ उसमें स्थितिकांडकायाम जघन्य से एक समय अधिक ऐसा $\frac{१}{\text{प}}$ होता है । बीच में स्थितिसत्त्व के और स्थितिकांडकायाम के बहुत भेद जानने के लिये बिंदियों की संदृष्टि की है । संख्यात से हीन अंत:कोडाकोडी सागर मात्र स्थिति ऐसी $\text{अंको २} - \frac{१०}{\text{नृ}}$, उसमें एक समय अधिक ऐसी $\text{अंको २} - \text{नृ}$ उसमें एक समय कम पृथक्त्वसागर प्रमाण स्थितिकांडकायाम ऐसा $\overline{\text{सा ७} \mid ८}^{१\ \ ०}$ । यहां पृथक्त्व की सहनानी सात या आठ

जानना । बीच में एक-एक समय अधिक स्थितिसत्त्व और उतने ही स्थितिकांडकायाम जानने के लिये बिंदियों की सहनानी की है । एक कम अंत:कोडाकोडी सागर ऐसा $\frac{१ \ ०}{\text{अंको २}}$ और संपूर्ण अंत:कोडाकोडी सागर ऐसा **अंको २**; उसमें स्थितिकांडकायाम पृथक्त्वसागर प्रमाण ऐसा **सा ७ | ८** ।

अपूर्वकरण की आदि में स्थितिसत्त्व अंत:कोडाकोडी सागर और स्थितिबंध उसके संख्यातवें भाग मात्र है । उसकी संदृष्टि ऐसी –

अंको २	अंको २ ४	अंको २ ४	अंको २ ४ | ४

यहां संख्यात की संदृष्टि चार का अंक है । इसतरह स्थितिकांडक विधान में संदृष्टि जानना ।

पुनश्च अनुभागकांडक व्याख्यान में *(गाथा ७९ से)* जघन्य वर्गणा को स्पर्धक शलाका ऐसी **९** और नानागुणहानि ऐसी **ना**, इनसे गुणा करनेपर अंत गुणहानि की प्रथम वर्गणा होती है । उसमें अंकसंदृष्टि की अपेक्षा तीन अधिक करनेपर अंत गुणहानि की अंत वर्गणा संबंधी उत्कृष्ट अनुभाग ऐसा $\overset{३}{\text{व} \mid ९ \mid \text{ना}}$ उसका अनंत बहुभाग मात्र प्रथम कांडक ऐसा $\overset{३}{\text{व} \mid ९ \mid \text{ना}} \mid \overset{१ \ ०}{\text{ख}}$ । पुनश्च अवशेष एकभाग का अनंत बहुभाग मात्र द्वितीय कांडक ऐसा $\overset{३}{\text{व} \mid ९ \mid \text{ना}} \mid \overset{१ \ ०}{\underset{\text{ख}}{\text{ख}}}$ । ऐसे अंत कांडक तक क्रम जानना । एक गुणहानि के स्पर्धक संख्या की संदृष्टि ऐसी **९**, उससे क्रम से अनंतगुणे बीच के अतिस्थापनरूप स्पर्धक, नीचे के निक्षेकरूप स्पर्धक और ऊपर के अनुभाग कांडकायामरूप स्पर्धक उनकी संदृष्टि ऐसी जानना –

स्पर्धक	अतिस्थापन	निक्षेप	अनुभागकांडक
९	९ ख	९ खख	९ खखख

यहां अनुभागकांडक है इसलिए आड़ी लकीर की है । इसतरह अपूर्वकरण में हुये कार्यों की संदृष्टि कही ।

अनिवृत्तिकरण में अंतरकरण होता है, वहां रचना ऐसी – *(गाथा ८६)*

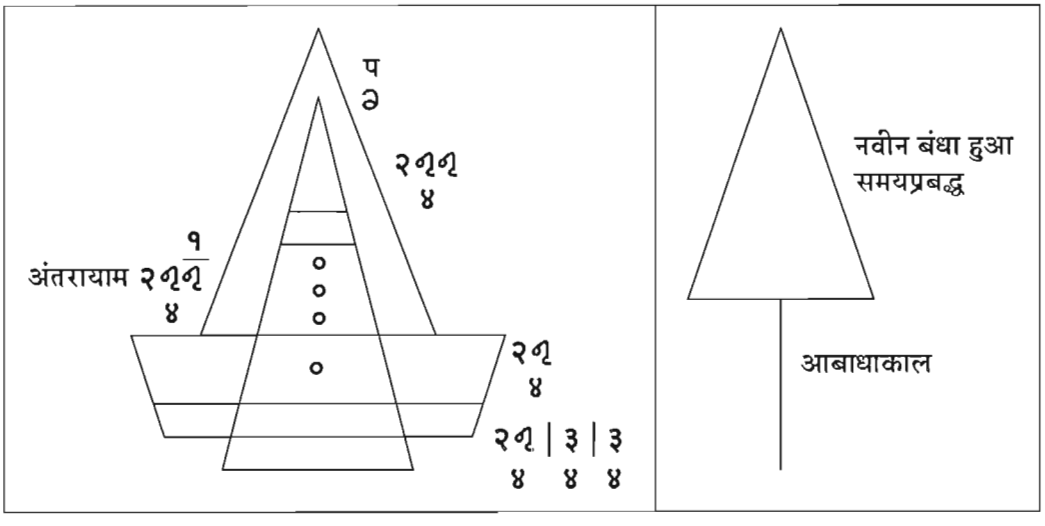

यहां क्रमहीनरूप सत्त्व निषेकों की संदृष्टि द्वारा नीचे उदयावली की, ऊपर गुणश्रेणी आयाम की, ऊपर उपरितन स्थिति की संदृष्टि पूर्ववत् करके गुणश्रेणी आयाम में से गुणश्रेणीशीर्ष को जुदा दिखाने के लिये बीच में लकीर बनायी है । तथा उपरितन स्थिति में अंतरायाम और उसके ऊपर द्वितीय स्थिति के भाग के लिये बीच में लकीर बनायी है ।

वहां गुणश्रेणीशीर्षरूप निषेक तो अंतर्मुहूर्त के संख्यातवें भाग मात्र उसकी संदृष्टि ऐसी $\frac{२नृ}{४}$, यहां संख्यात की सहनानी चार का अंक है । उसके ऊपर उससे संख्यातगुणा उपरितन स्थिति के निषेक ऐसे $\frac{२नृ}{४}$ इनको मिलानेपर अंतरकरण द्वारा शून्य हुये निषेक ऐसे $\frac{१}{\frac{२नृ}{४}}$ ।

वहां *(अंतरायाम में)* बिंदियों की संदृष्टि की है । अंतरायाम के नीचे प्रथम स्थिति है, वह अवशेष अनिवृत्तिकरण काल के संख्यातवें भाग मात्र गुणश्रेणीशीर्ष ऐसा

$\frac{२१}{४}$, उसका संख्यात बहुभाग मात्र अंतर करने का काल ऐसा $\frac{२१}{४} \mid \frac{३}{४}$, उसका संख्यात बहुभाग मात्र है, वह *(प्रथम स्थिति)* ऐसी $\frac{२१}{४} \mid \frac{३}{४} \mid \frac{३}{४}$ । ऐसी रचना करके उसके आगे जिसमें अंतर द्रव्य दिया उस नवीन बंधे हुये समयप्रबद्ध की आबाधा सहित रचना की है ।

पुनश्च उपशम *(करने के)* काल में *(गाथा ८७ से)* प्रथम उपशमफालि ऐसी $\frac{स ə १२ -}{७ ख १७ गु}$ । यहां दर्शनमोह के द्रव्य को गुणसंक्रम का भागहार जानना ।

(इसके लिये देखिये सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड अर्थसंदृष्टि) । द्वितीयादि फालि असंख्यातगुणा क्रम से जानना । वहां अंत फालि ऐसी $\frac{स ə १२ -}{७ ख १७ गु} \mid \frac{ə}{१} \mid \frac{२१}{४} \mid \frac{३}{४} \mid \frac{३}{४}$

यहां प्रथम फालि को एक कम प्रथम स्थिति मात्र असंख्यात का गुणकार जानना ।

[***विशेषार्थ*** *: दर्शनमोह का द्रव्य* $\frac{स ə १२ -}{७ ख १७}$ *है, उसको गुणसंक्रमण भागहार* **गु** *से भाग देनेपर प्रथम उपशमफालि ऐसी –* $\frac{स ə १२ -}{७ ख १७ गु}$ *।*

द्वितीय फालि उससे असंख्यातगुणा $\frac{स ə १२ -}{७ ख १७ गु} \mid ə$ *है ।*

तृतीय फालि उससे असंख्यातगुणा $\frac{स ə १२ -}{७ ख १७ गु} \mid ə \mid ə$ *यहां असंख्यात दो बार लिया ।*

चतुर्थ फालि में असंख्यात का गुणकार तीन बार होगा $ə^३$ *।*

पंचम फालि में $ə^४$ *अर्थात् चार बार असंख्यात का गुणकार होगा ।*

अंतिम पद में एक कम प्रथम स्थिति बार असंख्यात का गुणकार होगा ।

वह ऐसा स ७ १२ / ७ ख १७ गु − × [७] २१ / ४ | ३ / ४ | ३ − १ / ४

संदृष्टि में ऐसा स ७ १२ / ७ ख १७ गु − | ७ | २१ / ४ | ३ / ४ | ३ − ० / ४]

सम्यक्त्व की प्राप्ति होनेपर मिथ्यात्व को तीन प्रकार का करते हैं । उसकी रचना ऐसी – *(गाथा ९०, ९१)*

	मिथ्यात्व	मिश्र	सम्यक्त्वमोहनीय
निषेक	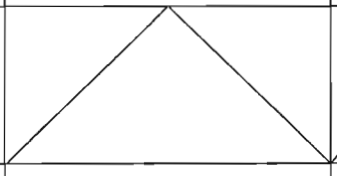	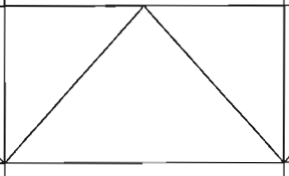	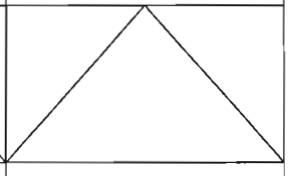
द्रव्य	स ७ १२ / ७ ख १७ गु − | १ / ७ ८ / गु	स ७ १२ / ७ ख १७ गु − ७	स ७ १२ / ७ ख १७ गु − १
अनुभाग	३ / व | ९ | ना	३ / व | ९ | ना / ख	३ / व | ९ | ना / ख | ख

यहां ऊपर मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यक्त्वप्रकृति के निषेक क्रमहीनरूप हैं उनकी संदृष्टि करके नीचे उनके द्रव्य का प्रमाण लिखा है । वहां किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र सर्व कर्मपरमाणुओं का प्रमाण ऐसा **स ७ १२ −**, उसको सात का भाग देनेपर मोह का द्रव्य होता है, उसको अनंत का भाग देनेपर सर्वघाति द्रव्य होता है, उसको सत्रह का भाग देनेपर दर्शनमोह का द्रव्य ऐसा **स ७ १२ −** होता है । इसको गुणसंक्रमण भागहार का भाग देनेपर वहां बहुभाग मात्र मिथ्यात्व का द्रव्य होता है । उस एकभाग में एक अधिक असंख्यात था उसमें से एकरूप को जुदा रखकर अवशेष मिश्रमोहनीय का द्रव्य होता है और जुदा रखा एक रूप मात्र सम्यक्त्वमोहनीय का द्रव्य होता है । यहां संदृष्टि में गुणकार भागहार कैसे हुये इसका मुझे ठीक से ज्ञान नहीं हुआ, विशेष ज्ञानी जान ले ।

७ ख १७

[*विशेषार्थ : पहले जो मिथ्यात्व का द्रव्य था* $\frac{\text{स}\partial\,१२-}{७\,\text{ख}\,१७}$ *उसको गुणसंक्रमण भागहार* **गु** *से भाग देकर एकभाग प्रमाण तो सम्यक्त्वमोहनीय का द्रव्य होता है* $\frac{\text{स}\partial\,१२-१}{७\,\text{ख}\,१७\,\text{गु}}$ *और उससे असंख्यातगुणा मिश्रमोहनीय का द्रव्य होता है* $\frac{\text{स}\partial\,१२-\partial}{७\,\text{ख}\,१७\,\text{गु}}$ *अब इन दोनों राशियों को मिलाकर मिथ्यात्व के द्रव्य में से घटा देंगे तो मिथ्यात्व का शेष द्रव्य मिलेगा । यहां मूल मिथ्यात्व के द्रव्य* $\frac{\text{स}\partial\,१२-}{७\,\text{ख}\,१७}$ *को* **म** *मान लेते हैं । सम्यक्त्वमोहनीय का द्रव्य* $\frac{\text{म}\,१}{\text{गु}}$ *और मिश्रमोहनीय का द्रव्य* $\frac{\text{म}\,\partial}{\text{गु}}$ *है । दोनों को मिलानेपर* $\frac{\text{म}}{\text{गु}} + \frac{\text{म}\,\partial}{\text{गु}} = \frac{\text{म}\,\frac{१}{\partial}}{\text{गु}}$ *होते हैं । इसको* **म** *में से घटानेपर* $\text{म} - \frac{\text{म}\,\frac{१}{\partial}}{\text{गु}}$ *समच्छेद करके* $\frac{\text{म}\,\text{गु}}{\text{गु}} - \frac{\text{म}\,\frac{१}{\partial}}{\text{गु}} = \frac{\text{म}\,\frac{१}{\partial_{०}}}{\text{गु}}$ *होते हैं । अब* **म** *की जगह* $\frac{\text{स}\partial\,१२-}{७\,\text{ख}\,१७}$ *लिखकर मिथ्यात्व का द्रव्य* $\frac{\text{स}\partial\,१२-\left|\frac{१}{\partial_{०}}\right.}{७\,\text{ख}\,१७\,\text{गु}}$ *होता है ।*

मूल पुस्तक में लिखने में कुछ अशुद्धि थी, शुद्ध करके लिखा है]

उसके नीचे अनुभाग का प्रमाण लिखा है । वहां जघन्य वर्गणा **व** को एक गुणहानि में स्पर्धकों की संख्या की संदृष्टि नौ का अंक ९, उससे तथा नानागुणहानि **ना** से गुणा करके उसमें तीन अधिक करनेपर उत्कृष्टरूप मिथ्यात्व का अनुभाग ऐसा $\frac{३}{\text{व}\,|\,९\,|\,\text{ना}}$; उसको अनंत का भाग देनेपर मिश्र का, उसको अनंत का भाग देनेपर सम्यक्त्वमोहनीय का अनुभाग होता है ।

गुणसंक्रमण काल में मिथ्यात्व का द्रव्य मिश्रमोह, सम्यक्त्वमोहरूप परिणमित होता है, उसकी संदृष्टि ऐसी – *(गाथा ९१)*

नाम	मिश्ररूप परिणमित द्रव्य	सम्यक्प्रकृतिरूप प. द्रव्य
अंत समय	$\frac{१,१}{१०}$ स ə १२ – ə २१ २ ७ ख १७ गु	$\frac{२,२}{२०}$ स ə १२ – ə २१ २
मध्य समय	० ०	० ०
चतुर्थ समय	ə७	ə६
तृतीय समय	ə ə ə ə ə	ə ə ə ə
द्वितीय समय	ə ə ə	ə ə
प्रथम समय	स ə १२ – ə ७ ख १७ गु	स ə १२ – १ ७ ख १७ गु

यहां गुणसंक्रमण के प्रथम समय में पूर्वोक्त प्रकार से मिथ्यात्व का द्रव्य ऐसा **स ə १२ –** इसको गुणसंक्रमण भागहार का भाग देनेपर सम्यक्त्वमोहरूप परिणमित **७ ख १७** द्रव्य आता है । उससे असंख्यातगुणा मिश्ररूप परिणमित द्रव्य है । उससे द्वितीय समय में सम्यक्त्वमोहरूप परिणमित द्रव्य असंख्यातगुणा है, इसलिए यहां गुणकाररूप दो बार असंख्यात की सहनानी की । ऐसे ही चतुर्थ समय तक रचना जानना । चौथे समय में असंख्यात के आगे छह का और सात का अंक है वहां छह बार और सात बार असंख्यात जानना । बीच में मध्य समयों की रचना की सहनानी बिंदी जानना । प्रथम समय में सम्यक्त्वरूप परिणमित द्रव्य को दो कम अंतर्मुहूर्त को दोगुणा करके उसमें दो अधिक करके उससे गुणित जो असंख्यात, उससे गुणा करनेपर अंत समय में सम्यक्त्वप्रकृतिरूप परिणमित द्रव्य की संदृष्टि होती है । और उसीको एक कम अंतर्मुहूर्त को दोगुणा करके उसमें एक अधिक करके उससे गुणित जो असंख्यात, उससे गुणा करनेपर *(अंत समय में)* मिश्रमोहरूप परिणमित द्रव्य की संदृष्टि होती है ।

[*विशेषार्थ : यहां मिथ्यात्व के द्रव्य को म मानकर मिश्रमोह और सम्यक्त्वमोहरूप परिणमित द्रव्य निम्नप्रकार है –*

	मिश्र मोह	*सम्यक्त्वमोह*
छठवां समय	म ə | ११ बार गु	म ə | १० बार गु
पांचवां समय	म ə | ९ बार गु	म ə | ८ बार गु
चौथा समय	म ə | ७ बार गु	म ə | ६ बार गु
तीसरा समय	म ə | ५ बार गु	म ə ə ə ə गु
दूसरा समय	म ə ə ə गु	म ə ə गु
पहला समय	म ə गु	म गु

जिस समय के ə का प्रमाण निकालना हो वहां मिश्र के लिये समयों के प्रमाण में से एक कम करके दो गुणा करके एक अधिक करना और सम्यक्त्वप्रकृति के लिये दो कम करके दो गुणा करके दो अधिक करना ।

जैसे चौथे समय में मिश्र का द्रव्य म ə $\frac{१}{१०}$ ४ × २ = म ə ७ बार
गु गु

उसी चौथे समय में स. प्रकृति का द्रव्य म ə $\frac{२}{२०}$ ४ × २ = म ə ६ बार
गु गु

इसीलिये अंतर्मुहूर्त के अंत समय में इसी विधान से प्रमाण निकाला है]

वहां सम्यक्त्वमोहनीय से मिश्रमोहनीय में *(उसी समय)* और *(पूर्वसमय के)* मिश्रमोहनीय से *(उत्तर समय के)* सम्यक्त्वमोहनीय में गुणकार अपेक्षा गमन कल्पित सर्प की चालवत् रचना की है ।

पुनश्च काल के अल्पबहुत्व में संदृष्टि सुगम है । *(गाथा ९३ से ९८)*

वहां प्रथम पद अंतर्मुहूर्त मात्र ऐसा **२ गु** । उसके आगे संख्यात की संदृष्टि चार करके जहां संख्यातवां भाग मात्र अधिक हो वहां पूर्वराशि को चार का भाग, पांच का गुणकार जानना । जहां संख्यातगुणा हो वहां पूर्वराशि के आगे चार लिखना । पुनश्च ग्यारहवें से बारहवां पद एक समय कम दो आवली मात्र अधिक है इसलिए वहां ऊपर ऐसी $\overset{१}{\underset{४}{\overline{\underset{२}{\overline{}}}}}$ संदृष्टि जानना । यहां आवली की संदृष्टि चार का अंक है । पुनश्च तेरहवें पद में अपवर्तन करनेपर संदृष्टि ऐसी **२ गु**, उससे संख्यातगुणा चौदहवें पद में ऐसी **२ गु गु** इसमें **२ गु** और $\underset{४}{\mathbf{२\,गु}}$ मिलानेपर पन्द्रहवें पद में ऐसी

$$\underset{४}{\overset{१}{\overline{\overset{१}{\overline{\mathbf{२\,गु\,गु}}}}}}\mid ४ \;\;\text{।}\;\; \mathbf{२\,गु\,गु} + \mathbf{२\,गु} + \underset{४}{\mathbf{२\,गु}} \;\rightarrow\; \underset{४}{\mathbf{२\,गु\,गु}}\,४ + \underset{४}{\mathbf{२\,गु}}\,४ + \underset{४}{\mathbf{२\,गु}} \;\rightarrow$$

$$\underset{४}{\mathbf{२\,गु}}\,४\overset{१}{\overline{\mathbf{गु}}} + \underset{४}{\mathbf{२\,गु}} \;\rightarrow\; \underset{४}{\overset{१}{\overline{\overset{१}{\overline{\mathbf{२\,गु\,गु}}}}}}\mid ४$$

। इससे आगे पूर्वोक्त प्रकार । बीसवें पद में पल्य के संख्यातवें भाग की ऐसी $\underset{\text{गु}}{\text{प}}$, इक्कीसवें पद में पृथक्त्वसागर की ऐसी **सा ७ | ८**, बाईसवें आदि पदों में अंत:कोडाकोडी सागर को तीन, दो एक बार संख्यात का भाग देनेपर तथा पच्चीसवें पद में अंत:कोडाकोडी सागर की संदृष्टि जानना । इसतरह इनकी संदृष्टि ऐसी होती है –

२ गु	$\underset{४}{\mathbf{२\,गु}}\,५$	$\underset{४}{\mathbf{२\,गु}}\,५\mid ४$	$\underset{४}{\mathbf{२\,गु}}\,५\mid ४$	$\underset{४\mid ४}{\mathbf{२\,गु}}\,५\mid ४\mid ५$	$\underset{४\mid ४}{\mathbf{२\,गु}}\,५\mid ४\mid ५$
$\underset{४\mid ४\mid ४}{\mathbf{२\,गु}}\,५\mid ४\mid ५\mid ५$		$\underset{४\mid ४\mid ४}{\mathbf{२\,गु}}\,५\mid ४\mid ५\mid ५$		$\underset{४\mid ४\mid ४}{\mathbf{२\,गु}}\,५\mid ४\mid ५\mid ५\mid ४$	

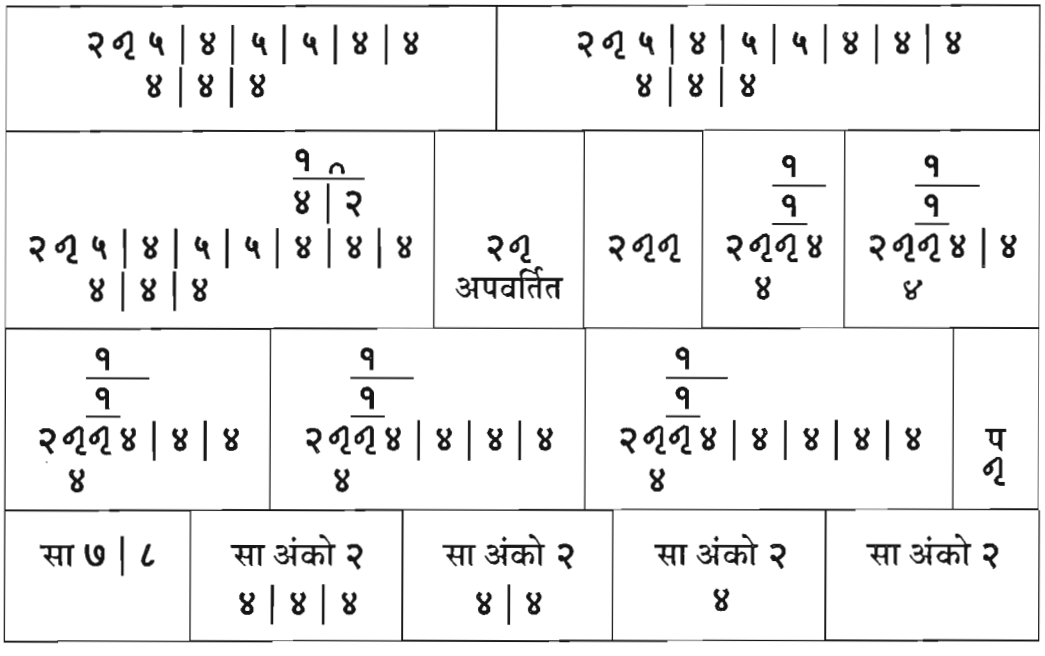

[*विशेषार्थ :*

(१) २नृ

(२) २नृ ५
४

(३) २नृ ५ | ४
४

(४) २नृ ५ | ४
४

(५) २नृ ५ | ४ | ५
४ | ४

(६) २नृ ५ | ४ | ५
४ | ४

(७) २नृ ५ | ४ | ५ | ५
४ | ४ | ४

(८) २नृ ५ | ४ | ५ | ५
४ | ४ | ४

(९) २नृ ५ | ४ | ५ | ५ | ४
४ | ४ | ४

(१०) २नृ ५ | ४ | ५ | ५ | ४ | ४
४ | ४ | ४

(११) २नृ ५ | ४ | ५ | ५ | ४ | ४ | ४
४ | ४ | ४

(१२) २नृ ५ | ४ | ५ | ५ | ४ | ४ | ४
४ | ४ | ४
१ ०
४ × २

(१३) २गु ५ | ४ | ५ | ५ | ४ | ४ | ४ | ४ (१४) २गुगु
४ | ४ | ४

(१५) २गुगु + २गु + २गु = २गुगु४ (१६) २गुगु४ | ४

(१७) २गुगु४ | ४ | ४

(१८) २गुगु४ | ४ | ४ | ४

(१९) २गुगु४ | ४ | ४ | ४ | ४

(२०) प
गु

(२१) सा ७ | ८

(२२) अंको २ सा
गुगुगु

(२३) अंको २ सा शु
गुगुशु

(२४) अंको २ सा शु
गुशु

(२५) अंको २ सा शु
शु

]

पुनश्च प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल समाप्त होनेपर *(गाथा १०४)* उदय योग्य प्रकृति का द्रव्य अपकर्षण करके उदयावली, अंतरायाम, द्वितीय स्थिति में निक्षेपण करता है । अनुदय प्रकृति का उदयावली बिना अन्यत्र निक्षेपण करता है । वहां दर्शनमोह के द्रव्य को गुणसंक्रमण भागहार का भाग देनेपर उदययोग्य सम्यक्त्व प्रकृति का द्रव्य ऐसा **स ə १२ –** इसको अपकर्षण भागहार की संदृष्टि
७ ख १७ गु
प्राकृत आदि अक्षर की अपेक्षा ऐसी **ओ**, उसका भाग देनेपर अपकृष्ट द्रव्य ऐसा **स ə १२ –** , इसको असंख्यात लोक ≡ **ə** का भाग देनेपर उदयावली में दिया
७ ख १७ गु ओ

द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स ə १२}}{\text{७ ख १७ गु ओ} \equiv \text{ə}}$ । इसका बहुभाग ऐसा $\frac{\text{स ə १२} - |}{\text{७ ख १७ गु ओ} \equiv \text{ə}} \equiv \frac{\text{१८}}{\text{ə}}$ । यहां गुणकार में एक कम को नहीं गिननेपर ऐसा $\frac{\text{स ə १२} -}{\text{७ ख १७ गु ओ}}$ इस अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग ग्रहण करके जो बहुभाग मात्र द्रव्य अवशेष रहा, वह ऐसा $\frac{\text{स ə १२} - \text{ओ}}{\text{७ ख १७ गु ओ}}$ । यहां गुणकार में एक कम को न गिननेपर ऐसा $\frac{\text{स ə १२} -}{\text{७ ख १७ गु}}$ । इसको डेढ़ गुणहानि की संदृष्टि ऐसी १२ उसका भाग देनेपर द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स ə १२} -}{\text{७ ख १७ गु १२}}$ हुआ । इसको अंतरायाम अंतर्मुहूर्त मात्र, उससे गुणा करनेपर अंतरायाम का समपट्टिका द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स ə १२} - | \text{२१}}{\text{७ ख १७ गु १२}}$ । इसमें चयधन मिलाने के लिये ऊपर साधिक की ऐसी ' संदृष्टि करनेपर इतना $\frac{\text{स ə'१२} - | \text{२१}}{\text{७ ख १७ गु १२}}$ द्रव्य हुआ । उसको उस अपकर्षण किये हुये द्रव्य में से ग्रहण कर अंतरायाम में देनेपर अंतरायाम के अभाव किये हुये निषेकों का सद्भाव हुआ । इसको घटानेपर जो अपकृष्ट द्रव्य किंचित् कम हुआ वह ऐसा $\frac{\text{स ə १२} =}{\text{७ ख १७ गु ओ}}$ इसको डेढ़ गुणहानि का भाग देनेपर प्रथम निषेक ऐसा $\frac{\text{स ə १२} =}{\text{७ ख १७ गु ओ १२}}$ उसको अंतरायाम से गुणा करनेपर प्राप्त समपट्टिका द्रव्य को साधिक करनेपर इतना द्रव्य $\frac{\text{स ə'१२} - | \text{२१}}{\text{७ ख १७ गु ओ १२}}$ अंतरायाम में और दिया । अवशेष अपकृष्ट द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स ə १२} -}{\text{७ ख १७ गु ओ}}$ उसको द्वितीय स्थिति में अतिस्थापनावली छोड़कर

क्रमहीनरूप से उदययोग्य प्रकृति में द्रव्य देने का विधान है । तथा उदय अयोग्य का द्रव्य उदयावली से बाह्य अंतरायाम और द्वितीय स्थिति में ही देते हैं ।

इति प्रथमोपशम सम्यक्त्वाधिकार संदृष्टि समाप्त ।

अब **क्षायिकसम्यक्त्वाधिकार** में संदृष्टि लिखते हैं – *(गाथा ११० से ११४)*

वहां प्रथम अनंतानुबंधी का विसंयोजन है । वहां गुणश्रेणी आदि की संदृष्टि पूर्ववत् जानना । वहां चार पर्वों की और वहां के स्थितिकांडकों के प्रमाण की संदृष्टि ऐसी –

पर्व की स्थिति – पृथक्त्व लक्ष सागर	प	दूरापकृष्टि	उच्छिष्टावली
१००० १०० ५० २५ १		प ५ | ५ | ५ | ५	
कांडकायाम	प गृ	प ४ ५	प $\frac{१०}{ə}$ ५ | ५ | ५ | ५ ə

यहां स्थिति में पृथक्त्व लक्ष सागर की *(७|८ लक्ष सागर)*, मध्य में सहस्र आदि सागर की, पल्य की, दूरापकृष्टि में चार बार संख्यात से भाजित *(पल्य)* की और उच्छिष्टावली की संदृष्टि प्रथमादि पर्वों में जानना । उनके बीच *(अंतराल में)* स्थितिकांडकायाम में पल्य के संख्यातवें भाग की, पल्य के संख्यात बहुभाग की और दूरापकृष्टि के असंख्यात बहुभाग की संदृष्टि जानना ।

पुनश्च सर्व कर्म के द्रव्य को सात, अनंत और सत्रह का भाग देनेपर अनंतानुबंधी क्रोध द्रव्य ऐसा **स ə १२** – उसको अपकर्षण भागहार का भाग देनेपर जो अपकृष्ट
७ ख १७
द्रव्य हुआ **स ə १२** – उसको उदयावली आदि में निक्षेपण करता है और उसीको
७ ख १७ ओ

संख्यात का भाग देकर कांडकद्रव्य ऐसा $\frac{\text{स ə १२}}{\text{७ ख १७ नृ}}$ उसको गुणसंक्रमण *(भागहार)* का भाग देनेपर प्रथम फालिद्रव्य ऐसा $\frac{\text{स ə १२}}{\text{७ ख १७ नृ गु}}$ । इससे असंख्यातगुणा द्वितीयादि फालि, उनको प्रतिसमय बारह कषाय और नौ नोकषायरूप परिणमाता है । उच्छिष्टावली मात्र द्रव्य रहनेपर उसको एक-एक निषेक करके उनरूप परिणमाता है ।

इसतरह अनंतानुबंधी का विसंयोजन करके दर्शनमोहनीय की क्षपणा प्रारंभ करता है । वहां अन्य क्रिया होती है । जहां असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होती है, वहां सम्यक्त्वमोहनीय का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स ə १२}}{\text{७ ख १७ गु}}$ उसको अपकर्षण भागहार का भाग देनेपर ऐसा $\frac{\text{स ə १२}}{\text{७ ख १७ गु ओ}}$ । इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग उपरितन स्थिति में दिया, शेष एकभाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग गुणश्रेणी में, एकभाग उदयावली में दिया, वहां संदृष्टि ऐसी –

उपरितन स्थिति	$\text{स ə १२} - \frac{\frac{\text{१८}}{\text{प}}}{\text{ə}}$ $\text{७ ख १७ गु ओ} \frac{\text{प}}{\text{ə}}$
गुणश्रेणी आयाम	$\text{स ə १२} - \frac{\frac{\text{१८}}{\text{प}}}{\text{ə}}$ $\text{७ ख १७ गु ओ} \frac{\text{प प}}{\text{ə ə}}$
उदयावली	$\frac{\text{स ə १२} - \text{१}}{\text{७ ख १७ गु ओ} \frac{\text{प प}}{\text{ə ə}}}$

यहां बहुभाग में एक कम भागहार का गुणकार और संपूर्ण भागहार का भाग जानना ।

सम्यक्त्वमोहनीय की अष्ट वर्ष मात्र स्थिति जिस समय होती है, उस समय में क्रिया करता है ।

मिश्र, सम्यक्त्वमोह के अंत फालि का द्रव्य किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र है । कैसे ?

मिथ्यात्व का द्रव्य ऐसा $\text{स}\frac{\text{१}}{\text{ə}_{\text{८}}} \text{ १२} - \frac{}{\text{गु}}$ उसमें से उच्छिष्टावली बिना अन्य द्रव्य

७ ख १७ गु

को मिश्रमोहनीय में निक्षेपण करनेपर मिश्रमोहनीय का द्रव्य ऐसा $\text{स ə १२} =$ । यहां

७ ख १७

दर्शनमोह के द्रव्य के आगे किंचित् कम की सहनानी ऐसी – जाननी । *(पहले १२ के आगे – था उसमें और कम करके १२ के आगे = हुआ)*

इसका असंख्यातवां भाग मात्र इतर कांडकद्रव्य सम्यक्त्वमोहनीय में संक्रमण होनेपर अवशेष बहुभाग मात्र मिश्रमोह के चरमकांडक की चरम फालि का द्रव्य ऐसा $\text{स ə १२} - \frac{\text{१}_{\text{८}}}{\text{ə}}$ तथा सम्यक्त्वमोह का द्रव्य ऐसा $\text{स ə १२} -$ । यहां भी इतर

७ ख १७ ə ७ ख १७ गु

कांडकद्रव्य इसके असंख्यातवें भाग मात्र नीचे के निषेकों में निक्षेपण करनेपर अवशेष बहुभाग सम्यक्त्व प्रकृति की चरम फालि का द्रव्य ऐसा $\text{स ə १२} - \frac{\text{१}_{\text{८}}}{\text{ə}}$ । इन दोनों

७ ख १७ गु ə

को मिलानेपर किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण मिश्रद्विक के चरम फालि का द्रव्य किंचित् कम दर्शनमोह के द्रव्य मात्र ऐसा $\text{स ə १२} -$ । इसको पल्य

७ ख १७

के असंख्यातवें भाग का भाग देकर, वहां एकभाग उदयादि गुणश्रेणी आयाम में असंख्यातगुणा क्रम सहित देना । वहां उस द्रव्य को अंकसंदृष्टि की अपेक्षा पचासी का भाग देकर पहले निषेक में एक का, मध्यनिषेकों में चार और सोलह का, अंत निषेक में चौंसठ का गुणकार करनेपर ऐसी संदृष्टि –

अंत निषेक	स ३ १२ – | ६४ ७ ख १७ प | ८५ ३
मध्य निषेक	० १६ ० ४
प्रथम निषेक	स ३ १२ – १ ७ ख १७ प | ८५ ३

अवशेष बहुभाग मात्र द्रव्य ऐसा $स ३ १२ - \frac{१ ०}{\underset{३}{प}}$ यहां गुणकार में एक कम को

$७ ख १७ \underset{३}{प}$

न गिननेपर ऐसा $स ३ १२ -$ इसको, गुणश्रेणी आयाम घटाने के लिये अष्ट वर्षों में

$७ ख १७$

से किंचित् कम करनेपर गच्छ ऐसा $व ८ -$ उसका भाग देनेपर मध्यधन ऐसा

$स ३ १२ -$ । इसको एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि ऐसा $१६ - \frac{१ ०}{२}व ८$

$७ ख १७ व ८ -$

उसका भाग देनेपर चय का प्रमाण ऐसा $स ३ १२ - \frac{१ ०}{७ ख १७ व ८ - \| १६ - २ व ८}$ इसको

दोगुणहानि ऐसा १६ उससे गुणा करनेपर प्रथम निषेक होता है, एक कम दोगुणहानि १६ – १ से गुणा करनेपर द्वितीय निषेक, इत्यादि क्रम से एक कम गच्छ से हीन

दोगुणहानि ऐसा $१६ - \frac{१ ०}{२}व ८ -$ उससे गुणा करनेपर अंत निषेक में दिया द्रव्य है । उनकी संदृष्टि ऐसी –

अंत निषेक	$\frac{\text{स}\partial\ १२ - \mid १६ - \frac{१\ \cap}{\text{व}\ \ell} -}{\text{७ ख १७ व}\ \ell - \mid १६ - \frac{१\cap}{\text{व}\ \ell} -}$ २
मध्य निषेक	० ०
चतुर्थ निषेक	$\frac{\text{स}\partial\ १२ - \mid १६ - ३}{\text{७ ख १७ व}\ \ell - \mid १६ - \frac{१\cap}{\text{व}\ \ell} -}$ २
तृतीय निषेक	$\frac{\text{स}\partial\ १२ - \mid १६ - २}{\text{७ ख १७ व}\ \ell - \mid १६ - \frac{१\cap}{\text{व}\ \ell} -}$ २
द्वितीय निषेक	$\frac{\text{स}\partial\ १२ - \mid १६ - १}{\text{७ ख १७ व}\ \ell - \mid १६ - \frac{१\cap}{\text{व}\ \ell} -}$ २
प्रथम निषेक	$\frac{\text{स}\partial\ १२ - \mid १६}{\text{७ ख १७ व}\ \ell - \mid १६ - \frac{१\cap}{\text{व}\ \ell} -}$ २

यहां गुणश्रेणी आयाम और उपरितन स्थिति की संदृष्टि ऐसी –

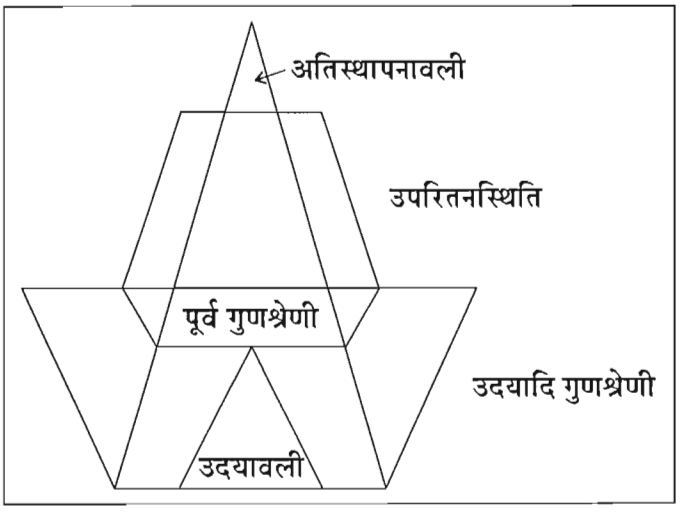

यहां क्रमहीन सत्तारूप निषेकों की रचना की है, वहां पहले अर्थात् नीचे उदयावली में क्रमहीनरूप, उसके ऊपर गुणश्रेणी आयाम में क्रमअधिकरूप निक्षेपण किये उनकी रचना की । पुनश्च वहां उदयरूप प्रथम समय से लेकर गुणश्रेणी आयाम में क्रमअधिकरूप और उसके उपरितन स्थिति में अतिस्थापनावली छोड़कर क्रमहीनरूप द्रव्य निक्षेपण किया, उसके अनुसार लकीरों की संदृष्टि क्रमहीनरूप और अधिकरूप की है । पुनश्च इसी समय में अनुभाग का अनुसमयापवर्तन होता है । वहां पहले अनुभाग एक गुणहानि में स्पर्धक शलाका को नानागुणहानि से गुणा करनेपर ऐसा **९ ना**, उसको अनंत का भाग देनेपर द्वितीयावली के प्रथम निषेक का अनुभाग ऐसा $\frac{\text{९ ना}}{\text{ख}}$ । यहां अवशेष बहुभाग नष्ट किये वे ऐसे $\text{९ ना}\frac{\text{१ ∩}}{\text{ख}}$ । पुनः उसको अनंत का भाग देकर उदयावली के अंत निषेक का अनुभाग ऐसा $\text{९ ना}\frac{\text{१ ∩}}{\text{ख ख}}$ । यहां नष्ट किया बहुभाग ऐसा $\text{९ ना}\frac{\text{१ ∩}}{\text{ख}}\frac{\text{१ ∩}}{\text{ख}}$ उसको अनंत का भाग देनेपर उदयावली के प्रथम निषेक का अनुभाग $\text{९ ना}\frac{\text{१ ∩}}{\text{ख ख}}\frac{\text{१ ∩}}{\text{ख}}$ । यहां अवशेष बहुभाग नष्ट किये वे ऐसे $\text{९ ना}\frac{\text{१ ∩}}{\text{ख ख ख}}\frac{\text{१ ∩}}{\text{ख}}\frac{\text{१ ∩}}{\text{ख}}$ । ऐसे ही अनंतगुणा हानि सहित प्रतिसमय अनुभागापवर्तन का विधान जानना ।

जिस समय में सम्यक्त्वमोहनीय की स्थिति आठ वर्ष प्रमाण होती है उस समय से पूर्व समय में *(गाथा १३३)* विधान होता है उसकी संदृष्टि कहते हैं । सम्यक्त्वप्रकृति का द्रव्य ऐसा $\text{स ə १२} - \frac{}{\text{७ ख १७ गु}}$ यहां गुणसंक्रमण विधान से असंख्यातगुणा द्रव्य हुआ है परंतु सामान्य से इतना लिखा, वह नानागुणहानियों में वर्तता है । वहां उस द्रव्य को डेढ़ गुणहानि (१२) का भाग देकर उसको दोगुणहानि का भाग देनेपर चय का

प्रमाण आता है । उसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर उदयावली का प्रथम निषेक होता है । दोगुणहानि मात्र गुणकार में से क्रम से एक-एक घटानेपर मध्य निषेक होते हैं और एक कम आवली ऐसी $१६ - \frac{१०}{४}$ घटानेपर *(उससे गुणा करने से)* अंत निषेक आता है । उसी में से आवली घटाने से गुणश्रेणी का आदि निषेक होता है । वैसे ही मध्य निषेक होते हैं । उसी में से एक कम अंतर्मुहूर्त ऐसा $१६ - \frac{१०}{२ृ}$ घटानेपर *(जो गुणकार आता है उससे चय को गुणा करनेपर)* उसका अंत निषेक आता है । उसमें से एक कम किंचित् हीन आठ वर्ष घटानेपर अंत निषेक आता है ।

[*विशेषार्थ :*

गुणश्रेणी का अंत निषेक = *चय* × *दोगुणहानि* $- \frac{१०}{२ृ}$

अर्थात् चय × $\left(१६ - \frac{१०}{२ृ}\right)$

उपरितनस्थिति का प्रथम निषेक = *चय* × $२ गु - २ृ$ = *चय* × $१६ - २ृ$

उपरितनस्थिति का अंत निषेक = *चय* × $२ गु - \frac{१ ०}{व ८ -}$

= *चय* × $१६ - \frac{१ ०}{व ८ -}$]

यहां अपकर्षण किया द्रव्य पूर्वोक्त सम्यक्त्व प्रकृति के द्रव्य को अपकर्षण भागहार के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर ऐसा $स ə १२ - \frac{}{७ ख १७ गु ओ ə}$ । इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग मात्र ऐसा $स ə १२ - \frac{१०}{प ə}$ $\frac{}{७ ख १७ गु ओ प ə ə}$ उपरितन

स्थिति में दिया द्रव्य है । वहां गुणकार में एक हीन को न गिननेपर अपवर्तन करके ऐसा $\frac{\text{स}\ 9\ 12 -}{7\ \text{ख}\ 17\ \text{गु}\ \text{ओ}\ 9}$ । इसको डेढ़ गुणहानि का और दोगुणहानि का भाग देनेपर चय ऐसा $\frac{\text{स}\ 9\ 12 -}{7\ \text{ख}\ 17\ \text{गु}\ \text{ओ}\ 9 \mid 12 \mid 16}$ इसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम निषेक होता है तथा दोगुणहानि गुणकार में से क्रम से एक-एक घटानेपर मध्य निषेक होते हैं और एक कम किंचित् हीन आठ वर्ष घटानेपर अंत निषेक होता है । पुनश्च एकभाग रहा वह ऐसा $\frac{\text{स}\ 9\ 12 - 1}{7\ \text{ख}\ 17\ \text{गु}\ \text{ओ}\ \text{प}\ 9\ 9}$ उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग ऐसा $\frac{\text{स}\ 9\ 12 - \frac{1}{\text{प}}}{7\ \text{ख}\ 17\ \text{गु}\ \text{ओ}\ \text{प}\ \text{प}\ 9\ 9\ 9}$ गुणश्रेणी में दिया द्रव्य है । यहां भी गुणकार में एक कम को न गिनकर अपवर्तन करनेपर ऐसा $\frac{\text{स}\ 9\ 12 -}{7\ \text{ख}\ 17\ \text{गु}\ \text{ओ}\ \text{प}\ 9\ 9}$ ।

इसको अंकसंदृष्टि की अपेक्षा पचासी का भाग देकर एक से गुणा करनेपर प्रथम निषेक, चार और सोलह से गुणा करनेपर मध्य निषेक, चौंसठ से गुणा करनेपर अंत निषेक होता है ।

अवशेष रहा हुआ एकभाग ऐसा $\frac{\text{स}\ 9\ 12 - 1}{7\ \text{ख}\ 17\ \text{गु}\ \text{ओ}\ \text{प}\ \text{प}\ 9\ 9\ 9}$ उदयावली में देना । इसको आवली तथा एक कम आवली के आधे से हीन दो गुणहानि $4 \mid 16 - \frac{1}{\frac{4}{2}}$ का भाग देनेपर चय होता है ।

[*विशेषार्थ :*

उदयावली का द्रव्य ÷ आवली = मध्यमधन

$$\text{मध्यमधन} \div \text{२ गु} - \frac{\text{१८}}{\text{गच्छ}} = \text{चय}$$
$$\text{२}$$

$$\text{इसलिए उदयावली का द्रव्य} \div (\text{आवली} \times \text{२ गु} - \frac{\text{१८}}{\text{आवली}}) = \text{चय}$$
$$\text{२}$$

$$\therefore \frac{\text{उदयावली का द्रव्य}}{\text{४ | १६} - \frac{\text{१८}}{\text{४}}} = \frac{\text{स ७ १२} - \frac{\text{१८}}{\text{४}}}{\text{७ ख १७ गु ओ प प ४ | १६}}$$
$$\text{७ ७ ७} \qquad \text{२}$$
$$\text{२}$$

]

इसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम निषेक, इस गुणकार में से एक-एक घटानेपर मध्य निषेक तथा एक कम आवली घटानेपर अंत निषेक होता है ।

[*विशेषार्थ :*

उदयावली का प्रथम निषेक = चय × दोगुणहानि

= चय × १६

$$\text{द्वितीय निषेक} = \text{चय} \times \text{१६} - \text{१}$$
$$\text{०}$$
$$\text{०}$$

$$\text{अंत निषेक} = \text{चय} \times \text{१६} - \frac{\text{१८}}{\text{४}}$$

]

इनकी संदृष्टि ऐसी –

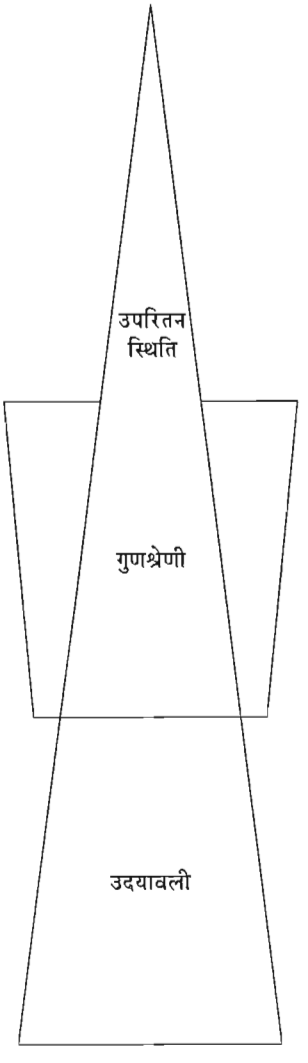

पूर्व सत्त्वद्रव्य	दिया द्रव्य	
स ३ १२ – | १६ – $\frac{१ \cap}{व ८}$ – ७ ख १७ गु १२ | १६	स ३ १२ – | १६ – $\frac{१ \cap}{व ८}$ – ७ ख १७ गु ओ १२ | १६ ३	अंत निषेक
० ० ०	० ० ०	मध्य निषेक
स ३ १२ – | १६ – २गु ७ ख १७ गु १२ | १६	स ३ १२ – | १६ ७ ख १७ गु ओ १२ | १६ ३	प्रथम निषेक
स ३ १२ – | १६ – $\frac{१ \cap}{२गु}$ ७ ख १७ गु १२ | १६	स ३ १२ – ६४ ७ ख १७ गु ओ प ८५ ३ ३	अंत निषेक
० ०	० ०	मध्य निषेक
स ३ १२ – | १६ – ४ ७ ख १७ गु १२ | १६	स ३ १२ – १ ७ ख १७ गु ओ प ८५ ३ ३	प्रथम निषेक
स ३ १२ – | १६ – $\frac{१ \cap}{४}$ ७ ख १७ गु १२ | १६	स ३ १२ – | १६ – $\frac{१ \cap}{४}$ ७ ख १७ गु ओ प प ४ | १६ – $\frac{१ \cap}{४}$ ३ ३ ३ २	अंत निषेक
० ०	० ०	मध्य निषेक
स ३ १२ – | १६ ७ ख १७ गु १२ | १६	स ३ १२ – | १६ ७ ख १७ गु ओ प प ४ | १६ – $\frac{१ \cap}{४}$ ३ ३ ३ २	प्रथम निषेक

इन दोनों को *(पूर्व सत्त्वद्रव्य + दिया हुआ द्रव्य)* मिलानेपर दृश्यमान द्रव्य होता है । वहां उदयावली का तो सत्त्वद्रव्य बहुत है, दिया द्रव्य अल्प है । वहां सत्त्वद्रव्य के ऊपर ऐसी ' संदृष्टि करनेपर दृश्यमान द्रव्य की संदृष्टि होती है । गुणश्रेणी में दिया द्रव्य बहुत है, सत्त्वद्रव्य अल्प है; इसलिए दिया द्रव्य की संदृष्टि के ऊपर अधिक की ऐसी ' संदृष्टि करनेपर दृश्यमान द्रव्य की संदृष्टि होती है । पुनश्च उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक में दोगुणहानि मात्र गुणकार में से अंतर्मुहूर्त घटाया था, सो अंतर्मुहूर्त मात्र चयरूप घटाया हुआ ऋण ऐसा –

$\frac{\text{स ड १२} - |\ \text{२ नृ}}{\text{७ ख १७ गु १२}\ |\ \text{१६}}$ और इस प्रथम निषेक में दिया द्रव्यरूप धन ऐसा

$\frac{\text{स ड १२} - |\ \text{१६}}{\text{७ ख १७ गु ओ १२}\ |\ \text{१६}}$ इस धन में से ऋण घटाने के लिये अन्य भागहार समान

ड

जानकर अपकर्षण भागहार के असंख्यातवें भागरूप भागहार द्वारा समच्छेद करनेपर ऋणद्रव्य ऐसा $\frac{\text{स ड १२} - |\ \text{२ नृ ओ}}{\text{७ ख १७ गु ओ १२}\ |\ \text{१६}}$ । अब यहां अन्य गुणकार, भागहार समान

ड ड

जानकर ऐसे $\text{२ नृ}\ |\ \frac{\text{ओ}}{\text{ड}}$ गुणकारों को परस्पर गुणा करनेपर जो असंख्यात हुआ

ड, उसको धनद्रव्य के दोगुणहानि में से घटानेपर धनद्रव्य ऐसा हुआ – $\frac{\text{स ड १२} - |\ \text{१६} - \text{ड}}{\text{७ ख १७ गु ओ १२}\ |\ \text{१६}}$ । यहां उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक में से जो अंतर्मुहूर्त

ड

मात्र चय घटाये थे उनको जुदा निकालकर धनद्रव्य में से घटा दिया तब दोगुणहानि गुणित चय मात्र उपरितन स्थिति का प्रथम निषेक ऐसा $\frac{\text{स ड १२} - |\ \text{१६}}{\text{७ ख १७ गु १२}\ |\ \text{१६}}$

रहा । *(पूर्वद्रव्य)* उसमें ऋण रहित धनद्रव्य मिलाने के लिये अधिक की ऐसी ' संदृष्टि उसके ऊपर करने से उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक *(दृश्यद्रव्य)* की संदृष्टि होती है ।

[***विशेषार्थ*** *: उपरितन स्थिति के पहले निषेक में*

पूर्व सत्ता का द्रव्य + दिया द्रव्य = दृश्यमान द्रव्य

$$\text{चय} \times \text{२ गु} - \text{२ नृ} + \text{चय} \times \text{२ गु}_{\text{ड}}^{\text{ओ}}$$

$$= \text{च} \times (\text{१६} - \text{२ नृ}) + \text{च} \times \text{२ गु}_{\text{ड}}^{\text{ओ}}$$

$$= \text{च}\,१६ - \text{च}\,२०_{\text{ओ}}^{\text{ओ}} + \text{च}\,१६_{\text{ओ}}^{\text{ओ}}$$

$\text{च}\,१६_{\text{ओ}}^{\text{ओ}}$ *में* $\text{च}\,१६_{\text{ओ}}^{\text{ओ}}$ *धनराशि और* $\text{च}\,२०_{\text{ओ}}^{\text{ओ}}$ *ऋणराशि है ।*

इस धन में से ऋण बाद करके पश्चात् $\text{च}\,१६_{\text{ओ}}^{\text{ओ}}$ *में मिलायेंगे ।*

$\text{च}\,१६_{\text{ओ}}^{\text{ओ}} - \text{च}\,२०_{\text{ओ}}^{\text{ओ}}$ *समच्छेद करनेपर* $\text{च}\,१६_{\text{ओ}}^{\text{ओ}} - \text{च}\,२०_{\text{ओ}}^{\text{ओ}}$ *।*

$२०_{\text{ओ}}^{\text{ओ}}$ *को* ० *लिखकर* $\text{च}\,१६_{\text{ओ}}^{\text{ओ}} - \text{च}\,०_{\text{ओ}}^{\text{ओ}} = \text{च}\,|\,१६ - ०_{\text{ओ}}^{\text{ओ}}$ *इसको* $\text{च}\,१६_{\text{ओ}}^{\text{ओ}}$ *में मिलाने के लिये* $\text{च}'१६$ *लिखेंगे । अब यहांपर* **च** *की कीमत लिखनेपर दृश्यमान द्रव्य पूर्वोक्त ऐसा* $\text{स}०'१२ - |\,१६$ *हुआ ।*]

$७\ \text{ख}\ १७\ \text{गु}\ १२\,|\,१६$

पुनश्च दोगुणहानि के गुणकार में से क्रम से एक-एक घटानेपर द्वितीयादि निषेक होते हैं और उसमें से एक कम किंचित् हीन आठ वर्ष घटानेपर अंत निषेक होता है । इसतरह दृश्यमान द्रव्य होता है उसकी रचना ऐसी –

उपरितन स्थिति	अंत निषेक	$\text{स}०'१२ - |\,१६ - \frac{१\ ०}{\text{व}\ ८ -}$ $७\ \text{ख}\ १७\ \text{गु}\ १२\,|\,१६$
	मध्य निषेक	० ० ०
	प्रथम निषेक	$\text{स}०'१२ - |\,१६$ $७\ \text{ख}\ १७\ \text{गु}\ १२\,|\,१६$

गुणश्रेणी	अंत निषेक	$\frac{\text{स}\ \partial^{\mid}\ १२ - ६४}{\text{७ ख १७ गु ओ प ८५}\ \ \partial\ \partial}$
	मध्य निषेक	० ० ०
	प्रथम निषेक	$\frac{\text{स}\ \partial^{\mid}\ १२ - १}{\text{७ ख १७ गु ओ प ८५}\ \ \partial\ \partial}$
उदयावली	अंत निषेक	$\frac{\text{स}\ \partial^{\mid}\ १२ - \mid १६ - \overset{१८}{४}}{\text{७ ख १७ गु १२ } \mid \text{ १६}}$
	मध्य निषेक	० ० ०
	प्रथम निषेक	$\frac{\text{स}\ \partial^{\mid}\ १२ - \mid १६}{\text{७ ख १७ गु १२ } \mid \text{ १६}}$

उसके अनंतर सम्यक्त्वमोहनीय की अष्ट वर्ष स्थिति होने के समय में अष्ट वर्ष मात्र सम्यक्त्वमोहनीय के निषेकों का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स}\ \partial\ १२ -}{\text{७ ख १७ गु}}$ उससे हीन डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र मिश्र, सम्यक्त्वमोह के चरम फालि के द्रव्य को गुणश्रेणी आयाम में और उपरितन स्थिति में *(देता है उस)* दिये द्रव्य की संदृष्टि पहले कह ही आये हैं ।

उसके अनंतर अष्ट वर्ष स्थिति करण के द्वितीय समय में सर्व मोहनीय के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग ऐसा $\frac{\text{स}\ \partial\ १२ -}{\text{७ ख १७ ओ}}$ अपकर्षण करके उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग गुणश्रेणी आयाम में असंख्यातगुणा क्रम सहित तथा बहुभाग उपरितन स्थिति में हीन क्रम सहित पूर्वोक्त

प्रकार से देना । यहां उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम है, इसलिए पूर्व गुणश्रेणी आयाम में एक समय उपरितन स्थिति का मिलाना । वहां उपरितन स्थिति में दिये द्रव्य के गुणकार में एक कम को न गिनके अपवर्तन करनेपर ऐसा **स ə १२ – ७ ख १७ ओ** उसको किंचित् हीन आठ वर्ष मात्र गच्छ का और एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर चय होता है । उसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम निषेक और दोगुणहानि के गुणकार में से एक-एक घटानेपर द्वितीयादि निषेक तथा एक कम किंचित् हीन आठ वर्ष घटानेपर अंत निषेक होता है । गुणश्रेणी में दिये द्रव्य को अंकसंदृष्टि की अपेक्षा पचासी का भाग देकर एक से गुणा करके प्रथम निषेक, चार और सोलह से गुणा करके मध्य निषेक तथा चौंसठ से गुणा करके अंत निषेक होता है । उसकी रचना ऐसी –

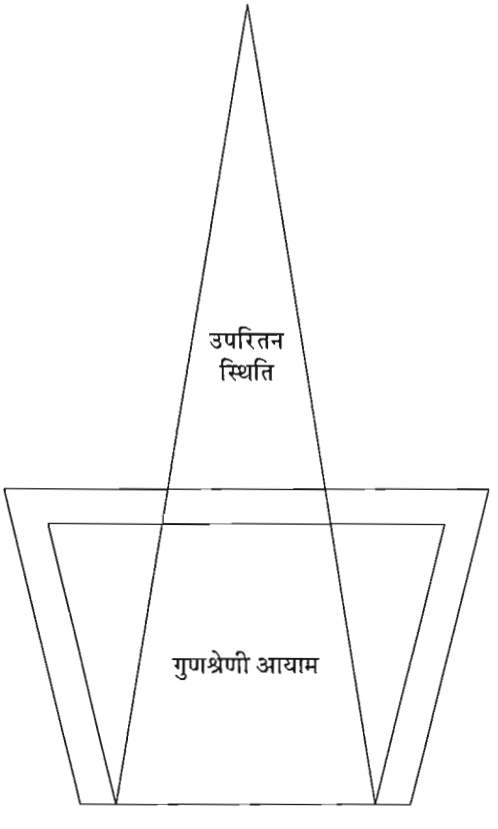

स ə १२ – | १६ – $\frac{१\ ८}{व\ ८ - २}$ ७ ख १७ ओ व ८ – | १६ – $\frac{१८}{व\ ८ - २}$	अंतिम निषेक
० ० ०	
स ə १२ – | १६ – १ ७ ख १७ ओ व ८ – | १६ – $\frac{१८}{व\ ८ - २}$	द्वितीय निषेक
स ə १२ – | १६ ७ ख १७ ओ व ८ – | १६ – $\frac{१८}{व\ ८ - २}$	प्रथम निषेक
स ə १२ – | ६४ ७ ख १७ ओ प ८५ ə	अंतिम निषेक
० ० $\frac{१६}{४}$ ०	मध्य निषेक
स ə १२ – | १ ७ ख १७ ओ प ८५ ə	प्रथम निषेक

इसी समय में सम्यक्त्व मोहनीय के द्रव्य को संख्यात का भाग देनेपर प्रथम कांडकद्रव्य होता है $\frac{\text{स}\ 9\ १२}{७\ ख\ १७\ ५}$ – उसको, पल्य के अर्धच्छेद को दो बार असंख्यात का भाग देनेपर जो अध:प्रवृत्त भागहार ऐसा $\frac{\text{छे}}{9\ 9}$ होता है, उसका भाग देनेपर प्रथम फालि का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स}\ 9\ १२}{७\ ख\ १७\ ५\ \frac{\text{छे}}{9\ 9}}$ – होता है । वह अपकर्षण किये द्रव्य के असंख्यातवें भाग मात्र है और देने का विधान वैसे ही है । इसलिए अपकर्षण द्रव्य में इसको मिलाने के लिये अधिक की संदृष्टि कर देना ।

इसीतरह द्वितीयादि समयों में रचना करना । पुनश्च प्रथम कांडक की अंत फालि का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स}\ 9\ १२ - \frac{१८}{9}}{७\ ख\ १७\ ५\ 9}$ । कैसे? वह कहते हैं –

अंत फालि बिना अन्य फालियों का द्रव्य कांडकद्रव्य के असंख्यातवें भाग मात्र $\frac{\text{स}\ 9\ १२}{७\ ख\ १७\ ५\ 9}$ – है । उसको घटानेपर असंख्यात बहुभाग मात्र अंत फालि का द्रव्य होता है । यहां गुणकार में एक हीन को न गिनकर अपवर्तन करके उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम में असंख्यातगुणा क्रम से तथा बहुभाग उपरितन स्थिति में हीन क्रम से देना । उसकी पूर्वोक्त प्रकार संदृष्टि ऐसी –

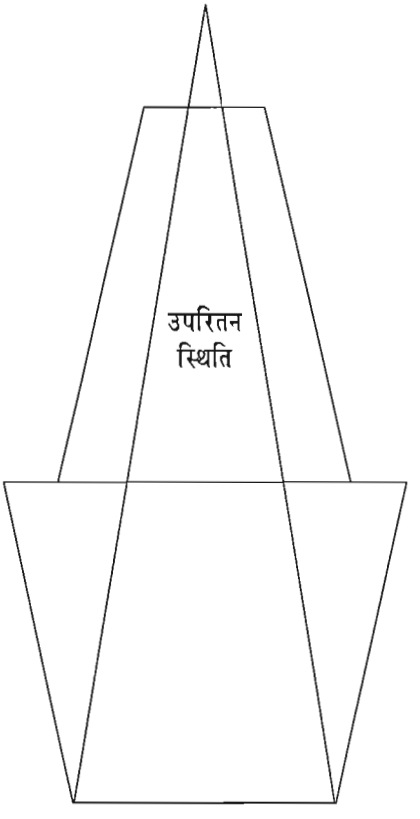

$\text{स}\ominus\ 12 - \vert\ 16 - \frac{\text{व}\ 8 - \frac{1\ \cap}{}}{}$ $\text{७ ख १७ गृ व}\ 8 - \vert\ 16 - \frac{\text{व}\ 8 - \frac{1\cap}{2}}{}$ ० ० $\text{स}\ominus\ 12 - \vert\ 16$ $\text{७ ख १७ गृ व}\ 8 - \vert\ 16 - \frac{\text{व}\ 8 - \frac{1\cap}{2}}{}$	अंत निषेक प्रथम निषेक
$\text{स}\ominus\ 12 - \vert\ 64$ $\text{७ ख १७ गृ प}\ 8\ 5$ $\ominus$ ० ० $\text{स}\ominus\ 12 - \vert\ 1$ $\text{७ ख १७ गृ प}\ 8\ 5$ $\ominus$	अंत निषेक प्रथम निषेक

यहां कांडकद्रव्य बहुत है, इसलिए इसमें अपकृष्ट द्रव्य का साधिकपना जानना । इसीतरह अन्य कांडकों में रचना जानना ।

मिश्रद्विक की चरम फालि का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स}\ominus\ 12 -}{\text{७ ख १७}}$ । यह द्रव्य इसके पतन समय से पूर्व समय में जो गुणसंक्रमण द्रव्य सहित सम्यक्त्वमोहनीय का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स}\ominus\ 12 - \vert\ominus}{\text{७ ख १७ गु}}$ उससे असंख्यातगुणा है । पुनश्च अष्ट वर्ष स्थिति करण के प्रथम कांडक की द्वितीयादि द्विचरम फालि पतन समय तक तो अपकर्षण किया द्रव्य और फालि का द्रव्य असंख्यातवें भाग मात्र है और चरम फालि पतन समय में संख्यातवें भाग मात्र है । सो पूर्वोक्त भागहार से यह होता है ।

पुनश्च अष्ट वर्ष स्थिति करण के समय में उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक का

दृश्यद्रव्य ऐसा $\frac{\text{स ⅁}^{\prime}\text{१२} - |\text{१६}}{\text{७ ख १७ व ८} - |\text{१६} - \text{व ८} -}$ $\frac{\text{१०}}{\text{२}}$ *(गाथा १३५)* इसको यहां

गुणश्रेणीशीर्ष कहते हैं । इसका यह द्रव्य इससे पूर्व समय में जो गुणश्रेणीशीर्ष का दृश्यद्रव्य ऐसा $\frac{\text{स ⅁}^{\prime}\text{१२} - |\text{६४}}{\text{७ ख १७ प ८५}}$ था, उससे असंख्यातगुणा है ।

अष्ट वर्ष करण के प्रथम समय के गुणश्रेणीशीर्ष द्रव्य से द्वितीय समय के गुणश्रेणीशीर्ष का द्रव्य विशेष अधिक होता है, गुणकाररूप नहीं । कैसे ? वह कहते हैं –

अष्ट वर्ष स्थिति करण के प्रथम समय में गुणश्रेणीशीर्ष का दृश्यद्रव्य ऐसा $\frac{\text{स ⅁}^{\prime}\text{१२} - |\text{१६}}{\text{७ ख १७ व ८} - |\text{१६} - \text{व ८} -}$ $\frac{\text{१०}}{\text{२}}$ । इसके द्वितीय समय में आया धन

ऐसा $\frac{\text{स ⅁ १२} - |\text{६४}}{\text{७ ख १७ ओ प ८५}}$ ।

पुनश्च अष्ट वर्ष की उपरितन स्थिति के द्वितीय निषेक का दृश्यद्रव्य ऐसा $\frac{\text{स ⅁}^{\prime}\text{१२} - |\text{१६} - \text{१}}{\text{७ ख १७ व ८} - |\text{१६} - \text{व ८} -}$ $\frac{\text{१०}}{\text{२}}$ इसके गुणकार में से एक घटाया है इसलिए

एक चय मात्र ऋण ऐसा – $\frac{\text{स ⅁}^{\prime}\text{१२} - |\text{१}}{\text{७ ख १७ व ८} - |\text{१६} - \text{व ८} -}$ $\frac{\text{१०}}{\text{२}}$ । इसको जुदा स्थापेंगे

तो प्रथम समय का गुणश्रेणीशीर्ष और यह समान हुये । द्वितीय समय में जो इसमें द्रव्य दिया वह गुणश्रेणीशीर्ष का धन ऐसा $\frac{\text{स ⅁}^{\prime}\text{१२} - |\text{१६}}{\text{७ ख १७ ओ व ८} - |\text{१६} - \text{व ८} -}$ $\frac{\text{१०}}{\text{२}}$ उससे

पूर्वोक्त ऋण असंख्यातगुणा हीन है, क्योंकि यहां दोगुणहानि का गुणकार नहीं है ।

पुनश्च द्वितीय समय के गुणश्रेणी के अंत निषेक का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स ə}^{\text{I}}\text{१२} - |\text{६४}}{\text{७ ख १७ ओ प ८५}}$ क्योंकि वहां एक कम पल्य के असंख्यातवें भाग का गुणकार था और एक को न गिनकर अपवर्तन किया था, सो यहां नहीं है । ऐसे ऋणद्रव्य और गुणश्रेणी का चरम निषेक द्रव्य घटाने के लिये उस धनद्रव्य में किंचित् कम किया । पुनश्च वहां दोगुणहानि का गुणकार था और अपकर्षण भागहार का भाग था, उनका अपवर्तन करनेपर असंख्यात का गुणकार ही रहा, भागहार दूर हुआ तब ऐसे $\frac{\text{स ə}^{\text{I}}\text{१२} - |\text{ə}}{\text{७ ख १७ व ८} - |\text{१६} - \frac{\text{१८}}{\text{व ८} - \text{२}}}$ । इसको अष्ट वर्ष करण के प्रथम समय के गुणश्रेणीशीर्ष के समान जो उसके अनंतर उपरितन स्थिति का निषेक उसमें अधिक करना । इसतरह प्रथम समय के गुणश्रेणीशीर्ष से द्वितीय समय के गुणश्रेणीशीर्ष का दृश्यद्रव्य साधिक ही है $\frac{\text{स ə}^{\text{II}}\text{१२} - \text{१६}}{\text{७ ख १७ व ८} - |\text{१६} - \frac{\text{१८}}{\text{व ८} - \text{२}}}$ । यहां एक साधिकपना पहले ही था, यहां इतना और साधिकपना हुआ, उसको जानने के लिये ऊपर दूसरी ऊभी लकीर बनायी । इसीतरह पूर्व से उत्तर गुणश्रेणीशीर्ष साधिक ही है । यहां ये संदृष्टि कही है उनका स्वरूप पहले हो आया है इसलिए यहां नहीं कहा ।

पुनश्च अवस्थित गुणश्रेणी आयाम अंतर्मुहूर्त मात्र ऐसा **२ नृ** उसको संख्यात **४** का भाग देकर बहुभाग ऐसा $\text{२ नृ}_{\text{४}}^{\text{३}}$ और गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम में गुणश्रेणीशीर्ष ऐसा $\frac{\text{२ नृ}}{\text{४}}$ उसका संख्यातवां भाग ऐसा $\frac{\text{२ नृ}}{\text{४} | \text{४}}$ उसके ऊपर द्विचरम फालिकांडक के नीचे अवशेष रहे निषेक ऐसे **२ नृ | ४ | ४ | ४** इनको मिलानेपर चरमकांडक आयाम का प्रमाण होता है । इसकी प्रथम फालि पतन समय से लेकर द्विचरम फालि के पतन समय तक फालिद्रव्य और अपकर्षण किया द्रव्य तीन पर्वों में

देना । वहां अंत कांडक के प्रथम फालि के समय में जो गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम प्रारंभ किया उसके शीर्ष तक प्रथम पर्व, उसके ऊपर पहले जो अवस्थित गुणश्रेणी आयाम था उसके शीर्ष तक द्वितीय पर्व, उसके ऊपर उपरितन स्थिति के अंत निषेक तक तृतीय पर्व । वहां सम्यक्त्वमोहनीय के द्रव्य में से पूर्व में गले हुये निषेकों का द्रव्य उसके असंख्यातवें भाग मात्र घटानेपर किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र चरमकांडक का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स}\mathfrak{d}\,१२-}{\text{७ ख १७}}$ । इसको असंख्यात से भाजित अपकर्षण भागहार का भाग देनेपर एकभाग ऐसा $\frac{\text{स}\mathfrak{d}\,१२-}{\text{७ ख १७ ओ}\,\mathfrak{d}}$ । इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग ऐसा $\text{स}\mathfrak{d}\,१२-\left|\frac{\overset{१८}{\text{प}}}{\mathfrak{d}}\right.$ प्रथम पर्व में असंख्यातगुणा क्रम से देना । $\frac{}{\text{७ ख १७ ओ प}\,\mathfrak{d}\,\mathfrak{d}}$

वहां इसको अंकसंदृष्टि की अपेक्षा पचासी का भाग देकर एक से गुणा करनेपर प्रथम निषेक; चार, सोलह से गुणा करनेपर मध्य निषेक और चौंसठ से गुणा करनेपर अंत निषेक होता है । *(उपरोक्त बहुभाग बिना)* उसका एकभाग ऐसा $\frac{\text{स}\mathfrak{d}\,१२-|\,१}{\text{७ ख १७ ओ प}\,\mathfrak{d}\,\mathfrak{d}}$ उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग ऐसा $\text{स}\mathfrak{d}\,१२-\left|\frac{\overset{१८}{\text{प}}}{\mathfrak{d}}\right.$ द्वितीय पर्व में हीन क्रम से देना । वहां इसको गच्छ संख्यात की सहनानी चार से गुणित अंतर्मुहूर्त मात्र ऐसा $\frac{}{\text{७ ख १७ ओ प प}\,\mathfrak{d}\,\mathfrak{d}\,\mathfrak{d}}$ २$\mathfrak{y}$ | ४ उसका, और एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि ऐसा $\text{१६}-\frac{\overset{१८}{\text{२}\mathfrak{y}\,|\,\text{४}}}{\text{२}}$ उसका भाग देनेपर चय होता है । इसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम निषेक और गुणकार *(दोगुणहानि)* में से

एक-एक घटानेपर द्वितीयादि निषेक होते हैं । *(गुणकार में से)* एक कम गच्छ मात्र घटाने से अंत निषेक होता है ।

अवशेष एकभाग ऐसा **स ə १२ – | १** तीसरे पर्व में हीन क्रम से देना ।

७ ख १७ ओ प प
ə ə ə

वहां भी वैसे ही विधान जानना । विशेष इतना – यहां गच्छ का प्रमाण अंकसंदृष्टि की अपेक्षा चौंसठ गुणा अंतर्मुहूर्त ऐसा **२ॊ | ६४** जानना ।

इनकी रचना ऐसी –

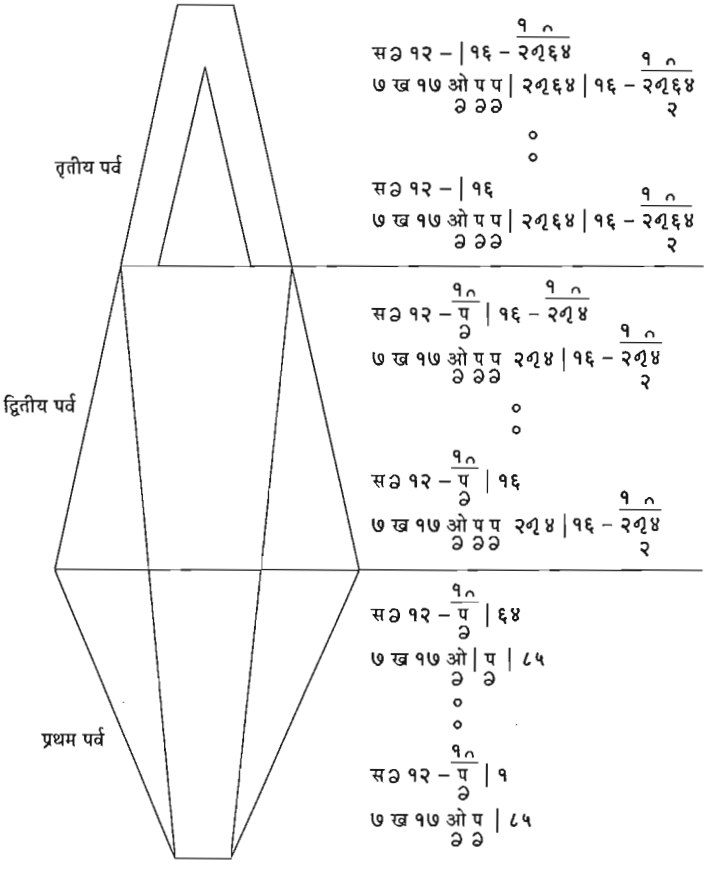

यहां पूर्व अवस्थित गुणश्रेणी आयाम था उसको दिखाने के लिये क्रमअधिकरूप संदृष्टि की; वहां अब जो गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम हुआ उसको दिखाने के लिये तो क्रमअधिकरूप और उसके ऊपर हीन क्रमरूप दिया द्रव्य दिखाने के लिये हीनरूप संदृष्टि की । उपरितन स्थिति में पूर्व में भी हीन क्रम था अब भी हीन क्रमरूप द्रव्य

दिया । इसलिए दोनों हीनरूप रेषाओं द्वारा संदृष्टि की है ।

पुनश्च अनिवृत्तिकरण के अंत समय में चरमकांडक की चरमफालि का पतन होता है *(गाथा १४४)* वहां गलने के पश्चात् अवशेष रहा उदयादि गुणश्रेणी आयाम कृतकृत्यवेदक काल मात्र है । उसके प्रथमादि द्विचरम निषेक तक प्रथम पर्व है, उसका अंत निषेक द्वितीय पर्व है । गले हुये निषेक और कृतकृत्यकाल के निषेक इनके बिना अवशेष चरमफालि का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स ७ १२ –}}{\text{७ ख १७}}$ । उसको असंख्यातगुणा पल्य के वर्गमूल का भाग देकर एकभाग प्रथम पर्व में असंख्यातगुणा क्रम से देना । वहां पचासी का भाग देकर एक आदि से गुणा करके प्रथमादि निषेकों की संदृष्टि होती है । बहुभाग द्वितीय पर्व में देना, उसकी संदृष्टि ऐसी –

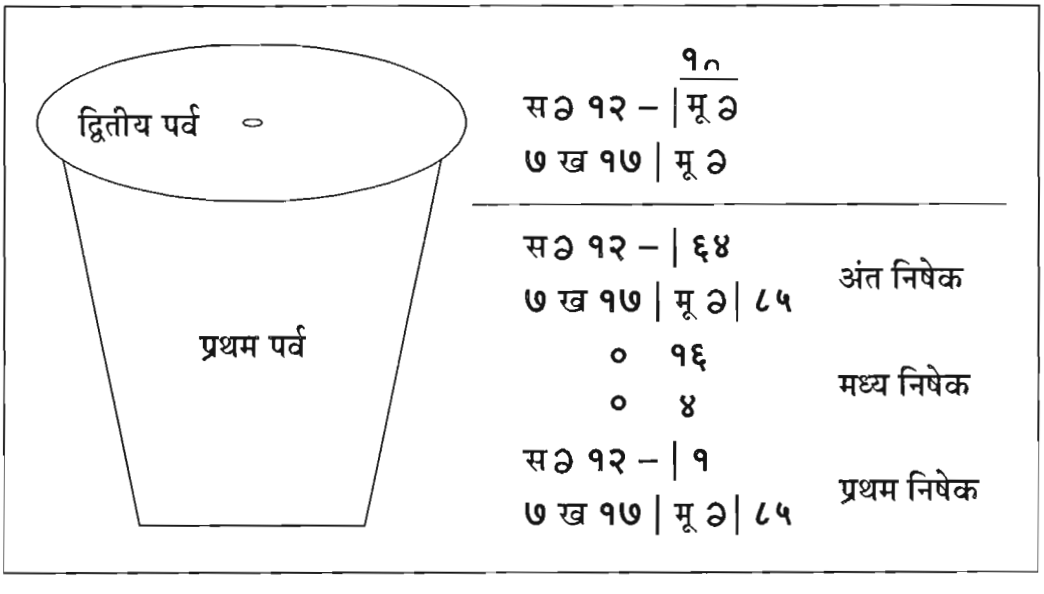

यहां गुणश्रेणी के द्विचरम समय तक अधिक क्रमरूप लकीर बनायी, ऊपर अंत निषेक की जुदी रचना करके संदृष्टि की है । उसके आगे दिया द्रव्य लिखा है ।

पुनश्च कृतकृत्यवेदक काल गुणश्रेणीशीर्ष के संख्यात बहुभाग मात्र ऐसा $\frac{\text{२गृ ३}}{\text{४ | ४}}$ । वहां सम्यक्त्वमोहनीय का सत्त्व ऐसा $\frac{\text{स ७ १२ –}}{\text{७ ख १७}}$ इसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग उदयावली से बाह्य निषेकों में से ग्रहण कर उसको पल्य

के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग उदयावली में असंख्यातगुणा क्रम से देना । वहां पचासी का भाग देकर एक आदि से गुणा करनेपर प्रथमादि निषेक होते हैं । बहुभाग द्रव्य उपरितन स्थिति में अतिस्थापनावली छोड़कर देना । वहां उसके द्रव्य के गुणकार में एक कम को न गिनकर अपवर्तन करनेपर द्रव्य ऐसा **स ə १२ –** । उसको गच्छ अंतर्मुहूर्त मात्र ऐसा **२नृ** उसका और एक

७ ख १७ ओ

कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर चय होता है । उसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम निषेक और गुणकार में से क्रम से एक-एक घटाते हुये अंत में एक कम गच्छ मात्र घटानेपर द्वितीयादि *(अंत तक)* निषेक होते हैं, उनकी रचना ऐसी –

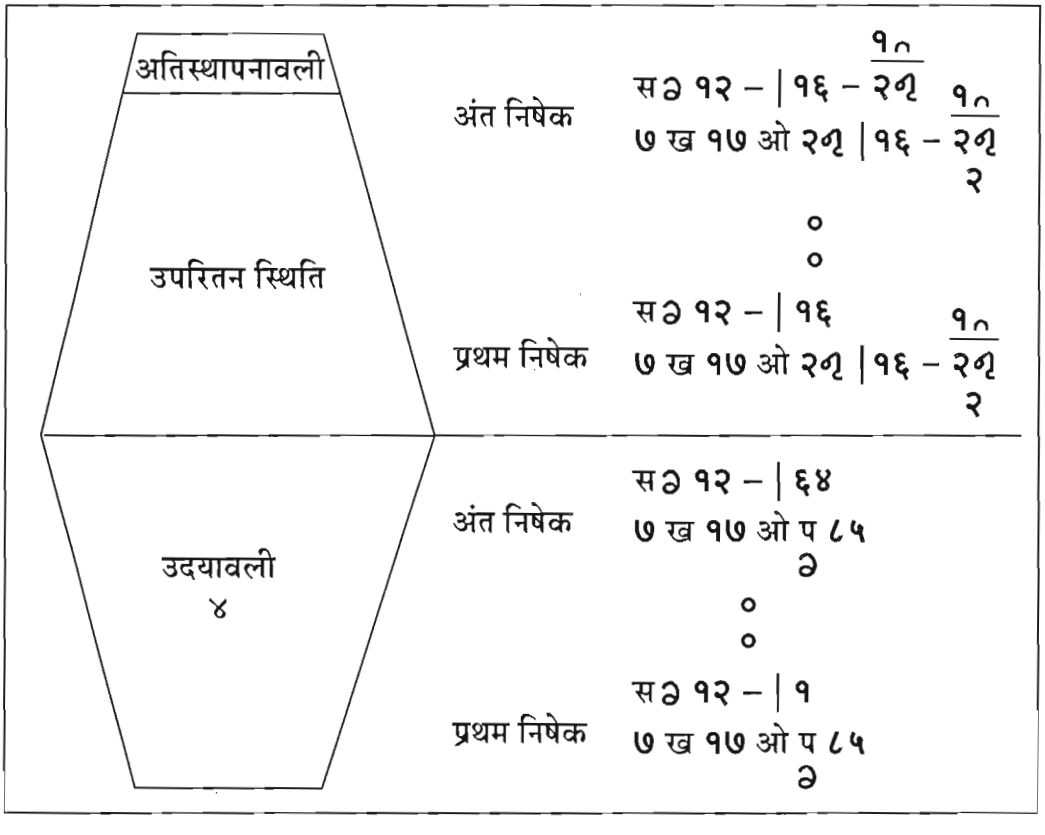

यहां नीचे उदयावली की अधिक क्रमरूप, ऊपर उपरितन स्थिति की हीन क्रम रूप संदृष्टि जानना, उसके आगे दिया द्रव्य लिखा है ।

पुनश्च कृतकृत्यवेदक काल में एक समय अधिक आवली अवशेष रहनेपर उदयावली से उपरितन स्थिति में से निषेक का अपकर्षण करके उसको आवली में से एक कम आवली के दो त्रिभाग अतिस्थापनरूप रखकर एक अधिक आवली के त्रिभाग में देना । वहां उस द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग उदय से लेकर असंख्यात समय तक असंख्यातगुणा क्रम से देना – बहुभाग ऊपरवर्ती अतिस्थापना के नीचे के निषेकों में हीन क्रम से देना । इनके गच्छ का प्रमाण यथासंभव असंख्यात ऐसा ə । यहां संदृष्टि ऐसी –

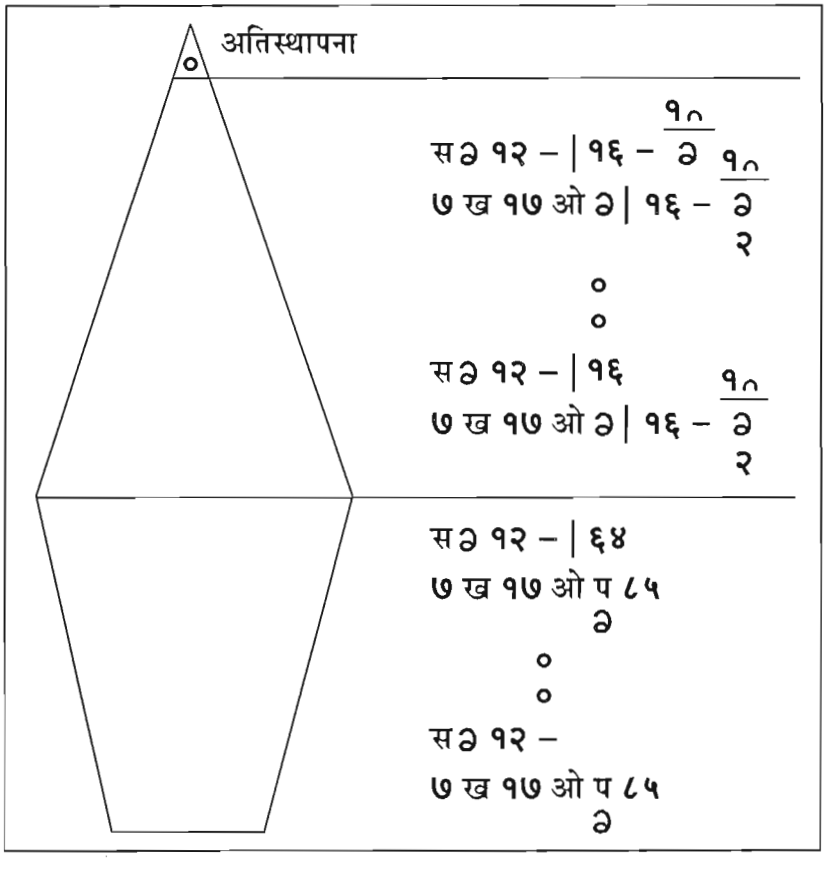

पुनश्च उदयावली अवशेष रहनेपर एक-एक निषेक क्रम से गलाकर क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है । यहां काल के अल्पबहुत्व की संदृष्टि सुगम है । वह उपशम सम्यक्त्व में अल्पबहुत्व कहा उसप्रकार और अन्य यथासंभव प्रकार से कथन के अनुसार अल्पबहुत्व के तैंतीस पदों में ऐसी संदृष्टि होती है – *(गाथा १५३ से १६३)*

[*यहां क्रमांक डालकर लिखा है जो मूल में नहीं है । तथा संस्कृत टीका में पढ़कर शुद्ध करके लिखा है ।*]

१	२	३	४	५	६	७
२ ॲ	२ ॲ ५ ४	२ ॲ ५ ४ ४	२ ॲ ५ ४ ५ ४ ४	२ ॲ ॲ अपवर्तित	२ ॲ ॲ ४	२ ॲ ॲ ४ ४

८	९	१०	११	१२	१३
२ ॲ ॲ ४ ४ ४	२ ॲ ॲ ४ ४ ४ ४	२ ॲ अपवर्तित	२ ॲ ४	२ ॲ ४ ४	२ ॲ ४ ४ ४

१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
२ ॲ ४ ४ ४ ४	व ८	प – व ८ ə ə ə	प ə ə ə	प १० ə ə ə	प १० ə ə	प ə

२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८
प १० ə ५ ५ ५ ५ ə	प ४ ५ ५ ५	प ४ ५ ५	प ॲ ॲ	प ॲ	प ४ ५	प	सा ७ – प ८ ॲ

२९	३०	३१	३२	३३
सा ७ ल ८	सा अं को २ ४ ४ ४	सा अं को २ ४ ४	सा अं को २ ४	सा अं को २

इति क्षायिकसम्यक्त्वाधिकार संदृष्टि समाप्त ।

अथ **देशचारित्रअधिकार** में संदृष्टि कहते हैं – *(गाथा १६८ से १८८)* वहां अध:प्रवृत्त देशसंयत में चतु:स्थानपतित वृद्धि हानि युक्त अपकर्षण द्रव्य होता है । वहां सत्त्वद्रव्य ऐसा **स ə १२** – उसको सात का भाग देनेपर एक कर्म, उसको अपकर्षण भागहार का भाग देनेपर अपकृष्ट द्रव्य ऐसा **स ə १२ / ७ ओ** । उसको असंख्यात, संख्यात का भाग देकर *(क्रम से)* एक अधिक असंख्यात, संख्यात से गुणा करनेपर असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि होती है । और उसीको संख्यात, असंख्यात से

गुणा करनेपर संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि होती है । और उसीको असंख्यात, संख्यात का भाग देकर एक कम असंख्यात, संख्यात से गुणा करनेपर असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि होती है । उसीको संख्यात, असंख्यात का भाग देकर संख्यातगुणहानि, असंख्यातगुणहानि होती है । उनकी संदृष्टि ऐसी –

असंख्यातभागवृद्धि	संख्यातभागवृद्धि	संख्यातगुणवृद्धि	असंख्यातगुणवृद्धि
स ə १२ – $\frac{१}{ə}$ ७ ओ ə	स ə १२ – $\frac{१}{गु}$ ७ ओ गु	स ə १२ – गु ७ ओ	स ə १२ – ə ७ ओ

असंख्यातभागहानि	संख्यातभागहानि	संख्यातगुणहानि	असंख्यातगुणहानि
स ə १२ – $\frac{१०}{ə}$ ७ ओ ə	स ə १२ – $\frac{१०}{गु}$ ७ ओ गु	स ə १२ – ७ ओ गु	स ə १२ – ७ ओ ə

वहां काल के अल्पबहुत्व की संदृष्टि पूर्वोक्त प्रकार से और अन्य यथासंभव प्रकार से कथन के अनुसार अठारह पदों में ऐसी जानना – *(गाथा १७८ से १८३)*

१	२	३	४	५	६
२गु	२गु ५ ४	२गु ५ | ४ ४	२गु ५ | ४ | ५ ४ | ४	२गुगु	२गुगु ४

७	८	९	१०	११	१२
२गुगु ४ | ४	२गुगु ४ | ४ | ४	२गुगुगु	२गुगुगु ४	प गुगु	प गु

१३	१४	१५	१६	१७	१८
प	सा ७ ८	सा अं को २ ४ | ४ | ४	सा अं को २ ४ | ४	सा अं को २ ४	सा अं को २

वहां जघन्य स्थान के अविभागप्रतिच्छेद अनंतगुणा जीवराशि मात्र ऐसे **१६ ख**, इससे अनंतजीवराशिगुणा ऐसे **१६ ख \| १६ ख** । सर्वस्थान असंख्यातलोक मात्र ऐसे ≡ə । इनमें एक अधिक सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग को *(यहां सूच्यंगुल की जगह*

आवली लिखा था, परंतु गोम्मटसार तथा धवला में भी सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग ही आया है इसलिए ठीक करके लिखा है) पांच बार लिखकर $\frac{\frac{\frac{\frac{\frac{१}{२}}{२}}{२}}{२}}{२}$ परस्पर गुणा करने से जितना हो उनमें एकबार षटस्थानपतित वृद्धि होती है, तो सर्व स्थानों में कितनी होगी ऐसा त्रैराशिक करनेपर इतनी बार होगी – $\equiv ə$ $\frac{\frac{\frac{\frac{\frac{१}{२}}{२}}{२}}{२}}{२}$

पुनश्च वहां प्रतिपातस्थान, प्रतिपद्यमानस्थान और अनुभयस्थान क्रम से हैं । इनके बीच-बीच असंख्यातलोक मात्र स्वामी रहित अंतरस्थान हैं उनकी संदृष्टि ऐसी $\equiv ə$ । उन स्थानों की संदृष्टि में आदि जघन्य लिखकर, मध्य स्थानों के लिये बीच में बिंदी लिखकर, अंत में उत्कृष्ट लिखना । ये स्थान नर *(मनुष्य)* के तो सर्व पाये जाते हैं और तिर्यंच के कितनेक मध्यस्थान ही पाये जाते हैं; इसलिए उनके आदि अक्षर की संदृष्टि करना । जघन्य से लेकर *(केवल)* मनुष्य ही के पाये जानेवाले, मध्य में तिर्यंच के पाये जानेवाले और अंत में *(केवल)* मनुष्य ही के पाये जानेवाले स्थान प्रत्येक असंख्यातलोक मात्र हैं । उनकी संदृष्टि ऐसी $\equiv ə$ । ऐसे करनेपर उन स्थानों की ऐसी संदृष्टि होती है –

प्रतिपातस्थान	अं	प्रतिपद्यमानस्थान	अं	अनुभयस्थान
ज ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० उ न $\equiv ə$ ज ० ० ० ० उ $\equiv ə$ न ति $\equiv ə$ ति	$\equiv ə$	ज ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० उ न $\equiv ə$ ज ० ० ० ० उ $\equiv ə$ न ति $\equiv ə$ ति	$\equiv ə$	ज ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० उ न $\equiv ə$ ज ० ० ० ० उ $\equiv ə$ न ति $\equiv ə$ ति

इति देशसंयमलब्धिअधिकार संदृष्टि समाप्त ।

अथ **सकलचारित्र अधिकार** में संदृष्टि कहते हैं –

वहां देशसंयम में जैसे संदृष्टियों का स्वरूप कहा है वैसे यहां भी यथासंभव जानना । वहां प्रतिपातादि स्थानों में विशेष है, वह कहते हैं –

मिथ्यात्व, असंयत और देशसंयत में गिरनेवाले की अपेक्षा प्रतिपातस्थान तीन प्रकार के हैं । वहां जघन्यादि की संदृष्टि पूर्ववत् करना और उनके बीच अंतरालरूप

स्थान असंख्यातलोक मात्र हैं, उनकी संदृष्टि करना । प्रतिपद्यमान स्थानों में आर्यखंड के मनुष्यों में पाये जानेवाले सर्व स्थान हैं और म्लेच्छखंड के मनुष्यों में पाये जानेवाले बीच के स्थान हैं । इसलिए जैसे देशसंयत में मनुष्य, तिर्यंच में पाये जानेवाले स्थानों की संदृष्टि की थी, वैसे यहां आर्य, म्लेच्छ खंडों के मनुष्यों में पाये जानेवाले स्थानों की रचना करना । यहां इनके आदि अक्षर लिखना । अनुभय स्थानों में सामायिकद्विक में पाये जानेवाले सर्व स्थानों में मध्य में पाये जानेवाले परिहारविशुद्धि के स्थान हैं । इसलिए वहां भी पूर्ववत् संदृष्टि करना । पुनश्च उसके पश्चात् सूक्ष्मसाम्पराय के स्थान जघन्यादिरूप हैं; उसके पश्चात् यथाख्यात का एक ही स्थान है । इनके बीच-बीच अंतरालस्थान हैं, उनकी संदृष्टि करना । इसतरह इनकी ऐसी संदृष्टि होती है *(गाथा १९५)*

प्रतिपातस्थान					अं	प्रतिपद्यमानस्थान
मिथ्यात्व	अं	असंयत	अं	देश		ज ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० उ
ज ० ० ० ० उ	≡ ə	ज ० ० ० ० उ	≡ ə	ज ० ० ० ० उ	≡ ə	आ ≡ ə ज ० ० ० ० उ ≡ ə आ
						म्ले ≡ ə म्ले

अं	अनुभयस्थान	अं	सूक्ष्मसाम्पराय	अं	यथा
≡ ə	ज ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० उ	≡ ə	ज ० ० ० ० ० ० ० उ	≡ ə	१
	सा ≡ ə ज ० ० ० ० उ ≡ ə सा				
	प ≡ ə प				

पुनश्च सर्वस्थान ऐसे ≡ ə, इनको छोटे असंख्यातलोक की सहनानी नौ का अंक, उससे भाग देकर बहुभाग मात्र अनुभयस्थान ऐसे ≡ ə | ८ पुनश्च उसको उसीका भाग
९
देकर बहुभाग मात्र प्रतिपद्यमानस्थान ऐसे ≡ ə | ८ और एकभाग मात्र प्रतिपातस्थान
९ | ९
ऐसे ≡ ə *(गाथा १९६)* ।
९ | ९

इति सकलसंयमाधिकार संदृष्टि समाप्त ।

अथ **चारित्रमोह के उपशमन अधिकार** में संदृष्टि कहते हैं – *(गाथा २०५ से २५१)*

वहां जो द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सहित श्रेणी चढ़ता है उसके द्वितीयोपशम सम्यक्त्व संबंधी अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर अनिवृत्तिकरण के बहुभाग तक गुणश्रेणी में ऐसी रचना जानना –

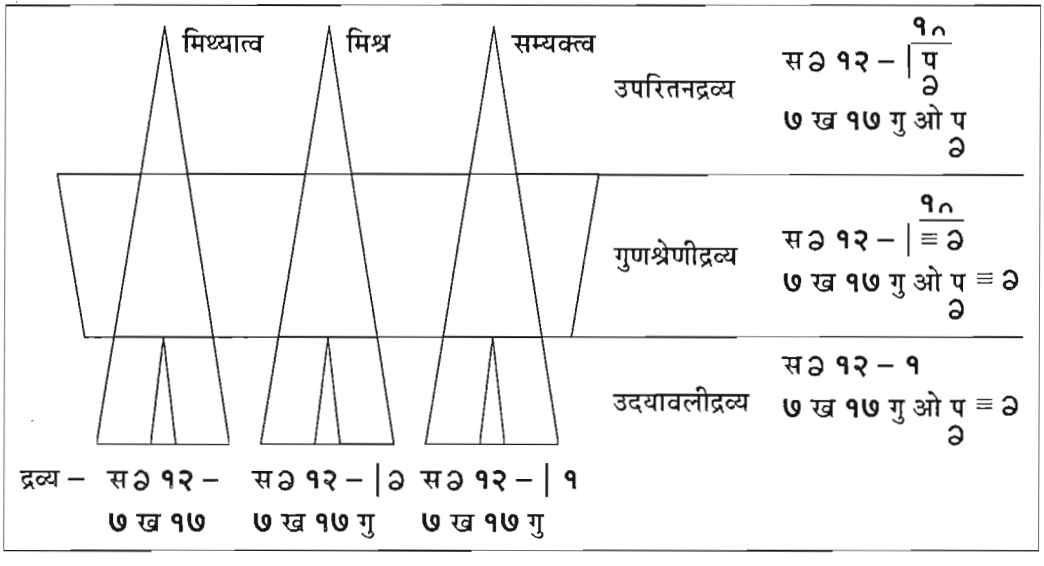

यहां तीनों दर्शनमोह के निषेकों का क्रमरूप आकार लिखकर उनके नीचे उन तीनों के द्रव्य की संदृष्टि लिखी है । डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध को सात, अनंत, सत्रह का भाग देनेपर दर्शनमोह का द्रव्य होता है, उसमें किंचित् कम करनेपर मिथ्यात्व का, उसीको गुणसंक्रमण का भाग देकर असंख्यात से गुणा करनेपर मिश्र का तथा गुणसंक्रमण का भाग देनेपर सम्यक्त्व प्रकृति का द्रव्य होता है । उन तीनों के निषेक रचना में उदयावली, गुणश्रेणी, उपरितन स्थिति दिखाने के लिये *(क्रम से)* क्रमहीन, क्रमअधिक, क्रमहीनरूप संदृष्टि की है । उनके आगे सम्यक्त्वमोहनीय के द्रव्य को अपकर्षण भागहार ऐसा **ओ** का भाग देकर उसको पल्य के असंख्यातवें भाग $\frac{\text{प}}{\text{ə}}$ का भाग देकर बहुभाग उपरितन स्थिति में दिया, अवशेष एकभाग को असंख्यात लोक ≡ ə का भाग देकर बहुभाग गुणश्रेणी आयाम में, एकभाग उदयावली में दिया, उनकी संदृष्टि लिखी ।

पुनश्च अनिवृत्तिकरण काल का संख्यातवां भाग रहनेपर सम्यक्त्वमोहनीय का जो द्रव्य अपकर्षण किया उसमें जहां असंख्यातलोक का भाग था, वहां पल्य का असंख्यातवां भाग पाया जाता है । उसकी रचना ऐसी –

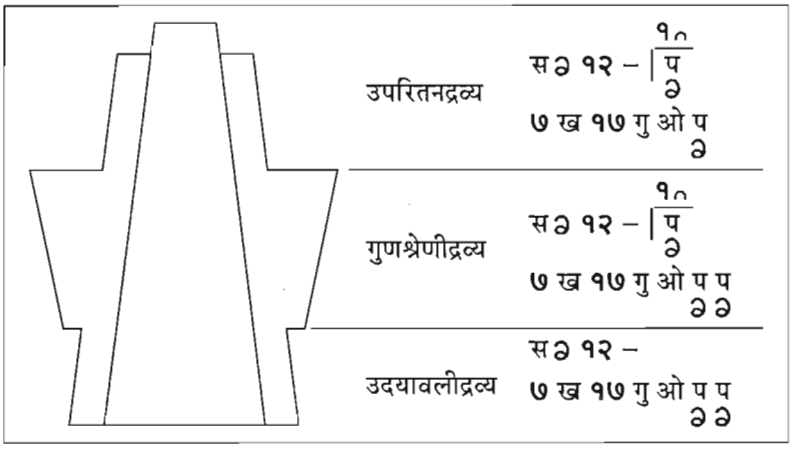

पुनश्च अंतर्मुहूर्त काल जानेपर अंतर करता है । *(गाथा २१०)* वहां मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीय की आवली ४ मात्र और सम्यक्त्वमोहनीय की अंतर्मुहूर्त मात्र **२गु** नीचे प्रथम स्थिति छोड़कर बीच के निषेकों का अभाव करके ऊपर तीनों की द्वितीय स्थिति की रचना समान होती है । उनकी रचना में नीचे तीनों की उदयावली लिखी, उसके ऊपर मिथ्यात्व और मिश्र के तो अभावरूप निषेकों की संदृष्टि और सम्यक्त्वमोहनीय के गुणश्रेणीरूप निषेक लिखकर उसके ऊपर अभावरूप निषेकों की संदृष्टि करना । उन तीनों अभावरूप निषेकों के ऊपर द्वितीय स्थिति की क्रमहीन संदृष्टि बराबर करना । इसतरह करनेपर ऐसी रचना होती है –

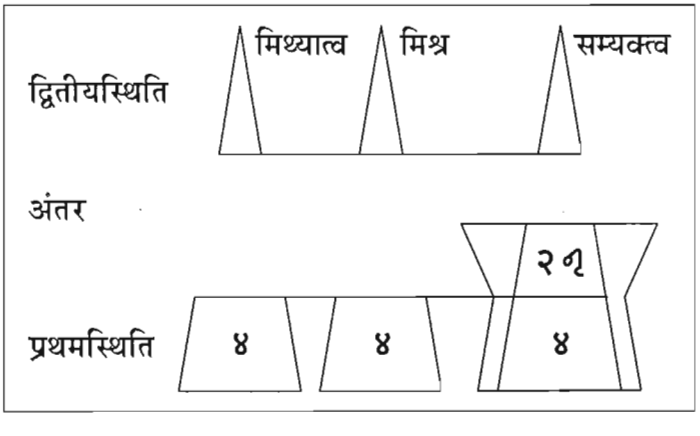

अंतरनिषेकों का द्रव्य निक्षेपण किया उसकी और संक्रमणद्रव्य की संदृष्टि यथासंभव जान लेना । पुनश्च अन्य क्रिया होकर द्वितीयोपशम सम्यक्त्वी होता है ।

अब चारित्रमोह के उपशमविधान में संदृष्टि कहते हैं –

पुनश्च नपुंसकवेदादि के सत्त्वद्रव्य यहां से लेकर यह कथन तो पश्चात् लिखना । और पुरुषवेदादि के बंधद्रव्य की रचना ऐसी –

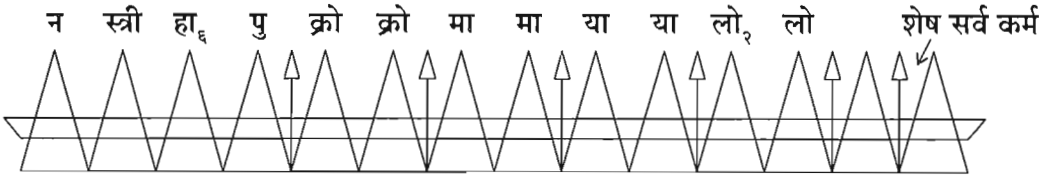

यहां नपुंसकवेदादि को क्रम से उपशमाते हैं, उनकी रचना करके आगे अवशेष कर्म लिखे । उनके निषेकों की क्रमहीन संदृष्टि करके बीच में गुणश्रेणी की क्रम अधिकरूप संदृष्टि की है । यहां पुरुषवेदादि के सत्त्वद्रव्य के आगे ऐसी ⍋ संदृष्टि जानना ।

पुनश्च मोह का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स ə १२}}{\text{७ | १०}}$ – उसमें से सर्वघाति द्रव्य किंचित् घटा उसको न गिनकर उसको कषाय, नोकषाय का भाग देनेपर दो का भाग होता है । नोकषाय में वेद तीन, हास्यद्विक, रतिद्विक, भय, जुगुप्सा के भाग के लिये पांच का भाग होता है; दो को पांच से गुणा करके दस का भाग होता है । इसतरह वेदादिक का द्रव्य ऐसा –

वेद ३	हास्य २	रति २	भय	जुगुप्सा
$\frac{\text{स ə १२}}{\text{७ | १०}}$	$\frac{\text{स ə १२}}{\text{७ | १०}}$	$\frac{\text{स ə १२}}{\text{७ | १०}}$	$\frac{\text{स ə १२}}{\text{७ | १०}}$	$\frac{\text{स ə १२}}{\text{७ | १०}}$

अंकसंदृष्टि की अपेक्षा तीनों वेदों में उनके द्रव्य को अड़तालीस का भाग देकर बयालीस, चार, दो से क्रम से गुणा करनेपर नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, पुरुषवेद का द्रव्य होता है ।

[*विशेषार्थ : वेद का द्रव्य* व *मान लेते हैं । तो वहां नपुंसकवेद का द्रव्य* व | ४२, *स्त्रीवेद का* व | ४ *और पुरुषवेद का* व | २ *होता है ।*]
४८ ४८ ४८

हास्यद्विक के द्रव्य को वैसे ही भाग देकर सोलह, बत्तीस से गुणा करनेपर हास्य, शोक का द्रव्य होता है । रतिद्विक के द्रव्य को वैसे ही भाग देकर सोलह, बत्तीस से गुणा करनेपर रति, अरति का द्रव्य होता है । यहां पुरुषवेद का काल *(बंध का काल)* अंतर्मुहूर्त मात्र है, उससे स्त्रीवेद हास्य, और अरति, शोक का काल क्रम से संख्यातगुणा है और नपुंसकवेदादि का विशेष अधिक है । उस अपेक्षा ऐसा द्रव्य कहा है ।

मोह के द्रव्य को अनंत और सत्रह का भाग देकर आठ से गुणा करनेपर अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान आठ कषायों का द्रव्य आता है । यहां यह सर्वघाति द्रव्य है । मोह के द्रव्य को आठ का भाग देकर चार से गुणा करनेपर संज्वलनकषाय चतुष्क का द्रव्य होता है । यहां मोह का आधा द्रव्य जानना । इनकी संदृष्टि ऐसी –

नपुं	स्त्री	हास्य	रति
स ə १२ – | ४२ ७ | १० | ४८	स ə १२ – | ४ ७ | १० | ४८	स ə १२ – | १६ ७ | १० | ४८	स ə १२ – | १६ ७ | १० | ४८

अरति	शोक	भय	जुगुप्सा
स ə १२ – | ३२ ७ | १० | ४८	स ə १२ – | ३२ ७ | १० | ४८	स ə १२ – ७ | १०	स ə १२ – ७ | १०

पुरुष	आठ कषाय	संज्वलनचतुष्क
स ə १२ – | २ ७ | १० | ४८	स ə १२ – | ८ ७ ख १७	स ə १२ – | ४ ७ | ८

इनका ऐसा सत्त्वद्रव्य है । उसको अपकर्षण करके गुणश्रेणी करता है । वहां अनुभागकांडक में एक कर्म का द्रव्य ऐसा स ə १२ –, इसको साधिक डेढ़ गुणहानि

ऐसा $\frac{१}{२}$ उसका भाग देनेपर प्रथम निषेक का द्रव्य ऐसा $\frac{स ə १२}{७ | \frac{१}{२}}$ – इसको अनुभाग संबंधी अनंत प्रमाणवाली गुणहानि है उस साधिक डेढ़ गुणहानि का भाग देनेपर प्रथम वर्गणा का द्रव्य ऐसा $\frac{स ə १२}{७ | \frac{१}{२} | \frac{ख ३}{२}}$ – इसको आधे अन्योन्याभ्यस्तराशि का भाग देनेपर अंत गुणहानि की प्रथम वर्गणा का द्रव्य ऐसा $\frac{स ə १२}{७ | \frac{१}{२} | \frac{ख ३ अ}{२ २}}$ – इसको दोगुणहानि का भाग देकर एक अधिक गुणहानि के आयाम से गुणा करनेपर अंत गुणहानि की अंत वर्गणा का द्रव्य ऐसा $\frac{स ə १२}{७ | \frac{१}{२} | \frac{ख ३}{२} | अ | \frac{\frac{१}{गु}}{२}}$ – इसीतरह द्वितीयादि निषेकों में रचना करना । वहां प्रथम गुणहानि के प्रथम निषेक के द्रव्य को, अपनी वर्गशलाका से भाजित पल्य प्रमाण अन्योन्याभ्यस्तराशि का आधा ऐसा $\frac{प}{व २}$ उसका भाग देनेपर अंत गुणहानि के प्रथम निषेक का द्रव्य ऐसा $\frac{स ə १२}{७ | \frac{१}{२} | \frac{प}{व २}}$ – इसको दोगुणहानि का भाग देकर एक अधिक गुणहानि से गुणा करनेपर अंत निषेक का द्रव्य ऐसा $\frac{स ə १२}{७ | \frac{१}{२} | प | \frac{\frac{१}{गु}}{२}}$ – $\frac{१}{गु}$ उसको अनुभाग संबंधी डेढ़ गुणहानि का भाग देकर प्रथम वर्गणा का द्रव्य ऐसा $\frac{स ə १२}{७ | \frac{१}{२} | \frac{प}{व २} | गु २ | \frac{ख ३}{२}}$ – । यहां वर्गशलाका से भाजित पल्य के दो का भागहार था और दोगुणहानि के दो का गुणकार था, उनका अपवर्तन किया ।

यहां एक अधिकपना न गिनकर गुणहानि का भी अपवर्तन किया तब ऐसा स ७ १२ – इसको अनुभागसंबंधी आधे अन्योन्याभ्यस्तराशि का भाग देनेपर
व
७ | १२ | प | ख ३
२

अंत गुणहानि की प्रथम वर्गणा का द्रव्य ऐसा स ७ १२ – इसको दोगुणहानि
व
७ | १२ | प | ख ३ | अ
२ २

का भाग देकर एक अधिक गुणहानि से गुणा करनेपर अंत निषेक की अंत गुणहानि
१
की *(अनुभाग अपेक्षा)* अंत वर्गणा का द्रव्य ऐसा स ७ १२ – गु यहां
व
७ | १२ | प | ख ३ | अ | गु २
२ २ २

भी पूर्ववत् अपवर्तन करनेपर ऐसा स ७ १२ – इसतरह सर्व निषेकों में
व
७ | १२ | प | ख ३ | अ
२ २

अनुभाग रचना जानना ।

वहां एक गुणहानि में स्पर्धकों के प्रमाण की संदृष्टि ऐसी ९, उसको नानागुणहानि ना से गुणा करनेपर सर्व अनुभाग ऐसा ९ | ना उसको अनंत का भाग देकर बहुभाग
१ ∩
मात्र खंड *(कांडक)* द्वारा नष्ट किया अनुभाग ऐसा ९ | ना ख , अवशेष एकभाग को
ख
अनंत का भाग देकर एकभाग मात्र अतिस्थापन ऐसा ९ | ना और बहुभाग मात्र
ख ख
१ ∩ १ ∩
निक्षेपरूप अनुभाग ऐसा ९ | ना ख ख जानना ।
ख ख

पुनश्च अनिवृत्तिकरण में स्थितिबंध क्रम से होता है, उनकी संदृष्टि आदि अक्षरादिरूप सुगम है । यहां इक्कीस प्रकृतियों का अंतरकरण होता है । वहां संदृष्टि दर्शनमोह के अंतरवत् जानना । विशेष है वह विशेष जान लेना ।

नपुंसकवेद के उपशमन में नपुंसकवेद का सत्त्वद्रव्य पूर्वोक्त प्रकार ऐसा **स ə १२ – | ४२** उसको गुणसंक्रमण के असंख्यातवें भाग का भाग देकर प्रथम **७ | १० | ४८**

फालि और दो आदि एक-एक अधिक बार असंख्यात से भाजित गुणसंक्रमण का भाग देनेपर द्वितीयादि फालि होती हैं, उनकी संदृष्टि ऐसी –

स ə १२ – | ४२ **७ | १० | ४८ | गु** **ə**	**स ə १२ – | ४२** **७ | १० | ४८ | गु** **ə ə**	**स ə १२ – | ४२** **७ | १० | ४८ | गु** **ə ə ə**

यहां अल्पबहुत्व में पुरुषवेद का पूर्वोक्त प्रकार सत्त्वद्रव्य ऐसा **स ə १२ – | २**
७ | १० | ४८

उसको अपकर्षण भागहार के असंख्यातवें भाग और दो बार पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर उदयावली में दिया उदीरणा द्रव्य ऐसा **स ə १२ – | २**
७ | १० | ४८ | ओ प प
ə ə ə

तथा उसीको अपकर्षण भागहार के असंख्यातवें भाग का और पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर गुणश्रेणी का द्रव्य होता है उसको पचासी का भाग देकर उसके प्रथम निषेकरूप उदयद्रव्य ऐसा **स ə १२ – | २** वह उससे
७ | १० | ४८ | ओ | प | ८५
ə ə

असंख्यातगुणा है ।

नपुंसकवेद के द्रव्य को गुणसंक्रमण का भाग देनेपर गुणसंक्रमणद्रव्य ऐसा **स ə १२ – | ४२** वह उससे असंख्यातगुणा है । उसका उपशमद्रव्य ऐसा
७ | १० | ४८ | गु

स ə १२ – | ४२ वह उससे असंख्यातगुणा है । यहां भागहार का भागहार राशि
७ | १० | ४८ | गु
ə

का गुणकार होता है इस अपेक्षा गुणसंक्रमण का भागहार उस राशि का गुणकार जानना । जहां संख्यात गुणित हजार वर्ष प्रमाण स्थिति होती है वहां संदृष्टि ऐसी

व १०००गु, इसका संख्यात बहुभाग मात्र स्थितिबंधापसरण ऐसा व १०००गु | ४ ।
५

यहां संख्यात की सहनानी पांच का अंक है । ऐसे ही यथासंभव अन्य संदृष्टि जानना ।

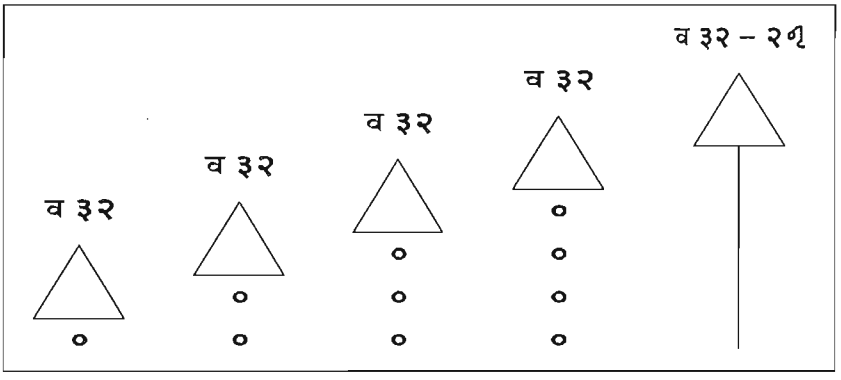

यहां नीचे एक दो आदि व्यतीत हुये समयों की संदृष्टि बिंदी लिखकर ऊपर बत्तीस वर्ष मात्र स्थिति के निषेकों की क्रमहीन संदृष्टि की है । इसतरह अंतर्मुहूर्त काल जाने के पश्चात् अंतर्मुहूर्त कम बत्तीस वर्ष मात्र स्थितिबंध होता है, उसकी अंत में संदृष्टि की है ।

पुनश्च अन्य विधान होकर पुरुषवेद के उपशमकाल में नवक समयप्रबद्ध एक समय कम दो आवली मात्र उपशमित नहीं है, उनकी संदृष्टि ऐसी –

उच्छिष्टावली	० ० १ ० १ २ ० १ २ ३ ० १ २ ३ ४ ० १ २ ३ ४ ४ ० १ २ ३ ४ ४ ४
उपशमनावली	० १ २ ३ ४ ४ ४ ४ १ २ ३ ४ ४ ४ ४ २ ३ ४ ४ ४ ४ ३ ४ ४ ४ ४
बंधावली	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४

यहां समयप्रबद्ध की चार उपशमफालि मानकर चार के अंक की संदृष्टि की और आवली का प्रमाण चार समय मान लिया । वहां बंधावली में प्रथमादि समय में एक-एक समयप्रबद्ध बंधा, उनमें से क्रम से एक, दो, तीन, चार समयप्रबद्ध अनुपशमरूप हुये । उसके पश्चात् उपशमनावली के प्रथम समय में बंधावली के प्रथम समय में बंधे हुये समयप्रबद्ध की एक फालि उपशमायी तीन अवशेष रही तथा बंधावली के द्वितीयादि *(२ रे, ३ रे, ४ थे)* समय में बंधे तीन समयप्रबद्ध और उपशमनावली

के प्रथम समय में बंधा हुआ एक समयप्रबद्ध संपूर्ण अनुपशमरूप रहे ।

उपशमनावली के द्वितीय समय में – बंधावली के प्रथम समय में बंधे हुये समयप्रबद्ध की दूसरी फालि, द्वितीय समय में बंधे हुये की प्रथम फालि उपशमायी, इसलिए उनकी दो और तीन फालि अनुपशमरूप रही और बंधावली के तृतीय, चतुर्थ समय में बंधे हुये दो और उपशमनावली के प्रथम, द्वितीय समय में बंधे हुये दो समयप्रबद्ध संपूर्ण अनुपशमित रहे ।

इसी क्रम से उपशमनावली के अंत समय में – बंधावली के प्रथम समय में बंधा हुआ समयप्रबद्ध सर्व उपशमित हुआ उसकी संदृष्टि बिंदी लिखी । उसके द्वितीयादि समयों में बंधे हुये समयप्रबद्धों की एक, दो, तीन फालि और उपशमनावली के प्रथमादि समयों में बंधे हुये चार समयप्रबद्ध अनुपशमित रहे । ये नवीन समयप्रबद्ध हैं इसलिए फालि को भी समयप्रबद्ध मानकर एक कम दो आवली मात्र समयप्रबद्ध अनुपशमरूप रहते हैं । उनका उच्छिष्टावली मात्र सत्त्व रहनेपर पूर्वोक्त प्रकार से एक-एक फालि का उपशमन होता है । वहां प्रथम समय में – बंधावली के द्वितीय समय में बंधा हुआ समयप्रबद्ध तो सर्व उपशमित हुआ, तृतीयादि समयों में बंधी हुयी एक, दो फालि अनुपशमरूप रही, उपशमनावली के प्रथम समय में बंधे हुये की एक फालि उपशमित हुयी इसलिए तीन फालि रही, उसीके द्वितीयादि समयों में बंधे हुये संपूर्ण समयप्रबद्ध अनुपशमरूप रहे । इसी क्रम से एक समय कम दो आवली मात्र काल में उन सब का उपशम होता है । यहां अपने-अपने समयप्रबद्ध की फालि आदि की रचना ऊपर ऊपर अपने-अपने तक की है ।

पुनश्च पुरुषवेद के नवक समयप्रबद्ध की ऐसी $\text{स}\frac{१८}{७ \mid २}\,\frac{४}{२}$ । यहां समयप्रबद्ध को सात का भाग देनेपर मोह का बंधद्रव्य होता है, उसको कषाय-नोकषाय के भाग के लिये दो का भाग दिया । यहां अन्य नोकषाय का बंध नहीं है, इसलिए पुरुषवेद का बंधद्रव्य ऐसा $\text{स}\frac{१८}{७ \mid २}$ उसको एक समय कम दो आवली ऐसा $\frac{४}{२}$ उसका

गुणकार जानना । पुनश्च यहां जिसकी बंधावली व्यतीत हुयी ऐसा पुरुषवेद का एक समयप्रबद्ध ऐसा स ə उसको गुणसंक्रमण का भाग देनेपर अपगतवेद के प्रथम
७ | २
समय में उपशमनद्रव्य होता है । एक, दो आदि बार असंख्यात से भाजित गुणसंक्रमण से उसीको भाग देनेपर द्वितीयादि समयों में उपशमद्रव्य होता है । अंत में एक कम
१ ० ० ०

यहां अध:प्रवृत्त (भागहार) की सहनानी अकार, उसका भाग देकर बहुभाग में एक कम उसीका गुणकार जानना ।

पुनश्च पुरुषवेद, क्रोध को उपशमाकर मान को उपशमाते हैं, वहां मान की द्वितीय स्थिति का द्रव्य ऐसा स ७ १२ – । यहां सर्व कर्मों के सत्त्वद्रव्य को सात
                                                ७ | ८
का भाग देनेपर मोह का होता है, उसको दो का भाग देनेपर कषाय का होता है, उसको चार का भाग देनेपर मान का होता है । दो को चार से गुणा करके यहां आठ का भागहार मोह के द्रव्य को दिया है । इसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग प्रथम स्थिति में असंख्यातगुणा क्रम से देना । यहां उसको अंकसंदृष्टि से पचासी का भाग देकर एक आदि से गुणा करनेपर प्रथमादि निषेक होते हैं ।

बहुभाग द्वितीय स्थिति में हीन क्रम से देना । वहां उस द्रव्य को साधिक डेढ़ गुणहानि १२ का भाग देनेपर प्रथम निषेक उसको दोगुणहानि १६ का भाग देनेपर चय होता है । उसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक होता है । एक आदि कम दोगुणहानि से गुणा करनेपर द्वितीयादि निषेक होते हैं ।

इसतरह क्रम से गुणहानि-गुणहानि प्रति आधा-आधा होता है । गुणहानि के प्रथम निषेक को वर्गशलाका से भाजित पल्यप्रमाण जो अन्योन्याभ्यस्तराशि उसका आधा ऐसा प उसका भाग देनेपर अंत गुणहानि का प्रथम निषेक होता है । वहां
          व | २
दोगुणहानि मात्र गुणकार में से एक कम गुणहानि आयाम ऐसा $\frac{१८}{गु}$ घटानेपर अंत निषेक की संदृष्टि होती है ।

इसतरह इनकी रचना में द्रव्य देने की अपेक्षा नीचे प्रथम स्थिति की क्रमअधिकरूप संदृष्टि करके उसके ऊपर अंतरायाम में अभावरूप निषेकों की बिंदी की संदृष्टि की । उसके ऊपर द्वितीय स्थिति की क्रमहीनरूप संदृष्टि और अंत में अतिस्थापनावली की संदृष्टि द्वारा रचना जानना । उनके आगे आदि अंत निषेक में दिये द्रव्य की संदृष्टि जानना ।

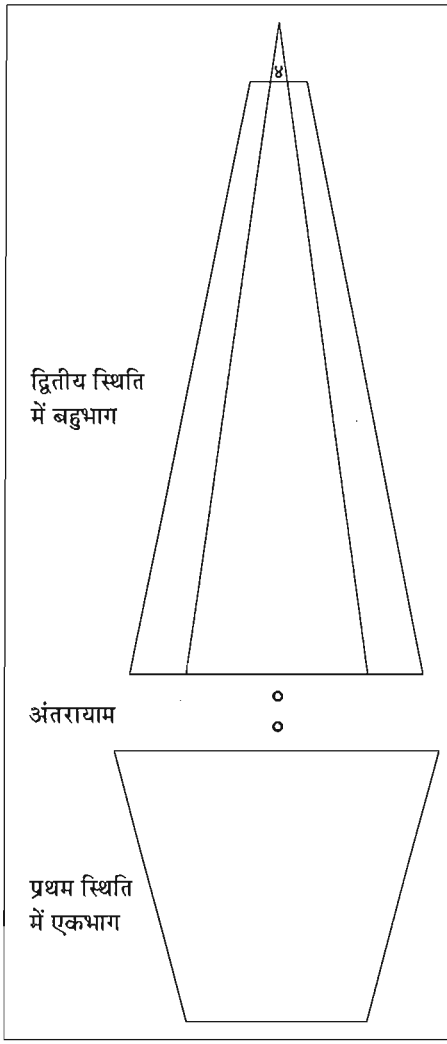

अंतगुणहानि का अंतनिषेक

$$\text{स}\ \partial\ १२ - \left|\frac{\overline{१०}}{\partial}\text{प}\right| १६ - \overline{\text{गु}}$$
$$७ \mid ८ \mid \text{ओ} \mid \text{प} \mid १२ \mid १६ \mid \text{प}\ \text{व}\ २$$

अंतगुणहानि का प्रथमनिषेक

$$\text{स}\ \partial\ १२ - \left|\frac{\overline{१०}}{\partial}\text{प}\right| १६$$
$$७ \mid ८ \mid \text{ओ} \mid \text{प} \mid १२ \mid १६ \mid \text{प}\ \text{व}\ २$$

प्रथम गुणहानि का अंतनिषेक

$$\text{स}\ \partial\ १२ - \left|\frac{\overline{१०}}{\partial}\text{प}\right| १६ - \overline{\text{गु}}$$
$$७ \mid ८ \mid \text{ओ} \mid \text{प} \mid १२ \mid १६$$

प्रथम गुणहानि का प्रथमनिषेक

$$\text{स}\ \partial\ १२ - \left|\frac{\overline{१०}}{\partial}\text{प}\right| १६$$
$$७ \mid ८ \mid \text{ओ} \mid \text{प} \mid १२ \mid १६$$

प्रथम स्थिति का अंतनिषेक

$$\text{स}\ \partial\ १२ - | ६४$$
$$७ \mid ८ \mid \text{ओ} \mid \text{प} \mid ८५$$

प्रथम स्थिति का प्रथमनिषेक

$$\frac{१६}{४}$$
$$\text{स}\ \partial\ १२ - | १$$
$$७ \mid ८ \mid \text{ओ} \mid \text{प} \mid ८५$$

इसीतरह मायावेदक में माया का द्रव्य देने की संदृष्टि जानना, कुछ विशेष नहीं है ।

लोभवेदक काल संख्यात आवली मात्र ऐसा **२१** उसको संख्यात का भाग देकर बहुभाग के तीन भाग करके तीन जगह स्थापना । अवशेष एकभाग का संख्यात बहुभाग प्रथम, द्वितीय स्थान में तथा एकभाग तृतीय स्थान में मिलाना । वहां प्रथम स्थानरूप लोभवेदक का आधा काल है, द्वितीय स्थानरूप कृष्टिकरण काल है, तीसरे स्थानरूप कृष्टिवेदक काल है । वे ऐसे संदृष्टिरूप जानना –

	प्रथम स्थान	द्वितीय स्थान	तृतीय स्थान
बहुभाग	१ ० २ या | या या | ३	१ ० २ या | या या | ३	१ ० २ या | या या | ३
विशेष	१ ० २ या | या या या	१ ० २ या | या या या या	२ या या या या

यहां प्रथम, द्वितीय स्थान के मिलाये हुये बहुभाग ऐसे २ या १ ० या \| २ इसमें एक
या ३

हीनरूप ऋण ऐसा २ या जुदा रखकर अवशेष में संख्यात का अपवर्तन करनेपर
या ३

ऐसा २ या २ । दूसरे स्थान का विशेष धन ऐसा २ या १ ० या इसमें एक हीनरूप ऋण
३ या या या

ऐसा २ या जुदा रखकर अवशेष का अपवर्तन करनेपर ऐसा २ या । प्रथम स्थान
या या या या या

में विशेष धन ऐसा २ या १ ० या में से एक हीनरूप ऋण ऐसा २ या वह इतना ही
या या या या

है । इसलिए प्रथम स्थान के विशेष में इसको मिलानेपर प्रथम स्थान का विशेष धन ऐसा २ या आता है । इसको ३ से समच्छेद करनेपर ऐसा २ या ३ इसमें से
या या या या ३

प्रथम ऋण ऐसा २ या २ और द्वितीय ऋण ऐसा २ या घटानेपर जो अवशेष रहा
या ३ या या या

उसको अधिक करनेपर प्रथम, द्वितीय बहुभाग के ऊपर साधिक की संदृष्टि करनेपर

ऐसा २ या २ होता है ।
३

[*विशेषार्थ : इसे फिर से समझते हैं ।*

प्रथम व द्वितीय स्थान के बहुभागों को मिलानेपर $२\frac{१८}{नृ नृ} \times २$ *होते हैं । यहां* $\frac{१८}{नृ}$ *का अर्थ है ऋणरूप* $२\frac{१}{नृ} २$ *और शेष राशि अर्थात्* $२\frac{१}{नृ}\frac{१}{नृ} \times २$ *दोनों मिलायी राशि इसप्रकार हैं* $२\frac{१}{नृ} २ - २\frac{१}{नृ} २$ *(पहला ऋण) अब इन दोनों के विशेष इसप्रकार हैं – प्रथम स्थान का विशेष* $२\frac{१८}{नृ नृ}$ *इनकी ऋणराशि अलग लिखनेपर* $२\frac{१}{नृ}\frac{१}{नृ} - २\frac{१}{नृ} = २\frac{१}{नृ} - २\frac{१}{नृ}$ *हुआ । द्वितीय स्थान का विशेष ऐसा* $२\frac{१८}{नृ नृ}$ *अर्थात्* $२\frac{१}{नृ}\frac{१}{नृ} - २\frac{१}{नृ} = २\frac{१}{नृ} - २\frac{१}{नृ}$ *दोनों स्थानों के विशेषों को मिलानेपर ऋण + धनरूप* $२\frac{१}{नृ}$ *बाद हुये और ऐसा रहा* $२\frac{१}{नृ} - २\frac{१}{नृ}$ *।*

इसतरह दोनों मिलाये हुये बहुभाग ऐसे $२\frac{१}{नृ} २ - २\frac{१}{नृ} २$ *तथा दोनों मिलाये हुये विशेष ऐसे* $२\frac{१}{नृ} - २\frac{१}{नृ}$ *इनमें जो दो ऋण हैं वे* $२\frac{१}{नृ}$ *में से घटायेंगे । पहला ऋण घटानेपर ऐसा* $२\frac{१}{नृ} - २\frac{१}{नृ} २$ *समच्छेद करके* $२\frac{१}{नृ} ३ - २\frac{१}{नृ} २ = २\frac{१}{नृ}$ *रहा । इसमें से दूसरा ऋण घटानेपर ऐसा* $२\frac{१}{नृ} - २\frac{१}{नृ}$ *समच्छेद करके* $२\frac{१}{नृ}\frac{१}{नृ} - २\frac{१}{नृ} ३ = २\frac{१}{नृ}$ *उसे एक करके ऐसा लिखेंगे* $२\frac{३८}{नृ नृ}$ *इस अवशेष*

विशेष को बहुभाग के धन में मिलायेंगे – $२\text{नृ}\,२ + २\text{नृ}\overset{३\text{ऊ}}{\text{नृ}\,\text{नृ}}$ *अर्थात्* $२\overset{।}{\text{नृ}}\,२$
$\quad ३ \qquad ३\text{नृ}\,\text{नृ}\,\text{नृ} \qquad\qquad ३$

आता है ।]

इसमें आवली मिलानेपर बादरलोभ की प्रथम स्थिति का काल होता है । यहां

प्रथम स्थान में बहुभाग ऐसा $२\text{नृ}\overset{१\text{ऊ}}{\text{नृ}}$ उसमें से ऋण ऐसा २नृ *(प्रथम ऋण)* जुदा
$\quad \text{नृ}\,३ \qquad\qquad\qquad\qquad \text{नृ}\,|\,३$

करनेपर ऐसा $२\text{नृ}\,\text{नृ}$ संख्यात का अपवर्तन करनेपर ऐसा २नृ । वहां विशेष धन
$\quad \text{नृ}\,|\,३ \qquad\qquad\qquad\qquad ३$

ऐसा $२\text{नृ}\overset{१\text{ऊ}}{\text{नृ}}$ यहां ऋण ऐसा २नृ *(द्वितीय ऋण)* जुदा करनेपर ऐसा $२\text{नृ}\,\text{नृ}$ संख्यात
$\quad \text{नृ}\,\text{नृ} \qquad\qquad \text{नृ}\,\text{नृ} \qquad\qquad\qquad \text{नृ}\,\text{नृ}$

का अपवर्तन करनेपर ऐसा २नृ इसको ३ से समच्छेद करनेपर $२\text{नृ}\,३$ इसमें प्रथम
$\quad \text{नृ} \qquad\qquad\qquad\qquad\qquad \text{नृ}\,३$

और द्वितीय ऋण मिलाकर ($२\text{नृ} \quad + २\text{नृ} = $ साधिक प्रथम ऋण $= २\overset{।}{\text{नृ}}$)
$\quad \text{नृ}\,|\,३ \quad \text{नृ}\,\text{नृ} \qquad\qquad\qquad\qquad\qquad \text{नृ}\,|\,३$

घटानेपर ऐसा $२\overset{।}{\text{नृ}}\,|\,२$ ।
$\quad \text{नृ}\,|\,३$

[$२\text{नृ}\,३ - २\overset{।}{\text{नृ}} = २\overset{।}{\text{नृ}}\,|\,२$ *यह तो विशेष धन में से दोनों ऋण*
$\quad \text{नृ}\,|\,३ \quad \text{नृ}\,|\,३ \quad \text{नृ}\,|\,३$

घटानेपर रही अवशेष राशि है । इसे बहुभाग की धनराशि में मिलाना होगा ।]

उस बहुभाग का धन ऐसा २नृ उसमें इस राशि को मिलानेपर साधिक होगा
$\quad ३$

$२\overset{।}{\text{नृ}}$ । यह बादरलोभवेदक काल का प्रथम अर्ध है जो लोभवेदक काल के साधिक
३

तृतीयभाग मात्र है $\frac{२\sqrt{}\text{ृ}}{३}$ ।

कृष्टिकरण काल में विधान की संदृष्टि कहते हैं *(गाथा २८३)* – जघन्य स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के एक परमाणु में अनुभाग के अविभागप्रतिच्छेद जीवराशि से अनंतगुणा ऐसे **१६ ख** उनके समूह का नाम वर्ग है उसकी संदृष्टि ऐसी **व** । संज्वलन लोभ का सत्त्वद्रव्य ऐसा $\text{स}\frac{\text{ऽ १२}}{७ \mid ८}$ – इसको अनुभाग संबंधी गुणहानि अनंतगुणित अनंत प्रमाणवाली ऐसी **ख ख** । इस सत्त्वद्रव्य को डेढ़ गुणहानि का भाग देनेपर प्रथम वर्गणा ऐसी $\text{स}\frac{\text{ऽ १२}}{७ \mid ८ \text{ ख}\sqrt{\text{ख}}\,\text{ख}\,३}$ – इसको दोगुणहानि का भाग देकर देनेपर विशेष *(चय)* ऐसा $\text{स}\frac{\text{ऽ १२}}{७ \mid ८ \text{ ख}\sqrt{\text{ख}}\,\text{ख}\,३ \mid \text{ख ख}\,२}$ – इस विशेष से वर्ग को गुणा करनेपर लघुसंदृष्टि ऐसी **व वि** इसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम वर्गणा ऐसी **व वि ख ख २** यहां अंकसंदृष्टि में एक गुणहानि का प्रमाण आठ मानकर, दोगुणहानि का प्रमाण **१६** स्थापनेपर ऐसी **व वि १६** संदृष्टि होती है । इसकी लघुसंदृष्टि **व** यह वर्गणा के आदि अक्षररूप जानना । इसको अनुभाग संबंधी साधिक डेढ़ गुणहानि से गुणा करनेपर लोभ का सत्त्वद्रव्य ऐसा $\text{व}\frac{\sqrt{}\text{१२}}{\text{ओ}}$ इसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग ग्रहण किया वह ऐसा $\text{व}\frac{\sqrt{}\text{१२}}{\text{ओ}}$ । इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग ऐसा $\text{व}\frac{\sqrt{}\text{१२}}{\text{ओ प}\frac{\text{१०}}{\text{ऽ}}}$ जुदा स्थापित करके एकभाग ऐसा $\text{व}\frac{\sqrt{}\text{१२}}{\text{ओ प}\frac{}{\text{ऽ}}}$ उसको, यहां एक स्पर्धक में वर्गणाशलाका ऐसी ४ उसको अनंत का भाग देकर प्रथम समय में की हुयी कृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ ऐसा $\frac{४}{\text{ख}}$ उसका और एक कम गच्छ के

आधे से हीन दोगुणहानि ऐसा $१६ - \frac{१०}{४_{ख}^{२}}$ उसका भाग देनेपर चय होता है । उसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम कृष्टि का द्रव्य ऐसा $व \overset{।}{१२} \mid \begin{matrix} ओ & प \\ ० & ख \end{matrix} \mid \begin{matrix} १६ & \frac{१०}{४} \\ & ख^{२} \end{matrix} - ४$ इसका अनुभाग पूर्वस्पर्धक वर्ग को कृष्टियों के प्रमाण मात्र बार अनंत का भाग देनेपर होता है । वह ऐसा $व \mid \begin{matrix} ख & ४ \\ & ख \end{matrix}$ । पुनश्च प्रथम कृष्टि में से एक चय घटाने के लिये दोगुणहानि के गुणकार में से एक घटाने पर द्वितीय कृष्टि का द्रव्य ऐसा $व \overset{।}{१२} \mid \begin{matrix} ओ & प \\ ० & ख \end{matrix} \mid \begin{matrix} १६ - १ & \frac{१०}{४} \\ & ख^{२} \end{matrix} - ४$ इसका अनुभाग उस अनुभाग से अनंतगुणा ऐसा $व \mid \begin{matrix} ख & १ \\ & ख \end{matrix} \mid ४$ । इसीतरह क्रम से दो गुणहानि के गुणकार में से एक कम कृष्टियों के प्रमाण को घटानेपर अंत कृष्टि का द्रव्य ऐसा $व \overset{।}{१२} \mid \begin{matrix} ओ & प \\ ० & ख \end{matrix} \mid \begin{matrix} १६ & \frac{१०}{४} \\ & ख^{२} \end{matrix} - \begin{matrix} ख & \frac{१०}{४} \end{matrix}$ । पुनश्च प्रथम कृष्टि के अनुभाग को एक कम कृष्टिप्रमाण मात्र बार अनंत से गुणा करनेपर अंत कृष्टि का अनुभाग ऐसा $व \mid \begin{matrix} ख & \frac{१०}{४_{ख}} \\ & ख \end{matrix} \mid ४$ अपवर्तन करनेपर वर्गणा के अनंतवें भाग मात्र इसका अनुभाग ऐसा $व_{ख}$ जानना ।

पुनश्च जुदे स्थापित अनुभाग ऐसे $व \overset{।}{१२} \mid \begin{matrix} ओ & \frac{१०}{प} \\ ० & ० \end{matrix} \mid प$ उसको साधिक डेढ़ गुणहानि का

और दोगुणहानि का भाग देनेपर चय होता है उसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में दिया द्रव्य ऐसा $\text{व}\,\overset{\text{१ ∩}}{\text{१२}}\,|\,\underset{\text{ə}}{\text{प}}\,|\,\text{१६}$ । पुनश्च द्वितीयादि

$$\text{ओ}\,|\,\underset{\text{ə}}{\text{प}}\,|\,\overset{\text{१ ∩}}{\text{१२}}\,|\,\text{१६}$$

वर्गणाओं में दो गुणहानि के गुणकार में से क्रम से एक-एक घटाते हुये अंत में एक कम गुणहानि मात्र घटानेपर प्रथम गुणहानि की अंत वर्गणा होती है । गुणहानि-गुणहानि प्रति आधा-आधा होता है । प्रथम गुणहानि के निषेकों को एक कम नानागुणहानि के प्रमाण मात्र दो अंकों को परस्पर गुणा करनेपर ऐसा $\overset{\text{१ ∩}}{\text{२ ना}}$ उसका भाग देनेपर अंत गुणहानि के प्रथमादि निषेक होते हैं । इसतरह अंत वर्गणा ऐसी होती है

$$\text{व}\,\overset{\text{१ ∩}}{\text{१२}}\,|\,\underset{\text{ə}}{\text{प}}\,|\,\text{१६} - \overset{\text{१ ∩}}{\text{गु}}$$

$$\text{ओ}\,|\,\underset{\text{ə}}{\text{प}}\,|\,\overset{\text{१ ∩}}{\text{१२}}\,|\,\text{१६}\,|\,\overset{\text{१ ∩}}{\text{२ ना}}$$

। इसतरह कृष्टियों की और पूर्वस्पर्धकों में दिये द्रव्य की संदृष्टि ऐसी –

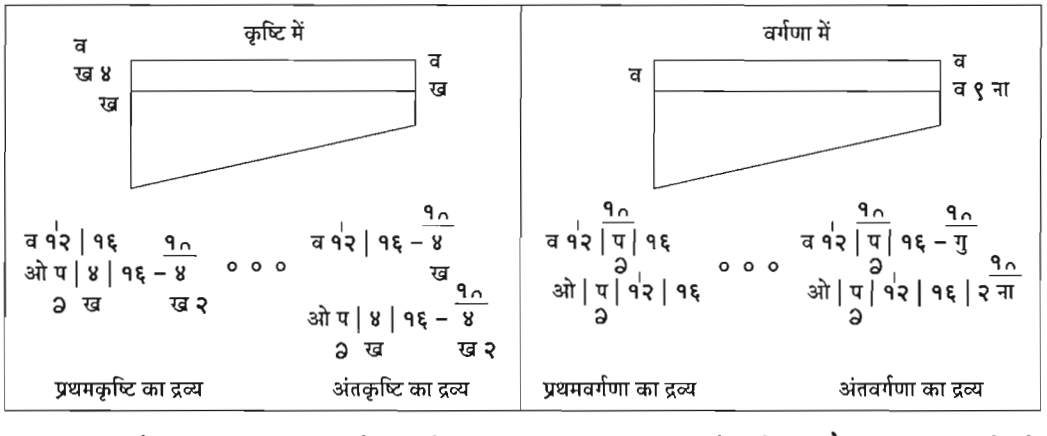

यहां ऐसा जानना – निषेक तो ऊपर-ऊपर उदय आने योग्य है इसलिए निषेकों की रचना तो ऊपर में क्रमहीनरूप की थी और यहां युगपत् उदय आने योग्य एक निषेक के परमाणुओं में अधिक हीन अनुभाग की रचना है, इसलिए आड़ी रचना की

है । ऊपर तो समपट्टिका की संदृष्टि की है, नीचे चय घटते क्रम की क्रमहीनरूप संदृष्टि की है । वहां कृष्टि और वर्गणाओं में - कृष्टियों में आदि, अंत कृष्टियों के द्रव्य का और स्पर्धकों में आदि, अंत वर्गणाओं में दिये द्रव्य का प्रमाण लिखा है । मध्य भेदों के लिये बीच में बिंदी लिखी है ।

पुनश्च कृष्टिकरण काल के द्वितीय समय में अपकर्षण किया हुआ द्रव्य प्रथम समयवाले से असंख्यातगुणा ऐसा $\text{व}\,\overset{\text{ओ}}{\underset{\text{ए}}{\overset{|}{१२}}}$ है । इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग ऐसा $\text{व}\,\overset{\text{ओ}}{\underset{\text{ए}}{\overset{|}{१२}}} \Big| \frac{\text{प}\cdot १}{\text{ए}}$ जुदा रखकर अवशेष एकभाग मात्र कृष्टि द्रव्य ऐसा $\text{व}\,\overset{\text{ओ}}{\underset{\text{ए}}{\overset{|}{१२}}} \Big| \text{ए}$ उसके विभाग करते हैं –

वहां प्रथम समय के कृष्टिद्रव्य में एक विशेष का प्रमाण कहा, वह ऐसा $\text{व}\,\overset{\text{ओ}}{\underset{\text{ए}}{\overset{|}{१२}}} \Big| \text{प} \Big| ४ \Big| १६ - \frac{\text{प}\cdot १}{४}$ यहां इसीको आदि उत्तर स्थापित करके एक कम प्रथम समय में की हुयी कृष्टियों के प्रमाण गच्छ ऐसा $\frac{\text{प}\cdot १}{४}$ स्थापित करके 'पदमेगेण विहीणं' इत्यादि सूत्र से गच्छ में से एक घटाकर दो का भाग देनेपर ऐसा $\frac{\text{प}\cdot २}{४}$, इससे उस विशेष को गुणा करनेपर ऐसा $\text{व}\,\overset{\text{ओ}}{\underset{\text{ए}}{\overset{|}{१२}}} \Big| \frac{\text{प}\cdot २}{४}$ इसमें आदि का प्रमाण उस विशेषमात्र उसको मिलाने के लिये आगे के गुणकार में दो से भाजित दो ऋण था उसका एक हुआ और यहां इस गुणकार में एक ही मिलाना इसलिए उस

एक कम को दूर करनेपर ऐसा व १२ | ४ इसको उस गच्छ से गुणा
ख २
ओ प | ४ | १६ – १० / ४
ओ ख ख २
करनेपर ऐसा व १२ | ४ | १० / ४ चयधन हुआ यह अधस्तनशीर्ष द्रव्य है ।
ख २ ख
ओ प | ४ | १६ – १० / ४
ओ ख ख २

पुनश्च प्रथम समय में की हुयी कृष्टियों में से आदि कृष्टि मात्र एक कृष्टि ऐसी व १२ | १६ १० / ४ । इसको, प्रथम समय में की हुयी कृष्टियों के प्रमाण को
ओ प | ४ | १६ – ख २
ओ ख
असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहार का भाग देकर जो द्वितीय समय में की हुयी कृष्टियों का प्रमाण ऐसा ४ आता है, उससे गुणा करनेपर अधःस्तनकृष्टि द्रव्य ऐसा
ख ओ ओ
व १२ | १६ | ४ । पुनश्च द्वितीय समय में कृष्टियों का द्रव्य ऐसा व १२ ओ
ख ओ ओ ओ प
ओ
ओ प | ४ | १६ – १० / ४
ओ ख ख २
इसमें पहले समय का कृष्टि द्रव्य ऐसा व १२ मिलाने के लिये आगे के असंख्यात
ओ प
ओ
के गुणकार में एक अधिक करनेपर ऐसा व १२ १ / ओ ।
ओ प
ओ

इसको *(इस द्रव्य को)* प्रथम समय में की हुयी कृष्टियों के प्रमाण के ऊपर द्वितीय समय में की हुयी कृष्टियों का प्रमाण मिलाने के लिये अधिक की

ऐसी ' संदृष्टि करनेपर गच्छ ऐसा $\underset{\text{ख}}{\overset{|}{४}}$ उसका भाग देनेपर मध्यधन ऐसा $\underset{\text{ओ प}}{\overset{|}{\text{व १२}}}\ \underset{\text{ओ प}}{\overset{\text{१}}{\text{ओ}}}\ \Big|\ \underset{\text{ख}}{\overset{|}{४}}$

इसको एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर उभयद्रव्य का एक विशेष ऐसा $\underset{\text{ओ प}}{\overset{|}{\text{व १२}}}\ \underset{\text{ओ}}{\overset{\text{१}}{\text{ओ}}}\ \Big|\ \underset{\text{ख}}{\overset{|}{४}}\ \Big|\ \text{१६} - \underset{\text{ख २}}{\overset{\text{१ ०}}{\underset{|}{४}}}$ इसको आदि उत्तर स्थापित करके और प्रथम, द्वितीय समयकृत कृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ ऐसा $\underset{\text{ख}}{\overset{|}{४}}$ स्थापित करके 'पदमेगेण विहीणं' इत्यादि सूत्र से एक कम गच्छ दो से भाजित ऐसी $\underset{\text{ख २}}{\overset{\text{१ ०}}{\underset{|}{४}}}$ इससे उस विशेष को गुणा करके इसमें विशेष मात्र आदि मिलाने के लिये आगे का गुणकार दो से भाजित एक ऋण था वहां दो से भाजित दो मिलानेपर एक कम की जगह एक अधिक हो जायेगा । उसको उस गच्छ से गुणा करना । ऐसा करनेपर उभयद्रव्यविशेष द्रव्य ऐसा $\underset{\text{ओ प}}{\overset{|}{\text{व १२}}}\ \underset{\text{ओ}}{\overset{\text{१}}{\text{ओ}}}\ \Big|\ \underset{\text{ख २}}{\overset{\text{१}}{\underset{|}{४}}}\ \Big|\ \underset{\text{ख}}{\overset{\text{१}}{\underset{|}{४}}}$ ।

$$\underset{\text{ओ प}}{\overset{|}{\text{व १२}}}\ \underset{\text{ओ}}{\overset{\text{१}}{\text{ओ}}}\ \Big|\ \underset{\text{ख}}{\overset{|}{४}}\ \Big|\ \text{१६} - \underset{\text{ख २}}{\overset{\text{१ ०}}{\underset{|}{४}}}$$

पुनश्च कृष्टियों में देने योग्य द्रव्य ऐसा था $\underset{\text{ओ प}}{\overset{|}{\text{व १२}}}\ \underset{\text{ओ}}{\overset{\text{१}}{\text{ओ}}}$ उसको आगे पूर्वोक्त तीन द्रव्य घटाने की ऐसी ≡ संदृष्टि करनेपर ऐसा $\underset{\text{ओ प}}{\overset{|}{\text{व १२}}}\ \underset{\text{ओ}}{\overset{\text{१}}{\text{ओ}}} \equiv$ होता है । इसको

उभयकृष्टि मात्र गच्छ ऐसा $\frac{४}{ख}$ उसका भाग देनेपर एक खण्ड का द्रव्य ऐसा होता है $\frac{व\ १२\ ə}{ओ\ प\ |\ \frac{४}{ख}\ ə} \equiv$ इसको उस गच्छ ही से गुणा करनेपर मध्यमखंड का द्रव्य ऐसा होता है – $\frac{व\ १२\ ə}{ओ\ प\ |\ \frac{४}{ख}\ ə} \equiv |\ \frac{४}{ख}$ यहां अध:स्तनशीर्ष आदि द्रव्य में गुणकार भागहार का यथासंभव अपवर्तन करनेपर वे चारों द्रव्य ऐसे होते हैं –

अधस्तनशीर्ष	$\frac{व\ १२}{ओ\ प\ \|\ ख\ \|\ ख\ \|\ ४\ \ ə}$
उभयद्रव्यविशेष	$\frac{व\ १२\ \frac{१}{ə}}{ओ\ प\ \|\ ख\ \|\ ख\ \|\ ४\ \ ə}$
अधस्तनकृष्टि	$\frac{व\ १२}{ओ\ प\ ओ\ ə\ \ ə}$
मध्यमखंड	$\frac{व\ १२\ ə}{ओ\ प\ \ ə} \equiv$

यहां अधस्तनशीर्ष द्रव्य में ऐसा $\frac{४}{ख}$ तो गुणकार भागहार में समान जानकर अपवर्तन किया और भागहार में दोगुणहानि अंकसंदृष्टि की अपेक्षा ऐसा **१६** लिखा था वहां अर्थसंदृष्टि की अपेक्षा ऐसा **ख ख २** करके गुणकार का ऐसा $\frac{४}{ख}$ इसको दो का भागहार था उससे गुणा करनेपर **ख ख ४** भागहार हुआ । ऐसा गुणकार और दोगुणहानि में से घटाये हुये ऋण को थोड़ा जानकर नहीं गिना और अपवर्तन किया है । ऐसे ही यथासंभव अन्य में अपवर्तन जानना । ऐसे इनको जानकर जिन-जिन

कृष्टियों में जो-जो द्रव्य दिया । उनकी संदृष्टि जानना ।

[***विशेषार्थ*** *: यहां इनका स्वरूप ठीक से समझ में आये इसलिए संस्कृत टीका से कुछ संदृष्टियां निम्नप्रकार से देते हैं ।*

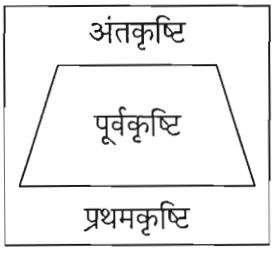

चय घटते पूर्वकृष्टि की रचना –

इसमें दूसरे समय में अधस्तनशीर्ष द्रव्य मिलानेपर समानरूप पूर्वकृष्टि की रचना –

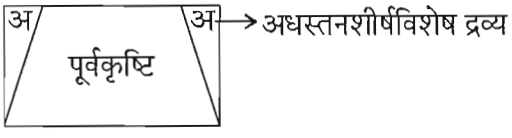

इसके नीचे अधस्तनकृष्टि द्रव्य से अपूर्वकृष्टि की समपट्टिका रचना करनेपर –

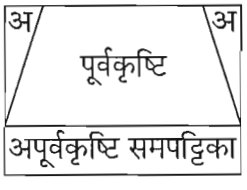

यहां उभयद्रव्यविशेष द्रव्य देनेपर एक गोपुच्छा होती है ऐसी –

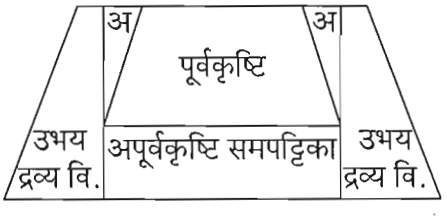

इसमें मध्यमखंड द्रव्य मिलानेपर ऐसी –

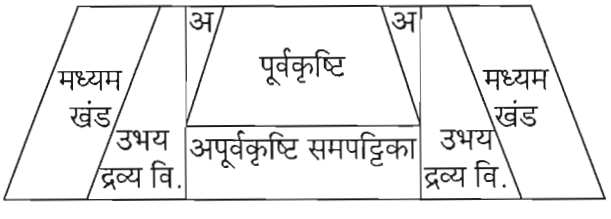

]

[***विशेषार्थ*** *: ऊपर जो पूर्वकृष्टि लिखा है वह प्रथम समय का दिया द्रव्य, उसे छोड़कर अन्य चार प्रकार का द्रव्य द्वितीय समय में दिया है । सर्व देनेपर पूर्व-अपूर्व कृष्टियों का एक गोपुच्छाकार होता है । तीसरे समय में इसके नीचे तथा दोनों पार्श्व में इसी विधान से द्रव्य दिया जाता है । यहां ऊपर से नीचे बताया है, यही तिर्यक्रूपसे अब देखेंगे ।*]

वहां समपट्टिका को चयसंयुक्त करनेपर पूर्वकृष्टि क्रमहीन द्रव्य वाली ऐसी थी –

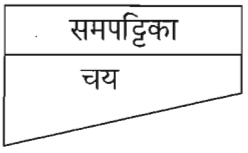

उनमें अधस्तनशीर्ष द्रव्य देनेपर समान प्रमाण युक्त सर्व कृष्टियों का प्रमाण समपट्टिकारूप ऐसा होता है –

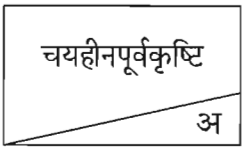

अ = अधस्तनशीर्ष

इसके नीचे अधस्तनकृष्टि द्रव्य द्वारा की हुयी नवीन कृष्टि इसी के समान प्रमाण सहित स्थापनेपर ऐसी कृष्टि होती है – समपट्टिका –

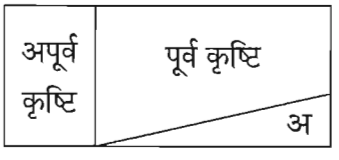

पूर्व-अपूर्व कृष्टियों में मध्यमखंड द्रव्य मिलानेपर समानरूप समपट्टिकारूप ऐसी –

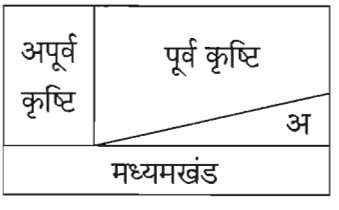

इसमें उभयद्रव्यविशेष मिलानेपर एक-एक विशेष घटते क्रम सहित सर्व पूर्व-अपूर्व कृष्टियों का क्रमहीनरूप एक गोपुच्छाकार होता है उसकी रचना ऐसी –

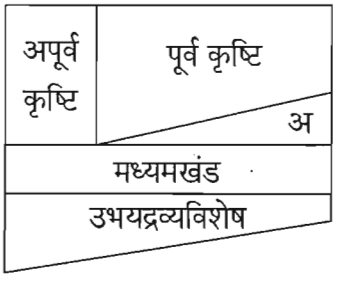

यहां एक समय में उदय आने योग्य परमाणुओं की अनुभाग अपेक्षा रचना है, इसलिए आड़ी रेखाओं द्वारा सहनानी की है ।

वहां प्रथम कृष्टि में एक अधस्तनकृष्टि का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{व } १२ \mid १६}{\text{ओ प} \mid ४ \mid १६} - \frac{१८}{४}$;

$\frac{}{\text{ञ}} \quad \frac{}{\text{ख}} \quad \frac{}{\text{ख २}}$

एक मध्यमखंड का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{व } १२ \text{ ञ}}{\text{ओ प} \mid ४} \equiv$; पूर्व-अपूर्व कृष्टि के प्रमाण से गुणित

$\frac{}{\text{ञ}} \quad \frac{}{\text{ख}}$

उभयद्रव्यविशेष ऐसे $\begin{matrix} \text{व } १२ \\ \text{ओ प } ४ \\ ə \end{matrix} \Big| \begin{matrix} ə \\ ४ \\ \text{ख } २ \end{matrix} \Big| \begin{matrix} \frac{१}{ə} \\ \frac{४}{\text{ख}} \\ \text{ख} \end{matrix} \Big| \begin{matrix} \frac{१}{४} \\ \frac{१६ - १_{\cap}}{४} \\ \text{ख } २ \end{matrix}$ इन तीन द्रव्य को देता है । द्वितीयादि कृष्टियों में एक-एक उभयविशेष घटता द्रव्य नवीन की हुयी कृष्टियों के अंत तक देता है । पूर्वकृष्टियों की आदि कृष्टि में एक मध्यमखंड, पूर्वकृष्टि गुणित उभयद्रव्यविशेष द्रव्य देता है । द्वितीय कृष्टि में एक अधस्तनशीर्षविशेष ऐसा $\begin{matrix} \text{व } १२ \\ \text{ओ प } ४ \\ ə \end{matrix} \Big| \begin{matrix} ə \\ ४ \\ \text{ख} \end{matrix} \Big| \begin{matrix} \frac{१}{ə} \\ \frac{१६ - १_{\cap}}{४} \\ \text{ख} \end{matrix}$ एक मध्यमखंड तथा एक कम पूर्वकृष्टि प्रमाण से गुणित उभयद्रव्यविशेष ऐसे $\begin{matrix} \text{व } १२ \\ \text{ओ प } ४ \\ ə \end{matrix} \Big| \begin{matrix} \frac{१}{ə} \\ \frac{४}{\text{ख}} \\ \text{ख} \end{matrix} \Big| \begin{matrix} \frac{१_{\cap}}{४} \\ \frac{१६ - १_{\cap}}{४} \\ \text{ख } २ \end{matrix}$ देता है । तृतीयादि कृष्टियों में एक-एक अधस्तनशीर्षविशेष बढ़ता और एक-एक उभयद्रव्यविशेष घटता देता है । ऐसे देनेपर सर्व पूर्व-अपूर्व कृष्टियों का एक गोपुच्छ होता है ।

वहां प्रथम समय में की हुयी कृष्टियों के द्रव्य में अधस्तनशीर्षविशेष का द्रव्य और अधस्तनकृष्टि का द्रव्य देनेपर पूर्व-अपूर्व कृष्टियों का समपट्टिका द्रव्य पूर्व जघन्य कृष्टि को पूर्व-अपूर्व कृष्टियों के प्रमाण से गुणा करनेपर ऐसा

$\begin{matrix} \text{व } १२ \\ \text{ओ प } ४ \\ ə \end{matrix} \Big| \begin{matrix} १६ \\ ४ \\ \text{ख} \end{matrix} \Big| \begin{matrix} \frac{४}{\text{ख}} \\ \frac{१६ - १_{\cap}}{४} \\ \text{ख } २ \end{matrix}$

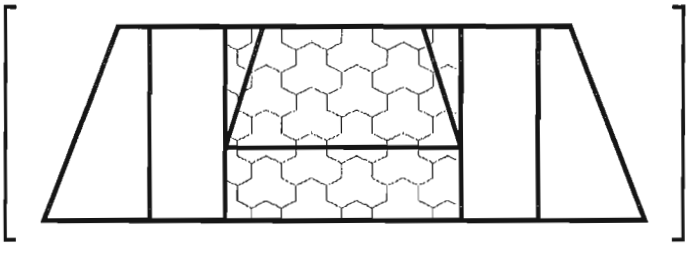

पुनश्च उभयद्रव्यविशेष का द्रव्य ऐसा $\text{व}\frac{१}{१२} \mid \text{ə} \mid \frac{१}{\text{ख}\,२} \mid \frac{१}{\text{ख}}$ इसमें असंख्यात

$$\text{ओ प} \mid \frac{१}{\text{ə ख}} \mid १६ - \frac{१०}{\text{ख}\,२}$$

के ऊपर जो अधिक था उसका प्रमाण ऐसा $\text{व}\frac{१}{१२} \mid \frac{१}{\text{ख}\,२} \mid \frac{१}{\text{ख}}$ ग्रहण किया,

$$\text{ओ प} \mid \frac{१}{\text{ə ख}} \mid १६ - \frac{१०}{\text{ख}\,२}$$

सो यह सर्वकृष्टि द्रव्य संबंधी चयधन हुआ ।

वहां एक चयमात्र द्रव्य ऐसा $\text{व}\frac{१}{१२}$ $\frac{१०}{\text{ख}\,२}$ इसको पूर्व-अपूर्वकृष्टि

$$\text{ओ प} \mid \frac{१}{\text{ə ख}} \mid १६ - \frac{१०}{\text{ख}\,२}$$

से गुणा करनेपर सर्व कृष्टियों में से नीचे की कृष्टि में दिया द्रव्य ऐसा

$$\text{व}\frac{१}{१२} \mid \frac{१}{\text{ख}} \quad \text{ओ प} \mid \frac{१}{\text{ə ख}} \mid १६ - \frac{१०}{\text{ख}\,२} \quad ।$$

द्वितीयादि कृष्टियों में एक-एक चय घटता देकर अंत में एक चय मात्र दिया द्रव्य ऐसा $\text{व}\frac{१}{१२}$ $\frac{१०}{\text{ख}\,२}$ ।

$$\text{ओ प} \mid \frac{१}{\text{ə ख}} \mid १६ - \frac{१०}{\text{ख}\,२}$$

इसतरह प्रथम समय संबंधी कृष्टि द्रव्य के ऊपर (१) अधस्तनशीर्ष द्रव्य, (२) अधस्तनकृष्टि द्रव्य और (३) उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में असंख्यात के गुणकार के ऊपर एक अधिक था उसका द्रव्य – ऐसे तीन द्रव्य मिलाने के लिये तीन-तीन

ऊभी लकीररूप ऐसी ''' संदृष्टि करनेपर ऐसा हुआ व | १२ | १ इसको पूर्व-अपूर्व
ओ प
ə
कृष्टि मात्र और एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर चय ऐसा

व १२ | १ १ऊ
ओ प | ४ | १६ – ४
ə ख ख २ होता है ।

इसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम कृष्टि का द्रव्य हुआ और इस गुणकार में से क्रम से एक-एक घटाते हुये अंत में एक कम गच्छ मात्र घटानेपर द्वितीयादि कृष्टियों का द्रव्य होता है । वहां रचना ऐसी –

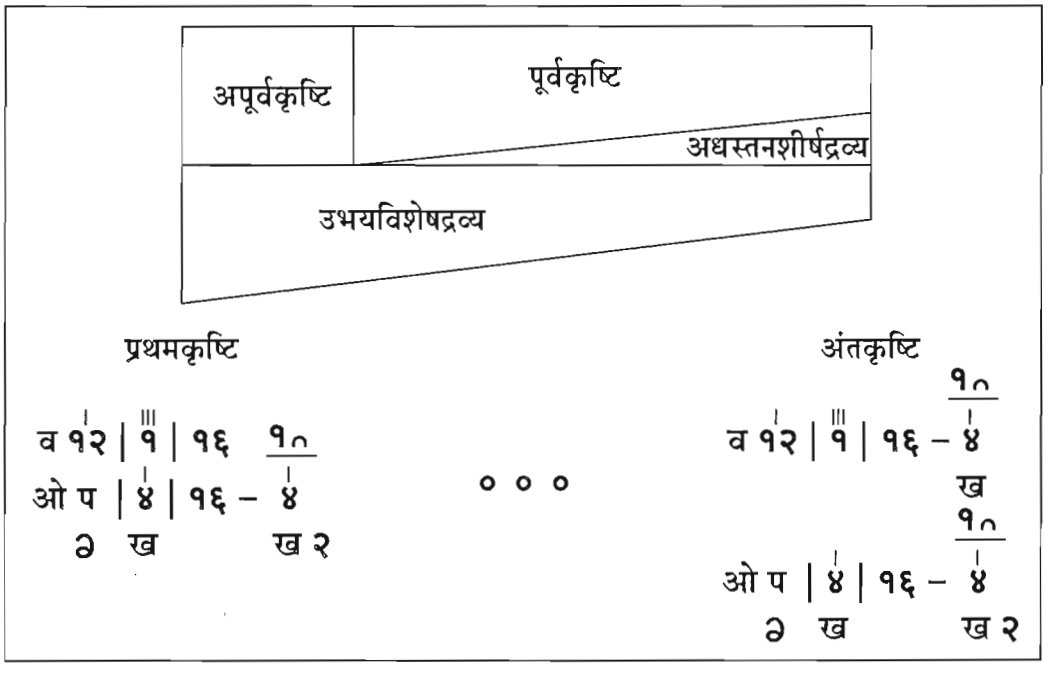

यहां रचना में लकीरों की संदृष्टि पूर्ववत् जानना । यहां मध्यमखंड रचना नहीं की है और उभयद्रव्यविशेष अल्प है । नीचे द्रव्य का प्रमाण लिखा है । ऐसे यहां एक गोपुच्छ हुआ । पुनश्च मध्यमखंड द्रव्य का एक-एक खंड समपट्टिकारूप स्थापना ।

पुनश्च द्वितीय समय संबंधी कृष्टिद्रव्य के विशेष का चयधनरूप द्रव्य सर्व उभयद्रव्यविशेष के द्रव्य में असंख्यात के गुणकार के ऊपर एक अधिक था उसको

$$\frac{१}{\text{ख २}}$$

जुदा करनेपर (अवशेष) ऐसा $\text{व १२} \mid \text{ə} \mid \overset{\downarrow}{\text{४}} \mid \overset{\downarrow}{\text{४}}$ ।

$$\text{ख २ ख}$$

$$\frac{१०}{\text{ख २}}$$

$$\text{ओ प} \mid \overset{\downarrow}{\text{४}} \mid १६ - \overset{\downarrow}{\text{४}}$$

$$\text{ə ख}$$

यहां एक चय का द्रव्य ऐसा $\text{व १२} \mid \text{ə} \quad \frac{१०}{\text{ख २}}$ इसको पूर्व-अपूर्व

$$\text{ओ प} \mid \overset{\downarrow}{\text{४}} \mid १६ -$$

$$\text{ə ख}$$

कृष्टियों के प्रमाण से गुणा करनेपर प्रथम कृष्टि में दिया द्रव्य होता है और एक-एक चय घटते क्रम से अंत में एक चय मात्र दिया द्रव्य होता है ।

इसतरह यहां द्वितीय समय संबंधी कृष्टिद्रव्य ऐसा $\text{व १२} \mid \text{ə}$, उसमें अधस्तनशीर्ष

$$\frac{\text{ओ प}}{\text{ə}}$$

द्रव्य, अधस्तनकृष्टि द्रव्य और उभयद्रव्यविशेष द्रव्य के असंख्यात के गुणकार के ऊपर एक अधिक था उसका द्रव्य इन तीनों को घटाने के लिये आगे ऐसी ≡ संदृष्टि करनेपर ऐसा $\text{व १२} \mid \text{ə} \equiv$ ।

$$\frac{\text{ओ प}}{\text{ə}}$$

इसको पूर्वापूर्वकृष्टि मात्र गच्छ का और एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर चय होता है, उसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम कृष्टि का द्रव्य आता है । इस गुणकार में से एक-एक घटाकर अंत में एक कम गच्छ मात्र घटाना, वहां संदृष्टि ऐसी –

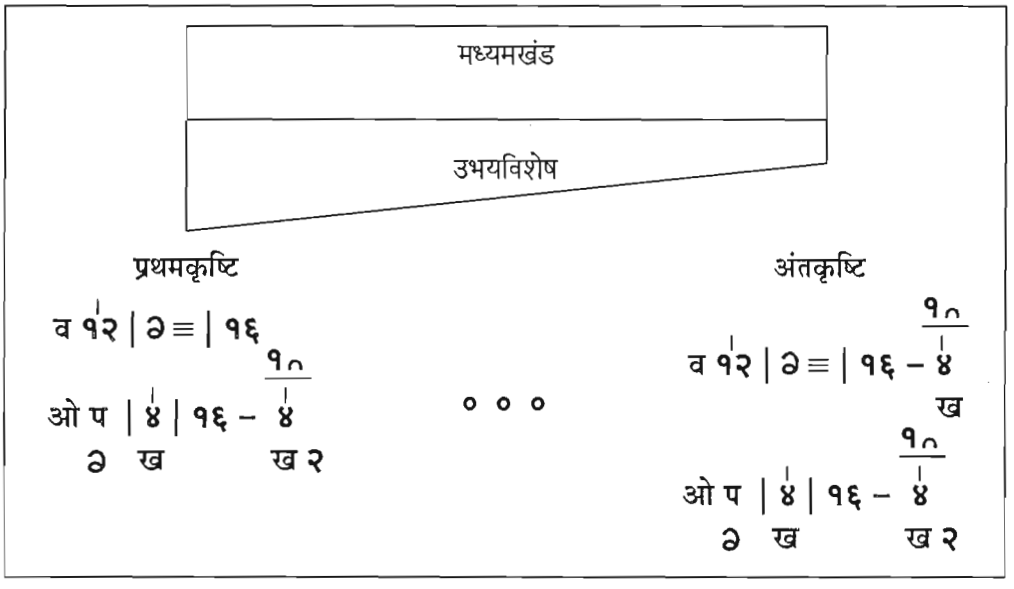

यहां मध्यमखंड की समपट्टिकारूप और नीचे उभयविशेष की क्रमहीनरूप संदृष्टि की है । ऐसे यह गोपुच्छ हुआ । इसको पूर्व गोपुच्छ के ऊपर स्थापित करके सर्व कृष्टियों का क्रमहीनरूप एक गोपुच्छ होता है । उसकी रचना ऐसी –

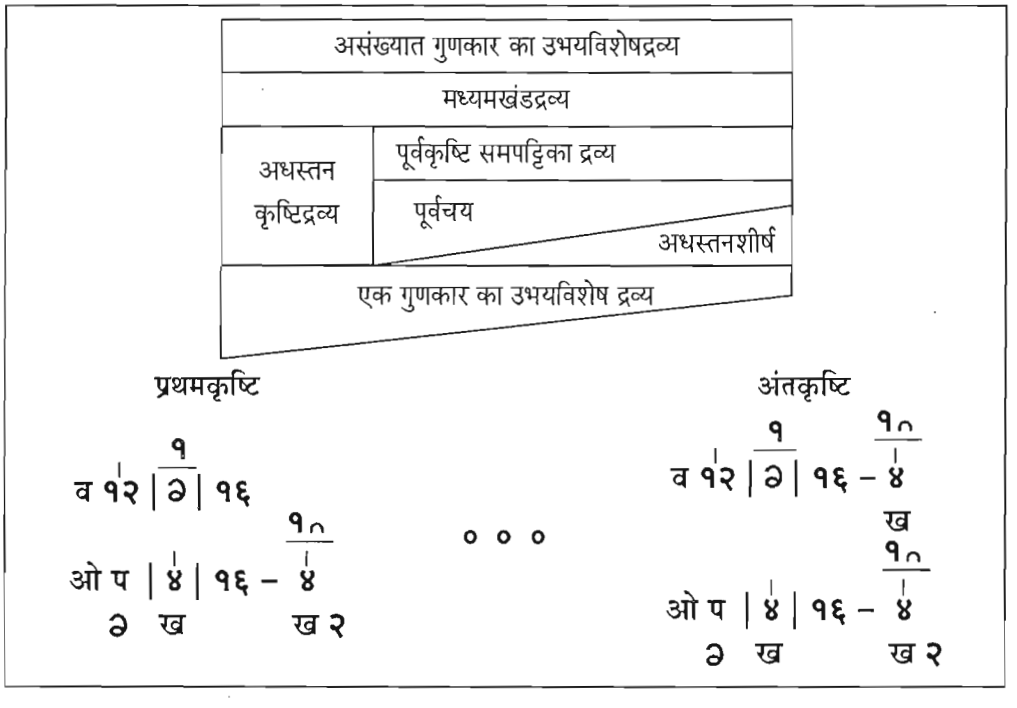

यहां पहले की रचना के ऊपर पश्चात् की रचना लिखकर क्रमहीनरूप एक गोपुच्छ किया है । वहां द्वितीय समय संबंधी कृष्टिद्रव्य के असंख्यात के गुणकार के ऊपर पहले समय संबंधी द्रव्य मिलाने के लिये एक अधिक करके उसको पूर्वापूर्वकृष्टि मात्र गच्छ का और एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर चय होता है । उसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम कृष्टि का द्रव्य होता है और इस गुणकार में से क्रम से एक-एक घटाकर एक कम गच्छ मात्र घटानेपर अंत कृष्टि का द्रव्य होता है । उसकी संदृष्टि *(उसके)* नीचे लिखी है । इसीतरह कृष्टिकरण काल के तृतीयादि समयों में यथासंभव संदृष्टि जानना ।

पुनश्च अन्य क्रिया होकर अनिवृत्तिकरण का काल पूर्ण होनेपर सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में कृष्टियों का द्रव्य ऐसा –

स ३ १२ – | ३ | १८/२१ यहां लोभ के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का और
७ | ८ | ओ | प/३

पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर कृष्टिकरण काल के प्रथम समय का द्रव्य होता है । उसको एक समय कम अंतर्मुहूर्त के समय मात्र बार असंख्यात से गुणा करनेपर उसके अंतिम समय का द्रव्य होता है । उसमें पूर्व समयों का द्रव्य मिलाने के लिये ऊपर अधिक की संदृष्टि करके यह संदृष्टि हुयी है । इसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर एक भाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एक भाग ऐसा स ३ १२ – | ३ | १८/२१
७ | ८ | ओ | प/३ | ओ | प/३ उसको प्रथम स्थिति में असंख्यातगुणा क्रम से देना । वहां इसको पचासी का भाग देकर एक, चार आदि से गुणा करनेपर प्रथमादि निषेक होते हैं । पुनश्च बहुभाग ऐसे स ३ १२ – | ३ | १८/२१ | १८/प/३
७ | ८ | ओ | प/३ | ओ | प/३ इसको द्वितीय स्थिति

में हीन क्रम से देना । वहां इसकी स्थिति अंतर्मुहूर्त मात्र, उसमें से अतिस्थापनावली घटानेपर गच्छ ऐसा **२गृ – ४** । सो उस द्रव्य में एक कम को न गिनकर पल्य के असंख्यातवें भाग का अपवर्तन करके उसको गच्छ का और एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर चय होता है । उसको ~~एक~~ दो गुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम निषेक तथा गुणकार में से क्रम से एक आदि घटाते हुये अंत में एक कम गच्छ मात्र घटानेपर अन्य निषेकों में दिया द्रव्य होता है । वहां संदृष्टि में अधिक क्रम युक्त प्रथम स्थिति की रचना की, उसके ऊपर अंतरायाम की शून्यरूप संदृष्टि की, उसके ऊपर द्वितीय स्थिति की और वहां अतिस्थापनावली की संदृष्टि की है । उसके आगे प्रथम और द्वितीय स्थिति के निषेकों में दिये द्रव्य की संदृष्टि जानना ।

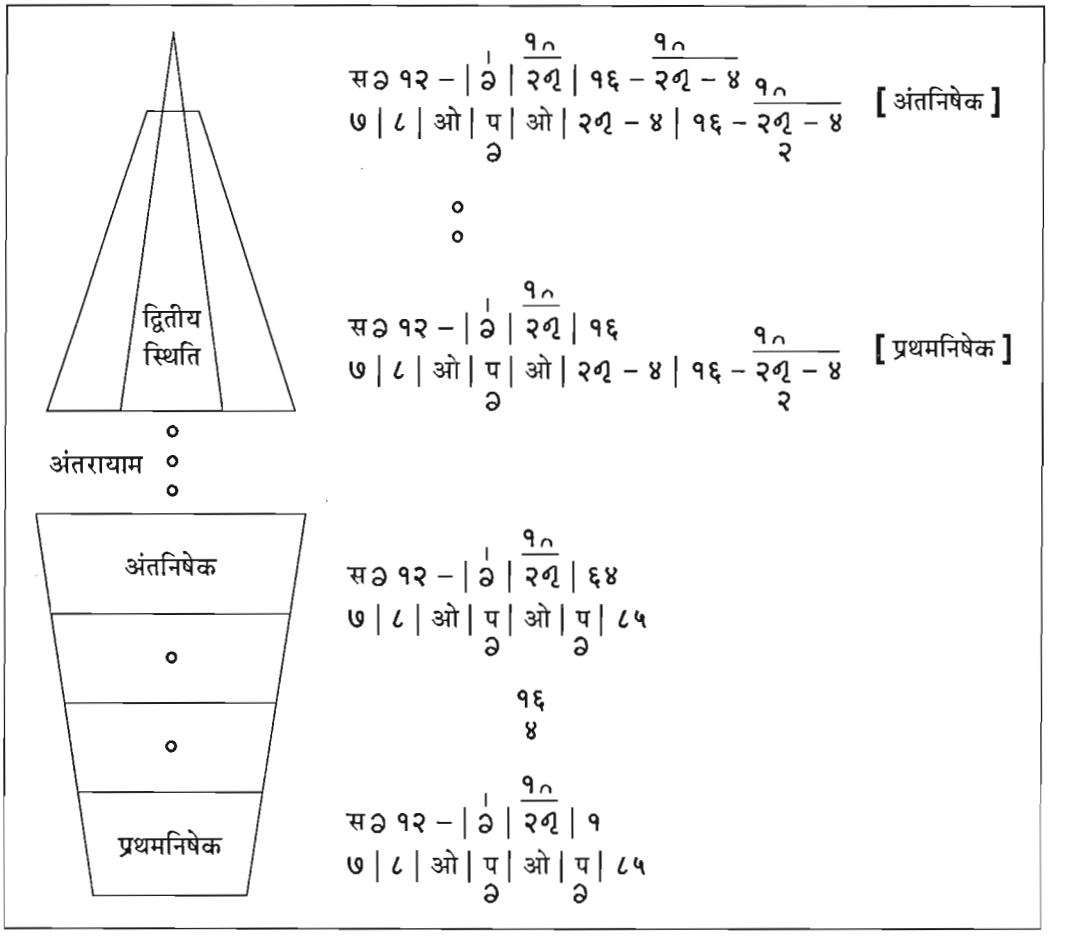

पुनश्च कृष्टिकरण के प्रथम समय में की हुयी कृष्टियों के प्रमाण में अन्य समयों में की हुयी कृष्टियों का प्रमाण मिलाने के लिये ऊपर अधिक की ऐसी ' संदृष्टि करनेपर सर्वकृष्टियों का प्रमाण ऐसा $\overset{|}{४}_{\text{ख}}$ । इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग ऐसा $\overset{|}{४}_{\text{ख}}\ \frac{१८}{\text{प}}_{\text{ə}}$ यह उदयरूप कृष्टियों का प्रमाण है । अवशेष एकभाग ऐसा $\overset{|}{४}_{\text{ख}\ \text{प}}$ इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग ऐसे – $\overset{|}{४}_{\text{ख}\ \text{प}\ \text{प}}\ \frac{१८}{\text{प}}_{\text{ə}}$ । उनके आधे प्रमाणवाली तो कृष्टिकरण काल के अंत समय में की हुयी जो आदि की जघन्यादि कृष्टि अनुदयरूप हैं ।

पुनश्च आधे ऐसे $\overset{|}{४}_{\text{ख}\ \text{प}\ \text{प}\ २}\ \frac{१८}{\text{प}}_{\text{ə}}$ इसमें से रहा एक भाग ऐसा $\overset{|}{४}_{\text{ख}\ \text{प}\ \text{प}}\ १$ मिलाने के लिये आगे के गुणकार में दो से भाजित एक कम था, वहां दो से भाजित एक अधिक करनेपर ऐसे $\overset{|}{४}_{\text{ख}\ \text{प}\ \text{प}\ २}\ \frac{१}{\text{प}}_{\text{ə}}$ प्रमाण सहित कृष्टिकरण काल के प्रथम समय में की हुयी अंत की उत्कृष्ट तक कृष्टि अनुदयरूप होती है । यहां पल्य के असंख्यातवें भाग की सहनानी पांच का अंक करनेपर जो एकभाग ऐसा $\overset{|}{४}_{\text{ख}\ \text{प}}$ था उसको पांच

का भाग देकर बहुभाग के आधे ऐसे ४ | २ और इन्हीं में एक अवशेष भाग
ख प | ५
ə

मिलानेपर ऐसा होता है – ४ | ३ इसतरह सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में उदय,
ख | प | ५
ə

अनुदय कृष्टियों का प्रमाण जानना । यहां रचना ऐसी –

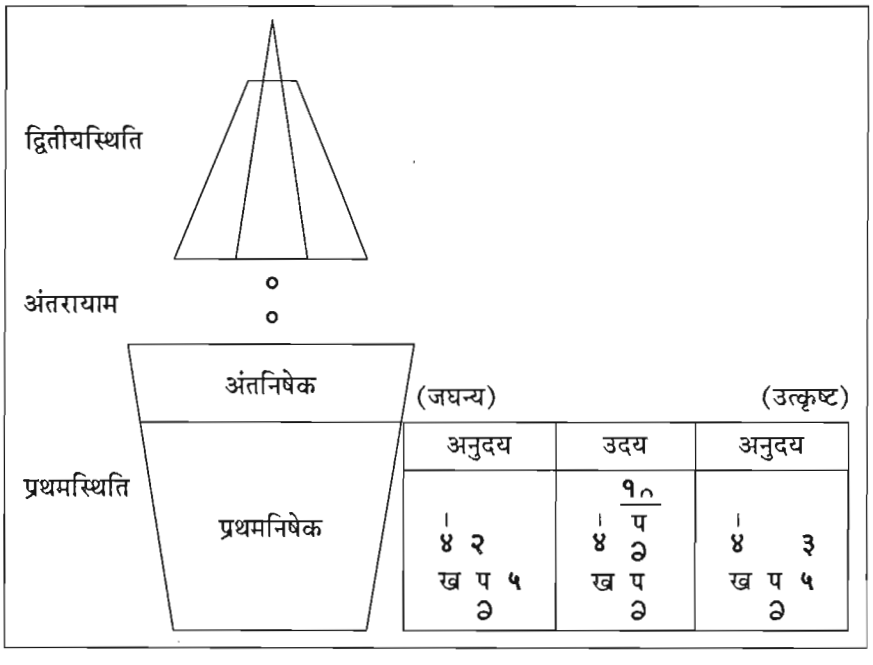

यहां प्रथम स्थिति, अंतरायाम, द्वितीय स्थिति की पूर्ववत् रचना करके प्रथम स्थिति के प्रथम समय संबंधी निषेकों की कृष्टियों में आदि की जघन्यादि अनुदय कृष्टि का और उदय आने योग्य बीच की कृष्टियों का और अंत की उत्कृष्ट तक अनुदयकृष्टियों का प्रमाण लिखा है । पुनश्च सूक्ष्मसाम्पराय के द्वितीय समय में पूर्वोक्त अंत की अनुदयकृष्टियों को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर एकभाग मात्र कृष्टि ऐसी ४ | ३ | १ नवीन अनुदयरूप होती है । वे कृष्टि प्रथम समय की
ख | प | ५ | प
ə ə

उदयकृष्टियों में अंत की कृष्टि जानना ।

तथा पूर्वोक्त अनुदयकृष्टियों के पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र कृष्टि ऐसी
।
४ २
ख प | ५ | प नवीन उदयरूप होती है । वे कृष्टि प्रथम समय की अनुदयकृष्टियों
  ३ ३
में से अंत की कृष्टि जानना ।

यहां नवीन अनुदयकृष्टियों में से नवीन उदयकृष्टियों का प्रमाण घटानेपर
।
४ १
ऐसे ख प | ५ | प विशेष से हीन द्वितीय समय में उदयकृष्टियों का प्रमाण
  ३ ३
होता है । ऐसे ही तृतीयादि समयों में विधान जानना । उनकी रचना कथन के अनुसार ऐसी –

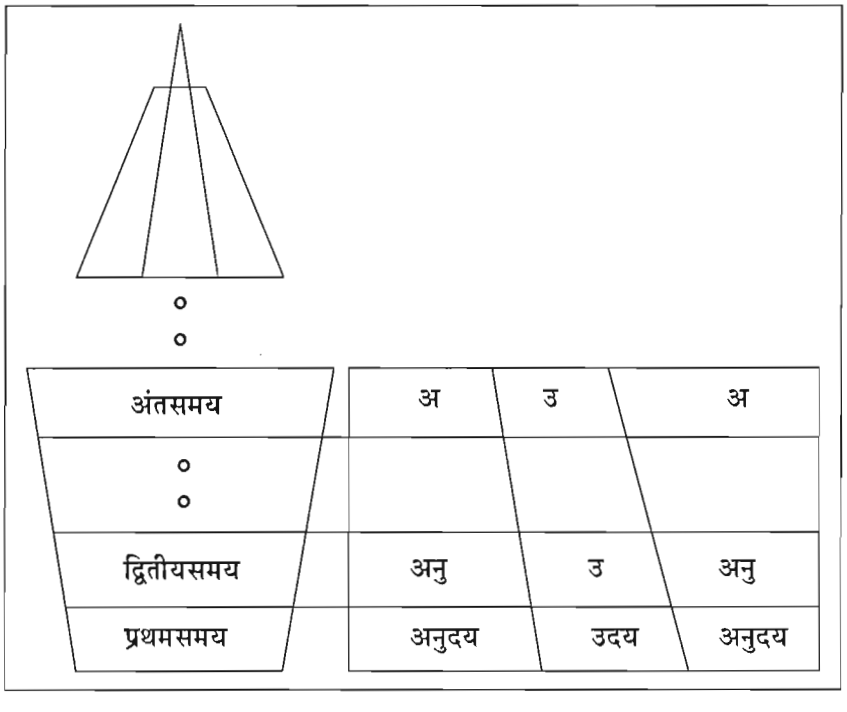

यहां पूर्वोक्त प्रकार से प्रथम स्थिति आदि की संदृष्टि करके वहां प्रतिसमय आदि की अनुदयकृष्टि घटती जाती है, बीच की उदयकृष्टि विशेष हीन होती हुयी और अंत की अनुदयकृष्टि बढ़ती हुयी अंत में और आदि में हुयी उनकी संदृष्टि की

है । उनके प्रमाण की संदृष्टि वहां यथासंभव लिखना । *(गाथा २१९)*

पुनश्च सर्व कृष्टियों का द्रव्य पूर्वोक्त प्रकार से ऐसा $\frac{\text{स}\partial\,१२ - |\,\partial\,|\,\frac{१\cap}{२\eta}}{७\,|\,८\,|\,ओ\,|\,\frac{प}{\partial}}$

इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर प्रथम फालि, इसको क्रम से असंख्यात से गुणा करनेपर द्वितीयादि फालि होती हैं । द्विचरम फालि तक की सर्व फालियों का द्रव्य घटानेपर उस सर्व द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर वहां बहुभाग मात्र अंत फालि का द्रव्य होता है । उनको सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथमादि समयों में उपशमाता है । उनकी संदृष्टिरूप रचना ऐसी –

अंत फालि	$\frac{\text{स}\partial\,१२ - |\,\partial\,|\,\frac{१\cap}{२\eta}\,|\,\frac{१\cap}{\frac{प}{\partial}}}{७\,|\,८\,|\,ओ\,|\,\frac{प}{\partial}\,|\,\frac{प}{\partial}}$
	० ० ०
द्वितीय फालि	$\frac{\text{स}\partial\,१२ - |\,\partial\,|\,\frac{१\cap}{२\eta}\,|\,\partial}{७\,|\,८\,|\,ओ\,|\,\frac{प}{\partial}\,|\,\frac{प}{\partial}}$
प्रथम फालि	$\frac{\text{स}\partial\,१२ - |\,\partial\,|\,\frac{१\cap}{२\eta}}{७\,|\,८\,|\,ओ\,|\,\frac{प}{\partial}\,|\,\frac{प}{\partial}}$

पुनश्च उपशांतकषाय के प्रथमादि समयों में उदयादि अवस्थिति गुणश्रेणी आयाम है । वहां प्रथम समय में एक कर्म का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स}\partial\,१२ -}{७}$ उसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर एक भाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर एक भाग ऐसा $\frac{\text{स}\partial\,१२ -}{७\,|\,ओ\,|\,\frac{प}{\partial}}$ उसको गुणस्थान काल अंतर्मुहूर्त, उसका संख्यातवां भाग

ऐसा $\frac{२\eta}{४}$ उसमें गुणश्रेणी विधान से द्रव्य देना । पुनश्च बहुभाग ऐसा $\frac{स\ ७\ ओ\ \frac{१८}{ए}\ प}{ए}$ उपरितन स्थिति में विशेष घटते क्रम से देना ।

वहां संदृष्टि ऐसी –

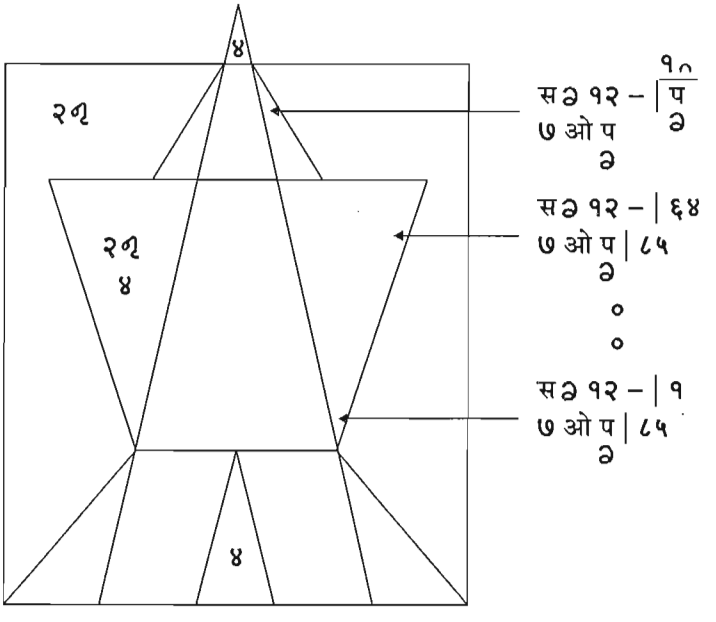

(गाथा ३०५ की टीका)

यहां पहले उदयावली गुणश्रेणी थी, उनकी संदृष्टि नीचे क्रमहीनरूप, ऊपर क्रमअधिकरूप यहां हुयी । उदयादि गुणश्रेणी की नीचे ही से लेकर क्रमअधिकरूप संदृष्टि की और उसके ऊपर उपरितन स्थिति की संदृष्टि की है और वहां दिये द्रव्य की संदृष्टि आगे की है ।

वहां प्रथम समय में की हुयी गुणश्रेणी के अंत समय में उत्कृष्ट प्रदेशोदय होता है । यहां प्रथम समयकृत गुणश्रेणी का अंत निषेक ऐसा $\frac{स\ ७\ ओ\ ए\ १२ - ६४}{प\ ८५}$, द्वितीय समयकृत गुणश्रेणी का द्विचरम निषेक ऐसा $\frac{स\ ७\ ओ\ ए\ १२ - १६}{प\ ८५}$ ऐसे क्रम से मिले

गुणश्रेणी मात्र द्रव्य ऐसा **स ə १२** – इसमें से इस समय संबंधी गोपुच्छद्रव्य ऐसा –
७ ओ प
ə

स ə १२ – $\overline{|ृ|}$ **१६ – २ृ** साधिक करनेपर यहां उत्कृष्ट प्रदेशोदय होता है । इस
७ | ८ | ओ | १२ | १६ | ४

तरह उपशम-श्रेणी चढ़ने के विधान में संदृष्टि कही ।

अब उतरने के विधान में संदृष्टि कहते हैं – *(गाथा ३०८ से प्रारंभ)*

वहां भवक्षय से उपशांतकषाय से गिरनेवाला *(जीव)* देव असंयमी होता है । उसके प्रथम समय में उदयरूप मोह प्रकृतियों के कर्म का द्रव्य ऐसा **स ə १२** –
७
उसका अपकर्षण करके उसको असंख्यातलोक का भाग देकर एकभाग को उदयावली में देकर बहुभाग उदयावली से बाह्य अंतरायाम और द्वितीय स्थिति में हीन क्रम से देता है । उदय रहित मोह प्रकृति का द्रव्य ऐसा **स ə १२** – उसको अपकर्षण करके
७
उदयावली से बाह्य निषेक, अंतरायाम और द्वितीय स्थिति में पूर्वोक्त प्रकार से हीनक्रम से देता है । वहां संदृष्टि ऐसी –

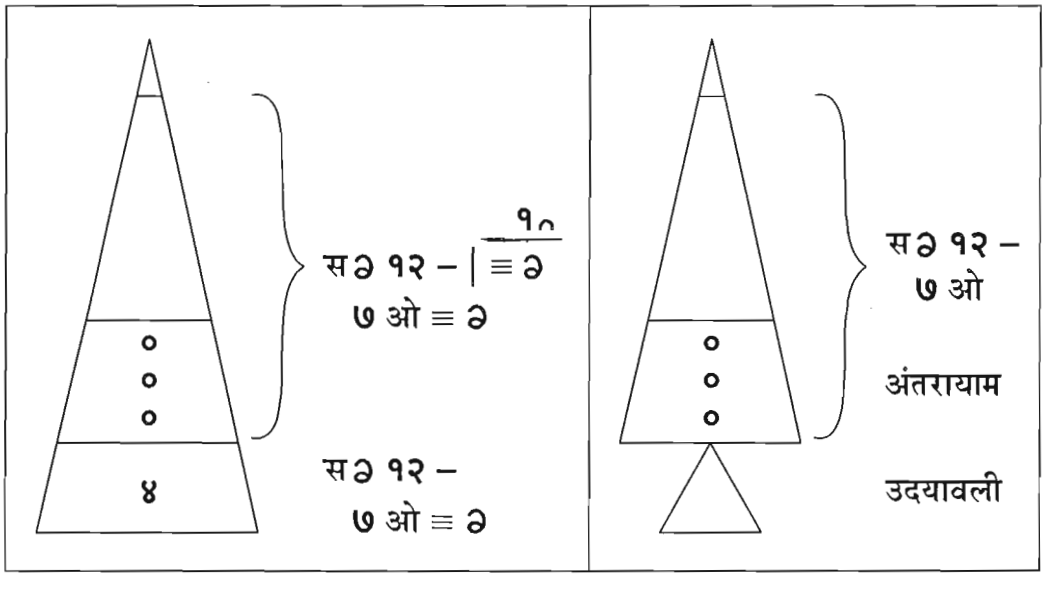

यहां सर्वत्र हीन क्रम से द्रव्य दिया है इसलिए हीन क्रमरूप संदृष्टि की है । वहां उदयावली आदि के विभाग के लिये बीच में लकीर की संदृष्टि की है ।

पुनश्च अद्धाक्षय के निमित्त से उपशांतकषाय से गिरकर सूक्ष्मसाम्पराय में आता है, वहां प्रथम समय में उदयवान संज्वलन लोभ के द्रव्य का अपकर्षण करके उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग को उदयादि गुणश्रेणी आयाम में गुणकार क्रम से देकर उसके ऊपर अंतरायाम में न देकर उसके ऊपर उनके बहुभाग को द्वितीय स्थिति में विशेष हीन क्रम से देता है ।

पुनश्च उदय रहित अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान लोभ का द्रव्य अपकर्षण करके पूर्वोक्त प्रकार से उदयावली बाह्य गुणश्रेणी आयाम में देना, अंतरायाम में नहीं देना, उपरितन स्थिति में देना ।

ज्ञानावरणादि छह कर्मों का द्रव्य अपकर्षण करके उदयावली में हीन क्रम से, गुणश्रेणी आयाम में गुणकार क्रम से, उपरितन स्थिति में हीन क्रम से देना । उसकी संदृष्टि रचना ऐसी –

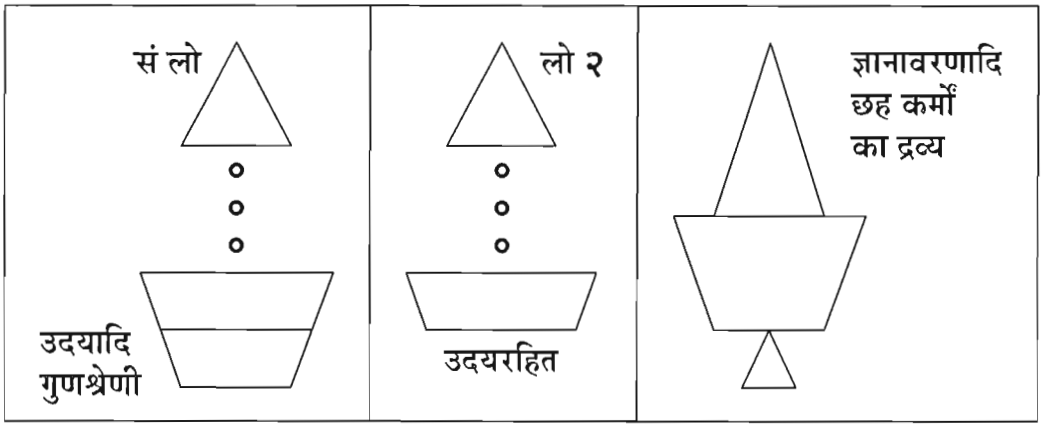

यहां दिये द्रव्य की संदृष्टि यथासंभव जान लेना ।

पुनश्च सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में सर्वकृष्टि ऐसी $\frac{1}{4}$ उसको पल्य के

ख

असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर बहुभाग मात्र ऐसी $\frac{\text{१८}}{\text{ख प ३ प ३}}$ उदयकृष्टि हैं ।

पुनश्च एकभाग को अंकसंदृष्टि की अपेक्षा पांच का भाग देकर दो भाग मात्र आदि कृष्टि में अनुदयरूप हैं और तीन भाग मात्र अंत कृष्टि में अनुदयरूप हैं वे ऐसी $\frac{\text{४}}{\text{ख प ३}} \Big| \frac{\text{२}}{\text{५}}$ और $\frac{\text{४}}{\text{ख प ३}} \Big| \frac{\text{३}}{\text{५}}$ ।

पुनश्च द्वितीय समय में आदि कृष्टियों को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र उदयकृष्टियों में से आदि की नवीन कृष्टि अनुदयकृष्टिरूप होती हैं तथा अंत की अनुदयकृष्टियों की वैसे ही भाग देनेपर एकभाग मात्र अंत की अनुदयकृष्टियों में से नवीन कृष्टि उदयरूप होती हैं ।

वहां पूर्व उदयकृष्टियों में से घटी हुयी कृष्टि ऐसी $\frac{\text{४}}{\text{ख प ३}} \Big| \frac{\text{२}}{\text{५}} \Big| \frac{}{\text{प ३}}$ और बढ़ी हुयी कृष्टि ऐसी $\frac{\text{४}}{\text{ख प ३}} \Big| \frac{\text{३}}{\text{५}} \Big| \frac{}{\text{प ३}}$ । बढ़ी हुयी में से घटी हुयी घटानेपर इतनी $\frac{\text{४}}{\text{ख प ३}} \Big| \frac{\text{१}}{\text{५}} \Big| \frac{}{\text{प ३}}$ कृष्टि पूर्व उदयकृष्टियों से अधिक यहां उदयकृष्टि जानना । *(अर्थात् प्रथम समय की उदयकृष्टि से द्वितीय समय की उदयकृष्टि विशेष अधिक जानना, उनका प्रमाण* $\frac{\text{४}}{\text{ख प ३}} \Big| \frac{\text{१}}{\text{५}} \Big| \frac{}{\text{प ३}}$ *है ।)*

इसीतरह तृतीयादि समयों में क्रम जानना ।

वहां संदृष्टि रचना ऐसी –

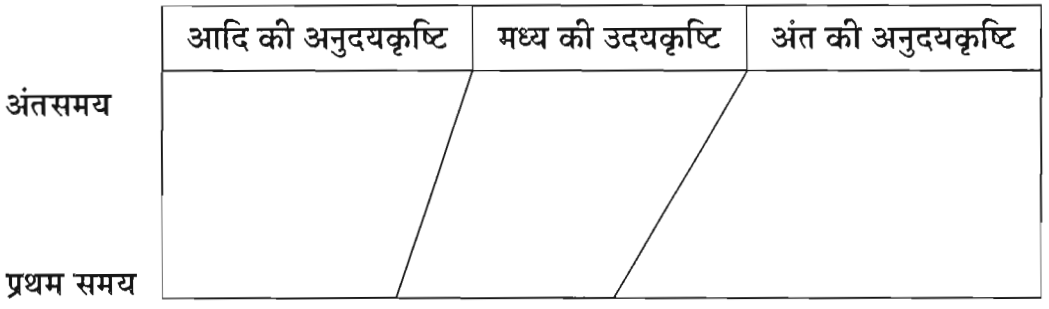

यहां आदि की अनुदयकृष्टि अधिक क्रमरूप, मध्य की उदयकृष्टि विशेषअधिकरूप, अंत अनुदयकृष्टि हीनक्रमरूप जानना ।

पुनश्च अनिवृत्तिकरण लोभवेदक कालादि में गुणश्रेणी आदि की सुगम संदृष्टि है ।

पुनश्च क्रोधवेदक काल के *(गाथा ३२१)* प्रथम समय में क्रोध का द्रव्य ऐसा **स ७ १२** – उसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर ऐसा **स ७ १२** – इसको पल्य
८ **८ | ओ**

के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग ऐसा **स ७ १२** – | **१** उदयादि गुणश्रेणी
८ | ओ | **प**
७

आयाम में गुणकार क्रम से देना । वहां इसको अंकसंदृष्टि से पचासी का भाग देकर एक आदि से गुणा करनेपर प्रथमादि निषेक होते हैं ।

पुनश्च बहुभाग में से कितना ही द्रव्य देकर अंतरायाम को पूरता है । *(शेष अंतर में द्रव्य देकर वहां निषेक रचना होती है ।)*

वहां क्रोधद्रव्य को साधिक डेढ़ गुणहानि का भाग देकर द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक का द्रव्य ऐसा **स ७ १२** – इसको अंतरायाम का गच्छ ऐसा **२१** से गुणा
८ | १२

करनेपर समपट्टिका धन ऐसा **स ७ १२** – | **२१** । प्रथम निषेक के द्रव्य को
८ | १२

दोगुणहानि का भाग देनेपर चय होता है **स ७ १२** – उसको दोगुणा करनेपर
८ | १२ | १६

नीचे की गुणहानि का चय ऐसा स ∂ १२ – | २ ।
७ | ८ | १२ | १६

इसको एक अधिक गच्छ से और गच्छ के आधे से गुणा करनेपर उत्तरधन ऐसा
१
स ∂ १२ – | २ | २गृ | २गृ मिलाने के लिये समपट्टिकाधन के ऊपर साधिक की
७ | ८ | १२ | १६ | २

संदृष्टि ऐसी ' करनेपर अंतरायाम में दिया द्रव्य ऐसा स ∂ १२ – | २गृ इसको गच्छ
७ | ८ | १२

ऐसा २गृ का और एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि १६ – १०/२गृ/२ का भाग
देनेपर चय आता है । इसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम निषेक तथा उस गुणकार में से क्रम से एक-एक घटाकर अंत में एक कम गच्छ को घटानेपर अन्य निषेक होते हैं ।

पुनश्च उस बहुभाग में से इतना द्रव्य घटाने के लिये आगे ऐसी – संदृष्टि
करनेपर अवशेष उपरितन स्थिति में दिया द्रव्य ऐसा स ∂ १२ – | १०/प/∂ – यहां गुणकार
७ | ८ | ओ | प/∂

का हीनपना न गिनकर पल्य के असंख्यातवें भाग का अपवर्तन करनेपर ऐसा
स ∂ १२ – इसको साधिक डेढ़ गुणहानि का और दोगुणहानि का भाग देनेपर चय
७ | ८ | ओ
होता है । उसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक और
इसको आधे अन्योन्याभ्यस्तराशि ऐसी प/∂२ का भाग देकर उस दोगुणहानि के गुणकार
में से एक कम गुणहानि आयाम ऐसा १०/८ घटानेपर *(अंत गुणहानि के)* अंत निषेक
का द्रव्य होता है । वहां संदृष्टि रचना ऐसी –

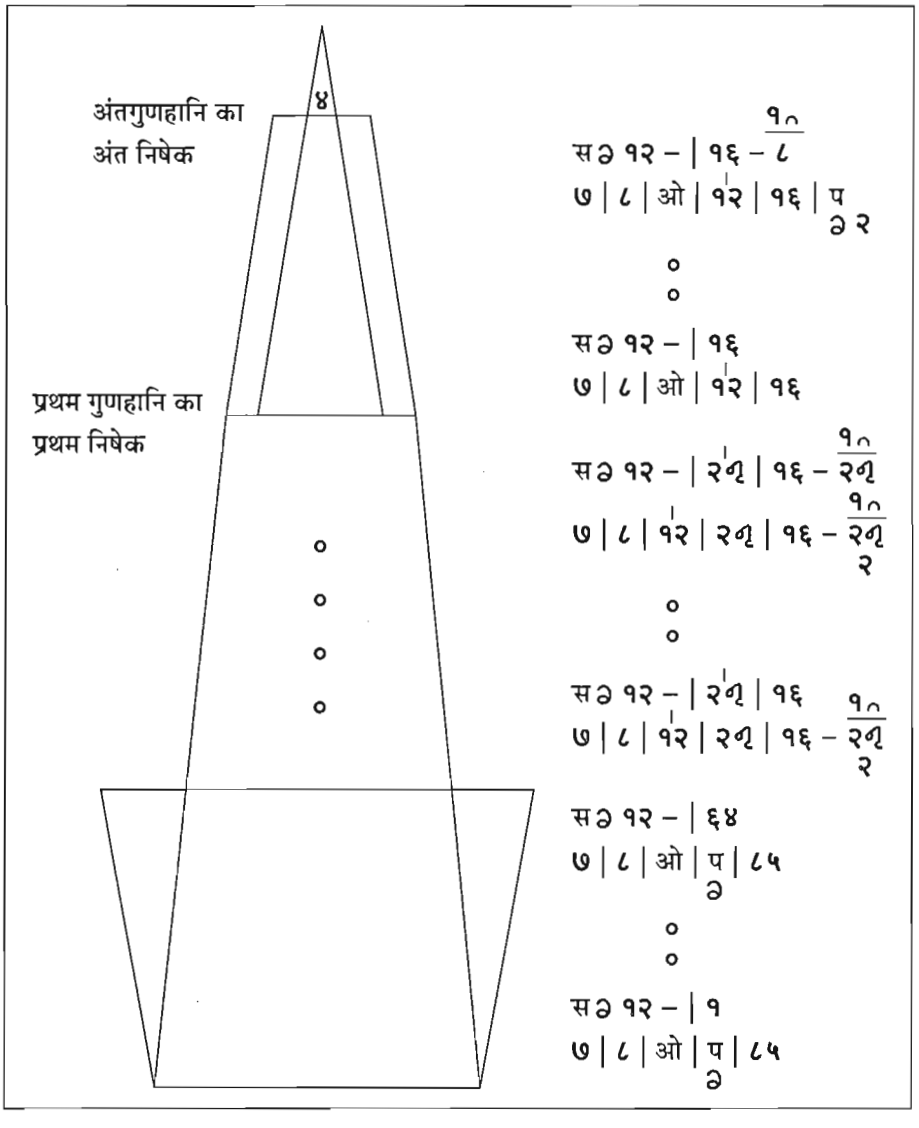

यहां नीचे गुणश्रेणी, बीच में अंतरायाम, ऊपर उपरितन स्थिति और अंत में अतिस्थापनावली की संदृष्टि करके आगे दिये द्रव्य की संदृष्टि की है ।

पुनश्च संज्वलन मानादि का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स ə १२ – | ३}}{\text{७ | ८}}$ इसमें अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स ə १२ – | ८}}{\text{७ | ख १७}}$ मिलाने के लिये साधिक की संदृष्टि

करनेपर ऐसा स७ १२ – | ३ इसको अपकर्षण करके उदयावली बाह्य गुणश्रेणी
७ | ८

आयाम, अंतरायाम और उपरितन स्थिति में दिया द्रव्य पूर्वोक्त विधान जानकर संदृष्टि जानना । स्थितिबंधादि की संदृष्टि सुगम है । वहां संख्यात की सहनानी पांच का अंक इत्यादि यथासंभव जान लेना ।

पुनश्च उतरनेवाले सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में प्रारंभ की हुयी गुणश्रेणी के आयाम से अधःकरण के प्रथम समय में प्रारंभ की हुयी अवस्थित गुणश्रेणी का आयाम संख्यात गुणा है । वहां संदृष्टि ऐसी –

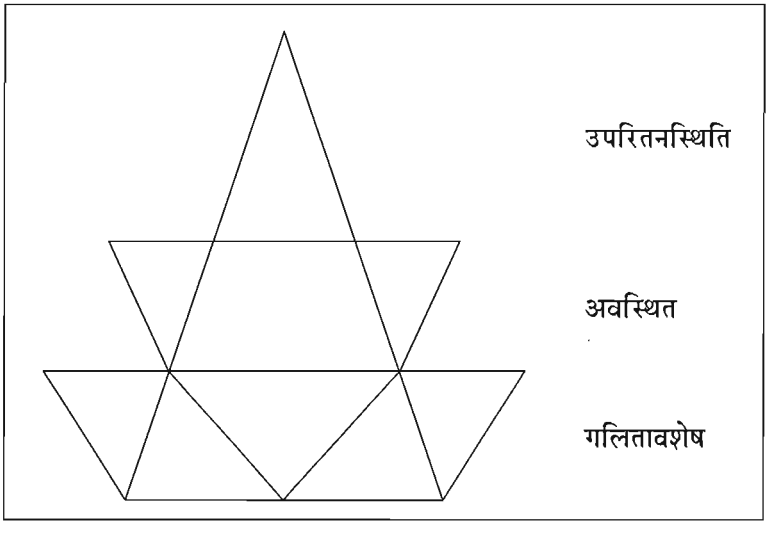

यहां क्रमहीनरूप निषेकों की संदृष्टि की है; तथा अल्प प्रमाणवाली गलितावशेष और बहुत प्रमाणवाली अवस्थित गुणश्रेणी आयाम की संदृष्टि अधिक क्रम सहित की है । इसतरह उपशमश्रेणी के उतरने के विधान की संदृष्टि कही ।

पुनश्च उपशमश्रेणी चढ़नेवालों के नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, सात नोकषाय, तीन क्रोध, तीन मान, तीन माया, तीन लोभ, एक सूक्ष्म लोभ का उपशमाना क्रम से होता है । विशेष इतना – नपुंसकवेद सहित चढ़नेवाले के स्त्रीवेद के उपशमनकाल में नपुंसकवेद का भी उपशमाना होता है । वहां क्रोध सहित श्रेणी चढ़नेवाले के क्रोध तक की प्रथम स्थिति पहले होती है, पश्चात् मानादि की जुदी-जुदी प्रथम स्थिति होती

है । मान, माया, लोभ सहित चढ़नेवालों के क्रम से मान, माया, लोभ तक की प्रथम स्थिति पहले होती है, पश्चात् अवशेष की जुदी-जुदी प्रथम स्थिति होती है । वहां प्रथम स्थिति में अधिक क्रम युक्त द्रव्य देता है । इसलिए उनकी अधिक क्रम युक्त ऐसी संदृष्टि रचना होती है –

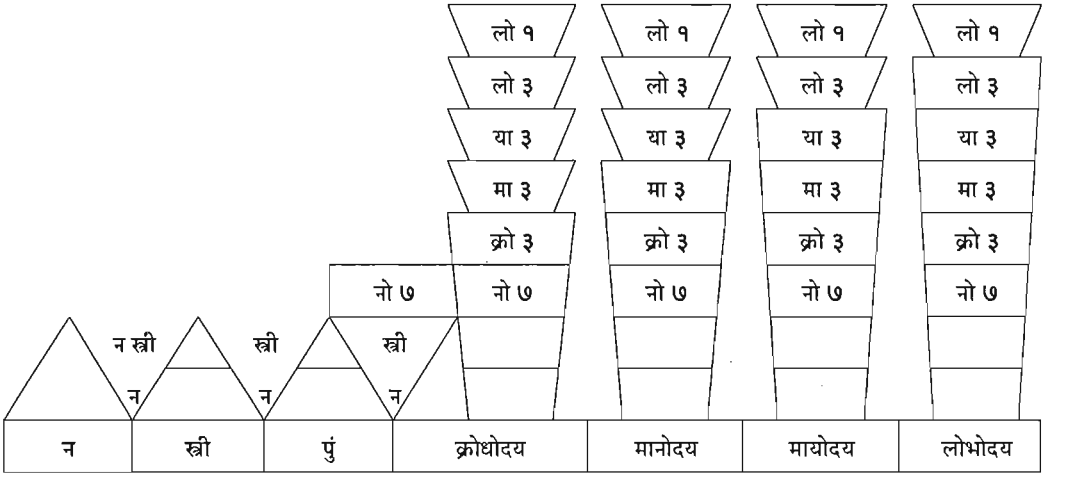

पुनश्च उपशमश्रेणी के चढ़ने और उतरने के काल के अल्पबहुत्व में संदृष्टि पूर्वोक्त प्रकार है और एक बार आदि अधिक की ऊपर एक, दो आदि बार ऊभी लकीर आदि देकर कथन के अनुसार ऐसी संदृष्टि जानना –

२ गु	२ गु	२ गु ४ दो स्थान समान	२ गु ४ दो स्थान समान	२ गु ४	२ गु ४	२ गु ४ ४

२ गु ४ ४ ४	२ गु ४ ४ ४ ४	२ १/गु	२ १/गु तीन स्थान समान	२ १/गु अथवा २ गु गु – ३

२ गु २/३	२ गु २/३	२ गु	२ १/गु	१/२ गु	१/२ गु	१/२ गु	१/२ गु	२ गु	१/२ गु	१/२ गु

$\frac{1}{2\eta}$	$\frac{1}{2\eta}$	$\frac{1}{2\eta}$	2η	$\frac{\|}{2\eta}$	$\frac{\|\|}{2\eta}$	$\frac{\|\|\|}{2\eta}$	2η	$\frac{1}{1\ 8}$	$\frac{1\ 2}{1\ 8}$	$\frac{\|}{2\eta}$

$\frac{\|\|}{2\eta}$	$\frac{\|\|\|}{2\eta}$	$\frac{\|\|\|\|}{2\eta\ 4}$	$\frac{\|\|\|\| \|}{2\eta\ 4}$	$\frac{\|\|\|\| \|}{2\eta\ 4\ 4}$	$\frac{\|\|\|\| \| \|}{2\eta\ 4\ 4}$	$2\eta\eta$	$\frac{\|}{2\eta\eta}$	$\frac{\|\|}{2\eta\eta}$

$\frac{\|\|\|}{2\eta\eta}$	$\frac{\|\|\|\|}{2\eta\eta}$	४	इससे आगे के नौ स्थान संख्यातगुणा हैं, उसके आगे एक स्थान दोगुणा है ।

$2\eta - 2$	मु १६	मु २४	मु ३२	मु ४८	या १	या २	मा ४

मा २ मा ४ मा ८	व १६	व ३२	व ६४	इससे आगे छह स्थान संख्यातगुणे हैं ।

इससे आगे छह स्थान असंख्यातगुणे हैं ।	$\frac{प}{५}$	$\frac{प\ ३}{५\ २}$	$\frac{प\ २}{५}$	$\frac{प\ ३}{५\ २\ ३}$	$\frac{प}{\eta\eta}$

$\frac{प\ ०\ ०\ ०\ ०\ ०\ प}{\eta\eta\eta\eta\ \ \ \eta}$	इससे आगे दो स्थान संख्यातगुणे हैं ।	सा अं को २ ४ ४ ४ ४

सा अं को २ ४ ४ ४	$\frac{१०}{\text{सा अं को २}\ -\ २\eta}$ ४ ४	$\frac{१०}{\text{सा अं को २}}$ ४ ४	सा अं को २ ४ ४	सा अं को २ ४

सा अं को २ $\frac{प}{\eta}$ ४	सा अं को २

इति उपशम चारित्राधिकार संदृष्टि समाप्त ।

इति श्री लब्धिसारटीका के अनुसार उपशमश्रेणी तक के व्याख्यान की संदृष्टि संपूर्ण हुयी ।

क्षपणासार की अर्थसंदृष्टि

अथ क्षपणासार के अनुसार युक्त क्षपकश्रेणी के व्याख्यानरूप लब्धिसार के सूत्रों के अर्थ की संदृष्टि लिखते हैं । वहां अपूर्वकरण में गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडक, अनुभागकांडक की संदृष्टि उपशमश्रेणीवत् यहां जानना तथा यहां जो विशेष हैं उनकी यथासंभव संदृष्टि जानना । यहां सत्त्वद्रव्य में गुणश्रेणी आदि और बंधद्रव्य की संदृष्टि ऐसी –

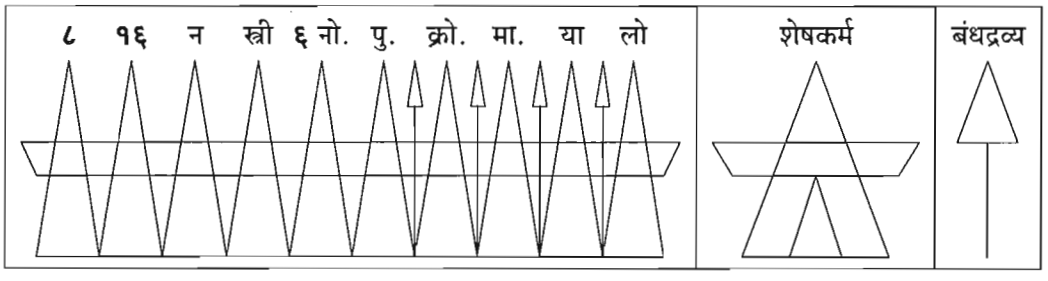

यहां आठ आदि प्रकृतियों की जिस क्रम से क्षपणा होती है, उसी क्रम से उनके सत्त्वरूप निषेकों की क्रमहीन संदृष्टि करके उनमें नीचे उदयावली को हीनक्रमरूप, बीच में गुणश्रेणी आयाम की अधिकक्रमरूप, ऊपर उपरितन स्थिति की हीनक्रमरूप रचना जानना । पुनश्च पुरुषवेद और क्रोध की प्रथम स्थिति स्थापित कर उसकी जुदी हीनक्रमरूप संदृष्टि दिखाते हैं । इस रचना के बीच-बीच पुरुषवेद और क्रोधादि के बंधद्रव्य की जुदी संदृष्टि ऐसी ⍋ दिखायी है । यहां नीचे आबाधा और ऊपर निषेकों की संदृष्टि जानना । उसके आगे अवशेष कर्मों की हीनक्रमरूप सत्त्वनिषेक रचना में नीचे उदयावली, बीच में गुणश्रेणी, ऊपर उपरितन स्थिति की रचना जानना । उसके आगे अवशेष कर्मों के बंधद्रव्य की संदृष्टि है । वहां नीचे आबाधा और ऊपर निषेकों की रचना जानना ।

पुनश्च अनिवृत्तिकरण में स्थितिबंधापसरणादि की संदृष्टि सुगम है । आठ कषाय, सोलह प्रकृतियों की क्षपणा अंश, देशघातिकरण, अंतरकरण में संदृष्टि पूर्वोक्त प्रकार तथा विशेष है । उसकी यथासंभव संदृष्टि जानना । नपुंसकवेद के संक्रमणकाल में पूर्वोक्त प्रकार से नपुंसकवेद का सत्त्वद्रव्य ऐसा **स ७ १२ – | ४२** उसको गुणसंक्रमण

का भाग देनेपर पुरुषवेद में संक्रमण हुये द्रव्य का प्रमाण होता है; और पूर्वोक्त प्रकार से पुरुषवेद का सत्त्वद्रव्य ऐसा $\frac{\text{स}\ 9\ 12 - | 2}{7 | 10 | 48}$ उसको अपकर्षण भागहार और पल्य का असंख्यातवां भाग और अंकसंदृष्टि की अपेक्षा पचासी का भाग देनेपर गुणश्रेणी का प्रथम निषेक होता है । उसमें पूर्व सत्त्व निषेक साधिक करनेपर पुरुषवेद का उदयद्रव्य होता है । पुनश्च समयप्रबद्ध ऐसा स ९ उसको सात का भाग देनेपर मोह का और उसको दो का भाग देनेपर पुरुषवेद का बंधद्रव्य होता है । इनकी संदृष्टि ऐसी –

संक्रमण नपुंसकवेद द्रव्य	स ९ १२ – | ४२ ७ | १० | ४८ | गु
उदय पुरुषवेद द्रव्य	स ९ १२ – | २ ७ | १० | ४८ | ओ | $\frac{\text{प}}{9}$ | ८५
बंध पुरुषवेद द्रव्य	स ९ ७ | २

पुनश्च अश्वकर्ण में अंकसंदृष्टि द्वारा जैसे व्याख्यान में कथन किया वैसे यहां अर्थसंदृष्टि द्वारा पहले अनुभागसत्त्व एक गुणहानि संबंधी स्पर्धकशलाका ९ को नानागुणहानि से गुणा करनेपर मान के स्पर्धक ऐसे ९ ना, इसको अनंत का भाग देकर क्रम से एक, दो, तीन अधिक अनंत से गुणा करनेपर क्रोध, माया, लोभ के ऐसे $9\ \text{ना}\ \frac{1}{\text{ख}}$, $9\ \text{ना}\ \frac{2}{\text{ख}}$, $9\ \text{ना}\ \frac{3}{\text{ख}}$ । यहां क्रोधादि के गुणकार के ऊपर एक, दो, तीन अधिक थे, उनको जुदा करनेपर वे ऐसे $9\ \text{ना}_{\text{ख}}$, $9\ \text{ना}_{\text{ख}} | 2$, $9\ \text{ना}_{\text{ख}} | 3$ होते हैं । मान के गुणकार में अधिक है नहीं, वहां शून्य लिखना ।

पुनश्च क्रोध का जुदा किया हुआ अधिक का प्रमाण और अधिक जुदा करके

अपवर्तन करनेपर क्रोध के ऐसे $\frac{१}{ना}$ *(अधिक को जुदा करनेपर शेष* $\frac{ना-१}{ख}$ *)* स्पर्धकों को अनंत का भाग देकर बहुभाग ऐसे $\frac{१}{ना\ ख}$ इनको मिलानेपर क्रोधकांडक का प्रमाण होता है । अवशेष एकभाग मात्र ऐसा $\frac{१}{ना}$ क्रोध का अवशेष सत्त्व रहता है ।

उस क्रोध संबंधी बहुभागों का प्रमाण और एकभाग का अनंत बहुभाग ऐसा $\frac{१}{ना\ ख}$ मिलानेपर मानकांडक का प्रमाण होता है । अवशेष एकभाग मात्र ऐसा $\frac{१}{ना\ ख\ |\ ख}$ अवशेष सत्त्व रहता है ।

पुनश्च जुदा किया माया के अधिक का प्रमाण और क्रोधसंबंधी, मानसंबंधी कहे थे बहुभाग उनका प्रमाण और मानसंबंधी अवशेष सत्त्व एकभाग मात्र उसके अनंत बहुभाग का प्रमाण ऐसा $\frac{१}{ना\ ख\ ख}$ मिलानेपर मायाकांडक का प्रमाण होता है और अवशेष एकभाग ऐसा $\frac{१}{ना\ ख\ ख\ ख}$ अवशेष सत्त्व रहता है ।

पुनश्च जुदा किया लोभ के अधिक का प्रमाण और क्रोध, मान, माया संबंधी कहा था बहुभाग उसका प्रमाण और उस माया का अवशेष सत्त्व एकभाग मात्र उसका अनंत बहुभाग का प्रमाण ऐसा $\frac{१}{ना\ ख\ ख\ ख\ ख}$ इन सबको मिलानेपर लोभकांडक का प्रमाण आता है । अवशेष एकभाग मात्र ऐसा $\frac{१}{ना\ ख\ ख\ ख\ ख}$ अवशेष सत्त्व रहता है ।

इसतरह यहां ऊपर जुदे किये अधिक का प्रमाण लिखकर नीचे अन्य मिलायें उनका प्रमाण लिखना । उनको जोड़नेपर कांडक का प्रमाण होता है ऐसा

समझना । इस कांडकघात होने के पश्चात् अश्वकर्णकरण में अनंतगुणहानि युक्त क्रोधादि के स्पर्धक क्रमरूप होते हैं उनका प्रमाण नीचे ही नीचे लिखना । इसतरह करनेपर ऐसी संदृष्टि होती है –

क्रोध	मान	माया	लोभ
९ ना | १ ख	०	९ ना | २ ख	९ ना | ३ ख
९ ना $\frac{१०}{ख}$ ख	९ ना $\frac{१०}{ख}$ ख	९ ना $\frac{१०}{ख}$ ख	९ ना $\frac{१०}{ख}$ ख
९ ना ख	९ ना $\frac{१०}{ख}$ ख ख	९ ना $\frac{१०}{ख}$ ख ख	९ ना $\frac{१०}{ख}$ ख ख
	९ ना ख ख	९ ना $\frac{१०}{ख}$ ख ख ख	९ ना $\frac{१०}{ख}$ ख ख ख
		९ ना ख ख ख	९ ना $\frac{१०}{ख}$ ख ख ख ख
			९ ना ख ख ख ख

[*विशेषार्थ : यहां काल्पनिक संख्यायें लेकर समझेंगे ।*

९ = गुणहानि में स्पर्धक, ना = नानागुणहानि, मान में ५१२, क्रोध में ५१२ + ३, माया में ५१२ + ६ और लोभ में ५१२ + ९ स्पर्धक ।

९ ना = ५१२, ३ = ९ ना ख, *६ =* ९ ना २ ख, *९ =* ९ ना \| ३ ख *उसको पहले के समान लिखनेपर –*

	क्रोध	मान	माया	लोभ
अधिक	३	०	६	९
	५१२ | ३ ४ = ३८४	५१२ | ३ ४ = ३८४	५१२ | ३ ४ = ३८४	५१२ | ३ ४ = ३८४
	अवशेष ५१२ ४ = १२८	५१२ | ३ ४ | ४ = ९६	५१२ | ३ ४ | ४ = ९६	५१२ | ३ ४ | ४ = ९६
	कांडक ३ + ३८४ ३८७	अवशेष ५१२ ४ | ४ = ३२	५१२ | ३ ४ | ४ | ४ = २४	५१२ | ३ ४ | ४ | ४ = २४
		कांडक ३८४ + ९६ ४८०	अवशेष ५१२ ४ | ४ | ४ = ८	५१२ | ३ ४ | ४ | ४ | ४ = ६
			कांडक ६ + ३८४ + ९६ + २४ ५१०	अवशेष ५१२ ४ | ४ | ४ | ४ = २
				कांडक ९ + ३८४ + ९६ + २४ + ६ ५१९

इसतरह –

	क्रोध	मान	माया	लोभ
कांडक	३८७	४८०	५१०	५१९
अवशेष	१२८	३२	८	२

]

पुनश्च इस अपकर्षण सहित अपूर्वस्पर्धक क्रिया होती है । वहां एक परमाणु में अविभागप्रतिच्छेदों का समूह वर्ग उसकी संदृष्टि व इसको वर्गणा-वर्गणा प्रति जो चय अर्थात् विशेष है उससे गुणा करनेपर ऐसा व वि । एक स्पर्धक में जितनी वर्गणा पायी जाती हैं उनका नाम वर्गणाशलाका है उसकी संदृष्टि ४ । एक गुणहानि में स्पर्धकों का प्रमाण उसका नाम स्पर्धकशलाका उसकी संदृष्टि ९ । इन दोनों को परस्पर गुणा करनेपर गुणहानि आयाम होता है उसकी संदृष्टि ८, इसको दो से गुणा करनेपर दोगुणहानि की संदृष्टि ऐसी १६ । इससे उस विशेष को गुणा करनेपर प्रथम स्पर्धक की जघन्य वर्गणा की संदृष्टि ऐसी व वि १६ इसको दोगुणा करनेपर द्वितीय स्पर्धक की आदि वर्गणा की ऐसी व वि १६ | २ । उसी को तीनगुणा करनेपर तृतीय स्पर्धक की आदि वर्गणा की संदृष्टि ऐसी व वि १६ | ३ । इसी क्रम से प्रथम समय में किये हुये अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण स्पर्धकशलाका को असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहार का भाग देनेपर होता है वह ऐसा ९ । इससे गुणा करनेपर
ओ ə
अंत/अपूर्व स्पर्धक के आदि वर्गणा की ऐसी व वि १६ | ९ होती है । इसीतरह जानकर
ओ ə
अन्य कथन की संदृष्टि यथासंभव जान लेना ।

पुनश्च क्रोध के अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण पूर्वोक्त ऐसा ९ इसको अनंत का
ओ ə
भाग देकर क्रम से एक, दो, तीन अधिक करके गुणा करनेपर मान, माया, लोभ के अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण होता है । वे ऐसे –

क्रोध	मान	माया	लोभ
९ ओ ə	९ $\frac{१}{ख}$ ओ ə ख	९ $\frac{२}{ख}$ ओ ə ख	९ $\frac{३}{ख}$ ओ ə ख

पुनश्च क्रोधकांडक अनंतप्रमाण ऐसा ख इससे एक, दो, तीन अधिक मानादि के
कांडक ऐसे $\frac{१}{ख}$, $\frac{२}{ख}$, $\frac{३}{ख}$ । पूर्वस्पर्धक की आदि वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों को

अनंत का भाग देनेपर अपूर्वस्पर्धक की अंत वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद आते हैं जो चारों कषायों के समान हैं, उनकी संदृष्टि ऐसी $\frac{\text{व}}{\text{ख}}$ । इसको अपने-अपने अपूर्वस्पर्धकों के प्रमाण का भाग देनेपर आदि वर्गणा होती है । इसीको जघन्य वर्गणा कहते हैं । इसको दो, तीन आदि क्रम से एक-एक से बढ़ते गुणकार से गुणा करते हुये जहां अपने-अपने कांडक प्रमाण से गुणकार होता है वहां चारों कषायों की वर्गणा के समान अविभागप्रतिच्छेद होते हैं । उसके ऊपर वैसे ही एक-एक बढ़ते गुणकाररूप क्रम से उन समान वर्गणाओं के अविभागप्रतिच्छेदों से दोगुणा प्रमाण होनेपर समान वर्गणा होती हैं । इसीतरह उनसे तीनगुणा, चारगुणा आदि एक कम अनंतगुणा तक प्रमाण होता है । उसके ऊपर अंत स्पर्धक में पूर्वोक्त ऐसा $\frac{\text{व}}{\text{ख}}$ चारों कषायों की आदि वर्गणा में समान अविभागप्रतिच्छेद होते हैं । उनकी संदृष्टि ऐसी –

क्रोध	मान	माया	लोभ
$\frac{\text{व}}{\text{ख}}$ ० ०	$\frac{\text{व}}{\text{ख}}$ ० ०	$\frac{\text{व}}{\text{ख}}$ ० ०	$\frac{\text{व}}{\text{ख}}$ ० ०
$\text{ज ख} \mid \frac{१०}{\text{ख}}$ ० ०	$\frac{१}{\text{ज ख}} \mid \frac{१०}{\text{ख}}$ ० ०	$\frac{२}{\text{ज ख}} \mid \frac{१०}{\text{ख}}$ ० ०	$\frac{३}{\text{ज ख}} \mid \frac{१०}{\text{ख}}$ ० ०
$\text{ज ख} \mid २$ ० ०	$\frac{१}{\text{ज ख}} \mid २$ ० ०	$\frac{२}{\text{ज ख}} \mid २$ ० ०	$\frac{३}{\text{ज ख}} \mid २$ ० ०
ज ख ० ०	$\frac{१}{\text{ज ख}}$ ० ०	$\frac{२}{\text{ज ख}}$ ० ०	$\frac{३}{\text{ज ख}}$ ० ०
$\text{व} \quad \text{ख} \mid ९$ ओ ə	$\text{व} \quad \frac{१}{\text{ख}} \mid ९$ ओ ə ख	$\text{व} \quad \frac{२}{\text{ख}} \mid ९$ ओ ə ख	$\text{व} \quad \frac{३}{\text{ख}} \mid ९$ ओ ə ख

वहां मध्य भेदों की संदृष्टि बिंदी जानना ।

प्रथम वर्गणा को अनुभाग संबंधी डेढ़ गुणहानि से गुणा करनेपर मोह का सत्त्वद्रव्य ऐसा व १२ । इसको आवली के असंख्यातवें भाग की सहनानी नौ का अंक, उसका भाग देकर एकभाग जुदा रखकर बहुभाग के दो भाग करना । वहां एकभाग में जुदा रखा हुआ भाग मिलानेपर साधिक आधा द्रव्य कषायों का ऐसा $\text{व}\frac{\text{१२}}{\text{२}}$ और किंचित् कम आधा द्रव्य नोकषायों का ऐसा $\text{व}\frac{\text{१२}}{\text{२}} -$ ।

कषायों के द्रव्य में से साधिक चौथा भाग मात्र लोभ का द्रव्य है, किंचित् कम चौथा भाग माया का, उससे किंचित् कम क्रोध का और उससे किंचित् कम मान का द्रव्य है । यहां इस चार के भागहार को पूर्व दो के भागहार से गुणा करनेपर आठ का भागहार होता है । क्रोध के द्रव्य में $\left[\ \text{व}\frac{\text{१२}}{\text{ल}}\ \text{में}\ \right]$ नोकषायों का द्रव्य $\left[\ \text{व}\frac{\text{१२}}{\text{२}} -\ \right]$ समच्छेद करके मिलानेपर $\left[\ \text{व}\frac{\text{१२}}{\text{ल}} + \text{व}\frac{\text{१२}}{\text{२}} - \times \text{४} = \text{व}\frac{\text{१२}}{\text{ल}} \Big| \text{५}\ \right]$ क्रोध का द्रव्य पांचगुणा होता है । उनकी संदृष्टि ऐसी –

लोभ	माया	मान	क्रोध
$\text{व}\frac{\text{१२}}{\text{ल}}$	$\text{व}\frac{\text{१२}}{\text{ल}} -$	$\text{व}\frac{\text{१२}}{\text{ल}} \equiv$	$\text{व}\frac{\text{१२}}{\text{ल}} \Big\vert \text{५}$

यहां लोभ के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देनेपर अपकृष्ट द्रव्य ऐसा $\text{व}\frac{\text{१२}}{\text{ओ}\,|\,\text{ल}}$ । वहां लोभ की पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा को अपकर्षण भागहार का भाग देनेपर ऐसा $\frac{\text{व}}{\text{ओ}}$ । ऐसे ही दो कम अपकर्षण भागहार मात्र पूर्वस्पर्धक की वर्गणाओं का अपकर्षण किया द्रव्य ऐसा $\text{व} \,|\, \text{ओ} - \text{२}$ इसमें आदि वर्गणा का अपकृष्ट द्रव्य मिलाने

के लिये [व ओ − २ + व ओ = व ओ − १] दो कम की जगह एक कम करनेपर ऐसा व | ओ − १ इतना द्रव्य ग्रहण करके अपूर्वस्पर्धक की आदि वर्गणा निपजाता है । यह पूर्वस्पर्धक की आदि वर्गणा के समान है । क्योंकि वहां भी उस वर्गणा को अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग ग्रहण करनेपर बहुभाग मात्र द्रव्य अवशेष रहता है, इतना ही यह है ।

पुनश्च अपूर्वस्पर्धकों का प्रमाण ऐसा ९ | ओ और एक स्पर्धक में वर्गणाओं का प्रमाण ऐसा ४ इनको परस्पर गुणा करनेपर सर्व अपूर्वस्पर्धकों की वर्गणाओं का प्रमाण ऐसा ९ | ४ हुआ । यहां स्पर्धकशलाका की सहनानी नौ का अंक और वर्गणाशलाका की चार का अंक उनको परस्पर गुणा करनेपर गुणहानि होती है उसकी सहनानी आठ का अंक करनेपर ऐसी ८ | ओ संदृष्टि होती है । इससे उस आदि वर्गणा को गुणा करनेपर समपट्टिकाधन ऐसा व | ओ − १ | ८ होता है । पुनश्च पूर्वस्पर्धक की आदि वर्गणा को दोगुणहानि का भाग देनेपर उसका चय होता है । उससे दोगुणा अपूर्वस्पर्धक की वर्गणाओं में चय का प्रमाण है । इसलिए उस आदि वर्गणा को एक गुणहानि की सहनानी आठ का अंक, उसका भाग देनेपर यहां चय ऐसा व | ओ − १ अर्थात् [व | ओ − १ × ~~१~~] इसको आदि उत्तर स्थापित करके अपूर्वस्पर्धक वर्गणाप्रमाण को गच्छ स्थापित करके जोड़नेपर जो चयधन हुआ उसको मिलाने के लिये उस समपट्टिकाधन की संदृष्टि के ऊपर साधिक की संदृष्टि करनेपर ऐसा व | ओ − १ | ८ ।

[*विशेषार्थ : आदिधन + चयधन = सर्वधन*

समपट्टिकाधन + चयधन = सर्वधन $= \underset{\text{ओ ओ ə}}{\text{व}} \Big| \underset{}{\text{ओ}} - १ \Big| ८$]

इसके गुणकार और भागहार को डेढ़ से गुणा करनेपर ऐसा $\underset{\text{ओ ओ ə ३}}{\text{व}} \Big| \underset{२}{१२} \Big| \text{ओ} - १$

अर्थात् $\left[\underset{\text{ओ ओ ə ३}}{\text{व}} \Big| \underset{२}{\text{ओ}} - १ \Big| \underset{२}{\overset{४}{\cancel{८}}} \Big| \underset{२}{३} \quad \underset{}{\overset{२}{\cancel{४}}} \; \underset{}{१} = \underset{\text{ओ ओ ə ३}}{\text{व}} \Big| \underset{२}{\text{ओ}} - १ \Big| १२ = \underset{\text{ओ ओ ə ३}}{\text{व}} \Big| \underset{२}{१२} \Big| \text{ओ} - १ \right]$

द्रव्य तो अपूर्वस्पर्धक में ही देना ।

पुनश्च लोभ का अपकर्षण किया द्रव्य ऐसा $\underset{८ \,|\, \text{ओ}}{\text{व}} \; १२$ । यहां मोह के सर्वद्रव्य की अपेक्षा आठ का भागहार था और लोभ ही की वर्गणा को डेढ़ गुणहानि से गुणा करनेपर लोभ का द्रव्य होता है । उसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर ऐसी $\underset{\text{ओ}}{\text{व}} \; १२$ संदृष्टि होती है । इसमें से पूर्वोक्त द्रव्य ऐसा $\underset{\text{ओ ओ ə ३}}{\text{व}} \Big| \underset{२}{१२} \Big| \text{ओ} - १$ घटाने के लिये $\text{ओ ə } \underset{२}{३}$ से समच्छेद करनेपर यह ऐसा $\underset{\text{ओ ओ ə ३}}{\text{व}} \Big| \underset{२}{१२} \Big| \text{ओ ə } \underset{२}{३}$ । इसके और उस घटाने योग्य द्रव्य का अन्य समान जानकर $\text{ओ ə } \underset{२}{३}$ गुणकार में से ओ – १ घटाने की आगे संदृष्टि करनेपर घटाने के पश्चात् अवशेष द्रव्य की संदृष्टि ऐसी $\underset{\text{ओ ओ ə ३}}{\text{व}} \Big| \underset{२}{\text{ओ ə } ३} - (\text{ओ} - १)$ होती है ।

पुनश्च अपूर्वस्पर्धक संबंधी वर्गणाशलाका का भाग पूर्वस्पर्धक वर्गणाशलाका को

देना है । वहां गुणहानि की संदृष्टि आठ का अंक, उसको डेढ़गुणा करनेपर पूर्वस्पर्धक वर्गणाशलाका ऐसी ८ | ३ होती है, इसको अपूर्वस्पर्धक वर्गणाशलाका ऐसी ८ का
२ ओ ७
भाग देनेपर ऐसा ८ | ३ यहां गुणहानि ८ का अपवर्तन करके भागहार का भागहार
८ २
ओ ७
ओ ७ को राशि का गुणकार करनेपर ऐसी ओ ७ ३ पूर्वस्पर्धक संबंधी शलाका हुयी,
२
१
इसमें अपूर्वस्पर्धकशलाका एक अधिक करनेपर उभयशलाका ऐसी ओ ७ ३ होती
२
है । इसका भाग उस अवशेष द्रव्य को देकर अपनी-अपनी शलाका से गुणा करनेपर पूर्वस्पर्धक संबंधी द्रव्य ऐसा व १२ | ओ ७ ३ – (ओ – १) | ओ ७ ३ । इसमें से
२ २
१
ओ ओ ७ ३ | ओ ७ ३
२ २
ओ ७ ३ का अपवर्तन करके ऐसा व १२ | ओ ७ ३ – (ओ – १) इसको पूर्वोक्त
२ २
१
ओ | ओ ७ ३
२
अपूर्वस्पर्धक में देने योग्य द्रव्य में मिलाना सो पूर्वद्रव्य ऐसा व १२ | ओ – १ इसमें
ओ ओ ७ ३
२
गुणकाररूप अपकर्षण भागहार के आगे एक हीन था, उसको दूर करके भागहाररूप अपकर्षण भागहार का गुणकार ऐसा ओ ७ ३ उसमें एक अधिक करनेपर ऐसा
२
व १२ ओ इसमें पश्चात् मिलाने योग्य द्रव्य का साधिकपना जानना । इसको
१
ओ | ओ ७ ३
२

अपूर्वस्पर्धक वर्गणा के प्रमाण $\frac{८}{\text{ओ}\,\text{ə}}$ का भाग देना । वहां गुणकार में डेढ़ गुणहानि ऐसा १२ था, उसको गुणहानि ८ के भागहार से अपवर्तन करनेपर गुणकार में डेढ़ $\left[\frac{३}{२}\right]$ रहा और भागहार का भागहार ओ ə राशि का गुणकार करना । ऐसा करनेपर मध्यधन ऐसा हुआ $\text{व ओ ओ ə}\,\frac{३}{२}$ । इसको एक कम गच्छ के आधे से हीन

$$\text{ओ} \mid \frac{\text{ओ ə}\,\frac{३}{२}}{\text{ओ}\,\frac{१}{२}}$$

दोगुणहानि का भाग देनेपर चय होता है वह ऐसा $\text{व ओ ओ ə}\,\frac{३}{२}$

$$\text{ओ} \mid \frac{\text{ओ ə}\,\frac{३}{२}}{\text{ओ}\,\frac{१}{२}} \mid १६ - \frac{८}{\text{ओ ə}\,\frac{१०}{२}}$$

इसको दोगुणहानि १६ से गुणा करनेपर प्रथम वर्गणा में दिया द्रव्य होता है तथा इस गुणकार *(अर्थात्* १६*)* में से क्रम से एक-एक घटाते हुये एक कम गच्छ ऐसा $\frac{८}{\text{ओ ə}\,\frac{१०}{२}}$ घटानेपर अंत वर्गणा में दिया द्रव्य होता है । ऐसी तो अपूर्वस्पर्धक संबंधी दिये द्रव्य की संदृष्टि होती है ।

पुनश्च पूर्वस्पर्धक संबंधी दिया द्रव्य ऐसा $\text{व १२} \mid \text{ओ ə}\,\frac{३}{२} - (\text{ओ} - १)$ इसको

$$\text{ओ} \mid \frac{\text{ओ ə}\,\frac{३}{२}}{\text{ओ}\,\frac{१}{२}}$$

डेढ़ गुणहानि १२ का भाग देकर इसीका अपवर्तन करनेपर आदि वर्गणा में दिया द्रव्य होता है । इसको दोगुणहानि का भाग देनेपर विशेष होता है उसकी लघुसंदृष्टि वि है । उसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर *(प्रथम वर्गणा में दिया द्रव्य होता है)*, इस गुणकार में से एक-एक कम करनेपर प्रथम गुणहानि के अंत तक के निषेकों में दिये द्रव्य का प्रमाण आता है तथा गुणहानि-गुणहानि प्रति आधे-आधे क्रम से अंत

वर्गणा में दिये द्रव्य का प्रमाण – विशेष को एक कम गुणहानि से हीन दोगुणहानि से गुणा करके और एक कम नानागुणहानि प्रमाण दो लिखकर उसका भाग देनेपर होता है । उसकी संदृष्टि ऐसी – [वि = व | ओ ə ३ – (ओ – १)]

पूर्वस्पर्धक की वर्गणाओं को अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां बहुभाग मात्र पुरातन द्रव्य है, वह ऐसा व | ओ – १ । इस पुरातन द्रव्य और दिये द्रव्य को
ओ
मिलानेपर पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों का चय घटते क्रम सहित एक गोपुच्छ होता है ऐसा जानना । यहां क्षेत्ररचना द्वारा इस अर्थ को दिखाया है वह टीका में लिखा ही है, वहां संदृष्टि सुगम है ।

पुनश्च पूर्वस्पर्धक डेढ़ गुणहानि मात्र ऐसे १२, उनके नीचे प्रथम समय में किये अपूर्वस्पर्धक गुणहानि के असंख्यातवें भाग मात्र ऐसे ८ , उनके नीचे उनके असंख्यातवें
ə
भाग मात्र द्वितीय समय में किये अपूर्वस्पर्धक ऐसे ८ । इनकी रचना ऐसी –
ə ə

	क्रोध		मान		माया		लोभ	
पूर्वस्पर्धक	१२		१२		१२		१२	
प्रथम समय के अपूर्वस्पर्धक	८ ə		८ ə		८ ə		८ ə	
द्वितीय समय के अपूर्वस्पर्धक	८ ə ə		८ ə ə		८ ə ə		८ ə ə	

यहां स्पर्धकों की रचना करके बीच में पूर्वस्पर्धकादि का विभाग करने के लिये रेखायें खींची हैं । इसीतरह तृतीयादि समयों में नीचे-नीचे असंख्यात गुणा घटते क्रम से अपूर्वस्पर्धकों की रचना करना ।

पुनश्च प्रथम अनुभागकांडकघात होनेपर *(गाथा ४७१-४७४)* अनुभाग के अल्पबहुत्व में क्रोध, मान, माया, लोभ के अपूर्वस्पर्धकों के प्रमाण की प्रथम समय में की हुयी अपूर्वस्पर्धकों की संदृष्टि के ऊपर अन्य समयों में किये हुये को मिलाने के लिये अधिक की संदृष्टि करनेपर संदृष्टि होती है । तथा एक गुणहानि में स्पर्धकशलाका की *(९)* और एक स्पर्धक में वर्गणाशलाका की *(४)* तो पूर्वोक्त संदृष्टि जानना । क्रोधादि के अपूर्वस्पर्धकों के आगे वर्गणाशलाका की संदृष्टि करनेपर उनकी वर्गणा की संदृष्टि होती है । नानागुणहानि गुणित स्पर्धकशलाका को क्रम से चार, तीन, दो, एक बार अनंत का भाग देनेपर लोभ, माया, मान, क्रोध के

पूर्वस्पर्धकों का प्रमाण होता है । उनको वर्गणाशलाका से गुणा करनेपर अपनी-अपनी वर्गणाओं का प्रमाण होता है । इसतरह कहे हुये की संदृष्टि ऐसी है –

क्रो अपू	मा अपू	माया अपू	लो अपू	गु स्प	स्प व	क्रो व
१ ओ ə	१ | १/ख ओ ə ख	१ | २/ख ओ ə ख	१ | ३/ख ओ ə ख	१	४	१ ४ ओ ə

मा व	माया व	लो व	लो पू	लो पू व	माया पू
१ | १/ख ४ ओ ə ख	१ | २/ख ४ ओ ə ख	१ | ३/ख ४ ओ ə ख	१ ना ख ख ख ख	१ ना ४ ख ख ख ख	१ ना ख ख ख

माया पू व	मान पू	मान पू व	क्रो पू	क्रो पू व
१ ना ४ ख ख ख	१ ना ख ख	१ ना ४ ख ख	१ ना ख	१ ना ४ ख

यहां क्रोधादि के पूर्वस्पर्धकों के प्रमाण को अनंत का भाग देनेपर बहुभाग मात्र का तो द्वितीय कांडक द्वारा घात करता है, एकभाग मात्र अवशेष रहता है । उनकी संदृष्टि ऐसी –

	क्रोध	मान	माया	लोभ
घात किये स्पर्धक	१ ∩ १ ना ख ख ख	१ ∩ १ ना ख ख ख ख	१ ∩ १ ना ख ख ख ख ख	१ ∩ १ ना ख ख ख ख ख ख
अवशेष स्पर्धक	१ ना ख ख	१ ना ख ख ख	१ ना ख ख ख ख	१ ना ख ख ख ख ख

इसीतरह तृतीय कांडक में क्रम जानना । वहां अनुभाग की यथासंभव संदृष्टि जानना । इसतरह अपूर्वस्पर्धक क्रिया विधान में संदृष्टि कही ।

अब बादर कृष्टिकरण विधान में संदृष्टि कहते हैं । – *(गाथा ४७५ ते ४९१)*

वहां अंतर्मुहूर्त काल को संख्यात का भाग देकर बहुभाग के तीन समान भाग करके अवशेष एकभाग का संख्यात बहुभाग प्रथम समान भाग में मिलानेपर *(अपूर्वस्पर्धक*

सहित) अश्वकर्णकरण काल है । अवशेष एकभाग का संख्यात बहुभाग द्वितीय समान भाग में मिलानेपर कृष्टिकरण काल है । अवशेष एकभाग तृतीय समान भाग में मिलानेपर कृष्टिवेदक काल है । उनकी संदृष्टि रचना ऐसी –

नाम	अश्वकर्णकरण	कृष्टिकरण	कृष्टिवेदक
समभाग	१८ २नृ नृ नृ | ३	१८ २नृ नृ नृ | ३	१८ २नृ नृ नृ | ३
देयभाग	१८ २नृनृ नृनृ	१८ २नृनृ नृनृनृ	२नृ नृनृनृ

पुनश्च चारों कषायों की बारह संग्रहकृष्टि करता है *(गाथा ४९२ से ४९९)* उनका अनुभाग जानने के लिये अंकसंदृष्टि अपेक्षा पहले टीका में कथन किया है ।

पुनश्च मोह का द्रव्य ऐसा **व १२** इसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर अपकृष्ट द्रव्य ऐसा **व १२** । वर्गणाशलाका के अनंतवें भाग मात्र प्रथम समय में की हुयी कृष्टियों का प्रमाण ऐसा **४ ओ** । वहां इनको आठ का भाग देकर एक-एक भाग चारों कषायों का द्रव्य और कृष्टियों का प्रमाण होता है । वहां लोभ में साधिक, माया में किंचित् कम, उससे भी क्रोध में किंचित् कम और उससे मान में किंचित् कम जानना । चार भाग मात्र नोकषाय संबंधी कृष्टि क्रोध में मिलानेपर वहां पांच भाग होते हैं, उनकी संदृष्टि ऐसी –

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध
द्रव्य	व १२ ८ | ओ	व १२ – ८ | ओ	व १२ ≡ ८ | ओ	व १२ = ५ ८ | ओ
कृष्टि	४ ख | ८	४ – ख | ८	४ ≡ ख | ८	४ = ५ ख | ८

पुनश्च अपने-अपने द्रव्य और कृष्टि के प्रमाण को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग के तीन समान भाग करना । अवशेष एकभाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग प्रथम समान भाग में मिलानेपर प्रथम संग्रहकृष्टि में द्रव्य का और कृष्टि का प्रमाण होता है । अवशेष एकभाग को वैसे ही भाग देकर बहुभाग द्वितीय समान भाग में मिलानेपर द्वितीय संग्रहकृष्टि में उनका प्रमाण होता है । अवशेष एकभाग तृतीय समान भाग में मिलानेपर तृतीय संग्रहकृष्टि में उनका प्रमाण होता है । लोभ के इस विधान की ऐसी संदृष्टि होती है –

लोभ का	प्रथम संग्रह	द्वितीय संग्रह	तृतीय संग्रह
समानभागद्रव्य	$\text{व}\,\frac{1}{१२}\,\Big\vert\,\frac{\frac{१८}{\text{प}}}{३}$ $२४\,\text{ओ}\,\frac{\text{प}}{३}$	$\text{व}\,\frac{1}{१२}\,\Big\vert\,\frac{\frac{१८}{\text{प}}}{३}$ $२४\,\text{ओ}\,\frac{\text{प}}{३}$	$\text{व}\,\frac{1}{१२}\,\Big\vert\,\frac{\frac{१८}{\text{प}}}{३}$ $२४\,\text{ओ}\,\frac{\text{प}}{३}$
देयभागद्रव्य	$\text{व}\,\frac{1}{१२}\,\Big\vert\,\frac{\frac{१८}{\text{प}}}{३}$ $८\,\text{ओ}\,\frac{\text{प}\,\text{प}}{३\,३}$	$\text{व}\,\frac{1}{१२}\,\Big\vert\,\frac{\frac{१८}{\text{प}}}{३}$ $८\,\text{ओ}\,\frac{\text{प}\,\text{प}\,\text{प}}{३\,३\,३}$	$\text{व}\,\frac{1}{१२}$ $८\,\text{ओ}\,\frac{\text{प}\,\text{प}\,\text{प}}{३\,३\,३}$
समभागकृष्टि	$\frac{1}{४}\,\frac{\frac{१८}{\text{प}}}{३}$ $\text{ख}\,२४\,\frac{\text{प}}{३}$	$\frac{1}{४}\,\frac{\frac{१८}{\text{प}}}{३}$ $\text{ख}\,२४\,\frac{\text{प}}{३}$	$\frac{1}{४}\,\frac{\frac{१८}{\text{प}}}{३}$ $\text{ख}\,२४\,\frac{\text{प}}{३}$
देयभागकृष्टि	$\frac{1}{४}\,\frac{\frac{१८}{\text{प}}}{३}$ $\text{ख}\,८\,\frac{\text{प}\,\text{प}}{३\,३}$	$\frac{1}{४}\,\frac{\frac{१८}{\text{प}}}{३}$ $\text{ख}\,८\,\frac{\text{प}\,\text{प}\,\text{प}}{३\,३\,३}$	$\frac{1}{४}$ $\text{ख}\,८\,\frac{\text{प}\,\text{प}\,\text{प}}{३\,३\,३}$

यहां बहुभाग में आठ और तीन के भागहारों को गुणा करके चौबीस का भागहार लिखा है । ऐसे ही अन्य कषायों की जानना । वहां किंचित् हीन अधिक न गिनकर अपने-अपने सर्व द्रव्य के और सर्व कृष्टियों के प्रमाण को तीन का भाग देकर आठ का भाग आगे था उससे गुणा करके चौबीस का भाग होता है । वहां ग्यारह संग्रहकृष्टियों में तो एक-एक भाग मात्र प्रमाण होता है और क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि में नोकषाय संबंधी द्रव्य का संक्रमण हुआ है, इसलिए उसमें तेरह भाग मात्र उनका

प्रमाण होता है, उनकी संदृष्टि ऐसी –

नाम	लोभ			माया			मान			क्रोध		
संग्रह	प्र	द्वि	तृ	प्र	द्वि	तृ	प्र	द्वि	तृ	प्र	द्वि	तृ
द्रव्य	व १२ / २४ ओ	व १२ / २४ ओ	व १२ / २४ ओ	व १२ – २४ ओ	व १२ – २४ ओ	व १२ – २४ ओ	व १२ ≡ २४ ओ	व १२ ≡ २४ ओ	व १२ ≡ २४ ओ	व १२ = २४ ओ	व १२ = २४ ओ	व १२ = १३ २४ ओ
कृष्टि	४ / ख २४	४ / ख २४	४ / ख २४	४ – ख २४	४ – ख २४	४ – ख २४	४ ≡ ख २४	४ ≡ ख २४	४ ≡ ख २४	४ = ख २४	४ = ख २४	४ = १३ ख २४

[*कृष्टिकारक के प्रथम समय में कृष्टिनिरूपण गाथा ५००-५०१*]

प्रथम समय में अपकर्षण किया द्रव्य ऐसा $\text{व}\frac{१२}{\text{ओ}}$ उसको कृष्टिप्रमाण मात्र गच्छ का और एक कम गच्छ के आधे प्रमाण से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर विशेष होता है । वह ऐसा $\text{व}\frac{१२}{\text{ओ} \mid \frac{४}{\text{ख}} \mid १६ - \frac{१०}{४}}$ इसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम कृष्टि में दिया द्रव्य होता है । विशेष का जो दोगुणहानि का गुणकार है उसमें से एक-एक घटाते हुये एक कम गच्छ मात्र घटानेपर अंत कृष्टि में दिया द्रव्य होता है । उनकी संदृष्टि ऐसी –

प्रथमकृष्टि	मध्यकृष्टि	अंतकृष्टि
$\text{व}\,१२ \mid १६ \quad \frac{१०}{४}$ $\text{ओ} \mid \frac{४}{\text{ख}} \mid १६ - \frac{४}{\text{ख}\,२}$	$\text{वि} \mid १६ - १ \quad ०\,०\,०\,०$	$\text{व}\,१२ \mid १६ - \frac{१०}{४}$ ख $\text{ओ} \mid \frac{४}{\text{ख}} \mid १६ - \frac{१०}{४}$ $\text{ख}\quad \text{ख}\,२$

पुनश्च स्पर्धक संबंधी द्रव्य को डेढ़ गुणहानि का भाग देनेपर प्रथम वर्गणा में, एक-एक विशेष घटता द्वितीयादि वर्गणाओं में, आधा-आधा गुणहानियों में द्रव्य देता है । उसकी संदृष्टि सुगम है ।

कृष्टिकारक के द्वितीय समय में प्रथम समय में की हुयी कृष्टियों के प्रमाण

को असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहार का भाग देकर नवीन की हुयी कृष्टियों का प्रमाण आता है । तथा प्रथम समय में जो द्रव्य में अपकर्षण भागहार का भाग था वहां अपकर्षण भागहार के असंख्यातवें भाग मात्र भागहार का भाग देनेपर अपकर्षण किया द्रव्य होता है । उनकी संदृष्टि ऐसी – *(द्वितीय समय में कृष्टि और द्रव्य का प्रमाण)*

नाम	लोभ			माया		
संग्रह	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
कृष्टि	४ ख २४ ओ ə	४ ख २४ ओ ə	४ ख २४ ओ ə	४ – ख २४ ओ ə	४ – ख २४ ओ ə	४ – ख २४ ओ ə
द्रव्य	व १२ ओ २४ ə	व १२ ओ २४ ə	व १२ ओ २४ ə	व १२ – ओ २४ ə	व १२ – ओ २४ ə	व १२ – ओ २४ ə

नाम	मान			क्रोध		
संग्रह	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
कृष्टि	४ ≡ ख २४ ओ ə	४ ≡ ख २४ ओ ə	४ ≡ ख २४ ओ ə	४ = ख २४ ओ ə	४ = ख २४ ओ ə	४ = | १३ ख २४ ओ ə
द्रव्य	व १२ ≡ ओ २४ ə	व १२ ≡ ओ २४ ə	व १२ ≡ ओ २४ ə	व १२ = ओ २४ ə	व १२ = ओ २४ ə	व १२ = | १३ ओ २४ ə

द्वितीय समय में अपकर्षण किये हुये द्रव्य में अधस्तनशीर्ष, अधस्तनकृष्टि, उभयद्रव्यविशेष और मध्यमखंडरूप चार विभाग होते हैं । वहां प्रथम समय संबंधी पूर्वोक्त विशेष ऐसा है $\frac{\text{व १२}}{\text{ओ} \mid \text{ख}}$ $\frac{\text{१८}}{\text{४} \mid \text{१६} - \text{४}}$ $\frac{}{\text{ख}\quad\text{ख २}}$ इसके आदि अक्षररूप ऐसी वि लघुसंदृष्टि करके इसको आदि उत्तर स्थापना और एक कम लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टियों का प्रमाण ऐसा $\frac{\text{१८}}{\text{४}}$ $\frac{}{\text{ख} \mid \text{२४}}$ उसको गच्छ स्थापना । वहां एक कम गच्छ के आधे को उत्तर

(चय) से गुणा करके उसमें आदि मिलाकर उसको गच्छ से गुणा करनेपर लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में अधस्तनशीर्ष द्रव्य होता है ।

पुनश्च लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि मात्र विशेष आदि, एक विशेष उत्तर स्थापित कर अपनी कृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके पूर्वोक्त विधान करनेपर लोभ की द्वितीय संग्रहकृष्टि में अधस्तनशीर्ष द्रव्य होता है । ऐसे ही क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि तक विधान जानना । विशेष इतना – अपने नीचे जो कृष्टि होती है उस प्रमाण विशेष आदि स्थापने, अन्य विधान पूर्ववत् जानना । उनकी संदृष्टि ऐसी – *(अधस्तनशीर्ष द्रव्य)*

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध
तृतीय संग्रह	$\frac{१०}{४}$ वि ४ | ५ ख २४ ख २४ | २	$\frac{१०}{४}$ वि ४ | ११ ख २४ ख २४ | २	$\frac{१०}{४}$ वि ४ | १७ ख २४ ख २४ | २	$\frac{१०}{४}$ वि ४ | ४५५ ख २४ ख २४ | २
द्वितीय संग्रह	$\frac{१०}{४}$ वि ४ | ३ ख २४ ख २४ | २	$\frac{१०}{४}$ वि ४ | ९ ख २४ ख २४ | २	$\frac{१०}{४}$ वि ४ | १५ ख २४ ख २४ | २	$\frac{१०}{४}$ वि ४ | २१ ख २४ ख २४ | २
प्रथम संग्रह	$\frac{१०}{४}$ वि ४ | १ ख २४ ख २४ | २	$\frac{१०}{४}$ वि ४ | ७ ख २४ ख २४ | २	$\frac{१०}{४}$ वि ४ | १३ ख २४ ख २४ | २	$\frac{१०}{४}$ वि ४ | १९ ख २४ ख २४ | २

यहां लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि में एक कम गच्छ ऐसा $\frac{२०}{४}$ ख २४ उसको आधा करनेपर ऐसा $\frac{२०}{४}$ ख २४ \| २ उसको उत्तर अर्थात् विशेष से गुणा करनेपर ऐसा $\frac{२०}{४}$ ख २४ \| २ \| वि उसमें एक विशेष मात्र आदि मिलाने के लिये विशेष के गुण्य में दो से भाजित दो कम थे उनको दूर करनेपर ऐसा ४ \| वि ख २४ \| २ इसको गच्छ ऐसा $\frac{१०}{४}$ ख २४ से गुणा

करना । इस गुणकार को गुण्य करनेपर संकलनधन ऐसा $\frac{१०}{\text{ख २४}}$ $\frac{४}{\text{ख २४}}$ वि ४ | २ । लोभ के द्वितीय संग्रहकृष्टि में एक कम गच्छ के आधे को उत्तर अर्थात् विशेष से गुणा करनेपर ऐसा $\frac{१०}{\text{ख २४ २}}$ $\frac{४}{}$ वि, इसमें प्रथम संग्रहकृष्टि के गच्छ मात्र विशेष ऐसे $\frac{१०}{\text{ख २४}}$ $\frac{४}{}$ वि मिलाना इसको दो से समच्छेद करनेपर यह ऐसा हुआ $\frac{१०}{\text{ख २४ २}}$ $\frac{४}{}$ वि २ । इसके और उसके अन्य सर्व समान जानकर दो के गुणकार में एक गुणकाररूप उसको मिलानेपर ऐसा $\frac{१०}{\text{ख २४ २}}$ $\frac{४}{}$ वि ३ इसको गच्छ ऐसा $\frac{\text{ख २४}}{४}$ से गुणा करनेपर गुणकार, गुण्य को आगे पीछे लिखनेपर द्वितीय संग्रहकृष्टि में संकलनधन ऐसा $\frac{१०}{\text{ख २४ | २ | ख २४}}$ $\frac{४}{}$ वि ४ | ३ । पुनश्च लोभ के तृतीय संग्रहकृष्टि में एक कम गच्छ का आधा उत्तर से गुणित ऐसा $\frac{१०}{\text{ख २४ | २}}$ $\frac{४}{}$ वि इसमें प्रथम, द्वितीय संग्रहकृष्टि के गच्छ मात्र विशेषरूप आदि मिलाना वह ऐसा $\frac{१०}{\text{ख २४}}$ $\frac{४}{}$ | २ | वि । इसको दो से समच्छेद करनेपर ऐसा $\frac{१०}{\text{ख २४ | २}}$ $\frac{४}{}$ ४ वि इसका चार का गुणकार, उसका एक का गुणकार मिलाकर *(गच्छ से गुणा करनेपर)* तृतीय संग्रहकृष्टि में संकलनधन ऐसा $\frac{१०}{\text{ख २४ | ख २४ | २}}$ $\frac{४}{}$ | वि ४ | ५ । इसी प्रकार माया की प्रथमादि संग्रहकृष्टियों में विधान करनेपर भाज्यराशि के गुणकार में दो-दो अधिक का अनुक्रम होता है ।

पुनश्च क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि में गच्छ ऐसा $\frac{\text{ख २४}}{४}$ | १३ उसमें से एक घटाकर

उसके आधे को विशेष से गुणा करनेपर ऐसा $\overset{१०}{\underset{ख\ २४\ |\ २}{४}}\ |\ १३$ वि इससे पहले ग्यारह संग्रह, इसलिए एक संग्रह के गच्छ को ग्यारह से गुणा करके और उसको विशेष से गुणा करके उनके गच्छ मात्र विशेष ऐसा $\overset{१०}{\underset{ख\ २४}{४}}\ |\ ११$ वि इसको दो से समच्छेद करनेपर ऐसा $\overset{१०}{\underset{ख\ २४\ |\ २}{४}}\ २२$ वि । इनको मिलाने के लिये अन्य समान जानकर तेरह और बाइस का गुणकार मिलानेपर ऐसा $\overset{१०}{\underset{ख\ २४\ |\ २}{४}}\ |\ ३५\ |$ वि । इसको गच्छ ऐसा $\overset{\downarrow}{४}\ |\ १३$ से गुणा करनेपर $\overset{१०}{\underset{ख\ २४\ |\ २}{४}}\ |\ ३५\ |$ वि $|\ \overset{\downarrow}{४}\ |\ १३$ यहां पैंतीस और तेरह के गुणकार को परस्पर गुणा करनेपर क्रोध की तृतीय संग्रह में चार सौ पचपन का गुणकार होता है वह ऐसा $\overset{१०}{\underset{ख\ २४\ |\ ख\ २४\ |\ २}{४}}$ वि $|\ \overset{\downarrow}{४}\ |\ ४५५$ यहां गुण्य और गुणकार में एक हीन और अधिक को न गिनकर संदृष्टि स्थापित की है ऐसा जानना ।

पुनश्च इन सबको मिलानेपर एक कम सर्व कृष्टि मात्र गच्छ ऐसा $\overset{१०}{\underset{ख}{४}}$ उसके आधे को विशेष से गुणा करके उसमें एक विशेष मिलाकर गच्छ से गुणा करनेपर सर्व अधस्तनशीर्ष द्रव्य ऐसा वि $|\ ४\ |\ \overset{१०}{\underset{ख\ ख\ २}{४}}$ यहां गुण्य गुणकार आगे पीछे लिखे हैं ।

पुनश्च लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि का *(प्रथम संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि का)* पूर्वोक्त प्रकार द्रव्य ऐसा ऐसा $\overset{ओ\ |\ ४}{व\ |\ १२\ |\ १६}\ \overset{ख\ |\ २४}{\overset{१०}{\underset{ख\ २४\ |\ २}{४}}\ |\ १६ - ४}$ यहां भागहार में

दोगुणहानि के ऋण को न गिनकर उसका अपवर्तन करनेपर ऐसा $\frac{\text{व १२}}{\text{ओ ४}}$ । ख २४

इसको अपनी-अपनी द्वितीय समय में की हुयी नवीन कृष्टियों के प्रमाण से गुणा करनेपर अपना-अपना अधस्तनकृष्टि द्रव्य होता है । उसकी संदृष्टि ऐसी –

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध
तृतीय संग्रह	व १२ | ४ ओ ४ | ख २४ ओ ə ख २४	व १२ | ४ ओ ४ | ख २४ ओ ə ख २४	व १२ | ४ ओ ४ | ख २४ ओ ə ख २४	व १२ | ४ | १३ ओ ४ | ख २४ ओ ə ख २४
द्वितीय संग्रह	व १२ | ४ ओ ४ | ख २४ ओ ə ख २४	व १२ | ४ ओ ४ | ख २४ ओ ə ख २४	व १२ | ४ ओ ४ | ख २४ ओ ə ख २४	व १२ | ४ ओ ४ | ख २४ ओ ə ख २४
प्रथम संग्रह	व १२ | ४ ओ ४ | ख २४ ओ ə ख २४	व १२ | ४ ओ ४ | ख २४ ओ ə ख २४	व १२ | ४ ओ ४ | ख २४ ओ ə ख २४	व १२ | ४ ओ ४ | ख २४ ओ ə ख २४

पुनश्च उसी लोभ की प्रथम कृष्टि को सर्व नवीन कृष्टियों के प्रमाण से गुणा करनेपर *(अपना-अपना)* सर्व अधस्तनकृष्टि द्रव्य ऐसा $\frac{\text{व १२ \| ४}}{\text{ओ ४ \| ख २४ ओ ə}}$ प्रथम ख २४

समय में अपकर्षण किया द्रव्य ऐसा व १२ इससे असंख्यातगुणा द्वितीय समय में द्रव्य

अपकर्षण किया वह ऐसा $\text{व १२ ə}^{\text{ओ}}$ । इसके असंख्यात के गुणकार के ऊपर एक

अधिक की संदृष्टि करनेपर उभयद्रव्य ऐसा $\text{व १२ ə}^{\frac{\text{१}}{\text{ओ}}} = \left[\text{व १२}_{\text{ओ}} + \text{व १२ ə}^{\text{ओ}}\right]$

इसको प्रथम समय में की हुयी कृष्टि ऐसी $\text{४}_{\text{ख}}$ उसके ऊपर द्वितीय समय में की हुयी

कृष्टियों का प्रमाण मिलाने के लिये अधिक की ऐसी ' संदृष्टि करनेपर उभयकृष्टि का प्रमाण ऐसा $\text{४}^{\text{।}}_{\text{ख}}$, उसका और एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि का

भाग देनेपर उभयद्रव्य का विशेष ऐसा व १२ $\frac{१}{ओ|\overset{|}{४}|१६}$ $\frac{१०}{-\overset{|}{४}}$ इसकी लघुसंदृष्टि ऐसी
ख ख २

वि, इसको आदि, उत्तर स्थापना और क्रोध की तृतीय संग्रह की उभयकृष्टि मात्र गच्छ स्थापना । वहां पूर्वोक्त प्रकार से एक कम गच्छ के आधे को विशेष से गुणा करके उसमें आदि मिलाकर गच्छ से गुणा करनेपर तृतीय संग्रहकृष्टि में उभयद्रव्यविशेष द्रव्य होता है । पुनश्च, एक अधिक क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि मात्र विशेष आदि और एक विशेष उत्तर और एक कम अपनी उभयकृष्टि मात्र गच्छ स्थापनेपर संकलनधन मात्र क्रोध की द्वितीय संग्रहकृष्टि में उभयद्रव्यविशेष द्रव्य होता है । इसीतरह लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि तक क्रम जानना । विशेष इतना – अपनी-अपनी एक अधिक पहली कृष्टि के प्रमाण मात्र विशेष आदि स्थापन करना । उनकी संदृष्टि ऐसी –

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध
तृतीय संग्रह	वि $\overset{\|}{४}$ | ४ | ४३ ख २४ ख २४ | २	वि $\overset{\|}{४}$ | ४ | ३७ ख २४ ख २४ | २	वि $\overset{\|}{४}$ | ४ | ३१ ख २४ ख २४ | २	वि $\overset{\|}{४}$ | ४ | १६९ ख २४ ख २४ | २
द्वितीय संग्रह	वि $\overset{\|}{४}$ | ४ | ४५ ख २४ ख २४ | २	वि $\overset{\|}{४}$ | ४ | ३९ ख २४ ख २४ | २	वि $\overset{\|}{४}$ | ४ | ३३ ख २४ ख २४ | २	वि $\overset{\|}{४}$ | ४ | २७ ख २४ ख २४ | २
प्रथम संग्रह	वि $\overset{\|}{४}$ | ४ | ४७ ख २४ ख २४ | २	वि $\overset{\|}{४}$ | ४ | ४१ ख २४ ख २४ | २	वि $\overset{\|}{४}$ | ४ | ३५ ख २४ ख २४ | २	वि $\overset{\|}{४}$ | ४ | २९ ख २४ ख २४ | २

यहां क्रोध की तृतीय संग्रह में गच्छ ऐसा $\overset{\|}{४}|१३$ इसमें से एक घटाकर
ख २४

उसके आधे को उत्तर अर्थात् विशेष से गुणा करनेपर ऐसा $\frac{१०}{\overset{\|}{४}|१३}$ वि इसमें आदि
ख २४ | २

एक विशेष मिलाने के लिये दो से भाजित एक हीन की जगह एक अधिक चाहिये

उसको न गिनकर ऐसा $\frac{\downarrow ४ \mid १३ \mid \text{वि}}{\text{ख } २४ \mid २}$ इसको गच्छ से गुणा करनेपर ऐसा

$\downarrow ४ \mid १३ \mid \text{वि} \mid ४ \mid १३$ ।
ख २४ | २ | ख २४

यहां भाज्य में तेरह-तेरह के दो गुणकारों को परस्पर गुणा करके और गुण्य गुणकार को आगे पीछे लिखनेपर क्रोध की तृतीय संग्रहकृष्टि में ऐसी

$\downarrow ४ \text{ वि} \mid ४ \mid १६९$ ।
ख २४ ख २४ | २

पुनश्च क्रोध की द्वितीय संग्रह में गच्छ ऐसा $\frac{\downarrow ४}{\text{ख} \mid २४}$ उसमें से एक घटाकर

उसके आधे को विशेष से गुणा करनेपर ऐसा $\frac{१०}{\downarrow ४}$ वि इसमें क्रोध की तृतीय
ख २४ | २

संग्रह के/एक अधिक गच्छ मात्र विशेष आदि मिलाना वह ऐसा $\frac{१}{\downarrow ४ \mid १३ \text{ वि}}$ इसको दो से समच्छेद
ख २४

करनेपर ऐसा $\frac{१}{\downarrow ४ \mid २६ \text{ वि}}$ । इसके और उसके एक अधिक हीन को न गिनकर अन्य
ख २४ | २

समानता जानकर इसके छब्बीस के गुणकार में एक गुणकार उसका मिलानेपर क्रोध की द्वितीय संग्रह में ऐसा $\text{वि} \downarrow ४ \mid ४ \mid २७$ ।
ख २४ ख २४ | २

पुनश्च क्रोध की प्रथम संग्रह में एक कम गच्छ के आधे विशेष से गुणित ऐसे

$\frac{१०}{\downarrow ४}$ वि इसमें एक अधिक क्रोध के प्रथम, द्वितीय का मिलाया हुआ गच्छ मात्र
ख २४ | २

विशेष आदि, वह ऐसा $\frac{१}{\downarrow ४ \text{ १४ वि}}$ इसको दो से समच्छेद करनेपर $\frac{१}{\downarrow ४}$ वि१४,
ख २४ ख २४ | २

पूर्वोक्त प्रकार से मिलानेपर संकलनधन ऐसा वि ४ | ४ | २९ । इसीतरह विधान
ख २४ ख २४ | २

करनेपर मान की प्रथम संग्रह से लेकर लोभ की द्वितीय संग्रह तक भाज्यराशि के गुणकार में दो-दो अधिक का क्रम होता है ।

पुनश्च उस विशेष प्रमाण आदि उत्तर स्थापित करके सर्व उभयकृष्टि मात्र गच्छ

स्थापित कर सर्व उभयद्रव्य ऐसा वि ४ | ४ ।
ख ख २

पुनश्च अपने-अपने द्वितीय समय में अपकर्षण किये द्रव्य का भागहार *(का भागहार)* असंख्यात उसके आगे पूर्वोक्त तीन द्रव्य घटाने के लिये तीन बार किंचित् हीन की ऐसी ≡ संदृष्टि करनेपर और अपनी-अपनी उभयकृष्टि का गुणकार और सर्व भागहार करनेपर अपने-अपने मध्यखंडद्रव्य की संदृष्टि होती है ।

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध
तृतीय संग्रह	व १२ ४ ओ ४ ख २४ ə ≡ ख	व १२ ४ ओ ४ ख २४ ə ≡ ख	व १२ ४ ओ ४ ख २४ ə ≡ ख	व १२ ४ | १३ ओ ४ ख २४ ə ≡ ख
द्वितीय संग्रह	व १२ ४ ओ ४ ख २४ ə ≡ ख	व १२ ४ ओ ४ ख २४ ə ≡ ख	व १२ ४ ओ ४ ख २४ ə ≡ ख	व १२ ४ ओ ४ ख २४ ə ≡ ख
प्रथम संग्रह	व १२ ४ ओ ४ ख २४ ə ≡ ख	व १२ ४ ओ ४ ख २४ ə ≡ ख	व १२ ४ ओ ४ ख २४ ə ≡ ख	व १२ ४ ओ ४ ख २४ ə ≡ ख

(गाथा ५०५) पुनश्च अपकृष्ट द्रव्य में वैसे ही संदृष्टि करनेपर सर्व मध्यमखंड द्रव्य की ऐसी व १२ ४ होती है ।

ओ ४ ख

ə ≡ ख

इस चार प्रकार का द्रव्य देने का विधान जानकर वहां यथासंभव संदृष्टि जानना । यह दिया द्रव्य पूर्वकृष्टि से अपूर्वकृष्टि में असंख्यातभाग वृद्धिरूप देता है । ऐसे ग्यारह स्थान हैं । अपूर्वकृष्टि से पूर्वकृष्टि में असंख्यातभागहानि युक्त द्रव्य देता है सो ऐसे बारह स्थान हैं । अवशेष स्थानों में अनंतभागहानि युक्त द्रव्य देता है इनकी तेइस ऊंटकूट के समान *(आकार)* रचना होती है, वह यथासंभव जानना । यहां अपूर्वकृष्टियों की रचना ऐसी –

लोभ संग्रहकृष्टि						माया संग्रहकृष्टि						मान संग्रहकृष्टि						क्रोध संग्रहकृष्टि					
प्रथम		द्वितीय		तृतीय		प्रथम		द्वितीय		तृतीय		प्रथम		द्वितीय		तृतीय		प्रथम		द्वितीय		तृतीय	
अ	पू	अ	पू	अ	पू	अ	पू	अ	पू	अ	पू	अ	पू	अ	पू	अ	पू	अ	पू	अ	पू	अ	पू

यहां नीचे लोभ की प्रथम कृष्टि में से नीचे अपूर्वकृष्टि में अधस्तनकृष्टि द्रव्य दिया उसकी संदृष्टि ऐसी । उसके ऊपर पूर्वकृष्टि में समपट्टिकारूप द्रव्य विशेष सहित था उसकी संदृष्टि ऐसी 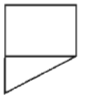 , उसमें अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य दिया उसकी संदृष्टि ऐसी 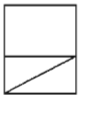 । ऐसा होनेपर पूर्वअपूर्वकृष्टियों की समपट्टिका हुयी । ऐसे ही लोभ की द्वितीय से लेकर क्रोध की तृतीय तक जानना । इन सब में समानरूप मध्यमखंड द्रव्य दिया उसकी समलकीररूप सहनानी जानना । पुनश्च इन सबमें एक-एक विशेष घटता उभयद्रव्य में से विशेष द्रव्य दिया उसकी क्रमहीन लकीररूप सहनानी जानना । इसीतरह कृष्टिकरण काल के तृतीयादि अंत समय तक विधान जानना ।

कृष्टिकरण काल समाप्त होनेपर कृष्टिवेदक काल के प्रथम समय में जो सर्वद्रव्य कृष्टिरूप परिणमित होकर उन कृष्टियों में गोपुच्छाकार हुआ उसकी संदृष्टि कृष्टिकारक विधान में कही थी वैसी जानना, वह ऐसी –

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध
द्रव्य	व १२ / ७ | ८	व १२ – / ७ | ८	व १२ ≡ / ७ | ८	व १२ = ५ / ७ | ८

सर्वद्रव्य ऐसा **व १२** इसको चौबीस का भाग देकर अन्य संग्रह में एक-एक भाग, क्रोध की तृतीय संग्रह में तेरह भाग द्रव्य है ।

कृष्टिकारक काल में जिसको तृतीय संग्रहकृष्टि कही थी उसको अब कृष्टिवेदक काल में प्रथम संग्रहकृष्टि कहना और जिसको प्रथम संग्रहकृष्टि कही थी उसको तृतीय संग्रहकृष्टि कहना । इसलिए क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{व १२}}{\text{२४}} \Big| \text{१३}$ इसको अपकर्षण भागहार का भाग देनेपर ऐसा $\frac{\text{व १२}}{\text{२४ \| ओ}} \Big| \text{१३}$ इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर एकभाग द्रव्य तो उच्छिष्टावली अधिक वेदककाल मात्र प्रथम स्थिति में असंख्यातगुणा क्रम सहित देना [*वह ऐसा* $\frac{\text{व १२}}{\text{२४ \| ओ}} \Big| \frac{\text{१३}}{\text{प}}{}_{\text{ə}}$] तथा बहुभाग मात्र द्रव्य ऐसा $\frac{\text{व १२}}{\text{२४ \| ओ}} \Big| \frac{\text{१३}}{\text{प}}{}_{\text{ə}}^{\text{१०}}$ उसमें क्रोध की द्वितीय, तृतीय संग्रह का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{व १२}}{\text{२४ ओ}} \Big| \text{२}$ मिलानेपर तेरह की जगह पंद्रह का गुणकार होनेपर ऐसा $\frac{\text{व १२}}{\text{२४ \| ओ}} \Big| \text{१५} \Big| \frac{\text{१०}}{\text{प}}{}_{\text{ə}}$ हुआ । उसको आठ वर्ष मात्र द्वितीय स्थिति में अतिस्थापनावली छोड़कर विशेष घटते क्रम से देना । उसकी संदृष्टि रचना ऐसी –

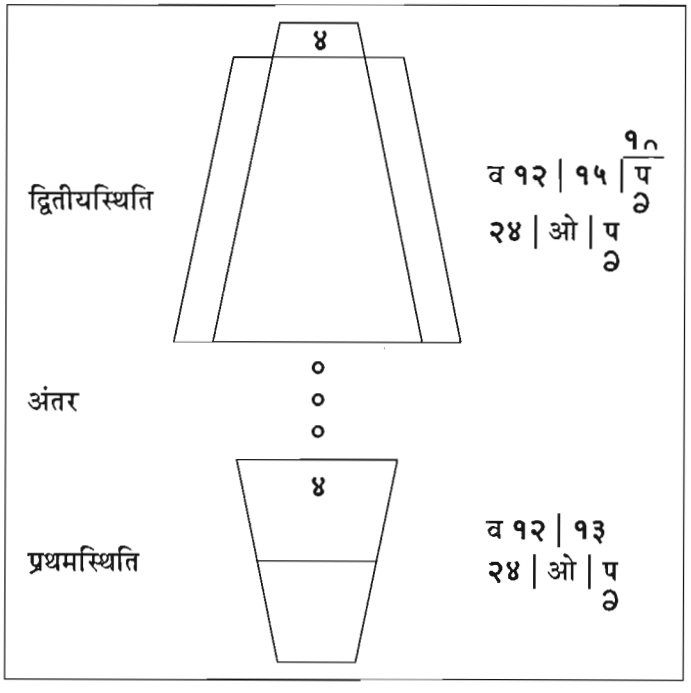

यहां प्रथम स्थिति की बढ़ते क्रमरूप संदृष्टि की है, उनके बीच उच्छिष्टावली और अतिस्थापनावली के विभाग के लिये संदृष्टि की है । आगे दिये द्रव्य का प्रमाण लिखा है ।

कृष्टिकारक के प्रथम समय में की हुयी कृष्टि का प्रमाण $\frac{४}{ख}$ उसमें अन्य समयों में की हुयी कृष्टियों को मिलाने के लिये अधिक की संदृष्टि करनेपर सर्व कृष्टियों का प्रमाण ऐसा $\frac{↓४}{ख}$ उसको चौबीस का भाग देकर तेरह से गुणा करनेपर क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि ऐसी $\frac{↓४ | १३}{ख | २४}$ इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग ऐसे $\frac{↓४ | १३ | १८ प ९}{ख | २४ | प ९}$ कृष्टिवेदक के प्रथम समय में बंध उदयरूप जो बीच की

उभयकृष्टि उनका प्रमाण है । एकभाग ऐसा $\frac{\text{४}}{\text{ख २४ प}}\Big|\frac{\text{१३}}{\text{ə}}$ उसको संदृष्टि की अपेक्षा शलाकाओं का जोड़ सोलह का अंक उसका भाग देकर दो से गुणा करनेपर तो नीचे की बंध उदय रहित अनुभयकृष्टियों का; तीन शलाका से गुणा करनेपर उनके ऊपर की जो नीचे की उदयकृष्टि उनका; चार शलाकाओं से गुणा करनेपर ऊपर की अनुभयकृष्टियों का और सात शलाकाओं से गुणा करनेपर उनके नीचे की उपरिम उदयकृष्टियों का प्रमाण है । उनकी संदृष्टि ऐसी –

नीचे की			ऊपर की	
अनुभय	उदय	उभय	उदय	अनुभय
$\frac{\text{४}}{\text{ख}}\Big\|\text{१३}\Big\|\frac{\text{२}}{\text{प ə}}\Big\|\frac{}{\text{१६}}$	$\frac{\text{४}}{\text{ख}}\Big\|\text{१३}\Big\|\frac{\text{३}}{\text{प ə}}\Big\|\frac{}{\text{१६}}$	$\frac{\text{४}}{\text{ख}}\Big\|\text{१३}\Big\|\frac{\text{१८}}{\text{प ə}}$ $\frac{}{\text{ख}}\Big\|\text{२४}\Big\|\frac{}{\text{प ə}}$	$\frac{\text{४}}{\text{ख}}\Big\|\text{१३}\Big\|\frac{\text{७}}{\text{प ə}}\Big\|\frac{}{\text{१६}}$	$\frac{\text{४}}{\text{ख}}\Big\|\text{१३}\Big\|\frac{\text{४}}{\text{प ə}}\Big\|\frac{}{\text{१६}}$

यहां युगपत् उदय आने योग्य एक निषेक में ऐसा अनुभाग है, इसलिए आड़ी रचना की है । वहां नीचे तो प्रथमादि कृष्टियों की क्रम से रचना जानना । उनमें अनुभय, उदय, उभय, उदय, अनुभय कृष्टि क्रम से होती हैं उनका प्रमाण लिखा है ।

द्वितीय समय में नीचे की उदयकृष्टि थी वह तो उभयरूप हुयी और नीचे की अनुभयकृष्टि थी उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग ऐसा $\frac{\text{४}}{\text{ख}}\Big\|\frac{\text{१३}}{\text{२४}}\Big\|\frac{\text{२}}{\text{प ə}}\Big\|\frac{}{\text{१६}}\Big\|\frac{}{\text{प ə}}$ *(गाथा ५१८)* उसको अंकसंदृष्टि से पांच का भाग देकर वहां दो भाग प्रमाण जघन्यादि कृष्टि तो अनुभयरूप होती है और उसके ऊपर तीन भाग प्रमाण कृष्टि उदयरूप होती है, और उसके ऊपर बहुभागमात्र कृष्टि ऐसी $\frac{\text{४}}{\text{ख}}\Big\|\frac{\text{१३}}{\text{२४}}\Big\|\frac{\text{१८}}{\text{प ə}}\Big\|\frac{\text{२}}{\text{१६}}\Big\|\frac{}{\text{प ə}}$ उभयरूप होती है ।

पुनश्च जो उभयकृष्टि थी उनमें से पूर्व में जो ऊपर की उदयकृष्टि थी उनको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग मात्र कृष्टि यहां उदयरूप हुयी $\frac{४ | १३ | ७}{ख | २४ | \frac{प}{ə} | १६ | \frac{प}{ə}}$ और अनुभयरूप हुयी ऐसी $\frac{४ | १३ | ४}{ख | २४ | \frac{प}{ə} | १६ | \frac{प}{ə}}$ इनको मिलानेपर ऐसा $\frac{४ | १३ | ११}{ख | २४ | \frac{प}{ə} | १६ | \frac{प}{ə}}$ इसको पूर्व में उभयकृष्टियों का प्रमाण ऐसा $\frac{४ | १३ | \frac{१८}{\frac{प}{ə}}}{ख | २४ | \frac{प}{ə}}$ उसमें से घटाना । अन्य भागहार समान जानकर ऐसे $१६ | \frac{प}{ə}$ भागहार से समच्छेद करनेपर ऐसा $\frac{४ | १३ | \frac{१८}{\frac{प}{ə}} | १६ | \frac{प}{ə}}{ख | २४ | \frac{प}{ə} | १६ | \frac{प}{ə}}$ इसके और उस राशि के अन्य गुणकार भागहार समान जानकर आगे के ऐसे $\frac{१८}{\frac{प}{ə}} | १६ | \frac{प}{ə}$ गुणकार में से ग्यारह घटाने को संदृष्टि करनेपर पूर्व में जो उभयकृष्टि थी उनमें से जो उभयकृष्टि हीनरूप रही उनका प्रमाण ऐसा $\frac{४ | १३ | (\frac{१८}{\frac{प}{ə}} | १६ | \frac{प}{ə} - ११)}{ख | २४ | \frac{प}{ə} | १६ | \frac{प}{ə}}$ ।

उनके ऊपर जो उदयरूप कृष्टि हुयी वे ऐसी $\frac{४ | १३ | ७}{ख | २४ | \frac{प}{ə} | १६ | \frac{प}{ə}}$ । उनके ऊपर जो अनुभयकृष्टि हुयी व ऐसी $\frac{४ | १३ | ४}{ख | २४ | \frac{प}{ə} | १६ | \frac{प}{ə}}$ ।

उनके ऊपर जो पहले उदयरूप कृष्टि थी वे अनुभयरूप हुयी और उनके ऊपर जो अनुभयकृष्टि थी वे अनुभयरूप ही रही । उनकी संदृष्टि पूर्ववत् जानना ।

इसतरह द्वितीय समय में अवस्था हुयी उनकी रचना ऐसी –

	अनुभयरही	उदयहुयी	उभयहुयी	उभयहुयी
द्वितीय निषेक	$\frac{\downarrow}{ख}४ \mid १३ \mid २ \mid २$ ख २४ प १६ प ५ ञ ञ	$\frac{\downarrow}{ख}४ \mid १३ \mid २ \mid ३$ ख २४ प १६ प ५ ञ ञ	$\frac{\downarrow}{ख}४ \mid १३ \mid २ \mid \frac{१८}{प\ ञ}$ ख २४ प १६ प ञ ञ	$\frac{\downarrow}{ख}४ \mid १३ \mid ३$ ख २४ प १६ ञ
प्रथम निषेक	अनुभय ज ० ० ० ० उ			उदय ज ० ० उ

	उभयरही	उदयहुयी	अनुभयहुयी	अनुभयहुयी	अनुभयरही
द्वितीय निषेक	$\frac{\downarrow}{ख}४ \mid १३ \mid \frac{१८}{प\ ञ} \mid १६ \mid प - ११$ ख २४ प १६ प ञ ञ	$\frac{\downarrow}{ख}४ \mid १३ \mid ७$ ख २४ प १६ प ञ ञ	$\frac{\downarrow}{ख}४ \mid १३ \mid ४$ ख २४ प १६ प ञ ञ	$\frac{\downarrow}{ख}४ \mid १३ \mid ७$ ख २४ प १६ ञ	$\frac{\downarrow}{ख}४ \mid १३ \mid ४$ ख २४ प १६ ञ
प्रथम निषेक	उभय ज ० ० ० ० उ			उदय ज ० उ	अनुभय ज ० उ

यहां गुणश्रेणीरूप क्रमअधिक निषेकों की रचना की । वहां प्रथम निषेक में अनुभयादि कृष्टियों में जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट कृष्टियों की संदृष्टि करके ऊपर द्वितीय निषेक में रही और हुयी अनुभयादि कृष्टियों की रचना क्रम से की है । इसीतरह तृतीयादि समयों में रचना जानना ।

लोभ की तृतीय संग्रह से लेकर क्रोध की प्रथम संग्रह तक बारह संग्रहकृष्टियों में डेढ़ गुणहानि गुणित आदि वर्गणा मात्र द्रव्य ऐसा व **१२** और साधिक वर्गणाशलाका के अनंतवें भाग मात्र कृष्टियों का प्रमाण ऐसा $\frac{\downarrow}{ख}४$ इनको चौबीस का भाग देकर अन्यत्र एकभाग मात्र और क्रोध की प्रथम संग्रह में तेरह भाग मात्र द्रव्य और कृष्टियों का प्रमाण होता है ।

[*विशेषार्थ : सर्वद्रव्य व १२, अन्य एक-एक संग्रहकृष्टि का द्रव्य* व $\frac{१२}{२४}$ *क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य* व $\frac{१२}{२४}$ | १३ ।

सर्वकृष्टि $\frac{\downarrow ४}{ख}$ *, अन्य एक-एक संग्रहकृष्टि में कृष्टियों का प्रमाण* $\frac{\downarrow ४}{ख २४}$ *। क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में कृष्टियों का प्रमाण* $\frac{\downarrow ४}{ख २४}$ | १३]

पुनश्च सर्वद्रव्य को चौबीस का और अपकर्षण भागहार का भाग देकर एक आयद्रव्य और व्ययद्रव्य ऐसा व $\frac{१२}{२४ ओ}$ । उसको अपने-अपने आयद्रव्य और व्ययद्रव्य के प्रमाण से गुणा करनेपर आयद्रव्य और व्ययद्रव्य का प्रमाण आता है । जहां आयद्रव्य वा व्ययद्रव्य नहीं है वहां शून्य की संदृष्टि जानना ।

पुनश्च अपने-अपने द्रव्य के और कृष्टियों के प्रमाण को अपकर्षण भागहार का असंख्यातवां भाग ऐसा ओ उसका भाग देनेपर घातद्रव्य और घातकृष्टियों का प्रमाण आता है । $\frac{ओ}{१}$

[*विशेषार्थ : अपकर्षणद्रव्य* व $\frac{१२}{२४ ओ}$,

घातद्रव्य व $\frac{१२}{२४ ओ \times १}$,

घातकृष्टि $\frac{\downarrow ४}{ख ओ \times १}$ *क्रोध की प्रथम संग्रह में तेरह गुणा जानना ।*]

२४/

इनकी संदृष्टि ऐसी –

[*मूल में बारह संग्रहकृष्टियों की आड़ी रचना थी और द्रव्य, कृष्टि आदि ऊर्ध्व रचना थी । जगह के अभाव में द्रव्यादि को आड़ा दिखाया है और लोभादि को ऊर्ध्व में दिखाया है ।*]

नाम	संग्रह	द्रव्यप्रमाण	कृष्टिप्रमाण	आयद्रव्य	व्ययद्रव्य	घातद्रव्य	घातकृष्टि
लोभ	तृतीय	व १२ २४	४ ख २४	व १२ | २ २४ ओ	०	व १२ २४ ओ ə	४ ख २४ ओ ə
	द्वितीय	व १२ २४	४ ख २४	व १२ | १ २४ ओ	व १२ | १ २४ ओ	व १२ २४ ओ ə	४ ख २४ ओ ə
	प्रथम	व १२ २४	४ ख २४	व १२ | ३ २४ ओ	व १२ | २ २४ ओ	व १२ २४ ओ ə	४ ख २४ ओ ə
माया	तृतीय	व १२ २४	४ ख २४	व १२ | २ २४ ओ	व १२ | १ २४ ओ	व १२ २४ ओ ə	४ ख २४ ओ ə
	द्वितीय	व १२ २४	४ ख २४	व १२ | १ २४ ओ	व १२ | २ २४ ओ	व १२ २४ ओ ə	४ ख २४ ओ ə
	प्रथम	व १२ २४	४ ख २४	व १२ | ३ २४ ओ	व १२ | ३ २४ ओ	व १२ २४ ओ ə	४ ख २४ ओ ə
मान	तृतीय	व १२ २४	४ ख २४	व १२ | २ २४ ओ	व १२ | १ २४ ओ	व १२ २४ ओ ə	४ ख २४ ओ ə
	द्वितीय	व १२ २४	४ ख २४	व १२ | १ २४ ओ	व १२ | २ २४ ओ	व १२ २४ ओ ə	४ ख २४ ओ ə
	प्रथम	व १२ २४	४ ख २४	व १२ | १५ २४ ओ	व १२ | ३ २४ ओ	व १२ २४ ओ ə	४ ख २४ ओ ə
क्रोध	तृतीय	व १२ २४	४ ख २४	व १२ | १४ २४ ओ	व १२ | १ २४ ओ	व १२ २४ ओ ə	४ ख २४ ओ ə
	द्वितीय	व १२ २४	४ ख २४	व १२ | १८२ २४ ओ	व १२ | २ २४ ओ	व १२ २४ ओ ə	४ ख २४ ओ ə
	प्रथम	व १२ | १३ २४	४ | १३ ख २४	०	व १२ | २०८ २४ ओ	व १२ | १३ २४ ओ ə	४ | १३ ख २४ ओ ə
जोड़	संग्रह १२	व १२	४ ख	व १२ ९ ओ	व १२ | २२६ २४ ओ	व १२ ओ ə	४ ख ओ ə

यहां आयद्रव्य और व्ययद्रव्य का जोड़ ऐसा व १२ | २२६ । वहां चौबीस
ओ २४
से दो सौ छब्बीस का अपवर्तन करनेपर साधिक नौ का गुणकार होता है ऐसा जानना । क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में आयद्रव्य का अभाव है, इसलिए इसका तो घातद्रव्य है और अन्य संग्रह के आयद्रव्य से द्रव्य ग्रहण करके अधस्तनशीर्षविशेष आदि द्रव्य स्थापना । वहां कृष्टि को प्राप्त हुआ सर्वद्रव्य ऐसा व | १२ उसको सर्वकृष्टि मात्र गच्छ का और एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर पूर्वविशेष ऐसा व १२ १८ इसकी लघु संदृष्टि ऐसी वि । यहां गच्छ
४ | १६ – ४
ख ख २
का प्रमाण सर्वकृष्टि मात्र स्थापित करके जैसे कृष्टिकारक के द्वितीय समय में विधान कहा वैसे अधस्तनशीर्षविशेष की संदृष्टि होती है । विशेष इतना – वहां उसको प्रथम संग्रहकृष्टि कही थी यहां तृतीय संग्रहकृष्टि कहना, तृतीय कही थी उसको प्रथम कहना ।

लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि ऐसी व १२ यहां सर्वद्रव्य को
४
ख
सर्वकृष्टि के प्रमाण का भाग देनेपर मध्यमधन होता है उसमें विशेष का अधिकपना करनेपर जघन्य कृष्टि होती है । इसको दो बार असंख्यात से गुणित अपकर्षण भागहार का भाग देनेपर मध्यमखंड ऐसा व १२ इसको अपनी-अपनी संग्रहकृष्टि
४ | ओ ७ ७
ख
के कृष्टियों के प्रमाण से गुणा करनेपर अपना-अपना मध्यमखंड द्रव्य होता है ।

लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि में एक मध्यमखंड मिलाने के लिये साधिक की संदृष्टि करनेपर ऐसा व १२ ।
४
ख

पुनश्च अपनी-अपनी संग्रहकृष्टि के नीचे संक्रमणद्रव्य द्वारा जो नवीन कृष्टि हुयी उनका प्रमाण अपनी पूर्वकृष्टियों को असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहार का भाग देनेपर ऐसा $\frac{\downarrow ४}{\text{ख ओ ə}}$ भागहार के गुण्य, गुणकार को आगे पीछे लिखकर ऐसा $\frac{\downarrow ४}{\text{ख ə ओ}}$ उससे उस लोभ की जघन्य कृष्टि समानद्रव्य को गुणा करनेपर अपनी-अपनी संग्रहकृष्टि के नीचे संक्रमणद्रव्य द्वारा हुयी नवीन कृष्टि संबंधी समानद्रव्य होता है । क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में यह द्रव्य नहीं पाया जाता, वहां शून्य जानना ।

पुनश्च पूर्व-उत्तर द्रव्य को पुरातन-नूतन कृष्टि मात्र गच्छ का और एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर एक उभयद्रव्यविशेष होता है, उसकी लघुसंदृष्टि ऐसी **वि** स्थापित करके जैसे कृष्टिकारक के द्वितीय समय में विधान कहा था वैसे यहां उभयद्रव्यविशेष करनेपर संदृष्टि होती है ।

विशेष यहां मध्यमखंडवत् जानना ।

पुनश्च एक मध्यमखंड सहित लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{व १२}''}{\downarrow ४ \\ \text{ख}}$ उसकी एक शलाका होती है तो लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि के आयद्रव्य में से पूर्वोक्त चार द्रव्य घटाने की आगे किंचित् कम की संदृष्टि करनेपर ऐसा $\frac{\text{व १२} \mid २ -}{\text{२४ ओ}}$ इतने द्रव्य की कितनी शलाका होगी? ऐसा त्रैराशिक करनेपर लब्धराशि ऐसी $\frac{\text{व १२} \mid २ -}{\text{२४ ओ} \mid \text{व १२}''}$ यहां किंचित् हीन अधिक न गिनकर $\frac{\downarrow ४}{\text{ख}}$ का अपवर्तन करके और भागहार का भागहार ऐसा $\frac{\downarrow ४}{\text{ख}}$ उसको भाज्य करके तथा राशि का गुणकार ऐसा **२ –** उसको भागहार का भागहार करके ऐसा हुआ

$\frac{\downarrow ४}{\text{ख २४ ओ}}$ । यह लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की संक्रमणांतरकृष्टियों का प्रमाण

२ –

है । पहले कृष्टि थी, उनके बीच-बीच इतनी नवीन कृष्टि संक्रमणद्रव्य से हुयी है ।

इसीतरह अवशेष दस संग्रहकृष्टि में विधान करनेपर अन्य संदृष्टि तो समान होती है और भागहार का भागहार अपना-अपना एक आदि आयद्रव्य का प्रमाण किंचित् कम होता है ।

क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में आयद्रव्य का अभाव है, इसलिए वहां यह विधान नहीं होता, वहां शून्य जानना । उनकी संदृष्टि ऐसी –

लोभ			माया			मान			क्रोध	
तृतीय	द्वितीय	प्रथम	तृतीय	द्वितीय	प्रथम	तृतीय	द्वितीय	प्रथम	तृतीय	द्वितीय
$\frac{\downarrow ४}{\text{ख २४ ओ २ –}}$	$\frac{\downarrow ४}{\text{ख २४ ओ १ –}}$	$\frac{\downarrow ४}{\text{ख २४ ओ ३ –}}$	$\frac{\downarrow ४}{\text{ख २४ ओ २ –}}$	$\frac{\downarrow ४}{\text{ख २४ ओ १ –}}$	$\frac{\downarrow ४}{\text{ख २४ ओ ३ –}}$	$\frac{\downarrow ४}{\text{ख २४ ओ २ –}}$	$\frac{\downarrow ४}{\text{ख २४ ओ १ –}}$	$\frac{\downarrow ४}{\text{ख २४ ओ ११ –}}$	$\frac{\downarrow ४}{\text{ख २४ ओ १४ –}}$	$\frac{\downarrow ४}{\text{ख २४ ओ १८२ –}}$

अपनी संग्रहकृष्टियों के प्रमाण को भाग देकर ऐसे $\frac{\downarrow ४}{\text{ख २४}}$ का अपवर्तन करके

और भागहार के भागहार को राशि करनेपर संक्रमणांतरकृष्टियों के बीच जो अंतरकृष्टि हैं उनका प्रमाण होता है ।

[***विशेषार्थ*** *: संग्रहकृष्टि का प्रमाण ÷ संक्रमणांतरकृष्टियों का प्रमाण = संक्रमणांतर कृष्टियों के बीच में पायी जानेवाली अंतरकृष्टियों का प्रमाण ।*

$$\left(\frac{\downarrow ४}{\text{ख २४}}\right) \div \left(\frac{\downarrow ४}{\text{ख २४}}\right)_{\text{ओ २ –}} = \text{ओ २ –} \ ]$$

वहां लोभ की ~~प्रथम~~ तृतीय संग्रहकृष्टि में पूर्वकृष्टि ऐसी $\frac{\downarrow ४}{\text{ख २४}}$ इसको नवीन की हुयी

कृष्टि ऐसी $\frac{\text{४}}{\text{ख २४ ओ}}$ यहां ऐसे $\frac{\text{४}}{\text{ख २४}}$ का अपवर्तन करके और भागहार का $\frac{}{\text{२ –}}$ भागहार ऐसा ओ उसको राशि करनेपर लोभ की तृतीय संग्रकृष्टि में नवीन $\frac{}{\text{२ –}}$ कृष्टियों के बीच जो पूर्वकृष्टि हैं उनका प्रमाण होता है । ऐसे ही अन्य में जानना । उनकी संदृष्टि ऐसी –

ओ २ –	ओ १ –	ओ ३ –	ओ २ –	ओ १ –	ओ ३ –	ओ २ –	ओ १ –	ओ १५ –	ओ १४ –	ओ १८२ –	०

यहां पूर्वकृष्टियों के बीच-बीच हुयी नवीन संक्रमणांतरकृष्टियों का जो प्रमाण कहा उसका भाग अपने-अपने किंचित् कम आयद्रव्य को देनेपर एक नवीन कृष्टि का द्रव्य होता है । इसको उसी संक्रमणांतरकृष्टि प्रमाण से गुणा करके अपवर्तन करनेपर अपना-अपना किंचित् कम आयद्रव्य मात्र संक्रमणांतरकृष्टि संबंधी समानखंड द्रव्य होता है । आयद्रव्य की संदृष्टि पहले कही है, उसके आगे किंचित् कम की संदृष्टि करना । क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में यह विधान नहीं है, वहां शून्य जानना । इसतरह ग्यारह संग्रहकृष्टियों के संक्रमणद्रव्य में और क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि के घातद्रव्य में विभाग होता है उनकी संदृष्टि ऐसी –

नाम	लोभ			माया		
संग्रह	तृतीय	द्वितीय	प्रथम	तृतीय	द्वितीय	प्रथम
अधस्तनशीर्ष विशेषद्रव्य	$\frac{१०}{\text{वि ४ ४ १}}$ ख २४ ख २४ | २	$\frac{१०}{\text{वि ४ ४ ३}}$ ख २४ ख २४ | २	$\frac{१०}{\text{वि ४ ४ ५}}$ ख २४ ख २४ | २	$\frac{१०}{\text{वि ४ ४ ७}}$ ख २४ ख २४ | २	$\frac{१०}{\text{वि ४ ४ ९}}$ ख २४ ख २४ | २	$\frac{१०}{\text{वि ४ ४ ११}}$ ख २४ ख २४
मध्यमखंडद्रव्य	व १२ $\frac{४}{४ \text{ ओ } ० ०}$ ख २४ ख	व १२ $\frac{४}{४ \text{ ओ } ० ०}$ ख २४ ख	व १२ $\frac{४}{४ \text{ ओ } ० ०}$ ख २४ ख	व १२ $\frac{४ –}{४ \text{ ओ } ० ०}$ ख २४ ख	व १२ $\frac{४ –}{४ \text{ ओ } ० ०}$ ख २४ ख	व १२ $\frac{४ –}{४ \text{ ओ } ० ०}$ ख २४ ख
नूतनकृष्टिसंबंधी समानकृष्टिद्रव्य	व $\frac{१२}{४ \text{ ओ } ०}$ ख २४ ख	व $\frac{१२}{४ \text{ ओ } ०}$ ख २४ ख	व $\frac{१२}{४ \text{ ओ } ०}$ ख २४ ख	व $\frac{१२ –}{४ \text{ ओ } ०}$ ख २४ ख	व $\frac{१२ –}{४ \text{ ओ } ०}$ ख २४ ख	व $\frac{१२ –}{४ \text{ ओ } ०}$ ख २४ ख
उभयद्रव्य विशेषद्रव्य	$\frac{१०}{\text{वि ४ ४ ४७}}$ ख २४ ख २४ २	$\frac{१०}{\text{वि ४ ४ ४५}}$ ख २४ ख २४ २	$\frac{१०}{\text{वि ४ ४ ४३}}$ ख २४ ख २४ २	$\frac{१०}{\text{वि ४ ४ ४१}}$ ख २४ ख २४ २	$\frac{१०}{\text{वि ४ ४ ३९}}$ ख २४ ख २४ २	$\frac{१०}{\text{वि ४ ४ ३७}}$ ख २४ ख २४ २
संक्रमणांतरकृष्टि समानखंडद्रव्य	व १२ | २ – २४ ओ	व १२ | १ – २४ ओ	व १२ | ३ – २४ ओ	व १२ | २ – २४ ओ	व १२ | १ – २४ ओ	व १२ | ३ – २४ ओ

नाम	मान			क्रोध		
संग्रह	तृतीय	द्वितीय	प्रथम	तृतीय	द्वितीय	प्रथम
अधस्तनशीर्ष विशेषद्रव्य	$\frac{१८}{४}$ वि ४ ≡ १३ ख २४ ख २४ २	$\frac{१८}{४}$ वि ४ ≡ १५ ख २४ ख २४ २	$\frac{१८}{४}$ वि ४ ≡ १७ ख २४ ख २४ २	$\frac{१८}{४}$ वि ४ = १९ ख २४ ख २४ | २	$\frac{१८}{४}$ वि ४ = २१ ख २४ ख २४ | २	$\frac{१८}{४}$ वि ४ = ४५५ ख २४ ख २४ | २
मध्यमखंडद्रव्य	व १२ $\frac{४}{४}$ ≡ ओ ० ० ख २४ ख	व १२ $\frac{४}{४}$ ≡ ओ ० ० ख २४ ख	व १२ $\frac{४}{४}$ ≡ ओ ० ० ख २४ ख	व १२ $\frac{४}{४}$ = ओ ० ० ख २४ ख	व १२ $\frac{४}{४}$ = ओ ० ० ख २४ ख	व १२ $\frac{४}{४}$ १३ = ओ ० ० ख २४ ख
नूतनकृष्टिसंबंधी समानकृष्टिद्रव्य	व १२ $\frac{४}{४}$ ≡ ओ ० ख २४ ख	व १२ $\frac{४}{४}$ ≡ ओ ० ख २४ ख	व १२ $\frac{४}{४}$ ≡ ओ ० ख २४ ख	व १२ $\frac{४}{४}$ = ओ ० ख २४ ख	व १२ $\frac{४}{४}$ = ओ ० ख २४ ख	०
उभयद्रव्य विशेषद्रव्य	$\frac{१८}{४}$ वि ४ ≡ ३५ ख २४ ख २४ २	$\frac{१८}{४}$ वि ४ ≡ ३३ ख २४ ख २४ २	$\frac{१८}{४}$ वि ४ ≡ ३१ ख २४ ख २४ २	$\frac{१८}{४}$ वि ४ = २९ ख २४ ख २४ २	$\frac{१८}{४}$ वि ४ = २७ ख २४ ख २४ २	$\frac{१८}{४}$ वि ४ = १६९ ख २४ ख २४ २
संक्रमणांतरकृष्टि समानखंडद्रव्य	व १२ | २ – २४ ओ	व १२ | १ – २४ ओ	व १२ | १५ – २४ ओ	व १२ | १४ – २४ ओ	व १२ | १८२ – २४ ओ	०

इसतरह संक्रमणद्रव्य के विधान की संदृष्टि कही, अब बंधद्रव्य के विधान की संदृष्टि कहते हैं ।

मोहनीय के समयप्रबद्ध की संदृष्टि ऐसी **स** उसको चार का भाग देनेपर एक कषाय का द्रव्य $\frac{\text{स}}{४}$ होता है । वहां मान का अल्प, उससे क्रोध, माया, लोभ का

मान	क्रोध	माया	लोभ
$\frac{\text{स}}{४}$	$\frac{\text{स}}{४}$	$\frac{\text{स}}{४}$	$\frac{\text{स}}{४}$

क्रमअधिक है उनकी संदृष्टि रचना ऐसी । पुनश्च मध्यमखंड सहित लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि की जघन्य कृष्टि का द्रव्य डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध को सर्वकृष्टि का भाग देकर साधिक करनेपर ऐसा $\frac{\text{स}\ १२}{४\ \text{ख}}$ इतने द्रव्य की एक कृष्टिरूप एक शलाका होती है तो पूर्वोक्त मानद्रव्य की कितनी होगी ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर मान में लब्धराशि ऐसी $\frac{\text{स}}{४}$ $\frac{\text{स}\ १२}{४\ \text{ख}}$ । यहां समयप्रबद्ध का अपवर्तन करके और भागहार का भागहार ऐसा $\frac{४}{\text{ख}}$ उसको भाज्य

करके और भागहार में चार और डेढ़ गुणहानि *(१२)* का परस्पर गुणा करके छह गुणहानि हुयी इसलिए गुणहानि की संदृष्टि आठ अंक के आगे छह का गुणकार लिखनेपर संदृष्टि होती है ।

[*विशेषार्थ :*

∵ स १२ द्रव्य की १ कृष्टि ४ ख	= स / ४ स १२ = ४ / ख ४ × डेढ़ गुणहानि
∴ स मान द्रव्य की ४ / ४ ख ८ | ६	= ४ / ख | ४ | ८ | ३ (२) = ४ / ख | ८ | ६ (छ गुणहानि)]

क्रोधादिक में ऐसी ही अधिक क्रमरूप संदृष्टि होती है । इसतरह बंधांतर कृष्टियों के प्रमाण की संदृष्टि ऐसी –

मान	क्रोध	माया	लोभ
४ ख | ८ | ६	४ ख | ८ | ६	४ ख | ८ | ६	४ ख | ८ | ६

इन बंधकृष्टियों के बीच पाये जानेवाली अंतरकृष्टियों का प्रमाण गुणहानि के चौथे भाग मात्र है ।

[***विशेषार्थ*** *: संग्रहकृष्टि का प्रमाण ÷ बंधांतरकृष्टि का प्रमाण = बंधांतर कृष्टियों का अंतराल ।*

४ / ख २४ ४ / ख \| ८ \| ६ = ८ \| ६ (१) / २४ / ४ = *गुणहानि का चौथा भाग*

क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में $\frac{८}{४} \times १३ =$ *सव्वा तीन गुणहानि*]

वहां क्रोध में नोकषाय द्रव्य संबंधी कृष्टि मिलने से तेरह का गुणकार जानना । उनकी संदृष्टि ऐसी –

लोभ	माया	मान	क्रोध
८	८	८	८ | १३
४	४	४	४

एक-एक कषाय की एक-एक संग्रहकृष्टि बंधरूप होती है, यहां चारों कषायों की पहली संग्रहकृष्टि बंधरूप होती है । यहां चारों कषायों का नवीन बंधरूप हुआ समयप्रबद्ध ऐसा $\frac{स}{४}$ $\frac{स^{I}}{४}$ $\frac{स^{II}}{४}$ $\frac{स^{III}}{४}$ इनको अनंत का भाग देकर एकभाग को जुदा रखकर बहुभाग द्वारा नवीन बंधांतरकृष्टि निपजाता है ।

वहां अंत कृष्टि से लेकर जितनेवीं अंत की नवीन कृष्टि हो उतने विशेष तो आदि और अपने-अपने अंतरालरूप कृष्टियों का पूर्वोक्त प्रमाण मात्र विशेष उत्तर और अपनी-अपनी बंधांतर कृष्टियों का पूर्वोक्त प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके संकलनधन करनेपर बंधांतरकृष्टिविशेष द्रव्य होता है । अन्य कृष्टियों में तो जहां उभयद्रव्यविशेष द्रव्य देना कहा था, वहां बंधकृष्टियों में इस द्रव्य को देना । यहां क्रोध, मान, माया, लोभ की प्रथम संग्रहकृष्टि के बंधांतर विशेष में आदि, उत्तर, गच्छ की और संकलन किये धन की ऐसी संदृष्टि होती है –

नाम	क्रोध प्र	मान प्र	माया प्र	लोभ प्र
संकलितधन	वि ४ | १३' | ४ ख २४ | २ | ख | ८ | ६	वि ४ | ३१' | ४ ख २४ | २ | ख | ८ | ६	वि ४ | ३७' | ४ ख २४ | २ | ख | ८ | ६	वि ४ | ४३' | ४ ख २४ | २ | ख | ८ | ६
गच्छ	$\frac{I}{४}$ ख | ८ | ६	$\frac{}{४}$ ख | ८ | ६	$\frac{II}{४}$ ख | ८ | ६	$\frac{III}{४}$ ख | ८ | ६
उत्तर	$\frac{१}{४}$ वि | ८ | १३	$\frac{१}{४}$ वि | ८	$\frac{१}{४}$ वि | ८	$\frac{१}{४}$ वि | ८
आदि	वि | $\frac{I}{४}$ | १३ ख | २४	वि | $\frac{}{४}$ | १५ ख | २४	वि | $\frac{II}{४}$ | १८ ख | २४	वि | $\frac{III}{४}$ | २१ ख | २४

पुनश्च बहुभाग में से इतना *(बंधांतरकृष्टिविशेष द्रव्य)* घटानेपर अवशेष जो द्रव्य रहा उसको अपने-अपने बंधांतरकृष्टि प्रमाण का भाग देनेपर एक कृष्टि का द्रव्य होता

है, उसको उसी प्रमाण से गुणा करनेपर बंधांतरकृष्टि समानद्रव्य होता है । इसके द्वारा लोभ की जघन्य कृष्टि के समान बंधकृष्टि निपजती है ।

एकभाग जुदा रखा था, उसमें दो भाग करना, उस एकभाग को सर्व पूर्व-अपूर्व कृष्टि प्रमाण गच्छ का और एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर विशेष होता है । सो एक विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और सर्व कृष्टि प्रमाण गच्छ स्थापित करके संकलनधन करनेपर बंधविशेष द्रव्य होता है । इसको सर्व बंधकृष्टियों में जहां उभयद्रव्यविशेष में से घटता द्रव्य देना कहा, वहां इसको देकर पूर्ण करना ।

पुनश्च उस एकभाग में से इसको घटाकर जो अवशेष रहा उसको अपनी-अपनी सर्वकृष्टि प्रमाण का भाग देकर एक खंड होगा उसको उसीसे गुणा करके सर्व मध्यमखंड द्रव्य होता है । इसतरह बंधद्रव्य में चार प्रकार कहे ।

इनकी संदृष्टियों का मुझे ठीक से ज्ञान नहीं हुआ, इसलिए यहां नहीं लिखी है । इन द्रव्यों को देने का विधान पूर्व में व्याख्यान में कह आये हैं । यहां अनंत जगह पहले बहुत, पश्चात् हीन, पश्चात् अधिक-अधिक द्रव्य देता है, इसलिए अनंत उष्ट्रकूट रचना होती है ।

बारह संग्रहकृष्टियों में नीचे नवीन हुयी कृष्टि और पूर्व और अपूर्व कृष्टियों के बीच-बीच संक्रमणद्रव्य द्वारा निपजी हुयी नवीन कृष्टि और चार संग्रहकृष्टियों में बंधकृष्टि, उनकी रचना ऐसी जानना –

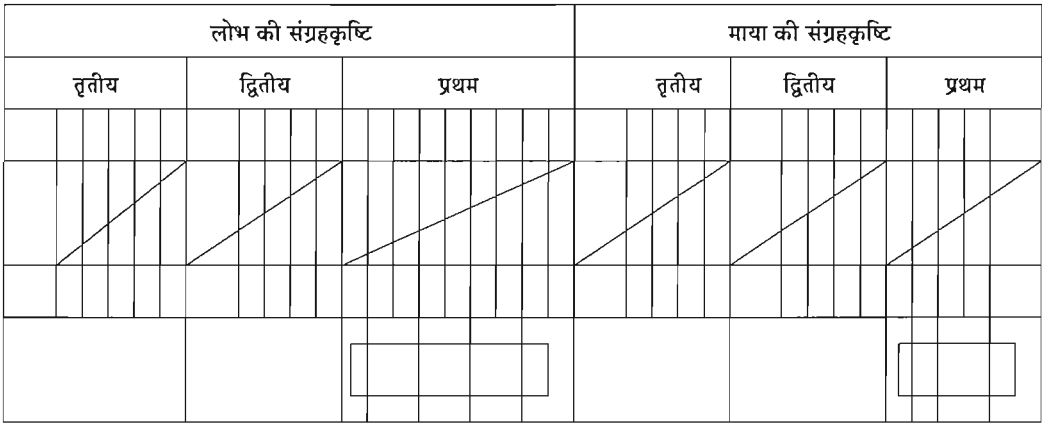

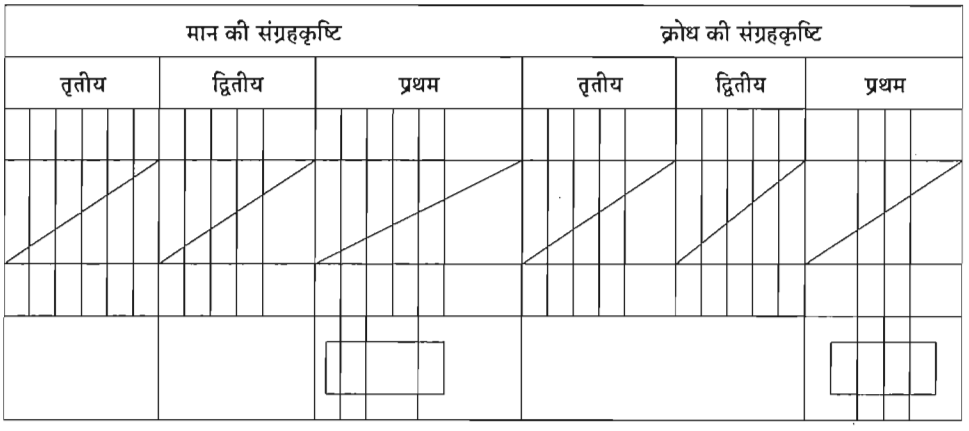

यहां अनुभाग की रचना युगपत् काल में पायी जाती है इसलिए आड़ी रचना की है । वहां नीचे लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि है उसमें नीचे नवीन कृष्टियों की रचना ऐसी उनके ऊपर पूर्वकृष्टियों की रचना ऐसी इसमें समपट्टिका की समान लकीर, विशेष घटते क्रम की क्रमहीनरूप लकीर और उसमे अधस्तनशीर्ष विशेष दिया उसकी क्रमअधिकरूप लकीर की संदृष्टि करनेपर ऐसा 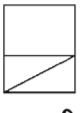 ऐसा करनेपर सर्व पूर्वअपूर्व कृष्टियों की समपट्टिका हुयी ऐसे ही लोभ की द्वितीयादि में संदृष्टि जानना ।

वहां क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में नीचे नवीन कृष्टि नहीं हुयी । इसलिए उनकी रचना नहीं की है । पूर्वकृष्टियों की ही रचना की है । इन पूर्वकृष्टियों के बीच संक्रमणद्रव्य द्वारा नवीन कृष्टि हुयी उनकी सीधी ऊभी लकीररूप संदृष्टि और बंधद्रव्य द्वारा नवीन कृष्टि हुयी उनकी वांकी *(तिरछी)* ऊभी लकीररूप संदृष्टि जानना ।

वहां लोभादि चारों कषायों के तृतीय, द्वितीय संग्रहकृष्टि में तो संक्रमणद्रव्य द्वारा ही नवीन कृष्टि हुयी उनकी संदृष्टि ऐसी –

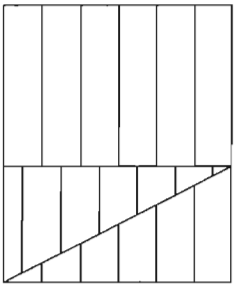

लोभ, माया, मान की प्रथम संग्रहकृष्टि में संक्रमणद्रव्य द्वारा और बंधद्रव्य द्वारा नवीन कृष्टि हुयी उनकी संदृष्टि ऐसी –

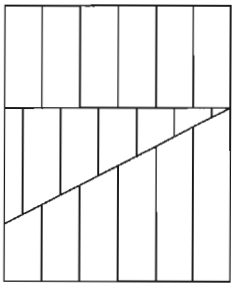

क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि में बंधद्रव्य से ही नवीन कृष्टि हुयी उनकी संदृष्टि ऐसी –

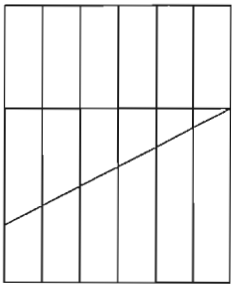

इन सर्व पूर्वअपूर्व कृष्टियों में क्रमहीनरूप विशेष द्रव्य दिया । उसकी क्रमहीनरूप लकीर संदृष्टि जानना । पुनश्च बंध होने योग्य पूर्वकृष्टियों के उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में और बंधद्रव्य से निपजी हुयी नवीन कृष्टियों के बंधांतरविशेष द्रव्य में घटता द्रव्य दिया, वहां बंधविशेषद्रव्य दिया और बंधद्रव्य का मध्यमखंड द्रव्य दिया उसकी उभयद्रव्यविशेष द्रव्य की संदृष्टि ऐसी –

ऐसी यहां रचना जानना ।

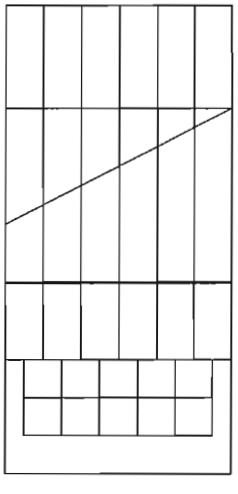

क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{व १२}}{\text{२४}} \mid \text{१३}$ वह द्वितीय संग्रहकृष्टि रूप हुआ और द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य पहले ऐसा $\frac{\text{व १२}}{\text{२४}} \mid \text{१}$ था ही, मिलकर द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{व १२}}{\text{२४}} \mid \text{१४}$ हुआ । ऐसे ही अन्य संग्रहकृष्टियों में लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि तक पूर्व-पूर्व संग्रहकृष्टि का द्रव्य अपने द्रव्य में मिलने से अपना-अपना द्रव्य होता है वह जानना । उसकी संदृष्टि रचना ऐसी –

नाम	क्रोध			मान		
संग्रह	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
द्रव्य	व १२ | १३ / २४	व १२ | १४ / २४	व १२ | १५ / २४	व १२ | १६ / २४	व १२ | १७ / २४	व १२ | १८ / २४

नाम	माया			लोभ		
संग्रह	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
द्रव्य	व १२ | १९ / २४	व १२ | २० / २४	व १२ | २१ / २४	व १२ | २२ / २४	व १२ | २३ / २४	व १२ | २४ / २४

वहां अपने-अपने द्रव्य का अपकर्षण करके प्रथम स्थिति में गुणकारक्रम से, द्वितीय स्थिति में विशेष हीनक्रम से देने का विधान पूर्ववत् जानना । पुनश्च आयद्रव्य आदि यथासंभव जानकर उनकी संदृष्टि पूर्ववत् जानना । वहां संक्रमणद्रव्य, बंधद्रव्य का विधान यथासंभव जानकर उनकी संदृष्टि पूर्ववत् जानना । विशेष हो सो विशेष जान लेना । पुनश्च क्रोध, मान, माया, लोभ वेदक के क्रम से चार, तीन, दो, एक कषायों का बंध है । वहां जिस कषाय की जिस संग्रहकृष्टि को वेदता है, उस कषाय की तो उसी संग्रहकृष्टि का बंध है, अन्य कषायों की प्रथम संग्रहकृष्टि का बंध है ।

उस बंधांतरकृष्टि शलाका में क्रोधवेदक के कृष्टि प्रमाण को छह गुणहानि का भागहार कहा था । मान, माया, लोभ वेदक के क्रम से साड़ेचार, तीन, डेढ़ गुणहानि भागहार जानना । उनकी संदृष्टि ऐसी –

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध
क्रोधवेदक	४ / ख ८ | ६	४ / ख ८ | ६	४ / ख ८ | ६	४ / ख ८ | ६
मानवेदक	४ / ख ८ | ९ / २	४ / ख ८ | ९ / २	४ / ख ८ | ९ / २	
मायावेदक	४ / ख ८ | ३	४ / ख ८ | ३		
लोभवेदक	४ / ख ८ | ३ / २			

[*विशेषार्थ : जहां चार कषायों का बंध होता है वहां प्रत्येक का द्रव्य* स, *जहां तीन का वहां* स ,*जहां दो का वहां* स, *जहा एक का वहां स । अब इनके बंधांतर कृष्टियों का प्रमाण लाते हैं –*

क्रोधवेदक काल में	∵ स १२ (↓४ ख)	१ बंधांतर कृष्टि	स (↓४ ख) ४ स १२ = ख | ४ | १२
	∴ स ४	ख (↓४) | ८ | ६	= ख (↓४) ८ | ६
मानवेदक काल में	∴ स ३	ख (↓४) | ८ | ९ (२)	स (↓४ ख) ३ स १२ = ख ३ | ८ | ३ (२) = ख (↓४) ८ | ९ (२)
मायावेदक काल में	∴ स २	ख (↓४) | ८ | ३	स (↓४ ख) २ स १२ = ख ३ | ८ | ३ (३)
लोभवेदक काल में	∴ स	ख (↓४) | ८ | ३ (२)	स (↓४ ख) स १२ = ख (↓४) ८ | ३ (२)]

बंधांतरकृष्टियों के बीच जो अंतरकृष्टि हैं उनका प्रमाण क्रोध के प्रथम संग्रहकृष्टि के वेदक में अन्य कषायों का गुणहानि का चौथा भाग मात्र, क्रोध का उससे तेरहगुणा $\left[\frac{८|१३}{४}\right]$ कहा था । उसके द्वितीय, तृतीय कृष्टिवेदक में अन्य कषायों का पूर्ववत्, क्रोध का चौदहगुणा $\left[\frac{८|१४}{४}\right]$ और पंद्रहगुणा $\left[\frac{८|१५}{४}\right]$ जानना । मान की प्रथमादि संग्रहवेदक के अन्य-अन्य कषायों का गुणहानि के तीन सोलहवां भाग मात्र, मान का उससे सोलह, सत्रह, अठारह गुणा क्रम से जानना ।

माया की प्रथमादि संग्रहवेदक के लोभ का गुणहानि के दो सोलहवां भाग मात्र, माया का उससे उन्नीस, बीस, इक्कीस गुणा क्रम से जानना । लोभ की प्रथमादि संग्रहवेदक के लोभ का गुणहानि का सोलहवां भाग बाइस, तेइस, चौबीस गुणा क्रम से जानना । उनकी संदृष्टि ऐसी –

(बंधांतरकृष्टियों का अंतराल – गाथा ५५६)

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध
क्रोधवेदक	८ / ४	८ / ४	८ / ४	८ | १३ | १४ | १५ / ४
मानवेदक	८ | ३ / १६	८ | ३ / १६	८ | ३ | १६ | १७ | १८ / १६	
मायावेदक	८ | २ / १६	८ | २ | १९ | २० | २१ / १६		
लोभवेदक	८ | २२ | २३ | २४ / १६			

लोभ की
पुनश्च, द्वितीय संग्रहकृष्टि का द्रव्य ऐसा व १२ | २३ उसको अपकर्षण भागहार
२४
का भाग देकर पच्चीस भाग मात्र संक्रमणद्रव्य ऐसा व १२ | ५७५ उसमें से एकभाग
२४ ओ
मात्र तृतीय संग्रहरूप परिणमित द्रव्य ऐसा व १२ | २३ और चौबीस भाग मात्र
२४ ओ
सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणमित हुआ द्रव्य ऐसा व १२ | ५५२ । पुनश्च तृतीय संग्रह के द्रव्य
२४ ओ
को अपकर्षण भागहार का भाग देनेपर एकभाग सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणमित द्रव्य ऐसा व | १२ | १ इनको मिलानेपर सर्व सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणमित द्रव्य ऐसा व १२ | ५५३
२४ ओ २४ ओ
इतने द्रव्य द्वारा सर्व सूक्ष्मकृष्टिकरण काल के प्रथम समय में बादरकृष्टियों के नीचे सूक्ष्मकृष्टि करता है । उनका प्रमाण कहते हैं –

क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि ऐसी ४ | १३ । पूर्व-पूर्व संग्रह उत्तर-उत्तर संग्रहरूप
ख २४

होकर परिणमित होती है । इसलिए पूर्व प्रमाण को विवक्षित संग्रहकृष्टि के प्रमाण में मिलानेपर अपने-अपने वेदककाल में कृष्टियों का प्रमाण ऐसा होता है –

नाम	क्रोध			मान			माया			लोभ		
संग्रह	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	प्रथम	द्वितीय	सूक्ष्मकृष्टि
कृष्टिप्रमाण	४ | १३ ख २४	४ | १४ ख २४	४ | १५ ख २४	४ | १६ ख २४	४ | १७ ख २४	४ | १८ ख २४	४ | १९ ख २४	४ | २० ख २४	४ | २१ ख २४	४ | २२ ख २४	४ | २३ ख २४	४ | २४ ख २४

वहां सूक्ष्मकृष्टियों का प्रमाण ऐसा $\frac{४}{ख\ २४}$ अपवर्तन करनेपर ऐसा $\frac{४}{ख}$ होता है । यहां लोभ के द्वितीय संग्रह में आयद्रव्य का तो अभाव है , तृतीय संग्रहरूप हुआ व्ययद्रव्य ऐसा $\frac{व\ \|\ १२}{२४\ ओ}$ वही तृतीय संग्रह का आयद्रव्य है । इसीका नाम संक्रमणद्रव्य है । लोभ की द्वितीय, तृतीय संग्रह में अपनी-अपनी कृष्टिप्रमाण को अपकर्षण भागहार के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर अपनी-अपनी घातकृष्टियों का प्रमाण आता है । उससे अपनी-अपनी अंत कृष्टि के द्रव्य को गुणा करके कुछ साधिक करनेपर अपना-अपना घातद्रव्य होता है । वहां घातद्रव्य को यथासंभव देनेपर स्वस्थान परस्थान गोपुच्छ होकर कृष्टि होती है । उनमें संक्रमणद्रव्य और घातद्रव्य का विभाग करते हैं –

एक विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और एक कम घात करने के पश्चात् शेष रही अपनी कृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके संकलनधन मात्र द्रव्य तृतीय संग्रह में से आयद्रव्य से ग्रहण करके स्थापना । और तृतीय संग्रहकृष्टि मात्र विशेष आदि और एक विशेष उत्तर और घात करने के पश्चात् शेष रही अपनी कृष्टि मात्र गच्छ स्थापित करके संकलनधन मात्र द्वितीय संग्रह में घातद्रव्य से ग्रहण करके स्थापना । इसका नाम बादरकृष्टि संबंधी अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य है । यहां 'पदमेगेण विहीणं' इत्यादि सूत्र द्वारा संकलनधन कहते हैं –

तृतीय संग्रह में गच्छ ऐसा $\frac{४}{ख\ \|\ २४}$ यहां घातकृष्टियों का और एक कम का किंचित् कमपना को गिना नहीं है । इसमें से एक घटाकर दो का भाग देकर ऐसा

$\frac{१ \circ}{४}$ इससे उत्तर जो विशेष उसको गुणा करनेपर ऐसा वि $\frac{१ \circ}{४}$ इसमें
ख २४ | २　　ख २४ | २

आदि एक विशेष मिलाने को एक कम था वहां एक अधिक करके उसको गच्छ ऐसा ४ से गुणा करके वहां गुण्य गुणकार को आगे पीछे लिखकर संकलनधन
ख | २४

ऐसा वि $\frac{१}{४}$ | ४ होता है ।
ख २४ ख २४ | २

लोभ के द्वितीय संग्रह में गच्छ ऐसा ४ | २३ इसमें से एक घटाकर दो का भाग देकर
ख २४

उससे उत्तर जो विशेष उसको गुणा करनेपर ऐसा वि $\frac{१ \quad \circ}{४ \mid २३}$ इसमें आदि ऐसा
ख २४ | २

वि ४ मिलाना, सो इसको दो से समच्छेद करनेपर ऐसा वि ४ | २ इसके
ख २४　　ख २४ | २

और उसके अन्य समान देखकर तेइस के गुणकार में दो का गुणकार मिलानेपर ऐसा वि $\frac{१ \quad \circ}{४ \mid २५}$ इसको गच्छ ऐसा ४ | २३ से गुणा करनेपर ऐसा
ख २४ | २　　ख २४

वि $\frac{१ \quad \circ}{४ \mid २५}$ | ४ | २३ यहां पच्चीस और तेइस को परस्पर गुणा करके पांच सौ
ख २४ | २ | ख | २४

पचहत्तर का गुणकार करके और गुण्य गुणकार आगे पीछे लिखकर संकलनधन ऐसा वि ४ | $\frac{१ \circ}{४}$ | ५७५ यहां एक अधिक हीन को न गिनकर संदृष्टि की है
ख २४ ख २४ | २

ऐसा जानना ।

पुनश्च तृतीय संग्रह की जघन्य कृष्टि ऐसी व $\frac{१२}{४}$ इसको असंख्यातगुणा अपकर्षण
ख

भागहार ऐसा ओ ० उसका भाग देकर उसको तृतीय संग्रह में कृष्टिप्रमाण ऐसा ४ / ख २४ और द्वितीय संग्रह में कृष्टिप्रमाण ऐसा ४ | २३ / ख २४ इनसे गुणा करनेपर अपना-अपना बादरकृष्टि संबंधी मध्यमखंड द्रव्य होता है । एक विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और अपनी-अपनी पूर्वकृष्टि प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके वहां जितना संकलनधन हुआ, उसमें से एक विशेष का अनंतवां भाग घटाकर जो होगा, वह द्वितीय संग्रह के घातद्रव्य से ग्रहण करके स्थापित करना । यहां एक विशेष का अनंतवां भाग घटाया है वहां बंधद्रव्य देकर पूर्ण करता है ऐसा जानना ।

पुनश्च एक अधिक द्वितीय संग्रह की कृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष आदि, एक विशेष उत्तर और संक्रमणद्रव्य से निपजी कृष्टि सहित अपनी पुरातन कृष्टि प्रमाण मात्र गच्छ स्थापित करके वहां संकलनधन मात्र तृतीय संग्रह के आयद्रव्य से ग्रहण करके स्थापना, इसका नाम उभयद्रव्यविशेष द्रव्य है । यहां 'पदमेगेण विहीणं' इत्यादि सूत्र द्वारा द्वितीय संग्रह में गच्छ ऐसा ४ | २३ / ख २४ उसमें से एक घटाकर दो का भाग देकर उससे उत्तर जो विशेष उसको गुणा करनेपर ऐसा वि १ ० / ४ | २३ / ख २४ | २ आदि एक मिलाने के लिये एक हीन की जगह एक अधिक करके उसको गच्छ से गुणा करनेपर ऐसा वि १ / ४ | २३ / ख २४ | २ | ४ | २३ / ख २४ । यहां तेइस से तेइस को गुणा करके और गुण्य गुणकार को आगे पीछे लिखनेपर संकलनधन ऐसा वि १ / ४ | ४ | ५२९ / ख २४ | २ | ख २४ ।

पुनश्च तृतीय संग्रह में गच्छ ऐसा ४ / ख २४ इसमें से एक घटाकर दो का भाग देकर उससे उत्तर जो विशेष उसको गुणा करनेपर ऐसा वि १ ० / ४ / ख २४ | २ इसमें

आदि ऐसा वि ४ | २३ मिलाने के लिये इसको दो से समच्छेद करनेपर ऐसा
ख २४

वि ४ | ४६ । इसके और उसके अन्य समान देखकर इसके छियालीस के
ख २४ | २

गुणकार में उसका एक गुणकार मिलानेपर ऐसा वि १८/४ | ४७ इसको गच्छ
ख २४ | २

४ से गुणा करके गुण्य, गुणकार को आगे पीछे लिखनेपर संकलनधन ऐसा
ख २४

वि १८/४ | ४ | ४७ । वहां घातकृष्टियों का हीनपना, संक्रमणकृष्टियों का अधिकपना
ख २४ | ख २४ | २

और एक के अधिक हीनपने को न गिनकर संदृष्टि की है ऐसा जानना ।

इन तीन प्रकार के द्रव्य से हीन तृतीय संग्रह का आयद्रव्य ऐसा व १२ ≡|२३
२४ ओ

वहां किंचित् कम को न गिनकर उसके मध्यमखंड सहित तृतीय संग्रह की जघन्य कृष्टि ऐसी व | १२ उसका भाग देकर अपकर्षण करके और भागहार के भागहार
४
ख

को राशि करनेपर संक्रमणद्रव्य द्वारा बीच-बीच में हुयी नयी कृष्टियों का प्रमाण ऐसा ४ | २३ । इसका भाग अपनी सर्व कृष्टियों के प्रमाण को देनेपर संक्रमणांतर
ख २४ ओ

कृष्टियों के बीच जो कृष्टि पायी जाती हैं *(अंतराल)* उनका प्रमाण ऐसा ४ यहां अपवर्तन करके भागहार के भागहार को राशि करनेपर
ख २४ | ४ | २३
ख २४ ओ

ऐसा ओ । पूर्वोक्त संक्रमणांतरकृष्टियों का प्रमाण ऐसा ४ | २३ उसका
२३ ख २४ ओ

भाग अवशेष आयद्रव्य को देनेपर एक खंड होता है, उसको उसीसे गुणा करनेपर अपने अवशेष आयद्रव्य मात्र संक्रमणांतरकृष्टि समानखंड द्रव्य होता

है । द्वितीय संग्रह में आयद्रव्य के अभाव से ऐसा द्रव्य नहीं है, वहां शून्य जानना । इनकी संदृष्टि ऐसी –

नाम	लोभ की तृतीय संग्रह	लोभ की द्वितीय संग्रह
अधस्तनशीर्ष पूर्वविशेषद्रव्य	वि ४ | $\overset{१}{४}$ ख २४ ख २४ | २	वि ४ | $\overset{१\ \ ०}{४}$ | ५७५ ख २४ ख २४ | २
मध्यमखंड	व १२ | ४ ४ ओ ० ख २४ ख	व १२ | ४ | २३ ४ ओ ० ख २४ ख
उभयद्रव्य विशेषद्रव्य	वि ४ | $\overset{१०}{४}$ | ४७ ख २४ ख २४ | २	वि ४ | $\overset{१}{४}$ | ५२९ ख २४ ख २४ | २
संक्रमणकृष्टिसंबंधी समानखंडद्रव्य	व १२ | २३ २४ ओ	०

अब बंधद्रव्य में विभाग कहते हैं –

अंत की बंधांतरकृष्टि सहित उसके ऊपर के पूर्वकृष्टियों के प्रमाण मात्र विशेष आदि ऐसा वि ४ \| २३ \| १ और एक अधिक गुणहानि के सोलहवें भाग से हीन
ख २४ प \| १६
०

दोगुणहानि मात्र विशेष ऐसे वि ८ \| २३ वह उत्तर
१६

[*विशेषार्थ : पूर्वकृष्टि ÷ बंधांतरकृष्टि = अंतराल*

$$\frac{४ \mid २३}{ख\ २४} \quad \frac{४}{ख\ ८ \mid ३} \quad = \quad \frac{२३ \mid ८ \mid \overset{१}{३}}{२४ \quad २} \quad = \quad \frac{२३ \mid ८}{१६} \quad \text{या} \quad \frac{८ \mid २३}{१६} \ ]$$

और पूर्व सर्व कृष्टिप्रमाण को डेढ़ गुणहानि का भाग देकर नवीन हुयी बंधांतरकृष्टि

मात्र गच्छ ऐसा $\frac{४}{ख\ ८\ |\ ३}$ यहां गुणहानि की संदृष्टि आठ का अंक है । ऐसे स्थापित
$\quad\quad\quad

पुनश्च पूर्वोक्त बंधांतरकृष्टियों का प्रमाण ऐसा $\frac{\text{४}}{\text{ख १२}}$ उसका भाग किंचित् कम समयप्रबद्ध ऐसा **स** – उसको देनेपर एक खंड होता है । उसको उसीसे गुणा करनेपर बंधांतरकृष्टि संबंधी समानखंड द्रव्य होता है ।

जो समयप्रबद्ध का अनंतवां भाग जुदा रखा था उसको सर्व पूर्व-अपूर्व बंधकृष्टि प्रमाण गच्छ का और एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर विशेष होता है, सो सर्व बंधकृष्टि प्रमाण गच्छ के संकलन मात्र विशेष उस जुदे रखे भाग में से ग्रहण करके स्थापना ।

यहां एक विशेष ऐसा **वि** आदि, एक विशेष उत्तर और सर्व कृष्टियों के प्रमाण में से अनुभय, उदय कृष्टि का प्रमाण घटानेपर बंधकृष्टि होती है । उस प्रमाण को किंचित् जानकर नहीं गिना ।

तब बंधकृष्टि मात्र गच्छ ऐसा $\frac{\text{४} \mid \text{२३}}{\text{ख} \mid \text{२४}}$ । यहां गच्छ में से एक घटाकर उसको दो का भाग देकर उत्तर जो विशेष उससे गुणा करनेपर ऐसा $\text{वि} \mid \frac{\text{४} \mid \text{२३}}{\text{ख २४} \mid \text{२}}$ इसमें एक विशेष आदि मिलाने के लिये एक हीन की जगह एक अधिक हुआ उसको न गिनकर, गच्छ से गुणा करनेपर ऐसा $\text{वि} \mid \frac{\text{४} \mid \text{२३}}{\text{ख २४} \mid \text{२}} \mid \frac{\text{४} \mid \text{२३}}{\text{ख २४}}$ ।

यहां तेइस, तेइस को परस्पर गुणा करके पांच सौ उनतीस हुये और गुण्य गुणकार आगे पीछे लिखकर ऐसा हुआ $\text{वि} \mid \frac{\text{४} \mid \text{४} \mid \text{५२९}}{\text{ख २४ ख २४} \mid \text{२}}$ इसका नाम बंधविशेष है । जुदे स्थापित में से इसको घटानेपर अवशेष समयप्रबद्ध का अनंतवां भाग ऐसा $\frac{\text{स}}{\text{ख}}$ उसको सर्व बंधकृष्टि प्रमाण का भाग देनेपर एक खंड होता है, उसको उसी से गुणा करनेपर बंधमध्यमखंड द्रव्य होता है ।

इसतरह बंधद्रव्य का विधान कहा । उसकी संदृष्टि ऐसी –

नाम	लोभ की द्वितीय संग्रह
बंधांतरकृष्टिविशेष द्रव्य	वि ४ | २३ | ४ ख २४ | २ | ख | ८ | ३ २
बंधांतरकृष्टिसंबंधी समानखंड द्रव्य	स – ४ ४ ख | १२ ख | १२
बंधविशेष ~~द्रव्य~~ द्रव्य	वि ४ | ४ | ५२९ ख २४ ख २४ | २
बंधमध्यम खंड द्रव्य	स ४ | २३ ख ४ | २३ | ख २४ ख २४

यहां द्वितीय संग्रह ही का बंध है इसलिए उसी में ऐसा विधान जानना । अब संक्रमणद्रव्य से निपजी सूक्ष्मकृष्टियों के द्रव्य में विभाग कहते हैं –

सूक्ष्मकृष्टिसंबंधी द्रव्य पूर्वोक्त ऐसा व १२ \| ५५३ ।
२४ ओ

[*विशेषार्थ* : द्वितीय संग्रह में से व १२ \| २३ \| २४ = व १२ \| ५५२ +
२४ ओ २४ ओ

तृतीय संग्रह में से व १२ = व १२ \| ५५३]
२४ ओ २४ ओ

इसको प्रथम समय में की हुयी सूक्ष्मकृष्टियों के प्रमाण मात्र गच्छ ऐसा ४
ख

उसका और एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर विशेष ऐसा

व १२ \| ५५३ १८ । एक कम गच्छ *(ऊपर की कृष्टि छोड़कर* ४ *का*
२४ ओ ४ \| १६ – ४ ख
ख ख २

संकलनधन निकालना है) और संपूर्ण गच्छ को दो और एक का भाग देनेपर एक बार संकलनधन होता है, उससे उस विशेष को गुणा करनेपर सूक्ष्मकृष्टिसंबंधी विशेष

द्रव्य होता है । इससे हीन सूक्ष्मकृष्टि के द्रव्य को सूक्ष्मकृष्टि प्रमाण ऐसा $\frac{४}{ख}$ का भाग देनेपर एक खंड, उसको उसीसे गुणा करनेपर सूक्ष्मकृष्टि संबंधी समानद्रव्य होता है । उनकी संदृष्टि ऐसी जानना –

नाम	सूक्ष्मकृष्टि
विशेष द्रव्य	व १२ | ५५३ $\frac{१ ∩}{४}$ $\frac{१ ∩}{४}$ | ४ २४ ओ ४ | १६ – $\frac{४}{ख}$ ख ख २ ख ख २
समानखंड द्रव्य	व १२ | ५५३ | ४ २४ ओ ४ | ख ख

सूक्ष्मकृष्टिसंबंधी विशेष ऐसा व १२ \| ५५३ $\frac{१ ∩}{४}$
२४ ओ \| ४ \| १६ – $\frac{४}{ख}$
ख ख २ इसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम कृष्टि का द्रव्य होता है । इस गुणकार में से क्रम से एक-एक घटाकर एक कम सूक्ष्मकृष्टि मात्र घटानेपर अंत कृष्टि का द्रव्य होता है । इन सब की रचना ऐसी –

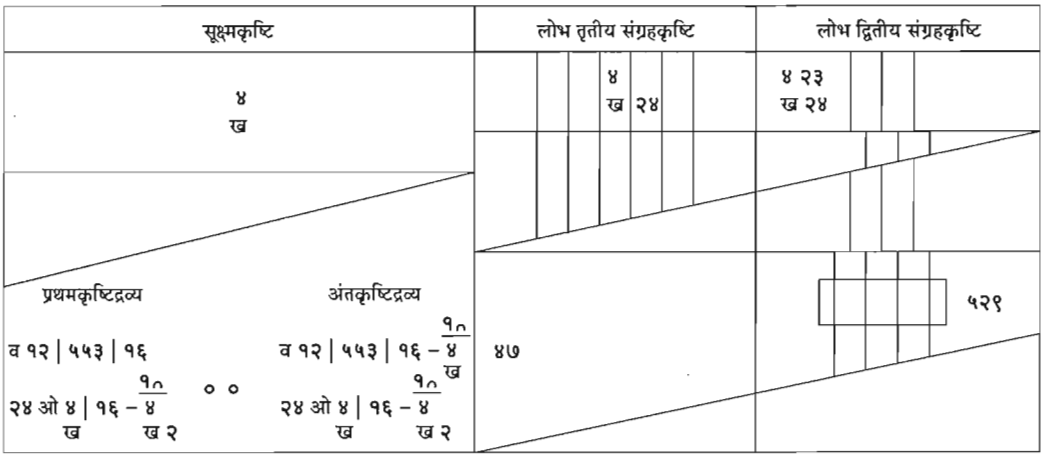

यहां अनुभाग की रचना है, इसलिए आड़ी सहनानी की है । नीचे सूक्ष्मकृष्टि

लिखी है । उसकी समपट्टिका और विशेष घटते क्रम की संदृष्टि करके नीचे आदि, अंत कृष्टियों के द्रव्य का प्रमाण लिखा है ।

उसके ऊपर लोभ की तृतीय संग्रहकृष्टि और उसके ऊपर द्वितीय संग्रहकृष्टि लिखी है । वहां समपट्टिका, पूर्व विशेष, अधस्तनकृष्टि, उभयद्रव्यविशेष की संदृष्टि पूर्वोक्त प्रकार से की है । उन कृष्टियों के बीच जो नवीन कृष्टि हुयी उसकी संदृष्टि बीच में रेखायें दिखायी हैं । वहां संक्रमणद्रव्य से निपजी हुयी की तो सीधी रेखायें और बंधद्रव्य से निपजी हुयी कृष्टियों की वक्र रेखायें खींची हैं ।

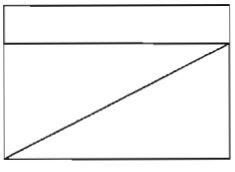

पुनश्च द्वितीय संग्रहकृष्टि की जिन पुरातन, नूतन बंधकृष्टियों में बंधांतरकृष्टिविशेष द्रव्य और बंधमध्यमखंड द्रव्य इनरूप बंधद्रव्य देता है, वहां उभयद्रव्यविशेष में से इतना द्रव्य घटता दिया है उसकी संदृष्टि उभयद्रव्य की रचना में ऐसी की है –

पुनश्च सूक्ष्मकृष्टिकारक काल के द्वितीय समय में प्रथम समय में जितनी कृष्टि की उनके असंख्यातवें भाग मात्र नवीन कृष्टि की है उनकी संदृष्टि $\frac{४}{ख\ ३}$ उनमें पूर्वकृष्टियों के नीचे जो कृष्टि करता है उनके असंख्यातवें भाग मात्र ऐसी $\frac{४}{ख\ ३\ ३}$ और पूर्वकृष्टियों के बीच में करता है वे बहुभाग मात्र ऐसी $\frac{४}{ख\ ३\ ३}\frac{१०}{३}$ । यहां गुणकार में एक कम है उसको न गिनकर अपवर्तन करनेपर ऐसा $\frac{४}{ख\ ३}$ होता है । इस समय में द्रव्य असंख्यातगुणा अपकर्षण करता है, उसकी संदृष्टि ऐसी $\frac{व\ १२ \mid ५५३}{२४\ ओ\ ३}$ ।

यहां असंख्यात के गुणकार को अपकर्षण भागहार का भागहार किया है । इसमें एक विशेष आदि, एक विशेष उत्तर, एक कम प्रथम समय में की हुयी कृष्टिप्रमाण मात्र गच्छ ऐसा $\frac{४}{ख}\frac{१०}{}$ करके वहां संकलनसूत्र के अनुसार गच्छ और एक अधिक गच्छ

को दो का भाग देनेपर संकलनधन होता है । इतने विशेष मात्र द्रव्य ग्रहण करके जुदा स्थापना । इसका नाम अधस्तनशीर्षविशेष है ।

पुनश्च प्रथम समय संबंधी सूक्ष्मकृष्टिद्रव्य को प्रथम समय में की हुयी कृष्टिप्रमाण का भाग देकर तथा एक विशेष अधिक है उसको न गिनकर उनकी जघन्य कृष्टि का द्रव्य ऐसा **व १२ | ५५३** उसको द्वितीय समय में पूर्वकृष्टियों के नीचे की हुयी
२४ ओ ४
ख
कृष्टियों का प्रमाण ऐसा **४** उससे गुणा करनेपर नीचे निपजी हुयी अपूर्वकृष्टि
ख ə ə
संबंधी समानखंड द्रव्य होता है । उसीको बीच में की हुयी कृष्टियों का प्रमाण **४**
ख ə
से गुणा करनेपर बीच में निपजी हुयी अपूर्वकृष्टि संबंधी समानखंड द्रव्य होता है ।

प्रथम, द्वितीय समय संबंधी सूक्ष्मकृष्टियों के द्रव्य को मिलाकर उसको प्रथम, द्वितीय समय संबंधी सर्व सूक्ष्मकृष्टि प्रमाण मात्र गच्छ का और एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर एक उभयविशेष होता है उसकी संदृष्टि ऐसी **वि** उसको, प्रथम समय संबंधी कृष्टि प्रमाण में द्वितीय समय संबंधी कृष्टि मिलाने के लिये अधिक की संदृष्टि करनेपर गच्छ ऐसा $\overset{\downarrow}{\underset{\text{ख}}{४}}$ अर्थात्

$$\left[\frac{४}{\text{ख}} + \frac{४}{\text{ख ə}} = \overset{\downarrow}{\underset{\text{ख}}{४}}\right]$$ उससे और एक अधिक करके उससे गुणा करके, दो, एक का भाग देकर संकलनधन मात्र उभयविशेष द्रव्य होता है ।

इन चार प्रकार का द्रव्य घटाने के लिये सर्व द्रव्य के आगे किंचित् कम की संदृष्टि करके उसको सर्व पूर्व-अपूर्व कृष्टि प्रमाण $\overset{\downarrow}{\underset{\text{ख}}{४}}$ का भाग देनेपर एक खंड होता है । उसको उसी गच्छ से गुणा करनेपर सर्व मध्यमखंड द्रव्य होता है ।

ऐसे द्वितीय समय में सूक्ष्मकृष्टि संबंधी द्रव्य में पांच प्रकार के द्रव्य कहे उनकी संदृष्टि ऐसी –

नाम	द्रव्य
अधस्तनशीर्ष	१ ∩ वि | ४ | ४ ख | ख | २
अधस्तन अपूर्वकृष्टि समानखंड	व १२ | ५५३ | ४ २४ ओ ४ ख ० ० ख
मध्यम अपूर्वकृष्टि समानखंड	व १२ | ५५३ | ४ २४ ओ ४ ख ० ख
उभयद्रव्यविशेष	१ वि ४ | ४ ख ख २
मध्यमखंड	व १२ | ५५३ ≡ | ४ २४ ओ ४ ख ख

पुनश्च बादरकृष्टि संबंधी तृतीय कृष्टि में चार प्रकार संक्रमणद्रव्य और द्वितीय कृष्टि में चार प्रकार बंधद्रव्य और तीन प्रकार घातद्रव्य देने का पूर्ववत् विधान जानना । यहां उनकी रचना ऐसी –

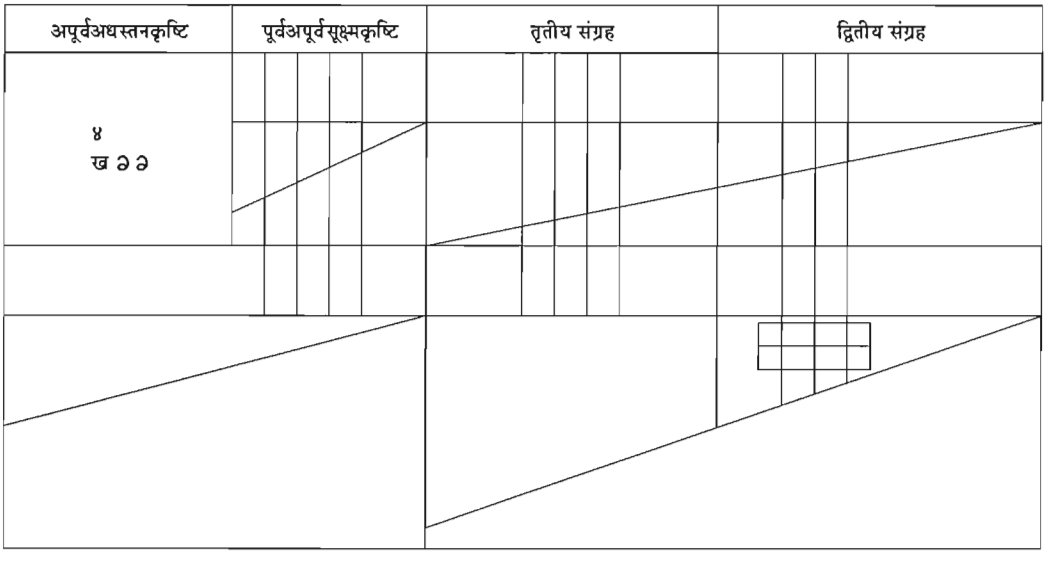

यहां पहले द्वितीय समय में नवीन की हुयी नीचे की कृष्टियों की रचना की है *(बायी तरफ)* उसके ऊपर प्रथम समय में की हुयी कृष्टियों की रचना की है । वहां समपट्टिका, पूर्व विशेष, अधस्तनकृष्टियों की रचना की है और बीच-बीच में नवीन हुयी कृष्टियों की ऊभी लकीरों की संदृष्टि की है । उन दोनों रचनाओं के मध्यमखंड और उभयद्रव्यविशेष की समरूप, क्रमहीनरूप सहनानी की । उसके ऊपर तृतीय, द्वितीय संग्रहकृष्टि की रचना की है उसका विधान प्रथम समयवत् जानना । ऐसे ही आड़ी रचना यहां की है ।

इसीतरह सूक्ष्मकृष्टिकारक के तृतीयादि समय से अनिवृत्तिकरण के अंत समय तक विधान की रचना यथासंभव जानना ।

उसके अनंतर सूक्ष्मसाम्पराय होता है । वहां प्रथम समय में मोहनीय का सत्त्वद्रव्य ऐसा $\frac{\text{स ३ १२}}{\text{७}}$ । यहां उत्कृष्ट समयप्रबद्ध को डेढ़ गुणहानि से गुणा करनेपर सर्व सत्त्वद्रव्य होता है, उसको सात का भाग देनेपर मोह का सत्त्वद्रव्य जानना ।

इसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर अपकृष्ट द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स ३ १२}}{\text{७ ओ}}$ इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर एकभाग ऐसा $\frac{\text{स ३ १२}}{\text{७ ओ प}\atop\text{३}}$ उसको सूक्ष्मसाम्पराय के काल से कुछ अधिक जो अवस्थित गुणश्रेणीआयाम, उसमें गुणकार क्रम से देना ।

वहां अंकसंदृष्टि की अपेक्षा उसको पचासी का भाग देकर एक से गुणा करनेपर प्रथम निषेक, चौंसठ से गुणा करनेपर अंत निषेक में दिया द्रव्य होता है । पुनश्च बहुभाग ऐसा $\frac{\text{स ३ १२}}{\text{७ ओ प}\atop\text{३}} \Big| \frac{\text{१८}}{\text{प}\atop\text{३}}$ यहां गुणकार में एक हीन को न गिनकर पल्य के असंख्यातवें भाग का अपवर्तन करके ऐसा $\frac{\text{स ३ १२}}{\text{७ ओ}}$; अंतरायाम का प्रमाण संख्यातगुणा

अंतर्मुहूर्त मात्र ऐसा २१|४; उससे संख्यातगुणा स्थितिकांडकायाम ऐसा २१|४|४; उससे संख्यातगुणी कांडक के नीचे अवशेष रही स्थिति ऐसी २१|४|४|४ ।

यहां गुणकारों को परस्पर गुणा करके कांडकायाम ऐसा २१|१६ और अवशेष स्थिति ऐसी २१|६४; इनको मिलानेपर द्वितीय स्थिति का प्रमाण ऐसा २१|८० इसको अंतरायाम का भाग देनेपर बीस आये, उसका भाग उस बहुभाग को देकर चार तो अंतरायाम में दिये उनकी संदृष्टि ऐसी स ७ ओ २० १२|४ और सोलह भाग प्रमाण द्रव्य द्वितीय स्थिति में दिया उसकी संदृष्टि स ७ ओ २० १२|१६ यहां यथायोग्य संख्यात की सहनानी चार का अंक करके ऐसी संदृष्टि की है ।

अपने-अपने द्रव्य को अपने-अपने आयाम मात्र गच्छ का और एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर विशेष होता है । उसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम निषेक में दिया द्रव्य तथा उस गुणकार में से क्रम से एक-एक घटाकर एक कम अपने गच्छ मात्र घटानेपर अंत निषेक में दिया द्रव्य होता है ।

यहां अंतरायाम का गच्छ ऐसा २१|४ और द्वितीय स्थिति का गच्छ ऐसा २१|८० जानना । वहां द्वितीय स्थिति में अंत की अतिस्थापनावली में द्रव्य नहीं दिया जाता, इसलिए उस गच्छ में इतना कम है, तथापि उसको किंचित् जानकर संदृष्टि में नहीं गिना । इनकी संदृष्टि ऐसी –

इस संदृष्टि में नीचे गुणश्रेणी आयाम की क्रमअधिकरूप, ऊपर अंतरायाम की, उसके ऊपर द्वितीय स्थिति की क्रमहीनरूप संदृष्टि की है । वहां आदि, अंत निषेक में दिया द्रव्य आगे लिखा है । मध्य निषेकों की सहनानी बिंदी लिखी है । इसके ऊपर अतिस्थापनावली की सहनानी चार का अंक लिखा है ।

यहां अंतरायाम में पहले द्रव्य का अभाव था, नवीन ही द्रव्य दिया इसलिए दो बड़ी लकीर बनायी, द्वितीय स्थिति में पहले द्रव्य था नवीन ही दिया इसलिए दो बड़ी लकीर बनायी । द्वितीयादि समय में भी ऐसा क्रम जानना ।

सूक्ष्मसाम्पराय प्रथम कांडक प्रथम समय रचना – *(दिया द्रव्य)*

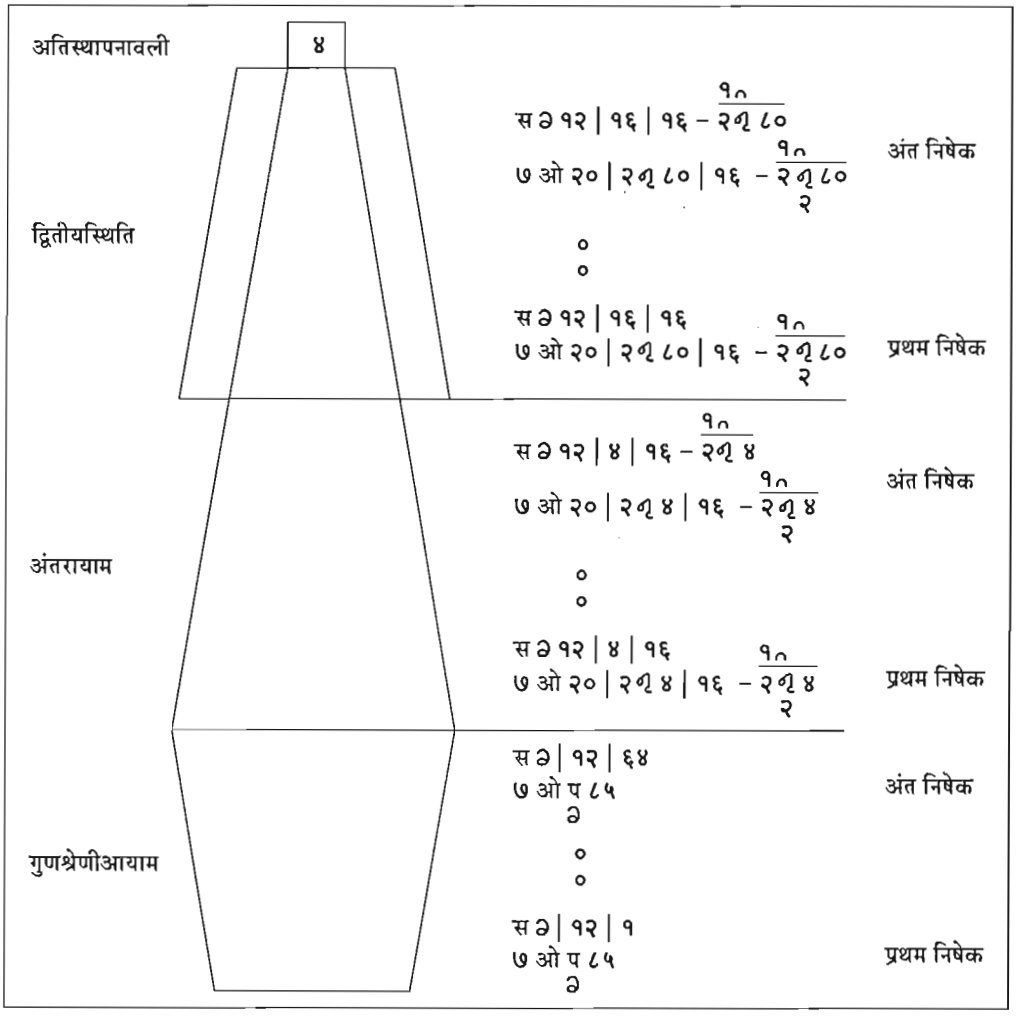

अब प्रथम स्थितिकांडक की अंत फालि के पतन समय में विधान कहते हैं – द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में एक कम द्वितीय स्थिति मात्र विशेष घटानेपर चरम फालि का अंत निषेक ऐसा $\frac{\text{स ə १२}}{\text{७ | २गु | ४ | २०}}$ अर्थात् $\left[\frac{\text{स ə १२}}{\text{७ | २गु | ८०}}\right]$

यहां सत्त्वद्रव्य को द्वितीय स्थिति का भाग देनेपर मध्यनिषेक होता है, उसमें जो विशेष हीन है उनके द्रव्य का प्रमाण किंचित् जानकर नहीं गिना । उसको कांडकायाम मात्र जो चरम फालि के निषेकों का प्रमाण उससे गुणा करनेपर चरम फालि का

सर्वद्रव्य ऐसा स ९ | १२ | २१ | ४ | ४ यहां विशेष अधिक है उनके द्रव्य को किंचित्
७ | २१ | ४ | २०
जानकर नहीं गिना है । यहां ऐसे २१ | ४ का अपवर्तन करनेपर ऐसा स ९ | १२ | ४
७ | २०
इसमें गुणश्रेणी के लिये अपकर्षण किया द्रव्य मिलाना, उसको किंचित् जानकर नहीं गिना है । पुनश्च इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एक भाग ऐसा स ९ | १२ | ४ गुणश्रेणी आयाम में पूर्वोक्त प्रकार से क्रमरूप देना ।
७ | २० | प
९

पुनश्च बहुभाग ऐसा स ९ | १२ | ४ | १८ / प यहां गुणकार में एक कम को न
७ | २० | प ९
गिनकर पल्य के असंख्यातवें भाग का अपवर्तन करके ऐसा स ९ | १२ | ४ इसमें
७ | २०
से अंतरायाम में दिया द्रव्य ऐसा स ९ | १२ | २० अर्थात् [स ९ | १२ | ४ | ५]
७ | २० | १७ ७ | २० | १७
और द्वितीय स्थिति में दिया द्रव्य ऐसा स ९ | १२ | ३ | १६ अर्थात्
७ | २० | १७
[स ९ | १२ | ४ | १२] इन दिये दोनों द्रव्य में ऐसा गुणकार भागहार कैसे हुआ
७ | २० | १७
उसका मुझे ठीक से ज्ञान नहीं हुआ, इसलिए विधान नहीं लिखा है ।

पुनश्च अंतरायाम का गच्छ ऐसा २१ | ४ और कांडकघात यहां पूर्ण हुआ इसलिए कांडकायाम रहित अवशेष द्वितीय स्थिति का गच्छ २१ | ४ | ४ | ४ अर्थात् [२१ | ६४] । सो अपने-अपने गच्छ का और एक कम गच्छ के आधे से हीन दोगुणहानि का भाग देनेपर विशेष होता है, उसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम निषेक तथा इस गुणकार में से एक कम गच्छ घटानेपर अंत निषेक होता है । उनकी रचना ऐसी –

सूक्ष्मसाम्पराय में प्रथमकांडक अंतफालि पतन समय रचना –

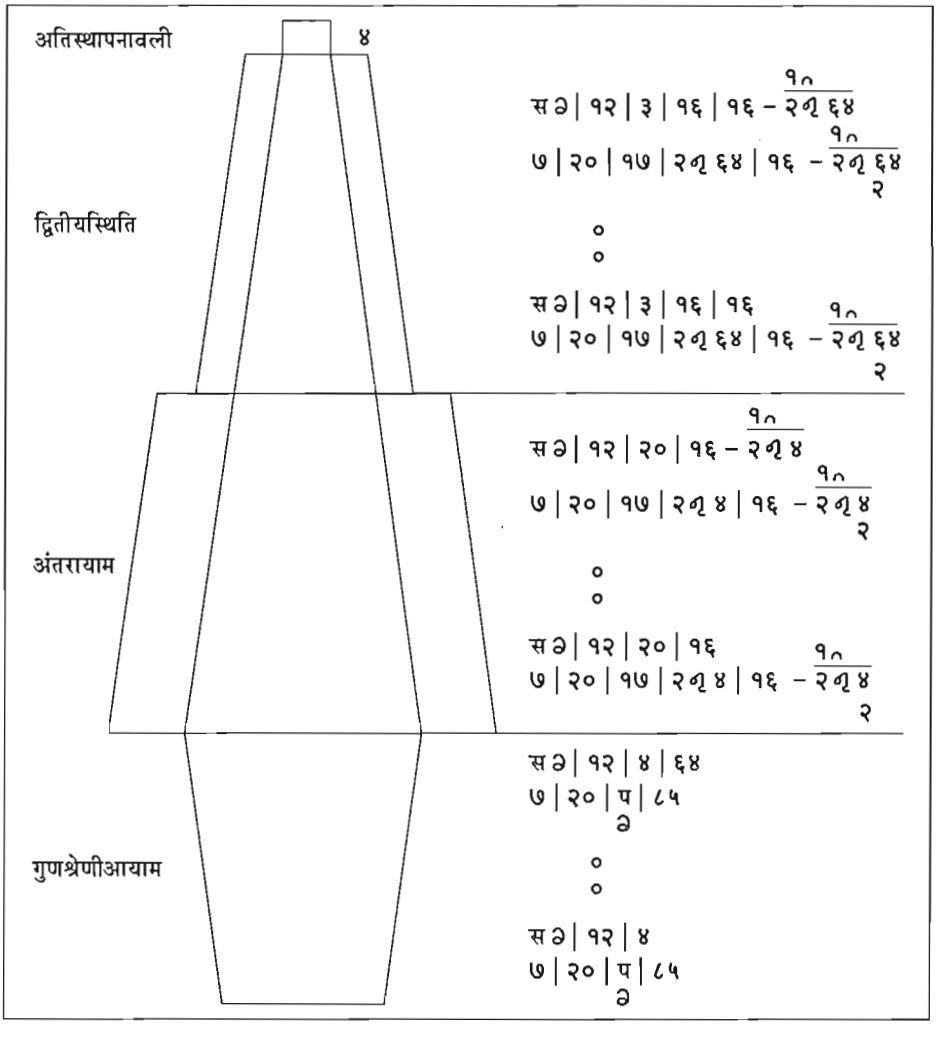

यहां रचना पूर्वोक्त प्रकार जानना । अंतरायाम में पहले भी द्रव्य था इसलिए यहां दो बड़ी लकीर की है । पुनश्च द्वितीय कांडक के प्रथम फालि पतन समय में सर्वद्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर ऐसा $\frac{\text{स ə | १२}}{\text{७ ओ}}$ द्रव्य ग्रहण करके

उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग गुणश्रेणी आयाम में, बहुभाग उपरितन स्थिति में अतिस्थापनावली को छोड़कर देता है । यहां अंतरायाम पूर्ण होने से अंतरायाम और द्वितीय स्थिति का एक गोपुच्छ हुआ । इसलिए एक रचना ही क्रमहीनरूप जानना । इनकी संदृष्टि ऐसी –

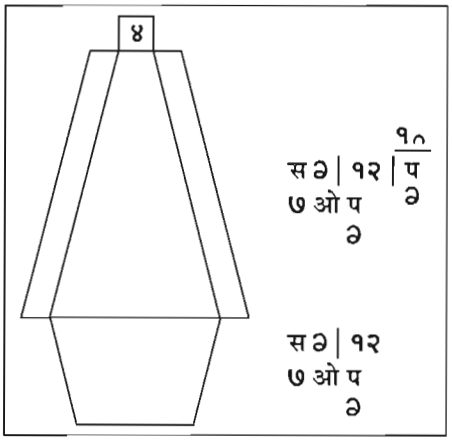

सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में सर्व सूक्ष्मकृष्टियों का प्रमाण प्रथम समय में की हुयी सूक्ष्मकृष्टियों के प्रमाण में साधिक करनेपर ऐसा $\frac{\downarrow ४}{ख}$ उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग मात्र मध्यकृष्टि उदयरूप होती है । एकभाग को अंकसंदृष्टि की अपेक्षा पांच का भाग देकर वहां दो भाग मात्र नीचे की और तीन भाग मात्र ऊपर की कृष्टि अनुदयरूप होती है । द्वितीयादि समयों में नीचे की कृष्टि नवीन उदयरूप हुयी, ऊपर की कृष्टि नवीन अनुदयरूप हुयी । उनका प्रमाण पहले की नीचे की और ऊपर की अनुदय कृष्टियों के असंख्यातवें भाग मात्र क्रम से है । मध्य उदयकृष्टि किंचित् हीन क्रम सहित है । उनकी संदृष्टि ऐसी –

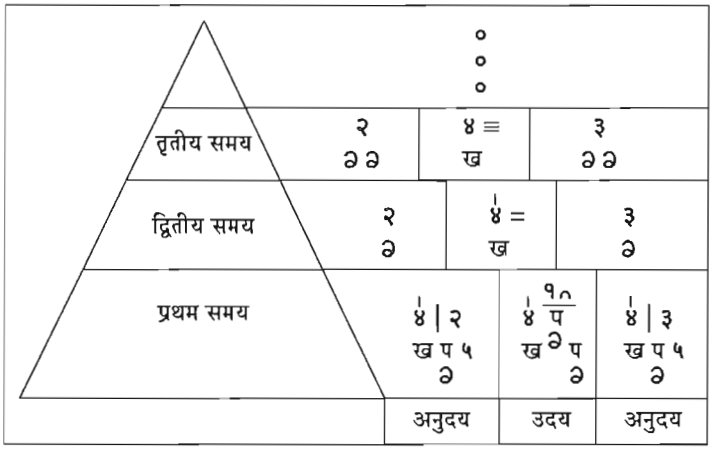

यहां क्रमहीनरूप प्रथमादि समयों में उदय आने योग्य प्रथमादि निषेक, उनकी

ऊर्ध्व रचना की है । वहां प्रथमादि निषेकों में नीचे की अनुदय, मध्य की उदय, ऊपर की अनुदय कृष्टियों की आड़ी रचना की है और उनका प्रमाण लिखा है । वहां द्वितीयादि निषेकों में नीचे की और ऊपर की कृष्टियों में दो, तीन भाग थे उनकी संदृष्टि दो, तीन का अंक करके उसको क्रम से एक, दो आदि बार असंख्यात का भाग देकर नवीन उदय, अनुदय कृष्टियों का प्रमाण लिखा है । बीच में सर्व कृष्टियों को दो, तीन आदि बार किंचित् कम की सहनानी करके उदय कृष्टियों का प्रमाण लिखा है ऐसा जानना ।

पुनश्च सूक्ष्मसाम्पराय के अंत कांडक का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स ə १२}}{\text{७}}$ यहां किंचित् कम है उसको गिना नहीं है । इसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर ऐसा $\frac{\text{स ə}}{\text{७ | ओ}} \Big| \frac{\text{१२}}{}$ प्रथम फालि का द्रव्य होता है । इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग सूक्ष्मसाम्पराय के अंत समय तक गुणकार क्रम से देता है । यहां यह गुणश्रेणीशीर्ष है । अवशेष एकभाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग पुरातन गुणश्रेणी के अंत तक विशेष घटता क्रम से देता है । अवशेष एक भाग उसके ऊपर की स्थिति में अतिस्थापनावली छोड़कर विशेष घटते क्रम से देता है । इसतरह तीन पर्वों में द्रव्य देता है । उसकी रचना ऐसी –

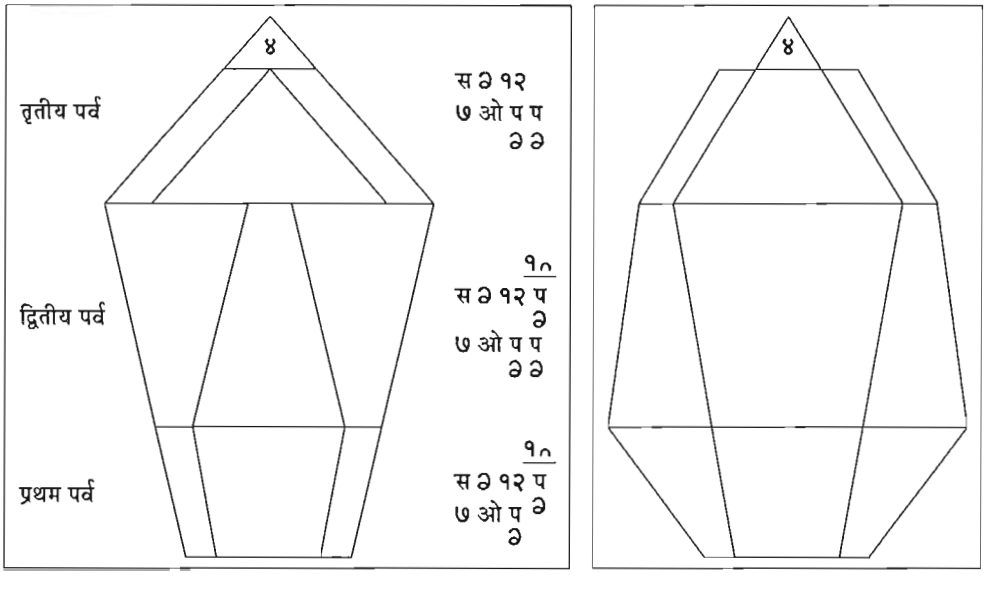

(दूसरी संदृष्टि वर्णन के अनुसार मेरी बुद्धि से बनायी है ।)

यहां नीचे अधिक क्रमरूप पुरातन गुणश्रेणी की रचना की, उसमें दिये द्रव्य की दूसरी लकीर नीचे प्रथम पर्व की अधिक क्रमरूप, उसके ऊपर द्वितीय पर्व की क्रमहीनरूप संदृष्टि की है । उसके ऊपर तृतीय पर्व की पुरातन और नवीन द्रव्य की दोनों लकीरे क्रमहीनरूप की है, इनके आगे दिये द्रव्य का प्रमाण लिखा है । ऊपर अतिस्थापनावली लिखी है ऐसा जानना । ऐसे ही द्वितीयादि फालि में विधान जानना । अंत फालि का द्रव्य किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण ऐसा $\frac{\text{स}\,\text{ə}}{\text{७}} \Big| \frac{१२}{}$ – उसको पल्य का असंख्यात वर्गमूल मात्र असंख्यात [*असंख्यातगुणा पल्य का वर्गमूल* $\sqrt{\text{प}\,\text{ə}}$ *अथवा* $\frac{\text{मू}\,\text{ə}}{}$] का भाग देकर एक भागमात्र उसको सूक्ष्मसाम्पराय के द्विचरम समय तक प्रथम पर्व में असंख्यातगुणा क्रम से देना । वहां उसको अंकसंदृष्टि की अपेक्षा पचासी का भाग देकर एक, चार, सोलह, चौंसठ से गुणा करके प्रथमादि निषेक होते हैं । बहुभाग सूक्ष्मसाम्पराय के अंत समय संबंधी निषेक में देता है । यह दूसरा पर्व है । इनकी संदृष्टि रचना ऐसी –

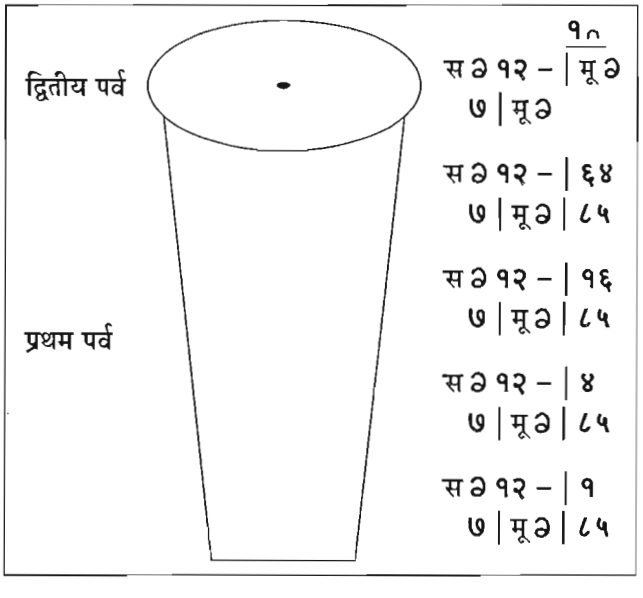

यहां प्रथम पर्व की अधिक क्रमरूप संदृष्टि की है । उसके आगे प्रथमादि निषेकों का द्रव्य लिखा है । उसके ऊपर एक निषेक बड़ा लिखा है, उसके आगे वहीं दिया

द्रव्य लिखा है । इसतरह कृष्टिवेदना अधिकार में संदृष्टि जानना ।

क्षीणकषाय में छह कर्मों में से विवक्षित एक कर्म का सत्त्वद्रव्य ऐसा स ७ | १२ – उसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग गुणश्रेणी आयाम में गुणकारक्रम से, बहुभाग उपरितन स्थिति में अतिस्थापनावली छोड़कर विशेष घटते क्रम से देना, उनकी संदृष्टि ऐसी –

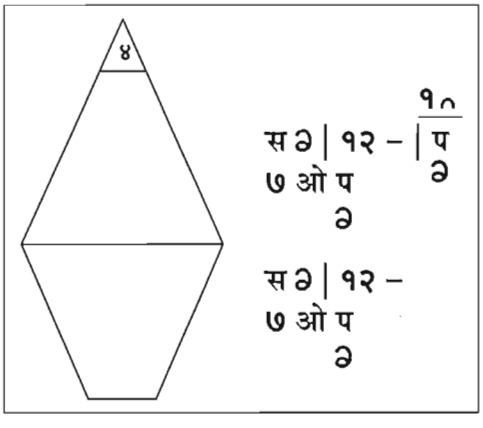

पुनश्च निद्रादि *(निद्रा, प्रचला)*, चौदह घाति *(५ ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, ५ अंतराय)* का, अंत कांडक में प्रथमादि फालियों का और अंत फालि का द्रव्य देने का विधान जैसे सूक्ष्मसाम्पराय में मोह का कहा वैसे ही जानना । उनकी रचना पूर्वोक्त प्रकार ऐसी –

निद्रादि प्रथमादि फालि	चौदहघाति प्रथमादि फालि	निद्रादि अंत फालि	चौदहघाति अंत फालि
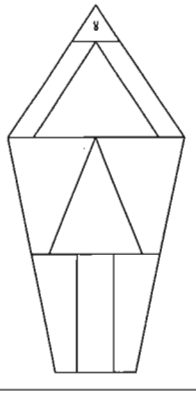	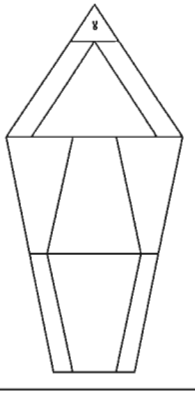	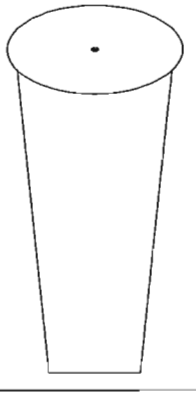	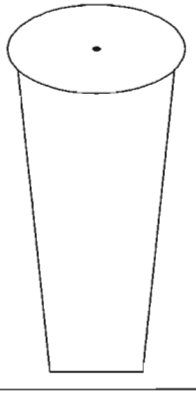

पुनश्च तीन वेद, चार कषायों में से एक सहित चढ़ने की अपेक्षा क्षपक जीव बारह प्रकार के हैं । वहां पुरुषवेद, क्रोध सहित चढ़नेवाले के नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, सातनोकषाय क्षपणा, अश्वकर्णकरण, कृष्टिकरण, क्रोध, मान, माया, लोभ क्षपणा क्रम से होते हैं ।

मान, माया, लोभ सहित चढ़नेवाले के नोकषाय क्षपणा तक तो समान है, पश्चात् क्रोध की, क्रोध मान की, क्रोध मान माया की क्षपणा क्रम से होती है पश्चात् अश्वकर्णकरण और कृष्टिकरण होते हैं; पश्चात् क्रम से अवशेष कषायों की क्षपणा होती है ।

अंतरकरण के पश्चात् कृष्टिकरण तक तो जिस कषाय सहित चढ़ा हो उसकी प्रथम स्थिति स्थापता है, पश्चात् अवशेष कषायों की जुदी-जुदी प्रथम स्थिति स्थापता है । वह प्रथम स्थिति गुणश्रेणी आयामरूप है इसलिए उनकी अधिक क्रमरूप रचना जानना ।

नपुंसकवेद, स्त्रीवेद सहित चढ़े जीव के स्त्रीवेद के क्षपणा काल में दोनों वेदों की क्षपणा होती है । यहां जिस वेद सहित चढ़ा हो उसी की प्रथम स्थिति स्थापता है ऐसा जानना । इसतरह इन नौ कालों के प्रत्येक यथायोग्य अंतर्मुहूर्त मात्र जानना । उनकी संदृष्टि रचना ऐसी –

२१				लोख	लोख	लोख	लोख
२१				याख	याख	याख	किका
२१				माख	माख	किका	अस्स
२१				कोख	किका	अस्स	याख
२१				किका	अस्स	माख	माख
२१				अस्स	कोख	कोख	कोख
२१			नो ७	नो ७	नो ७	नो ७	नो ७
२१	नइ	इ	इ	इ	इ	इ	इ
२१	न	न	न	न	न	न	न
२१	न	स्त्री	पु	क्रो	मा	या	लो

यहां इनके प्राकृत नाम के आदि अक्षर की संदृष्टि जानना । *(इ = स्त्रीवेद, को = क्रोध, या = माया, अस्स = अश्वकर्ण, किका = कृष्टिकरण, ख = क्षपणा)*

पुनश्च अवशेष तीन घातिकर्मों का नाश करके सयोगकेवली होता है । वहां प्रथमादि समय में आयु बिना तीन अघातिकर्मों के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर उदयादि गुणश्रेणी आयाम में गुणकारक्रम से, उपरितन स्थिति में विशेष घटते क्रम से अतिस्थापनावली छोड़कर देता है । उसकी संदृष्टि सुगम है । यहां स्वस्थान केवली से आवर्जितकरण में अपकर्षण द्रव्य असंख्यातगुणा और गुणश्रेणी आयाम संख्यातवें भाग मात्र जानना । पुनश्च दंड, कपाट, प्रतर, लोकपूरण *(समुद्घात)* में स्थितिसत्त्व घात किया उसका प्रमाण दंड में पल्य के असंख्यातवें भाग को असंख्यात का भाग देकर बहुभाग मात्र, कपाट में अवशेष एकभाग को वैसे ही भाग देकर बहुभाग मात्र, प्रतर में अवशेष एकभाग को वैसे ही भाग देकर बहुभाग मात्र और लोकपूरण में अवशेष एकभाग संख्यातगुणा अंतर्मुहूर्त से हीन जानना । ऐसे समय-समय घात होनेपर अवशेष स्थिति संख्यातगुणा अंतर्मूहूर्त मात्र रहती है । उसके संख्यात बहुभाग आयामरूप कांडकविधान द्वारा क्रम से घात करनेपर आयु के समान तीन अघातियों की अंतर्मुहूर्त मात्र स्थिति रहती है, उसकी संदृष्टि ऐसी –

तीन अघातिकर्म		तीन अघातिकर्म	आयु
दंड	– $\frac{१ ∩}{प ə \\ ə ə}$	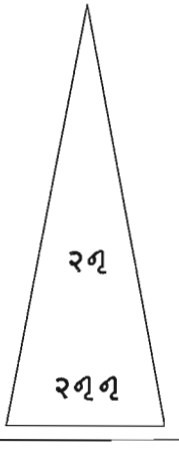	
कपाट	– $\frac{१ ∩}{प ə \\ ə ə ə}$		
प्रतर	– $\frac{१ ∩}{प ə \\ ə ə ə ə}$		
लोकपूरण	– $\frac{प}{ə ə ə ə}$ – २गु		

यहां क्रमहीनरूप निषेकों की संदृष्टि रचना जानना ।

सयोगीजिन के पूर्वस्पर्धक, अपूर्वस्पर्धक, सूक्ष्मकृष्टिरूप योग अनुक्रम से होते हैं । वहां एक जीव के प्रदेशों में *(योग के)* अविभागप्रतिच्छेद असंख्यातलोक प्रमाण हैं, उसीका नाम वर्ग है उसकी संदृष्टि ऐसी **व** है । समान अविभागप्रतिच्छेद युक्त वर्गों के समूहरूप एक स्पर्धक में वर्गणा जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण है इसीका नाम वर्गणाशलाका है । इसकी संदृष्टि चार का अंक है । स्पर्धकसमूहरूप गुणहानि में स्पर्धकों का प्रमाण असंख्यात है इसीका नाम स्पर्धकशलाका है । उसकी संदृष्टि नौ का अंक है । गुणहानिसमूहरूप एक स्थान में गुणहानियों का प्रमाण पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है, इसीका नाम नानागुणहानि है, उसकी संदृष्टि **ना** । इस तरह जघन्य स्थान होता है । इनके प्रमाण की संदृष्टि ऐसी जानना –

अवि	वर्ग	वर्गणाशलाका	स्पर्धकशलाका	नानागुणहानि	योगस्थान
≡ə	=ə	ə̄	ə̄ ə	प ə	१

स्थान-स्थान प्रति सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण मात्र जघन्य स्पर्धक बढ़ते हैं । इसतरह उत्कृष्ट परिणामयोग तक क्रम है । ऐसे पूर्वस्पर्धक में विधान है । वहां पूर्वस्पर्धक के जघन्य वर्ग के अविभागप्रतिच्छेदों की संदृष्टि ऐसी **व** इसको स्पर्धकशलाका और नानागुणहानि से गुणा करनेपर अंत स्पर्धक के प्रथम वर्ग की संदृष्टि होती है **व ९ ना** । उसमें अंकसंदृष्टि की अपेक्षा वर्गणाशलाका का प्रमाण चार, उसमें से एक घटाकर तीन हुये, उसे अधिक करनेपर पूर्वस्पर्धक के उत्कृष्ट वर्ग के अविभागप्रतिच्छेदों की संदृष्टि ऐसी $\frac{३}{\text{व ९ ना}}$ ।इनके नीचे अपूर्वस्पर्धक होता है, उनका प्रमाण स्पर्धकशलाका को असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र होता है वह ऐसा $\frac{९}{\text{ओ ə}}$ इसके उत्कृष्ट वर्ग में अविभागप्रतिच्छेद पूर्वस्पर्धक के जघन्य वर्ग के असंख्यातवें भागमात्र है $\frac{\text{व}}{\text{ə}}$, इसको अपूर्वस्पर्धक प्रमाण का भाग देनेपर अपूर्वस्पर्धक के जघन्य वर्ग का अविभागप्रतिच्छेद होता है । वह ऐसा $\frac{\text{व}}{\text{ə ९}}$ । सर्व प्रदेशों को डेढ़ गुणहानि

ओ ə

का भाग देनेपर पूर्वस्पर्धक की प्रथम वर्गणा का द्रव्य होता है । इसको दोगुणहानि का भाग देनेपर एक विशेष होता है । प्रथम वर्गणा से द्वितीयादि अंत वर्गणा तक एक-एक विशेष घटता द्रव्य प्रथम गुणहानि में होता है ।

द्वितीयादि गुणहानि में आधा-आधा क्रम अंत गुणहानि तक जानना । आदि वर्गणा को डेढ़ गुणहानि से गुणा करनेपर सर्व प्रदेशप्रमाण ऐसा **व १२** उसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र द्रव्य ग्रहण करके उसको अपूर्व-पूर्व स्पर्धकों में यथायोग्य देता है । इनकी संदृष्टि यथासंभव जान लेना । पूर्वअपूर्व स्पर्धकों की रचना ऐसी –

यहां द्रव्य की संदृष्टि यथासंभव जानना ।

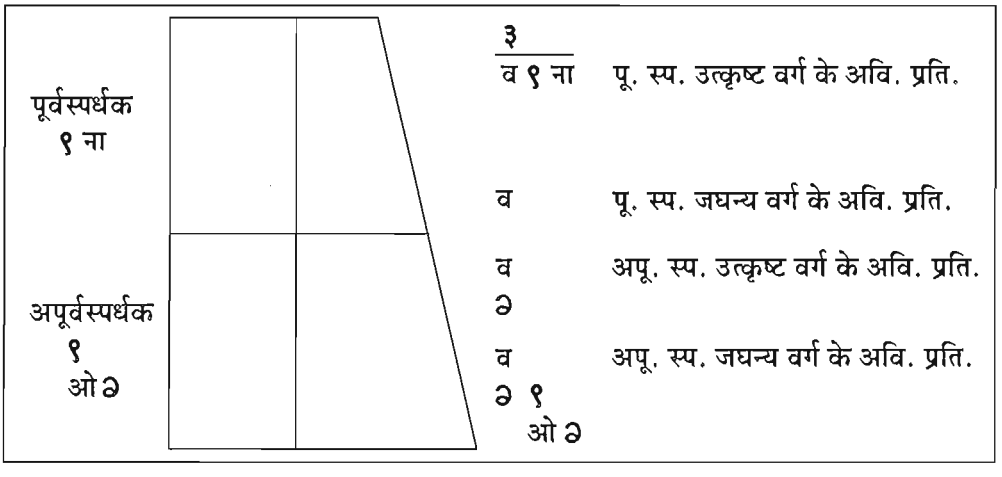

यहां रचना ऊर्ध्व की है ।

द्वितीय समय में प्रथम समय से असंख्यातगुणा द्रव्य अपकर्षण करता है वह ऐसा $\frac{\text{व १२}}{\text{ओ}}$ यहां गुणकार को भागहार का भागहार किया है ।
३

प्रथम समय में किये हुये अपूर्वस्पर्धकों के नीचे नवीन अपूर्वस्पर्धक करता है । उनका प्रमाण प्रथम समय संबंधी स्पर्धकों के असंख्यातवें भाग मात्र है वह ऐसा $\frac{९}{\text{ओ ३ ३}}$ । यहां संदृष्टि रचना ऐसी –

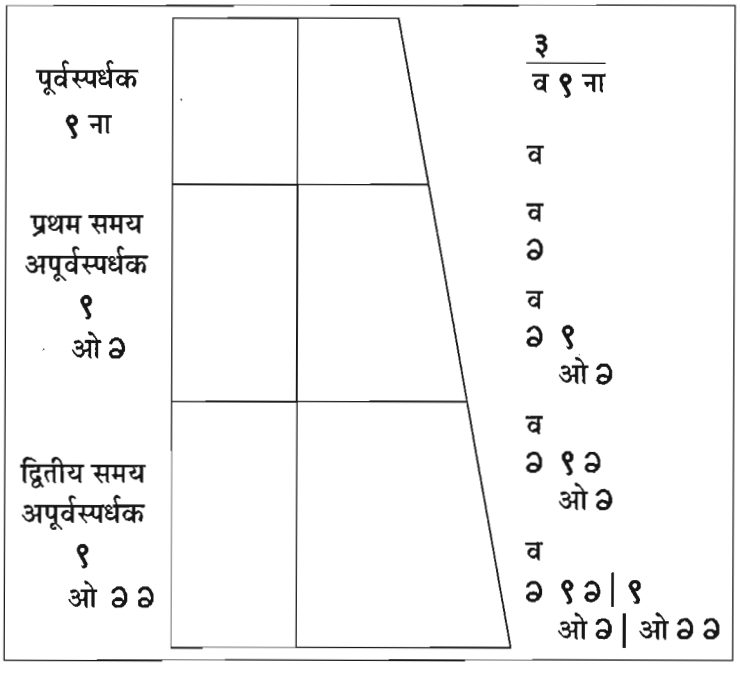

यहां सर्व स्पर्धकों की वर्गणा की संदृष्टि में समपट्टिका करके आगे विशेष घटते क्रम की संदृष्टि की है । वहां सबसे ऊपर पूर्वस्पर्धक, उसके नीचे प्रथम समय में किये हुये अपूर्वस्पर्धक और उसके नीचे द्वितीय समय में किये हुये अपूर्वस्पर्धक इनकी रचना जानना । इसीतरह अपूर्वस्पर्धककरण काल के अंत समय तक जानना ।

पुनश्च कृष्टिकरण काल के प्रथम समय में सर्व पूर्व-अपूर्व स्पर्धक संबंधी जीव प्रदेश ऐसे **व १२** । इनको अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र ऐसा **व १२** ग्रहण करके प्रथम समय में की हुयी प्रथमादि कृष्टियों में और अपूर्वस्पर्धक
ओ
की प्रथमादि वर्गणाओं में द्रव्य देता है । यहां की हुयी कृष्टियों का प्रमाण वर्गणाशलाका के असंख्यातवें भाग मात्र ऐसा **४** इनकी रचना ऐसी 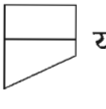 यहां कृष्टि की समपट्टिकारूप
ə
संदृष्टि करके नीचे विशेष घटते क्रम की संदृष्टि की है । द्वितीय समय में पूर्व द्रव्य से असंख्यातगुणा द्रव्य ऐसा **व १२** ग्रहण करके उसको प्रथम समय में की हुयी
ओ
ə

कृष्टिप्रमाण को असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र ऐसा ४ जो नीचे की नवीन कृष्टि हैं उनमें तथा प्रथम समय संबंधी प्रथमादि अंत ∂ ओ ∂ कृष्टि तक कृष्टियों में निक्षेपण करता है । इनकी रचना ऐसी –

द्वितीय समयकृत कृष्टि ४ ∂ ओ ∂	प्रथम समयकृत कृष्टि समपट्टिका
	प्रथम समयकृत कृष्टिविशेष / अधस्तनशीर्ष
मध्यमखंड	
उभयद्रव्यविशेष	

यहां नीचे नवीन कृष्टियों की, ऊपर पुरातन कृष्टि की रचना की है । पुरातन कृष्टि में समपट्टिका और विशेष घटते क्रम की संदृष्टि की है । पुरातन कृष्टि में अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य देनेपर सर्व कृष्टियों की समपट्टिका हुयी उसकी रचना की है । सर्वकृष्टियों में मध्यमखंड द्रव्य देनेपर समपट्टिका रही उसकी तथा उभयद्रव्यविशेष द्रव्य देनेपर विशेष घटता क्रम हुआ उसकी रचना की है । यहां ऐसी आड़ी रचना की है । यहां प्रथम समय में ग्रहण किया द्रव्य ऐसा व १२ इसको पल्य के ओ असंख्यातवें भाग का भाग देकर कृष्टि संबंधी द्रव्य ऐसा व १२ तथा अवशेष बहुभाग ओ प ∂ मात्र द्रव्य पूर्व-अपूर्व स्पर्धकों में देता है । कृष्टि संबंधी द्रव्य को प्रथम समय में की हुयी कृष्टिप्रमाण मात्र गच्छ ऐसा ४ उसका और किंचित् कम दोगुणहानि ऐसा ∂ १६ – उसका भाग देनेपर प्रथम समय संबंधी विशेष होता है वह ऐसा व १२ ओ प ४ | १६ – ∂ ∂ उसको दोगुणहानि से गुणा करनेपर प्रथम वर्गणा ऐसी व १२ | १६ उसको द्वितीय ओ प ४ | १६ – ∂ ∂

समय में की हुयी कृष्टिप्रमाण $\frac{४}{ओ\ ओ}$ से गुणा करनेपर अधस्तनकृष्टि का द्रव्य होता है । पुनश्च प्रथम समय संबंधी विशेष ऐसा $\frac{व\ १२}{ओ\ प\ ४\ |\ १६ -}$ उसको एक कम प्रथम समय संबंधी कृष्टिप्रमाण गच्छ तथा उससे एक अधिक प्रमाण को दो का भाग देनेपर उस गच्छ का संकलनधन होता है जो ऐसा $\frac{१ \cap}{४\ |\ ४}$ इससे गुणा करनेपर अधस्तनशीर्ष विशेष द्रव्य होता है ।

पुनश्च द्वितीय समय में द्रव्य ऐसा $\frac{व\ १२}{ओ}$ यहां भागहार के भागहार को राशि का गुणकार करके ऐसा $\frac{व\ १२}{ओ}$ इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर कृष्टि संबंधी द्रव्य ऐसा $\frac{व\ १२}{ओ\ प}$ इसमें प्रथम समय संबंधी द्रव्य मिलाने के लिये आगे के असंख्यात के गुणकार के ऊपर एक अधिक करनेपर उभय संबंधी कृष्टिद्रव्य ऐसा $\frac{व\ १२\ \frac{१}{ओ}}{ओ\ प}$ । इसको, प्रथम समय में की हुयी कृष्टिप्रमाण में द्वितीय समय संबंधी कृष्टिप्रमाण मिलाने के लिये साधिक करनेपर उभय समय संबंधी कृष्टिप्रमाण मात्र गच्छ ऐसा $\frac{\downarrow ४}{ओ}$ उसका और किंचित् कम दोगुणहानि का भाग देनेपर उभयद्रव्यविशेष ऐसा $\frac{व\ १२ \frac{१}{ओ}}{ओ\ प\ \downarrow ४\ |\ १६ -}$ इसको उभयकृष्टि प्रमाण मात्र गच्छ और उससे एक अधिक प्रमाण को दो का भाग देनेपर उस गच्छ का संकलनधन ऐसा $\frac{\frac{१}{\downarrow ४}}{ओ\ ओ\ |\ २}$ उससे गुणा

करनेपर उभयद्रव्यविशेष द्रव्य होता है ।

द्वितीय समय संबंधी द्रव्य में से पूर्वोक्त तीन द्रव्य घटाने की आगे ऐसी ≡ संदृष्टि करके अवशेष द्रव्य ऐसा व १२ ओ प ə ≡ इसको उभय संबंधी कृष्टियों का भाग देनेपर एक खंड होता है उसको उसीसे गुणा करनेपर सर्व मध्यमखंड द्रव्य होता है । इनकी संदृष्टि ऐसी –

[*विशेषार्थ : यहां संदृष्टि देखने के पहले वह द्रव्य कैसे लाया उसको दुबारा देखते हैं – प्रथम समय संबंधी कृष्टि का द्रव्य* व १२ ओ प ə */ प्रथम समय का चय (विशेष)* व १२ ओ प ə | ४ ə | १६ – ə */ प्रथम समय की कृष्टि की प्रथम वर्गणा*

व १२ ओ प ə | १६ ə | ४ ə | १६ – ə */* अधस्तनकृष्टि का द्रव्य = प्रथम वर्गणा × द्वितीय समय की कृष्टि का प्रमाण व १२ ओ प ə | १६ ə | ४ ə | १६ – ə | ə ओ ə । अधस्तनशीर्ष द्रव्य = प्रथम समय का चय × एक कम प्रथम समय की कृष्टि प्रमाण का संकलनधन

व १२ ओ प ə | ४ ə | १६ – ə | ə | ə २ १० ४ | ४ । उभयद्रव्यविशेष द्रव्य = चय × संकलन धन ।

दोनों समय का द्रव्य व १२ ओ प ə १ ə, दोनों समय का चय व १२ ओ प ə १ ə ↓ ४ | १६ – ə ə , दोनों समय की कृष्टि ↓ ४ ə, इसका संकलनधन ↓ ४ ə ə | २ १ ↓ ४ । उभयद्रव्यविशेष द्रव्य =

व १२ $\frac{१}{ə}$ | ४ | $\frac{१}{४}$ । मध्यमखंड द्रव्य = शेष द्रव्य (तीन राशि घटाकर)
ओ प | ४ | १६ – | ə ə २ उभयकृष्टि
ə ə

× उभयकृष्टिप्रमाण व १२ | ə ≡ | ४]
ओ प ४ ə
ə ə

अधस्तनकृष्टि	व १२ | १६ | ४ ओ प | ४ | १६ – | ə ओ ə ə ə
अधस्तनशीर्ष	$\frac{१०}{४}$ $\frac{}{४}$ व १२ ओ प | ४ | १६ – | ə | ə | २ ə ə
उभयद्रव्यविशेष	$\frac{१}{ə}$ $\frac{१}{४}$ व १२ | ə | ४ | ४ ओ प | ४ | १६ – | ə | ə | २ ə ə
मध्यमखंड	व १२ ə ≡ ४ ə ओ प | ४ ə ə

कृष्टिकरण काल के तृतीयादि समयों में यथासंभव रचना जानना । यहां अपूर्वस्पर्धकों का और सूक्ष्मकृष्टि का विधान अनिवृत्तिकरणवत् जानना । वहां कर्मपरमाणुओं में अनुभागशक्ति की अपेक्षा वर्णन है, यहां जीवप्रदेशों में योगशक्ति का निरूपण है । वहां प्रमाणादि का विशेष है वह विशेष जानना ।

अब कृष्टिवेदक काल के प्रथम समय में विधान कहते हैं –

कृष्टिकरण काल के प्रथम समय में की हुयी कृष्टिप्रमाण में अन्य समय में की हुयी कृष्टिप्रमाण को मिलाने के लिये अधिक की संदृष्टि करनेपर सर्व कृष्टिप्रमाण

ऐसा $\frac{\downarrow ४}{ə}$ उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर बहुभाग ऐसा $\frac{\downarrow ४}{ə\,प\,ə}\ \frac{१८}{ə}$

बीच की उदयकृष्टियों का प्रमाण है । एकभाग ऐसा $\frac{\downarrow ४}{ə\,प\,ə}$ उसको अंकसंदृष्टि की अपेक्षा पांच का भाग देकर दो भाग मात्र नीचे की और तीन भाग मात्र ऊपर की अनुदयकृष्टियों का प्रमाण जानना । द्वितीय समय में नीचे की अनुदयकृष्टियों में से उनके असंख्यातवें भाग मात्र उदयरूप होती हैं तथा ऊपर की अनुदयकृष्टियों में उनके असंख्यातवें भाग मात्र उदयकृष्टि हैं वें अनुदयरूप होती हैं । इसीतरह तृतीयादि समयों में विधान जानना । इस सूक्ष्मकृष्टिवेदक काल में सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान होता है । उसकी संदृष्टि ऐसी –

तृतीयादि समय	० ० ०
द्वितीय समय	अनुदय | उदय | अनुदय $\frac{\downarrow ४ \mid २ \mid ə}{ə\ प\ \mid ५}$ $४ =$ $\frac{\downarrow ४ \mid ३ \mid ə}{ə\ प\ \mid ५}$
प्रथम समय	अनुदय | उदय | अनुदय $\frac{\downarrow ४ \mid २}{ə\ प\ \mid ५}$ $\frac{\downarrow ४\ \ \frac{१८}{प}}{ə\ प\ ə}$ $\frac{\downarrow ४ \mid ३}{ə\ प\ \mid ५}$

यहां प्रथमादि समयों की रचना की है उनके आगे कृष्टियों की रचना की है । वहां समपट्टिका और विशेष घटता क्रमरूप संदृष्टि की है और अनुदय, उदय, अनुदय कृष्टियों का प्रमाण लिखा है ।

सयोगकेवली में अंतर्मुहूर्त काल अवशेष रहनेपर वेदनीय, नाम, गोत्र के अंत कांडक की प्रथम फालि का पतन होता है । वहां उसके द्रव्य का ग्रहण करके स्थितिकांडकघात करने के पश्चात् अवशेष जो स्थिति रहेगी उसमें असंख्यातगुणा क्रम से और उसके ऊपर पुराने गुणश्रेणी आयाम के अंत तक चय घटते क्रम से और उसके ऊपर अतिस्थापनावली छोड़कर उपरितन स्थिति में चय घटते क्रम से द्रव्य देता है । ऐसे यहां तीन पर्व जानना । ऐसे ही उसकी द्वितीयादि चरम फालि पतन समय तक विधान जानना । अंत फालि पतन समय में अवशेष स्थिति के द्विचरम समय तक एक पर्व और अंत समयरूप द्वितीय पर्व-ऐसे दो पर्वों में द्रव्य देता है ।

यहां पचासी प्रकृतियों के सत्त्व में से बहत्तर प्रकृतियां तो अयोगी के द्विचरम समय में और तेरह प्रकृतियां उसके अंत समय में खिपेगी *(उनका क्षय होगा)*, इसलिए जुदी-जुदी रचना करते हैं । तेरह प्रकृतियों में से मनुष्यायु का स्थितिकांडकघात नहीं है इसलिए यहां बारह प्रकृतियों का ग्रहण किया है । जैसे क्षीणकषाय में ज्ञानावरणादि के अंत कांडक में विधान और सम्यग्दृष्टि का स्वरूप कहा था वैसे यहां जानना । आयु की अंतर्मुहूर्त मात्र स्थिति रही उसकी घटते क्रम से निषेक रचना जानना । इनकी संदृष्टि इसप्रकार है –

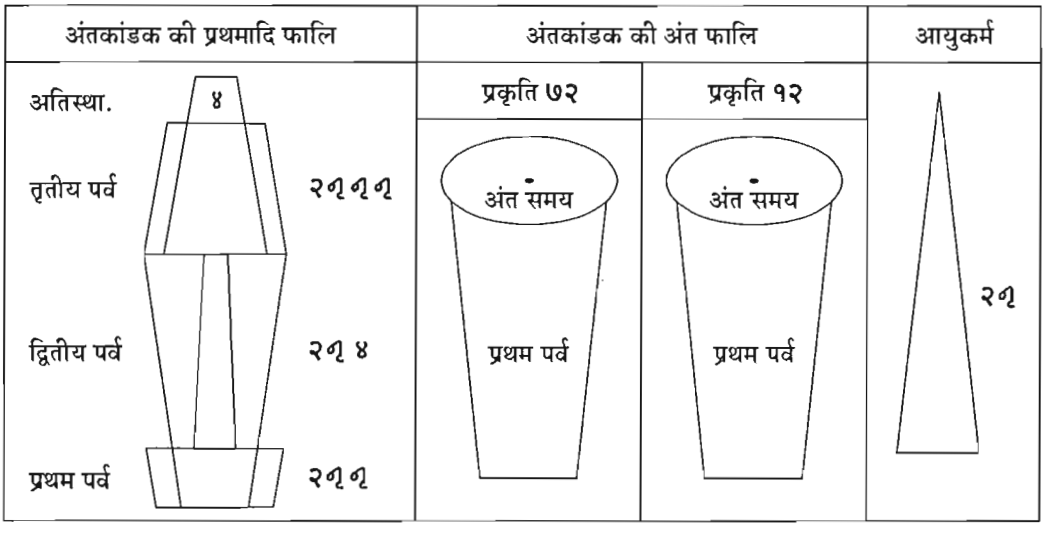

उसके अनंतर अयोगी गुणस्थान होता है । वहां पांच लघु अक्षर उच्चारण काल मात्र स्थिति है । उसके प्रथमादि समयों में उन सबके एक-एक निषेक को गलाता

है । वहां बहत्तर प्रकृतियों का द्विचरम समय में और तेरह प्रकृतियों का अंत समय में अंत निषेक गलाता है । यहां अयोगी काल के अंकसंदृष्टि की अपेक्षा चार समय मानकर बहत्तर प्रकृतियों की तीन निषेकरूप और बारह प्रकृतियों की चार निषेकरूप रचना ऐसी जानना –

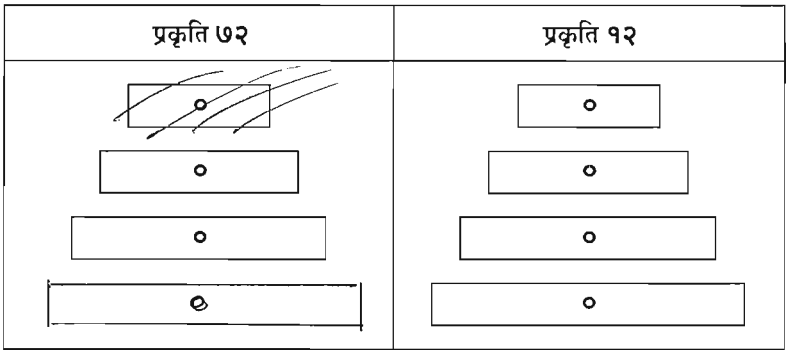

ये निषेक घटते क्रमरूप हैं और अधोगलनरूप जुदे-जुदे हैं, इसलिए उनकी जुदी-जुदी रचना घटते क्रम से की है । इसतरह सर्व कर्मों का क्षय करके उसके अनंतर समय में परद्रव्य संबंध से रहित केवल आत्मा ऊर्ध्वगमन करके लोक के अग्रभाग में जाकर विराजमान होता है । वहां अनंतकाल तक वैसे ही रहता है । इसलिए कृतकृत्य अवस्था को प्राप्त हुये, इसलिए उनको सिद्ध कहते हैं । वे सिद्धभगवान परम मंगलकारी हो ।

इसतरह श्री लब्धिसार नामक शास्त्र और इसीमें क्षपणासार शास्त्र का अर्थ गर्भित है । उसमें अर्थों की संदृष्टि और उन संदृष्टियों का स्वरूप निरूपण किया है । वहां जो चूक होगी वह विशेष ज्ञानी संवारकर शुद्ध करें, मुझको अल्पज्ञ मानकर क्षमा करें ।

— श्लोक —

गर्भितक्षपणासारं लब्धिसारश्रुतं महत् ।
तत्संदृष्टिसमाख्याति: पूर्णजातार्थभासिका ।।१।।
मंगलं मलहंतार्हन् सिद्धात्मा शुद्धमंगलं
मंगलं साधुसंघस्तद्धर्मो मंगलमुत्तमं ।।२।।

इति क्षपणासार अर्थ गर्भित लब्धिसार के अर्थों की संदृष्टियों का वर्णन संपूर्ण हुआ, इसके संपूर्ण होनेपर यह ग्रंथ समाप्त हुआ । ग्रंथ समाप्त होनेपर प्रारंभ किये हुये कार्य की सिद्धि होने से हम स्वयं को कृतकृत्य मानकर इस कार्य करने की आकुलता रहित होकर सुखी हुये । इसके प्रसाद से सर्व आकुलता दूर होकर हमारे शीघ्र ही स्वात्मज सिद्धि जनित परमानंद की प्राप्ति हो ।

– पं. टोडरमलजी

लब्धिसार क्षपणासार की अर्थसंदृष्टि का अनुवाद आज महावीर जयंति इ. सन २०१० में पूर्ण हुआ है । इसप्रकार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड उसकी अर्थसंदृष्टि, कर्मकाण्ड उसकी अर्थसंदृष्टि एवं लब्धिसार-क्षपणासार उसकी अर्थसंदृष्टि इन सभी ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद करके मेरे जीवन में एक महान कार्य सम्पन्न होने से, पं. टोडरमलजी की भाषा में निराकुलता का अनुभव कर रही हूँ । क्योंकि यह शुभभाव भी तो राग होने से आकुलतामय ही है ।

मेरी अल्पबुद्धि द्वारा यह जो प्रयास मेरे से हुआ है, इसमें जो त्रुटियाँ एवं अशुद्धियां हो, उसे विशेष ज्ञानीजन सुधार लें ।

– डॉ. श्रीमती उज्ज्वला शहा

अथ ग्रंथप्रशस्तिवर्णन

श्रीमत लब्धिसार वा क्षपणासार सहित श्रुत गोम्मटसार ।
ताकी सम्यग्ज्ञान चंद्रिका भाषामय टीका सुखकार ।
प्रारंभी अर पूरण भइ अब भए समस्त मंगलाचार ।
सफल मनोरथ भयो हमारो पायो ज्ञानानंद अपार ।।१।।

दोहा

आप अर्थमय शब्दजुत ग्रंथ उदधि गंभीर । अवगाहैं ही जानिये याकी महिमा धीर ।।२।।
षट्कारक या ग्रंथके निश्चय अर व्यवहार । जानहु जानत होत है जातैं सत्य विचार ।।३।।

सवैया

सिद्ध श्रुत शब्द सोई है स्वतंत्र करतार भया यहु ग्रंथ सोई कर्म पहिचानिए ।
ग्रंथरूप जुरनेकी शक्ति सो करण जैन शासन के अर्थि अैसौ संप्रदान जानिए ।
ग्रंथहीतैं भयो ग्रंथ यहु अपादान जैन श्रुतविषैं यहु अधिकरण प्रमानिए ।
स्वाश्रित स्वरूप षट्कारक विचारो अैसैं निश्चय करि आनकौ विधान न वखानिये ।।४।।
जिन गन इंद नेमि इंदु आदि करतार भयो ग्रंथ काज सोई कर्म शर्म थान है ।
याके होत भए जे सहाई हैं करण तेई भव्यनिके अर्थि किया अैसैं संप्रदान है ।
आन काज छूटनेतैं भयो यहु काज सोई अपादान नाम अैसैं जानत सुजान हैं ।
भयो क्षेत्रविषैं अधःकरण कहावे सोई अैसैं व्यवहार षट्कारक विधान हैं ।।५।।

दोहा

ग्रंथ होंनके जे भए समाचार सुखकार । तिनकौं जानहु कहत हो जाने जाने सार ।।६।।

सवैया ।।३१।।

वर्धमान केवलीके देहरूप पुद्गल ते जीव नाहि मेरै तौऊ उपकार करै हैं ।
मेघवत् अक्षर रहित दिव्य ध्वनि करि धर्मामृत वरसाय भवताप हरै हैं ।
ताहीका निमित्त पाइ आन स्कंध पुद्गलके नानाविध भाषारूप होइ विसतरे हैं ।
जाकौं जैसौ इष्ट सो सुने हैं सो सत्य अर्थ सभा माहि अैसौ जिन महिमा अनुसरै है ।।७।।
गनधर गौतम जु च्यारि ज्ञानधारी आप महा रुचि धारि तिनकीं तहां सुने है ।
तिनकों निमित्त अर श्रुतज्ञान शक्ति सेती साचे नाना अर्थिनिकों नीकी भांति भुने है ।
राग अंश उदै होत भई उपकार बुद्धि तातें ग्रंथ गुथनेकौं भले वर्ण चुने हैं ।
अंग अंगबाह्य रूप रचना बनाई ताकों करिके अभ्यास भव्य सर्व कर्म धुने हैं ।।८।।

बुद्धि ऋद्धि धारी कोई संपूरण जानि ताहि कोई ताके अंग अंश जानि अर्थ पायो है ।
केई ताके अनुसार ग्रंथ जोरै हैं नवीन करिकें संक्षेप सोई अर्थ तहां गायो है ।
गणधरके गूंथे ग्रंथ तिनकों न पाठी अब अैसो कलिकाल दोष आपको दिखायो है ।
अनुसारी ग्रंथनितैं शिव पंथ पाइ भव्य अबहू करि साधन स्वभाव भाव भायो है ।।९।।

मुनि भूतबलि यतिवृषभ प्रमुख भए तिनि हूनें तीन ग्रंथ कीने सुखकार हैं ।
प्रथम धवल अर दूजो है जयधवल तीजो महाधवल प्रसिद्ध नाम धार हैं ।
श्लोक तो हैं लाखो अर अर्थ है कठिन घनो तातें बुद्धिमान विनु जानै नाहि सार है ।
दक्षिणमें गोम्मट निकटि मूलबिद्रपुर तहां ठीक कीए ग्रंथ पाइए अवार है ।।१०।।

दक्षिण दिशामें नेमिचंद्र आदि मुनिराज भये तिनहूंके भयो तिनकों अभ्यास है ।
जैनी राजमल्ल राजा ताको मंत्री आप राजा भयो है चामुंडराय तहां ताकों वास है ।
तींहि कीनि प्रश्न तब धवलादि शास्त्रनिके अनुसारि कीयो इस ग्रंथको उजास है ।
बंधकादि संग्रहतैं नाम पंचसंग्रह है अथवा गोम्मटसार नामको प्रकाश है ।।११।।

दोहा

बहुत सूत्रके करनतैं नेमिचंद गुनधार । मुख्यपने यों ग्रंथके कहिए है करतार ।।१२।।

चौपाई

कनकनंदि फुनि माधवचन्द । प्रमुख भए मुनि बहु गुन कंद ।
तिनहूकौ है यामैं सीर । सूत्र कितेक किए गंभीर ।।१३।।

मौक्तिक रत्न सूत्रमें पोय । गूंथ्या ग्रंथ हार सम सोय ।
अर्थ प्रकाशक अमल अनूप । हृदय धरे सो है सुखरूप ।।१४।।

नेमिचंद जिन शुभपद धारि । जैसे तीर्थ कियो गिरिनारि ।
तैसें नेमिचंद मुनिराय । ग्रंथ कियो है तरण उपाय ।।१५।।

देशनिमें सुप्रसिद्ध महान । पूज्य भयो है यात्रा थान ।
यामैं गमन करै जो कोय । उच्चपना पावत है सोय ।।१६।।

गमन करणकौं गली समान । कर्णाटक टीका अमलान ।
ताकौं अनुसरती शुभ भई । टीका सुंदर संस्कृतमई ।।१७।।

केशववर्णी बुद्धि निधान । संस्कृत टीकाकार सुजान ।
मार्ग कियो तिहिं जुत विस्तार । जहं स्थूलनिकों भी संचार ।।१८।।

हमहू करिके तहां प्रवेश । पायो तारन कारण देश ।
चितवन करि अर्थनिकों सार । अैसें कीनो बहुरि विचार ।।१९।।

संस्कृत संदृष्टिनिकौ ज्ञान । नहि जिनके ते बाल समान ।
गमन करणकौं अति तरफरें । बल विनु नाहि पदनिकों धरें ।।२०।।

तिनि जीवनिकों गमन उपाय । भाषा टीका दई बनाय ।
वाहन सम यहु सुगम उपाव । याकरि सफल करो निज भाव ।।२१।।

पूर्व कहे सिद्धान्त महान । तिनहीमें जयधवल प्रधान ।
ताका पंच दशम अधिकार । ताकरि करके अर्थ विचार ।।२२।।

नेमिचंद नामा मुनिराय । लब्धिसार श्रुतसार बनाय ।
वर सम्यक्त्व चरित्र वखान । करिके प्रगट किए गुणथान ।।२३।।

उपशम श्रेणि कथन पर्यंत । ताकी टीका संस्कृतवंत ।
देखी देखे शास्त्रनि माहि । संपूरण हम देखी नाहि ।।२४।।

माधवचंद यती कृत ग्रंथ । देख्यो क्षपणासार सुपंथ ।
संस्कृत धारामय सुखकार । क्षपक श्रेणि वर्णनयुत सार ।।२५।।

वह टीका यह शास्त्र विचार । तिनि करि किछू अर्थ अवधार ।
लब्धिसारकी टीका करी । भाषामय अर्थनसों भरी ।।२६।।

अैसे ग्रंथ दोयकी बनी । भाषा टीका सुंदर घनी ।
इनिमैं जैसे कियो वखान । क्रमतैं जानो ताहि सुजान ।।२७।।

सवैया

करिकै पीठबंध जीवकांड भाषा कीनी तामैं गुणस्थान आदि दोय वीस अधिकार हैं ।
प्रकृति समुत्कीर्तन आदि नव ग्रंथनिकौ समुदाय कर्मकांड ताकी भाषा सार है ।
अैसैं अनुक्रम सेती पीछें लिख्यो इनिहीकी संदृष्टीनिकौ स्वरूप जहां अर्थभार है ।
पूरण गोम्मटसार ग्रंथ भाषा टीका भई याकौं अवगाहैं भव्य पावैं भव पार हैं ।।२८।।

समकित उपशम क्षायिककौ है वखान । पीछे देश सकल चारित्रको वखान है ।
उपशम क्षपक श्रेणी दोय तिनहूकौ कीयो है वखान ताकौं जाने गुणवान है ।
सयोगी अयोगी जिन सिद्धनिकों वर्णनकरि लब्धिसार ग्रंथ भयो पूरण प्रमान है ।
इनकी संदृष्टिनिकों लिखिकें स्वरूप ताकी संपूरण भाषा टीका कीनी भयो ज्ञान है ।।२९।।

याविध गोम्मटसार लब्धिसार ग्रंथनिकी भिन्न भिन्न भाषा टीका कीनी अर्थ गायकें ।
इनिकें परस्पर सहायपनौं देख्यो तातें एक करि दई हम तिनिकी मिलायकें ।
सम्यग्ज्ञान चंद्रिका धर्‍यो है याकौ नाम सो ही होत है सफल ज्ञानानंद उपजायकें ।
कलिकाल रजनीमैं अर्थकौ प्रकाश करे यातें निज काज कीने इष्ट भाव भायकैं ।।३०।।

संशयादि ज्ञाननिकौं हेतुभूत जीवनिकें तथाविध कर्मको क्षयोपशम जानिए ।
ताकरि हमारें किछू संशय विपर्यय वा अनध्यवसाय भया होसी अैसें मानिये ।
तिनकरि ग्रंथविषैं कहीं लिएं संशयकौं कहीं विपरीत कहीं स्पष्ट न वखानिये ।
लिख्यो होइ अर्थ ताकौं मेरो वश नाहि तातैं क्षमा करो गुनी, शुद्ध करो चूक मानिये ।।३१।।

दोहा

संशयादि होते किछू जो न कीजिए ग्रंथ । तौ छद्मस्थनिकैं मिटे ग्रंथ करनको पंथ ।।३२।।
जो कषाय उपजायकैं धरै अर्थ विपरीत । तौ पापी है आप ही आज्ञा भंग अभीत ।।३३।।
आज्ञा अनुसारी भए अर्थ लिखे या मांहि । धरि कषाय करि कल्पना हम किछु कीन्हों नाहि ।।३४।।

चौपाई

सम्यग्ज्ञान चंद्रिका नाम भाषामय टीका अभिराम ।
भई भले अर्थनिकरि युक्त, जाविध सो सुनिये अब उक्त ।।३५।।

सवैया

मैं हौं जीव द्रव्य नित्य चेतना स्वरूप मेरो लग्यो है अनादितें कलंक कर्ममलकौ ।
ताहीकौ निमित्त पाय रागादिक भाव भए भयो है शरीरकौ मिलाप जैसो खलकौ ।
रागादिक भावनिकौं पायकैं निमित्त फुनि होत कर्मबंध अैसो है बनाव कलकौ ।
अैसैं ही भ्रमत भयो मानुष शरीर जोग बने तो बने इहां उपाव निज थलकौ ।।३६।।

दोहा

रमापति स्तुत गुन जनक जाकौ जोगी दास । सोई मेरौ प्रान है धारे प्रगट प्रकाश ।।३७।।

चौपाई

मैं आतम अर पुद्गल स्कंध । मिलिकै भयो परस्पर बंध ।
सो असमान जाति पर्याय । उपज्यो मानुष नाम कहाय ।।३८।।
मातगर्भमैं सो पर्याय । करिकें पूरण अंग सुभाय ।
बाहिर निकसि प्रगट जब भयो । तब कुटुंबकौ भेलो थयो ।।३९।।
नाम धर्‌यो तिनि हरषित होइ । टोडरमल्ल कहै सब कोय ।
अैसो यहु मानुष पर्याय । बधत भरो निज काल गमाय ।।४०।।
देश ढूढाहडमांहि महान । नगर सवाई जयपुर थान ।
तामैं ताकों रहनौ घनौ । थोरो रहनो औढे बनो ।।४१।।

तिस पर्यायविषैं जो कोय । देखन जानन हारो सोय ।
मैं हौं जीव द्रव्य गुन भूप । एक अनादि अनंत अरूप ।।४२।।

कर्म उदयको कारण पाय । रागादिक हो है द्रव्य दाय ।
ते मेरे औपाधिक भाव । इनिकौ विनशैं मैं शिवराव ।।४३।।

वचनादिक लिखनादिक क्रिया । वर्णादिक अर इंद्रिय हिया ।
ए सब हैं पुद्गलका खेल । इनिमैं नाहि हमारो मेल ।।४४।।

रागादिक वचनादिक घना । इनके कारण कारिजपना ।
तातें भिन्न न देखे कोय । विनु विवेक जन अंधा होइ ।।४५।।

सवैया

कर्मकौ क्षयोपशम होत भयो मेरे किछू बुद्धिकौ विकास तातैं विद्याभ्यास कर्यो है ।
होनहार नीकौ तातैं ऐसा ही बनाव बन्यो नाना जैन ग्रंथनिमैं ज्ञान विस्तर्‌यो है ।
सार्थक गोम्मटसार लब्धिसार शास्त्रनिकौं अर्थ अवभास्यो तब ऐसो भाव धर्‌यो है ।
इनिकी जो भाषा टीका ह्वै तौ तुच्छबुद्धि घनी जानै सार अर्थ जो प्रमाण अनुसर्‌यो है ।।४६।।

चौपाई

रायमल्ल साधर्मी एक । धर्म सधैया सहित विवेक ।
सो नानाविध प्रेरक भयो । तब यहु उत्तिम कारज थयो ।।४७।।

ज्ञान राग तौ मेरो मिल्यो । लिखनौ करनौ तनकौ मिल्यो ।
कागदमहि अक्षर आकारि । लिखिया अर्थ प्रकाशनहार ।।४८।।

ऐसैं पुस्तक भयो महान । जानै जाने अर्थ सुजान ।
यद्यपि यहु पुद्गलकौ स्कंध । है तथापि श्रुतज्ञान निबंध ।।४९।।

संवत्सर अष्टादश युक्त । अष्टादश शत लौकिक युक्त ।
माघ शुक्ल पंचम दिन होत । भयो ग्रंथ पूरन उद्योत ।।५०।।

लिखो लिखावो वांचौ पढौ । सोधो सीखो रुचिजुत बढो ।
अर्थ विचारो धारन करौ । दुखदायक रागादिक हरौ ।।५१।।

ऐसैं करि याकौं अभ्यास । पावो सम्यग्ज्ञान प्रकाश ।
आशिर्वाद दयो है एह । होउ सफल सब विधि सुख गेह ।।५२।।

धर्म रागतै करत अभ्यास । हो है शुभ उपयोग प्रकाश ।
हीन होइ मोहादिक पाप । तातैं प्रगटै आप प्रताप ।।५३।।

वीतराग ह्वै ध्यावै अर्थ । होई शुद्ध उपयोग समर्थ ।
तातैं ज्ञानानंद स्वरूप । पावै निजपद अमल अनूप ।।५४।।
ऐसैं शुद्ध परमपद पाय । केवल दर्शन ज्ञान लहाय ।
भासैं सर्व अर्थ प्रत्यक्ष । गुणपर्यय लक्षणयुत लक्ष ।।५५।।
आकुलता कारन नहि कोय । तातैं सुखी सर्वथा होइ ।
ऐसी दशा सर्वदा रहे । कबहूँ आन दशा नहि गहै ।।५६।।

दोहा

ऐसो शास्त्राभ्यासकौ, उत्तम फल पहिचानि । रमौ शास्त्र आराममहि, सीख लेहु यहु मानि ।।५७।।
हम किछु शास्त्राभ्यास करि, फल पायो सुखकार । अब संपूरण सुखमई, होसी फल विस्तार ।।५८।।
शास्त्राभ्यासविषैं सुभग, बढ्यो अधिक उत्साह । तातैं भाषा शास्त्र रचि, कियो अर्थ अवगाह ।।५९।।
आरंभ्यो पूरण भयो, शास्त्र सुखद प्रासाद । अब भए कृतकृत्य हम, पायौ अति आल्हाद ।।६०।।
उपकारिकौ मानिए, भएं आपनौ काज । तातैं इस अवसर विषैं, बंदौं गुरु महाराज ।।६१।।
आदि अंत मंगल करत, होत काज हितकार । तातैं मंगलमय नमौं, पंच परम गुरु सार ।।६२।।

सवैया

अरहंत सिद्ध सूरि उपाध्याय साधु सर्व अर्थके प्रकाशी मंगलीक उपकारी है ।
तिनकौ स्वरूप जानि रागतैं भई है भक्ति तातैं कायकौं नमाय स्तुतिकौं उचारी है ।।
धन्य धन्य तुम तुमहीतैं सब काज भयो करजोरि वारंवार वंदना हमारी है ।
मंगल कल्याण सुख ऐसो अब चाहत हैं होहु मेरी ऐसी दशा जैसी तुम धारी है ।।६३।।

इति श्रीलब्धिसार वा क्षपणासारसहित गोम्मटसार शास्त्रकी सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषा टीका संपूर्ण ।

नमस्कार हो वीर प्रभू को, आचार्यों की परम्परा को,
जिनागम के रचयिताओं को, टीकाकार उन ज्ञानियों को,
जिनके कारण हमने पाया है श्रुत के सार को, अपने निजवैभव को ।

इस प्रकार श्री लब्धिसार-क्षपणासार सहित गोम्मटसार एवं उन सबकी
अर्थसंदृष्टि सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाषा टीका के समस्त
ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।